नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर-गुरुभ्यो नमः

सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

भाग 29

आगम ४०

"आवश्यक" मूलं एवं वृत्तिः [२]

मूल संशोधक :- पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब

अभिनव-संकलनकर्ता :- आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी [M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

पूज्य शासनप्रभावक आचार्यश्री हर्षसागरसूरिजी की प्रेरणा से

'वर्धमान जैन आगम मंदिर संस्था' पालिताणा

ईस प्रोजेक्ट के संपूर्ण-अनुदान-दाता

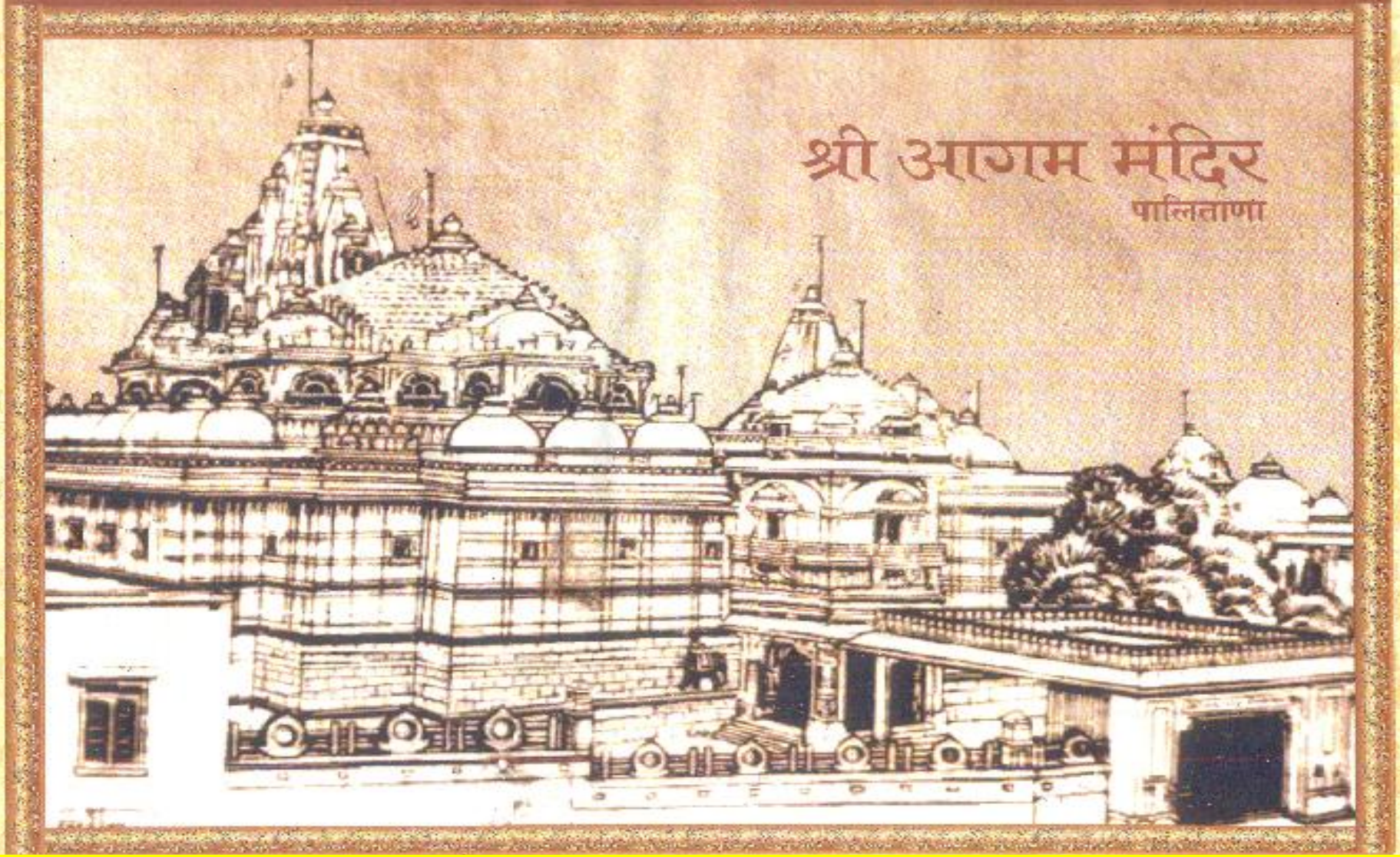

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

मूल संशोधक

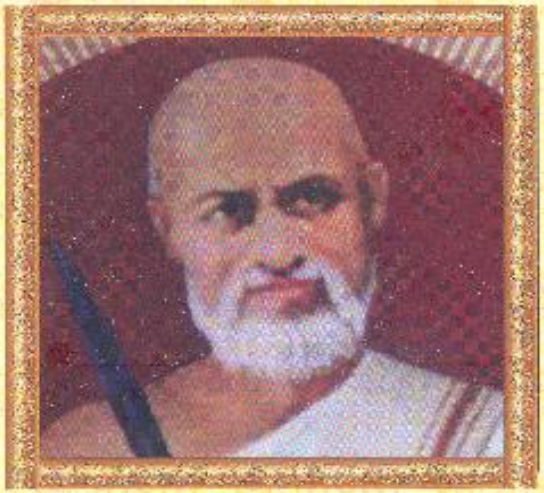

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य
श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज

अभिनव-संकलनकर्ता

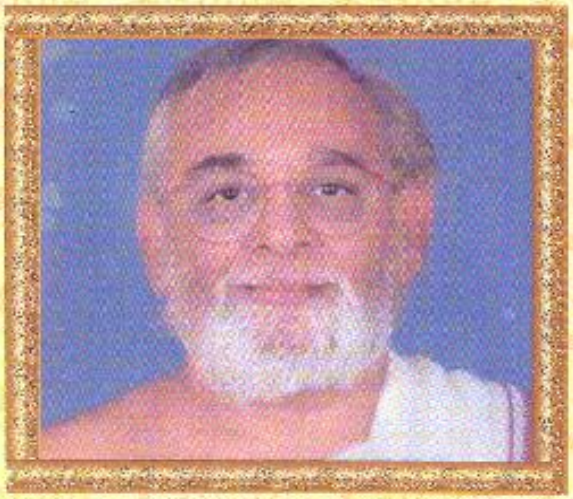

आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी
[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

प्रत-प्राप्ति और पेज-सेटिंग कर्ता : www.jainelibrary.org के चेरमन श्री प्रवीणभाई शाह, अमेरिका
मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस अमदावाद Mo 9825598855 / 9825306275

आगम

वाचना शताब्दी वर्ष

[भाग-२९] श्री आवश्यक सूत्रम् (मूलसूत्रम्-१/२)

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य श्रीआनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्यो नम:

"आवश्यक" मूलं एवं वृत्ति:

[मूलं + भद्रबाहुस्वामी कृत् निर्युक्ति; + भाष्यं + हरिभद्रसूरि रचिता-वृत्ति:]

भाग-२९, निर्युक्ति:- (५२२-९५१)

[आद्य संपादकश्री]

पूज्य आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागर सूरीश्वरजी म॰ सा॰

(किञ्चित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

पुन: संकलनकर्ता→ मुनि दीपरत्नसागर (M.Com., M.Ed., Ph.D. श्रुतमहर्षि)

28/07/2017, शुक्रवार, २०७३ श्रावण शुक्ल ५ 'सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' श्रेणि भाग-२९

श्री आगमोद्धारक-वाचना-शताब्दी-वर्ष-निमित्त 'आगम-वृत्ति-मुद्रण-प्रोजेक्ट'

सामाचारी-संरक्षक, ज्ञानधनी, आगम-संशोधक, तीव्र-मेधावी, समाधिमृत्यु-प्राप्त, बहुमुखीप्रतिभाधारक

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

◆ जिन्होने शुद्ध-श्रद्धा, सम्यक्-श्रुत आराधना, यथाख्यातचारित्र के प्रति गति और अंत समय देह-ममत्व के त्याग के द्वारा कायोत्सर्ग नामक अभ्यंतर-तप कि मिशाल कायम कि है ऐसे बहुश्रुत आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरजी महाराज का परिचय कराना मेरे लिए नामुमकिन है, फ़िर भी गुरुभक्ति बुद्धि से श्रद्धांजली स्वरुप एक मामुली सी झलक पैस करने का यह प्रयास मात्र है |

◆ चारित्र-ग्रहण के बाद अल्प कालमे जो अपने गुरुदेव की छत्रछाया से दूर हो गये, तो भी गुरुदेव के स्वर्ग-गमन को सिर्फ़ कर्मो का प्रभाव मानकर अपने संयम के लक्ष्य प्रति स्थिर रहते हुए अकेले ज्ञान-मार्ग कि साधना के पथ पर चले | पढाई के लिए ही कितने महिनो तक रोज एकासणा तप के साथ बारह किल्लोमिटर पैदल विहार भी किया | लेकिन अपने मंझिल पे डटे रहे, और परिणाम स्वरुप संस्कृत एवं प्राकृत भाषा का, प्राचीन लिपिओ का, व्याकरण-न्याय-साहित्य आदि का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया | जैन आगमशास्त्रो के समुद्र को भी पार कर गए|

◆ एक अकेला आदमी भी क्या नहीं कर शकता? इस प्रश्न का उत्तर हमें इस महापुरुष के जीवन और कवन से मिल गया, जब वे चल पड़े देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के स्थापित पथ पर. बिना किसी सहाय लिए हुए सिर्फ अकेले ही "जैन-आगम-शास्त्रो" को दीर्घजीवी बनाने के लिए अनेक हस्तप्रतो से शुद्ध-पाठ तैयार किये | दो वैकल्पिक आगम, कल्पसूत्र और निर्युक्तिओ को जोड़कर ४५ आगम-शास्त्रो को संशोधित कर के संपादित किया | फिर पालीताणामें आगम मंदिर बनवाकर आरस-पत्थर के ऊपर ये सभी आगम-साहित्य को कंडारा, सूरतमें ताम्रपत्र पर भी अंकित करवाए और "आगम मंजूषा" नाम से मुद्रण भी करवा के बड़ी बड़ी पेटीमें रखवा के गाँव गाँव भेज दिए | वर्तमानकालमे सर्व प्रथमबार ऐसा कार्य हुआ |

◆ सिर्फ मूल आगम के कार्य से ही उन के कदम रुके नही थे, उन्होंने आगमो की वृत्ति, चूर्णि, निर्युक्ति, अवचूरी, संस्कृत-छाया आदि का भी संशोधन-सम्पादन किया | उपयोगी विषयो के लिए उन्होंने एक लाख श्लोक प्रमाण संस्कृत-प्राकृत नए ग्रंथो की रचना भी की | कितने ही ग्रंथो की प्रस्तावना भी लिखी | ये सम्यक्-श्रुत मुद्रित करवाने के लिए आगमोदय समिति, देवचंद लालभाई इत्यादि विभिन्न संस्था की स्थापना भी की |

◆ ज्ञानमार्ग के अलावा सम्मेतशिखर, अंतरीक्षजी, केशरियाजी आदि तीर्थरक्षा कर के सम्यक-दर्शन-आराधना का परिचय भी दिया | राजाओं को प्रतिबोध कर के और वाचनाओ द्वारा अपनी प्रवचन-प्रभावकता भी उजागर करवाई | बालदिक्षा, देवद्रव्य-संरक्षण, तिथि-प्रश्न इत्यादि विषयोमे सत्य-पक्षमें अंत तक दृढ़ रहे | जैनशासन के लिए जब जरुरत पड़ी तब अदालती कारवाईंओ का सामना भी बड़ी निडरता से किया था |

◆ सागरानंदजी के नाम से मशहूर हो चुके पूज्य आनंदसागरसूरीश्वरजीने अपने परिवार स्वरुप ८७० साधू-साध्वीजी भी शासन को भेट किये |

...ये थे हमारे गुरुदेव "सागरजी"... *.....मुनि दीपरत्नसागर...*

संयमैकलक्षी, उपधान-तप-प्रेरक, चारित्र-मार्ग-रागी, प्रवचन-पटु, सुपरिवार-युक्त

पूज्य गच्छाधिपतिआचार्यदेव श्री देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

*** परमपूज्य आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी के पाट-परंपरामे हुए तिसरे गच्छाधिपति थे पूज्य आचार्य श्री देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी, जो एक पून्यवान् आत्मा थे, दीक्षा ग्रहण के बाद अल्पकालमे ही एक शिष्य के गुरु बन गये | फ़िर क्या ! शिष्यो कि संख्या बढती चली, बढ़ते हुए पुन्य के साथ-साथ वे आखिर 'गच्छाधिपति' पद पे आरूढ़ हो गए | इस महात्मा का पुन्य सिर्फ शिष्यों तक सिमित नही था, वे जहा कहीं भी 'उपधान-तप' की प्रेरणा करते थे, तुरंत ही वहां 'उपधान' हो जाते थे | प्रवचनपटुता एवं पर्षदापुन्य के कारण उन के उपदेश-प्राप्त बहोत आत्माओने संयम-मार्ग का स्वीकार किया | खुद भी संयमैकलक्षी होने के कारण चारित्रमार्ग के रागी तो थे ही, साथसाथ ज्ञानमार्ग का स्पर्श भी उन का निरंतर रहेता था | आप कभी भी दुपहर को चले जाइए, वे खुद अकेले या शिष्य-परिवार के साथ कोई भी ग्रन्थ के अध्ययन-अध्यापनमें रत दिखाई देंगे |

*** ये तो हमने उनके जीवन के दो-तीन पहेलु दिखाए | एक और भी अनुसरणीय बात उन के जीवनमें देखने को मिली थी- 'आराधना-प्रेम'. कैसी भी शारीरिक स्थिति हो, मगर उन्होंने दोनों शाश्वती ओलीजी, [पोष}दशमी, शुक्ल पंचमी, त्रिकाल देववंदन, पर्व या पर्वतिथि के देववंदन आदि आराधना कभी नहीं छोड़ी | आखरी सालोमें जब उन को एहसास हो गया की अब 'अंतिम-आराधना' का अवसर नजदीक है, तब उन के मुहमें एक ही रटण बारबार चालु हो गया- "*अरिहंतनुं शरण, सिद्धनुं शरण, साधुनुं शरण, केवली भगवंते भाखेला धर्मनुं शरण*" इसी चार शरणो के रटण के साथ ही वे समाधि-मृत्यु-रूप सम्यक् निद्रा को प्राप्त हुए थे | ऐसे महान् सूरिवर को भावबरी वंदना |

*** मुनि दीपरत्नसागर...

◆◆◆ श्री वर्धमान जैन आगम मंदिर संस्था, पालिताणा ◆◆◆

पूज्यपाद आनंदसागर-सूरीश्वरजी की बौद्धिक-प्रतिभा का मूर्तिमंत स्वरुप ऐसी इस संस्था की स्थापना विक्रम-संवत १९९९ मे महा-वद ५ को हुइ| *पूज्य आचार्य हर्षसागरसूरिजी की प्रेरणा से* जिन की तरफ़ से इस *सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि* के लिए संपूर्ण द्रव्य-सहाय की प्राप्ति हुइ |

शिल्प-स्थापत्य, शिलोत्कीर्ण आगम और समवसरण स्थित नयनरम्य ४५ चौमुख जिन-प्रतिमाजी से सुशोभित ऐसा ये 'आगममंदिर' है, जो शत्रुंजय-गिरिराज कि तलेटीमे स्थित है | वर्तमान २४ जिनवर, २० विहरमान जिनवर और १ शाश्वत मिलाकर ४५ चौमुखजी यहा बिराजमान है | जहां ४० समवसरण की रचना मेरु पर्वत के तिनो काण्ड के वर्णो के अनुसार चार अलग-अलग रंगो के आरस-पत्थर से बना है, देवो द्वारा रचित समवसरण के शास्त्र वर्णन-अनुसार आगम-मंदिर कि समवसरण का स्थापत्य है | ऐसी अनेक विशेषता से युक्त ये आगममंदिर है |

**** मुनि दीपरत्नसागर...*

'सागर-समुदाय-एकता-संरक्षक, तीर्थ-उद्धार-कार्य-प्रवृत्त, गुणानुरागी'

इस "सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' श्रेणि भाग १ से ४० के संपूर्ण अनुदान के प्रेरणादाता

पूज्य शासनप्रभावक आचार्य श्री हर्षसागरसूरिजी महाराज साहेब

पूज्यपाद स्व॰ गच्छाधिपति देवेन्द्रसागर-सूरीश्वरजी के विनयी शिष्य एवं दो गच्छाधिपतिओ के मुख्य सहायक के रुपमे 'सागर समुदाय' के सुचारु संचालक पूज्य हर्षसागरसूरिजी, जिन की प्रेरणा से ये "सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि" के मुद्रण के लिए संपूर्ण द्रव्यराशि प्राप्त हुई, उनका अत्यल्प परिचय यहां करेंगे| समुदाय-एकता के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हुए ये महात्मा *समुदाय के साधु-साध्वीजी* की आवश्यकताओकी पूर्ती के लिए भी प्रवृत्त रहेते है, प्राचीन-अर्वाचीन तीर्थो के जीर्णोद्धार एवं विकाश के लिए भी उत्साहित रहेते है, ज्ञान-क्षेत्र अछूता न रहे इसीलिए अनुमोदना, अनुदान एवं समय मिलने पर शास्त्र-वांचनमें भी रूचि रखते है | समुदाय के जरूरतमंद साध्वीजी भगवंतो के आवास का विषय हो या साध्वीजी के विहारमें मजदूर का वेतन चुकाना हो, ऐसे छोटे-छोटे कार्यो के प्रति भी उन का लक्ष्य रहेता है | दर्शन-शुद्धि के लिए जब उन्होंने समग्र भारतवर्ष के १०० साल तक के पुराने जिनालयो में १८ अभिषेक की प्रेरणा की, उस वक्त लगभग सभी अभिषेक-सामग्री की द्रव्य-शुद्धि का ख़याल रखते हुए अपनी मेधावी बुद्धि का परिचय दिया था, साथमे अनुकंपा भाव से पुजारी या विधि करानेवाले को यत्किंचित् बहुमान प्रगट करते हुए कुछ धन-राशि प्रदान करवाई |

ऐसे बहुगुण-संपन्न महात्मा पूज्य आचार्यश्री हर्षसागर-सूरिजी को हम भावभरी वंदना करते हुए इस श्रुतकार्य का प्रारंभ करने जा रहे है |

**** मुनि दीपरत्नसागर*

[कात्रज]पूना, कपडवंज, प्रभासपाटण आदि स्थानोमे आगममंदिर के प्रेरक, कर्मग्रंथ अभ्यासु, निस्पृह महात्मा

पूज्यपाद गच्छाधिपति आचार्य श्री दौलतसागर-सूरीश्वरजी महाराज साहेब

(एवं) अजातशत्रु, स्वाध्याय-रसिक, प्रशांतमूर्ती और अपने गुरु के प्रीतिपात्र

परम पूज्य आचार्य श्री नंदीवर्धनसागर-सूरिजी महाराज साहेब

इस पवित्र श्रुत-कार्यमे दोनो सूरिवरो का स्मरण करते हुए कोटि कोटि वंदना के साथ

.....मुनि दीपरत्नसागर

मूलांक:	अध्ययनं	पृष्ठांक		मूलांक:	अध्ययनं	पृष्ठांक:		मूलांक:	अध्ययनं	पृष्ठांक:
०१-०२	१-सामायिकं			०३-०९	२-चतुर्विंशतिस्तव:			१०- --	३-वंदनकं	
११-३६	४-प्रतिक्रमणं			३७-६२	५-कायोत्सर्ग			६३-९२	६-प्रत्याख्यानं	

आवश्यक सटीकं (संक्षिप्त) विषयानुक्रम

निर्युक्ति / भाष्य	पीठिका ➔➔➔			नि./भा.	अध्ययनं-१- सामायिकं			नि./भा.	अध्ययनं-४- प्रतिक्रमणं	
				८९०	नमस्कार-व्याख्या	३१४			नमस्कार व सामायिक-सूत्रं	
---	--मंगलं			९१९	अर्हत्, सिद्धादे: निर्युक्ति:	३७२			चत्वार: लोकोतम-मङ्गल एवं	
००१	--ज्ञानस्य पञ्चप्रकारा:			९६०	सिद्धशिला वर्णनं				----------शरणभूत पदार्था:	
०१३	--उपक्रम-आदि:			९९३	आचार्य-आदीनाम निक्षेपा:				संक्षिप्त व ईर्यापथ प्रतिक्रमण	
०८०	--उपोद्घात-निर्युक्ति:			१०१३	सामायिक- व्याख्या, स्वरुपम्				शयन संबंधी प्रतिक्रमणं	
०८१	--वीरआदिजिनवक्तव्यता			-----	उद्देश-वाचना-अनुज्ञा आदि:				भिक्षाचर्याया: प्रतिक्रमणं	
३४३	--भरतचक्री-कथानकं			-----	सूत्र स्पर्शे भङ्गा:				स्वाध्याय, उपकरणप्रतिलेखन	
भा.०३९	--बलदेव-वासुदेव कथानकं			-----	सामायिक-उपसंहार:				असंयम आदि ३३-आशातना	
५४३	--समवसरण वक्तव्यता	०१८			अध्ययनं-२- चतुर्विंशतिस्तव:				सूत्रोच्चारणे मिथ्यादुष्कृतम्	
५८८	--गणधर वक्तव्यता	०४०			सूत्रपाठ:, कीर्तनं, प्रतिज्ञा,				प्रवचनस्तुति, वंदना, क्षमापना	
६६६	--दशधा सामाचारी	०७७			--अर्हत: विशेषणं,				अध्ययनं-५- कायोत्सर्ग:	
७५४	--निक्षेप, नय, प्रमाणादि	१२५			--ऋषभादि नामानि, प्रार्थनादि				सूत्रपाठ:, कायोत्सर्गस्थापना	
७७८	--निह्नव वक्तव्यता	१८२			अध्ययनं-३- वन्दनं				श्रुतस्तव, सिद्धस्तवादि पाठ:	
७८९	--सामायिकस्वरुपम्	२१२			--गुरुवन्दन सूत्रपाठ:				अध्ययनं-५- प्रत्याख्यानं	
८१२	--गति आदि द्वाराणि	२२७			--मितावग्रह प्रवेशयाचना				सम्यक्त्व व श्रावकव्रतप्रतिज्ञा	
					--क्षमापना, प्रतिक्रमण-आदि:				विविध प्रत्याख्यानादि:	

[आवश्यक- मूलं एवं वृत्ति:] इस प्रकाशन की विकास-गाथा

यह प्रत सबसे पहले "आवश्यक सूत्र" के नामसे सन १९१६ (विक्रम संवत १९७२) में आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित हुई, इस के संपादक-महोदय थे पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी (सागरानंदसूरिजी) महाराज साहेब |

इसी प्रत को फिर अपने नामसे 'जिनशासन आराधना ट्रस्ट' की तरफ से आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरिजीने छपवाई, जिसमे उन्होंने खुदने तो कुछ नहीं किया, मगर इसी प्रत को ऑफसेट करवा के, ऊपर अपना नाम एवं अपनी प्रकाशन संस्था का नाम छाप दिया. यह स्पष्ट रूपसे एक प्रकारसे अदत्तादान ही है, ऐसी अनेक प्रतो के अगले दो पेज पलटकर या नए डालकर उन्होंने अपने नामसे छपवाइ है, इस तरह वो अपने आपको बड़ा आगम संरक्षक साबित करनेकी अनुचित चेष्टा कर चुके है |

इसी आवश्यक-सूत्र की प्रत को ऑफसेट की मदद से दुसरोने भी भी प्रकाशित करवाई है, किसीने पूज्यश्री सागरानंदसूरीश्वरजी महाराजश्री का नाम बड़ी इज्जत के साथ अपनी जगह पे ही रखा है, और खुदका नाम पुन: संपादक रूप से पेश किया है तो किसीने अपना नाम आगे कर दिया है और पूज्य सागरानंदसूरीश्वरजीका नाम गौण कर दिया है या उड़ा दिया है |

✣ हमारा ये प्रयास क्यों? ✣ आगम की सेवा करने के हमें तो बहोत अवसर मिले, ४५-आगम सटीक भी हमने ३० भागोमे १२५०० से ज्यादा पृष्ठोमें प्रकाशित करवाए है, किन्तु लोगो की पूज्यश्री सागरानंदसूरीश्वरजी के प्रति श्रद्धा तथा प्रत स्वरुप प्राचीन प्रथा का आदर देखकर हमने इसी प्रत को स्केन करवाई, उसके बाद एक स्पेशियल फोरमेट बनवाया, जिसमे बीचमे पूज्यश्री संपादित प्रत ज्यों की त्यों रख दी, ऊपर शीर्षस्थानमे आगम का नाम, फिर अध्ययन--मूलसूत्र-निर्युक्ति-भाष्य आदि के नंबर लिख दिए, ताँकि पढ़नेवाले को प्रत्येक पेज पर कौनसा अध्ययन, सूत्र, निर्युक्ति, भाष्य आदि चल रहे है उसका सरलतासे ज्ञान हो शके | बायीं तरफ आगम का क्रम और इसी प्रत का सूत्रक्रम दिया है, उसके साथ वहाँ 'दीप अनुक्रम' भी दिया है, जिससे हमारे प्राकृत, संस्कृत, हिंदी गुजराती, इंग्लिश आदि सभी आगम प्रकाशनोमें प्रवेश कर शके | हमारे अनुक्रम तो प्रत्येक प्रकाशनोमें एक सामान और क्रमशः आगे बढते हुए ही है, इसीलिए सिर्फ क्रम नंबर दिए है, मगर प्रत में गाथा और सूत्रों के नंबर अलग-अलग होने से हमने जहां सूत्र है वहाँ कौंस [-] दिए है और जहां गाथा है वहाँ ||-|| ऐसी दो लाइन खींची या 'गाथा' शब्द लिखा है| हर पृष्ठ के नीचे विशिष्ठ फूटनोट दी है |

शासनप्रभावक पूज्य आचार्यश्री हर्षसागरसूरिजी म०सा० की प्रेरणासे और श्री वर्धमान जैन आगममंदिर, पालिताणा की संपूर्ण द्रव्य सहाय से ये 'सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' भाग-२९ का मुद्रण हुआ है, हम उन के प्रति हमारा आभार व्यक्त करते है |

.....मुनि दीपरत्नसागर.

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

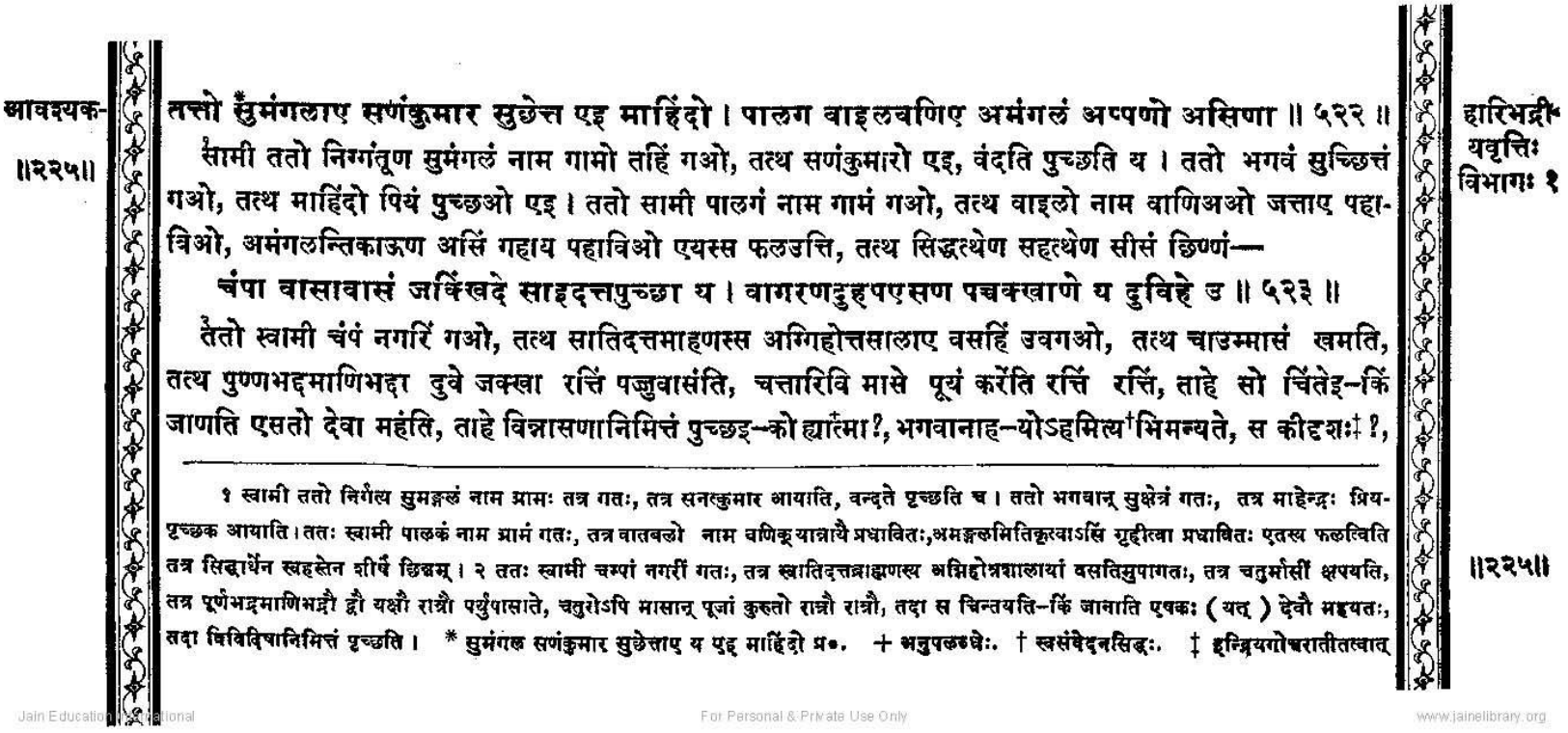

आवश्यक- ॥२२५॥

तत्तो सुमंगलाए सणंकुमार सुछेत्त एइ माहिंदो । पालग वाइलवणिए अमंगलं अप्पणो असिणा ॥ ५२२ ॥

सामी ततो निग्गंतूण सुमंगलं नाम गामो तहिं गओ, तत्थ सणंकुमारो एइ, वंदति पुच्छति य । ततो भगवं सुच्छित्तं गओ, तत्थ माहिंदो पियं पुच्छओ एइ । ततो सामी पालगं नाम गामं गओ, तत्थ वाइलो नाम वाणिअओ जत्ताए पहाविओ, अमंगलन्तिकाऊण असिं गहाय पहाविओ एयस्स फलउत्ति, तत्थ सिद्धत्थेण सहत्थेण सीसं छिण्णं—

चंपा वासावासं जक्खिंदे साइदत्तपुच्छा य । वागरणदुहपएसण पचक्खाणे य दुविहे उ ॥ ५२३ ॥

ततो स्वामी चंपं नगरिं गओ, तत्थ सातिदत्तमाहणस्स अग्गिहोत्तसालाए वसहिं उवगओ, तत्थ चाउम्मासं खमति, तत्थ पुण्णभद्दमाणिभद्दा दुवे जक्खा रत्तिं पज्जुवासंति, चत्तारिवि मासे पूयं करेंति रत्तिं रत्तिं, ताहे सो चिंतेइ–किं जाणति एसतो देवा महंति, ताहे विन्नासणानिमित्तं पुच्छइ–को ह्यात्मा?, भगवानाह–योऽहमित्यभिमन्यते, स कीदृशः?,

१ स्वामी ततो निर्गत्य सुमङ्गलं नाम ग्रामः तत्र गतः, तत्र सनत्कुमार आयाति, वन्दते पृच्छति च । ततो भगवान् सुक्षेत्रं गतः, तत्र माहेन्द्रः प्रियपृच्छक आयाति । ततः स्वामी पालकं नाम ग्रामं गतः, तत्र वातवलो नाम वणिक् यात्रायै प्रधावितः, अमङ्गलमितिकृत्वाऽसिं गृहीत्वा प्रधावितः एतस्य फलत्विति तत्र सिद्धार्थेन स्वहस्तेन शीर्षं छिन्नम् । २ ततः स्वामी चम्पां नगरीं गतः, तत्र स्वातिदत्तब्राह्मणस्य अग्निहोत्रशालायां वसतिमुपागतः, तत्र चतुर्मासीं क्षपयति, तत्र पूर्णभद्रमाणिभद्रौ द्वौ यक्षौ रात्रौ पर्युपासाते, चतुरोऽपि मासान् पूजां कुरुतो रात्रौ रात्रौ, तदा स चिन्तयति–किं जानाति एषकः (यत्) देवौ महयतः, तदा विविधानिमित्तं पृच्छति । * सुमंगल सणंकुमार सुछेत्ताए य एइ माहिंदो प्र०. + अनुपलब्धेः. † स्वसंवेदनसिद्धः. ‡ इन्द्रियगोचरातीतत्वात्

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

॥२२५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

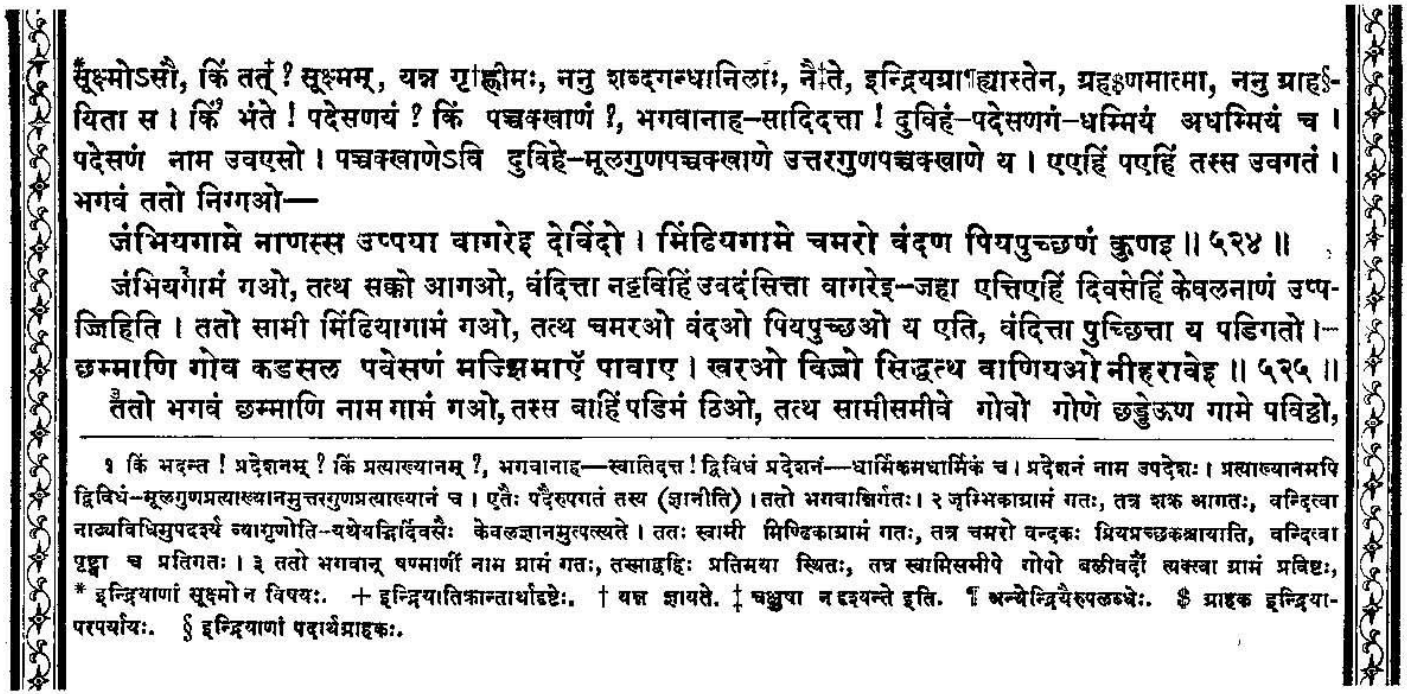

सूक्ष्मोऽसौ, किं तत्? सूक्ष्मम्, यन्न गृह्णीमः, ननु शब्दगन्धानिलाः, नैते, इन्द्रियग्राह्यास्तेन, ग्रहणमात्मा, ननु ग्राहयिता स। किं भंते! पदेसणयं? किं पच्चक्खाणं?, भगवानाह–सादिदत्ता! दुविहं–पदेसणगं–धम्मियं अधम्मियं च। पदेसणं नाम उवएसो। पच्चक्खाणेऽवि दुविहे–मूलगुणपच्चक्खाणे उत्तरगुणपच्चक्खाणे य। एएहिं पएहिं तस्स उवगतं। भगवं ततो निग्गओ—

जंभियगामे नाणस्स उप्पया वागरेइ देविंदो। मिंढियगामे चमरो वंदण पियपुच्छणं कुणइ॥ ५२४॥

जंभियगामं गओ, तत्थ सक्को आगओ, वंदित्ता नट्टविहिं उवदंसित्ता वागरेइ–जहा एत्तिएहिं दिवसेहिं केवलनाणं उप्पज्जिहिति। ततो सामी मिंढियागामं गओ, तत्थ चमरओ वंदओ पियपुच्छओ य एति, वंदित्ता पुच्छित्ता य पडिगतो।–

छम्माणि गोव कडसल पवेसणं मज्झिमाएँ पावाए। खरओ विज्जो सिद्धत्थ वाणियओ नीहरावेइ॥ ५२५॥

ततो भगवं छम्माणि नाम गामं गओ, तस्स बाहिं पडिमं ठिओ, तत्थ सामीसमीवे गोवो गोणे छड्डेऊण गामे पविट्ठो,

१ किं भदन्त! प्रदेशनम्? किं प्रत्याख्यानम्?, भगवानाह—स्वातिदत्त! द्विविधं प्रदेशनं—धार्मिकमधार्मिकं च। प्रदेशनं नाम उपदेशः। प्रत्याख्यानमपि द्विविधं–मूलगुणप्रत्याख्यानमुत्तरगुणप्रत्याख्यानं च। एतैः पदैरुपगतं तस्य (ज्ञानीति)। ततो भगवान्निर्गतः। २ जृम्भिकाग्रामं गतः, तत्र शक्र आगतः, वन्दित्वा नाट्यविधिमुपदर्श्य व्याकुरुते–यथेयद्भिर्दिवसैः केवलज्ञानमुत्पत्स्यते। ततः स्वामी मिण्ढिकाग्रामं गतः, तत्र चमरो वन्दकः प्रियप्रच्छकश्चायाति, वन्दित्वा पृष्ट्वा च प्रतिगतः। ३ ततो भगवान् षण्मानीं नाम ग्रामं गतः, तस्माद्बहिः प्रतिमया स्थितः, तत्र स्वामिसमीपे गोपो बलीवर्दौ त्यक्त्वा ग्रामं प्रविष्टः,

* इन्द्रियाणां सूक्ष्मो न विषयः. + इन्द्रियातिक्रान्तार्थादृष्टेः. † यन्न ज्ञायते. ‡ चक्षुषा न दृश्यन्ते इति. ¶ अन्येन्द्रियैरुपलब्धेः. $ ग्राहक इन्द्रियापरपर्यायः. § इन्द्रियाणां पदार्थग्राहकः.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

दोहणाणि काऊण निग्गओ, ते य गोणा अडविं पविट्ठा चरियव्वगस्स कज्जे, ताहे सो आगतो पुच्छति–देवज्जग ! कहिं ते बइल्ला ?, भगवं मोणेण अच्छइ, ताहे सो परिकुविओ भगवतो कण्णेसु कडसलागाओ छुहति, एगा इमेण कण्णेण एगा इमेण, जाव दोन्निवि मिलियाओ ताहे मूले भग्गाओ, मा कोइ उक्खणिहितित्ति । केइ भणंति–एक्का चेव जाव इयरेण कण्णेण निग्गता ताहे भग्गा ।–कण्णेसु तउं तत्तं गोवस्स कयं तिविट्ठुणा रण्णा । कण्णेसु वद्धमाणस्स तेण छूढा कडसलाया ॥ १ ॥ भगवतो तद्दारवेयणीयं कम्मं उदिण्णं । ततो सामी मज्झिमं गतो, तत्थ सिद्धत्थो नाम वाणियगो, तस्स घरं भगवं अतीयओ, तस्स य मित्तो खरगो नाम वेज्जो, ते दोऽवि सिद्धत्थस्स घरे अच्छंति, सामी भिक्खस्स पविट्ठो, वाणियओ वंदति थुणति य, वेज्जो तित्थगरं पासिऊण भणति–अहो भगवं सव्वलक्खणसंपुण्णो किं पुण ससल्लो, ततो सो वाणियओ संभंतो भणति–पलोएहि कहिं सल्लो ?, तेण पलोएतेण दिट्ठो कण्णेसु, तेण वाणियएण भण्णइ–णीणेहि एयं

१ दोहनानि कृत्वा निर्गतः, तौ च बलीवर्दौ अटवीं प्रविष्टौ चरणस्य कार्याय, तदा स आगतः पृच्छति–देवार्यक ! क्व तौ बलीवर्दौ ?, भगवान् मौनेन तिष्ठति, तदा स परिकुपितः भगवतः कर्णयोः कटशलाके क्षिपति, एकाऽनेन कर्णेन एकाऽनेन, यावद्धे अपि मीलिते तदा मूले भग्ने, मा कश्चिदुत्खनीरिति । केचिद्भणन्ति–एकैव यावदितरेण कर्णेन निर्गता तदा भग्ना ।—कर्णयोः तप्तं त्रपुगोपस्य कृतं त्रिपृष्ठेन राज्ञा । कर्णयोर्वर्धमानस्य तेन क्षिप्ते कटशलाकिके ॥१॥ भगवतस्तद्वारा वेदनीयं कर्मोदीर्णं । ततः स्वामी मध्यमां गतः, तत्र सिद्धार्थो नाम वणिक्, तस्य गृहे भगवानतिगतः, तस्य च मित्रं खरको नाम वैद्यः, तौ द्वावपि सिद्धार्थगृहे तिष्ठतः, स्वामी भिक्षायै प्रविष्टः, वणिक् वन्दते स्तौति च, वैद्यस्तीर्थंकरं दृष्ट्वा भणति–अहो भगवान् सर्वलक्षणसंपूर्णः किं पुनः सशल्यः, ततः स वणिक् संभ्रान्तो भणति–प्रलोकय क्व शल्यं ?, तेन प्रलोकयता दृष्टं कर्णयोः, तेन वणिजा भण्यते–व्यपनय एतत्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

महातवस्सिस्स पुण्णं होहितित्ति, तवावि मज्झवि, भणति–निप्पडिकम्मो भगवं नेच्छति, ताहे पडियरावितो जाव दिट्ठो उज्जाणे पडिमं ठिओ, ते ओसहाणि गहाय गया, तत्थ भगवं तेल्लदोणीए निवज्जाविओ मक्खिओ य, पच्छा बहुएहिं मणूसेहिं जंतिओ अक्कंतो य, पच्छा संडासतेण गहाय कड्ढियाओ, तत्थ सरुहिराउ सलागाओ अंछियाओ, तासु य अंछिज्जंतिसु भगवता आरसियं, ते य मणूसे उप्पाडित्ता उट्ठिओ, महाभेरवं उज्जाणं तत्थ जायं, देवकुलं च, पच्छा संरोहणं ओसहं दिन्नं, जेण ताहे चेव पउणो, ताहे वंदित्ता खामेत्ता य गया। सव्वेसु किर उवसग्गेसु कयरे दुस्सिहा ?, उच्यते, कडपूयणासीयं कालचक्कं एयं चेव सल्लं निक्कड्ढिज्जंतं,अहवा–जहण्णगाण उवरि कडपूयणासीयं मज्झिमगाण उवरि कालचक्कं उक्कोसगाण उवरिं सल्लुद्धरणं। एवं गोवेणारद्धा उवसग्गा गोवेण चेव निट्ठिता। गोवो अहो सत्तमिं पुढविं गओ। खरतो सिद्धत्थो य देवलोगं तिव्वमवि उदीरयंता सुद्धभावा। गता उपसर्गाः।—

१ महातपस्विनः पुण्यं भविष्यतीति, तवापि ममापि, भणति–निष्प्रतिकर्मा भगवान्नेच्छति, तदा प्रतिचारितो यावद्दृष्ट उद्याने प्रतिमया स्थितः, तावौषधानि गृहीत्वा गतौ, तत्र भगवान् तैलद्रोण्यां निमज्जितः म्रक्षितश्च, पश्चाद् बहुभिर्मनुष्यैर्यन्त्रित आक्रान्तश्च, पश्चात्संदंशकेन गृहीत्वा कर्षिते, तत्र सरुधिरे शलाके आकृष्टे, तयोश्चाकृष्यमाणयोर्भगवताऽऽरसितं, तांश्च मनुष्यानुत्पाट्योत्थितः, महाभैरवमुद्यानं तत्र जातं, देवकुलं च, पश्चात्संरोहणमौषधं दत्तं, येन तदैव प्रगुणः, तदा वन्दित्वा क्षमयित्वा च गतौ। सर्वेषु किलोपसर्गेषु कतरे दुर्विषहाः ?, उच्यते, कटपूतनाशीतं कालचक्रमेतदेव शल्यं निकृष्यमाणम्, अथवा जघन्यानामुपरि कटपूतनाशीतं मध्यमानामुपरि कालचक्रमुत्कृष्टानामुपरि शल्योद्धरणम्। एवं गोपेनारब्धा उपसर्गा गोपेनैव निष्ठिताः। गोपोऽधः सप्तमीं पृथिवीं गतः। खरकः सिद्धार्थश्च देवलोकं गतौ तीव्रामपि (वेदनां) उदीरयन्तौ शुद्धभावौ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

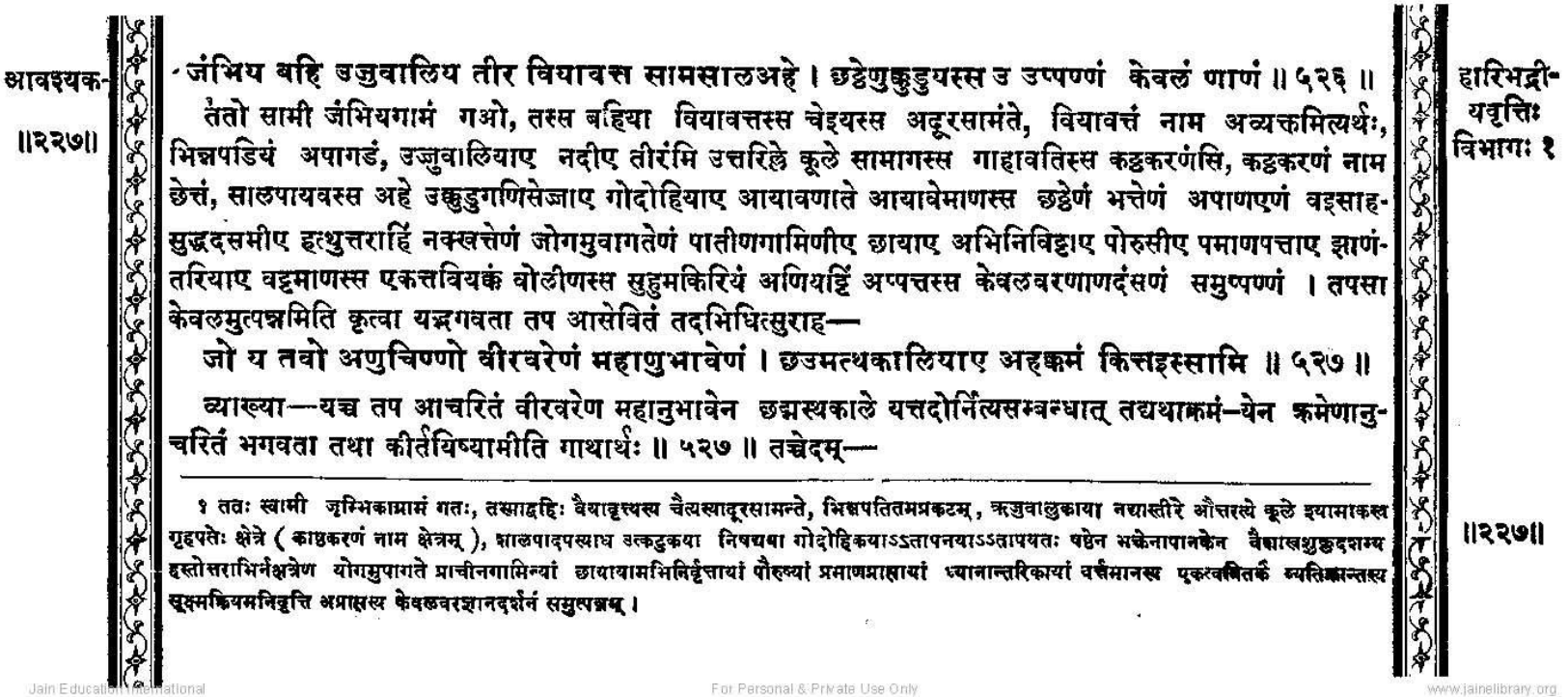

आवश्यक- ॥२२७॥

जंभिय बहि उजुवालिय तीर वियावत्त सामसालअहे । छट्ठेणुक्कुडुयस्स उ उप्पण्णं केवलं णाणं ॥ ५२६ ॥

ततो सामी जंभियगामं गओ, तस्स बहिया वियावत्तस्स चेइयस्स अदूरसामंते, वियावत्तं नाम अव्यक्तमित्यर्थः, भिन्नपडियं अपागडं, उजुवालियाए नदीए तीरंमि उत्तरिल्ले कूले सामागस्स गाहावतिस्स कट्ठकरणंसि, कट्ठकरणं नाम छेत्तं, सालपायवस्स अहे उक्कुडुगणिसेज्जाए गोदोहियाए आयावणाते आयावेमाणस्स छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं वइसाह-सुद्धदसमीए हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागतेणं पातीणगामिणीए छायाए अभिनिविट्ठाए पोरुसीए पमाणपत्ताए झाणं-तरियाए वट्टमाणस्स एकत्तवियकं वोलीणस्स सुहुमकिरियं अणियट्टिं अप्पत्तस्स केवलवरणाणदंसणं समुप्पण्णं । तपसा केवलमुत्पन्नमिति कृत्वा यद्भगवता तप आसेवितं तदभिधित्सुराह—

जो य तवो अणुचिण्णो वीरवरेणं महाणुभावेणं । छउमत्थकालियाए अहक्कमं कित्तइस्सामि ॥ ५२७ ॥

व्याख्या—यच्च तप आचरितं वीरवरेण महानुभावेन छद्मस्थकाले यत्तदोर्नित्यसम्बन्धात् तद्यथाक्रमं–येन क्रमेणानु-चरितं भगवता तथा कीर्तयिष्यामीति गाथार्थः ॥ ५२७ ॥ तच्चेदम्—

---

१ ततः स्वामी जृम्भिकाग्रामं गतः, तस्माद्बहिः वैयावृत्यस्य चैत्यस्यादूरसामन्ते, भिन्नपतितमप्रकटम्, ऋजुवालुकाया नद्यास्तीरे औत्तरस्ये कूले श्यामाकस्य गृहपतेः क्षेत्रे (काष्ठकरणं नाम क्षेत्रम्), शालपादपस्याध उत्कटुकया निषद्यया गोदोहिकयाऽऽतापनयाऽऽतापयतः षष्ठेन भक्तेनापानकेन वैशाखशुक्लदशम्य हस्तोत्तराभिर्नक्षत्रेण योगमुपागते प्राचीनगामिन्यां छायायामभिनिर्वृत्तायां पौरुष्यां प्रमाणप्राप्तायां ध्यानान्तरिकायां वर्तमानस्य एकत्ववितर्कं व्यतिक्रान्तस्य सूक्ष्मक्रियमनिवृत्ति अप्राप्तस्य केवलवरज्ञानदर्शनं समुत्पन्नम् ।

हारिभद्रीय-वृत्तिः विभागः १

॥२२७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भगवन्त-महावीरं केवलज्ञान-प्राप्तिः एवं तपसः वर्णनं

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

नव किर चाउम्मासे छक्किर दोमासिए उवासीय । बारस य मासियाइं बावत्तरि अद्धमासाइं ॥ ५२८ ॥

व्याख्या—नव किल चातुर्मासिकानि तथा षट् किल द्विमासिकानि उपोषितवान्, किलशब्दः परोक्षाप्तागमवादसंसूचकः, द्वादश च मासिकानि द्विसप्तत्यर्द्धमासिकान्युपोषितवानिति क्रियायोग इति गाथार्थः ॥ ५२८ ॥

एगं किर छम्मासं दो किर तेमासिए उवासीय । अड्ढाइज्जाइ दुवे दो चेव दिवड्ढमासाइं ॥ ५२९ ॥

व्याख्या—एकं किल षण्मासं द्वे किल त्रैमासिके उपोषितवान्, तथा 'अड्ढाइज्जाइ दुवे' त्ति अर्द्धतृतीयमासनिष्पन्नं तपः–क्षपणं वाऽर्धतृतीयं, तेऽर्धतृतीये द्वे, चशब्दः क्रियानुकर्षणार्थः, द्वे एव च 'दिवड्ढमासाइं' ति सार्धमासे तपसी क्षपणे वा,क्रियायोगोऽनुवर्त्तत एवेति गाथार्थः ॥ ५२९ ॥

भद्दं च महाभद्दं पडिमं तत्तो य सव्वओभद्दं । दो चत्तारि दसेव य दिवसे ठासीय अणुबद्धं ॥ ५३० ॥

व्याख्या—भद्रां च महाभद्रां प्रतिमां ततश्च सर्वतोभद्रां स्थितवान, अनुबद्धमिति योगः, आसामेवानुपूर्व्या दिवसप्रमाणमाह—द्वौ चतुरः दशैव च दिवसान् स्थितवान्, अनुबद्धं–सन्ततमेवेति गाथार्थः ॥ ५३० ॥

गोयरमभिग्गहजुयं खमणं छम्मासियं च कासीय । पंचदिवसेहि ऊणं अव्वहिओ वच्छनयरीए ॥ ५३१ ॥

व्याख्या—गोचरेऽभिग्रहो गोचराभिग्रहस्तेन युतं क्षपणं षण्मासिकं च कृतवान् पञ्चभिर्दिवसैर्न्यूनम्, 'अव्यथितः अपीडितो 'वत्सानगर्यां' कौशाम्ब्यामिति गाथार्थः ॥ ५३१ ॥

दस दो य किर महप्पा ठाइ मुणी एगराइयं पडिमं । अट्ठमभत्तेण जई एक्केक्कं चरमराईयं ॥ ५३२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

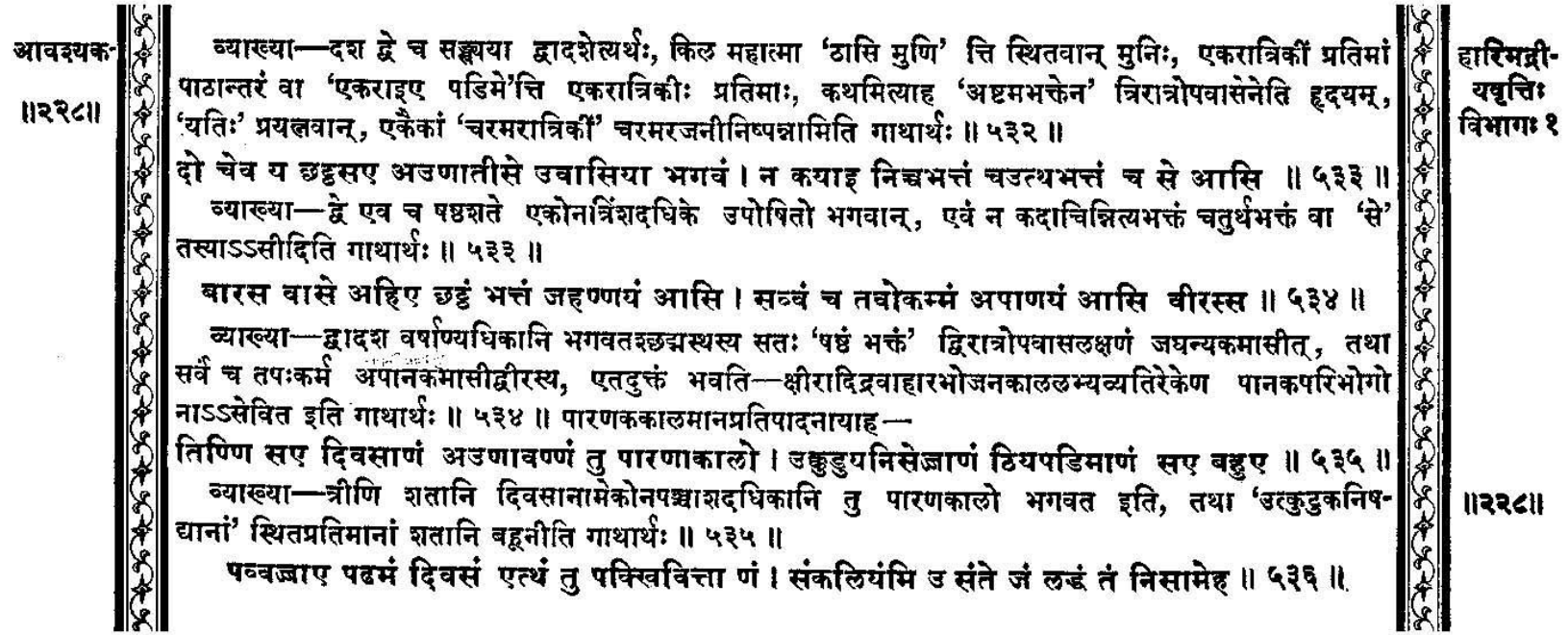

आवश्यक- ॥२२८॥

व्याख्या—दश द्वे च सङ्ख्यया द्वादशेत्यर्थः, किल महात्मा 'ठासि मुणि' त्ति स्थितवान् मुनिः, एकरात्रिकीं प्रतिमां पाठान्तरं वा 'एकराइए पडिमे'त्ति एकरात्रिकीः प्रतिमाः, कथमित्याह 'अष्टमभक्तेन' त्रिरात्रोपवासेनेति हृदयम्, 'यतिः' प्रयत्नवान्, एकैकां 'चरमरात्रिकीं' चरमरजनीनिष्पन्नामिति गाथार्थः ॥ ५३२ ॥

दो चेव य छट्ठसए अउणातीसे उवासिया भगवं । न कयाइ निच्चभत्तं चउत्थभत्तं च से आसि ॥ ५३३ ॥

व्याख्या—द्वे एव च षष्ठशते एकोनत्रिंशदधिके उपोषितो भगवान्, एवं न कदाचिन्नित्यभक्तं चतुर्थभक्तं वा 'से' तस्याऽऽसीदिति गाथार्थः ॥ ५३३ ॥

बारस वासे अहिए छट्ठं भत्तं जहण्णयं आसि । सव्वं च तवोकम्मं अपाणयं आसि वीरस्स ॥ ५३४ ॥

व्याख्या—द्वादश वर्षाण्यधिकानि भगवतश्छद्मस्थस्य सतः 'षष्ठं भक्तं' द्विरात्रोपवासलक्षणं जघन्यकमासीत्, तथा सर्वं च तपःकर्म अपानकमासीद्वीरस्य, एतदुक्तं भवति—क्षीरादिद्रवाहारभोजनकाललभ्यव्यतिरेकेण पानकपरिभोगो नाऽऽसेवित इति गाथार्थः ॥ ५३४ ॥ पारणककालमानप्रतिपादनायाह—

तिण्णि सए दिवसाणं अउणावण्णं तु पारणाकालो । उक्कुडुयनिसेज्जाणं ठियपडिमाणं सए बहुए ॥ ५३५ ॥

व्याख्या—त्रीणि शतानि दिवसानामेकोनपञ्चाशदधिकानि तु पारणकालो भगवत इति, तथा 'उत्कुटुकनिषद्यानां' स्थितप्रतिमानां शतानि बहूनीति गाथार्थः ॥ ५३५ ॥

पव्वज्जाए पढमं दिवसं एत्थं तु पक्खिवित्ता णं । संकलियंमि उ संते जं लद्धं तं निसामेह ॥ ५३६ ॥

हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः १

॥२२८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

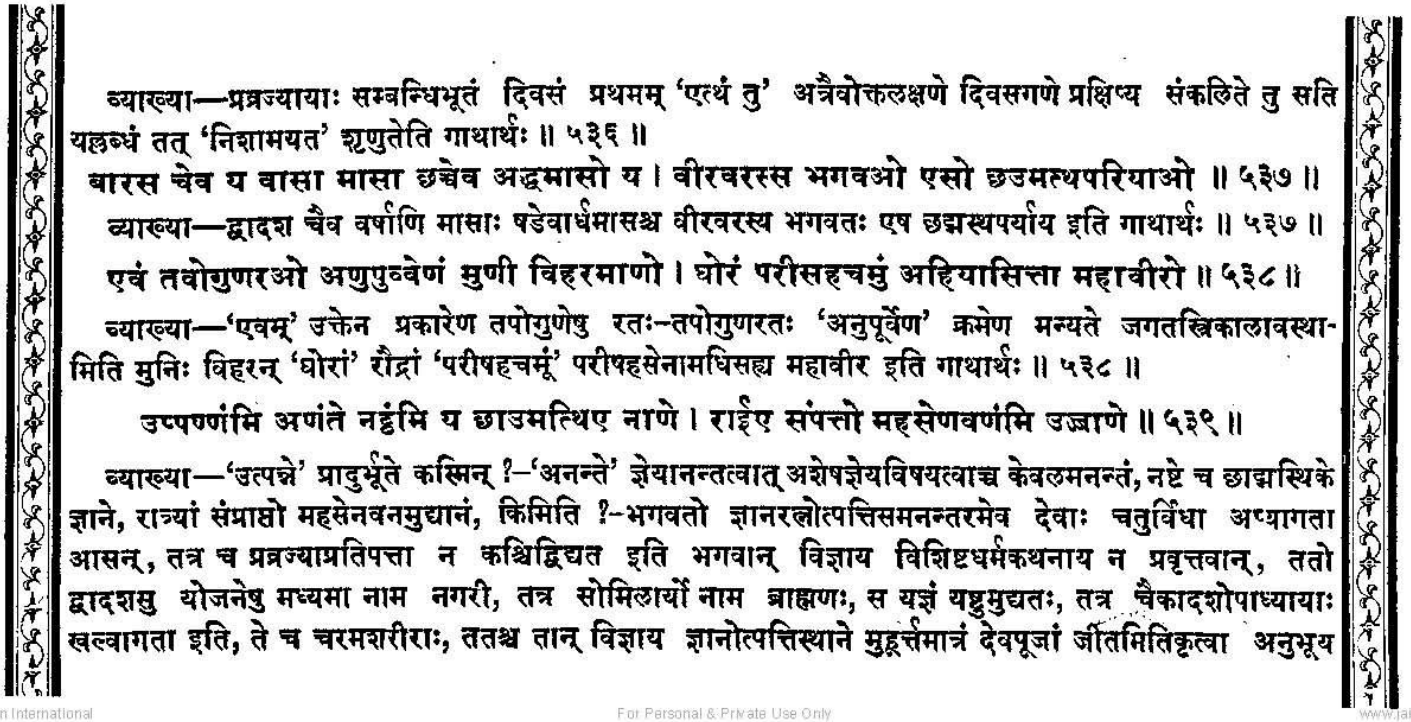

व्याख्या—प्रव्रज्यायाः सम्बन्धिभूतं दिवसं प्रथमम् 'एर्थं तु' अत्रैवोक्तलक्षणे दिवसगणे प्रक्षिप्य संकलिते तु सति यल्लब्धं तत् 'निशामयत' शृणुतेति गाथार्थः ॥ ५३६ ॥

बारस चेव य वासा मासा छच्चेव अद्धमासो य । वीरवरस्स भगवओ एसो छउमत्थपरियाओ ॥ ५३७ ॥

व्याख्या—द्वादश चैव वर्षाणि मासाः षडेवार्धमासश्च वीरवरस्य भगवतः एष छद्मस्थपर्याय इति गाथार्थः ॥ ५३७ ॥

एवं तवोगुणरओ अणुपुव्वेणं मुणी विहरमाणो । घोरं परीसहचमुं अहियासित्ता महावीरो ॥ ५३८ ॥

व्याख्या—'एवम्' उक्तेन प्रकारेण तपोगुणेषु रतः–तपोगुणरतः 'अनुपूर्वेण' क्रमेण मन्यते जगतस्त्रिकालावस्थामिति मुनिः विहरन् 'घोरां' रौद्रां 'परीषहचमूं' परीषहसेनामधिसह्य महावीर इति गाथार्थः ॥ ५३८ ॥

उप्पण्णंमि अणंते नट्ठंमि य छाउमत्थिए नाणे । राईए संपत्तो महसेणवणंमि उज्जाणे ॥ ५३९ ॥

व्याख्या—'उत्पन्ने' प्रादुर्भूते कस्मिन् ?–'अनन्ते' ज्ञेयानन्तत्वात् अशेषज्ञेयविषयत्वाच्च केवलमनन्तं, नष्टे च छाद्मस्थिके ज्ञाने, रात्र्यां संप्राप्तो महसेनवनमुद्यानं, किमिति ?–भगवतो ज्ञानरत्नोत्पत्तिसमनन्तरमेव देवाः चतुर्विधा अप्यागता आसन्, तत्र च प्रव्रज्याप्रतिपत्ता न कश्चिद्विद्यत इति भगवान् विज्ञाय विशिष्टधर्मकथनाय न प्रवृत्तवान्, ततो द्वादशसु योजनेषु मध्यमा नाम नगरी, तत्र सोमिलार्यो नाम ब्राह्मणः, स यज्ञं यष्टुमुद्यतः, तत्र चैकादशोपाध्यायाः खल्वागता इति, ते च चरमशरीराः, ततश्च तान् विज्ञाय ज्ञानोत्पत्तिस्थाने मुहूर्त्तमात्रं देवपूजां जीतमितिकृत्वा अनुभूय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	केवलज्ञानोत्पत्तिः एवं तदनन्तरम् समवसरण-रचनायाः कथनं

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

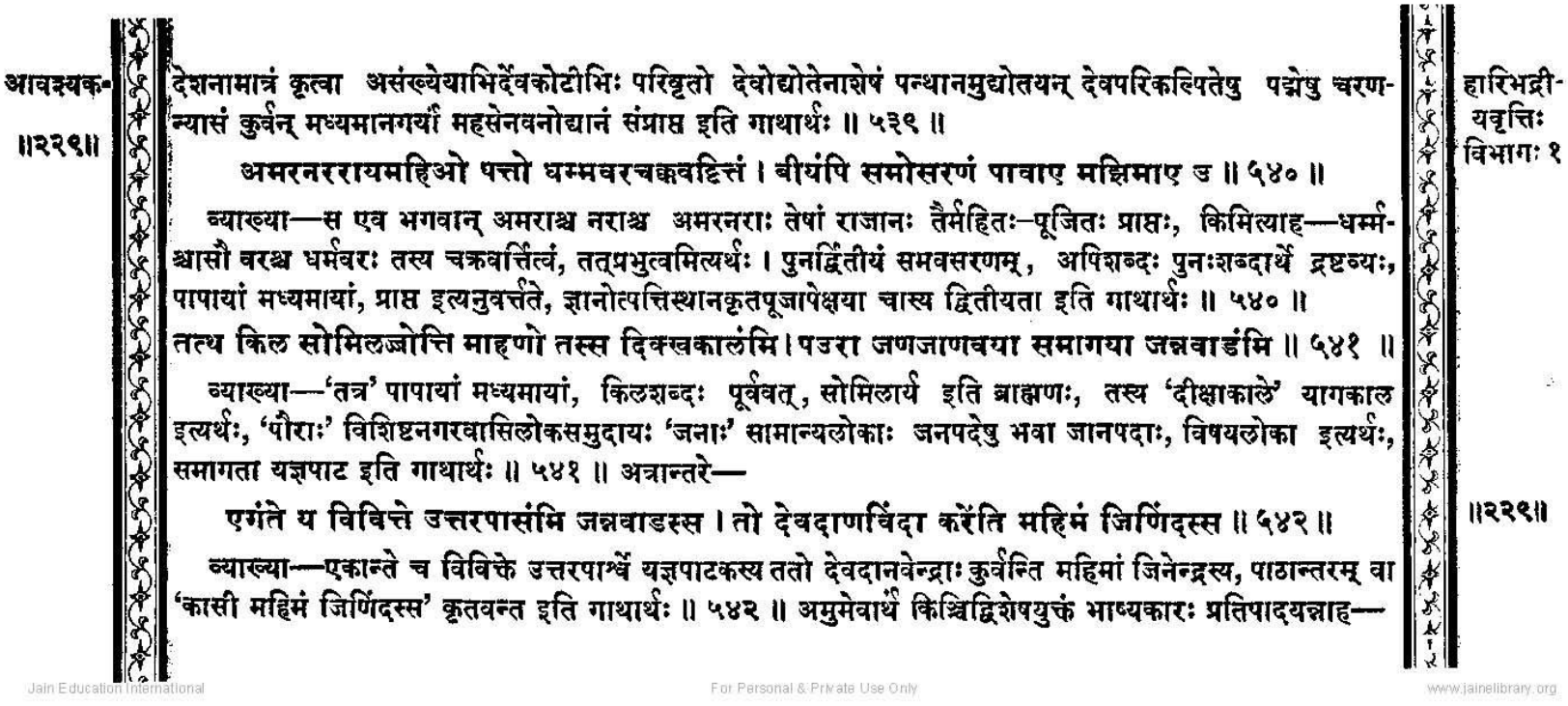

आवश्यक- ॥२२९॥

देशनामात्रं कृत्वा असंख्येयाभिर्देवकोटीभिः परिवृतो देवोद्योतेनाशेषं पन्थानमुद्योतयन् देवपरिकल्पितेषु पद्मेषु चरण-न्यासं कुर्वन् मध्यमानगर्यां महसेनवनोद्यानं संप्राप्त इति गाथार्थः ॥ ५३९ ॥

अमरनररायमहिओ पत्तो धम्मवरचक्कवट्टित्तं । बीयंपि समोसरणं पावाए मज्झिमाए उ ॥ ५४० ॥

व्याख्या—स एव भगवान् अमराश्च नराश्च अमरनराः तेषां राजानः तैर्महितः–पूजितः प्राप्तः, किमित्याह—धर्म्म-श्चासौ वरश्च धर्मवरः तस्य चक्रवर्त्तित्वं, तत्प्रभुत्वमित्यर्थः । पुनर्द्वितीयं समवसरणम्, अपिशब्दः पुनःशब्दार्थे द्रष्टव्यः, पापायां मध्यमायां, प्राप्त इत्यनुवर्त्तते, ज्ञानोत्पत्तिस्थानकृतपूजापेक्षया चास्य द्वितीयता इति गाथार्थः ॥ ५४० ॥

तत्थ किल सोमिलज्जोत्ति माहणो तस्स दिक्खकालंमि । पउरा जणजाणवया समागया जन्नवाडंमि ॥ ५४१ ॥

व्याख्या—'तत्र' पापायां मध्यमायां, किलशब्दः पूर्ववत्, सोमिलार्य इति ब्राह्मणः, तस्य 'दीक्षाकाले' यागकाल इत्यर्थः, 'पौराः' विशिष्टनगरवासिलोकसमुदायः 'जनाः' सामान्यलोकाः जनपदेषु भवा जानपदाः, विषयलोका इत्यर्थः, समागता यज्ञपाट इति गाथार्थः ॥ ५४१ ॥ अत्रान्तरे—

एगंते य विवित्ते उत्तरपासंमि जन्नवाडस्स । तो देवदाणविंदा करेंति महिमं जिणिंदस्स ॥ ५४२ ॥

व्याख्या—एकान्ते च विविक्ते उत्तरपार्श्वे यज्ञपाटकस्य ततो देवदानवेन्द्राः कुर्वन्ति महिमां जिनेन्द्रस्य, पाठान्तरम् वा 'कासी महिमं जिणिंदस्स' कृतवन्त इति गाथार्थः ॥ ५४२ ॥ अमुमेवार्थं किञ्चिद्विशेषयुक्तं भाष्यकारः प्रतिपादयन्नाह—

हारिभद्रीय-वृत्तिः विभागः १

॥२२९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

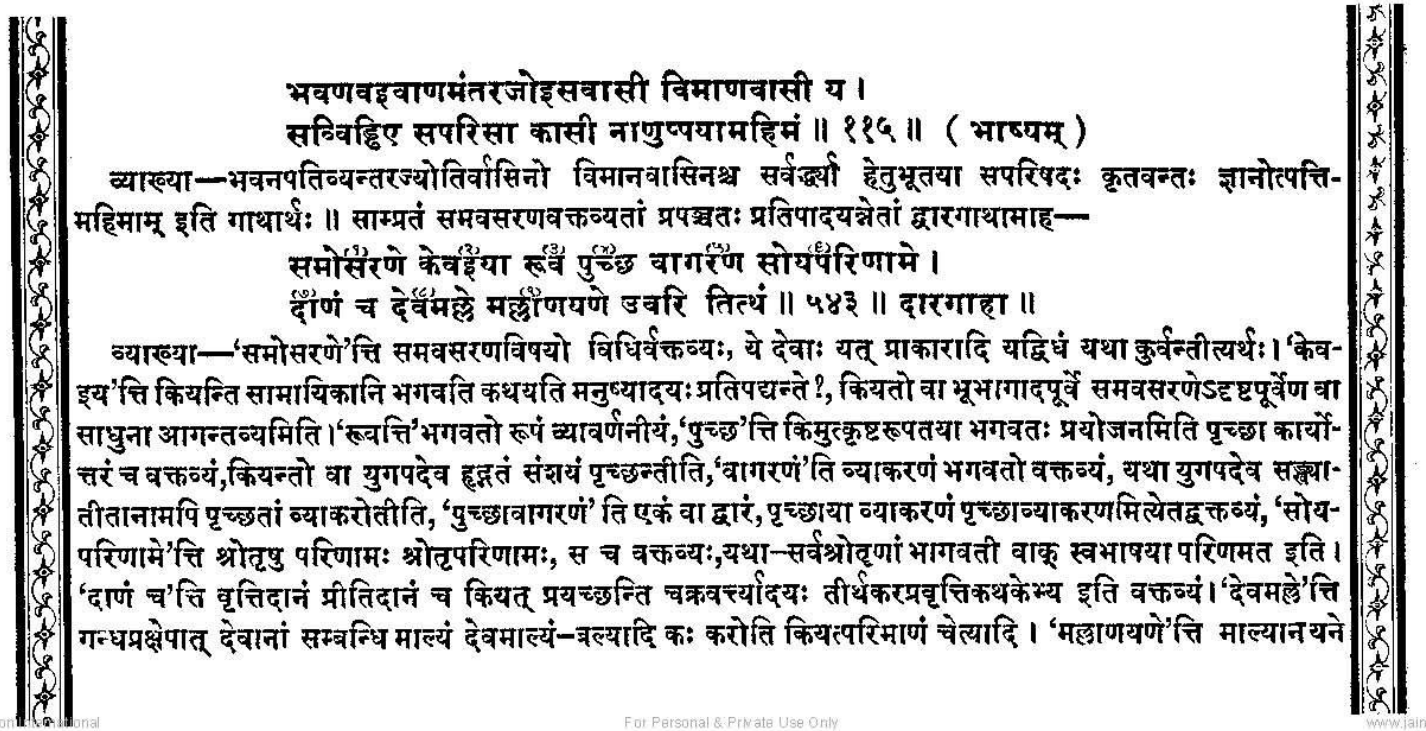

भवणवइवाणमंतरजोइसवासी विमाणवासी य ।
सव्विड्ढिए सपरिसा कासी नाणुप्पयामहिमं ॥ ११५ ॥ (भाष्यम्)

व्याख्या—भवनपतिव्यन्तरज्योतिर्वासिनो विमानवासिनश्च सर्वर्द्ध्या हेतुभूतया सपरिषदः कृतवन्तः ज्ञानोत्पत्तिमहिमाम् इति गाथार्थः ॥ साम्प्रतं समवसरणवक्तव्यतां प्रपञ्चतः प्रतिपादयन्नेतां द्वारगाथामाह—

समोसरणे केवइया रूवं पुच्छ वागरण सोयपरिणामे ।
दाणं च देवमल्ले मल्लाणयणे उवरि तित्थं ॥ ५४३ ॥ दारगाहा ॥

व्याख्या—'समोसरणे'त्ति समवसरणविषयो विधिर्वक्तव्यः, ये देवाः यत् प्राकारादि यद्विधं यथा कुर्वन्तीत्यर्थः । 'केवइय'त्ति कियन्ति सामायिकानि भगवति कथयति मनुष्यादयः प्रतिपद्यन्ते ?, कियतो वा भूभागादपूर्वे समवसरणेऽदृष्टपूर्वेण वा साधुना आगन्तव्यमिति । 'रूवत्ति'भगवतो रूपं व्यावर्णनीयं, 'पुच्छ'त्ति किमुत्कृष्टरूपतया भगवतः प्रयोजनमिति पृच्छा कार्योत्तरं च वक्तव्यं, कियन्तो वा युगपदेव हृद्गतं संशयं पृच्छन्तीति, 'वागरणं'ति व्याकरणं भगवतो वक्तव्यं, यथा युगपदेव सङ्ख्यातीतानामपि पृच्छतां व्याकरोतीति, 'पुच्छावागरणं' ति एकं वा द्वारं, पृच्छाया व्याकरणं पृच्छाव्याकरणमित्येतद्वक्तव्यं, 'सोयपरिणामे'त्ति श्रोतृषु परिणामः श्रोतृपरिणामः, स च वक्तव्यः, यथा—सर्वश्रोतृणां भागवती वाक् स्वभाषया परिणमत इति । 'दाणं च'त्ति वृत्तिदानं प्रीतिदानं च कियत् प्रयच्छन्ति चक्रवर्त्यादयः तीर्थकरप्रवृत्तिकथकेभ्य इति वक्तव्यं । 'देवमल्ले'त्ति गन्धप्रक्षेपात् देवानां सम्बन्धि माल्यं देवमाल्यं—वल्यादि कः करोति कियत्परिमाणं चेत्यादि । 'मल्लाणयणे'त्ति माल्यानयने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

यो विधिरसौ वक्तव्यः, 'उवरि तित्थं'ति उपरीति पौरुष्यामतिक्रान्तायां तीर्थमिति–गणधरो देशनां करोतीति गाथासमुदायार्थः । अवयवार्थं तु प्रतिद्वारं वक्ष्यामः । इयं च गाथा केषुचित्पुस्तकेषु अन्यत्रापि दृश्यते, इह पुनर्युज्यते, द्वारनियमतोऽसंमोहेन समवसरणवक्तव्यताप्रतीतिनिबन्धनत्वादिति ॥ ५४३ ॥ आह–इदं समवसरणं किं यत्रैव भगवान् धर्ममाचष्टे तत्रैव नियमतो भवत्युत नेत्याशङ्कापनोदमुखेन प्रथमद्वारावयवार्थं विवृण्वन्नाह—

जत्थ अपुव्वोसरणं जत्थ व देवो महिड्ढिओ एइ । वाउदयपुप्फवद्दलपागारतियं च अभिओगा ॥ ५४४ ॥

व्याख्या—यत्र क्षेत्रे अपूर्वं समवसरणं भवति, अवृत्तपूर्वमित्यर्थः, तथा यत्र वा भूतसमवसरणे क्षेत्रे देवो महर्द्धिकः 'एति' आगच्छति, तत्र किमित्याह—वातं रेण्वाद्यपनोदाय उदकवर्द्दलं भाविरेणुसंतापोपशान्तये तथा पुष्पवर्द्दलं क्षितिविभूषार्थं, वर्द्दलशब्द उदकपुष्पयोः प्रत्येकमभिसंबध्यते,तथा प्राकारत्रितयं च सर्वमेतदभियोगमर्हन्तीत्याभियोग्याः–देवाः, कुर्वन्तीति वाक्यशेषः, अन्यत्र त्वनियम इति गाथार्थः॥५४४॥ एवं तावत् सामान्येन समवसरणकरणविधिरुक्तः, साम्प्रतं विशेषेण प्रतिपादयन्नाह—

मणिकणगरयणचित्तं भूमीभागं समंतओ सुरभिं । आजोअणंतरेणं करेंति देवा विचित्तं तु ॥ ५४५ ॥

व्याख्या—मणयः–चन्द्रकान्तादयः कनकं–देवकाञ्चनं रत्नानि–इन्द्रनीलादीनि, अथवा स्थलसमुद्भवा मणयः जलसमुद्भवानि रत्नानि, तैश्चित्रं, भूभागं 'समन्ततः' सर्वासु दिक्षु 'सुरभिं' सुगन्धिगन्धयुक्तं, किम् ?–कुर्वन्ति देवा विचित्रं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

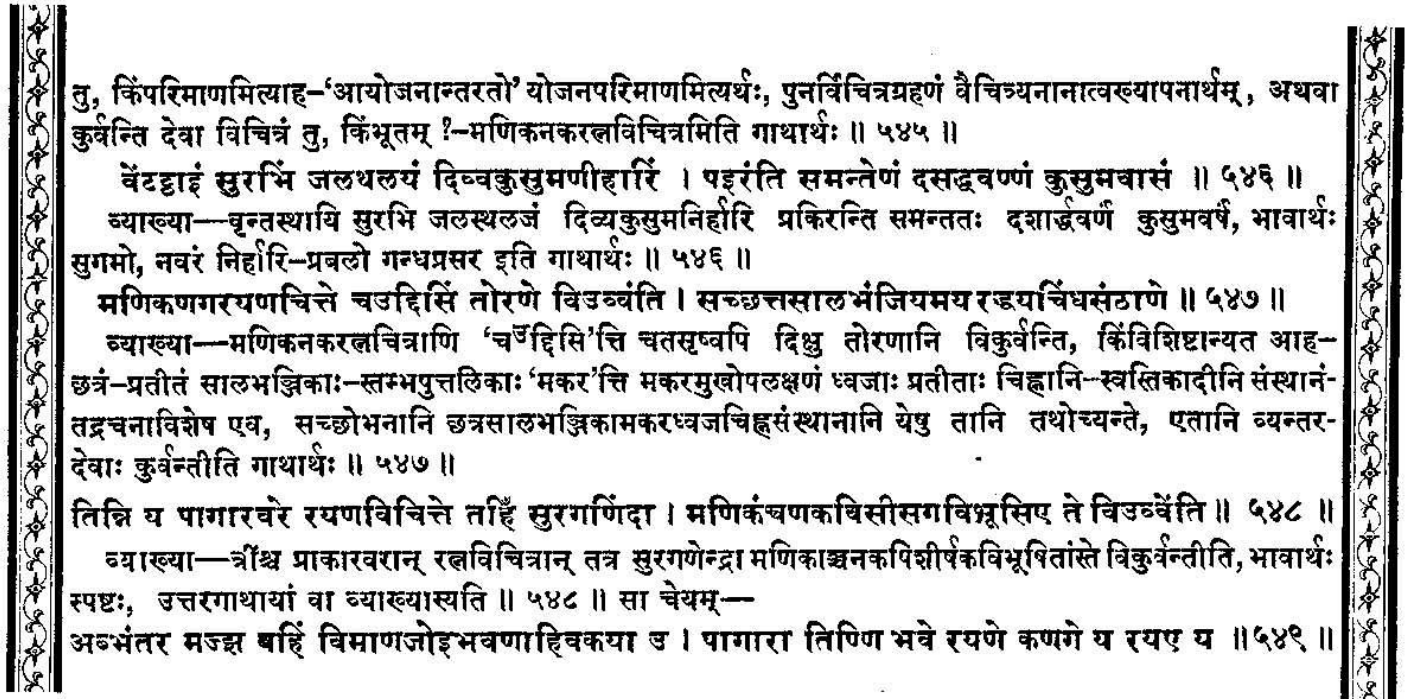

तु, किंपरिमाणमित्याह–'आयोजनान्तरतो' योजनपरिमाणमित्यर्थः, पुनर्विचित्रग्रहणं वैचित्र्यनानात्वख्यापनार्थम्, अथवा कुर्वन्ति देवा विचित्रं तु, किंभूतम् ?–मणिकनकरत्नविचित्रमिति गाथार्थः ॥ ५४५ ॥

वेंटट्ठाइं सुरभिं जलथलयं दिव्वकुसुमणीहारिं । पइरंति समन्तेणं दसद्धवण्णं कुसुमवासं ॥ ५४६ ॥

व्याख्या—वृन्तस्थायि सुरभि जलस्थलजं दिव्यकुसुमनिर्हारि प्रकिरन्ति समन्ततः दशार्द्धवर्णं कुसुमवर्षं, भावार्थः सुगमो, नवरं निर्हारि–प्रबलो गन्धप्रसर इति गाथार्थः ॥ ५४६ ॥

मणिकणगरयणचित्ते चउद्दिसिं तोरणे विउव्वंति । सच्छत्तसालभंजियमयरद्धयचिंधसंठाणे ॥ ५४७ ॥

व्याख्या—मणिकनकरत्नचित्राणि 'चउद्दिसि'त्ति चतसृष्वपि दिक्षु तोरणानि विकुर्वन्ति, किंविशिष्टान्यत आह–छत्रं–प्रतीतं सालभञ्जिकाः–स्तम्भपुत्तलिकाः 'मकर'त्ति मकरमुखोपलक्षणं ध्वजाः प्रतीताः चिह्नानि–स्वस्तिकादीनि संस्थानं–तद्रचनाविशेष एव, सच्छोभनानि छत्रसालभञ्जिकामकरध्वजचिह्नसंस्थानानि येषु तानि तथोच्यन्ते, एतानि व्यन्तरदेवाः कुर्वन्तीति गाथार्थः ॥ ५४७ ॥

तिन्नि य पागारवरे रयणविचित्ते तहिं सुरगणिंदा । मणिकंचणकविसीसगविभूसिए ते विउव्वेंति ॥ ५४८ ॥

व्याख्या—त्रींश्च प्राकारवरान् रत्नविचित्रान् तत्र सुरगणेन्द्रा मणिकाञ्चनकपिशीर्षकविभूषितांस्ते विकुर्वन्तीति, भावार्थः स्पष्टः, उत्तरगाथायां वा व्याख्यास्यति ॥ ५४८ ॥ सा चेयम्—

अब्भंतर मज्झ बहिं विमाणजोइभवणाहिवकया उ । पागारा तिण्णि भवे रयणे कणगे य रयए य ॥५४९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

व्याख्या—अभ्यन्तरे मध्ये च बहिर्विमानज्योतिर्भवनाधिपकृतास्तु आनुपूर्व्या प्राकाराख्रयो भवन्ति, 'रयणे कणगे य रयए य'त्ति रत्नेषु भवो राज्ञः रत्नमय इत्यर्थः, तं विमानाधिपतयः कुर्वन्ति, कनके भवः कानकः तं ज्योतिर्वासिनः कुर्वन्ति, राजतो–रूप्यमयश्च तं भवनपतयः कुर्वन्ति इति गाथार्थः ॥ ५४९ ॥

मणिरयणहेमयाविय कविसीसा सव्वरयणिया दारा। सव्वरयणामय च्चिय पडागधयतोरणविचित्ता ॥५५०॥

व्याख्या—मणिरत्नहेममयान्यपि च कपिशीर्षकाणि, तत्र पञ्चवर्णमणिमयानि प्रथमप्राकारे वैमानिकाः, नानारत्नमयानि द्वितीये ज्योतिष्काः, हेममयानि तृतीये भवनपतय इति, तथा सर्वरत्नमयानि द्वाराणि त एव कुर्वन्ति, तथा सर्वरत्नमयान्येव मूलदलतः पताकाध्वजप्रधानानि तोरणानि विचित्राणि कनकचन्द्रस्वस्तिकादिभिः, अत एव प्रागुक्तं मणिकनकरत्नविचित्रत्वमेतेषामविरुद्धमिति गाथार्थः ॥ ५५० ॥

तत्तो य समंतेणं कालागरुकुंदुरुक्कमीसेणं। गंधेण मणहरेणं धूवघडीओ विउव्वेंति ॥ ५५१ ॥

व्याख्या—ततश्च समन्ततः कृष्णागरुकुन्दुरुक्कमिश्रेण गन्धेन मनोहारिणा युक्ताः, किम् ?–धूपघटिका विकुर्वन्ति त्रिदशा एवेति गाथार्थः ॥ ५५१ ॥

उक्कुट्ठिसीहणायं कलयलसद्देण सव्वओ सव्वं। तित्थगरपायमूले करेंति देवा णिवयमाणा ॥ ५५२ ॥

व्याख्या—तत्रोत्कृष्टिसिंहनादं तीर्थकरपादमूले कुर्वन्ति देवा निपतमानाः, उत्कृष्टिः–हर्षविशेषप्रेरितो ध्वनिविशेषः, किंविशिष्टम् ?–कलकलशब्देन 'सर्वतः' सर्वासु दिक्षु युक्तं 'सर्वम्' अशेषमिति गाथार्थः ॥ ५५२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

चेइदुमपेढछंदय आसणछत्तं च चामराओ य। जं चऽण्णं करणिज्जं करेंति तं वाणमंतरिया ॥ ५५३ ॥

व्याख्या—चैत्यद्रुमम्–अशोकवृक्षं भगवतः प्रमाणात् द्वादशगुणं तथा पीठं तदधो रत्नमयं तस्योपरि देवच्छन्दकं तन्मध्ये सिंहासनं तदुपरि छत्रातिच्छत्रं च, चः समुच्चये, चामरे च यक्षहस्तगते, चशब्दात् पद्मसंस्थितं धर्मचक्रं च, यच्चान्यद्वातोदकादि 'करणीयं' कर्त्तव्यं कुर्वन्ति तद् व्यन्तरा देवा इति गाथार्थः ॥ ५५३ ॥ आह—किं यद्यत्समवसरणं भवति तत्र तत्रायमित्थं नियोग उत नेति, अत्रोच्यते—

साहारणओसरणे एवं जत्थिड्ढिमं तु ओसरइ। एक्कु चिय तं सव्वं करेइ भयणा उ इयरेसिं ॥ ५५४ ॥

व्याख्या—साधारणसमवसरणे एवं साधारणं–सामान्यं यत्र देवेन्द्रा आगच्छन्ति तत्रैवं नियोगः, 'जत्थिड्ढिमं तु ओसर-इ'त्ति यत्र तु ऋद्धिमान् समवसरति कश्चिदिन्द्रसामानिकादिः तत्रैक एव तत्प्राकारादि सर्वं करोति, अत एव च मूल-टीकाकृताऽभ्यधायि–"असोगपायवं जिणउच्चत्ताओ बारसगुणं सक्को विउव्वइ" इत्यादि, 'भयणा उ इतरेसिं' ति यदीन्द्रा नागच्छन्ति ततो भवनवास्यादयः कुर्वन्ति वा न वा समवसरणमित्येवं भजनेतरेषामिति गाथार्थः ॥ ५५४ ॥

सूरोदय पच्छिमाए ओगाहन्तीएँ पुव्वओऽईइ। दोहिँ पउमेहिँ पाया मग्गेण य होइ सत्तऽन्ने ॥ ५५५ ॥

व्याख्या—एवं देवैर्निष्पादिते समवसरणे सूर्योदये–प्रथमायां पौरुष्याम्, अन्यदा पश्चिमायां 'ओगाहंतीए'त्ति अव-गाहन्त्याम्–आगच्छन्त्यामित्यर्थः, 'पुव्वओऽतीती'ति पूर्वद्वारेण 'अतीति'त्ति आगच्छति प्रविशतीत्यर्थः। कथमित्याह–द्वयोः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

'पद्मयोः' सहस्रपत्रयोः देवपरिकल्पितयोः पादौ स्थापयन्निति वाक्यशेषः, 'मग्गेण य होंति सत्तऽण्णे'त्ति मार्गतश्च पृष्ठतश्च भवन्ति सप्तान्ये च भगवतः पद्मा इति,तेषांच यद्यत् पश्चिमं तत्तत्पादन्यासं कुर्वतो भगवतः पुरतस्तिष्ठतीति गाथार्थः ॥५५५॥

आयाहिण पुव्वमुहो तिदिसिं पडिरूवगा उ देवकया । जेट्ठगणी अण्णो वा दाहिणपुव्वे अदूरंमि ॥ ५५६ ॥

व्याख्या—स एवं भगवान् पूर्वद्वारेण प्रविश्य 'आदाहिण'त्ति चैत्यद्रुमप्रदक्षिणां कृत्वा 'पुवमुहो'त्ति पूर्वाभिमुख उपविशतीति, 'तिदिसिं पडिरूवगा उ देवकय'त्ति शेषासु तिसृषु दिक्षु प्रतिरूपकाणि तु तीर्थंकराकृतीनि सिंहासनादि-युक्तानि देवकृतानि भवन्ति, शेषदेवादीनामप्यस्माकं कथयतीति प्रतिपत्त्यर्थमिति, भगवतश्च पादमूलमेकेन गणधरेणा-विरहितमेव भवति, स च ज्येष्ठो वाऽन्यो वेति,प्रायो ज्येष्ठ इति,स ज्येष्ठगणिरन्यो वा दक्षिणपूर्वदिग्भागे अदूरे–प्रत्यासन्न एव भगवतो भगवन्तं प्रणिपत्य निषीदतीति क्रियाऽध्याहारः, शेषगणधरा अप्येवमेव भगवन्तमभिवन्द्य तीर्थंकरस्य मार्गतः पार्श्वतश्च निषीदन्तीति गाथार्थः ॥५५६॥ भुवनगुरुरूपस्य त्रैलोक्यगतरूपसुन्दरतरत्वात् त्रिदशकृतप्रतिरूपकाणां किं तत्साम्यमसाम्यं वेत्याशङ्कानिरासार्थमाह—

जे ते देवेहिं कया तिदिसिं पडिरूवगा जिणवरस्स । तेसिंपि तप्पभावा तयाणुरूवं हवइ रूवं ॥ ५५७ ॥

व्याख्या—यानि तानि देवैः कृतानि तिसृषु दिक्षु प्रतिरूपकाणि जिनवरस्य, तेषामपि 'तत्प्रभावात्' तीर्थंकरप्रभावात् 'तदनुरूपं' तीर्थंकररूपानुरूपं भवति रूपमिति गाथार्थः ॥ ५५७ ॥

तित्थाइसेससंजय देवी वेमाणियाण समणीओ । भवणवइवाणमंतर जोइसियाणं च देवीओ ॥ ५५८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

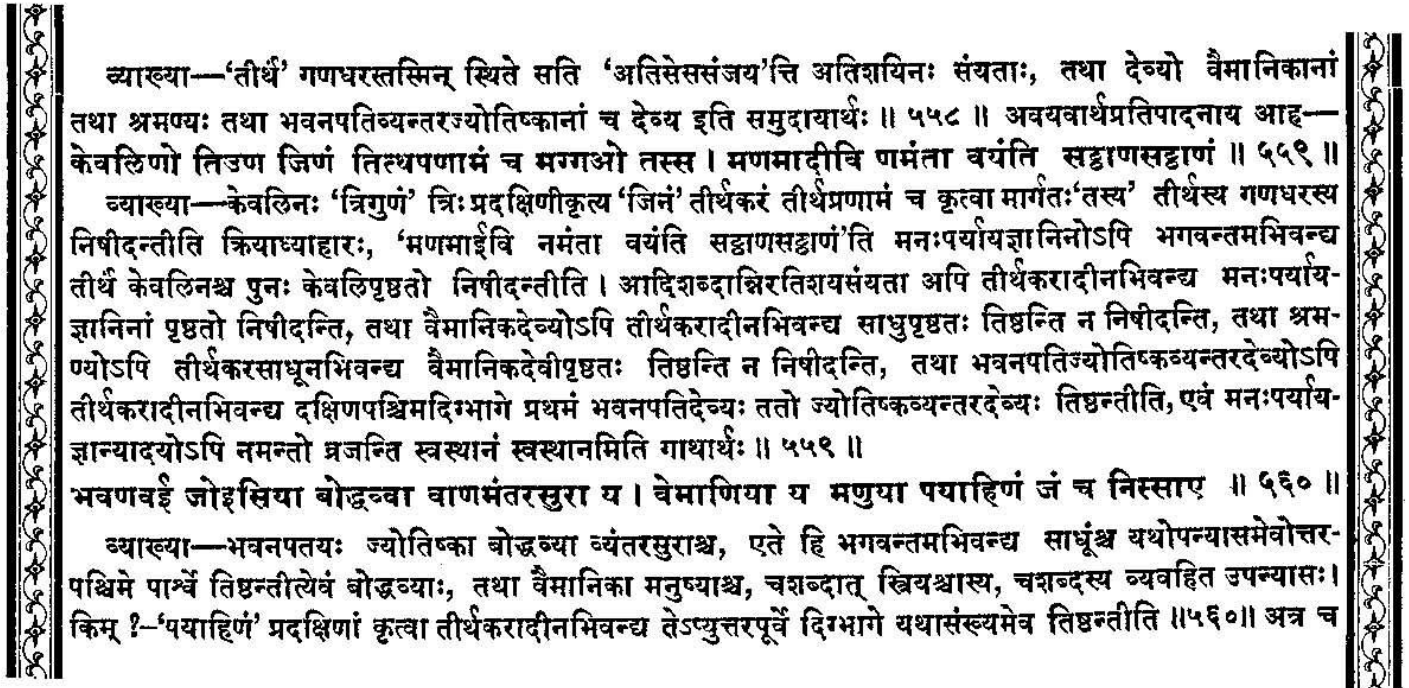

व्याख्या—'तीर्थं' गणधरस्तस्मिन् स्थिते सति 'अतिसेससंजय'त्ति अतिशयिनः संयताः, तथा देव्यो वैमानिकानां तथा श्रमण्यः तथा भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कानां च देव्य इति समुदायार्थः ॥ ५५८ ॥ अवयवार्थप्रतिपादनाय आह—

केवलिणो तिउण जिणं तित्थपणामं च मग्गओ तस्स । मणमादीवि णमंता वयंति सट्ठाणसट्ठाणं ॥ ५५९ ॥

व्याख्या—केवलिनः 'त्रिगुणं' त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य 'जिनं' तीर्थकरं तीर्थप्रणामं च कृत्वा मार्गतः'तस्य' तीर्थस्य गणधरस्य निषीदन्तीति क्रियाध्याहारः, 'मणमाईवि नमंता वयंति सट्ठाणसट्ठाणं'ति मनःपर्यायज्ञानिनोऽपि भगवन्तमभिवन्द्य तीर्थं केवलिनश्च पुनः केवलिपृष्ठतो निषीदन्तीति । आदिशब्दान्निरतिशयसंयता अपि तीर्थकरादीनभिवन्द्य मनःपर्यायज्ञानिनां पृष्ठतो निषीदन्ति, तथा वैमानिकदेव्योऽपि तीर्थकरादीनभिवन्द्य साधुपृष्ठतः तिष्ठन्ति न निषीदन्ति, तथा श्रमण्योऽपि तीर्थकरसाधूनभिवन्द्य वैमानिकदेवीपृष्ठतः तिष्ठन्ति न निषीदन्ति, तथा भवनपतिज्योतिष्कव्यन्तरदेव्योऽपि तीर्थकरादीनभिवन्द्य दक्षिणपश्चिमदिग्भागे प्रथमं भवनपतिदेव्यः ततो ज्योतिष्कव्यन्तरदेव्यः तिष्ठन्तीति, एवं मनःपर्यायज्ञान्यादयोऽपि नमन्तो व्रजन्ति स्वस्थानं स्वस्थानमिति गाथार्थः ॥ ५५९ ॥

भवणवई जोइसिया बोद्धव्वा वाणमंतरसुरा य । वेमाणिया य मणुया पयाहिणं जं च निस्साए ॥ ५६० ॥

व्याख्या—भवनपतयः ज्योतिष्का बोद्धव्या व्यंतरसुराश्च, एते हि भगवन्तमभिवन्द्य साधूंश्च यथोपन्यासमेवोत्तरपश्चिमे पार्श्वे तिष्ठन्तीत्येवं बोद्धव्याः, तथा वैमानिका मनुष्याश्च, चशब्दात् स्त्रियश्चास्य, चशब्दस्य व्यवहित उपन्यासः। किम् ?–'पयाहिणं' प्रदक्षिणां कृत्वा तीर्थकरादीनभिवन्द्य तेऽप्युत्तरपूर्वे दिग्भागे यथासंख्यमेव तिष्ठन्तीति ॥५६०॥ अत्र च

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

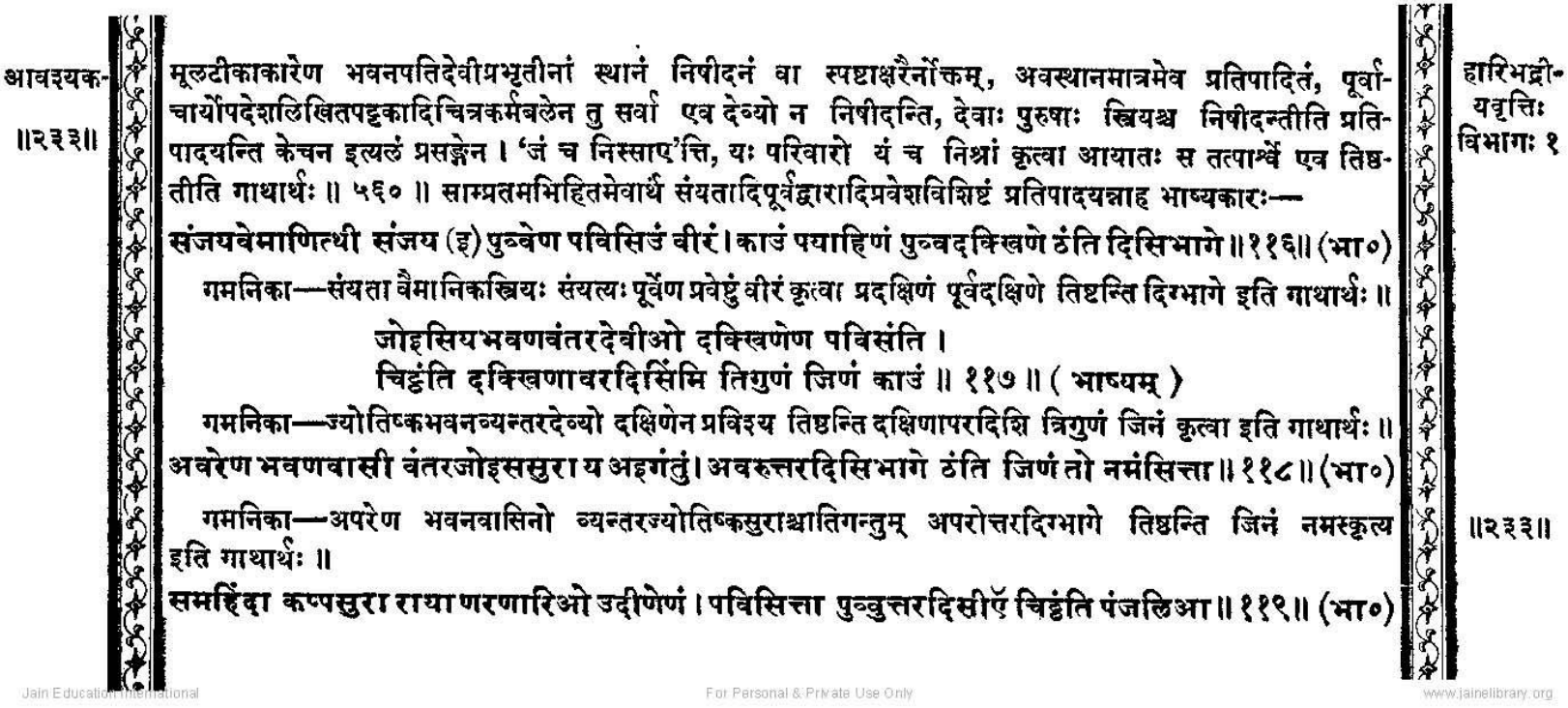

मूलटीकाकारेण भवनपतिदेवीप्रभृतीनां स्थानं निषीदनं वा स्पष्टाक्षरैर्नोक्तम्, अवस्थानमात्रमेव प्रतिपादितं, पूर्वाचार्योपदेशलिखितपट्टकादिचित्रकर्मबलेन तु सर्वा एव देव्यो न निषीदन्ति, देवाः पुरुषाः स्त्रियश्च निषीदन्तीति प्रतिपादयन्ति केचन इत्यलं प्रसङ्गेन । 'जं च निस्साए'त्ति, यः परिवारो यं च निश्रां कृत्वा आयातः स तत्पार्श्वे एव तिष्ठतीति गाथार्थः ॥ ५६० ॥ साम्प्रतमभिहितमेवार्थं संयतादिपूर्वद्वारादिप्रवेशविशिष्टं प्रतिपादयन्नाह भाष्यकारः—

संजयवेमाणित्थी संजय (इ) पुव्वेण पविसिउं वीरं। काउं पयाहिणं पुव्वदक्खिणे ठंति दिसिभागे ॥११६॥ (भा०)

गमनिका—संयता वैमानिकस्त्रियः संयत्यः पूर्वेण प्रवेष्टुं वीरं कृत्वा प्रदक्षिणं पूर्वदक्षिणे तिष्ठन्ति दिग्भागे इति गाथार्थः ॥

जोइसियभवणवंतरदेवीओ दक्खिणेण पविसंति ।
चिट्ठंति दक्खिणावरदिसिंमि तिगुणं जिणं काउं ॥ ११७ ॥ (भाष्यम्)

गमनिका—ज्योतिष्कभवनव्यन्तरदेव्यो दक्षिणेन प्रविश्य तिष्ठन्ति दक्षिणापरदिशि त्रिगुणं जिनं कृत्वा इति गाथार्थः ॥

अवरेण भवणवासी वंतरजोइससुरा य अइगंतुं। अवरुत्तरदिसिभागे ठंति जिणं तो नमंसित्ता ॥ ११८ ॥ (भा०)

गमनिका—अपरेण भवनवासिनो व्यन्तरज्योतिष्कसुराश्चातिगन्तुम् अपरोत्तरदिग्भागे तिष्ठन्ति जिनं नमस्कृत्य इति गाथार्थः ॥

समहिंदा कप्पसुरा राया णरणारिओ उदीणेणं। पविसित्ता पुव्वुत्तरदिसीऍ चिट्ठंति पंजलिआ ॥ ११९ ॥ (भा०)

॥२३३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

गमनिका—समहेन्द्राः कल्पसुरा राजानो नरा नार्यः 'औदीच्येन' उत्तरेण इत्यर्थः, प्रविश्य पूर्वोत्तरदिशि तिष्ठन्ति प्राङ्नलय इति गाथार्थः ॥ भावार्थः सर्वासां सुगम एव ॥ अभिहितार्थोपसङ्गहाय इदमाह—

एक्केक्कीय दिसाए तिगं तिगं होइ सन्निविट्ठं तु। आदिचरिमे विमिस्सा थीपुरिसा सेस पत्तेयं ॥ ५६१ ॥

व्याख्या—पूर्वदक्षिणाअपरदक्षिणाअपरोत्तरापूर्वोत्तराणामेकैकस्यां दिशि उक्तलक्षणम् संयतवैमानिकाङ्गनासंयत्यादि त्रिकं त्रिकं भवति सन्निविष्टं तु, आदिचरमे पूर्वदक्षिणापूर्वोत्तरदिग्द्वये विमिश्राः संयतादयः स्त्रीपुरुषाः शेषदिग्द्वये प्रत्येकं भवन्तीति गाथार्थः ॥ ५६७ ॥ तेषां चेत्थं स्थितानां देवनराणां स्थितिप्रतिपादनाय आह—

एंतं महिड्ढियं पणिवयंति ठियमवि वयंति पणमंता। णवि जंतणा ण विकहा ण परोप्परमच्छरो ण भयं ॥ ५६२ ॥

व्याख्या—येऽल्पर्द्धयः पूर्वं स्थिताः ते आगच्छन्तं महर्द्धिकं प्रणिपतन्ति, स्थितमपि महर्द्धिकं पश्चादागताः प्रणमन्तो व्रजन्ति, तथा नापि यन्त्रणा–पीडा न विकथा न परस्परमत्सरो न भयं तेषां विरोधिसत्त्वानामपि भवति, भगवतोऽनुभावात्, इति गाथार्थः ॥ ५६२ ॥ एते च मनुष्यादयः प्रथमप्राकारान्तर एव भवन्ति ये उक्ताः, यत आह—

बिइयंमि होंति तिरिया तइए पागारमन्तरे जाणा। पागारजढे तिरियाऽवि होंति पत्तेय मिस्सा वा ॥ ५६३ ॥

व्याख्या—द्वितीये प्राकारान्तरे भवन्ति तिर्यञ्चः, तथा तृतीये प्राकारान्तरे यानानि, 'प्राकारजढे' प्राकाररहिते बहिरित्यर्थः, तिर्यञ्चोऽपि भवन्ति, अपिशब्दात् मनुष्या देवा अपि, ते च प्रत्येकं मिश्रा वेति, ते पुनः प्रविशन्तो भवन्ति निर्गच्छन्तश्चैके इति गाथार्थः ॥ ५६३ ॥ द्वारम् १ । द्वितीयद्वारावयवार्थमभिधित्सुः संबन्धगाथामाह—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

सव्वं च देसविरतिं सम्मं घेच्छति व होति कहणा उ। इहरा अमूढलक्खो न कहेइ भविस्सइ ण तं च ॥५६४॥

व्याख्या—'सर्वं च देसविरतिं'ति सर्वविरतिं च देशविरतिं च,विरतिशब्द उभयथापि सम्बध्यते, सम्यक्त्वं ग्रहीष्यति वा भवति कथना तु प्रवर्त्तते कथनमित्यर्थः, 'इहर' त्ति अन्यथा न मूढलक्षोऽमूढलक्षः सर्वज्ञेयाविपरीतवेत्ता इत्यर्थः, किम् ?,–न कथयति । आह—समवसरणकरणप्रयासो विबुधानामनर्थकः,कृतेऽपि नियमतोऽकथनात् इत्याह—भविष्यति न तच्च, यद् भगवति कथयत्यन्यतमोऽप्यन्यतमत्सामायिकं न प्रतिपद्यते इति, भविष्यत्कालस्त्रिकालोपलक्षणार्थ इति गाथार्थः ॥ ५६४ ॥ 'केवइय'त्ति कियन्ति सामायिकानि मनुष्यादयः प्रतिपद्यन्ते इत्याह—

मणुए चउमण्णयरं तिरिए तिण्णि व दुवे व पडिवज्जे। जइ नत्थि नियमसो च्चिय सुरेसु सम्मत्तपडिवत्ती ॥५६५॥

अथवा—कथं भविष्यति न तच्चेत्याह–यतः–'मणुए' गाहा । व्याख्या–मनुष्ये प्रतिपत्तरि चतुर्णामन्यतमप्रतिपत्तिरिति, पाठान्तरं वा ' मणुओ चउ अण्णतरं'ति मनुष्यश्चतुर्णामन्यतमत्प्रतिपद्यते, तिर्यञ्चः त्रीणि वा–सर्वविरतिवर्जानि, द्वे वा–सम्यक्त्वश्रुतसामायिके प्रतिपद्यन्ते इति । यदि नास्ति मनुष्यतिरश्चां कश्चित्प्रतिपत्ता ततो नियमत एव सुरेषु सम्यक्त्वप्रतिपत्तिर्भवतीति गाथार्थः ॥ ५६५ ॥ स चेत्थं धर्ममाचष्टे—

तित्थपणामं काउं कहेइ साहारणेण सद्देणं। सव्वेसिं सण्णीणं जोयणणीहारिणा भगवं ॥ ५६६ ॥

व्याख्या—'नमस्तीर्थाये'त्यभिधाय प्रणामं च कृत्वा कथयति, साधारणेन प्रतिपत्तिमङ्गीकृत्य शब्देन, केषां साधारणेनेत्याह–'सर्वेषाम्' अमरनरतिरश्चां सञ्ज्ञिनां, किंविशिष्टेन ?—'योजननिर्हारिणा' योजनव्यापिना भगवानिति, एतदुक्तं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

भवति–भागवतो ध्वनिः अशेषसमवसरणस्थसञ्ज्ञिजिज्ञासितार्थप्रतिपत्तिनिबन्धनं भवति, भगवतः सातिशयत्वादिति गाथार्थः ॥ ५६६ ॥ आह–कृतकृत्यो भगवान् किमिति तीर्थप्रणामं करोतीति ?, उच्यते—

तप्पुव्विया अरहया पूइयपूया य विणयकम्मं च । कयकिच्चोऽवि जह कहं कहए णमए तहा तित्थं ॥ ५६७ ॥

व्याख्या—तीर्थ–श्रुतज्ञानं तत्पूर्विका 'अर्हत्ता' तीर्थकरता, तदभ्यासप्राप्तेः, पूजितेन पूजा पूजितपूजा सा च कृताऽस्य भवति, लोकस्य पूजितपूजकत्वाद्, भगवताऽप्येतत्पूजितमिति प्रवृत्तेः, तथा 'विनयकर्म च' वक्ष्यमाणवैनयिकधर्ममूलं कृतं भवति, अथवा–कृतकृत्योऽपि यथा कथां कथयति नमति तथा तीर्थमिति । आह–इदमपि धर्मकथनं कृतकृत्यस्यायुक्तमेव, न, तीर्थकरनामगोत्रकर्मविपाकत्वात्, उक्तं च–'तं* च कथं वेदिज्जती'त्यादि गाथार्थः ॥ ५६७ ॥ आह—क्व केन साधुना कियतो वा भूभागात् समवसरणे खल्वागन्तव्यम्, अनागच्छतो वा किं प्रायश्चित्तमिति ?, उच्यते—

जत्थ अपुव्वोसरणं न दिट्ठपुव्वं व जेण समणेणं । बारसहिं जोयणेहिं सो एइ अणागमे लहुया ॥ ५६८ ॥

व्याख्या—यत्रापूर्वं समवसरणं, तत्तीर्थकरापेक्षया अभूतपूर्वमित्यर्थः,न दृष्टपूर्वं वा येन श्रमणेन द्वादशभ्यो योजनेभ्यः स आगच्छति, 'अनागच्छति' अवज्ञया ततोऽनागमे सति'लहुग' त्ति चतुर्लघवः प्रायश्चित्तं भवतीति गाथार्थः ॥५६८॥द्वारम्॥ अन्ये त्वेकगाथयैवानया प्रकृतद्वारव्याख्यां कुर्वते, साऽप्यविरुद्धा व्युत्पन्ना चेति॥ रूपपृच्छाद्वारावयवार्थं विवृण्वन् आह—

सव्वसुरा जइ रूवं अंगुट्ठपमाणयं विउव्वेज्जा । जिणपायंगुट्ठं पइ ण सोहए तं जहिंगालो ॥ ५६९ ॥

* तच्च कथं वेद्यते ?.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

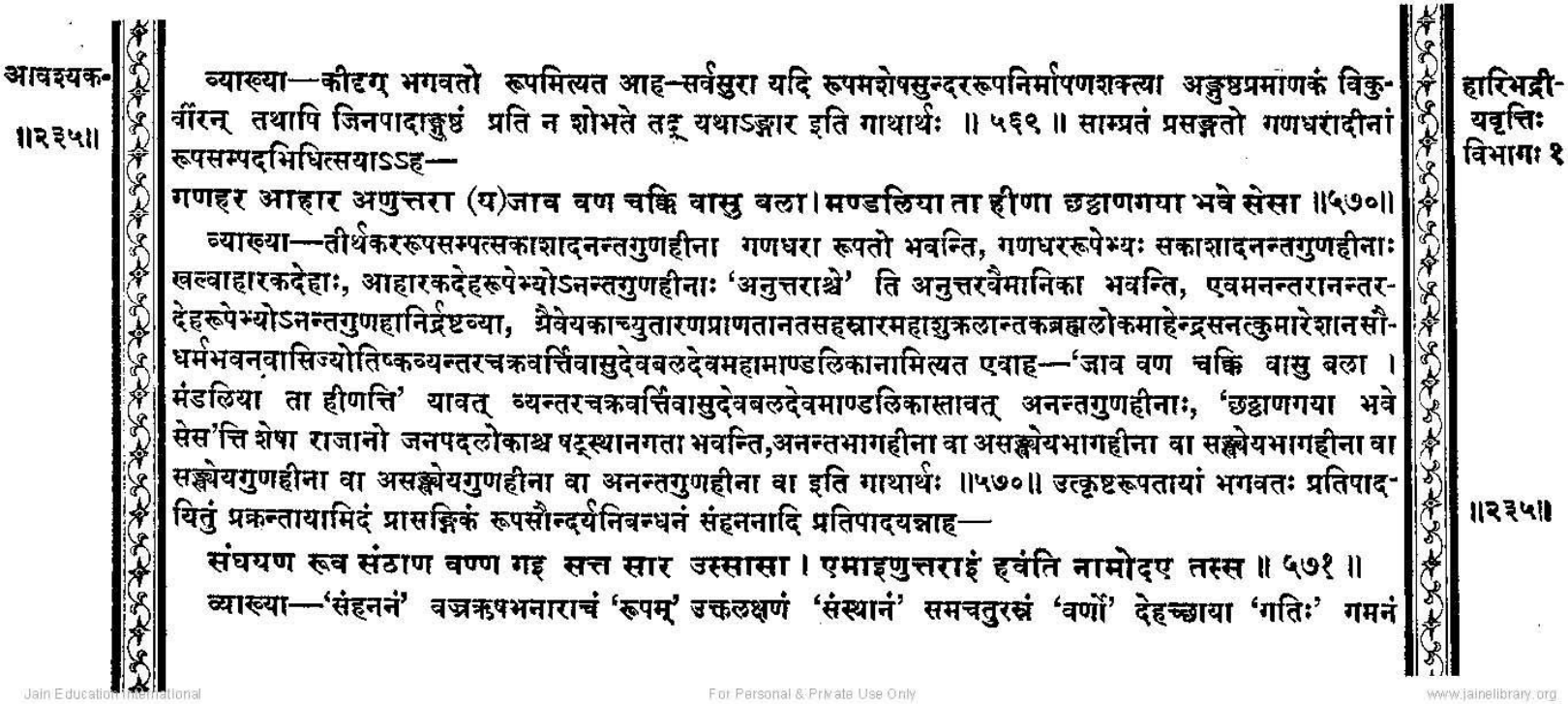

आवश्यक- ॥२३५॥

व्याख्या—कीदृग् भगवतो रूपमित्यत आह–सर्वसुरा यदि रूपमशेषसुन्दररूपनिर्मापणशक्त्या अङ्गुष्ठप्रमाणकं विकुर्वीरन् तथापि जिनपादाङ्गुष्ठं प्रति न शोभते तद् यथाऽङ्गार इति गाथार्थः ॥ ५६९ ॥ साम्प्रतं प्रसङ्गतो गणधरादीनां रूपसम्पदभिधित्सयाऽऽह—

गणहर आहार अणुत्तरा (य)जाव वण चक्कि वासु बला। मण्डलिया ता हीणा छट्ठाणगया भवे सेसा ॥५७०॥

व्याख्या—तीर्थकररूपसम्पत्सकाशादनन्तगुणहीना गणधरा रूपतो भवन्ति, गणधररूपेभ्यः सकाशादनन्तगुणहीनाः खल्वाहारकदेहाः, आहारकदेहरूपेभ्योऽनन्तगुणहीनाः 'अनुत्तराश्चे' ति अनुत्तरवैमानिका भवन्ति, एवमनन्तरानन्तरदेहरूपेभ्योऽनन्तगुणहानिर्द्रष्टव्या, ग्रैवेयकाच्युतारणप्राणतानतसहस्रारमहाशुक्रलान्तकब्रह्मलोकमाहेन्द्रसनत्कुमारेशानसौधर्मभवनवासिज्योतिष्कव्यन्तरचक्रवर्त्तिवासुदेवबलदेवमहामाण्डलिकानामित्यत एवाह—'जाव वण चक्कि वासु बला । मंडलिया ता हीणत्ति' यावत् व्यन्तरचक्रवर्त्तिवासुदेवबलदेवमाण्डलिकास्तावत् अनन्तगुणहीनाः, 'छट्ठाणगया भवे सेस'त्ति शेषा राजानो जनपदलोकाश्च षट्स्थानगता भवन्ति,अनन्तभागहीना वा असङ्ख्येयभागहीना वा सङ्ख्येयभागहीना वा सङ्ख्येयगुणहीना वा असङ्ख्येयगुणहीना वा अनन्तगुणहीना वा इति गाथार्थः ॥५७०॥ उत्कृष्टरूपतायां भगवतः प्रतिपादयितुं प्रक्रन्तायामिदं प्रासङ्गिकं रूपसौन्दर्यनिबन्धनं संहननादि प्रतिपादयन्नाह—

संघयण रूव संठाण वण्ण गइ सत्त सार उस्सासा। एमाइणुत्तराइं हवंति नामोदए तस्स ॥ ५७१ ॥

व्याख्या—'संहननं' वज्रऋषभनाराचं 'रूपम्' उक्तलक्षणं 'संस्थानं' समचतुरस्रं 'वर्णो' देहच्छाया 'गतिः' गमनं

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

॥२३५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	गणधराणाम् रूप-संपतादिनां वर्णनं

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

'सत्त्वं' वीर्यान्तरायकर्मक्षयोपशमादिजन्य आत्मपरिणामः, सारो द्विधा–बाह्योऽभ्यन्तरश्च, बाह्यो गुरुत्वम्, आभ्यन्तरो ज्ञानादिः,'उच्छ्वासः' प्रतीत एव,संहननं च रूपं च संस्थानं च वर्णश्च गतिश्च सत्त्वं च सारश्च उच्छ्वासश्चेति समासः। एवमादीनि वस्तून्यनुत्तराणि भवन्ति तस्य भगवतः, आदिशब्दात् रुधिरं गोक्षीराभं मांसं चेत्यादि, कुत इत्याह—'नामोदयादि'ति नामाभिधानं कर्मानेकभेदभिन्नं तदुदयादिति गाथार्थः ॥५७१॥ आह–अन्यासां प्रकृतीनां वेदना गोत्रादयो नाम्नो वा ये इन्द्रियाङ्गादयः प्रशस्ता उदया भवन्ति ते किमनुत्तरा भगवतः छद्मस्थकाले केवलिकाले वा उत नेति ?, अत्रोच्यते—

पगडीणं अण्णासुवि पसत्थ उदया अणुत्तरा होंति। खय उवसमेऽवि य तहा खयम्मि अविगप्पमाहंसु॥५७२॥

व्याख्या—'पगडीणं अण्णासुवि' त्ति, षष्ठ्यर्थे सप्तमी, प्रकृतीनामन्यासामपि प्रशस्ता उदया उच्चैर्गोत्रादयो भवन्ति, किमितरजनस्येव ?, नेत्याह—'अनुत्तरा' अनन्यसदृशा इत्यर्थः, अपिशब्दान्नाम्नोऽपि येऽन्ये जात्यादय इति। 'खय उवसमेऽवि य तह' त्ति,क्षयोपशमेऽपि सति ये दानलाभादयः कार्यविशेषा अपिशब्दादुपशमेऽपि ये केचन तेऽप्यनुत्तरा भवन्ति इति क्रियायोगः, तथा कर्मणः क्षये सति क्षायिकज्ञानादिगुणसमुदयम् 'अविगप्पमाहंसु'त्ति अविकल्पं—व्यावर्णनादिविकल्पातीतं सर्वोत्तममाख्यातवन्तः तीर्थकृद्गणधरा इति गाथार्थः ॥ ५७२ ॥ आह—असातवेदनीयाद्याः प्रकृतयो नाम्नो वा या अशुभास्ताः कथं तस्य दुःखदा न भवन्ति इति ?, अत्रोच्यते—

अस्सायमाइयाओ जावि य असुहा हवंति पगडीओ। णिंबरसलवोव्व पए ण होंति ता असुहया तस्स ॥५७३॥

व्याख्या—असाताद्याः या अपि च अशुभा भवन्ति प्रकृतयः, ता अपि निम्बरसलव इव 'पयसि' क्षीरे लवो–बिन्दुः,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

न भवन्ति ताः अशुभदाः असुखदा वा 'तस्य' तीर्थकरस्येति गाथार्थः ॥५७३॥ उक्तमानुषङ्गिकं, प्रकृतद्वारमधिकृत्याह— उत्कृष्टरूपतया भगवतः किं प्रयोजनमिति ?, अत्रोच्यते,—

धम्मोदएण रूवं करेंति रूवस्सिणोऽवि जइ धम्मं । गिज्झवओ य सुरूवो पसंसिमो तेण रूवं तु ॥ ५७४ ॥

व्याख्या—दुर्गतौ प्रपतन्तमात्मानं धारयतीति धर्मः तस्योदयः तेन रूपं भवतीति श्रोतारोऽपि प्रवर्त्तन्ते, तथा कुर्वन्ति 'रूपस्विनोऽपि' (वस्सिणोऽवि) रूपवन्तोऽपि यदि धर्म्मं ततः शेषैः सुतरां कर्त्तव्य इति श्रोतृबुद्धिः प्रवर्त्तते, तथा 'ग्राह्यवाक्यश्च' आदेयवाक्यश्च सुरूपो भवति, चब्दात् श्रोतृरूपाद्यभिमानापहारी च अतः, प्रशंसामो भगवतस्तेन रूपमिति गाथार्थः ॥ ५७४ ॥ द्वारम् । अथवा पृच्छेति भगवान् देवनरतिरश्चां प्रभूतसंशयिनां कथं व्याकरणं कुर्वन् संशयव्यवच्छित्तिं करोतीति ?, उच्यते, युगपत्, किमित्याह—

कालेण असंखेणवि संखातीताण संसईणं तु । मा संसयवोच्छित्ती न होज्ज कमवागरणदोसा ॥ ५७५ ॥

व्याख्या—कालेनासङ्ख्येयेनापि सङ्ख्यातीतानां संशयिनां–देवादीनां मा संशयव्यवच्छित्तिर्न भवेत्, कुतः ?–क्रमव्याकरणदोषात्, अतो युगपद् व्याकृणातीति गाथार्थः ॥ ५७५ ॥ युगपद्व्याकरणगुणं प्रतिपिपादयिषुराह—

सव्वत्थ अविसमत्तं रिद्धिविसेसो अकालहरणं च । सव्वण्णुपच्चओऽवि य अचिंतगुणभूतिओ जुगवं ॥५७६॥

व्याख्या—'सर्वत्र' सर्वसत्त्वेषु 'अविषमत्वं' युगपत् कथनेन तुल्यत्वं भगवत इति, रागद्वेषरहितस्य तुल्यकालसंशयिनां युगपत् जिज्ञासतां कालभेदकथने रागेतरगोचरचित्तवृत्तिप्रसङ्गात्, सामान्यकेवलिनां तत्प्रसङ्ग इति चेत्, न, तेषामित्थं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

देशनाकरणानुपपत्तेः, तथा ऋद्धिविशेषश्चायं भगवतो–यद् युगपत् सर्वेषामेव संशयिनामशेषसंशयव्यवच्छित्तिं करोतीति। अकालहरणं चेत्थं भगवतः, युगपत् संशयाऽपगमात्, क्रमकथने तु कस्यचित् संशयिनोऽनिवृत्तसंशयस्यैव मरणं स्यात्, न च भगवन्तमप्यवाप्य संशयनिवृत्त्यादिफलरहिता भवन्ति प्राणिन इति, तथा सर्वज्ञप्रत्ययोऽपि च तेषामित्थमेव भवति, न ह्यसर्वज्ञो हृद्गताशेषसंशयापनोदायालमिति, क्रमव्याकरणे तु कस्यचिदनपेतसंशयस्य तत्प्रतीत्यभावः स्यात्, तथाऽचिन्त्या गुणभूतिः–अचिन्त्या गुणसंपद् भगवत इति, यस्मादेते गुणास्ततो युगपत्कथयति इति गाथार्थः ॥ ५७६ ॥ द्वारम् ॥ श्रोतृपरिणामः पर्यालोच्यते–तत्र यथा सर्वसंशयिनां समा सा पारमेश्वरी वागशेषसंशयोन्मूलनेन स्वभाषया परिणमते तथा प्रतिपादयन्नाह—

वासोदयस्स व जहा वण्णादी होंति भायणविसेसा। सव्वेसिंपि सभासा जिणभासा परिणमे एवं ॥५७७॥

व्याख्या—'वर्षोदकस्य वा' वृष्ट्युदकस्य वा, वाशब्दात् अन्यस्य वा, यथैकरूपस्य सतः वर्णादयो भवन्ति, भाजनविशेषात्, कृष्णसुरभिमृत्तिकायां स्वच्छं सुगन्धं रसवच्च भवति ऊषरे तु विपरीतम्, एवं सर्वेषामपि श्रोतृणां स्वभाषया जिनभाषा परिणमत इति गाथार्थः ॥ ५७७ ॥ तीर्थकरवाचः सौभाग्यगुणप्रतिपादनायाह—

साहारणासवत्ते तदुवओगो उ गाहगगिराए। न य निव्विज्जइ सोया किढिवाणियदासिआहरणा ॥ ५७८ ॥

व्याख्या—साधारणा–अनेकप्राणिषु स्वभाषात्वेन परिणामात् नरकादिभयरक्षणत्वाद्वा, असपत्ना–अद्वितीया, साधारणा(चा)ऽसावसपत्ना चेति समासः, तस्यां साधारणासपत्नायां सत्यां, किम् ?, तस्यामुपयोगस्तदुपयोग एव भवति श्रोतुः,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

तुशब्दस्यावधारणार्थत्वात्, कस्यां ?–ग्राहयतीति ग्राहिका,ग्राहिका चासौ गीश्च ग्राहकगीः तस्यां ग्राहकगिरि,उपयोगे सत्य-प्यन्यत्र निर्वेददर्शनादाह–न च निर्विद्यते श्रोता, कुतः खल्वयमर्थोऽवगन्तव्यः ? इत्याह—किढिवणिगूदास्युदाह-रणादिति, तच्चेदम्—एगस्स वाणियगस्स एका किढिदासी, किढी थेरी, सा गोसे कट्ठाणं गया, तण्हाछुहाकिलंता मज्झण्हे आगया, अतिथेवा कट्ठा आणीयत्ति पिट्टिता भुक्खियतिसिया पुणो पट्ठविया, सा य वहूं कट्ठयभारं ओगाहंतीए पोरुसीए गहायागच्छति, कालो य जेट्ठामूलमासो, अह ताए थेरीए कट्ठभाराओ एगं कट्ठं पडियं, ताहे ताए ओणमित्ता तं गहियं, तं समयं च भगवं तित्थगरो धम्मं कहियाइओ जोयणनीहारिणा सरेणं, सा थेरी तं सद्दं सुणेंती तहेव ओणता सोउमाढत्ता, उण्हं खुहं पिवासं परिस्समं च न विंदइ, सूरत्थमणे तित्थगरो धम्मं कहेउमुट्ठिओ, थेरी गया। एवं—

सव्वाउअंपि सोया खवेज्ज जइ हु सययं जिणो कहए। सीउण्हखुप्पिवासापरिस्समभए अविगणेंतो ॥ ५७९ ॥

व्याख्या—भगवति कथयति सति सर्वायुष्कमपि श्रोता क्षपयेत् भगवत्समीपवर्त्येव, यदि हु 'सततम्' अनवरतं जिनः कथयेत्। किंविशिष्टः सन्नित्याह—शीतोष्णक्षुत्पिपासापरिश्रमभयान्यविगणयन्निति गाथार्थः॥५७९॥द्वारम्। साम्प्रतं दानद्वा-

१ एकस्य वणिजः एका काष्ठिकी दासी, काष्ठिकी स्थविरा, सा गोसे (प्रत्युषसि) काष्ठेभ्यो गता, तृष्णाक्षुधाक्रान्ता मध्याह्ने आगता, अतिस्तोकानि काष्ठा-न्यानीतानीति पिट्टिता बुभुक्षिततृषिता पुनः प्रस्थापिता, सा च बृहन्तं काष्ठभारमवगाहमानायां पौरुष्यां गृहीत्वागच्छति, कालश्च ज्येष्ठामूलो मासः, अथ तस्याः स्थविरायाः काष्ठभारात् एकं काष्ठं पतितं, तदा तथाऽवनम्य तद्गृहीतं, तस्मिन् समये च भगवांस्तीर्थकरो धर्मं कथितवान् योजनव्यापिना स्वरेण, सा स्थविरा तं शब्दं शृण्वन्ती तथैवावनता श्रोतुमारब्धा, उष्णं क्षुधां पिपासां परिश्रमं च न वेत्ति, सूर्यास्तमये तीर्थकरो धर्मं कथयित्वोत्थितः, स्थविरा गता.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

रावयवार्थमधिकृत्योच्यते–तत्र भगवान् येषु नगरादिषु विहरति, तेभ्यो वार्त्तां ये खल्वानयन्ति, तेभ्यो यत्प्रयच्छन्ति वृत्तिदानं प्रीतिदानं च चक्रवर्त्त्यादयस्तदुपप्रदिदर्शयिषुराह—

वित्ती उ सुवण्णस्सा बारस अद्धं च सयसहस्साइं । तावइयं चिय कोडी पीतीदाणं तु चक्किस्स ॥ ५८० ॥

व्याख्या—'वृत्तिस्तु' वृत्तिरेव नियुक्तपुरुषेभ्यः, कस्येत्याह—सुवर्णस्य, द्वादश अर्द्धं च शतसहस्राणि, अर्द्धत्रयोदश सुवर्णलक्षा इत्यर्थः, तथा तावत्य एव कोट्यः प्रीतिदानं तु, केषामित्याह—चक्रवर्त्तिनां, तत्र वृत्तिर्या परिभाषिता नियुक्तपुरुषेभ्यः, प्रीतिदानं यद् भगवदागमननिवेदने परमहर्षात् नियुक्तेतरेभ्यो दीयत इति, तत्र वृत्तिः संवत्सरनियता, प्रीतिदानमनियतम्, इति गाथार्थः ॥ ५८० ॥

एयं चेव पमाणं णवरं रयतं तु केसवा दिंति । मंडलिआण सहस्सा पीईदाणं सयसहस्सा ॥ ५८१ ॥

व्याख्या—एतदेव प्रमाणं वृत्तिप्रीतिदानयोः, नवरं 'रजतं तु' रूप्यं तु 'केशवाः' वासुदेवा ददति, तथा माण्डलिकानां राज्ञां सहस्राण्यर्द्धत्रयोदश रूप्यस्य वृत्तिर्नियुक्तेभ्यो वेदितव्या, 'पीईदाणं सतसहस्सं' ति 'सूचनात् सूत्र' मिति प्रीतिदानमर्द्धत्रयोदशशतसहस्राण्यवगन्तव्यानीति गाथार्थः ॥ ५८१ ॥ किमेत एव महापुरुषाः प्रयच्छन्ति ?, नेत्याह—

भत्तिविहवाणुरूपं अण्णेऽवि य देंति इब्भमाईया । सोऊण जिणागमणं निउत्तमणिओइएसुं वा ॥ ५८२ ॥

व्याख्या—भक्तिविभवानुरूपं अन्येऽपि च ददति इभ्यादयः, इभ्यो–महाधनपतिः, आदिशब्दात् नगरग्रामभोगिकादयः, कदा?–श्रुत्वा जिनागमनं, केभ्यो ?–नियुक्तानियोजितेभ्यो वेति, गाथार्थः॥५८२॥ तेषामित्थं प्रयच्छतां के गुणा इति?, उच्यते—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

देवाणुअत्ति भत्ती पूया थिरकरण सत्तअणुकंपा। साओदय दाणगुणा पभावणा चेव तित्थस्स ॥ ५८३ ॥

व्याख्या—देवानुवृत्तिः कृता भवति, कथं ?, यतो देवा अपि भगवतः पूजां कुर्वन्त्यतः तदनुवृत्तिः कृता भवति, तथा भक्तिश्च भगवतः कृता भवति, तथा पूजा च, तथा स्थिरीकरणमभिनवश्राद्धकानां, तथा कथकसत्त्वानुकम्पा च कृतेति, तथा सातोदयवेदनीयं बध्यते, एते दानगुणाः, तथा प्रभावना चैव तीर्थस्य कृता भवतीति गाथार्थः ॥ ५८३ ॥ द्वारं ॥ साम्प्रतं देवमाल्यद्वारावयवार्थमधिकृत्योच्यते–तत्र भगवान् प्रथमां सम्पूर्णपौरुषीं धर्ममाचष्टे, अत्रान्तरे देवमाल्यं प्रविशति, बलिरित्यर्थः, आह–कस्तं करोति इति ?, उच्यते—

राया व रायमच्चो तस्सऽसई पउरजणवओ वाऽवि। दुब्बलिखंडियबलिछड्डियतंदुलाणाढगं कलमा ॥ ५८४ ॥

व्याख्या—'राजा वा' चक्रवर्त्तिमण्डलिकादिः 'राजामात्यो वा' अमात्यो–मन्त्री,तस्य राज्ञोऽमात्यस्य वा असति–अभावे नगरनिवासिविशिष्टलोकसमुदायः पौरं तत्करोति, ग्रामादिषु जनपदो वा, अत्र जनपदशब्देन तन्निवासी लोकः परिगृह्यते, स किंविशिष्टः किंपरिमाणो वा क्रियत इति ?, आह–'दुब्बली'त्यादि,तत्र दुर्बलिकया खण्डितानां 'बली'ति बलवत्या छटितानां तन्दुलानाम् आढकं–चतुःप्रस्थपरिमाणं, 'कलमे'ति प्राकृतशैल्या कलमानां–तन्दुलानाम् इति गाथार्थः ॥ ५८४ ॥ किंविशिष्टानामिति ? आह—

भाइयपुणाणियाणं अखंडफुडियाण फलगसरियाणं। कीरइ बली सुराविं य तत्थेव छुहंति गंधाई ॥ ५८५ ॥

व्याख्या—विभक्तपुनरानीतानां भाजनम्–ईश्वरादिगृहेषु वीननार्थमर्प्पणं तेभ्यः प्रत्यानयनं–पुनरानयनमिति, विभक्ता-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

श्चते पुनरानीताश्चेति समासः, तेषां, किंविशिष्टानाम् ?–अखण्डाः–सम्पूर्णावयवाः अस्फुटिताः–राजीरहिताः, अखण्डाश्च तेऽस्फुटिताश्च इति समासः,तेषां,'फलगसरिताणं'ति फलकवीनितानाम् एवंभूतानामाढकं क्रियते बलिः, सुरा अपि च तत्रैव बलौ प्रक्षिपन्ति गन्धादीनिति गाथार्थः ॥५८५॥द्वारं॥माल्यानयनद्वारं,इदानीं तमित्थं निष्पन्नं बलिं राजादयस्त्रिदशसहिताः गृहीत्वा तूर्यनिनादेन दिग्मण्डलमापूरयन्तः खल्वागच्छन्ति,पूर्वद्वारेण च प्रवेशयन्ति,अत्रान्तरे भगवानप्युपसंहरतीति, आह–

बलिपविसणसमकालं पुव्वद्दारेण ठाति परिकहणा । तिगुणं पुरओ पाडण तस्सद्धं अवडियं देवा ॥ ५८६ ॥

व्याख्या—पूर्वद्वारेणेति व्यवहित उपन्यासः, बलेः प्रवेशनं पूर्वद्वारेण, बलिप्रवेशनसमकालं 'तिष्ठति' उपरमते धर्मकथेति, 'तिगुणं पुरओ पाडण' प्रविश्य राजादिर्बलिव्यग्रदेहो भगवन्तं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य तं बलिं तत्पादान्तिके पुरतः पातयति, तस्य चार्द्धमपतितं देवाः गृह्णन्ति, इति गाथार्थः ॥ ५८६ ॥

अद्धद्धं अहिचहणो अवसेसं हवइ पागयजणस्स । सव्वामयप्पसमणी कुप्पइ णऽण्णो य छम्मासे ॥ ५८७ ॥

व्याख्या—शेषार्द्धस्य अर्द्धं–अर्द्धार्द्धं तदधिपतेर्भवति राज्ञ इत्यर्थः, अवशेषं यद्बलेरास्ते तद्भवति कस्य ?, प्रकृतिषु भवः प्राकृतो–जनस्तस्य, स चेत्थंसामर्थ्यो भवति–ततः सिकूथेनापि शिरसि प्रक्षिप्तेन रोगः खलूपशमं याति, अपूर्वश्च षण्मासान् यावन्न भवतीति, आह च–सर्वामयप्रशमनः, कुप्यति नान्यश्च षण्मासं यावत् । प्राकृतशैल्या स्त्रीलिङ्गनिर्देश इति गाथार्थः ॥ ५८७ ॥ द्वारम् ॥ अपरे त्वनन्तरोक्तद्वारद्वयमप्येकद्वारीकृत्य व्याचक्षते, तथापि अविरोध इति । इत्थं बलौ प्रक्षिप्ते भगवान् प्रथमात् प्राकारान्तरात् उत्तरद्वारेण निर्गत्य उत्तरपूर्वायां दिशि देवच्छन्दके यथासुखं समाधिना व्यवतिष्ठत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

इति । भगवत्युत्थिते द्वितीयपौरुष्यामाद्यगणधरोऽन्यतमो वा धर्ममाचष्टे । आह–भगवानेव किमिति नाचष्टे ?, तत्कथने के गुणा इति ?, उच्यते—

खेयविणोओ सीसगुणदीवणा पच्चओ उभयओऽवि । सीसायरियकमोऽवि य गणहरकहणे गुणा होंति ॥५८८॥

व्याख्या—खेदविनोदो भगवतो भवति, परिश्रमविश्राम इत्यर्थः, तथा 'शिष्यगुणदीपना' शिष्यगुणप्ररूपणा च कृता भवति, तथा प्रत्यय उभयतोऽपि श्रोतृणामुपजायते–यथा भगवताऽभ्यधायि तथा गणधरेणापि, गणधरे वा तदनन्तरं तदुक्तानुवादिनि प्रत्ययो भवति श्रोतृणाम्—नान्यथावाद्ययमिति, तथा शिष्याचार्यक्रमोऽपि च दर्शितो भवति, आचार्यात् उपश्रुत्य योग्यशिष्येण तदर्थान्वाख्यानं कर्त्तव्यमिति, एते गणधरकथने गुणा भवन्ति इति गाथार्थः ॥५८८॥

आह–स गणधरः क्व निषण्णः कथयतीति ?, उच्यते—

राओवणीयसीहासणे निविट्ठो व पायवीढंमि । जिट्ठो अन्नयरो वा गणहारी कहइ बीआए ॥ ५८९ ॥

व्याख्या—राज्ञा उपनीतं राजोपनीतं राजोपनीतं च तत् सिंहासनं चेति समासः, तस्मिन् राजोपनीतसिंहासने उपविष्टो वा भगवत्पादपीठे, स च ज्येष्ठः अन्यतरो वा गणं–साध्वादिसमुदायलक्षणं धारयितुं शीलमस्येति गणधारी कथयति द्वितीयायां पौरुष्यामिति गाथार्थः ॥ ५८९ ॥ आह–स कथयन् कथं कथयतीति ?, उच्यते—

संखाईएऽवि भवे साहइ जं वा परो उ पुच्छिज्जा । ण य णं अणाइसेसी वियाणई एस छउमत्थो ॥ ५९० ॥

व्याख्या—सङ्ख्यातीतानपि भवान् , असङ्ख्येयानित्यर्थः, किं ?–'साहइ'त्ति देशीवचनतः कथयति, एतदुक्तं भवति–

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

असङ्ख्येयभवेषु यदभवद्भविष्यति वा, यद्वा वस्तुजातं परस्तु पृच्छेत् तत्सर्वं कथयतीति, अनेनाशेषाभिलाप्यपदार्थप्रतिपादनशक्तिमाह, किं बहुना ?–'न च' नैव, णमिति वाक्यालङ्कारे, 'अणाइसेसि'त्ति अनतिशयी अवध्याद्यतिशयरहित इत्यर्थः,विजानाति यथा एष गणधरछद्मस्थ इति,अशेषप्रश्नोत्तरप्रदानसमर्थत्वात्तस्येति गाथार्थः ॥५९०॥ समवसरणं समत्तं

एवं तावत्समवसरणवक्तव्यता सामान्येनोक्ता, प्रकृतमिदानीं प्रस्तूयते–तत्र भगवतः समवसरणे निष्पन्ने सत्यत्रान्तरे देवजयशब्दसम्मिश्रदिव्यदुन्दुभिशब्दाकर्णनोत्फुल्लनयनगगनावलोकनोपलब्धस्वर्गवधूसमेतसुरवृन्दानां यज्ञपाटकसमीपाभ्यागतजनानां परितोषोऽभवद्–अहो स्विष्टं, विग्रहवन्तः खलु देवा आगता इत्याह—

तं दिव्वदेवघोसं सोऊणं माणुसा तहिं तुट्ठा । अहो(हु) जण्णिएण जट्ठं देवा किर आगया इहइं॥ ५९१ ॥

व्याख्या—तं दिव्यदेवघोषं श्रुत्वा मनुष्याः 'तत्र' यज्ञपाटे तुष्टाः, 'अहो' ! विस्मये, यज्ञेन यजति लोकानिति याज्ञिकः तेनेष्टं, कुतः ?–एते देवाः किल आगता अत्रेति, किलशब्दः संशय एव, तेषामन्यत्र गमनादिति गाथार्थः ॥ ५९१ ॥ तत्र च यज्ञपाटे वेदार्थविदः एकादशापि गणधरा ऋत्विजः समन्वागता इत्याह च—

एक्कारसवि गणहरा सव्वे उण्णयविसालकुलवंसा । पावाएँ मज्झिमाए समोसढा जन्नवाडम्मि ॥ ५९२ ॥

व्याख्या—एकादशापि गणधराः समवसृताः यज्ञपाट इति योगः, किंभूता इत्याह–'सर्वे' निरवशेषाः उन्नताः–प्रधानजातित्वात् विशालाः–पितामहपितृव्याद्यनेकसमाकुलाः कुलान्येव वंशाः–अन्वया येषां ते तथाविधाः, पापायां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

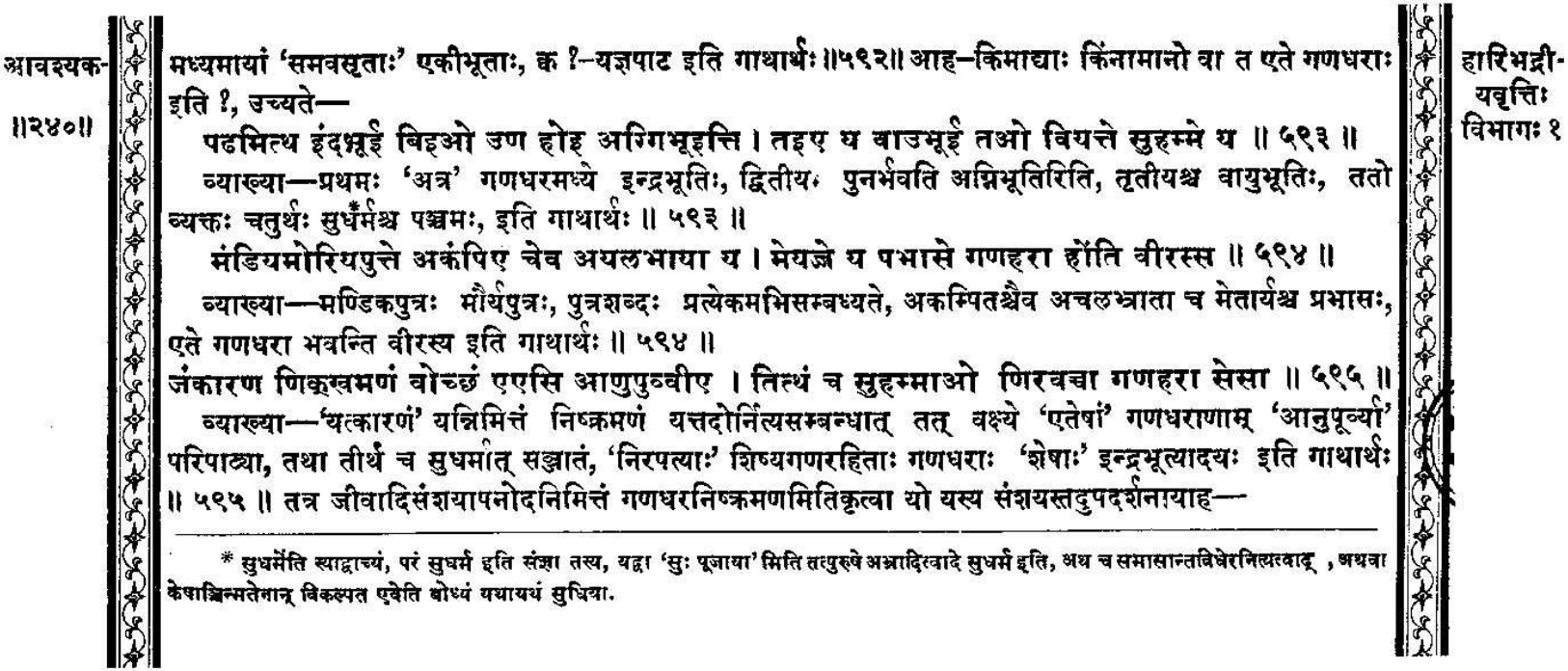

आवश्यक- ॥२४०॥

मध्यमायां 'समवसृताः' एकीभूताः, क्व ?–यज्ञपाट इति गाथार्थः ॥५९२॥ आह–किमाद्याः किंनामानो वा त एते गणधराः इति ?, उच्यते—

पढमित्थ इंदभूई बिइओ उण होइ अग्गिभूइत्ति । तइए य वाउभूई तओ वियत्ते सुहम्मे य ॥ ५९३ ॥

व्याख्या—प्रथमः 'अत्र' गणधरमध्ये इन्द्रभूतिः, द्वितीय पुनर्भवति अग्निभूतिरिति, तृतीयश्च वायुभूतिः, ततो व्यक्तः चतुर्थः सुधर्मश्च पञ्चमः, इति गाथार्थः ॥ ५९३ ॥

मंडियमोरियपुत्ते अकंपिए चेव अयलभाया य । मेयज्जे य पभासे गणहरा होंति वीरस्स ॥ ५९४ ॥

व्याख्या—मण्डिकपुत्रः मौर्यपुत्रः, पुत्रशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते, अकम्पितश्चैव अचलभ्राता च मेतार्यश्च प्रभासः, एते गणधरा भवन्ति वीरस्य इति गाथार्थः ॥ ५९४ ॥

जंकारण णिक्खमणं वोच्छं एएसि आणुपुव्वीए । तित्थं च सुहम्माओ णिरवचा गणहरा सेसा ॥ ५९५ ॥

व्याख्या—'यत्कारणं' यन्निमित्तं निष्क्रमणं यत्तदोर्नित्यसम्बन्धात् तत् वक्ष्ये 'एतेषां' गणधराणाम् 'आनुपूर्व्या' परिपाट्या, तथा तीर्थं च सुधर्मात् सञ्जातं, 'निरपत्याः' शिष्यगणरहिताः गणधराः 'शेषाः' इन्द्रभूत्यादयः इति गाथार्थः ॥ ५९५ ॥ तत्र जीवादिसंशयापनोदनिमित्तं गणधरनिष्क्रमणमितिकृत्वा यो यस्य संशयस्तदुपदर्शनायाह—

* सुधर्मेति स्याद्वाच्यं, परं सुधर्म इति संज्ञा तस्य, यद्वा 'सुः पूजाया' मिति तत्पुरुषे अभ्रादित्वादे सुधर्म इति, अथ च समासान्तविधेरनित्यत्वाद् , अथवा केषाञ्चिन्मतेनान् विकल्पत एवेति बोध्यं यथायथं सुधिया.

हारिभद्रीय-वृत्तिः विभागः १

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

	गणधराणाम् नामानि एवं संबंधित-वर्णनं, तेषाम् संशया: विषये भगवद्-कथनं तथा संशय-निवारणं

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

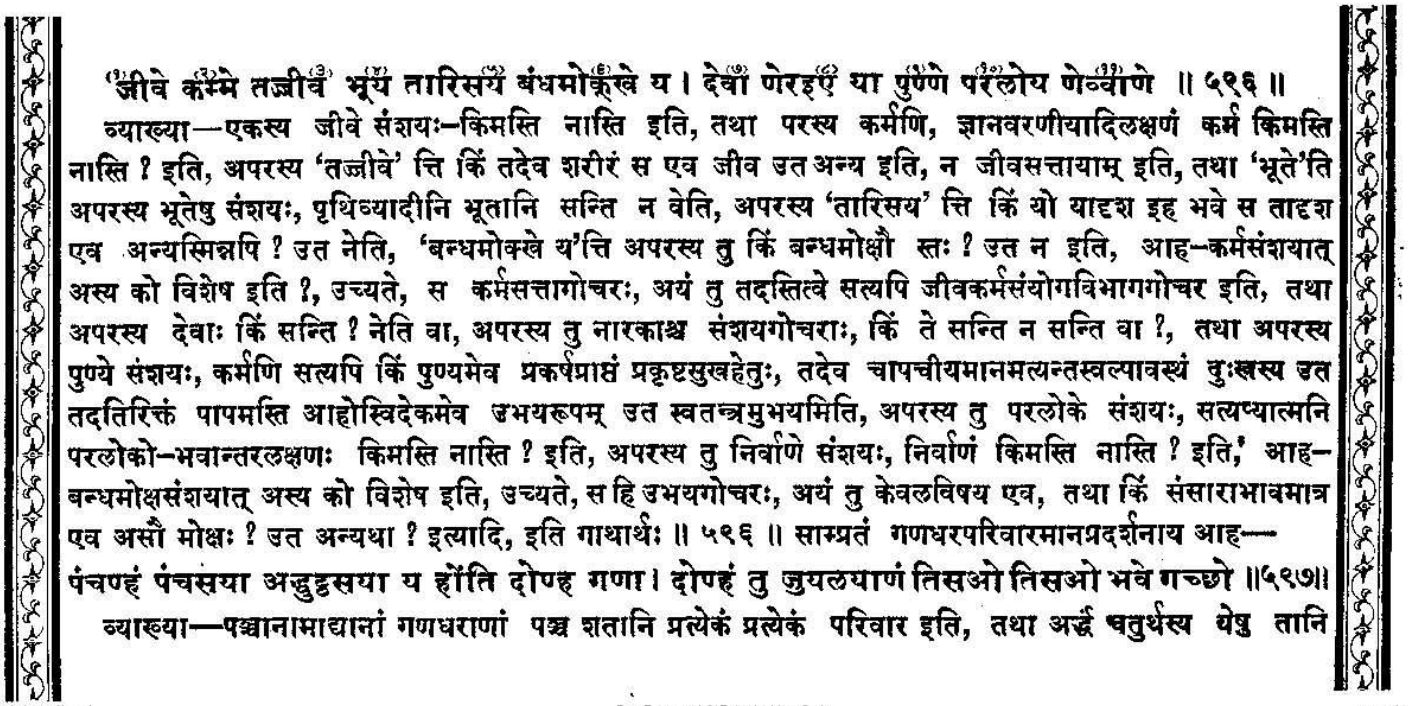

'जीवे कम्मे तज्जीवं भूय तारिसय बंधमोक्खे य। देवा णेरइए या पुण्णे परलोय णेव्वाणे ॥ ५९६ ॥

व्याख्या—एकस्य जीवे संशयः–किमस्ति नास्ति इति, तथा परस्य कर्मणि, ज्ञानवरणीयादिलक्षणं कर्म किमस्ति नास्ति ? इति, अपरस्य 'तज्जीवे' त्ति किं तदेव शरीरं स एव जीव उत अन्य इति, न जीवसत्तायाम् इति, तथा 'भूते'ति अपरस्य भूतेषु संशयः, पृथिव्यादीनि भूतानि सन्ति न वेति, अपरस्य 'तारिसय' त्ति किं यो यादृश इह भवे स तादृश एव अन्यस्मिन्नपि ? उत नेति, 'बन्धमोक्खे य'त्ति अपरस्य तु किं बन्धमोक्षौ स्तः ? उत न इति, आह–कर्मसंशयात् अस्य को विशेष इति ?, उच्यते, स कर्मसत्तागोचरः, अयं तु तदस्तित्वे सत्यपि जीवकर्मसंयोगविभागगोचर इति, तथा अपरस्य देवाः किं सन्ति ? नेति वा, अपरस्य तु नारकाश्च संशयगोचराः, किं ते सन्ति न सन्ति वा ?, तथा अपरस्य पुण्ये संशयः, कर्मणि सत्यपि किं पुण्यमेव प्रकर्षप्राप्तं प्रकृष्टसुखहेतुः, तदेव चापचीयमानमत्यन्तस्वल्पावस्थं दुःखस्य उत तदतिरिक्तं पापमस्ति आहोस्विदेकमेव उभयरूपम् उत स्वतन्त्रमुभयमिति, अपरस्य तु परलोके संशयः, सत्यप्यात्मनि परलोको–भवान्तरलक्षणः किमस्ति नास्ति ? इति, अपरस्य तु निर्वाणे संशयः, निर्वाणं किमस्ति नास्ति ? इति,' आह–बन्धमोक्षसंशयात् अस्य को विशेष इति, उच्यते, स हि उभयगोचरः, अयं तु केवलविषय एव, तथा किं संसाराभावमात्र एव असौ मोक्षः ? उत अन्यथा ? इत्यादि, इति गाथार्थः ॥ ५९६ ॥ साम्प्रतं गणधरपरिवारमानप्रदर्शनाय आह—

पंचण्हं पंचसया अद्धट्ठसया य होंति दोण्ह गणा। दोण्हं तु जुयलयाणं तिसओ तिसओ भवे गच्छो ॥५९७॥

व्याख्या—पञ्चानामाद्यानां गणधराणां पञ्च शतानि प्रत्येकं प्रत्येकं परिवार इति, तथा अर्द्ध चतुर्थस्य येषु तानि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

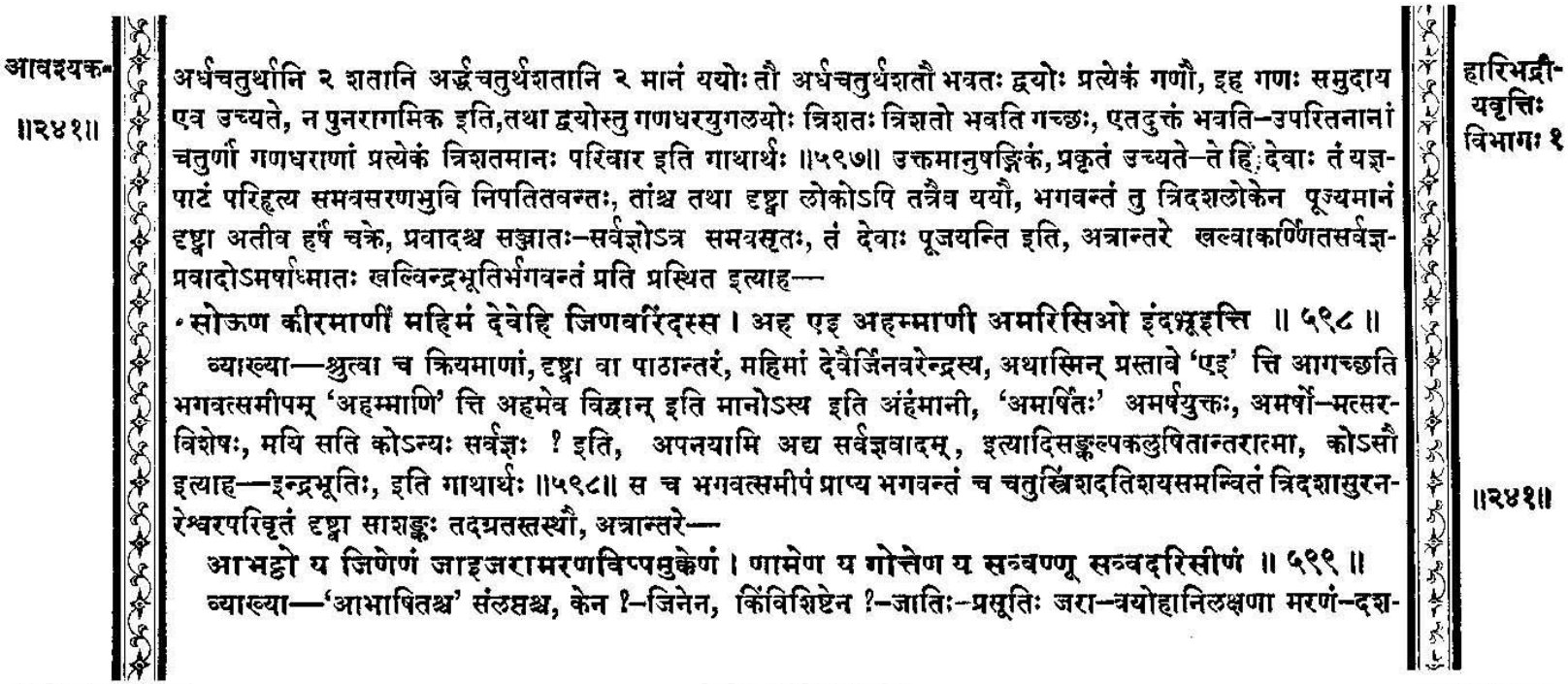

आवश्यक- ॥२४१॥

अर्धचतुर्थानि २ शतानि अर्द्धचतुर्थशतानि २ मानं ययोः तौ अर्धचतुर्थशतौ भवतः द्वयोः प्रत्येकं गणौ, इह गणः समुदाय एव उच्यते, न पुनरागमिक इति,तथा द्वयोस्तु गणधरयुगलयोः त्रिंशतः त्रिंशतो भवति गच्छः, एतदुक्तं भवति–उपरितनानां चतुर्णां गणधराणां प्रत्येकं त्रिंशतमानः परिवार इति गाथार्थः ॥५९७॥ उक्तमानुषङ्गिकं, प्रकृतं उच्यते–ते हिं देवाः तं यज्ञपाटं परिहृत्य समवसरणभुवि निपतितवन्तः, तांश्च तथा दृष्ट्वा लोकोऽपि तत्रैव ययौ, भगवन्तं तु त्रिदशलोकेन पूज्यमानं दृष्ट्वा अतीव हर्षं चक्रे, प्रवादश्च सञ्जातः–सर्वज्ञोऽत्र समवसृतः, तं देवाः पूजयन्ति इति, अत्रान्तरे खल्वाकर्णितसर्वज्ञप्रवादोऽमर्षाध्मातः खल्विन्द्रभूतिर्भगवन्तं प्रति प्रस्थित इत्याह—

सोऊण कीरमाणीं महिमं देवेहि जिणवरिंदस्स । अह एइ अहम्माणी अमरिसिओ इंदभूइत्ति ॥ ५९८ ॥

व्याख्या—श्रुत्वा च क्रियमाणां, दृष्ट्वा वा पाठान्तरं, महिमां देवैर्जिनवरेन्द्रस्य, अथास्मिन् प्रस्तावे 'एइ' त्ति आगच्छति भगवत्समीपम् 'अहम्माणि' त्ति अहमेव विद्वान् इति मानोऽस्य इति अहंमानी, 'अमर्षितः' अमर्षयुक्तः, अमर्षो–मत्सरविशेषः, मयि सति कोऽन्यः सर्वज्ञः ? इति, अपनयामि अद्य सर्वज्ञवादम्, इत्यादिसङ्कल्पकलुषितान्तरात्मा, कोऽसौ इत्याह—इन्द्रभूतिः, इति गाथार्थः ॥५९८॥ स च भगवत्समीपं प्राप्य भगवन्तं च चतुस्त्रिंशदतिशयसमन्वितं त्रिदशासुरनरेश्वरपरिवृतं दृष्ट्वा साशङ्कः तदग्रतस्तस्थौ, अत्रान्तरे—

आभट्ठो य जिणेणं जाइजरामरणविप्पमुक्केणं । णामेण य गोत्तेण य सव्वण्णू सव्वदरिसीणं ॥ ५९९ ॥

व्याख्या—'आभाषितश्च' संलपितश्च, केन ?–जिनेन, किंविशिष्टेन ?–जातिः–प्रसूतिः जरा–वयोहानिलक्षणा मरणं–दश-

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

॥२४१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

विधप्राणवियोगरूपम् एभिर्विप्रमुक्तस्तेन, कथम् ?–नाम्ना च हे इन्द्रभूते ! गोत्रेण च हे गौतम ! किंविशिष्टेन जिनेन इत्याह–सर्वज्ञेन सर्वदर्शिना । आह–यो जरामरणविप्रमुक्तः स सर्वज्ञ एवेति गतार्थत्वात् विशेषणवैयर्थ्यं, न, नयवादपरिकल्पितजात्यादिविप्रमुक्तमुक्तनिरासार्थत्वात् तस्येति, तथा च कैश्चित् अचेतना मुक्ता गुणवियोगमोक्षवादिभिरिष्यन्त एवेति गाथार्थः ॥५९९॥ इत्थं नामगोत्रसंलग्नस्य तस्य चिन्ताऽभवत्–अहो नामापि मे विजानाति, अथवा प्रसिद्धोऽहं, को मां न वेत्ति?, यदि मे हृद्गतं संशयं ज्ञास्यति अपनेष्यति वा, स्यान्मम विस्मय इति, अत्रान्तरे भगवानाह—

किं मन्नि अत्थि जीवो उआहु नत्थित्ति संसओ तुज्झ। वेयपयाण य अत्थं न याणसी तेसिमो अत्थो॥६००॥

व्याख्या—हे गौतम ! किं मन्यसे–अस्ति जीव उत नास्तीति, ननु अयमनुचितस्ते संशयः, अयं च संशयस्तव विरुद्धवेदपदश्रुतिनिबन्धनः, तेषां वेदपदानां चार्थं न जानासि, यथा न जानासि तथा वक्ष्यामः, तेषामयमर्थो–वक्ष्यमाणलक्षण इति । अन्ये तु–किंशब्दं परिप्रश्नार्थे व्याचक्षते, तच्च न युज्यते,भगवतः सकलसंशयातीतत्वात्, संशयवतश्च तत्प्रयोगदर्शनात्, किमित्थमन्यथेति वा, अथवा किमस्ति जीव उत नास्ति इति मन्यसे,अयं संशयस्तव, शेषं पूर्ववदिति गाथार्थः ॥६००॥ यदुक्तम्—'संशयस्तव विरुद्धवेदपदश्रुतिनिबन्धन' इति, तान्यमूनि वेदपदानि–"विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानु विनश्यति, न प्रेत्य सञ्ज्ञाऽस्ती" त्यादीनि, तथा 'स वै अयमात्मा ज्ञानमय' इत्यादीनि च, एतेषां चायमर्थो भवतः चेतसि विपरिवर्त्तते–विज्ञानमेव चैतन्यं, नीलादिरूपत्वात्, चैतन्यविशिष्टं यन्नीलादि तस्मात्, तेन घनो विज्ञानघनः, स एव 'एतेभ्यः' अध्यक्षतः परिच्छिद्यमानस्वरूपेभ्यः, केभ्यः ?–'भूतेभ्यः' पृथिव्यादिलक्षणेभ्यः,किम् ?–'समुत्थाय' उत्पद्य, पुनस्तानि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

एव 'अनु विनश्यति' अनु–पश्माद्विनश्यति विज्ञानघनः, 'न प्रेत्य संज्ञाऽस्ति' प्रेत्य मृत्वा न पुनर्जन्म न परलोकसञ्ज्ञाऽस्ति इति भावार्थः। ततश्च कुतो जीवः ?, युक्त्युपपन्नश्च अयमर्थः, (इति) ते मतिः–यतः प्रत्यक्षेणासौ न परिगृह्यते, यतः 'सत्संप्रयोगे पुरुषस्य इन्द्रियाणां बुद्धिजन्म तत्प्रत्यक्षं' न चास्य इन्द्रियसम्प्रयोगोऽस्ति, नाप्ययमनुमानगोचरः, यतः–प्रत्यक्षपुरस्सरं पूर्वोपलब्धलिङ्गलिङ्गिसम्बन्धस्मृतिमुखेन तत्प्रवर्त्तते, गृहीताविनाभावस्य धूमादनलज्ञानवत्, न च इह तल्लिङ्गाविनाभावग्रहः, तस्याप्रत्यक्षत्वात्, नापि सामान्यतोदृष्टादनुमानात् सूर्येन्दुगतिपरिच्छेदवत् तदवगमो युज्यते, दृष्टान्तेऽपि तस्याध्यक्षतोऽग्रहणात्, न चागमगम्योऽपि, आगमस्यानुमानादभिन्नत्वात्, तथा च–घटे घटशब्दप्रयोगोपलब्धावुत्तरत्र घटध्वनिश्रवणात् (ग्रन्था० ६०००) अन्वयव्यतिरेकमुखेन घट एवानुमितिरुपजायते, न च इत्थमात्मशब्दः शरीरादन्यत्र प्रयुज्यमानो दृष्टो यमात्मशब्दात् प्रतिपद्येमहि इति, किं च–आगमानामेकज्ञेयेऽपि परस्परविरोधेन प्रवृत्तेरप्रमाणत्वात्, तथा च–'एतावानेव पुरुषो, यावानिन्द्रियगोचरः। भद्रे ! वृकपदं पश्य, यद्वदन्ति बहुश्रुताः ॥ १ ॥' इत्यागमः, तथा 'न रूपं भिक्षवः पुद्गल' इत्याद्यपरः, पुद्गले रूपं निषिध्यते, अमूर्त्त आत्मा इत्यर्थः, तथा 'अकर्त्ता निर्गुणो भोक्ता' इत्यादिश्चान्यः, तथा 'स वै अयमात्मा ज्ञानमय' इत्याद्यपर इति, एते च सर्व एव प्रमाणं न भवन्ति, परस्परविरोधेन एकार्थाभिधायकत्वात्, पाटलिपुत्रस्वरूपाभिधायकपरस्परविरुद्धवाक्यपुरुषव्रातवत्, अतो न विद्मः—किमस्ति नास्ति ?, इत्ययं ते अभिप्रायः, तत्र वेदपदानां चार्थं न जानासि, चशब्दात् युक्तिं हृदयं च, तेषामेकवाक्यतायामयमर्थः–'विज्ञानघन एवे'ति

॥२४२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानदर्शनोपयोगरूपं विज्ञानं ततोऽनन्यत्वात् आत्मा विज्ञानघनः, प्रतिप्रदेशमनन्तविज्ञानपर्यायसङ्घातात्मकत्वाद्वा विज्ञानघनः, एवशब्दोऽवधारणे, विज्ञानघनानन्यत्वात् विज्ञानघन एव, 'एतेभ्यो भूतेभ्यः' क्षित्युदकादिभ्यः 'समुत्थाय' कथञ्चिद्भूत्वा इति हृदयं, यतो न घटाद्यर्थरहितं विज्ञानमुत्पद्यते, न च भूतधर्म एव विज्ञानं, तदभावे मुक्तस्यवस्थायां भावात्, तद्भावेऽपि मृतशरीरादाघभावात्, न च वाच्यं–घटसत्तायामपि नवतानिवृत्तौ शरीरभावेऽपि चैतन्यनिवृत्तेः नवतावद्भूतधर्मता चैतन्यस्य, घटस्य द्रव्यपर्यायोभयरूपत्वे सति सर्वथा नवताऽनिवृत्तेः, न च इत्थं देहाचैतन्यस्यानिवृत्तिः, तथा श्रुतावप्युक्तम्—"अस्तमिते आदित्ये याज्ञवल्क्यः चन्द्रमस्यस्तमिते शान्तेऽग्नौ शान्तायां वाचि किंज्योतिरेवायं पुरुषः, आत्मा ज्योतिः सम्राट् इतिहोवाच," तान्येव हि भूतानि विनाशव्यवधानाभ्यां ज्ञेयभावेन विनश्यन्ति, अनु–पश्चात् विनश्यति अनुविनश्यति, स च विवक्षितविज्ञानाऽऽत्मना उपरमते भाविविज्ञानात्मना उत्पद्यते सामान्यविज्ञानसन्तत्या द्रव्यतया अवतिष्ठत इति, न च पूर्वोत्तरयोरत्यन्तभेदः, सति तस्मिन् एकस्य विज्ञानस्य विज्ञानत्वासत्त्वप्रसङ्गात्, 'न प्रेत्यसञ्ज्ञाऽस्ति' इति न प्राक्तनी घटादिविज्ञानसञ्ज्ञाऽवतिष्ठते, साम्प्रतविज्ञानोपयोगविघ्नितत्वात् इत्ययं वेदपदार्थ इति, तथा सौम्य! प्रत्यक्षतोऽपि आत्मा गम्यत एव, तस्य ज्ञानात् अनन्यत्वात्, तद्धर्मत्वात् चैतन्यस्य, ज्ञानस्य च स्वसंविदितरूपत्वात्, तथा च नीलविज्ञानमेव उत्पन्नमासीत् इतिदर्शनात्, न च अननुभूतेऽर्थे स्मृतिप्रभवो युज्यते, न च भिन्नं ज्ञानमात्मनः, प्रमात्रन्तरवत् विवक्षितप्रमातुः संवेदनानुपपत्तेः, न च स्वात्मनि क्रियाविरोधः, प्रदीपवत् तस्य स्वपरप्रकाशकत्वात्, इत्थं तावत् भवतोऽपि अयमनन्तपर्यायात्मकत्वात् ज्ञानदेशावभासितत्वात्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

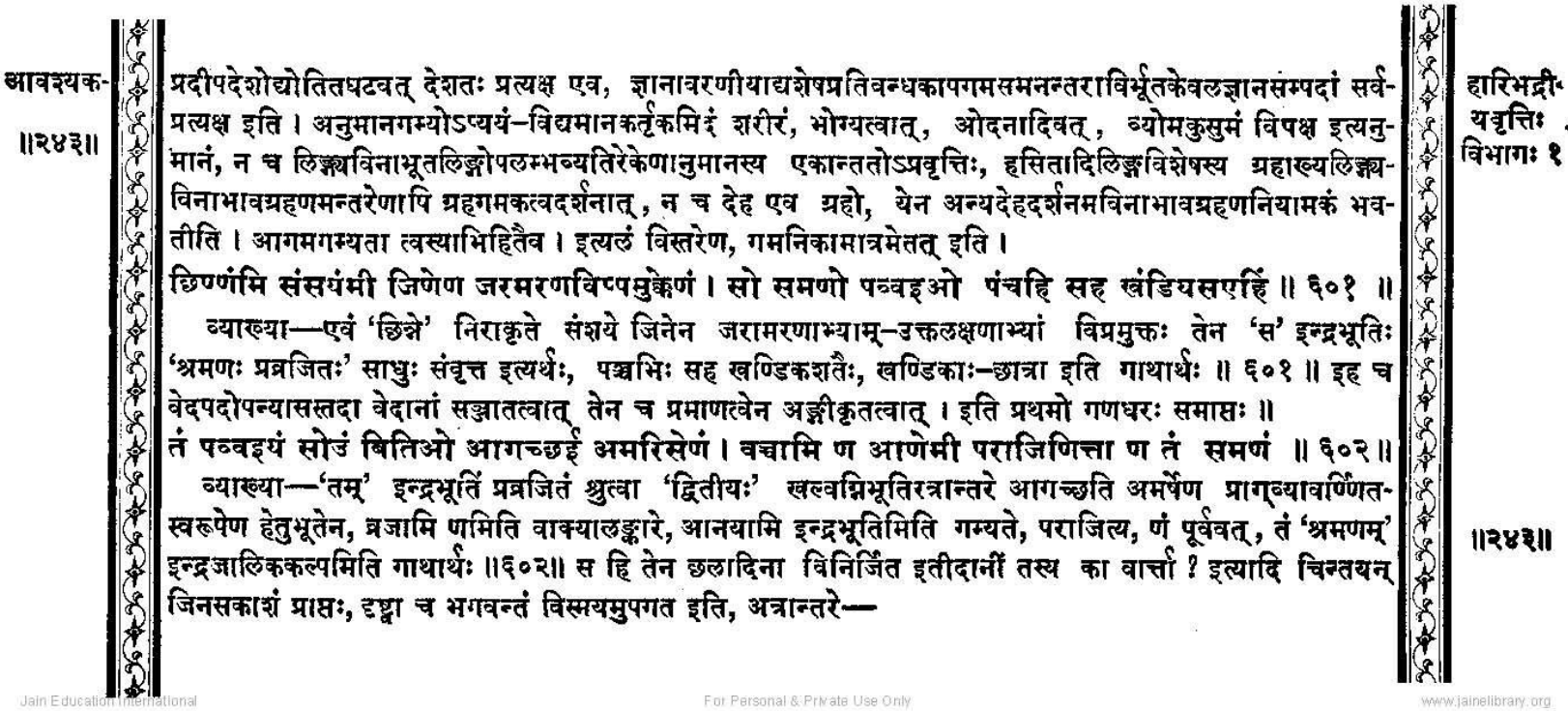

आवश्यक- ॥२४३॥

प्रदीपदेशोद्योतितघटवत् देशतः प्रत्यक्ष एव, ज्ञानावरणीयाद्यशेषप्रतिबन्धकापगमसमनन्तरा विर्भूतकेवलज्ञानसम्पदां सर्व-प्रत्यक्ष इति। अनुमानगम्योऽप्ययं–विद्यमानकर्तृकमिदं शरीरं, भोग्यत्वात्, ओदनादिवत्, व्योमकुसुमं विपक्ष इत्यनु-मानं, न च लिङ्गविनाभूतलिङ्गोपलम्भव्यतिरेकेणानुमानस्य एकान्ततोऽप्रवृत्तिः, हसितादिलिङ्गविशेषस्य ग्रहाख्यलिङ्ग-विनाभावग्रहणमन्तरेणापि ग्रहगमकत्वदर्शनात्, न च देह एव ग्रहो, येन अन्यदेहदर्शनमविनाभावग्रहणनियामकं भव-तीति। आगमगम्यता त्वस्याभिहितैव। इत्यलं विस्तरेण, गमनिकामात्रमेतत् इति।

छिण्णंमि संसयंमी जिणेण जरमरणविप्पमुक्केणं। सो समणो पव्वइओ पंचहि सह खंडियसएहिं ॥ ६०१ ॥

व्याख्या—एवं 'छिन्ने' निराकृते संशये जिनेन जरामरणाभ्याम्–उक्तलक्षणाभ्यां विप्रमुक्तः तेन 'स' इन्द्रभूतिः 'श्रमणः प्रव्रजितः' साधुः संवृत्त इत्यर्थः, पञ्चभिः सह खण्डिकशतैः, खण्डिकाः–छात्रा इति गाथार्थः ॥ ६०१ ॥ इह च वेदपदोपन्यासस्तदा वेदानां सञ्जातत्वात् तेन च प्रमाणत्वेन अङ्गीकृतत्वात्। इति प्रथमो गणधरः समाप्तः ॥

तं पव्वइयं सोउं बितिओ आगच्छई अमरिसेणं। वच्चामि ण आणेमी पराजिणित्ता ण तं समणं ॥ ६०२ ॥

व्याख्या—'तम्' इन्द्रभूतिं प्रव्रजितं श्रुत्वा 'द्वितीयः' खल्वग्निभूतिरत्रान्तरे आगच्छति अमर्षेण प्राग्व्यावर्णित-स्वरूपेण हेतुभूतेन, व्रजामि णमिति वाक्यालङ्कारे, आनयामि इन्द्रभूतिमिति गम्यते, पराजित्य, णं पूर्ववत्, तं 'श्रमणम्' इन्द्रजालिककल्पमिति गाथार्थः ॥६०२॥ स हि तेन छलादिना विनिर्जित इतीदानीं तस्य का वार्त्ता ? इत्यादि चिन्तयन् जिनसकाशं प्राप्तः, दृष्ट्वा च भगवन्तं विस्मयमुपगत इति, अत्रान्तरे—

हारिभद्रीय-वृत्तिः विभागः १

॥२४३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आभट्ठो य जिणेणं जाइजरामरणविप्पमुक्केणं । नामेण य गोत्तेण य सव्वण्णू सव्वदरिसीणं ॥ ६०३ ॥

व्याख्या—पूर्ववत्, नामगोत्राभ्यां संलक्षश्चिन्तयामास–नामापि मे वेत्ति, अथवा प्रसिद्धोऽहं, को मां न वेत्ति ?, यदि मे हृद्गतं संशयं ज्ञास्यति अपनेष्यति वा, तदा सर्वज्ञाशङ्का स्यात् इति ॥ अत्रान्तरे भगवताऽभिहितः—

किं मण्णि अत्थि कम्मं उदाहु णत्थित्ति संसओ तुज्झ । वेयपयाण य अत्थं ण जाणसी तेसिमो अत्थो ॥६०४॥

व्याख्या—किं मन्यसे अस्ति कर्म उत नास्तीति ?, नन्वयमनुचितस्ते संशयः, अयं च संशयस्तव विरुद्धवेदपदनिबन्धनो वर्त्तते, वेदपदानां चार्थं न जानासि, यथा च न जानासि तथा वक्ष्यामः, तेषामयमर्थो–वक्ष्यमाणलक्षण इत्यक्षरार्थः ॥ तानि च अमूनि वेदपदानि–"पुरुष एवेदं ग्निं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यं उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति यदेजति यन्नैजति यद् दूरे यदु अन्तिके यदन्तरस्य सर्वस्य यदु सर्वस्यास्य बाह्यत" इत्यादि, तथा 'पुण्यः पुण्येन' इत्यादि, तेषां चायमर्थः ते मतौ विपरिवर्त्तते–पुरुषः–आत्मा, एवशब्दोऽवधारणे, स च कर्मप्रधानादिव्यवच्छेदार्थः, 'इदं' सर्वं प्रत्यक्षवर्त्तमानं चेतनाचेतनं, ग्निमिति वाक्यालङ्कारे, 'यद् भूतं' यद् अतीतं यच्च 'भाव्यं' भविष्यं, मुक्तिसंसारावपि स एव इत्यर्थः, 'उतामृतत्वस्येशान' इति, उतशब्दोऽप्यर्थे, अपिशब्दश्च समुच्चये, 'अमृतत्वस्य' अमरणभावस्य–मोक्षस्य ईशानः–प्रभुश्चेत्यर्थः 'यत्' इति यच्चेति चशब्दलोपात्, 'अन्नेन' आहारेण 'अतिरोहति' अतिशयेन वृद्धिमुपैति, 'यद् एजति' यत् चलति–पश्वादि, 'यत् न एजति' यन्न चलति–पर्वतादि, 'यद्दूरे' मेर्वादि, 'यद् उ अन्तिके' उशब्दोऽवधारणे, 'अन्तिके' समीपे यत्, तत्पुरुष एव इत्यर्थः, 'यदु अन्तर्' मध्ये 'अस्य' चेतनाचेतनस्य सर्वस्य, यदेव सर्वस्यास्य बाह्यतः, तत्सर्वं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

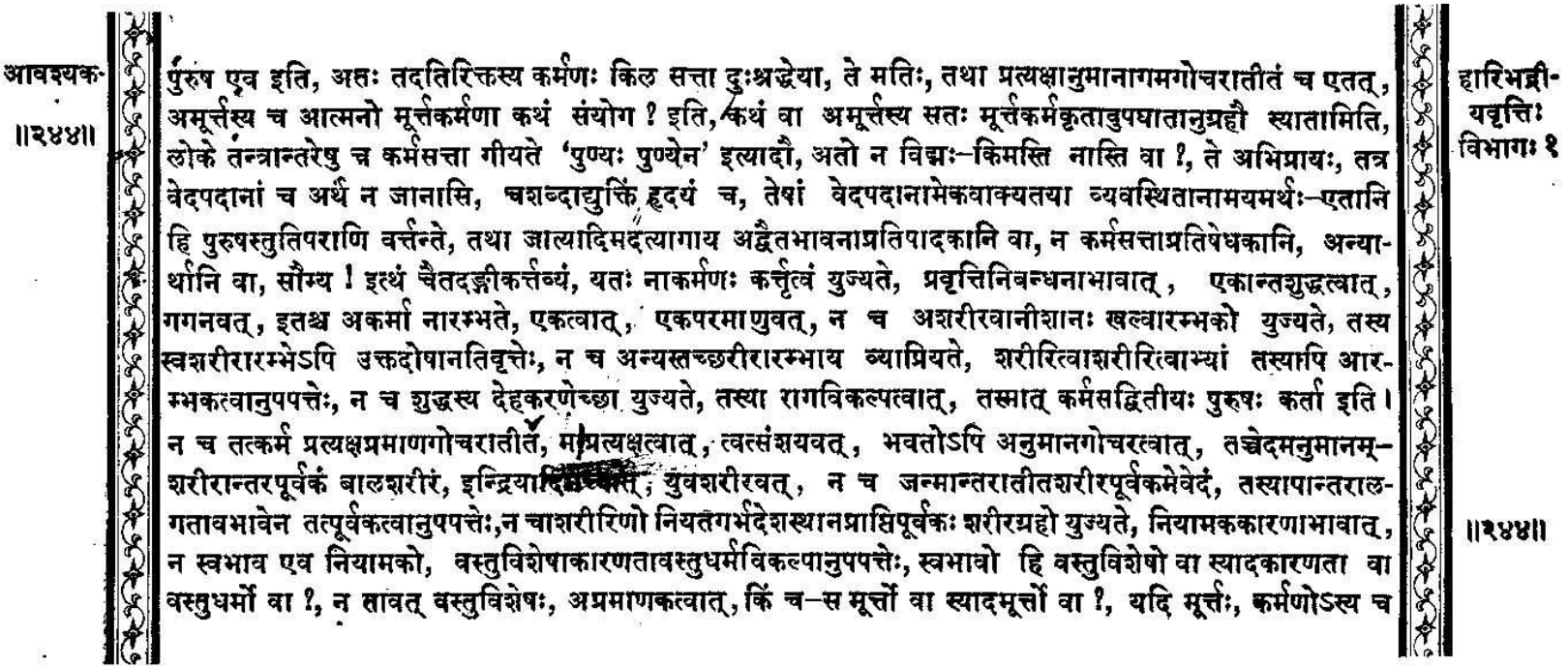

आवश्यक- ॥२४४॥

पुरुष एव इति, अतः तदतिरिक्तस्य कर्मणः किल सत्ता दुःश्रद्धेया, ते मतिः, तथा प्रत्यक्षानुमानागमगोचरातीतं च एतत्, अमूर्त्तस्य च आत्मनो मूर्त्तकर्मणा कथं संयोग ? इति, कथं वा अमूर्त्तस्य सतः मूर्त्तकर्मकृतावुपघातानुग्रहौ स्यातामिति, लोके तंन्त्रान्तरेषु च कर्मसत्ता गीयते 'पुण्यः पुण्येन' इत्यादौ, अतो न विद्मः–किमस्ति नास्ति वा ?, ते अभिप्रायः, तत्र वेदपदानां च अर्थं न जानासि, चशब्दाद्युक्तिं हृदयं च, तेषां वेदपदानामेकवाक्यतया व्यवस्थितानामयमर्थः–एतानि हि पुरुषस्तुतिपराणि वर्त्तन्ते, तथा जात्यादिमदत्यागाय अद्वैतभावनाप्रतिपादकानि वा, न कर्मसत्ताप्रतिषेधकानि, अन्यार्थानि वा, सौम्य ! इत्थं चैतदङ्गीकर्त्तव्यं, यतः नाकर्मणः कर्त्तृत्वं युज्यते, प्रवृत्तिनिबन्धनाभावात्, एकान्तशुद्धत्वात्, गगनवत्, इतश्च अकर्मा नारभते, एकत्वात्, एकपरमाणुवत्, न च अशरीरवानीशानः खल्वारम्भको युज्यते, तस्य स्वशरीरारम्भेऽपि उक्तदोषानतिवृत्तेः, न च अन्यस्तच्छरीरारम्भाय व्याप्रियते, शरीरित्वाशरीरित्वाभ्यां तस्यापि आरम्भकत्वानुपपत्तेः, न च शुद्धस्य देहकरणेच्छा युज्यते, तस्या रागविकल्पत्वात्, तस्मात् कर्मसद्वितीयः पुरुषः कर्ता इति। न च तत्कर्म प्रत्यक्षप्रमाणगोचरातीतं, मत्प्रत्यक्षत्वात्, त्वत्संशयवत्, भवतोऽपि अनुमानगोचरत्वात्, तच्चेदमनुमानम्–शरीरान्तरपूर्वकं बालशरीरं, इन्द्रियादिमत्त्वात्, युवशरीरवत्, न च जन्मान्तरातीतशरीरपूर्वकमेवेदं, तस्यापान्तरालगतावभावेन तत्पूर्वकत्वानुपपत्तेः,न चाशरीरिणो नियतगर्भदेशस्थानप्राप्तिपूर्वकः शरीरग्रहो युज्यते, नियामककारणाभावात्, न स्वभाव एव नियामको, वस्तुविशेषाकारणतावस्तुधर्मविकल्पानुपपत्तेः, स्वभावो हि वस्तुविशेषो वा स्यादकारणता वा वस्तुधर्मो वा ?, न तावत् वस्तुविशेषः, अप्रमाणकत्वात्, किं च–स मूर्त्तो वा स्यादमूर्त्तो वा ?, यदि मूर्त्तः, कर्मणोऽस्य च

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

॥२४४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

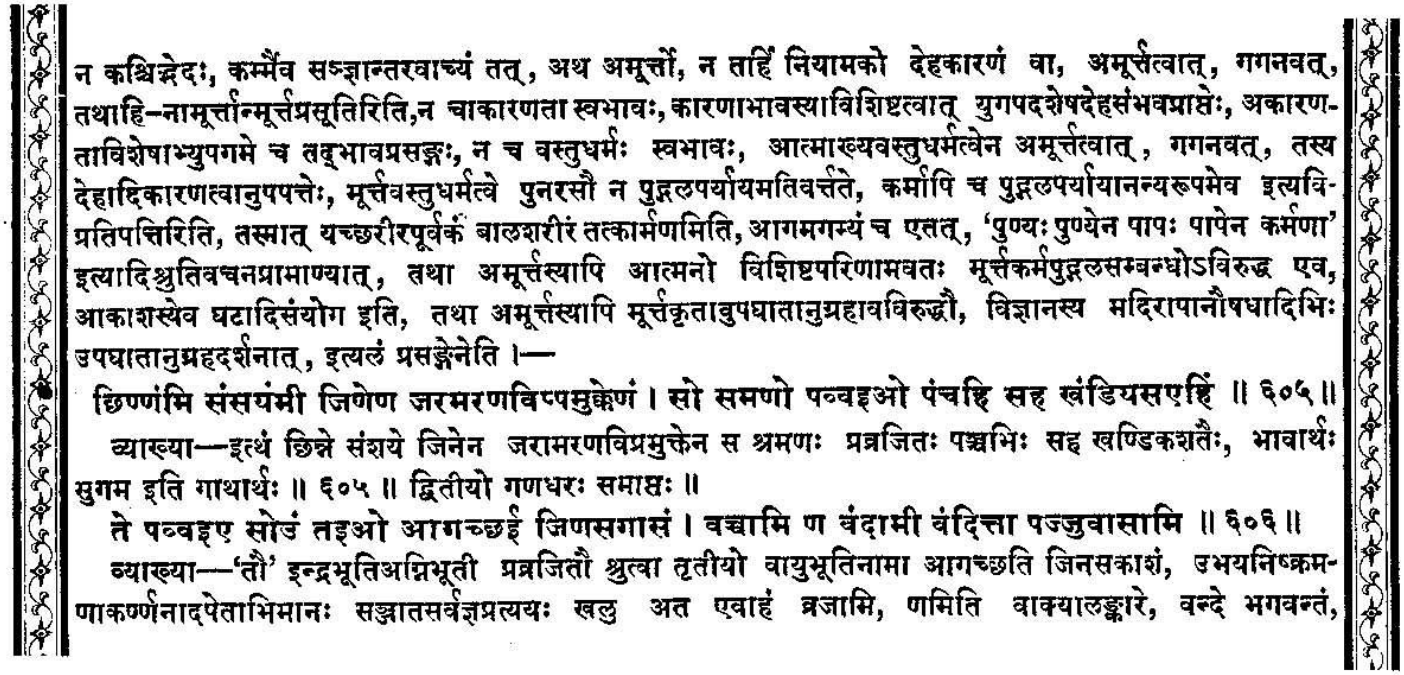

न कश्चिद्भेदः, कर्म्मैव सञ्ज्ञान्तरवाच्यं तत्, अथ अमूर्त्तो, न तर्हि नियामको देहकारणं वा, अमूर्त्तत्वात्, गगनवत्, तथाहि–नामूर्त्तान्मूर्त्तप्रसूतिरिति,न चाकारणता स्वभावः, कारणाभावस्याविशिष्टत्वात् युगपदशेषदेहसंभवप्राप्तेः, अकारणताविशेषाभ्युपगमे च तद्भावप्रसङ्गः, न च वस्तुधर्मः स्वभावः, आत्माख्यवस्तुधर्मत्वेन अमूर्त्तत्वात्, गगनवत्, तस्य देहादिकारणत्वानुपपत्तेः, मूर्त्तवस्तुधर्मत्वे पुनरसौ न पुद्गलपर्यायमतिवर्त्तते, कर्मापि च पुद्गलपर्यायानन्यरूपमेव इत्यविप्रतिपत्तिरिति, तस्मात् यच्छरीरपूर्वकं बालशरीरं तत्कार्मणमिति, आगमगम्यं च एतत्, 'पुण्यः पुण्येन पापः पापेन कर्मणा' इत्यादिश्रुतिवचनप्रामाण्यात्, तथा अमूर्त्तस्यापि आत्मनो विशिष्टपरिणामवतः मूर्त्तकर्मपुद्गलसम्बन्धोऽविरुद्ध एव, आकाशस्येव घटादिसंयोग इति, तथा अमूर्त्तस्यापि मूर्त्तकृतावुपघातानुग्रहावविरुद्धौ, विज्ञानस्य मदिरापानौषधादिभिः उपघातानुग्रहदर्शनात्, इत्यलं प्रसङ्गेनेति ।—

छिण्णंमि संसयंमी जिणेण जरमरणविप्पमुक्केणं । सो समणो पव्वइओ पंचहि सह खंडियसएहिं ॥ ६०५ ॥

व्याख्या—इत्थं छिन्ने संशये जिनेन जरामरणविप्रमुक्तेन स श्रमणः प्रव्रजितः पञ्चभिः सह खण्डिकशतैः, भावार्थः सुगम इति गाथार्थः ॥ ६०५ ॥ द्वितीयो गणधरः समाप्तः ॥

ते पव्वइए सोउं तइओ आगच्छई जिणसगासं । वच्चामि ण वंदामी वंदित्ता पज्जुवासामि ॥ ६०६ ॥

व्याख्या—'तौ' इन्द्रभूतिअग्निभूती प्रव्रजितौ श्रुत्वा तृतीयो वायुभूतिनामा आगच्छति जिनसकाशं, उभयनिष्क्रमणाकर्णनादपेताभिमानः सञ्जातसर्वज्ञप्रत्ययः खलु अत एवाहं व्रजामि, णमिति वाक्यालङ्कारे, वन्दे भगवन्तं,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

तथा वन्दित्वा पर्युपासयामि इति गाथार्थः ॥ ६०६ ॥ इति सञ्जातसङ्कल्पो भगवत्समीपं गत्वा अभिवन्द्य च भगवन्तं तदग्रतस्तस्थौ, अत्रान्तरे—

आभट्ठो य जिणेणं जाइजरामरणविप्पमुक्केणं । णामेण य गोत्तेण य सव्वण्णू सव्वदरिसीणं ॥ ६०७ ॥

व्याख्या—पूर्ववत् ॥ इत्थमपि संलप्तो हृद्गतं संशयं प्रष्टुं क्षोभादसमर्थो भगवताऽभिहितः—

तज्जीवतस्सरीरंति संसओ णवि य पुच्छसे किंचि । वेयपयाण य अत्थं ण जाणसी तेसिमो अत्थो ॥ ६०८ ॥

व्याख्या—स जीवः तदेव शरीरमिति, एवं संशयस्तव, नापि च पृच्छसि किञ्चित् विदिताशेषतत्त्वम्, अयं स संशयस्तव विरुद्धवेदपदश्रुतिनिबन्धनो वर्त्तते, वेदपदानां चार्थं न जानासि, तेषां तव संशयनिबन्धनानामयमर्थो–वक्ष्यमाणलक्षण इति गाथाक्षरार्थः ॥ तानि चामूनि परस्परविरुद्धानि वेदपदानि–'विज्ञानघन एव एतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानु विनश्यति न प्रेत्यसञ्ज्ञाऽस्ति' इत्यादीनि,तथा 'सत्येन लभ्यः तपसा ह्येष ब्रह्मचर्येण नित्यं ज्योतिर्मयो हि शुद्धो, यं पश्यन्ति धीरा यतयः संयतात्मानः' इत्यादीनि चेति, एतेषां चायमर्थः ते बुद्धौ प्रतिभासते–'विज्ञानघने'त्यादीनां पूर्ववत् व्याख्या, नवरं न प्रेत्य सञ्ज्ञा अस्ति–न देहात्मनोः भेदसञ्ज्ञाऽस्ति, भूतसमुदायमात्रधर्मत्वात् चैतन्यस्य, तत-श्चामूनि किल शरीरातिरिक्तात्मोच्छेदपराणि वर्त्तन्ते, 'सत्येन लभ्य' इत्यादीनि तु देहातिरिक्तात्मप्रतिपादकानि इति, अतः संशयः, युक्ता च भूतसमुदायमात्रधर्मता चेतनायाः, ते मतिः, तत्र एवोपलब्धेर्गौरतादिवदिति, तथा प्रत्यक्षादि-

१ बहुलमेतन्निदर्शनमित्युक्तेश्चौरादिकोऽयं ज्ञेयो, यद्वा पर्युपादासेर्वज्यन्तात्कृगो नाम्न इति णिचि रूपमेतत्, पर्युपासे इति क्वचिदस्त्यपि.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

प्रमाणगोचरातिक्रान्तश्च देहातिरिक्त आत्मेति, तत्र वेदपदानां चार्थं न जानासि, चशब्दाद्युक्तिं हृदयं च, तेषामयमर्थः–तत्र 'विज्ञानघने'त्यादीनां प्रथमगणधरवक्तव्यतायां व्याख्यातत्वात् न प्रदर्श्यते, 'सत्येन लभ्य' इत्यादीनां तु सुगमत्वादिति। न च तत्रैव उपलब्ध्या हेतुभूतया चेतनायाः शरीरधर्मताऽनुमातुं युज्यते, तद्धर्मतया तत्रोपलम्भासिद्धेः, न च तस्मिन् सत्येव उपलम्भः तद्धर्मत्वानुमानाय अलं, व्यभिचारदर्शनाद्, यतः स्पर्शे सत्येव रूपादयः उपलभ्यन्ते, न च तद्धर्मता तेषामिति, तस्मात् शरीरातिरिक्तात्माख्यपदार्थधर्मश्चेतना इति, देशप्रत्यक्षश्चायम्, अवग्रहादीनां स्वसंवेद्यत्वात्, भावना प्रथमगणधरवत् अवसेया, अनुमानगम्योऽपि, तच्चेदम्—देहेन्द्रियातिरिक्त आत्मा, तद्विगमेऽपि तदुपलब्धार्थानुस्मरणात्, पञ्चवातायनोपलब्धार्थानुस्मर्तृदेवदत्तवत्, आगमगम्यता तु अस्य प्रसिद्धा एव 'सत्येन लभ्य' इत्यादिवेदपदप्रामाण्याभ्युपगमादिति, अलं विस्तरेण, गमनिकामात्रमेतत्।

छिण्णंमि संसयंमी जिणेण जरमरणविप्पमुक्केणं। सो समणो पव्वइओ पंचहिं सह खंडियसएहिं॥ ६०९॥

व्याख्या—पूर्ववत्॥ तृतीयो गणधरः समाप्त इति। अस्य च प्रथमगणधरादिदं नानात्वं–तस्य जीवसत्तायां संशयः, अस्य तु शरीरातिरिक्ते खल्वात्मनि, न तु तस्य सत्तायामिति॥

ते पव्वइए सोउं वियत्तो आगच्छई जिणसगासं। वच्चामि ण वंदामी वंदित्ता पज्जुवासामि॥ ६१०॥

व्याख्या—तान् प्रव्रजितान् श्रुत्वा इन्द्रभूतिप्रमुखान् व्यक्तो नाम गणधरः आगच्छति जिनसकाशं, किंविशिष्टेनाध्यवसायेन इत्याह—व्रजामि, णमिति वाक्यालङ्कारे, वन्दामि भगवन्तं जिनं, तथा वन्दित्वा पर्युपासयामि इति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

गाथाक्षरार्थः ॥ इत्येवंभूतेन सङ्कल्पेन गत्वा भगवन्तं प्रणम्य सत्पादान्तिके भगवत्सम्पदुपलब्ध्या विस्मयोत्फुल्लनयन-स्तस्थौ, अत्रान्तरे—

आभट्ठो य जिणेणं जाइजरामरणविप्पमुक्केणं । नामेण य गोत्तेण य सव्वण्णू सव्वदरिसीणं ॥ ६११ ॥

व्याख्या—पूर्ववत् ।

किं मण्णि पंच भूया अत्थि नत्थित्ति संसओ तुज्झं । वेयपयाण य अत्थं ण जाणसी तेसिमो अत्थो ॥ ६१२ ॥

व्याख्या—किं 'पञ्च भूतानि' पृथिव्यादीनि सन्ति न सन्तीति वा मन्यसे, व्याख्यान्तरं पूर्ववत् । संशयश्च तवायं विरुद्धवेदपदश्रुतिसमुत्थो वर्त्तते, शेषं पूर्ववत्, तानि चामूनि वेदपदानि वर्त्तन्ते–'स्वप्नोपमं वै सकलमित्येष ब्रह्मविधिरञ्जसा विज्ञेय' इत्यादीनि, तथा 'द्यावा पृथिवी' इत्यादीनि च, तथा 'पृथ्वी देवता आपो देवता' इत्यादीनि च, एतेषां चायमर्थः तव प्रतिभासते–'स्वप्नोपमं' स्वप्नसदृशं, वैनिपातोऽवधारणे 'सकलम्' अशेषं जगत् 'एष ब्रह्मविधिः' एष परमार्थप्रकार इत्यर्थः 'अञ्जसा' प्रगुणेन न्यायेन 'विज्ञेयो' विज्ञातव्यो भाव्य इत्यर्थः, ततश्चामूनि किल भूतनिह्नवपराणि, शेषाणि तु सत्ताप्रतिपादकानीति, अतः संशयः, तथा भूताभाव एव च युक्त्युपपन्नः, ते चित्तविभ्रमः, तेषां प्रमाणतोऽग्रहणात्, तथाहि–चक्षुरादिविज्ञानस्य आलम्बनं परमाणवो वा स्युः परमाणुसमूहो वा ?, न तावदणवो, विज्ञाने अप्रतिभासनात्, नापि तत्समूहो, भ्रान्तत्वात्, द्विचन्द्रवत्, भ्रान्तता चास्य समूहिभ्यस्तत्त्वान्यत्वाभ्यामनिर्वचनीयत्वात् अवस्तुत्वात्, अतः कुतो भूतसत्तेति, तत्र वेदपदानां चार्थं न जानासि, चशब्दाद्युक्तिं हृदयं च 'तेषां' तवसंशयनिबन्धनानां वेदपदा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नामयमर्थः, 'स्वप्नोपमं वै सकल'मित्यादीन्यध्यात्मचिन्तायां मणिकनकाङ्कनादिसंयोगस्यानियतत्वादस्थिरत्वादसारत्वाद्विपाककटुकत्वादास्थानिवृत्तिपराणि वर्त्तन्ते, न तु तदत्यन्ताभावप्रतिपादकानि इति, तथा 'द्यावा पृथिवी'त्यादीनि तु सुगमानि, तथा सौम्य ! न च चक्षुरादिविज्ञाने परमाणवो नावभासन्ते, तेषां तुल्यातुल्यरूपत्वात्, तुल्यरूपस्य च चक्षुरादिविज्ञाने प्रतिभासनात्, न च तुल्यं रूपं नास्त्येव, तदभावे खल्वेकपरमाणुव्यतिरेकेणान्येषामणुत्वाभावप्रसङ्गात्, न च तद् अन्यव्यावृत्तिमात्रं परिकल्पितमेव, स्वरूपाभावेऽन्यव्यावृत्तिमात्रतायां तस्य खपुष्पकल्पत्वप्रसङ्गात्, तथा चाशेषपदार्थव्यावृत्तमपि खपुष्पं स्वरूपाभावान्न सत्तां धारयति, न च तद्रूपमेव सजातीयेतरासाधारणं तदन्यव्यावृत्तिः, तस्य तेभ्यः स्वभावभेदेन व्यावृत्तेः, स्वभावभेदानभ्युपगमे च सजातीयेतरभेदानुपपत्तेः, सजातीयैकान्तव्यावृत्तौ च विजातीयव्यावृत्तावनणुत्ववदणुत्वाभावप्रसङ्गः, भावे च तुल्यरूपसिद्धिरिति, न चेयमनिमित्ता तुल्यबुद्धिः, देशादिनियमेनोत्पत्तेः, न च स्वप्नबुद्ध्या व्यभिचारः, तस्या अप्यनेकविधनिमित्तबलेनैव भावात्, आह च भाष्यकारः—"अणुभूय दिट्ठ चिन्तिय सुय पयइवियार देवयाऽणूया । सुमिणस्स निमित्ताइं पुण्णं पावं च नाभावो ॥ १ ॥" न च भूताभावे स्वप्नास्वप्नगन्धर्वपुरपाटलिपुत्रादिविशेषो युज्यते, न चालयविज्ञानगतशक्तिपरिपाकसमनन्तरोपजातविकल्पविज्ञानसामर्थ्यमस्यास्तुल्यबुद्धेः कारणं, स्वलक्षणादस्वलक्षणानुपपत्तेः, नापि पारम्पर्येण तदुत्पत्तिर्युज्यते, स्वलक्षणसामान्यलक्षणातिरिक्तवस्त्वभावेन पारम्पर्यानुपपत्तेः, बाह्यनीलाद्यभावे च शक्तिविपाकनियमो न युज्यते, नियामकसहकारिकारणाभावात् ।

१ अनुभूतं दृष्टं चिन्तितं श्रुतं प्रकृतिविकारः देवताऽनूपः । स्वप्नस्य निमित्तानि पुण्यं पापं च नाभावः ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

किंच–आलयात्पीतादिसंवेदनजननशक्तयो भिन्ना वा स्युरभिन्ना वा ?, यद्यभिन्नाः सर्वैकत्वप्रसङ्गः, एकालयाभेदान्यथानुपपत्तेः, ततश्च कुतस्तासां पीतादिप्रतिभासहेतुता ?, प्रयोगश्च–नीलविज्ञानहेतुतया परिकल्पिता शक्तिर्न तद्धर्मा, शक्त्यन्तररूपत्वात्, शक्त्यन्तरस्वात्मवत्, अथ भिन्नास्तथाप्यवस्तुसत्यो वा स्युः वस्तुसत्यो वा ?, यद्यवस्तुसत्यः समूहवत्कुतः प्रत्ययत्वम् ?, अथ वस्तुसत्यो बाह्योऽर्थः केन वार्यत इति ?, एवमणूनां तुल्यरूपग्रहणं तदाभासज्ञानोत्पत्तेः, न च विषयबलोपजातसंवेदनाकारस्य विषयाद्भेदाभेदविकल्पद्वारेणानुपपत्तिर्भाव्या, विशिष्टपरिणामोपेतार्थसन्निधावात्मनः कालक्षयोपशमादिसव्यपेक्षस्य नीलादिविज्ञानमुत्पद्यते, तथापरिणामाद्, इत्थं चैतदङ्गीकर्त्तव्यम्, अन्यथा नीलात्संवेदनान्नीलसंवेदनान्तरानुपपत्तिः, प्रागुपन्यस्तविकल्पयुगलकसम्भवादित्येवं परमाणुतुल्यरूपग्रहोऽविरुद्धः, अतुल्यरूपं तु योगिगम्यत्वात् विशिष्टक्षयोपशमाभावात्सर्वथा न परिगृह्यते, न च परमाणूनां बहुत्वेऽपि विशेषाभावाद् घटशरावादिबुद्धेः तुल्यत्वप्रसङ्गो, विशेषाभावस्यासिद्धत्वात्, तथा च परमाणव एव विशिष्टपरिणामवन्तो घट इति, न च परमाणुसमुदायातिरिक्तानि भूतानि इत्यलं प्रसङ्गेन ।

छिण्णंमि संसयंमी जिणेण जरमरणविप्पमुक्केणं । सो समणो पव्वईओ पंचहिँ सह खंडियसएहिँ ॥ ६१३ ॥

व्याख्या—पूर्ववत् । इति चतुर्थो गणधरः समाप्तः ।

ते पव्वइए सोउं सुहमो आगच्छई जिणसगासं । वचामि ण वंदामी वंदित्ता पज्जुवासामी ॥ ६१४ ॥

॥२४७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

व्याख्या—'तान्' इन्द्रभूतिप्रमुखान् प्रव्रजितान् श्रुत्वा सुधर्मः पञ्चमो गणधर आगच्छति जिनसकाशं, किम्भूतेनाध्यवसायेन इत्याह—पश्चार्द्धं पूर्ववत् । स च भगवन्तं दृष्ट्वा अतीव मुमुदे, अत्रान्तरे—

आभट्ठो य जिणेणं जाइजरामरणविप्पमुक्केणं । नामेण य गोत्तेण य सव्वण्णू सव्वदरिसीणं ॥ ६१५ ॥

व्याख्या—पूर्ववत् ।

किं मण्णि जारिसो इह भवंमि सो तारिसो परभवेऽवि?। वेयपयाण य अत्थं ण जाणसी तेसिमो अत्थो ॥६१६॥

व्याख्या—किं मन्यसे ? यो मनुष्यादिर्यादृश इह भवे स तादृशः परभवेऽपि, नन्वयमनुचितस्ते संशयः, व्याख्यान्तरं पूर्ववत्, संशयश्च तवायं विरुद्धवेदपदश्रुतिनिबन्धनो वर्त्तते, तानि चामूनि–"पुरुषो वै पुरुषत्वमश्नुते' पुरुषत्वं प्राप्नोतीत्यर्थः 'पशवः पशुत्वम्' इत्यादीनि, तथा 'शृगालो वै एष जायते यः सपुरीषो दह्यते' इत्यादीनि च, तत्र वेदपदानां चार्थं न जानासि, चः पूर्ववत्, तेषामयमर्थो–वक्ष्यमाणलक्षण इत्यक्षरार्थः । तत्र वेदपदानां त्वमित्थमर्थं मन्यसे–पुरुषो मृतः सन् पुरुषत्वमश्नुते, पुरुषत्वमेव प्राप्नोतीत्यर्थः, तथा पशवो–गवादयः पशुत्वमेवेत्यमूनि भवान्तरसादृश्याभिधायकानि, तथा 'शृगालो वै एष' इत्यादीनि तु भवान्तरे वैसादृश्यख्यापकानीत्यतः संशयः, कारणानुरूपं च कार्यमुत्पद्यते इति तेऽभिप्रायो, यतो न शालिबीजाद्गोधूमाङ्कुरप्रसूतिः इति, तत्र वेदपदानामयमर्थः–पुरुषः खल्विह जन्मनि स्वभावमार्दवार्जवादिगुणयुक्तो मनुष्यनामगोत्रे कर्मणी बद्ध्वा मृतः सन् पुरुषत्वमश्नुते, न तु नियमतः, एवं पशवोऽपि पशुभवे मायादिगुणयुक्ताः पशुनामगोत्रे कर्मणी बद्ध्वा मृताः सन्तः पशुत्वमासादयन्ति, न तु नियोगतः इति, कर्मसापेक्षो जीवानां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

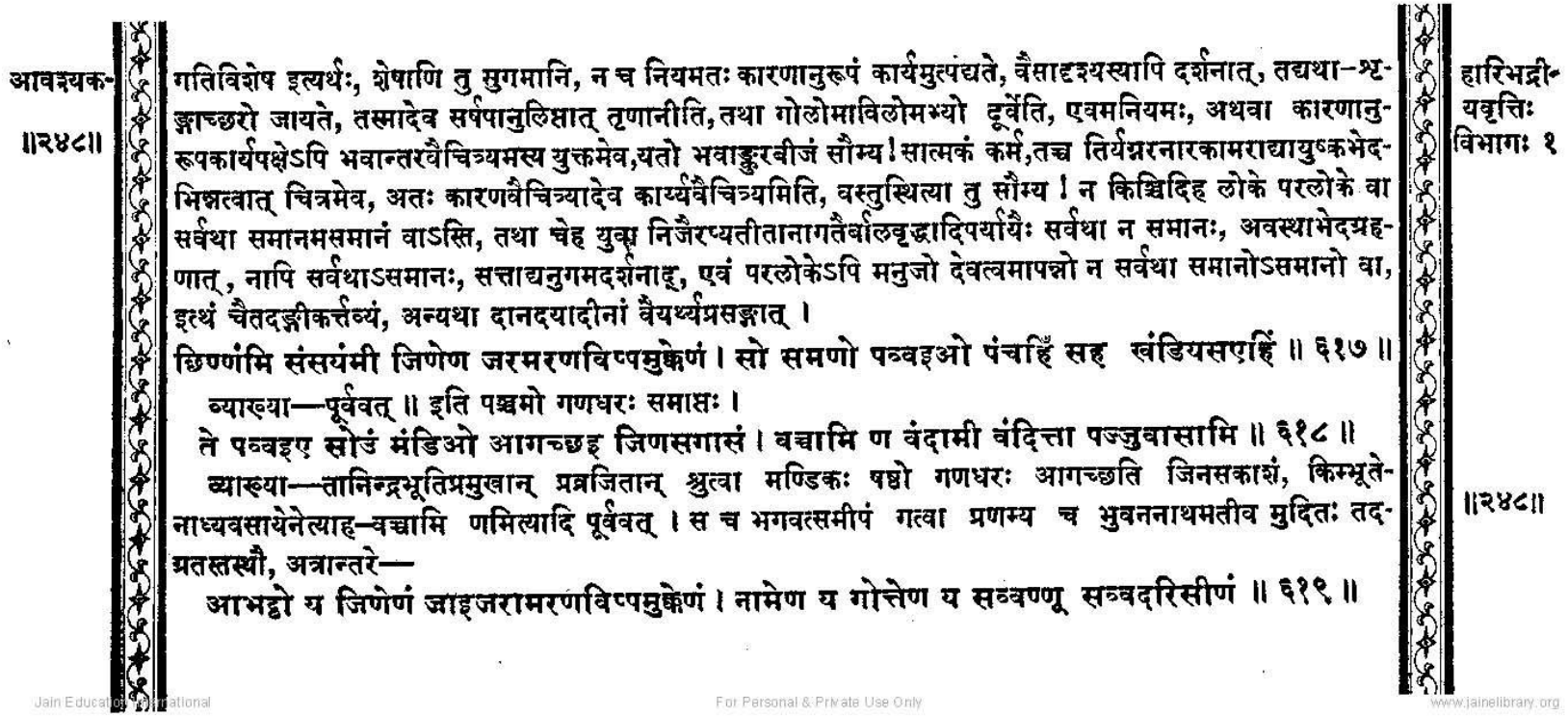

आवश्यक- ॥२४८॥

गतिविशेष इत्यर्थः, शेषाणि तु सुगमानि, न च नियमतः कारणानुरूपं कार्यमुत्पद्यते, वैसादृश्यस्यापि दर्शनात्, तद्यथा–शृङ्गाच्छरो जायते, तस्मादेव सर्षपानुलिप्तात् तृणानीति, तथा गोलोमाविलोमभ्यो दूर्वेति, एवमनियमः, अथवा कारणानुरूपकार्यपक्षेऽपि भवान्तरवैचित्र्यमस्य युक्तमेव, यतो भवाङ्कुरबीजं सौम्य! सात्मकं कर्म, तच्च तिर्यग्नरनारकामराद्यायुष्कभेदभिन्नत्वात् चित्रमेव, अतः कारणवैचित्र्यादेव कार्य्यवैचित्र्यमिति, वस्तुस्थित्या तु सौम्य! न किञ्चिदिह लोके परलोके वा सर्वथा समानमसमानं वाऽस्ति, तथा चेह युक्त्या निजैरप्यतीतानागतैर्बालवृद्धादिपर्यायैः सर्वथा न समानः, अवस्थाभेदग्रहणात्, नापि सर्वथाऽसमानः, सत्ताद्यनुगमदर्शनाद्, एवं परलोकेऽपि मनुजो देवत्वमापन्नो न सर्वथा समानोऽसमानो वा, इत्थं चैतदङ्गीकर्त्तव्यं, अन्यथा दानदयादीनां वैयर्थ्यप्रसङ्गात् ।

छिण्णंमि संसयंमी जिणेण जरमरणविप्पमुक्केणं । सो समणो पव्वइओ पंचहिं सह खंडियसएहिं ॥ ६१७ ॥

व्याख्या—पूर्ववत् ॥ इति पञ्चमो गणधरः समाप्तः ।

ते पव्वइए सोउं मंडिओ आगच्छइ जिणसगासं । वच्चामि ण वंदामी वंदित्ता पज्जुवासामि ॥ ६१८ ॥

व्याख्या—तानिन्द्रभूतिप्रमुखान् प्रव्रजितान् श्रुत्वा मण्डिकः षष्ठो गणधरः आगच्छति जिनसकाशं, किम्भूतेनाध्यवसायेनेत्याह–वच्चामि णमित्यादि पूर्ववत् । स च भगवत्समीपं गत्वा प्रणम्य च भुवननाथमतीव मुदितः तदग्रतस्तस्थौ, अत्रान्तरे—

आभट्ठो य जिणेणं जाइजरामरणविप्पमुक्केणं । नामेण य गोत्तेण य सव्वण्णू सव्वदरिसीणं ॥ ६१९ ॥

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

॥२४८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

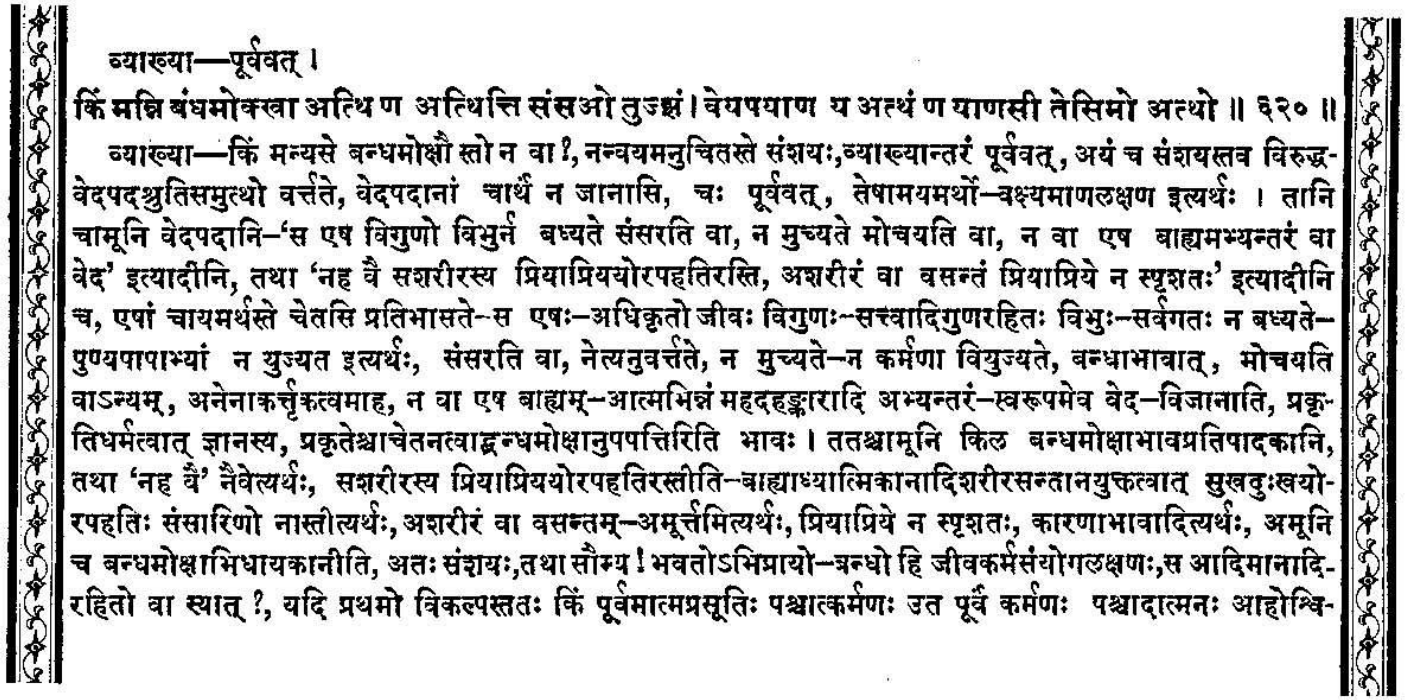

व्याख्या—पूर्ववत् ।

किं मन्ने बंधमोक्खा अत्थि ण अत्थित्ति संसओ तुज्झं । वेयपयाण य अत्थं ण याणसी तेसिमो अत्थो ॥ ६२० ॥

व्याख्या—किं मन्यसे बन्धमोक्षौ स्तो न वा ?, नन्वयमनुचितस्ते संशयः,व्याख्यान्तरं पूर्ववत्, अयं च संशयस्तव विरुद्धवेदपदश्रुतिसमुत्थो वर्त्तते, वेदपदानां चार्थं न जानासि, चः पूर्ववत्, तेषामयमर्थो–वक्ष्यमाणलक्षण इत्यर्थः । तानि चामूनि वेदपदानि–'स एष विगुणो विभुर्न बध्यते संसरति वा, न मुच्यते मोचयति वा, न वा एष बाह्यमभ्यन्तरं वा वेद' इत्यादीनि, तथा 'नह वै सशरीरस्य प्रियाप्रिययोरपहतिरस्ति, अशरीरं वा वसन्तं प्रियाप्रिये न स्पृशतः' इत्यादीनि च, एषां चायमर्थस्ते चेतसि प्रतिभासते–स एषः–अधिकृतो जीवः विगुणः–सत्त्वादिगुणरहितः विभुः–सर्वगतः न बध्यते–पुण्यपापाभ्यां न युज्यत इत्यर्थः, संसरति वा, नेत्यनुवर्त्तते, न मुच्यते–न कर्मणा वियुज्यते, बन्धाभावात्, मोचयति वाऽन्यम्, अनेनाकर्तृकत्वमाह, न वा एष बाह्यम्–आत्मभिन्नं महदहङ्कारादि अभ्यन्तरं–स्वरूपमेव वेद–विजानाति, प्रकृतिधर्मत्वात् ज्ञानस्य, प्रकृतेश्चाचेतनत्वाद्बन्धमोक्षानुपपत्तिरिति भावः । ततश्चामूनि किल बन्धमोक्षाभावप्रतिपादकानि, तथा 'नह वै' नैवेत्यर्थः, सशरीरस्य प्रियाप्रिययोरपहतिरस्तीति–बाह्याध्यात्मिकानादिशरीरसन्तानयुक्तत्वात् सुखदुःखयोरपहतिः संसारिणो नास्तीत्यर्थः, अशरीरं वा वसन्तम्–अमूर्त्तमित्यर्थः, प्रियाप्रिये न स्पृशतः, कारणाभावादित्यर्थः, अमूनि च बन्धमोक्षाभिधायकानीति, अतः संशयः,तथा सौम्य ! भवतोऽभिप्रायो–बन्धो हि जीवकर्मसंयोगलक्षणः,स आदिमानादिरहितो वा स्यात् ?, यदि प्रथमो विकल्पस्ततः किं पूर्वमात्मप्रसूतिः पश्चात्कर्मणः उत पूर्वं कर्मणः पश्चादात्मनः आहोस्वि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

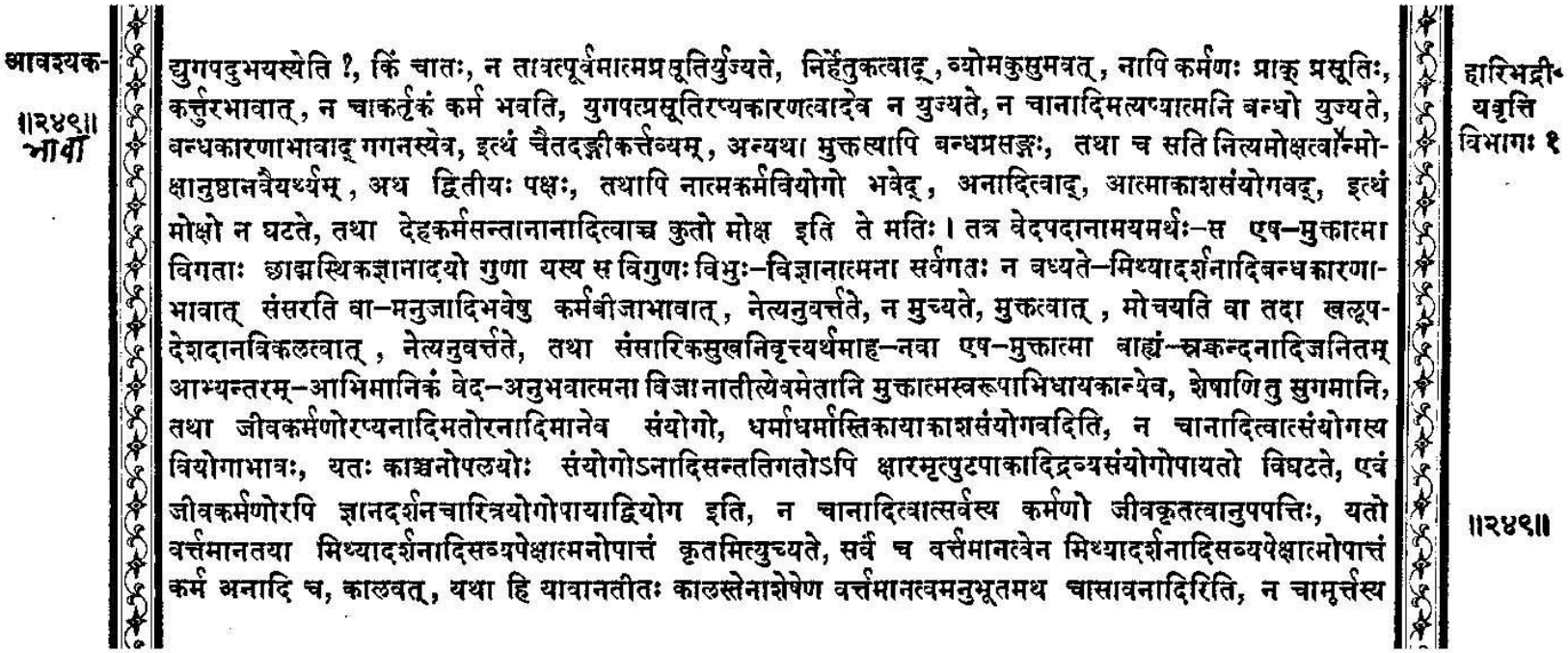

आवश्यक- ॥२४९॥ भाषा

युगपदुभयस्येति ?, किं चातः, न तावत्पूर्वमात्मप्रसूतिर्युज्यते, निर्हेतुकत्वाद्, व्योमकुसुमवत्, नापि कर्मणः प्राक् प्रसूतिः, कर्त्तुरभावात्, न चाकर्तृकं कर्म भवति, युगपत्प्रसूतिरप्यकारणत्वादेव न युज्यते, न चानादिमत्यप्यात्मनि बन्धो युज्यते, बन्धकारणाभावाद् गगनस्येव, इत्थं चैतदङ्गीकर्त्तव्यम्, अन्यथा मुक्तस्यापि बन्धप्रसङ्गः, तथा च सति नित्यमोक्षत्वान्मोक्षानुष्ठानवैयर्थ्यम्, अथ द्वितीयः पक्षः, तथापि नात्मकर्मवियोगो भवेद्, अनादित्वाद्, आत्माकाशसंयोगवद्, इत्थं मोक्षो न घटते, तथा देहकर्मसन्तानानादित्वाच्च कुतो मोक्ष इति ते मतिः। तत्र वेदपदानामयमर्थः–स एष–मुक्तात्मा विगताः छाद्मस्थिकज्ञानादयो गुणा यस्य स विगुणः विभुः–विज्ञानात्मना सर्वगतः न बध्यते–मिथ्यादर्शनादिबन्धकारणाभावात् संसरति वा–मनुजादिभवेषु कर्मबीजाभावात्, नेत्यनुवर्त्तते, न मुच्यते, मुक्तत्वात्, मोचयति वा तदा खलूपदेशदानविकलत्वात्, नेत्यनुवर्त्तते, तथा संसारिकसुखनिवृत्त्यर्थमाह–नवा एष–मुक्तात्मा बाह्यं–स्वक्रन्दनादिजनितम् आभ्यन्तरम्–आभिमानिकं वेद–अनुभवात्मना विजानातीत्येवमेतानि मुक्तात्मस्वरूपाभिधायकान्येव, शेषाणि तु सुगमानि, तथा जीवकर्मणोरप्यनादिमतोरनादिमानेव संयोगो, धर्माधर्मास्तिकायाकाशसंयोगवदिति, न चानादित्वात्संयोगस्य वियोगाभावः, यतः काञ्चनोपलयोः संयोगोऽनादिसन्ततिगतोऽपि क्षारमृत्पुटपाकादिद्रव्यसंयोगोपायतो विघटते, एवं जीवकर्मणोरपि ज्ञानदर्शनचारित्रयोगोपायाद्वियोग इति, न चानादित्वात्सर्वस्य कर्मणो जीवकृतत्वानुपपत्तिः, यतो वर्त्तमानतया मिथ्यादर्शनादिसव्यपेक्षात्मनोपात्तं कृतमित्युच्यते, सर्वं च वर्त्तमानत्वेन मिथ्यादर्शनादिसव्यपेक्षात्मोपात्तं कर्म अनादि च, कालवत्, यथा हि यावानतीतः कालस्तेनाशेषेण वर्त्तमानत्वमनुभूतमथ चासावनादिरिति, न चामूर्त्तस्य

हारिभद्रीयवृत्ति विभागः १

॥२४९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

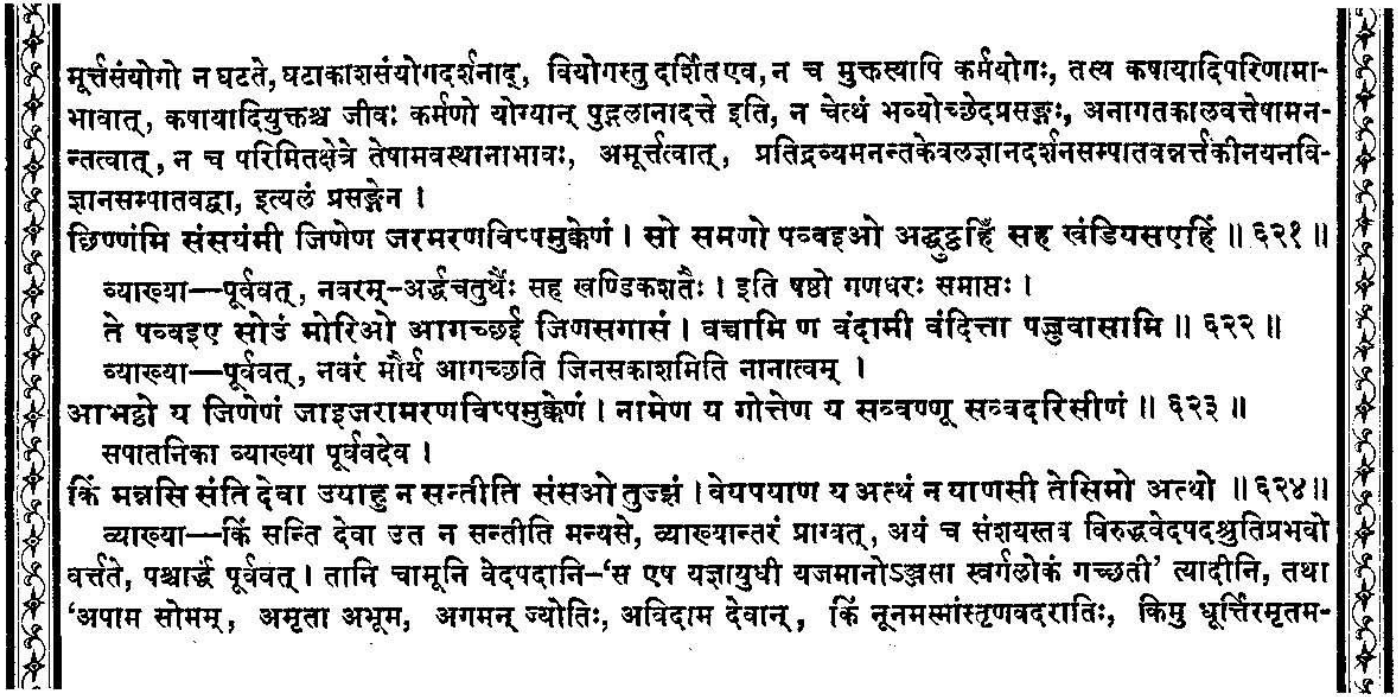

मूर्त्तसंयोगो न घटते, घटाकाशसंयोगदर्शनाद्, वियोगस्तु दर्शित एव, न च मुक्तस्यापि कर्मयोगः, तस्य कषायादिपरिणामाभावात्, कषायादियुक्तश्च जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते इति, न चेत्थं भव्योच्छेदप्रसङ्गः, अनागतकालवर्त्तेषामनन्तत्वात्, न च परिमितक्षेत्रे तेषामवस्थानाभावः, अमूर्त्तत्वात्, प्रतिद्रव्यमनन्तकेवलज्ञानदर्शनसम्पातवन्नर्त्तकीनयनविज्ञानसम्पातवद्वा, इत्यलं प्रसङ्गेन ।

छिण्णंमि संसयंमी जिणेण जरमरणविप्पमुक्केणं । सो समणो पव्वइओ अद्धट्ठहिं सह खंडियसएहिं ॥ ६२१ ॥

व्याख्या—पूर्ववत्, नवरम्–अर्द्धचतुर्थैः सह खण्डिकशतैः । इति षष्ठो गणधरः समाप्तः ।

ते पव्वइए सोउं मोरिओ आगच्छई जिणसगासं । वच्चामि ण वंदामी वंदित्ता पज्जुवासामि ॥ ६२२ ॥

व्याख्या—पूर्ववत्, नवरं मौर्य आगच्छति जिनसकाशमिति नानात्वम् ।

आभट्ठो य जिणेणं जाइजरामरणविप्पमुक्केणं । नामेण य गोत्तेण य सव्वण्णू सव्वदरिसीणं ॥ ६२३ ॥

सपातनिका व्याख्या पूर्ववदेव ।

किं मन्नसि संति देवा उयाहु न सन्तीति संसओ तुज्झं । वेयपयाण य अत्थं न याणसी तेसिमो अत्थो ॥ ६२४ ॥

व्याख्या—किं सन्ति देवा उत न सन्तीति मन्यसे, व्याख्यान्तरं प्राग्वत्, अयं च संशयस्तव विरुद्धवेदपदश्रुतिप्रभवो वर्त्तते, पश्चार्द्धं पूर्ववत् । तानि चामूनि वेदपदानि–'स एष यज्ञायुधी यजमानोऽञ्जसा स्वर्गलोकं गच्छती' त्यादीनि, तथा 'अपाम सोमम्, अमृता अभूम, अगमन् ज्योतिः, अविदाम देवान्, किं नूनमस्मांस्तृणवदरातिः, किमु धूर्त्तिरमृतम-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

र्त्यस्ये' त्यादीनि च, तथा 'को जानाति ? मायोपमान् गीर्वाणानिन्द्रयमवरुणकुबेरादीनि' त्यादि, एतेषां चायमर्थस्ते मतौ प्रतिभासते–यथा अपाम–पीतवन्तः सोमं–लतारसम् अमृता–अमरणधर्माणः अभूम–भूताः स्म, अगमन्–गताः ज्योतिः–स्वर्गम्, अविदाम देवान्–देवत्वं प्राप्ताः स्मः, किं नूनमस्मांस्तृणवत्करिष्यतीति, अयमर्थः–अरातिर्व्याधिः किमु–प्रश्ने धूर्त्तिः–जरा अमृतमर्त्यस्य–अमृतत्वं प्राप्तस्य पुरुषस्येत्येवं द्रष्टव्यम्, अमरणधर्मिणो मनुष्यस्य किं करिष्यन्ति व्याधयः ?। तथा सौम्य ! त्वमित्थं मन्यसे–नारकाः सङ्क्लिष्टासुरपरमाधार्मिकायत्ततया कर्मवशतया च परतन्त्रत्वात् स्वयं च दुःख-सम्प्रतप्तत्वादिहागन्तुमशक्ता एव, अस्माकमप्यनेन शरीरेण तत्र कर्मवशतया एव गन्तुमशक्यत्वात् प्रत्यक्षीकरणोपाया-सम्भवाद् आगमगम्या एव, श्रुतिस्मृतिग्रन्थेषु श्रूयमाणाः श्रद्धेया भवन्तु, ये पुनर्देवाः स्वच्छन्दचारिणः कामरूपाः प्रकृ-ष्टदिव्यप्रभावात् इहागमनसामर्थ्यवन्तस्ते किमितीह नागच्छन्ति ? यतो न दृश्यन्त इति, अतो न सन्ति ते, अस्मदाद्य-प्रत्यक्षत्वात्, खरविषाणवत्, तत्र वेदपदानां चेत्यादि पूर्ववत्, तत्र वेदपदानामयमर्थः–'को जानाति ? मायोपमान् गीर्वा-णानिन्द्रयमवरुणकुबेरादीनि'त्यादि, तत्र परमार्थचिन्तायां सन्ति देवाः, मत्प्रत्यक्षत्वात्, मनुष्यवत्, भवतोऽपि, आगमाच्च सर्वथा, सर्वमनित्यं मायोपमं, न तु देवनास्तित्वपराणि वेदवाक्यानीति, तथा स्वच्छन्दचारिणोऽपि चामी यदिह नागच्छन्ति तत्रेदं कारणम्–नागच्छन्तीह सदैव सुरगणाः, सङ्क्रान्तदिव्यप्रेमत्वाद्विषयप्रसक्तत्वात् प्रकृष्टरूपगुणस्त्रीप्रसक्त-विच्छिन्नरम्यदेशान्तरगतमनुष्यवत्,तथाऽसमाप्तकर्त्तव्यत्वाद्,बहुकर्त्तव्यताप्रसाधनप्रयुक्तविनीतपुरुषवत्, तथाऽनधीनमनु-जकार्यत्वात्, नारकवत्, अनभिमतगेहादौ निःसङ्गयतिवद्वेति, तथाऽशुभत्वान्नरभवस्य तद्गन्धासहिष्णुतया नागच्छन्ति,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

मृतकडेवरमिव हंसा इति, जिनजन्ममहिमादिषु पुनर्भक्तिविशेषाद् भवान्तररागतश्च क्वचिदागच्छन्त्येव, तथा चैते साम्प्रतं भवतोऽपि प्रत्यक्षा एव, शेषकालमपि सामान्यतश्चन्द्रसूर्यादिविमानालयप्रत्यक्षत्वात्तद्वासिसिद्धिः, इत्यलं प्रसङ्गेन ।

छिन्नंमि संसयंमी जिणेण जरमरणविप्पमुक्केणं । सो समणो पव्वइओ अद्धट्ठहिं सह खंडियसएहिं ॥ ६२५ ॥

व्याख्या—पूर्ववत् । समाप्तः सप्तमो गणधरः ।

ते पव्वइए सोउं अकंपिओ आगच्छई जिणसगासं । वच्चामि ण वंदामी वंदित्ता पज्जुवासामि ॥ ६२६ ॥

व्याख्या—पूर्ववन्नवरमकम्पिकः आगच्छतीति नानात्वम् ।

आभट्ठो य जिणेणं जाइजरामरणविप्पमुक्केणं । नामेण य गोत्तेण य सव्वण्णू सव्वदरिसीणं ॥ ६२७ ॥

व्याख्या—सपातनिका पूर्ववदेव ।

किं मन्ने नेरइया अत्थि न अत्थित्ति संसओ तुज्झं । वेयपयाण य अत्थं ण याणसी तेसिमो अत्थो ॥६२८॥

व्याख्या—नरान् कायन्तीति नरकास्तेषु भवा नारकाः, किं नारकाः सन्ति न सन्तीति मन्यसे, व्याख्यान्तरं पूर्ववत्, अयं च संशयस्तव विरुद्धवेदपदश्रुतिसमुद्भवो वर्त्तते, शेषं पूर्ववत्, वेदपदानि चामूनि–'नारको वै एष जायते, यः शूद्रान्नमश्नाति' इत्यादि, 'एष' ब्राह्मणो नारको भवति यः शूद्रान्नमत्ति, 'नह वै प्रेत्य नरके नारकाः सन्ती' त्यादि, गतार्थं, युक्तय एवोच्यन्ते–तत्राकम्पिकाभिप्रायमाह—सौम्य ! त्वमित्थं मन्यसे–देवा हि चन्द्रादयस्तावत् प्रत्यक्षा एव, अन्येऽप्युपयाचितादिफलदर्शनानुमानतोऽवगम्यन्ते, नारकास्त्वभिधानव्यतिरिक्तार्थशून्याः कथं गम्यन्त इति ?, प्रयोगश्च–न सन्ति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

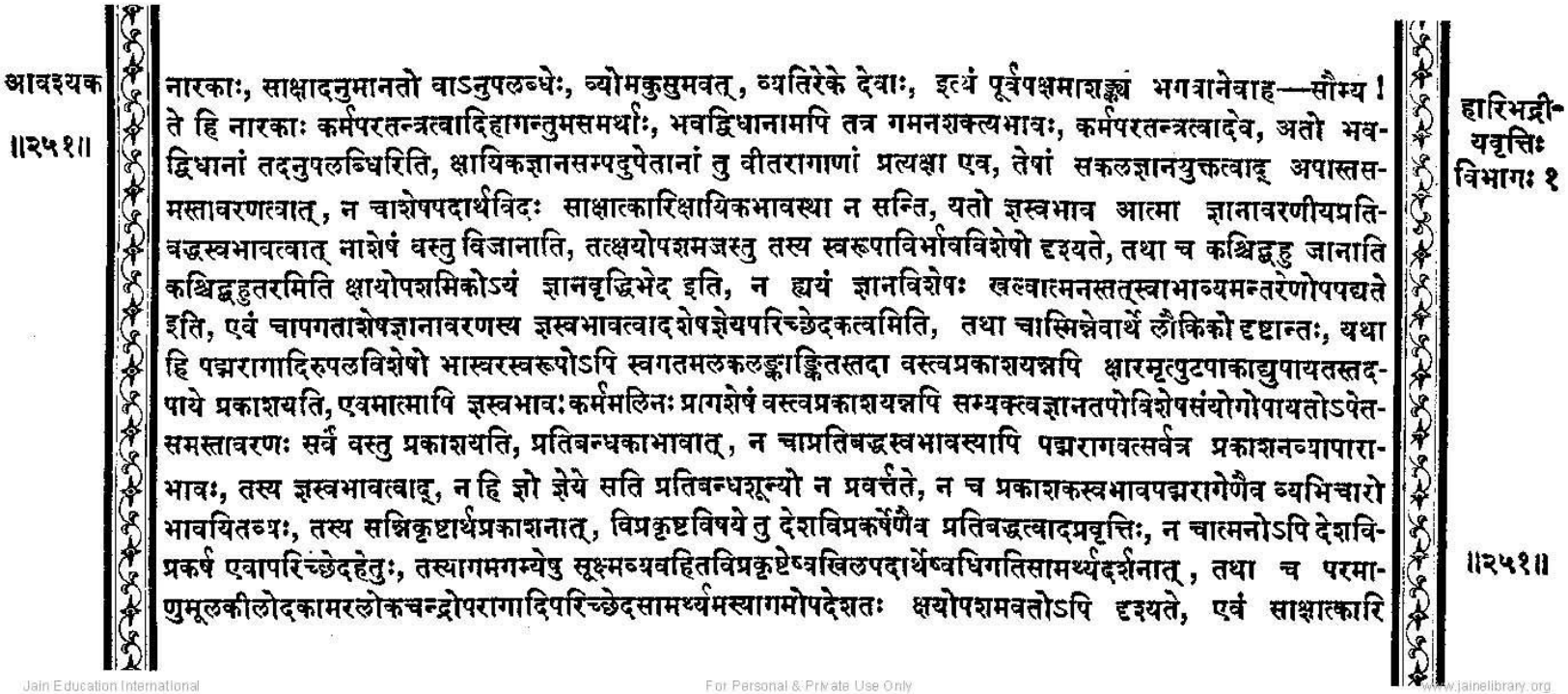

आवश्यक ॥२५१॥

नारकाः, साक्षादनुमानतो वाऽनुपलब्धेः, व्योमकुसुमवत्, व्यतिरेके देवाः, इत्थं पूर्वपक्षमाशङ्क्य भगवानेवाह—सौम्य ! ते हि नारकाः कर्मपरतन्त्रत्वादिहागन्तुमसमर्थाः, भवद्विधानामपि तत्र गमनशक्त्यभावः, कर्मपरतन्त्रत्वादेव, अतो भवद्विधानां तदनुपलब्धिरिति, क्षायिकज्ञानसम्पदुपेतानां तु वीतरागाणां प्रत्यक्षा एव, तेषां सकलज्ञानयुक्तत्वाद् अपास्तसमस्तावरणत्वात्, न चाशेषपदार्थविदः साक्षात्कारिक्षायिकभावस्था न सन्ति, यतो ज्ञस्वभाव आत्मा ज्ञानावरणीयप्रतिबद्धस्वभावत्वात् नाशेषं वस्तु विजानाति, तत्क्षयोपशमजस्तु तस्य स्वरूपाविर्भावविशेषो दृश्यते, तथा च कश्चिद्बहु जानाति कश्चिद्बहुतरमिति क्षायोपशमिकोऽयं ज्ञानवृद्धिभेद इति, न ह्ययं ज्ञानविशेषः खल्वात्मनस्तत्स्वाभाव्यमन्तरेणोपपद्यते इति, एवं चापगताशेषज्ञानावरणस्य ज्ञस्वभावत्वादशेषज्ञेयपरिच्छेदकत्वमिति, तथा चास्मिन्नेवार्थे लौकिको दृष्टान्तः, यथा हि पद्मरागादिरुपलविशेषो भास्वरस्वरूपोऽपि स्वगतमलकलङ्काङ्कितस्तदा वस्त्वप्रकाशयन्नपि क्षारमृत्पुटपाकाद्युपायतस्तदपाये प्रकाशयति, एवमात्मापि ज्ञस्वभावः कर्ममलिनः प्रागशेषं वस्त्वप्रकाशयन्नपि सम्यक्त्वज्ञानतपोविशेषसंयोगोपायतोऽपेतसमस्तावरणः सर्वं वस्तु प्रकाशयति, प्रतिबन्धकाभावात्, न चाप्रतिबद्धस्वभावस्यापि पद्मरागवत्सर्वत्र प्रकाशनव्यापाराभावः, तस्य ज्ञस्वभावत्वाद्, न हि ज्ञो ज्ञेये सति प्रतिबन्धशून्यो न प्रवर्त्तते, न च प्रकाशकस्वभावपद्मरागेणैव व्यभिचारो भावयितव्यः, तस्य सन्निकृष्टार्थप्रकाशनात्, विप्रकृष्टविषये तु देशविप्रकर्षेणैव प्रतिबद्धत्वादप्रवृत्तिः, न चात्मनोऽपि देशविप्रकर्ष एवापरिच्छेदहेतुः, तस्यागमगम्येषु सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टेष्वखिलपदार्थेष्वधिगतिसामर्थ्यदर्शनात्, तथा च परमाणुमूलकीलोदकामरलोकचन्द्रोपरागादिपरिच्छेदसामर्थ्यमस्यागमोपदेशतः क्षयोपशमवतोऽपि दृश्यते, एवं साक्षात्कारि

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

॥२५१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

क्षायिकमपि प्रतिपत्तव्यमिति । एवं क्षायिकज्ञानवतां नारकाः प्रत्यक्षा एव, भवतोऽप्यनुमानगम्याः, तच्चेदम्–विद्यमानभोक्तृकं प्रकृष्टपापफलं, कर्मफलत्वात्, पुण्यफलवत्, न च तिर्यग्नरा एव प्रकृष्टपापफलभुजः, तस्यौदारिकशरीरवता वेदयितुमशक्यत्वात्, अनुत्तरसुरजन्मनिबन्धनप्रकृष्टपुण्यफलवत्, तथाऽऽगमगम्याश्च ते, यत एवमागमः–"सततानुबन्धमुक्तं दुःखं नरकेषु तीव्रपरिणामम् । तिर्यक्ष्णभयक्षुत्तृडादिदुःखं सुखं चाल्पम् ॥ १ ॥ सुखदुःखे मनुजानां मनःशरीराश्रये बहुविकल्पे । सुखमेव तु देवानामल्पं दुःखं तु मनसि भवम् ॥ २ ॥" इत्यादि, एवम्—

छिण्णंमि संसयंमी जिणेण जरमरणविप्पमुक्केणं । सो समणो पव्वइओ तिहि उ सह खंडियसएहिं ॥ ६२९ ॥

व्याख्या—पूर्ववन्नवरं त्रिभिः सह खण्डिकशतैरिति ॥ अष्टमो गणधरः समाप्तः ॥

ते पव्वइए सोउं अयलभाया आगच्छइ जिणसगासं । वच्चामि ण वंदामी वंदित्ता पज्जुवासामि ॥ ६३० ॥

व्याख्या—पूर्ववन्नवरम्–अचलभ्राता आगच्छति जिनसकाशमिति ।

आभट्ठो य जिणेणं जाइजरामरणविप्पमुक्केणं । नामेण य गोत्तेण य सव्वण्णू सव्वदरिसीणं ॥ ६३१ ॥

व्याख्या—सपातनिका पूर्ववत् ।

किं मन्नि पुण्णपावं अत्थि न अत्थित्ति संसओ तुज्झं । वेयपयाण य अत्थं ण याणसी तेसिमो अत्थो ॥ ६३२ ॥

व्याख्या—किं पुण्यपापे स्तः न वा ? मन्यसे, व्याख्यान्तरं पूर्ववत्, अयं च संशयस्तव विरुद्धवेदपदश्रुतिप्रभवो दर्शनान्तरविरुद्धश्रुतिप्रभवश्च, तत्र वेदपदानां चार्थं न जानासि, चशब्दाद्युक्तिं हृदयं च, तेषामयमर्थ इत्यक्षरार्थः । तानि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

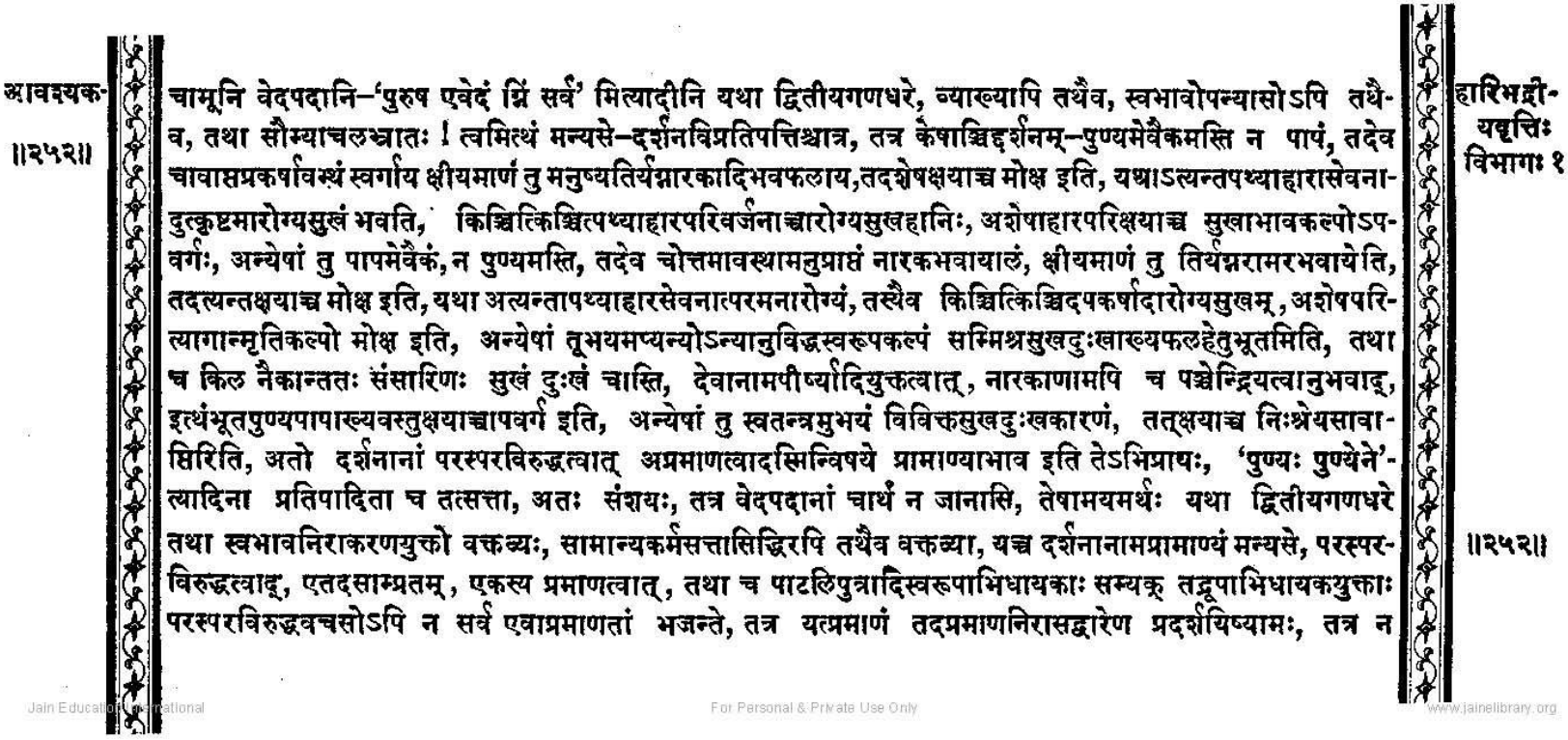

आवश्यक- ॥२५२॥

चामूनि वेदपदानि–'पुरुष एवेदं ग्निं सर्वं' मित्यादीनि यथा द्वितीयगणधरे, व्याख्यापि तथैव, स्वभावोपन्यासोऽपि तथैव, तथा सौम्याचलभ्रातः ! त्वमित्थं मन्यसे–दर्शनविप्रतिपत्तिश्चात्र, तत्र केषाञ्चिद्दर्शनम्–पुण्यमेवैकमस्ति न पापं, तदेव चावाप्तप्रकर्षावस्थं स्वर्गाय क्षीयमाणं तु मनुष्यतिर्यग्नारकादिभवफलाय,तदशेषक्षयाच्च मोक्ष इति, यथाऽत्यन्तपथ्याहारासेवनादुत्कृष्टमारोग्यसुखं भवति, किञ्चित्किञ्चित्पथ्याहारपरिवर्जनाच्चारोग्यसुखहानिः, अशेषाहारपरिक्षयाच्च सुखाभावकल्पोऽपवर्गः, अन्येषां तु पापमेवैकं, न पुण्यमस्ति, तदेव चोत्तमावस्थामनुप्राप्तं नारकभवायालं, क्षीयमाणं तु तिर्यग्नरामरभवायेति, तदत्यन्तक्षयाच्च मोक्ष इति, यथा अत्यन्तापथ्याहारसेवनात्परमनारोग्यं, तस्यैव किञ्चित्किञ्चिदपकर्षादारोग्यसुखम्, अशेषपरित्यागान्मृतिकल्पो मोक्ष इति, अन्येषां तूभयमप्यन्योऽन्यानुविद्धस्वरूपकल्पं सम्मिश्रसुखदुःखाख्यफलहेतुभूतमिति, तथा च किल नैकान्ततः संसारिणः सुखं दुःखं चास्ति, देवानामपीर्ष्यादियुक्तत्वात्, नारकाणामपि च पञ्चेन्द्रियत्वानुभवाद्, इत्थंभूतपुण्यपापाख्यवस्तुक्षयाच्चापवर्ग इति, अन्येषां तु स्वतन्त्रमुभयं विविक्तसुखदुःखकारणं, तत्क्षयाच्च निःश्रेयसावासिरिति, अतो दर्शनानां परस्परविरुद्धत्वात् अप्रमाणत्वादस्मिन्विषये प्रामाण्याभाव इति तेऽभिप्रायः, 'पुण्यः पुण्येने'त्यादिना प्रतिपादिता च तत्सत्ता, अतः संशयः, तत्र वेदपदानां चार्थं न जानासि, तेषामयमर्थः यथा द्वितीयगणधरे तथा स्वभावनिराकरणयुक्तो वक्तव्यः, सामान्यकर्मसत्तासिद्धिरपि तथैव वक्तव्या, यच्च दर्शनानामप्रामाण्यं मन्यसे, परस्परविरुद्धत्वाद्, एतदसाम्प्रतम्, एकस्य प्रमाणत्वात्, तथा च पाटलिपुत्रादिस्वरूपाभिधायकाः सम्यक् तद्रूपाभिधायकयुक्ताः परस्परविरुद्धवचसोऽपि न सर्वे एवाप्रमाणतां भजन्ते, तत्र यत्प्रमाणं तदप्रमाणनिरासद्वारेण प्रदर्शयिष्यामः, तत्र न

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

॥२५२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

तावत्पुण्यमेवापचीयमानं दुःखकारणं, तस्य सुखहेतुत्वेनेष्टत्वात्, स्वल्पस्यापि स्वल्पसुखनिर्वर्त्तकत्वात्, तथा चाणीयसो हेमपिण्डादणुरपि सौवर्ण्ण एव घटो भवति, न मार्त्तिक इति, न च तदभावो दुःखहेतुः, तस्य निरुपाख्यत्वात्, न च सुखाभाव एव स्वसत्ताविकलो दुःखं, तस्यानुभूयमानत्वात्, ततश्च स्वानुरूपकारणपूर्विका दुःखप्रकर्षानुभूतिः, प्रकर्षानुभूतित्वात्, पुण्यप्रकर्षानुभूतिवत्, न च पुण्यलेश एवानुरूपं कारणमस्या इति, एवं दृष्टान्तोऽप्याभासितव्यः, केवलपुण्यवादनिरासः। केवलपापपक्षेऽपि विपरीतमुपपत्तिजालमिदमेव वाच्यं, नापि तत्सर्वथाऽन्योऽन्यानुविद्धस्वरूपं निरंशवस्त्वन्तरमेव, सर्वथा सम्मिश्रसुखदुःखाख्यकार्यप्रसङ्गाद्, असदृशश्च सुखदुःखानुभवो, देवानां सुखाधिक्यदर्शनात्, नारकाणां च दुःखाधिक्यदर्शनात्, न च सर्वथा सम्मिश्रैकरूपस्य हेतोरल्पबहुत्वभेदेऽपि कार्यस्य स्वरूपेण प्रमाणतोऽल्पबहुत्वं विहाय भेदो युज्यते, न हि मेचककारणप्रभवं कार्य्यमन्यतमवर्ण्णोत्कटतां बिभर्त्ति, तस्मात् सुखातिशयस्यान्यन्निमित्तमन्यच्च दुःखातिशयस्येति। न च सर्वथैकस्य सुखातिशयनिबन्धनांशवृद्धिर्दुःखातिशयकारणांशहान्या सुखातिशयप्रभवाय कल्पयितुं न्याय्या, भेदप्रसङ्गात्, तथा च यद्बुद्धावपि यस्य वृद्धिर्न भवति तत्ततो भिन्नं प्रतीतमेव, एवं सर्वथैकरूपता पुण्यपापयोर्न घटते, कर्मसामान्यतया त्वविरुद्धाऽपि, यतः–'सात (सद्वेद्य) सम्यक्त्वहास्यरतिपुरुषवेदशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यमन्यत्पाप (तत्त्वा० अ० ८ सू० २६) मिति, सर्वं चैतत्कर्म, तस्माद्विविक्ते पुण्यपापे स्त इति। संसारिणश्च सत्त्वस्यैतदुभयमप्यस्ति, किञ्चित्कस्यचिदुपशान्तं किञ्चित्क्षयोपशमतामुपगतं किञ्चित्क्षीणं किञ्चिदुदीर्णम्, अत एव च सुखदुःखातिशयवैचित्र्यं जन्तूनामिति।—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

छिण्णंमि संसयंमी जिणेण जरमरणविप्पमुक्केणं । सो समणो पव्वइओ तिहि उ सह खंडियसएहिं ॥ ६३३ ॥
व्याख्या—पूर्ववत् । नवमो गणधरः समाप्तः ॥
ते पव्वइए सोउं मेयज्जो आगच्छई जिणसगासं । वच्चामि ण वंदामी वंदित्ता पज्जुवासामि ॥ ६३४ ॥
व्याख्या—पूर्ववन्नवरं मेतार्यः आगच्छतीति ।
आभट्ठो य जिणेणं जाइजरामरणविप्पमुक्केणं । नामेण य गोत्तेण य सव्वण्णू सव्वदरिसीणं ॥ ६३५ ॥
सपातनिका व्याख्या पूर्ववदेव ।
किं मण्णे परलोगो अत्थि णत्थित्ति संसओ तुज्झं । वेयपयाण य अत्थं ण याणसी तेसिमो अत्थो ॥ ६३६ ॥
व्याख्या—किं परलोको–भवान्तरगतिलक्षणोऽस्ति नास्तीति मन्यसे, व्याख्यान्तरं पूर्ववत्, अयं च संशयस्तव विरुद्धवेदपदश्रुतिनिमित्तो वर्त्तते, शेषं पूर्ववत्, तानि चामूनि वेदपदानि–'विज्ञानघने'त्यादीनि, तथा 'स वै आत्मा ज्ञानमय' इत्यादीनि च पराभिप्रेतार्थयुक्तानि यथा प्रथमगणधर इति, भूतसमुदायधर्मत्वाच्च चैतन्यस्य कुतो भवान्तर-गतिलक्षणपरलोकसम्भव इति ते मतिः, तद्विघाते चैतन्यविनाशादिति, तथा सत्यप्यात्मनि नित्येऽनित्ये वा कुतः पर-लोकः ?, तस्यात्मनोऽप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावत्वात् विभुत्वात् तथा निरन्वयविनश्वरस्वभावेऽप्यात्मनि कारणक्षणस्य सर्वथाऽभावोत्तरकालमिह लोकेऽपि क्षणान्तराप्रभवः कुतः परलोक इत्यभिप्रायः, तत्र वेदपदानां चार्थं न जानासि, तेषाम-यमर्थः–तत्र 'विज्ञानघने'त्यादीनां पूर्ववद्वाच्यं, न च भूतसमुदायधर्मश्चैतन्यं, क्वचित्सन्निकृष्टदेहोपलब्धावपि चैतन्य-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

संशयात्, न च धर्मिग्रहणे धर्माग्रहणं युज्यते, इतश्च देहादन्यच्चैतन्यं, चलनादिचेष्टानिमित्तत्वात्, इह यद्यस्य चलनादिचेष्टानिमित्तं तत्ततो भिन्नं दृष्टं, यथा मारुतः पादपादिति, ततश्च चैतन्यस्याऽऽत्मधर्मत्वात्तस्य चानादिमत्कर्मसन्ततिसमालिङ्गितत्वात् उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तत्वात्कर्मपरिणामापेक्षमनुष्यादिपर्यायनिवृत्त्या देवादिपर्यायान्तरावाप्तिरस्याविरुद्धेति, नित्यानित्यैकान्तपक्षोक्तदोषानुपपत्तिश्चात्रानभ्युपगमात् इति ।

छिण्णंमि संसयंमी जिणेण जरमरणविप्पमुक्केणं । सो समणो पव्वइओ तिहि उ सह खंडियसएहिं ॥ ६३७ ॥

व्याख्या—पूर्ववत् । दशमो गणधरः समाप्तः ॥

ते पव्वइए सोउं पभासो आगच्छई जिणसगासं । वच्चामि ण वंदामी वंदित्ता पज्जुवासामि ॥ ६३८ ॥

व्याख्या—पूर्ववन्नवरं प्रभासः आगच्छतीति ।

आभट्ठो य जिणेणं जाइजरामरणविप्पमुक्केणं । नामेण य गोत्तेण य सव्वण्णू सव्वदरिसीणं ॥ ६३९ ॥

सपातनिका व्याख्या पूर्ववदेव ।

किं मण्णे निव्वाणं अत्थि णत्थित्ति संसओ तुज्झं । वेयपयाण य अत्थं ण याणसि तेसिमो अत्थो ॥ ६४० ॥

व्याख्या—किं निर्वाणमस्ति नास्तीति मन्यसे, व्याख्यान्तरं पूर्ववत्, अयं च संशयस्तव विरुद्धवेदपदश्रुतिसमुत्थो वर्त्तते, शेषं पूर्ववत् । तानि चामूनि वेदपदानि–'जरामर्य्यं वा एतत्सर्वं यदग्निहोत्रं' तथा 'द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये, परमपरं च, तत्र परं सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मे'ति, एतेषां चायमर्थस्तव मतौ प्रतिभासते–अग्निहोत्रक्रिया भूतवधोपकारभूतत्वात्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

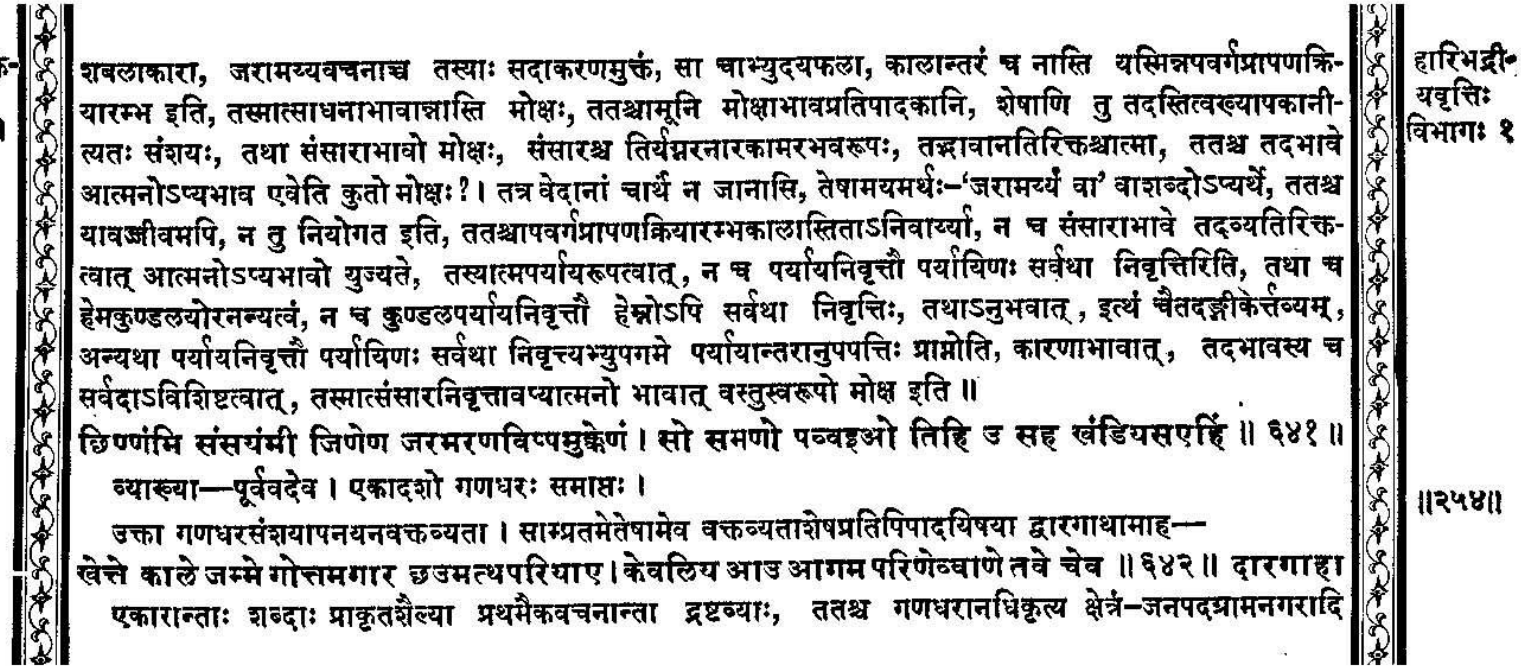

आवश्यक- ॥२५४॥

शबलाकारा, जरामय्यवचनाच्च तस्याः सदाकरणमुक्तं, सा चाभ्युदयफला, कालान्तरं च नास्ति यस्मिन्नपवर्गप्रापणक्रियारम्भ इति, तस्मात्साधनाभावान्नास्ति मोक्षः, ततश्चामूनि मोक्षाभावप्रतिपादकानि, शेषाणि तु तदस्तित्वख्यापकानीत्यतः संशयः, तथा संसाराभावो मोक्षः, संसारश्च तिर्यग्नरनारकामरभवरूपः, तद्भावानतिरिक्तश्चात्मा, ततश्च तदभावे आत्मनोऽप्यभाव एवेति कुतो मोक्षः?। तत्र वेदानां चार्थं न जानासि, तेषामयमर्थः–'जरामर्य्यं वा' वाशब्दोऽप्यर्थे, ततश्च यावज्जीवमपि, न तु नियोगत इति, ततश्चापवर्गप्रापणक्रियारम्भकालास्तिताऽनिवार्य्या, न च संसाराभावे तदव्यतिरिक्तत्वात् आत्मनोऽप्यभावो युज्यते, तस्यात्मपर्यायरूपत्वात्, न च पर्यायनिवृत्तौ पर्यायिणः सर्वथा निवृत्तिरिति, तथा च हेमकुण्डलयोरनन्यत्वं, न च कुण्डलपर्यायनिवृत्तौ हेम्नोऽपि सर्वथा निवृत्तिः, तथाऽनुभवात्, इत्थं चैतदङ्गीकर्त्तव्यम्, अन्यथा पर्यायनिवृत्तौ पर्यायिणः सर्वथा निवृत्त्यभ्युपगमे पर्यायान्तरानुपपत्तिः प्राप्नोति, कारणाभावात्, तदभावस्य च सर्वदाऽविशिष्टत्वात्, तस्मात्संसारनिवृत्तावप्यात्मनो भावात् वस्तुस्वरूपो मोक्ष इति ॥

छिण्णंमि संसयंमी जिणेण जरमरणविप्पमुक्केणं। सो समणो पव्वइओ तिहि उ सह खंडियसएहिं ॥ ६४१ ॥

व्याख्या—पूर्ववदेव। एकादशो गणधरः समाप्तः।

उक्ता गणधरसंशयापनयनवक्तव्यता। साम्प्रतमेतेषामेव वक्तव्यताशेषप्रतिपिपादयिषया द्वारगाथामाह—

खेत्ते काले जम्मे गोत्तमगार छउमत्थपरियाए। केवलिय आउ आगम परिणेव्वाणे तवे चेव ॥ ६४२ ॥ दारगाहा

एकारान्ताः शब्दाः प्राकृतशैल्या प्रथमैकवचनान्ता द्रष्टव्याः, ततश्च गणधरानधिकृत्य क्षेत्रं–जनपदग्रामनगरादि

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

॥२५४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गणधर-विषयक खेत्र, काल आदि वक्तव्यता

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

तद्वक्तव्यं जन्मभूमिः, तथा कालो नक्षत्रचन्द्रयोगोपलक्षितो वाच्यः, जन्म वक्तव्यं, तच्च मातापित्रायत्तमित्यतो मातापितरौ वाच्यौ, गोत्रं यद्यस्य तद्वाच्यम्, 'अगारछउमत्थपरियाए' त्ति पर्यायशब्दः उभयत्राप्यभिसम्बध्यते, अगारपर्यायो–गृहस्थपर्यायो वाच्यः, तथा छद्मस्थपर्यायश्चेति, तथा केवलिपर्यायो वाच्यः, सर्वायुष्कं वाच्यं, तथा आगमो वाच्यः, कः कस्यागम आसीत् ?, परिनिर्वाणं वाच्यं, कस्य भगवति जीवति सति आसीत् कस्य वा मृते इति, तपश्च वक्तव्यं, किं केनापवर्गं गच्छता तप आचरितमिति ?, चशब्दात्संहननादि च वाच्यम्, इति गाथासमुदायार्थः ॥ इदानीमयवयवार्थः प्रतिपाद्यते–तत्र क्षेत्रद्वारावयवार्थाभिधित्सयाऽऽह—

मगहा गोब्बरगामे जाया तिण्णेव गोयमसगोत्ता। कोल्लागसन्निवेसे जाओ विअत्तो सुहम्मो य ॥ ६४३ ॥

व्याख्या—मगधाविषये गोर्बरग्रामे सन्निवेशे जातास्त्रय एवाद्याः 'गोयमे'त्ति एते त्रयोऽपि गौतमसगोत्रा इति, कोल्लागसन्निवेशे जातो व्यक्तः सुधर्मश्चेति गाथार्थः ॥

मोरीयसन्निवेसे दो भायरो मंडिमोरिया जाया। अयलो य कोसलाएँ महिलाए अकंपिओ जाओ ॥ ६४४ ॥

व्याख्या—मौर्यसन्निवेशे द्वौ भ्रातरौ मण्डिकमौर्यौ जातौ, अचलश्च कौशलायां मिथिलायामकम्पिको जात इति गाथार्थः ॥

तुंगीय सन्निवेसे मेयज्जो वच्छभूमिएँ जाओ। भगवंपि य पभासो रायगिहे गणहरो जाओ ॥ ६४५ ॥ दारं ॥

व्याख्या—तुङ्गिकसन्निवेशे मेतार्य्यो वत्सभूमौ जातः, कोशाम्बीविषय इत्यर्थः, भगवानपि च प्रभासो राजगृहे गण-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

धरो जात इति गाथार्थः ॥ कालद्वारावयवार्थः प्रतिपाद्यते–तत्र कालो हि नक्षत्रचन्द्रयोगोपलक्षित इतिकृत्वा यद्यस्य गणभृतो नक्षत्रं तदभिधित्सुराह—

जेट्ठा कित्तिय साई सवणो हत्थुत्तरा महाओ य। रोहिणि उत्तरसाढा मिगसिर तह अस्सिणी पूसो ॥ ६४६ ॥

व्याख्या—ज्येष्ठाः कृत्तिकाः स्वातयः श्रवणः हस्त उत्तरो यासां ताः हस्तोत्तरा–उत्तरफाल्गुन्य इत्यर्थः, मघाश्च रोहिण्यः उत्तराषाढा मृगशिरस्तथा अश्विन्यः पुष्यः, एतानि यथायोगमिन्द्रभूतिप्रमुखानां नक्षत्राणीति गाथार्थः ॥ द्वारम्। जन्मद्वारं प्रतिपाद्यते–मातापित्रायत्तं च जन्मेतिकृत्वा गणभृतां मातापितरावेव प्रतिपादयन्नाह—

वसुभूई धणमित्ते धम्मिल धणदेव मोरिए चेव। देवे वसू य दत्ते बले य पियरो गणहराणं ॥ ६४७ ॥

व्याख्या—वसुभूतिः धनमित्रः धर्मिलः धनदेवः मौर्यश्चैव देवः वसुश्च दत्तः बलश्च पितरो गणधराणां, तत्र त्रयाणामाद्यानामेक एव पिता, शेषाणां तु यथासङ्ख्यं धनमित्रादयोऽवसेया इति गाथार्थः ॥

पुहवी य वारुणी भद्दिला य विजयदेवा तहा जयंती य। णंदा य वरुणदेवा अइभद्दा य मायरो ॥ ६४८ ॥ दारं ॥

व्याख्या—पृथिवी च वारुणी भद्रिला च विजयदेवा तथा जयन्ती च नन्दा च वरुणदेवा अतिभद्रा च मातरः, तत्र पृथिवी त्रयाणामाद्यानां माता, शेषास्तु यथासङ्ख्यमन्येषां, नवरं विजयदेवा मण्डिकमौर्य्ययोः पितृभेदेन द्वयोर्माता, धनदेवे पञ्चत्वमुपगते मौर्य्येण गृहे धृता सैव, अविरोधश्च तस्मिन् देश इति गाथार्थः ॥ गोत्रद्वारप्रतिपादनाय आह—

तिण्णि य गोयमगोत्ता भारद्दा अग्गिवेसवासिट्ठा। कासवगोयमहारिय कोडिण्णदुगं च गोत्ताइं ॥ ६४९ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

व्याख्या—त्रयश्च गौतमगोत्राः इन्द्रभूत्यादयः, भारद्वाजाग्निवैश्यायनवाशिष्टाः यथायोगं व्यक्तसुधर्ममण्डिकाः, काश्यपगौतमहारीतसगोत्राः मौर्याकम्पिकाचलभ्रातर इति, कौण्डिन्यसगोत्रौ द्वौ मेतार्यप्रभासावित्येतानि गणधराणां गोत्राणीति गाथार्थः ॥ द्वारम् ॥ अगारपर्यायद्वारव्याचिख्यासयाऽऽह—

पण्णा छायालीसा बायाला होइ पण्ण पण्णा य । तेवण्ण पंचसट्ठी अडयालीसा य छायाला ॥ ६५० ॥

व्याख्या—पञ्चाशत् षट्चत्वारिंशत् द्विचत्वारिंशत् भवति पञ्चाशत् पञ्चाशच्च त्रिपञ्चाशत् पञ्चषष्टिः अष्टचत्वारिंशत् षट्चत्वारिंशत् इति गाथार्थः ॥

छत्तीसा सोलसगं अगारवासो भवे गणहराणं। छउमत्थयपरियागं अहक्कमं कित्तइस्सामि ॥ ६५१ ॥ दारं ॥

व्याख्या—षट्त्रिंशत् षोडशकम् 'अगारवासो' गृहवासो यथासङ्ख्यम् एतावान् गणधराणाम् इति गाथार्द्धम् । द्वारम् । अनन्तरद्वारावयवार्थप्रतिपिपादयिषयाऽऽह पश्चार्द्ध–छद्मस्थपर्यायं 'यथाक्रमं' यथायोगं कीर्त्तयिष्यामि इति गाथार्थः ॥

तीसा बारस दसगं बारस बायाल चोद्दसदुगं च। णवगं बारस दस अट्ठगं च छउमत्थपरियाओ ॥ ६५२ ॥ दारं ॥

गाथेयं निगदसिद्धा ॥ केवलिपर्यायपरिज्ञानोपायप्रतिपादनायाह—

छउमत्थपरीयागं अगारवासं च वोगसित्ता णं । सव्वाउगस्स सेसं जिणपरियागं वियाणाहि ॥ ६५३ ॥

व्याख्या—छद्मस्थपर्यायम् अगारवासं च व्यवकलय्य सर्वायुष्कस्य शेषं जिनपर्यायं विजानीहीति गाथार्थः ॥ स चायं जिनपर्यायः—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

बारस सोलस अट्ठारसेव अट्ठारसेव अट्ठेव । सोलस सोल तहेकवीस चोद्द सोले य सोलेय ॥ ६५४ ॥ दारं ॥

निगदसिद्धा । सर्वायुष्कप्रतिपादनायाह—

बाणउई चउहत्तरि सत्तरि तत्तो भवे असीई य । एगं च सयं तत्तो तेसीई पंचणउई य ॥ ६५५ ॥

अट्ठत्तरिं च वासा तत्तो बावत्तरिं च वासाइं । बावट्ठी चत्ता खलु सव्वगणहराउयं एयं ॥ ६५६ ॥ दारं ॥

गाथाद्वयं निगदसिद्धमेव ॥ आगमद्वारावयवार्थं प्रतिपादयन्नाह—

सव्वे य माहणा जच्चा, सव्वे अज्झावया विऊ । सव्वे दुवालसंगी य, सव्वे चोद्दसपुव्विणो ॥ ६५७ ॥ दारं ॥

व्याख्या—सर्वे च ब्राह्मणा जात्याः, अशुद्धा न भवन्ति, सर्वेऽध्यापकाः, उपाध्याया इत्यर्थः, 'विद्वांसः' पण्डिताः, अयं गृहस्थागमः, तथा सर्वे द्वादशाङ्गिनः, तत्र स्वल्पेऽपि द्वादशाङ्गाध्ययने द्वादशाङ्गिनोऽभिधीयन्त एव अतः सम्पूर्ण-ज्ञापनार्थमाह—सर्वे चतुर्दशपूर्विण इति गाथार्थः ॥ परिनिर्वाणद्वारमाह—

परिणिव्वुया गणहरा जीवंते णायए णव जणा उ । इंदभूई सुहम्मो य रायगिहे निव्वुए वीरे ॥ ६५८ ॥ दारं ॥

निगदसिद्धा । तपोद्वारप्रतिपादनायाह—

मासं पाओवगया सव्वेऽवि य सव्वलद्धिसंपण्णा । वज्जरिसहसंघयणा समचउरंसा य संठाणा ॥ ६५९ ॥

व्याख्या—'मासं पायोवगय'त्ति सर्व एव गणधराः मासं पादपोपगमनं गताः–प्राप्ताः, द्वारगाथोपन्यस्तचशब्दार्थ-माह–सर्वेऽपि च सर्वलब्धिसम्पन्नाः–आमर्षौषध्याद्यशेषलब्धिसम्पन्ना इत्यर्थः, वज्रऋषभसंहननाः समचतुरस्राश्च संस्थानत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

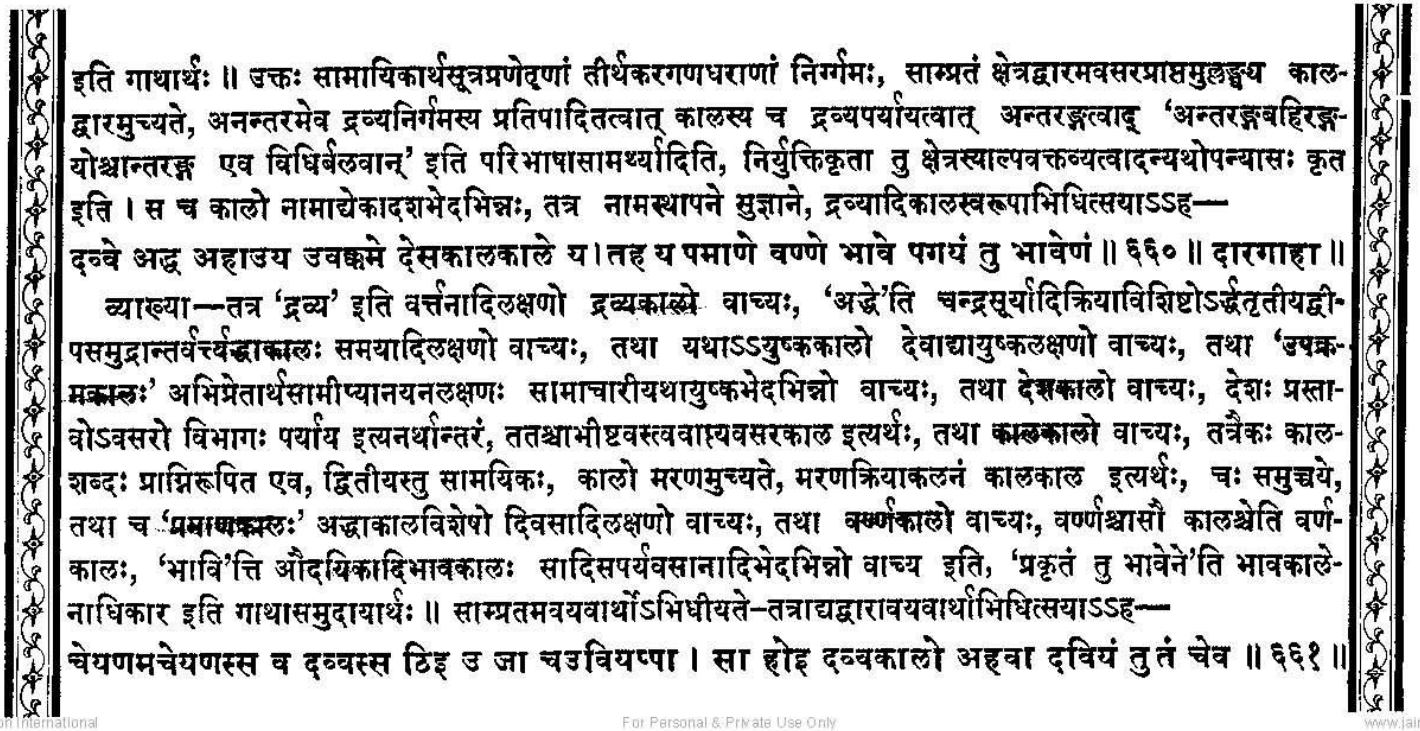

इति गाथार्थः ॥ उक्तः सामायिकार्थसूत्रप्रणेतॄणां तीर्थकरगणधराणां निर्गमः, साम्प्रतं क्षेत्रद्वारमवसरप्राप्तमुल्लङ्घ्य काल-द्वारमुच्यते, अनन्तरमेव द्रव्यनिर्गमस्य प्रतिपादितत्वात् कालस्य च द्रव्यपर्यायत्वात् अन्तरङ्गत्वाद् 'अन्तरङ्गबहिरङ्ग-योश्चान्तरङ्ग एव विधिर्बलवान्' इति परिभाषासामर्थ्यादिति, निर्युक्तिकृता तु क्षेत्रस्याल्पवक्तव्यत्वादन्यथोपन्यासः कृत इति । स च कालो नामाद्येकादशभेदभिन्नः, तत्र नामस्थापने सुज्ञाने, द्रव्यादिकालस्वरूपाभिधित्सयाऽऽह—

दव्वे अद्ध अहाउय उवक्कमे देसकालकाले य। तह य पमाणे वण्णे भावे पगयं तु भावेणं ॥ ६६० ॥ दारगाहा ॥

व्याख्या—तत्र 'द्रव्य' इति वर्त्तनादिलक्षणो द्रव्यकालो वाच्यः, 'अद्धे'ति चन्द्रसूर्यादिक्रियाविशिष्टोऽर्द्धतृतीयद्वी-पसमुद्रान्तर्वर्त्त्यद्धाकालः समयादिलक्षणो वाच्यः, तथा यथाऽऽयुष्ककालो देवाद्यायुष्कलक्षणो वाच्यः, तथा 'उपक्र-मकालः' अभिप्रेतार्थसामीप्यानयनलक्षणः सामाचारीयथायुष्कभेदभिन्नो वाच्यः, तथा देशकालो वाच्यः, देशः प्रस्ता-वोऽवसरो विभागः पर्याय इत्यनर्थान्तरं, ततश्चाभीष्टवस्त्ववाप्त्यवसरकाल इत्यर्थः, तथा कालकालो वाच्यः, तत्रैकः काल-शब्दः प्राग्निरूपित एव, द्वितीयस्तु सामयिकः, कालो मरणमुच्यते, मरणक्रियाकलनं कालकाल इत्यर्थः, चः समुच्चये, तथा च 'प्रमाणकालः' अद्धाकालविशेषो दिवसादिलक्षणो वाच्यः, तथा वर्णकालो वाच्यः, वर्णश्चासौ कालश्चेति वर्ण-कालः, 'भावि'त्ति औदयिकादिभावकालः सादिसपर्यवसानादिभेदभिन्नो वाच्य इति, 'प्रकृतं तु भावेने'ति भावकाले-नाधिकार इति गाथासमुदायार्थः ॥ साम्प्रतमवयवार्थोऽभिधीयते–तत्राद्यद्वारावयवार्थाभिधित्सयाऽऽह—

चेयणमचेयणस्स व दव्वस्स ठिइ उ जा चउवियप्पा। सा होइ दव्वकालो अहवा दवियं तु तं चेव ॥ ६६१ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

काल, तस्य द्रव्य-भाव आदि एकादश-भेदानां स्वरुपम् वर्णयते

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

व्याख्या—चेतनाचेतनस्य देवस्य स्कन्धादेः, बिन्दुरलाक्षणिकः, अथवा चेतनस्याचेतनस्य च द्रव्यस्य स्थानं–स्थितिरेव या सादिसपर्यवसानादिभेदेन 'चतुर्विकल्पा' चतुर्भेदा सा स्थितिर्भवति द्रव्यस्य कालो द्रव्यकालः, तत्पर्यायत्वात्, अथवा 'द्रव्यं तु' तदेव द्रव्यमेव कालो द्रव्यकाल इति गाथार्थः ॥ चेतनाचेतनद्रव्यचतुर्विधस्थितिनिदर्शनायाह—

गइ सिद्धा भवियाया अभविय पोग्गल अणागयद्धा य। तीयद्ध तिन्नि काया जीवाजीवट्ठिई चउहा ॥६६२॥दारं॥

व्याख्या—'गति'त्ति देवादिगतिमधिकृत्य जीवाः सादिसपर्यवसानाः, 'सिद्ध'त्ति सिद्धाः प्रत्येकं सिद्धत्वेन साद्यपर्यवसानाः 'भवियाय'त्ति भव्याश्च भव्यत्वमधिकृत्य केचनानादिसपर्यवसानाः, 'अभविय'त्ति अभव्याः खल्वभव्यतया अनाद्यपर्यवसाना इति जीवस्थितिचतुर्भङ्गिका। 'पोग्गल'त्ति पूरणगलनधर्माणः पुद्गलाः, ते हि पुद्गलत्वेन सादिसपर्यवसानाः, 'अणागयद्ध'त्ति अनागताद्धा–अनागतकालः, स हि वर्त्तमानसमयादिः सादिरनन्तत्वाच्चापर्यवसान इति, 'तीयद्ध'त्ति अतीतकालोऽनन्तत्वादनादिः साम्प्रतसमयपर्यन्तविवक्षायां सपर्यवसान इति, 'तिण्णि काय'त्ति धर्माधर्माकाशास्तिकायाः खल्वनाद्यपर्यवसाना इति, इत्थं जीवाजीवस्थितिश्चतुर्द्धेति गाथार्थः॥ द्वारम्। अद्धाकालद्वारावयवार्थं व्याचिख्यासुराह—

समयावलिय मुहुत्ता दिवसमहोरत्त पक्ख मासा य। संवच्छर युग पलिया सागर ओसप्पि परियट्टा ॥६६३॥दारं

व्याख्या—तत्र परमनिकृष्टः कालः समयोऽभिधीयते, स च प्रवचनप्रतिपादितपट्टशाटिकापाटनदृष्टान्तादवसेयः, आवलिका–असङ्ख्येयसमयसमुदायलक्षणा, द्विघटिको मुहूर्त्तः, दिवसश्चतुष्प्रहरात्मकः, यद्वा आकाशखण्डमादित्येन स्वभाभिर्व्याप्तं तद्दिवसं इत्युच्यते, शेषं निशेति, अहोरात्रमष्टप्रहरात्मकमहर्निशमित्यर्थः, पक्षः–पञ्चदशाहोरात्रात्मकः, मासः–

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कालस्य समय, आवलिका, मुहूर्त आदि भेदा:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

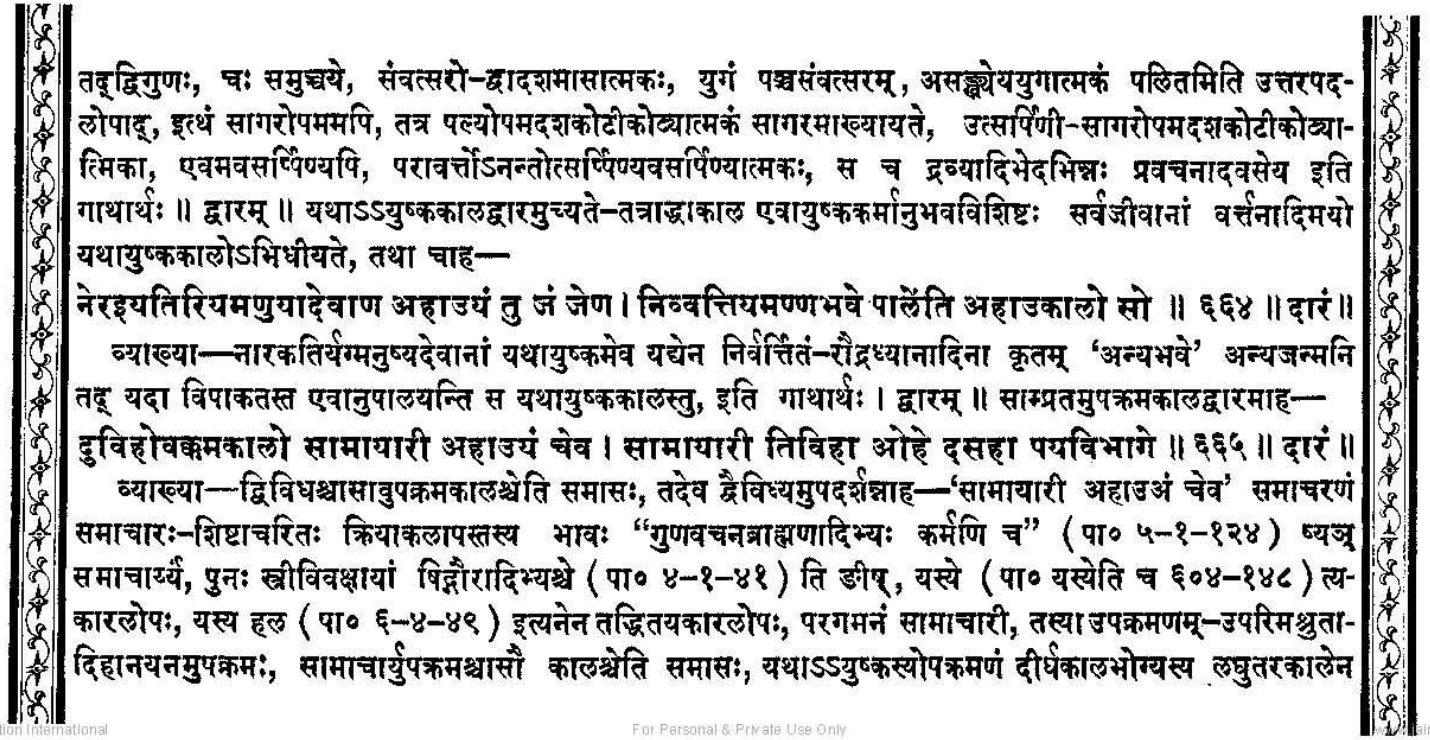

तद्द्विगुणः, चः समुच्चये, संवत्सरो–द्वादशमासात्मकः, युगं पञ्चसंवत्सरम्, असङ्ख्येययुगात्मकं पल्लितमिति उत्तरपद-लोपाद्, इत्थं सागरोपममपि, तत्र पल्योपमदशकोटीकोट्यात्मकं सागरमाख्यायते, उत्सर्पिणी–सागरोपमदशकोटीकोट्या-त्मिका, एवमवसर्पिण्यपि, परावर्त्तोऽनन्तोत्सर्पिण्यवसर्पिण्यात्मकः, स च द्रव्यादिभेदभिन्नः प्रवचनादवसेय इति गाथार्थः ॥ द्वारम् ॥ यथाऽऽयुष्ककालद्वारमुच्यते–तत्राद्धाकाल एवायुष्ककर्मानुभवविशिष्टः सर्वजीवानां वर्त्तनादिमयो यथायुष्ककालोऽभिधीयते, तथा चाह—

नेरइयतिरियमणुयादेवाण अहाउयं तु जं जेण। निव्वत्तियमण्णभवे पालेंति अहाउकालो सो ॥ ६६४ ॥ दारं ॥

व्याख्या—नारकतिर्यग्मनुष्यदेवानां यथायुष्कमेव यद्येन निर्वर्त्तितं–रौद्रध्यानादिना कृतम् 'अन्यभवे' अन्यजन्मनि तद् यदा विपाकतस्त एवानुपालयन्ति स यथायुष्ककालस्तु, इति गाथार्थः । द्वारम् ॥ साम्प्रतमुपक्रमकालद्वारमाह—

दुविहोवक्कमकालो सामायारी अहाउयं चेव। सामायारी तिविहा ओहे दसहा पयविभागे ॥ ६६५ ॥ दारं ॥

व्याख्या—द्विविधश्चासावुपक्रमकालश्चेति समासः, तदेव द्वैविध्यमुपदर्शन्नाह—'सामायारी अहाउअं चेव' समाचरणं समाचारः–शिष्टाचरितः क्रियाकलापस्तस्य भावः "गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च" (पा० ५–१–१२४) ष्यञ् समाचार्य्यं, पुनः स्त्रीविवक्षायां षिद्गौरादिभ्यश्चे (पा० ४–१–४१) ति ङीष्, यस्ये (पा० यस्येति च ६०४–१४८) त्य-कारलोपः, यस्य हल (पा० ६–४–४९) इत्यनेन तद्धितयकारलोपः, परगमनं सामाचारी, तस्या उपक्रमणम्–उपरिमश्रुता-दिहानयनमुपक्रमः, सामाचार्युपक्रमश्चासौ कालश्चेति समासः, यथाऽऽयुष्कस्योपक्रमणं दीर्घकालभोग्यस्य लघुतरकालेन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

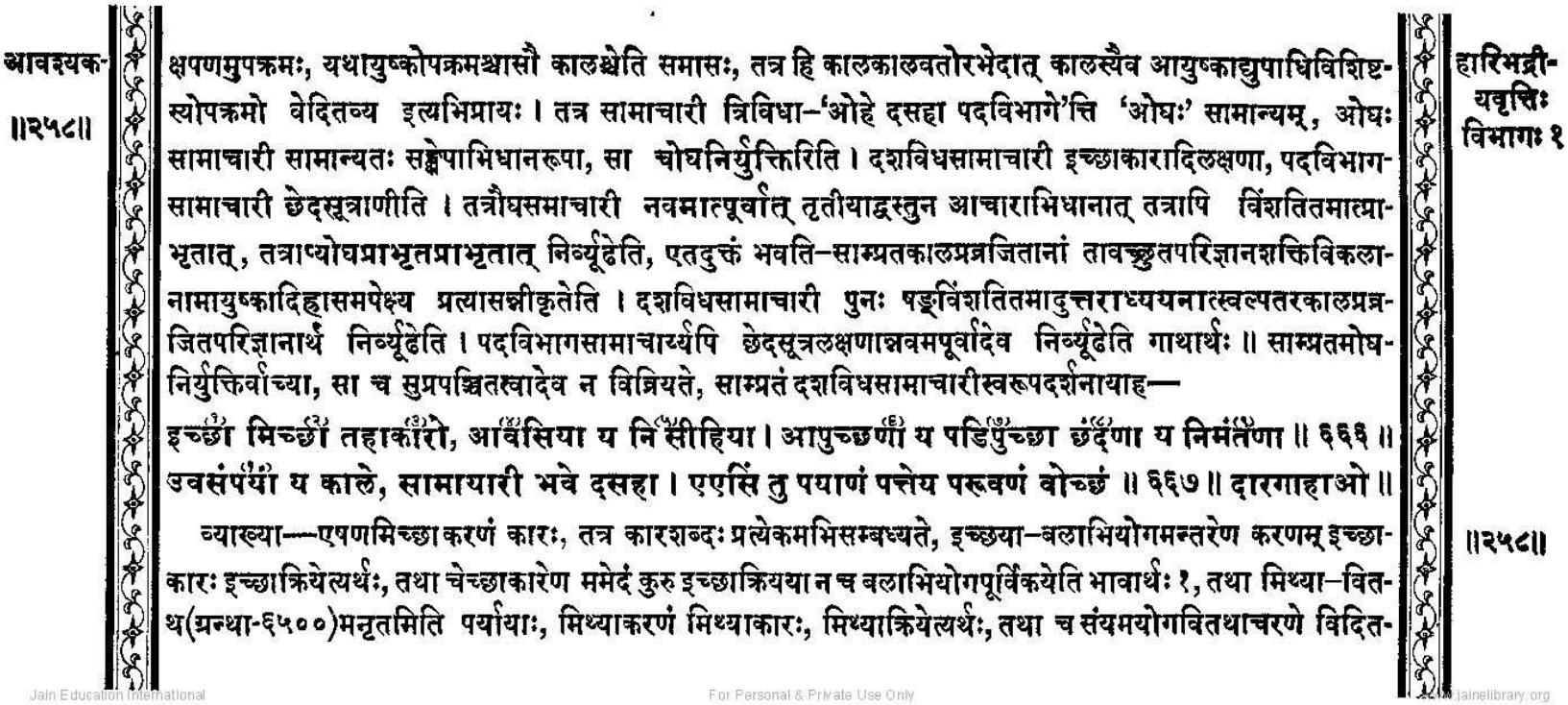

आवश्यक- ॥२५८॥

क्षपणमुपक्रमः, यथायुष्कोपक्रमश्चासौ कालश्चेति समासः, तत्र हि कालकालवतोरभेदात् कालस्यैव आयुष्काद्युपाधिविशिष्ट-स्योपक्रमो वेदितव्य इत्यभिप्रायः। तत्र सामाचारी त्रिविधा–'ओहे दसहा पदविभागे'त्ति 'ओघः' सामान्यम्, ओघः सामाचारी सामान्यतः सङ्क्षेपाभिधानरूपा, सा चोघनिर्युक्तिरिति। दशविधसामाचारी इच्छाकारादिलक्षणा, पदविभाग-सामाचारी छेदसूत्राणीति। तत्रौघसमाचारी नवमात्पूर्वात् तृतीयाद्वस्तुन आचाराभिधानात् तत्रापि विंशतितमात्प्रा-भृतात्, तत्राप्योघप्राभृतप्राभृतात् निर्व्यूढेति, एतदुक्तं भवति–साम्प्रतकालप्रव्रजितानां तावच्छ्रुतपरिज्ञानशक्तिविकला-नामायुष्कादिह्रासमपेक्ष्य प्रत्यासन्नीकृतेति। दशविधसामाचारी पुनः षड्विंशतितमादुत्तराध्ययनात्स्वल्पतरकालप्रव्र-जितपरिज्ञानार्थं निर्व्यूढेति। पदविभागसामाचार्यर्थापि छेदसूत्रलक्षणान्नवमपूर्वादेव निर्व्यूढेति गाथार्थः॥ साम्प्रतमोघ-निर्युक्तिर्वाच्या, सा च सुप्रपञ्चितत्वादेव न विव्रियते, साम्प्रतं दशविधसामाचारीस्वरूपदर्शनायाह—

इच्छा मिच्छा तहाकारो, आवस्सिया य निसीहिया। आपुच्छणा य पडिपुच्छा छंदणा य निमंतणा॥ ६६६॥
उवसंपया य काले, सामायारी भवे दसहा। एएसिं तु पयाणं पत्तेय परूवणं वोच्छं॥ ६६७॥ दारगाहाओ॥

व्याख्या—एषणमिच्छाकरणं कारः, तत्र कारशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते, इच्छया–बलाभियोगमन्तरेण करणम् इच्छा-कारः इच्छाक्रियेत्यर्थः, तथा चेच्छाकारेण ममेदं कुरु इच्छाक्रियया न च बलाभियोगपूर्विकयेति भावार्थः १, तथा मिथ्या–वित-थ(ग्रन्था-६५००)मनृतमिति पर्यायाः, मिथ्याकरणं मिथ्याकारः, मिथ्याक्रियेत्यर्थः, तथा च संयमयोगवितथाचरणे विदित-

हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः १

॥२५८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सामाचारी, तस्या इच्छा-मिच्छा आदि भेदाः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

जिनवचनसाराः साधवस्तत्क्रियाया वैतथ्यप्रदर्शनाय मिथ्याकारं कुर्वते, मिथ्याक्रियेयमिति हृदयं २, तथाकरणं तथाकारः, स च सूत्रप्रश्नगोचरो यथा भवद्भिरुक्तं तथेदमित्येवंस्वरूपः ३, अवश्यकर्त्तव्यैर्योगैर्निष्पन्ना आवश्यिकी ४, चः समुच्चये, तथा निषेधेन निर्वृत्ता नैषेधिकी ५, आप्रच्छनमापृच्छा, सा विहारभूमिगमनादिप्रयोजनेषु गुरोः कार्या ६, चः पूर्ववत्, तथा प्रतिपृच्छा, सा च प्राङ्नियुक्तेनापि करणकाले कार्या, निषिद्धेन वा प्रयोजनतः कर्त्तुकामेनेति, तथा छन्दना च प्राग्गृहीतेनाशनादिना कार्या ८, तथा निमन्त्रणा अगृहीतेनैवाशनादिनाऽहं भवदर्थमशनाद्यानयामि इत्येवम्भूता ९, उपसम्पच्च विधिनाऽऽदेया १०। एवं 'काले' कालविषया सामाचारी भवेद्दशविधा तु। एवं तावत्समासत उक्ताः, साम्प्रतं प्रपञ्चतः प्रतिपदमभिधित्सुराह–एतेषां पदानां, तुर्विशेषणे, गोचरप्रदर्शनेन 'प्रत्येकं' पृथक् पृथक् प्ररूपणां वक्ष्य इति गाथाद्वयसमासार्थः ॥ तत्रेच्छाकारो येष्वर्थेषु क्रियते तत्प्रदर्शनायाह—

जइ अब्भत्थेज्ज परं कारणजाए करेज्ज से कोई। तत्थवि इच्छाकारो न कप्पई बलाभिओगो उ ॥ ६६८ ॥

व्याख्या—'यदी'त्यभ्युपगमे अन्यथा साधूनामकारणेऽभ्यर्थना नैव कल्पते, ततश्च यद्यभ्यर्थयेत् 'परम्' अन्यं साधुं ग्लानादौ कारणजाते कुर्यात् वा, 'से' तस्य कर्तुकामस्य 'कश्चिद्' अन्यसाधुः, तत्र कारणजातग्रहणमुभयथाऽपि सम्बध्यते, तत्रापि तेनान्येन वा साधुना तत्तस्य चिकीर्षितं कर्त्तुकामेन इच्छाकारः, कार्य इति क्रियाध्याहारः, अपिः चशब्दार्थे, अथवाऽपीत्यादिना न्यक्षेण वक्ष्यति, किमित्येवमत आह—न कल्पत एव बलाभियोग इति गाथार्थः ॥ उक्तगाथावयवार्थप्रतिपादनायैवाह—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

अब्भुवगमंमि नज्जइ अब्भत्थेउं ण वट्टइ परो उ । अणिगूहियबलविरिएण साहुणा ताव होयव्वं ॥ ६६९ ॥

व्याख्या—'यद्यभ्यर्थयेत् पर'मित्यस्मिन् यदिशब्दप्रदर्शिते अभ्युपगमे सति ज्ञायते, किमित्याह—अभ्यर्थयितुं 'न वर्त्तते' न युज्यते एव परः, किमित्यत एवाह–न निगूहिते बलवीर्य्ये येनेति समासः, बलं–शारीरं वीर्यम्–आन्तरः शक्तिविशेषः, तावच्छब्दः प्रस्तुतार्थप्रदर्शक एव, अनिगूहितबलवीर्येण तावदित्थं साधुना भवितव्यमिति । पाठान्तरं वा 'अणिगूहियबलविरिएण साहुणा जेण होयवं'ति, अस्यायमर्थः–येन कारणेनानिगूहितबलवीर्येण साधुना भवितव्यमिति युक्तिः अतः अभ्यर्थयितुं न वर्त्तते पर इति गाथार्थः॥ आह–इत्थं तर्हि अभ्यर्थनागोचरेच्छाकारोपन्यासोऽनर्थक इति?, उच्यते,

जइ हुज्ज तस्स अणलो कज्जस्स वियाणती ण वा वाणं । गिलाणाइहिं वा हुज्ज विया वडो कारणेहिं सो ॥ ६७० ॥

व्याख्या—यदि भवेत् 'तस्य' प्रस्तुतस्य कार्यस्य, किम्?–'अनलः' असमर्थः विजानाति न वा, वाणमिति पूरणार्थो निपातः, ग्लानादिभिर्वा भवेद्व्यापृतः कारणैरसौ तदा सञ्जातद्वितीयपदोऽभ्यर्थनागोचरमिच्छाकारं रत्नाधिकं विहायान्येषां करोतीति गाथार्थः ॥ आह च—

राइणियं वज्जेत्ता इच्छाकारं करेइ सेसाणं । एयं मज्झं कज्जं तुब्भे उ करेह इच्छाए ॥ ६७१ ॥

व्याख्या—रत्नानि द्विधा–द्रव्यरत्नानि भावरत्नानि च, तत्र मरकतवज्रेन्द्रनीलवैडूर्यादीनि द्रव्यरत्नानि, सुखहेतुत्वमधिकृत्य तेषामनैकान्तिकत्वादनात्यन्तिकत्वाच्च, भावरत्नानि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि, सुखनिबन्धनतामङ्गीकृत्य तेषामेकान्तिकत्वादात्यन्तिकत्वाच्च, भावरत्नैरधिको रत्नाधिकस्तं वर्जयित्वा इच्छाकारं करोति शेषाणां, कथमित्याह–इदं मम कार्य-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

वस्त्रसीवनादि यूयं कुरुतेच्छया न बलाभियोगेनेति गाथार्थः ॥ 'जइ अब्भत्थेज्ज परं कारणजाए'त्ति एतावन्मूलगाथाया व्याख्यातं, साम्प्रतं 'करेज्जं से कोइ' त्ति अस्य गाथाऽवयवस्यावयवार्थं प्रतिपादयति, अत्रान्यकरणसम्भवे, कारण-प्रतिपादनायाह—

अहवाऽवि विणासेंतं अब्भत्थेंतं च अण्ण दट्ठूणं । अण्णो कोइ भणेज्जा तं साहुं णिज्जरट्ठीओ ॥ ६७२ ॥

व्याख्या—तत्र 'अहवावि विणासेंतं' ति अक्षराणां व्यवहितः सम्बन्धः, स चेत्थं द्रष्टव्यः–विनाशयन्तमपि चिकीर्षितं कार्यम्, अपिशब्दात् गुरुतरकार्यकरणसमर्थमविनाशयन्तमप्यभ्यर्थयन्तं वा अभिलषितकार्यकरणाय कञ्चन अन्यं साधुं दृष्ट्वा किमित्याह–'अन्यः' तत्प्रयोजनकरणशक्तः कश्चिद्भणेत् तं साधुं निर्जरार्थीति गाथार्थः ॥ किमित्याह—

अहयं तुब्भं एयं करेमि कज्जं तु इच्छकारेणं । तत्थऽवि सो इच्छं से करेइ मज्जायमूलियं ॥ ६७३ ॥

व्याख्या—अहमित्यात्मनिर्देशे युष्माकम् 'इदं' कर्तुमिष्टं कार्यं करोमि 'इच्छाकारेण' युष्माकमिच्छाक्रियया, न बलादित्यर्थः, तत्रापि 'स' कारापेकः साधुः 'इच्छं से करेइ'त्ति सूचनात्सूत्रम्, इच्छाकारं करोति, नन्वसौ तेनेच्छाकारेण याचितस्ततः किमर्थमिच्छाकारं करोतीत्याह—मर्यादामूलं,साधूनामियं मर्यादा–न किञ्चिदिच्छाव्यतिरेकेण कश्चित्कारयितव्य इति गाथार्थः ॥ व्याख्यातोऽधिकृतगाथावयवः, साम्प्रतं 'तत्थवि इच्छाकारो'त्ति अस्यापिशब्दस्य विषयप्रदर्शनायाह—

१ ० संभवे कारणं प्रतिपादयन्नाह प्र०. २ करणं कारस्तं कारयतीति कारापयति णके च कारापक इति स्यात्, स्वचशब्दमदंन्तं वर्णयद्भिः पूज्यैः क्वचिन्नाम्नोऽप्यदन्तस्य ल्णिति वृद्धेरिष्टत्वात्.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

अहवा सयं करेन्तं किंची अण्णस्स वावि दट्ठूणं । तस्सवि करेज्ज इच्छं मज्झंपि इमं करेहित्ति ॥ ६७४ ॥

व्याख्या—अथवा 'स्वकम्' आत्मीयं कुर्वन्तं 'किञ्चित्' पात्रलेपनादि अन्यस्य वा दृष्ट्वा किम् ?–तस्याप्यापन्नप्रयोजनः सन् कुर्यादिच्छाकारं, कथम्?–ममापीदं–पात्रलेपनादि कुरुतेति गाथार्थः ॥ इदानीमभ्यर्थितसाधुगोचरविधिप्रदर्शनायाऽऽह–

तत्थवि सो इच्छं से करेइ दीवेइ कारणं वाऽवि । इहरा अणुग्गहत्थं कायव्वं साहुणो किच्चं ॥ ६७५ ॥

व्याख्या—तत्राप्यभ्यर्थितः सन् 'इच्छाकारं करोति' इच्छाम्यहं तव करोमीति, अथ तेन गुर्वादिकार्यान्तरं कर्त्तव्यमिति तदा दीपयति कारणं वापि, 'इहरा' अन्यथा गुरुकार्यकर्त्तव्याभावे सति अनुग्रहार्थं कर्त्तव्यं साधोः कृत्यमिति गाथार्थः ॥ अपिशब्दाक्षिप्तेच्छाकारविषयविशेषप्रदर्शनायैवाह—

अहवा णाणाईणं अट्ठाए जइ करेज्ज किच्चाणं । वेयावच्चं किंची तत्थवि तेसिं भवे इच्छा ॥ ६७६ ॥

व्याख्या—अथवा ज्ञानादीनामर्थाय, आदिग्रहणाद्दर्शनचारित्रग्रहणं, यदि कुर्यात् 'कृत्यानाम्' आचार्याणां वैयावृत्त्यं 'कश्चित्' साधुः, पाठान्तरं वा 'किंचि'त्ति किञ्चिद्विश्रामणादि, तत्रापि 'तेषां' कृत्यानां तं साधुं वैयावृत्त्ये नियोजयतां 'भवे इच्छे' ति भवेदिच्छाकारः, इच्छाकारपुरःसरं योजनीय इति गाथार्थः ॥ किमित्यत आह–यस्मात्—

आणाबलाभिओगो णिग्गंथाणं ण कप्पई काउं । इच्छा पउंजियव्वा सेहे राईणिए (य) तहा ॥ ६७७ ॥

व्याख्या—आज्ञापनमाज्ञा–भवतेदं कार्यमेवेति, तदकुर्वतो बलात्कारापणं बलाभियोग इति, स 'निर्ग्रन्थानां' साधूनां न कल्पते कर्त्तुमिति, किन्तु 'इच्छं'त्ति इच्छाकारः प्रयोक्तव्यः, प्रयोजने उत्पन्ने सति शैक्षके तथा रत्नाधिके चालापकादि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

प्रष्टुकामेन, आद्यन्तग्रहणादन्येषु चेति गाथार्थः ॥ एष उत्सर्ग उक्तः, अपवादस्त्वाज्ञाबलाभियोगावपि दुर्विनीते प्रयोक्तव्यौ, तेन च सहोत्सर्गतः संवास एव न कल्पते, बहुस्वजननालप्रतिबद्धे त्वपरित्याज्ये अयं विधिः–प्रथममिच्छाकारेण योज्यते, अकुर्वन्नाज्ञया पुनर्बलाभियोगेनेति, आह च—

जह जच्चबाहलाणं आसाणं जणवएसु जायाणं । सयमेव खलिणगहणं अहवावि बलाभिओगेणं ॥ ६७८ ॥
पुरिसज्जाएऽवि तहा विणीयविणयंमि नत्थि अभिओगो । सेसंमि उ अभिओगो जणवयजाए जहा आसे॥६७९॥

व्याख्या—यथा जात्यबाह्लीकानामश्वानां जनपदेषु च–मगधादिषु जातानां,चशब्दलोपोऽत्र द्रष्टव्यः, स्वयमेव खलिनग्रहणं भवति, अथवापि बलाभियोगेनेति, खलिनं–कविकमभिधीयते, एष दृष्टान्तः, अयमर्थोपनयः–पुरुषजातेऽपि तथा, जातशब्दः प्रकारवचनः, 'विणीयविणयंमि' त्ति विविधम्–अनेकधा नीतः–प्रापितः विनयो येन स तथाविधः तस्मिन् नास्त्यभियोगो जात्यबाह्लीकाश्ववत्, 'सेसंमि उ अभिओगो' त्ति शेषे–विनयरहिते बलाभियोगः प्रवर्त्तते, कथं?–जनपदजाते यथाऽश्वे इति गाथाद्वयसमुदायार्थः ॥ अवयवार्थस्तु कथानकादवसेयः, तच्चेदम्—

बाहलविसए एगो आसकिसोरो, सो दमिज्जिउकामो वेयालियं अहिवासिऊण पहाए अग्घेऊण वाहियालिं नीतो, खलिणं से ढोइयं, सयमेव तेण गहियं विणीयोत्ति । तत्तो राया सयमेवारूढो, सो हिययइच्छियं वूढो, रण्णा उयरिऊण

१ ०वाहणाणंति प्र०. २ बाल्हीकविषये एकोऽश्वकिशोरः, स दमयितुकामो वैकालिकमधिवास्य प्रभातेऽर्घित्वा वाह्यालीं नीतः, कविकं तस्मै ढौकितं, स्वयमेव तेन गृहीतं, विनीत इति । ततो राजा स्वयमेवारूढः, स हृदयेप्सितं व्यूढः, राज्ञोत्तीर्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आहारलयणादिणा सम्मं पडियरिओ, पतिदियहं च सुद्धत्तणओ एवं वहइ, न तस्स बलाभिओगो पवत्तइ । अवरो पुण मगहादिजणवए जातो आसो, सोऽवि दमिज्जिउकामो वेयालियं अहिवासितो, मायरं पुच्छइ–किमेयंति, तीए भणियं–कल्लं वाहिज्जसि तं, सयमेव खलिणं गहाय वहंतो नरिंदं तोसिज्जासि, तेण तहा कयं, रण्णावि आहारादिणा सव्वो से उवयारो कओ, माऊए सिट्ठं, तीए भणितो–पुत्त ! विणयगुणफलं ते एयं, कल्लं पुणो मा खलिणं पडिवज्जिहिसि, मा वा वहिहिसि, तेणं तहेव कयं, रण्णावि खोखरेण पिट्टित्ता बला कवियं दाऊण वाहित्ता पुणोऽवि जवसं से णेरुद्धं, तेण माऊए सिट्ठं, सा भणइ–पुत्त ! दुच्चेट्ठियफलमिणं ते, तं दिट्ठोभयमग्गो जो ते रुच्चइ तं करेहिसि ! एस दिट्ठंतो अयमुवणओ–जो सयं न करेइ वेयावच्चादि तत्थ बलाभिओगोऽवि पयट्टाविज्जइ जणवयजाते जहा आसेत्ति। तस्माद्बलाभियोगमन्तरेणैव मोक्षार्थिना स्वयमेव प्रत्युत इच्छाकारं दत्त्वा अनभ्यर्थितेनैव वैयावृत्त्यं कार्यम् ॥ आह—तथाऽप्यनभ्यर्थितस्य स्वयमिच्छाकारकरणमयुक्तमेवेत्याशङ्क्याह—

---

१ आहारलयनादिना सम्यक् प्रतिचरितः, प्रतिदिवसं च शुद्धत्वादेवं वहति, न तस्य बलाभियोगः प्रवर्त्तते । अपरः पुनर्मगधादिजनपदजातोऽश्वः, सोऽपि दमयितुकामो वैकालिकमधिवासितः, मातरं पृच्छति–किमेतदिति ?, तया भणितं–कल्ये वाह्यसे (वाहयिष्यतासे) त्वं, (तत्) स्वयमेव कविकं गृहीत्वा वहन् नरेन्द्रं तोषयितासि (येः), तेन तथा कृतं, राज्ञाऽपि आहारादिना सर्वस्वोपचारः कृतः, मात्रे शिष्टं, तया भणितः–पुत्र ! विनयगुणफलं तवैतत्, कल्ये पुनर्मा कविकं प्रतिपदिष्ठाः, मा वा वाक्षीः, तेन तथैव कृतं, राज्ञाऽपि खोखरेण (प्रतोदेन कशया वा) पिट्टयित्वा बलात्कविकं दत्त्वा वाहयित्वा पुनरपि यवसं तस्य निरुद्धं, तेन मात्रे शिष्टं, सा भणति–पुत्र ! दुश्चेष्टितफलमिदं तव, तदृष्टोभयमार्गो यस्तुभ्यं रोचते तं कुर्याः । एष दृष्टान्तोऽयमुपनयः–यः स्वयं न करोति वैयावृत्त्यादि तत्र बलाभियोगोऽपि प्रवर्त्यते जनपदजाते यथाऽश्व इति.

॥२६१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

अब्भत्थणाए मरुओ वानरओ चेव होइ दिट्ठंतो । गुरुकरणे सयमेव उ वाणियगा दुण्णि दिट्ठंता ॥ ६८० ॥

व्याख्या—अभ्यर्थनायां मरुकः, पुनः शिष्यचोदनायां सत्यां वानरकश्चैव भवति दृष्टान्तः, गुरुकरणे स्वयमेव तु वणिजौ द्वौ दृष्टान्त इति समासार्थः ॥ व्यासार्थः कथानकेभ्योऽवसेय इति, तानि चामूनि—

एगस्स साहुस्स लद्धी अत्थि, सो ण करेइ वेयावच्चं बालबुड्ढाणंति, आयरियपडिचोइतो भणइ–को मं अब्भत्थेइ ?, आयरिएण भणिओ–तुमं अब्भत्थणं मग्गंतो चुक्किहिसि, जहा सो मरुगोत्ति । एगो मरुगो नाणमदमत्तो कत्तियपुण्णिमाए नरिंदजणवदेसुं दाणं दाउमब्भुट्ठिएसु ण तत्थ वच्चइ, भज्जाए भणितो–जाहि, सो भणइ–एगं ताव सुद्दाणं परिग्गहं करेमि, बीयं तेसिं घरं वच्चामि ?, जस्स आसत्तमस्स कुलस्स कज्जं सो मम आणेत्ता देउ, एवं सो जावज्जीवाए दरिद्दो जातो । एवं तुमंपि अब्भत्थणं मग्गमाणो चुक्किहिसि निज्जराए, एतेसिं बालबुड्ढाणं अण्णे अत्थि करेंतगा, तुज्झवि एस लद्धी एवं चेव विराहित्ति । ततो सो एवं भणिओ भणइ–एवं सुंदरं जाणंता अप्पणा कीस न करेह ?, आयरिया

१ एकस्य साधोर्लब्धिरस्ति, स न करोति वैयावृत्त्यं बालवृद्धानामिति,आचार्यप्रतिचोदितो भणति–को मामभ्यर्थयते ?, आचार्येण भणितः–त्वमभ्यर्थनां मार्गयन् भ्रश्यसि, यथा स मरुकः (ब्राह्मणः) इति । एको ब्राह्मणो ज्ञानमदमत्तः कार्त्तिकपूर्णिमायां नरेन्द्रजनपदेषु दानं दातुमभ्युत्थितेषु न तत्र व्रजति, भार्यया भणितः–याहि, स भणति–एकं तावत् शूद्राणां प्रतिग्रहं करोमि, द्वितीयं तेषां गृहे व्रजामि, यस्यासप्तमस्य कुलस्य कार्यं स मह्यमानीय ददातु, एवं स यावज्जीवं दरिद्रो जातः । एवं त्वमप्यभ्यर्थनां मार्गयन् भ्रश्यसि निर्जरायाः, एतेषां बालवृद्धानामन्ये सन्ति कर्त्तारः, तवाप्येषा लब्धिरेवमेव नङ्क्ष्यति । ततः स एवं भणितो भणति–एवं सुन्दरं जानाना आत्मना कुतो न कुरुत ?, आचार्यो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

भणंति–सरिसोऽसि तुमं तस्स वानरगस्स, जहा एगो वानरो रुक्खे अच्छइ, वासासु सीतवातेहिं झडिज्झति, ताहे सुघराए सउणिगाए भणिओ–'वानर ! पुरिसोऽसि तुमं निरत्थयं वहसि बाहुदंडाइं । जो पायवस्स सिहरे न करेसि कुडिं पडालिं वा ॥ १ ॥' सो एवं तीए भणिओ तुण्हिको अच्छइ, ताहे सा दोच्चंपि तच्चंपि भणइ, ततो सो रुट्ठो तं रुक्खं दुरुहिउमाढत्तो, सा नट्ठा, तेण तीसे तं घरं सुंबं सुंबं विक्खित्तं, भणइ य–नविसि ममं मयहरिया नविसि ममं सोहिया व णिद्धा वा । सुघरे ! अच्छसु विघरा जा वट्टसि लोगतत्तीसु ॥ १ ॥ सुहं इदाणिं अच्छ । एवं तुमंपि मम चेव उवरिएण जाओ, किं च–मम अन्नंपि निज्जरादारं अत्थि, तेण मम बहुतरिया निज्जरा, तं लाहं चुक्कीहामि, जहा सो वाणियगो–दो वाणियगा ववहरंति, एगो पढमपाउसे मोलं दायव्वयं होहित्ति सयमेव आसाढपुण्णीमाए घरं पच्छ(त्थ)इतो, बीएण अद्धं वा तिभागं वा दाऊण छवावियं, सयं ववहरइ, तेण तद्दिवसं विउणो लाहो लद्धो, इयरो चुक्को । एवं चेव जइ

---

१ भणन्ति–सदृशोऽसि त्वं तस्य कपेः, यथैको वानरो वृक्षे तिष्ठति, वर्षासु शीतवातैः क्लिश्यति, तदा सुगृहिकया शकुन्या भणितः–वानर ! पुरुषोऽसि त्वं निरर्थकं वहसि बाहुदण्डान् । यः पादपस्य शिखरे न करोषि कुटीं पटालिकां वा ॥ १ ॥ स एवं तया भणितस्तूष्णीकस्तिष्ठति, तदा सा द्विरपि त्रिरपि भणति, ततः स रुष्टस्तं वृक्षमारोढुमारब्धः, सा नष्टा, तेन तस्यास्तद्गृहं दवरिकादवरिकं विक्षिप्तम्, भणति च–नाप्यसि मम महत्तरिका नाप्यसि मम सुहृद्वा स्निग्धा वा । सुगृहिके ! तिष्ठ विगृहा या वर्तसे लोकतप्तौ ॥ १ ॥ सुखमिदानीं तिष्ठ । एवं त्वमपि मम चैवोपरितनो जातः, किंच–ममान्यदपि निर्जराद्वारमस्ति, तेन मम बहुतरा निर्जरा, तं लाभं भ्रंशयामि,–यथा स वणिक् द्वौ वणिजौ व्यवहरतः, एकः प्रथमप्रावृषि मूल्यं दातव्यं भविष्यतीति स्वयमेवाषाढपूर्णिमायां त्यक्त्वा गृहं गतः, (प्रच्छेदितं), द्वितीयेनार्धं वा त्रिभागं वा दत्त्वा स्थगितं (स्थापितं), स्वयं व्यवहरति, तेन तद्दिवसे द्विगुणो लाभो लब्धः, इतरो भ्रष्टः । एवमेव

॥२६२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

अहं अप्पणा वेयावच्चं करेमि तो अचिंतणेण सुत्तत्था नासंति, तेहि य नट्ठेहिं गच्छसारवणाऽभावेण गणस्सादेसादिअप्पडितप्पणेण बहुयरं मे नासेइति। आह च–सुत्तत्थेसु अचिन्तण आएसे बुड्ढसेहगगिलाणे। बाले खमए वाई इड्ढीमाइ अणिड्ढी य ॥ १ ॥ एएहिं कारणेहिं तुंबभूओ उ होति आयरिओ। वेयावच्चं ण करे कायवं तस्स सेसेहिं ॥ २ ॥ जेण कुलं आयत्तं तं पुरिसं आयरेण रक्खेज्जा। न हु तुंबंमि विणट्ठे अरया साहारया होंति ॥ ३ ॥ बाले सप्पभए तहा इड्ढिमंतंमि आगए पाणगादिगए आयरिए लहुत्तं, एवं वादिम्मिवि, अणिस्सरपव्वइयगा य एएत्ति जणापवादो, सेसं कंठं। आह–इच्छाकारेणाहं तव प्रथमालिकामानयामीत्यभिधाय यदा लब्ध्यभावान्न सम्पादयति तदा निर्जरालाभविकलस्तस्येच्छाकारः, इत्यतः किं तेनेत्याशङ्क्याह—

संजमजोए अब्भुट्ठियस्स सद्धाए काउकामस्स। लाभो चेव तवस्सिस्स होइ अहीणमणसस्स ॥ ६८१ ॥

व्याख्या—'संयमयोगे' संयमव्यापारे अभ्युत्थितस्य तथा 'श्रद्धया' मनःप्रसादेन इहलोकपरलोकाशंसां विहाय कर्तुकामस्य, किम् ?–'लाभो चेव तवस्सिस्स'त्ति प्रकरणान्निर्जराया लाभ एव तपस्विनो भवति अलब्ध्यादौ, अदीनं मनोऽस्येति अदीनमनास्तस्यादीनमनस इति गाथार्थः ॥ द्वारं १। इदानीं मिथ्याकारविषयप्रतिपादनायाह—

१ यद्यहमात्मना वैयावृत्त्यं करोमि तदाऽचिन्तनेन सूत्रार्थौ नश्यतः, तयोश्च नष्टयोर्गच्छसारणाऽभावेन गणस्य आदेशादेरप्रतितर्पणेन बहुतरं मे नश्यतीति। सूत्रार्थयोरचिन्तनमादेशे वृद्धे शैक्षके ग्लाने। बाले क्षपके वादी ऋद्धिमदादि अनृद्धिश्च ॥१॥ एतैः कारणैस्तुम्बभूतस्तु भवत्याचार्यः। वैयावृत्त्यं न कुर्यात् कर्त्तव्यं तस्य शेषैः ॥ २ ॥ यस्य कुलमायत्तं तं पुरुषमादरेण रक्षेत्। नैव तुम्बे विनष्टे अरकाः साधारा भवन्ति ॥ ३ ॥ बाले सर्पभये तथा ऋद्धिमत्यागते पानकाद्यर्थं गते आचार्ये लघुत्वम्, एवं वादिन्यपि, अनीश्वरप्रव्रजिताश्चैत इति जनापवादः, शेषं कण्ठ्यम्।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

संजमजोए अब्भुट्ठियस्स जंकिंचि वितहमायरियं । मिच्छा एतंति विआणिऊण मिच्छत्ति कायव्वं ॥ ६८२ ॥

व्याख्या—संयमयोगः–समितिगुप्तिरूपस्तस्मिन्विषयभूतेऽभ्युत्थितस्य सतः यत्किञ्चिद्वितथम्–अन्यथा आचरितम्–आसेवितं, भूतमिति वाक्यशेषः, 'मिथ्या एतदिति' विपरीतमेतदित्येवं विज्ञाय किम् ?–'मिच्छत्ति कायव्वं' मिथ्यादुष्कृतं दातव्यमित्यर्थः । संयमयोगविषयायां च प्रवृत्तौ वितथासेवने मिथ्यादुष्कृतं दोषापनयनायालं, न तूपेत्यकरणगोचरायां नाप्यसकृत्करणगोचरायामिति गाथाहृदयार्थः ॥ तथा चोत्सर्गमेव प्रतिपादयन्नाह—

जइ य पडिक्कमियव्वं अवस्स काऊण पावयं कम्मं । तं चेव न कायव्वं तो होइ पए पडिक्कंतो ॥ ६८३ ॥

व्याख्या—यदि च 'प्रतिक्रान्तव्यं' निवर्त्तितव्यं, मिथ्यादुष्कृतं दातव्यमित्यर्थः, 'अवश्यं' नियमेन कृत्वा पापकं कर्म, ततश्च 'तदेव' पापकं कर्म न कर्त्तव्यं, ततो भवति 'पदे' उत्सर्गपदविषये प्रतिक्रान्त इति । अथवा–'पदे'त्ति प्रथमं प्रतिक्रान्त इति गाथार्थः ॥ साम्प्रतं यथाभूतस्येदं मिथ्यादुष्कृतं सुदत्तं भवति तथाभूतमभिधित्सुराह—

जं दुक्कडंति मिच्छा तं भुज्जो कारणं अपूरेंतो । तिविहेण पडिक्कंतो तस्स खलु दुक्कडं मिच्छा ॥ ६८४ ॥

व्याख्या—'यदि'त्यनिर्दिष्टस्य निर्देशः, करणमिति योगः, ततश्च 'यत्कारणं' यद् वस्तु दुष्ठु कृतं दुष्कृतम् 'इति' एवं विज्ञाय 'मिच्छ'त्ति सूचनात्सूत्रमितिकृत्वा मिथ्यादुष्कृतं दत्तं, तद् 'भूयः' पुनः प्रागुक्तं दुष्कृतकारणम् 'अपूरयन्' अकुर्वन्नाचरन्नित्यर्थः, यो वर्त्तत इति वाक्यशेषः, 'तस्स खलु दुक्कडं मिच्छ'त्ति सम्बद्ध एव ग्रन्थः, तत्र स्वयं कायेनाप्यकुर्वन्नपूरयन्नभिधीयत एवेत्यत आह–'तिविहेण पडिक्कंतो' त्ति त्रिविधेन मनोवाक्कायलक्षणेन योगेन कृतकारितानुमति-

॥२६३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

भेदयुक्तेन 'प्रतिक्रान्तो' निवृत्तो यस्तस्माद्दुष्कृतकारणात् तस्यैव, खलुशब्दोऽवधारणे, 'दुष्कृतं' प्रागुक्तं दुष्कृतफलदातृत्वमधिकृत्य 'मिथ्ये'ति मिथ्या, भवतीति क्रियाध्याहारः अथवा व्यवहितयोगात्तस्यैव मिथ्यादुष्कृतं भवति नान्यस्येति गाथार्थः ॥ साम्प्रतं यस्य मिथ्यादुष्कृतं दत्तमपि न सम्यग् भवति तत्प्रतिपादनायाह—

जं दुक्कडंति मिच्छा तं चेव निसेवए पुणो पावं । पच्चक्खमुसावाई मायानियडीपसंगो य ॥ ६८५ ॥

व्याख्या—'यत्' पापं किञ्चिदनुष्ठानं दुष्कृतमिति विज्ञाय 'मिच्छ'त्ति मिथ्यादुष्कृतं दत्तमित्यर्थः, यस्तदेव निषेवते पुनः पापं स हि प्रत्यक्षमृषावादी वर्त्तते, कथम् ?–दुष्कृतमेतदित्यभिधाय पुनरासेवनात्, तथा मायानिकृतिप्रसङ्गश्च तस्य, स हि दुष्टान्तरात्मा निश्चयतश्चेतसाऽनिवृत्त एव गुर्वादिरञ्जनार्थं मिथ्यादुष्कृतं प्रयच्छति, कुतः ?, पुनरासेवनात्, तत्र मायैव निकृतिर्मायानिकृतिस्तस्याः प्रसङ्ग इति गाथार्थः ॥ कः पुनरस्य मिथ्यादुष्कृतपदस्यार्थ इत्याशङ्क्याह—

मित्ति मिउमद्दवत्ते छत्ति य दोसाण छायणे होइ । मित्ति य मेराएँ ठिओ दुत्ति दुगुंछामि अप्पाणं ॥ ६८६ ॥

व्याख्या—'मी' त्येवं वर्णः मृदुमार्दवत्वे वर्त्तते, तत्र मृदुत्वं–कायनम्रता मार्दवत्वं–भावनम्रतेति, 'छे'ति च दोषस्य–असंयमयोगलक्षणस्य छादने–स्थगने भवति, 'मी'ति चायं वर्णः मर्यादायां–चारित्ररूपायां स्थितोऽहमित्यस्यार्थस्याभिधायकः 'दु'इत्ययं वर्णः जुगुप्सामि–निन्दामि दुष्कृतकर्मकारिणमात्मानमित्यस्मिन्नर्थे वर्त्तत इति गाथार्थः ॥

कत्ति कडं मे पावं डत्ति य डेवेमि तं उवसमेणं । एसो मिच्छाउक्कडपयक्खरत्थो समासेणं ॥ ६८७ ॥ दारं ॥

व्याख्या—'क' इत्ययं वर्णः कृतं मया पापमित्येवमभ्युपगमार्थे वर्त्तते, 'ड' इति च 'डेवेमि तं'ति लङ्घयामि–अतिक्र-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

मामि तत्, केनेत्याह–उपशमेन हेतुभूतेन, 'एषः' अनन्तरोक्तः प्राकृतशैल्या मिथ्यादुष्कृतपदस्याक्षरार्थ इति 'समासेन' सङ्क्षेपेणेति गाथार्थः ॥ आह–कथमक्षराणां प्रत्येकमुक्तार्थतेति, पदवाक्योरेवार्थदर्शनादिति, अत्रोच्यते, इह यथा वाक्यैकदेशत्वात्पदस्यार्थोऽस्ति तथा पदैकदेशत्वाद्वर्णार्थोऽप्यवसेय इति, अन्यथा पदस्याप्यर्थशून्यत्वप्रसङ्गः, प्रत्येकमक्षरेषु तदभावादिति, प्रयोगश्च–इह यद्यत्र प्रत्येकं नास्ति तत्समुदायेऽपि न भवति, प्रत्येकमभावात्, सिकतातैलवदिति, इष्यते च वर्णसमुदायात्मकस्य पदस्यार्थः, तस्मात्तदन्यथाऽनुपपत्तेर्वर्णार्थोऽपि प्रतिपत्तव्य इत्यलं प्रसङ्गेनेति । द्वारम् २। साम्प्रतं तथाकारो यस्य दीयते तत्प्रतिपिपादयिषयाऽऽह—

कप्पाकप्पे परिणिट्ठियस्स ठाणेसु पंचसु ठियस्स । संजमतवङ्गस्स उ अविकप्पेणं तहाकारो ॥ ६८८ ॥

व्याख्या—कल्पो विधिराचार इति पर्यायाः, कल्पविपरीतस्त्वकल्पः, जिनस्थविरकल्पादिर्वा कल्पः, चरकादिदीक्षा पुनरकल्प इति, कल्पश्चाकल्पश्च कल्पाकल्पमित्येकवद्भावस्तस्मिन् कल्पाकल्पे, परि–समन्तात् निष्ठितः परिनिष्ठितो, ज्ञाननिष्ठां प्राप्त इत्यर्थः, तस्य, तथा तिष्ठन्त्येतेषु सत्सु शाश्वते स्थाने प्राणिन इति स्थानानि–महाव्रतान्यभिधीयन्ते, तेषु स्थानेषु पञ्चसु स्थितस्य, महाव्रतयुक्तस्येत्यर्थः, तथा संयमतपोभ्यामाढ्यः–सम्पन्न इत्यनेनोत्तरगुणयुक्ततामाह, तस्य किमित्याह–'अविकल्पेन' निश्चयेन, किम्?–तथाकारः, कार्य इति क्रियाध्याहार इति गाथार्थः ॥ इदानीं तथाकारविषयप्रतिपादनायाह—

वायणपडिसुणणाए उवएसे सुत्तअत्थकहणाए । अवितहमेयंति तहा पडिसुणणाए तहक्कारो ॥ ६८९ ॥ दारं ॥

व्याख्या—वाचना–सूत्रप्रदानलक्षणा तस्याः प्रतिश्रवणं–प्रतिश्रवणा तस्यां वाचनाप्रतिश्रवणायां, तथाकारः कार्यः,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

एतदुक्तं भवति-गुरौ वाचनां प्रयच्छति सति सूत्रं गृह्णानेन तथाकारः कार्यः, तथा सामान्येनोपदेशे-चक्रवालसामाचारीप्रतिबद्धे गुरोरन्यस्य वा सम्बन्धिनि तथाकारः कार्यः, तथा 'सुत्तअत्थकहणाए'त्ति सूत्रार्थकथनायां, व्याख्यान इत्यर्थः, किम् ?–तथाकारः कार्यः, तथाकार इति कोऽर्थ इति ?, आह–अवितथमेतत् यदाहुर्यूयमिति, न केवलमुक्तेष्वेवार्थेषु तथाकारप्रवृत्तिः, तथा 'पडिसुणणाए' त्ति प्रतिपृच्छोत्तरकालमाचार्ये कथयति सति प्रतिश्रवणायां च तथाकारप्रवृत्तिरिति, चशब्दलोपोऽत्र द्रष्टव्य इति गाथार्थः ॥ साम्प्रतं स्वस्थाने स्वस्थाने खल्विच्छाकारादिप्रयोक्तुः फलप्रतिपादनायाह—

जस्स य इच्छाकारो मिच्छाकारो य परिचिया दोऽवि । तइओ य तहक्कारो न दुल्लभा सोग्गई तस्स ॥ ६९० ॥

व्याख्या—यस्य चेच्छाकारो मिथ्याकारश्च परिचितौ द्वावपि तृतीयश्च तथाकारो न दुर्लभा सुगतिस्तस्येति गाथा निगदसिद्धैव । द्वारं ३ ॥ साम्प्रतमावश्यकीनैषेधिकीद्वारद्वयावयवार्थमभिधित्सुः पातनिकागाथामाह—

आवस्सियं च णिंतो जं च अइंतो निसीहियं कुणइ । एयं इच्छं नाउं गणिवर ! तुब्भंतिए णिउणं ॥ ६९१ ॥

व्याख्या—शिष्यः किलाह–'आवस्सियं'ति आवश्यिकी–पूर्वोक्तां तामावश्यिकीं च 'निन्तो' निर्गच्छन् यां च 'अतिंतो'त्ति आगच्छन्, प्रविशन्नित्यर्थः, नैषेधिकीं करोति, 'एतद्' आवश्यिकीनैषेधिकीद्वयमपि स्वरूपादिभेदभिन्नं इच्छामि ज्ञातुं हे गणिवर ! युष्मदन्तिके 'निपुणं' सूक्ष्मं ज्ञातुमिच्छामीति क्रियाविशेषणमिति गाथार्थः ॥ एवं शिष्येणोक्ते सत्याहाचार्यः—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आवस्सियं च णितो जं च अइंतो णिसीहियं कुणइ । वंजणमेयं तु दुहा अत्थो पुण होइ सो चेव ॥ ६९२ ॥

व्याख्या—आवश्यिकीं च निर्गच्छन् यां च प्रविशन्नैषेधिकीं करोति, 'व्यञ्जनं' शब्दरूपं 'एतं तु दुह'त्ति एतदेव शब्दरूपं द्विधा, अर्थः पुनर्भवत्यावश्यिकीनैषेधिक्योः 'स एव' एक एव, यस्मादवश्यंकर्त्तव्ययोगक्रियाऽऽवश्यिकी निषिद्धात्मनश्चातिचारेभ्यः क्रिया नैषेधिकीति, न ह्यसावप्यवश्यं कर्त्तव्यं व्यापारमुल्लङ्घ्य प्रवर्त्तते, आह–यद्येवं भेदोपन्यासः किमर्थम् ?, उच्यते, क्वचित् स्थितिगमनक्रियाभेदादभिधानभेदाच्चेति गाथार्थः ॥ आह–'आवश्यिकीं च निर्गच्छ'न्नित्युक्तं, तत्र साधोः किमवस्थानं श्रेय उताटनमिति ?, उच्यते, अवस्थानमिति, कथम् ?, यत आह—

एगग्गस्स पसंतस्स न होंति इरियाइया गुणा होंति । गंतव्वमवस्सं कारणंमि आवस्सिया होइ ॥ ६९३ ॥

व्याख्या—एकमग्रम्–आलम्बनमस्येत्येकाग्रस्तस्य, स चाप्रशस्तालम्बनोऽपि भवत्यत आह–'प्रशान्तस्य' क्रोधरहितस्य तिष्ठतः, किम् ?, न भवन्ति ईर्यादयः, ईरणमीर्य्या–गमनमित्यर्थः, इहेर्य्याकार्यं कर्म ईर्य्याशब्देन गृह्यते, कारणे कार्योपचारात्, ईर्य्या आदौ येषामात्मसंयमविराधनादीनां दोषाणां ते ईर्यादयो न भवन्ति, तथा 'गुणाश्च' स्वाध्यायध्यानादयो भवन्ति, प्राप्तं तर्हि संयतस्यागमनमेव श्रेय इति तदपवादमाह–न चावस्थाने खलूक्तगुणसम्भवान्न गन्तव्यमेव, किन्तु 'गन्तव्यमवस्सं कारणंमि' गन्तव्यम् 'अवश्यं' नियोगतः 'कारणे' गुरुग्लानादिसम्बन्धिनि, यतस्तत्रागच्छतो दोषा इति, तथा च

* गम्ययपः कर्माधारे इति पञ्चमी तथा चातिचारानाश्रित्येत्यर्थः.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

कारणे* गच्छतः 'आवस्सिया होइ' आवश्यिकी भवतीति गाथार्थः ॥ आह–कारणेन गच्छतः किं सर्वस्यैवावश्यकी भवति उत नेति ?, नेति, कस्य तर्हि ?, उच्यते,—

आवस्सिया उ आवस्सएहिं सव्वेहिं जुत्तजोगिस्स । मणवयणकायगुत्तिंदियस्स आवस्सिया होइ ॥ ६९४ ॥

व्याख्या—आवश्यिकी तु 'आवश्यकैः' प्रतिक्रमणादिभिः सर्वैर्युक्तयोगिनो भवति, शेषकालमपि निरतिचारस्य क्रियास्थस्येति भावार्थः, तस्य च गुरुनियोगादिना प्रवृत्तिकालेऽपि 'मण'इत्यादि पश्चार्द्धं मनोवाक्कायेन्द्रियैर्गुप्त इति समासः, तस्य, किम् ?–आवश्यिकी भवति, इन्द्रियशब्दस्य गाथाभङ्गभयाद्व्यवहितोपन्यासः, कायात्पृथगिन्द्रियग्रहणं प्राधान्यख्यापनार्थम्, अस्ति चायं न्यायः–'सामान्यग्रहणे सत्यपि प्राधान्यख्यापनार्थं भेदेनोपन्यासो' यथा–ब्राह्मणा आयाता वशिष्ठोऽप्यायात इति गाथार्थः ॥ उक्ताऽऽवश्यिकी, साम्प्रतं नैषेधिकीं प्रतिपादयन्नाह—

सेज्जं ठाणं च जहिं चेएइ तहिं निसीहिया होइ । जम्हा तत्थ निसिद्धो तेणं तु निसीहिया होइ ॥ ६९५ ॥

व्याख्या—शेरतेऽस्यामिति शय्या–शयनीयस्थानं तां शय्यां 'स्थानं चे'ति स्थानमूर्ध्वस्थानं†, कायोत्सर्गः, यत्र 'चेतयते' 'चिती सञ्ज्ञाने' अनुभवरूपतया विजानाति वेदयतीत्यर्थः, अथवा 'चेतयते' इति करोति, शयनक्रियां च कुर्वता निश्चयतः शय्या‡क्रिया कृता भवति, ततश्च यत्र स्वपितीत्यर्थः, चशब्दो वीरासनाद्यनुक्तसमुच्चयार्थः, अथवा तुशब्दार्थे द्रष्टव्यः, स च विशेषणार्थः, कथम् ?, प्रतिक्रमणाद्यशेषकृतावश्यकः सन्ननुज्ञातो गुरुणा शय्यां स्थानं च यत्र चेतयते 'तत्र' एवं-

* कारणात् प्र०. + किमुच्यते प्र०. † नमुक्तं प्र० ‡ शय्या प्र०. ¶ प्रतिक्रमणाद्यशेषैः कार्यैः समापितावश्यककृत्य इत्यर्थः.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

विधस्थितिक्रियाविशिष्ट एव स्थाने नैषेधिकी भवति, नान्यत्र, किमित्यत आह–यस्मात्तत्र निषिद्धोऽसौ तेनैव कारणेन नैषेधिकी भवति, निषेधात्मकत्वात्तस्या इति गाथार्थः ॥ पाठान्तरं वा—

सेज्जं ठाणं च जदा चेतेति तया निसीहिया होइ। जम्हा तदा निसेहो निसेहमइया च सा जेणं ॥ ६९६ ॥

इयमुक्तार्थत्वात्सुगमैव। अनेन ग्रन्थेन मूलगाथायाः 'आवश्यिकीं च निर्गच्छन् यां चागच्छन् नैषेधिकीं करोति व्यञ्जनमेतद् द्वेधे' त्येतावत् स्थितिरूपनैषेधिकीप्रतिपादनं व्यञ्जनभेदनिबन्धनमधिकृत्य व्याख्यातम्। अमुमेवार्थमुपसञ्जिहीर्षुराह भाष्यकारः—

आवस्सियं च णिंतो जं च अइंतो निसीहियं कुणइ। सेज्जाणिसीहियाए णिसीहियाअभिमुहो होई ॥१२०॥(भा०)

व्याख्या—आवश्यिकीं च निर्गच्छन् यां चागच्छन् नैषेधिकीं करोति तदेतद् व्याख्यातम्, उपलक्षणत्वात्सह तृतीयपादेन 'व्यञ्जनमेतद् द्विधे' त्यनेनेति। साम्प्रतम् 'अर्थः पुनर्भवति स एवे'ति गाथावयवार्थः प्रतिपाद्यते–तत्रेत्थमेक एवार्थो भवति–यस्मान्नैषेधिक्यपि नावश्यंकर्त्तव्यव्यापारगोचरतामतीत्य वर्त्तते, यतः प्रविशन् संयमयोगानुपालनाय शेषपरिज्ञानार्थं चेत्थमाह। 'सेज्जानिसीहियाए निसीहियाअभिमुहो होइ'त्ति शय्यैव नैषेधिकी तस्यां शय्यानैषेधिक्यां विषयभूतायां, किम्?, शरीरमपि नैषेधिकीत्युच्यत इति, अत आह–शरीरनैषेधिक्या आगमनं प्रत्यभिमुखस्तु, अतः संवृतगात्रैर्भवितव्यमिति सञ्ज्ञां करोतीति गाथार्थः ॥ इतश्चैक एवार्थो यत आह—

जो होइ निसिद्धप्पा निसीहिया तस्स भावओ होइ। अणिसिद्धस्स निसीहिय केवलमेत्तं हवइ सद्दो ॥१२१॥ (भा०)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

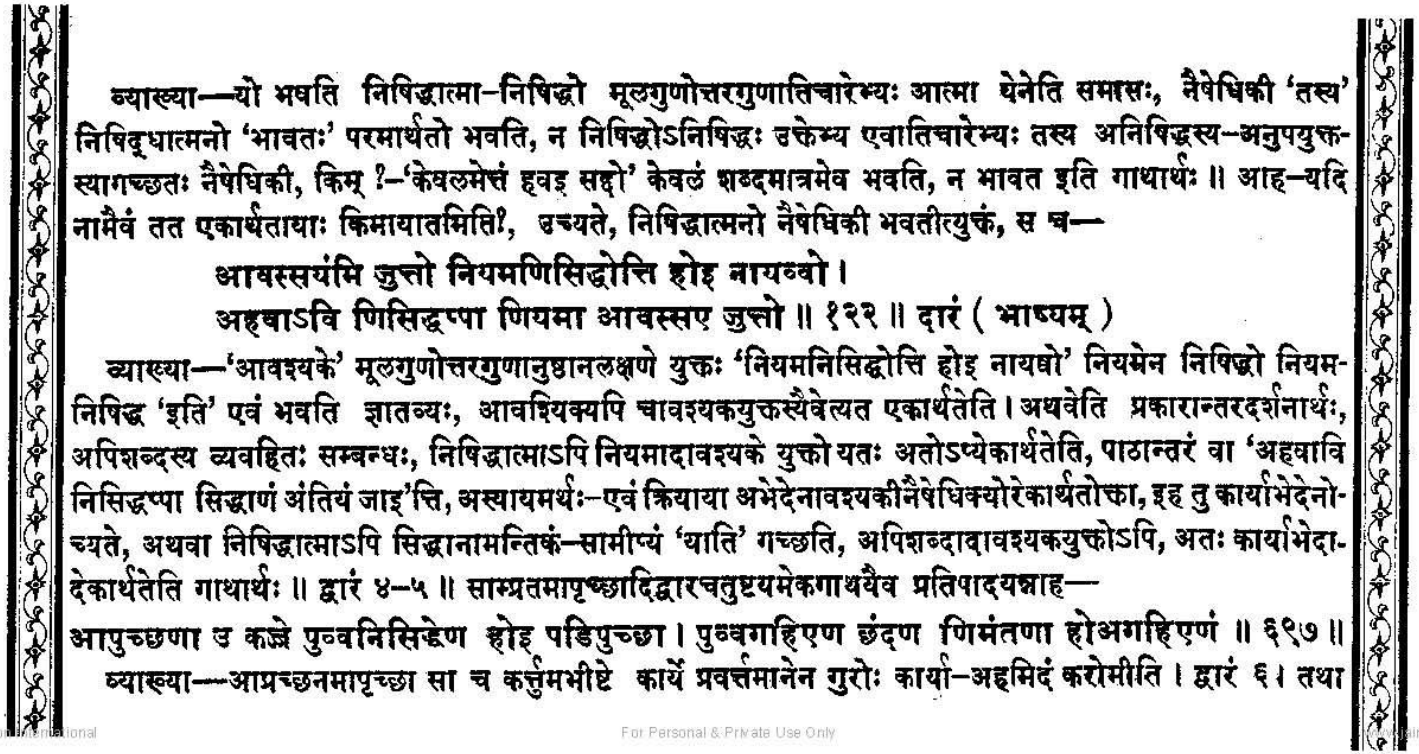

व्याख्या—यो भवति निषिद्धात्मा–निषिद्धो मूलगुणोत्तरगुणातिचारेभ्यः आत्मा येनेति समासः, नैषेधिकी 'तस्य' निषिद्धात्मनो 'भावतः' परमार्थतो भवति, न निषिद्धोऽनिषिद्धः उक्तेभ्य एवातिचारेभ्यः तस्य अनिषिद्धस्य–अनुपयुक्तस्यागच्छतः नैषेधिकी, किम् ?–'केवलमेत्तं हवइ सद्दो' केवलं शब्दमात्रमेव भवति, न भावत इति गाथार्थः ॥ आह–यदि नामैवं तत एकार्थताथाः किमायातमिति?, उच्यते, निषिद्धात्मनो नैषेधिकी भवतीत्युक्तं, स च—

आवस्सयंमि जुत्तो नियमणिसिद्धोत्ति होइ नायव्वो।
अहवाऽवि णिसिद्धप्पा णियमा आवस्सए जुत्तो ॥ १२२ ॥ दारं (भाष्यम्)

व्याख्या—'आवश्यके' मूलगुणोत्तरगुणानुष्ठानलक्षणे युक्तः 'नियमनिसिद्धोत्ति होइ नायव्वो' नियमेन निषिद्धो नियमनिषिद्ध 'इति' एवं भवति ज्ञातव्यः, आवश्यिक्यपि चावश्यकयुक्तस्यैवेत्यत एकार्थतेति। अथवेति प्रकारान्तरदर्शनार्थः, अपिशब्दस्य व्यवहितः सम्बन्धः, निषिद्धात्माऽपि नियमादावश्यके युक्तो यतः अतोऽप्येकार्थतेति, पाठान्तरं वा 'अहवावि निसिद्धप्पा सिद्धाणं अंतियं जाइ'त्ति, अस्यायमर्थः–एवं क्रियाया अभेदेनावश्यकीनैषेधिक्योरेकार्थतोक्ता, इह तु कार्याभेदेनोच्यते, अथवा निषिद्धात्माऽपि सिद्धानामन्तिकं–सामीप्यं 'याति' गच्छति, अपिशब्दादावश्यकयुक्तोऽपि, अतः कार्याभेदादेकार्थतेति गाथार्थः ॥ द्वारं ४–५ ॥ साम्प्रतमापृच्छादिद्वारचतुष्टयमेकगाथयैव प्रतिपादयन्नाह—

आपुच्छणा उ कज्जे पुव्वनिसिद्धेण होइ पडिपुच्छा। पुव्वगहिएण छंदण णिमंतणा होअगहिएणं ॥ ६९७ ॥

व्याख्या—आप्रच्छनमापृच्छा सा च कर्त्तुमभीष्टे कार्ये प्रवर्त्तमानेन गुरोः कार्या–अहमिदं करोमीति। द्वारं ६। तथा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

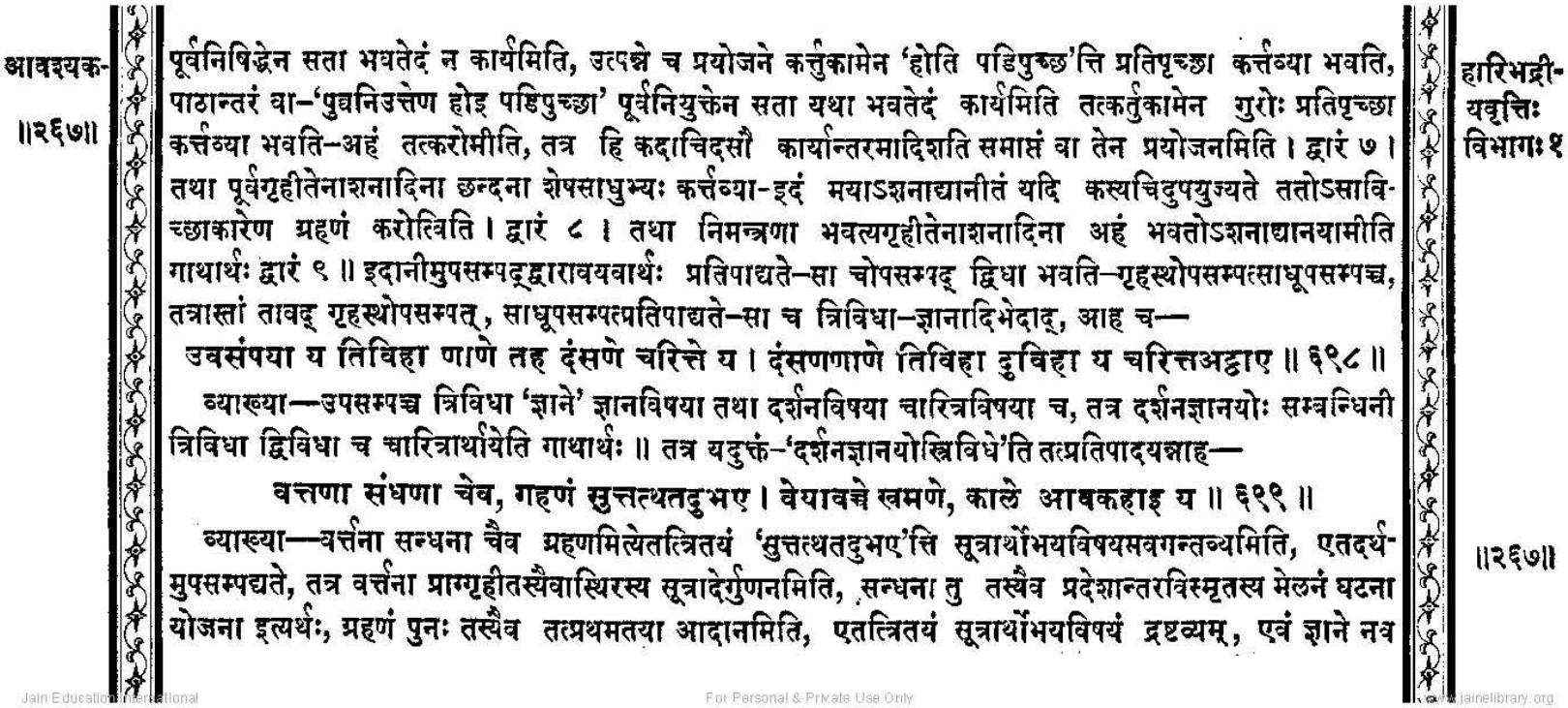

आवश्यक- ॥२६७॥

पूर्वनिषिद्धेन सता भवतेदं न कार्यमिति, उत्पन्ने च प्रयोजने कर्त्तुकामेन 'होति पडिपुच्छ'त्ति प्रतिपृच्छा कर्त्तव्या भवति, पाठान्तरं वा–'पुव्वनिउत्तेण होइ पडिपुच्छा' पूर्वनियुक्तेन सता यथा भवतेदं कार्यमिति तत्कर्तुकामेन गुरोः प्रतिपृच्छा कर्त्तव्या भवति–अहं तत्करोमीति, तत्र हि कदाचिदसौ कार्यान्तरमादिशति समाप्तं वा तेन प्रयोजनमिति । द्वारं ७ । तथा पूर्वगृहीतेनाशनादिना छन्दना शेषसाधुभ्यः कर्त्तव्या-इदं मयाऽशनाद्यानीतं यदि कस्यचिदुपयुज्यते ततोऽसाविच्छाकारेण ग्रहणं करोत्विति । द्वारं ८ । तथा निमन्त्रणा भवत्यगृहीतेनाशनादिना अहं भवतोऽशनाद्यानयामीति गाथार्थः द्वारं ९ ॥ इदानीमुपसम्पद्द्वारावयवार्थः प्रतिपाद्यते–सा चोपसम्पद् द्विधा भवति–गृहस्थोपसम्पत्साधूपसम्पच्च, तत्रास्तां तावद् गृहस्थोपसम्पत्, साधूपसम्पत्प्रतिपाद्यते–सा च त्रिविधा–ज्ञानादिभेदाद्, आह च—

उवसंपया य तिविहा णाणे तह दंसणे चरित्ते य । दंसणणाणे तिविहा दुविहा य चरित्तअट्ठाए ॥ ६९८ ॥

व्याख्या—उपसम्पच्च त्रिविधा 'ज्ञाने' ज्ञानविषया तथा दर्शनविषया चारित्रविषया च, तत्र दर्शनज्ञानयोः सम्बन्धिनी त्रिविधा द्विविधा च चारित्रार्थायेति गाथार्थः ॥ तत्र यदुक्तं–'दर्शनज्ञानयोस्त्रिविधे'ति तत्प्रतिपादयन्नाह—

वत्तणा संधणा चेव, गहणं सुत्तत्थतदुभए । वेयावच्चे खमणे, काले आवकहाइ य ॥ ६९९ ॥

व्याख्या—वर्त्तना सन्धना चैव ग्रहणमित्येतत्त्रितयं 'सुत्तत्थतदुभए'त्ति सूत्रार्थोभयविषयमवगन्तव्यमिति, एतदर्थमुपसम्पद्यते, तत्र वर्त्तना प्राग्गृहीतस्यैवास्थिरस्य सूत्रादेर्गुणनमिति, सन्धना तु तस्यैव प्रदेशान्तरविस्मृतस्य मेलनं घटना योजना इत्यर्थः, ग्रहणं पुनः तस्यैव तत्प्रथमतया आदानमिति, एतत्त्रितयं सूत्रार्थोभयविषयं द्रष्टव्यम्, एवं ज्ञाने नव

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः१ ॥२६७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

भेदाः, दर्शनेऽपि दर्शनप्रभावनीयशास्त्रविषया एत एव द्रष्टव्या इति, अत्र च सन्दिष्टः सन्दिष्टस्योपसम्पद्यते इत्यादिचतुर्भङ्गिका, प्रथमः शुद्धः शेषास्त्वशुद्धा इति, 'द्विविधा च चारित्रार्थाये'ति यदुक्तं तत्प्रदर्शनायाह–'वेयावच्चे खमणे काले आवकहाइ य' चारित्रोपसम्पद् वैयावृत्यविषया क्षपणविषया च, इयं च कालतो यावत्कथिका च भवति, चशब्दादित्वरा च भवति, एतदुक्तं भवति–चारित्रार्थमाचार्याय कश्चिद्वैयावृत्यकरत्वं प्रतिपद्यते, स च कालत इत्वरो यावत्कथिकश्च भवतीति गाथासमासार्थः ॥ साम्प्रतमयमेवार्थो विशेषतः प्रतिपाद्यते–तत्रापि सन्दिष्टेन सन्दिष्टस्योपसम्पद्गातव्येति मौलिकोऽयं गुण इति, एतत्प्रभवत्वादुपसम्पद इति, अतः अमुमेवार्थमभिधित्सुराह—

संदिट्ठो संदिट्ठस्स चेव संपज्जई उ एमाई । चउभंगो एत्थं पुण पढमो भंगो हवइ सुद्धो ॥ ७०० ॥

व्याख्या—'सन्दिष्टो' गुरुणाऽभिहितः सन्दिष्टस्यैवाचार्यस्य यथा अमुकस्य सम्पद्यतां उपसम्पदं प्रयच्छेत इत्यर्थः, एवमादिश्चतुर्भङ्गः, स चायं–तद्यथा–सन्दिष्टः सन्दिष्टस्योक्त एव, सन्दिष्टः असन्दिष्टस्यान्यस्याऽऽचार्यस्येति द्वितीयः, असन्दिष्टः सन्दिष्टस्य, न तावदिदानीं गन्तव्यं गन्तव्यं त्वमुकस्येति तृतीयः, असन्दिष्टः असन्दिष्टस्य–न तावदिदानीं गन्तव्यं न चामुकस्येति, अत्र पुनः प्रथमो भङ्गो भवति शुद्धः, पुनःशब्दस्य विशेषणार्थत्वात् द्वितीयपदेनाव्यवच्छित्तिनिमित्तमन्येऽपि द्रष्टव्या इति गाथार्थः ॥ साम्प्रतं वर्त्तनादिस्वरूपप्रतिपादनायाह—

अथिरस्स पुव्वगहियस्स वत्तणा जं इहं थिरीकरणं । तस्सेव पएसंतरणट्ठस्सऽणुसंधणा घडणा ॥ ७०१ ॥

१ आचार्यस्य.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

गहणं तप्पढमतया सुत्ते अत्थे य तदुभए चेव । अत्थग्गहणंमि पायं एस विही होइ णायव्वो ॥ ७०२ ॥

गाथाद्वयं निगदसिद्धमेव । नवरं–प्रायोग्रहणं सूत्रग्रहणेऽपि कश्चिद्भवत्येव प्रमार्ज्जनादिरिति ज्ञापनार्थम् ॥ साम्प्रतमधिकृतविधिप्रदर्शनाय द्वारगाथामाह—

मज्जणणिसेज्जअक्खा कितिकंमुस्सग्ग वंदणं जेट्ठे । भासंतो होई जेट्ठो नो परियाएण तो वन्दे ॥ ७०३ ॥

एतद्व्याचिख्यासयैवेदमाह—

ठाणं पमज्जिऊणं दोण्णि निसिज्जाउ होंति कायव्वा । एगा गुरुणो भणिया बितिया पुण होंति अक्खाणं ॥ ७०४ ॥

निगद सिद्धा, नवरम्–'अक्खाणं'ति समवसरणस्य, न चाकृतसमवसरणेन व्याख्या कर्त्तव्येत्युत्सर्गः ॥ व्याख्यातं द्वारत्रयं, कृतिकर्मद्वारव्याचिख्यासयाऽऽह—

दो चेव मत्तगाइं खेले तह काइयाए बीयं तु । जावइया य सुणेंती सव्वेऽवि य ते तु वंदंति ॥ ७०५ ॥

निगदसिद्धैव, नवरं मात्रकं–समाधिः, कृतिकर्मद्वार एव च विशेषाभिधानमदुष्टमिति, अर्द्धकृतव्याख्यानोत्थानानुत्थानाभ्यां पलिमन्थाऽऽत्मविराधनादयश्च दोषा भावनीया इति द्वारम् । अधुना कायोत्सर्गद्वारं व्याचिख्यासुराह—

सव्वे काउस्सग्गं करेंति सव्वे पुणोऽवि वंदंति । णासण्णे णाइदूरे गुरुवयणपडिच्छगा होंति ॥ ७०६ ॥

व्याख्या—सर्वे श्रोतारः 'श्रेयांसि बहुविघ्नानी'तिकृत्वा तद्विघातायानुयोगप्रारम्भनिमित्तं कायोत्सर्गं कुर्वन्ति, तं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

चोत्सार्य सर्वे पुनरपि वन्दन्ते, ततो नासन्ने नातिदूरे व्यवस्थिताः सन्तः, किम् ?– गुरुवचनप्रतीच्छका भवन्ति–शृण्वन्तीति गाथार्थः ॥ साम्प्रतं श्रवणविधिप्रतिपादनायाह—

णिद्दाविगहापरिवज्जिएहिं गुत्तेहिं पंजलिउडेहिं । भत्तिबहुमाणपुव्वं उवउत्तेहिं सुणेयव्वं ॥ ७०७ ॥
अभिकंखंतेहिं सुहासियाइँ वयणाइँ अत्थसाराइं । विम्हियमुहेहिं हरिसागएहिं हरिसं जणंतेहिं ॥ ७०८ ॥

गाथाद्वयं निगदसिद्धं । नवरं 'हरिसागएहिं' ति सञ्जातहर्षैरित्यर्थः, अन्येषां च संवेगकारणादिना हर्षं जनयद्भिः, एवं च शृण्वद्भिस्तैर्गुरोरतीव परितोषो भवतीति ॥ ततः किमित्याह—

गुरुपरिओसगएणं गुरुभत्तीए तहेव विणएणं । इच्छियसुत्तत्थाणं खिप्पं पारं समुवयंति ॥ ७०९ ॥

व्याख्या—'गुरुपरितोषगतेन' गुरुपरितोषजातेन सता गुरुभक्त्या तथैव विनयेन, किम् ?, सम्यक्सद्भावप्ररूपणया ईप्सितसूत्रार्थयोः 'क्षिप्रं' शीघ्रं पारं समुपयान्ति–निष्ठां व्रजन्तीति गाथार्थः ॥

वक्खाणसमत्तीए जोगं काऊण काइयाईणं । वंदंति तओ जेट्ठं अण्णे पुव्वं चिय भणन्ति ॥ ७१० ॥

निगदसिद्धा । नवरम्, अन्ये आचार्या इत्थमभिदधति–किल पूर्वमेव व्याख्यानारम्भकाले ज्येष्ठं वन्दन्त इति । द्वारगाथापश्चार्धमाक्षेपद्वारेण प्रपञ्चतो व्याचिख्यासुराह—

चोएति जइ हु जिट्ठो कहिंचि सुत्तत्थधारणाविगलो । वक्खाणलद्धिहीणो निरत्थयं वंदणं तंमि ॥ ७११ ॥

निगदसिद्धा । नवरं निरर्थकं वन्दनं, तस्मिंस्तत्फलस्य प्रत्युच्चारकश्रवणस्याभावादिति भावना ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

अह वयपरियाएहिं लहुगोऽविहु भासओ इहं जेट्ठो। रायणियवंदणे पुण तस्सावि आसायणा भंते!॥ ७१२॥

व्याख्या—अथ वयःपर्यायाभ्यां लघुरपि भाषक एवेह ज्येष्ठः परिगृह्यते, रत्नाधिकवन्दने पुनः तस्याप्याशातना भदन्त! प्राप्नोति, तथाहि–न युज्यत एव चिरकालप्रव्रजितान् लघोर्वन्दनं दापयितुमिति गाथार्थः॥ इत्थं पराभिप्रायमाशङ्क्याह—

जइवि वयमाइएहिं लहुओ सुत्तत्थधारणापडुओ। वक्खाणलद्धिमंतो सो चिय इह घेप्पई जेट्ठो॥ ७१३॥

व्याख्या—प्रकटार्था। आशातनादोषपरिजिहीर्षया त्वाह—

आसायणावि णेवं पडुच्च जिणवयणभासयं जम्हा। वंदणयं राइणिए तेण गुणेणंपि सो चेव॥ ७१४॥

प्रकटार्थैव। नवरं 'तेन गुणेन' अर्हद्वचनव्याख्यानलक्षणेनेति। इदानीं प्रसङ्गतो वन्दनविषय एव निश्चयव्यवहारनयमतप्रदर्शनायाह—

न वओ एत्थ पमाणं न य परियाओऽवि णिच्छयमएणं। ववहारओ उ जुज्जइ उभयनयमयं पुण पमाणं॥ ७१५॥

व्याख्या—न 'वयः' अवस्थाविशेषलक्षणम् 'अत्र' वन्दनकविधौ प्रमाणं, न च 'पर्यायोऽपि' प्रव्रज्याप्रतिपत्तिलक्षणः 'निश्चयमतेन' निश्चयनयाभिप्रायेण, ज्येष्ठवन्दनादिव्यवहारलोपातिप्रसङ्गनिवृत्त्यर्थमाह–व्यवहारतस्तु युज्यते, किमत्र प्रमाणमिति सन्देहापनोदार्थमाह–उभयनयमतं पुनः प्रमाणमिति गाथार्थः॥ प्रकृतमेवार्थं समर्थयन्नाह—

निच्छयओ दुन्नेयं–को भावे कम्मि वट्टई समणो?। ववहारओ उ कीरइ जो पुव्वठिओ चरित्तंमि॥ ७१६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

व्याख्या—निश्चयतो दुर्ज्ञेयं–को भावे कस्मिन्–प्रशस्तेऽप्रशस्ते वा वर्त्तते श्रमण इति, भावश्चेह ज्येष्ठः, ततश्चानतिशयिनः वन्दनकरणाभाव एव प्राप्तं इत्यतो विधिमभिधित्सुराह–व्यवहारतस्तु क्रियते वन्दनं 'यः पूर्वस्थितश्चारित्रे' यः प्रथमं प्रव्रजितः सन्ननुपलब्धातिचार इति गाथार्थः ॥ आह–सम्यक् तद्गतभावापरिज्ञाने सति किमित्येतदेवमिति, उच्यते, व्यवहारप्रामाण्यात्, तस्यापि च बलवत्त्वाद्, आह च भाष्यकारः—

ववहारोऽविहु बलवं जं छउमत्थंपि वंदई अरहा। जा होइ अणाभिण्णो जाणंतो धंमयं एयं ॥ १२३॥ (भा०)

व्याख्या—व्यवहारोऽपि च बलवानेव, 'यद्' यस्मात् छद्मस्थमपि पूर्वरत्नाधिकं गुर्वादि वन्दते 'अर्हन्नपि' केवल्यपि, अपिशब्दोऽत्रापि सम्बध्यते। किं सदा ?, नेत्याह–'जा होइ अणाभिन्नो'त्ति यावद् भवत्यनभिज्ञातः यथाऽयं केवलीति, किमिति वन्दत इति, अत आह–जानन् धर्मतामेतां व्यवहारनयबलातिशयलक्षणामिति गाथार्थः ॥ आह–यद्येवं सुतरां वयःपर्यायहीनस्य तदधिकान् वन्दापयितुमयुक्तम्, आशातनाप्रसङ्गादिति, उच्यते,

एत्थ उ जिणवयणाओ सुत्तासायणबहुत्तदोसाओ। भासंतगजेट्ठगस्स उ कायव्वं होइ किइकम्मं ॥ ७१७ ॥

व्याख्या—'अत्र तु' व्याख्याप्रस्तावेवन्दनाधिकारे 'जिनवचनात्' तीर्थकरोक्तत्वात् तथा च अवन्द्यमाने सूत्राशातनादोषबहुत्वात् 'भाषमाणज्येष्ठस्यैव' प्रत्युच्चारणसमर्थस्यैवेत्यर्थः, किं ?, कर्त्तव्यं भवति 'कृतिकर्म्म'वन्दनमिति गाथार्थः ॥

* प्राप्नोतीत्यतः प्र०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

एवं तावद् ज्ञानोपसम्पद्विधिरुक्तः, दर्शनोपसम्पद्विधिरप्यनेनैव तुल्ययोगक्षेमत्वादुक्त एव वेदितव्यः, तथा च दर्शनप्रभावनीयशास्त्रपरिज्ञानार्थमेव दर्शनोपसम्पदिति ॥ अधुना चारित्रोपसम्पद्विधिमभिधातुकाम आह—

दुविहा य चरित्तंमी वेयावच्चे तहेव खमणे य । णियगच्छा अण्णंमि य सीयणदोसाइणा होति ॥ ७१८ ॥

व्याख्या—द्विविधा च चारित्रविषयोपसम्पद् वैयावृत्त्यविषया तथैव क्षपणविषया च, आह–किमत्रोपसम्पदा ?, स्वगच्छ एव तत्कस्मान्न क्रियत इति, उच्यते, निजगच्छादन्यस्मिन् गमनं सीदनदोषादिना भवति गच्छस्य, आदिशब्दादन्यभावादिपरिग्रह इति गाथार्थः ॥

इत्तरियाइविभासा वेयावच्चंमि तहेव खमणे य। अविगिट्ठविगिट्ठंमि य गणिणो गच्छस्स पुच्छाए ॥ ७१९ ॥

व्याख्या—इह चारित्रार्थमाचार्यस्य कश्चिद्वैयावृत्यकरत्वं प्रतिपद्यते, स च कालत इत्वरो यावत्कथिकश्च भवति, आचार्यस्यापि वैयावृत्यकरोऽस्ति वा न वा, तत्रायं विधिः–यदि नास्ति ततोऽसाविष्यत एव, अथास्ति स इत्वरो वा स्याद्यावत्कथिको वा, आगन्तुकोऽप्येवं द्विभेद एव, तत्र यदि द्वावपि यावत्कथिकौ ततश्च यो लब्धिमान् स कार्य्यते, इतरस्तूपाध्यायादिभ्यो दीयते इति, अथ द्वावपि लब्धियुक्तौ ततो वास्तव्य एव कार्य्यते, इतरस्तूपाध्यायादिभ्यो दीयत इति, अथ नेच्छति ततो वास्तव्य एव प्रीतिपुरस्सरं तेभ्यो दीयते, आगन्तुकस्तु कार्यत इति, अथ प्राक्तनोऽप्युपाध्यायादिभ्यो नेच्छति तत आगन्तुको विसर्ज्यत एव, अथ वास्तव्यो यावत्कथिक इतरस्त्वित्वर इत्यत्राप्येवमेव भेदाः कर्त्तव्याः यावदागन्तुको विसर्ज्यते, नानात्वं तु वास्तव्य उपाध्यायादिभ्योऽनिच्छन्नपि प्रीत्या विश्राम्यत इति, अथ वास्तव्यः स्वल्पित्वरः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आगन्तुकस्तु यावत्कथिकः, ततोऽसौ वास्तव्योऽवधिकालं यावदुपाध्यायादिभ्यो दीयते, शेषं पूर्ववत् , अथ द्वावपीत्वरौ तत्राप्येक उपाध्यायादिभ्यः कार्य्यते शेषं पूर्ववद्, अन्यतमो वाऽवधिकालं यावद्धार्यत इत्येवं यथाविधिना विभाषा कार्येति। उक्ता वैयावृत्योपसम्पत्, साम्प्रतं क्षपणोपसम्पत्प्रतिपाद्यते–चारित्रनिमित्तं कश्चित्क्षपणार्थमुपसम्पद्यते, स च क्षपको द्विविधः–इत्वरो यावत्कथिकश्च, यावत्कथिक उत्तरकालेऽनशनकर्त्ता, इत्वरस्तु द्विधा–विकृष्टक्षपकोऽविकृष्टक्षपकश्च, तत्राष्टमादिक्षपको विकृष्टक्षपकः, चतुर्थषष्ठक्षपकस्त्वविकृष्ट इति। तत्रायं विधिः–अविकृष्टक्षपकः खल्वाचार्येण प्रष्टव्यः–हे आयुष्मन् ! पारणके त्वं कीदृशो भवसि ?, यद्यसावाह–ग्लानोपमः, ततोऽसावभिधातव्यः–अलं तव क्षपणेन, स्वाध्याय-वैयावृत्यकरणे यत्नं कुरु, इतरोऽपि पृष्टः सन्नेवमेव प्रज्ञाप्यते, अन्ये तु व्याचक्षते–विकृष्टक्षपकः पारणककाले ग्लानकल्प-तामनुभवन्नपीष्यत एव, यस्तु मासादिक्षपको यावत्कथिको वा स इष्यत एव, तत्राप्याचार्येण गच्छः प्रष्टव्यो–यथाऽयं क्षपक उपसम्पद्यत इति, अनापृच्छ्य गच्छं सङ्गच्छतः सामाचारीविराधना, यतस्ते सन्दिष्टा अप्युपधिप्रत्युपेक्षणादि तस्य न कुर्वन्ति, अथ पृष्टा ब्रुवते–यथाऽस्माकं एकः क्षपकोऽस्त्येव, तस्य क्षपणपरिसमाप्तावस्य करिष्यामः, ततोऽसौ ध्रियते, अथ नेच्छन्ति ततस्त्यज्यते, अथ गच्छस्तमप्यनुमन्यते ततोऽसाविष्यत एव, तस्य च विधिना प्रतीच्छितस्योद्वर्त्तनादि कार्यं, यत्पुनः प्रमादतोऽनाभोगतो वा न कुर्वन्ति शिष्यास्तदाऽऽचार्येण चोदनीया इत्यलं प्रसङ्गेन इति गाथार्थः ॥ चारित्रोपस-म्पद्विधिविशेषप्रतिपादनायाह—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

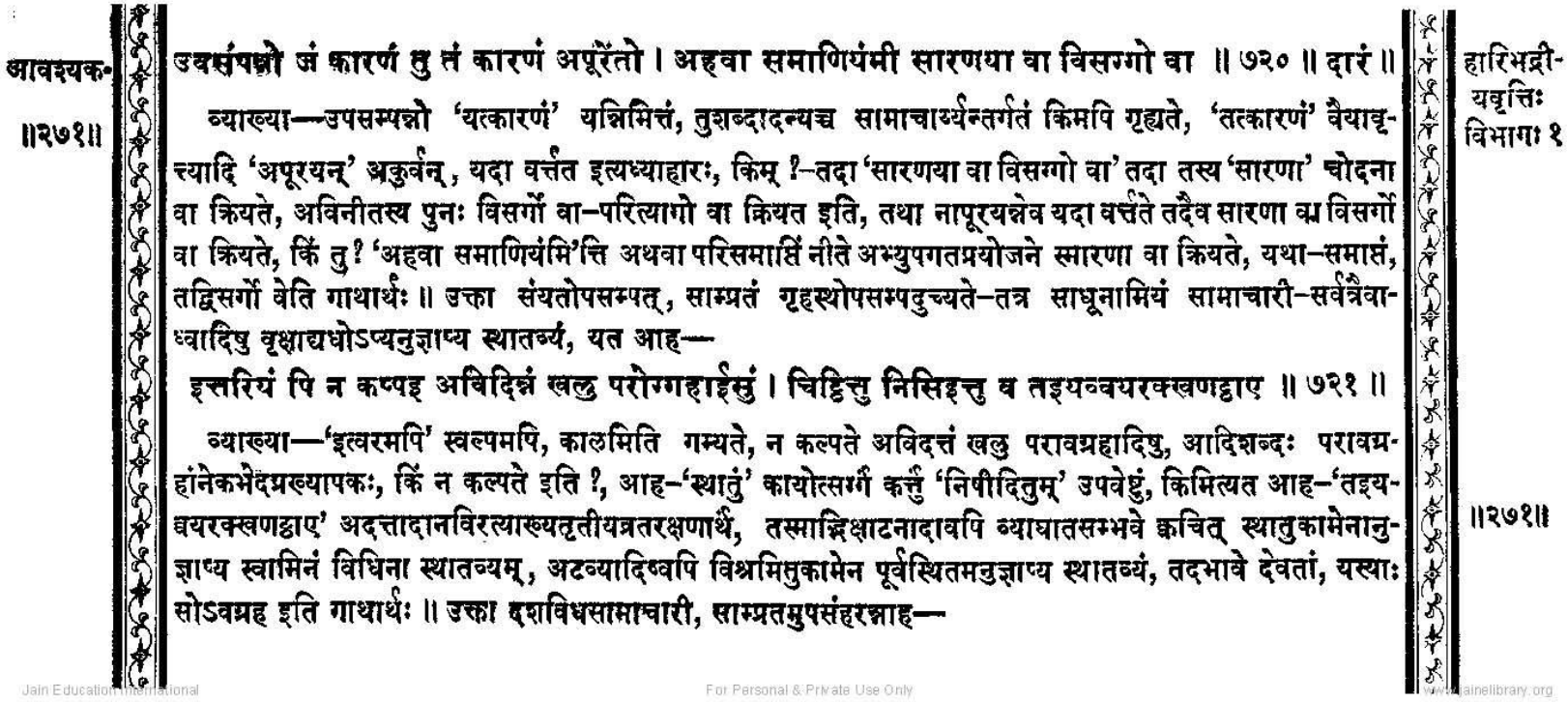

आवश्यक- ॥२७१॥

उवसंपन्नो जं कारणं तु तं कारणं अपूरेंतो । अहवा समाणियंमी सारणया वा विसग्गो वा ॥ ७२० ॥ दारं ॥

व्याख्या—उपसम्पन्नो 'यत्कारणं' यन्निमित्तं, तुशब्दादन्यच्च सामाचार्य्यन्तर्गतं किमपि गृह्यते, 'तत्कारणं' वैयावृत्त्यादि 'अपूरयन्' अकुर्वन्, यदा वर्त्तत इत्यध्याहारः, किम् ?–तदा 'सारणया वा विसग्गो वा' तदा तस्य 'सारणा' चोदना वा क्रियते, अविनीतस्य पुनः विसर्गो वा–परित्यागो वा क्रियत इति, तथा नापूरयन्नेव यदा वर्त्तते तदैव सारणा वा विसर्गो वा क्रियते, किं तु? 'अहवा समाणियंमि'त्ति अथवा परिसमाप्तिं नीते अभ्युपगतप्रयोजने स्मारणा वा क्रियते, यथा–समाप्तं, तद्विसर्गो वेति गाथार्थः ॥ उक्ता संयतोपसम्पत्, साम्प्रतं गृहस्थोपसम्पदुच्यते–तत्र साधूनामियं सामाचारी–सर्वत्रैवाध्वादिषु वृक्षाद्यधोऽप्यनुज्ञाप्य स्थातव्यं, यत आह—

इत्तरियं पि न कप्पइ अविदिन्नं खलु परोग्गहाईसुं । चिट्ठित्तु निसिइत्तु व तइयव्वयरक्खणट्ठाए ॥ ७२१ ॥

व्याख्या—'इत्वरमपि' स्वल्पमपि, कालमिति गम्यते, न कल्पते अविदत्तं खलु परावग्रहादिषु, आदिशब्दः परावग्रहानेकभेदग्रख्यापकः, किं न कल्पते इति ?, आह–'स्थातुं' कायोत्सर्गं कर्त्तुं 'निषीदितुम्' उपवेष्टुं, किमित्यत आह–'तइयव्वयरक्खणट्ठाए' अदत्तादानविरत्याख्यतृतीयव्रततरक्षणार्थं, तस्माद्भिक्षाटनादावपि व्याघातसम्भवे क्वचित् स्थातुकामेनानुज्ञाप्य स्वामिनं विधिना स्थातव्यम्, अटव्यादिष्वपि विश्रमितुकामेन पूर्वस्थितमनुज्ञाप्य स्थातव्यं, तदभावे देवतां, यस्याः सोऽवग्रह इति गाथार्थः ॥ उक्ता दशविधसामाचारी, साम्प्रतमुपसंहरन्नाह—

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

॥२७१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

एवं सामायारी कहिया दसहा समासओ एसा । संजमतवड्ढयाणं निग्गंथाणं महरिसीणं ॥ ७२२ ॥

निगदसिद्धा । सामाचार्य्यासेवकानां फलप्रदर्शनायाह—

एयं सामायारिं जुंजंता चरणकरणमाउत्ता । साहू खवंति कम्मं अणेगभवसंचियमणंतं ॥ ७२३ ॥

निगदसिद्धा एव । इदानीं पदविभागसामाचार्य्याः प्रस्तावः, सा च कल्पव्यवहाररूपा बहुविस्तरा स्वस्थानादवसेया, इत्युक्तः सामाचार्युपक्रमकालः, साम्प्रतं यथाऽऽयुष्कोपक्रमकालः प्रतिपाद्यते–स च सप्तधा, तद्यथा—

अज्झवसाणनिमित्ते आहारे वेयणा पराघाए । फासे आणापाणु सत्तविहं झिज्जए आउं ॥ ७२४ ॥

व्याख्या—अध्यवसानमेव निमित्तम् अध्यवसाननिमित्तं तस्मिन्नध्यवसाननिमित्ते सति, अथवा अध्यवसानं राग-स्नेहभयभेदेन त्रिधा तस्मिन्नध्यवसाने सति, तथा दण्डादिके निमित्ते सति, आहारे प्रचुरे सति, वेदनायां नयनादिसम्ब-न्धिन्यां सत्यां, पराघातो गर्त्तापातादिसमुत्थस्तस्मिन् सति, स्पर्शे भुजङ्गादिसम्बन्धिनि, प्राणापानयोर्निरोधे, किम् ?, सर्वत्रैव क्रियामाह–'सप्तविधं' सप्तप्रकारमेवं भिद्यते आयुरिति गाथासमुदायार्थः ॥ अवयवार्थस्तूदाहरणेभ्योऽवसेयः, तानि चामूनि–रागाध्यवसाने सति भिद्यते आयुर्यथा—

एगस्स गावीओ हरियाओ, ताहे कुढिया पच्छओ लग्गा, तेहिं नियत्तियाओ, तत्थेगो तरुणो अतिसयदिव्वरूवधारी

१ एकस्य गावो हृताः, तदा ग्रामाधिपाः (आरक्षकाः) पश्चाल्लग्नाः, तैर्निर्वर्त्तिताः, तत्रैकः तरुणोऽतिशयदिव्यरूपधारी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आयुष्य-उपक्रमस्य सप्त कारणानि

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

तिसिओ गामं पविट्ठो, तस्स तरुणीए नीणियमुदगं, सो य पीतो, सा तस्स अणुरत्ता, होक्कारंतस्सवि ण ठाति, सो उठित्ता गतो, सावि तं पलोएंती तहेव उणुंयत्तेति, जाहे अदिस्सो जाओ ताहे तहठिया चेव रागसंमोहियमणा उयल्ला। एवं रागज्झवसाणे भिज्जति आउंति। तथा स्नेहाध्यवसाने सति भिद्यते आयुर्यथा–एगस्स वाणियगस्स तरुणी महिला, ताणि परोप्परमतीवमणुरत्ताणि, ताहे सो वाणिज्जगेण गतो, पडिनियत्तो वसहिं एक्काहेण ण पावइ, ताहे वयंसगा से भणंति–पिच्छामो किं सच्चो अणुरागो न वत्ति ?, ततो एगेणागंतूण भणिया–सो मउत्ति, तीए भणियं–किं सच्चं ?, सच्चं सच्चंति, ततो तिन्निवारे पुच्छित्ता मया, इयरस्स कहियं, सोऽवि तह चेव मतो। एवं स्नेहाध्यवसाने सति भिद्यते आयुरिति, आह–रागस्नेहयोः कः प्रतिविशेष इति ?, उच्यते, रूपाद्याक्षेपजनितः प्रीतिविशेषो रागः, सामान्यस्त्वपत्यादिगोचरः स्नेह इति, भयाध्यवसाने भिद्यते आयुर्यथा सोमिलस्येति–बारवतीए वासुदेवो राया, वसुदेवो से पिया देवई माया, सा कंचि महिलं पुत्तस्स थणं देंतिं दट्ठूण अद्धितिं पगया, वासुदेवेण पुच्छिया–अम्मो ! कीस अद्धितिं पकरेसि ?, तीए भणियं–

१ तृषितो ग्रामं प्रविष्टः, तस्मै तरुण्याऽऽनीतमुदकं, स च पीतवान्, सा तस्मिन्ननुरक्ता, हुङ्कारयत्यपि न तिष्ठति, स उत्थाय गतः, सापि तं प्रलोकयन्ती तथैव स्थितेति (?) यदाऽदृश्यो जातस्तदा तथास्थितव रागसंमूढमना मृता। एवं रागाध्यवसानेन भिद्यते आयुरिति। एकस्य वणिजस्तरुणी महिला, तौ परस्परमतीव अनुरक्तौ, तदा स वाणिज्याय गतः, प्रतिनिवृत्तो वसतिमेकाहेन न प्राप्स्यति, तदा वयस्यास्तस्य भणन्ति–प्रेक्षामहे किं सत्योऽनुरागो न वेति, तत एकेनागत्य भणिता–स मृत इति, तया भणितम्–किं सत्यं ?, सत्यं सत्यमिति, ततः त्रीन् वारान् पृष्ट्वा मृता, इतरस्मै कथितं, सोऽपि तथैव मृतः। द्वारिकायां वासुदेवो राजा, वसुदेवस्तस्य पिता देवकी माता, सा काञ्चिन्महिलां पुत्राय स्तन्यं ददतीं दृष्ट्वाऽधृतिं प्रगता, वासुदेवेन पृष्टा–अम्ब ! किमधृतिं प्रकरोषि ?, तया भणितम् * ताहे पउत्तेति प्र.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

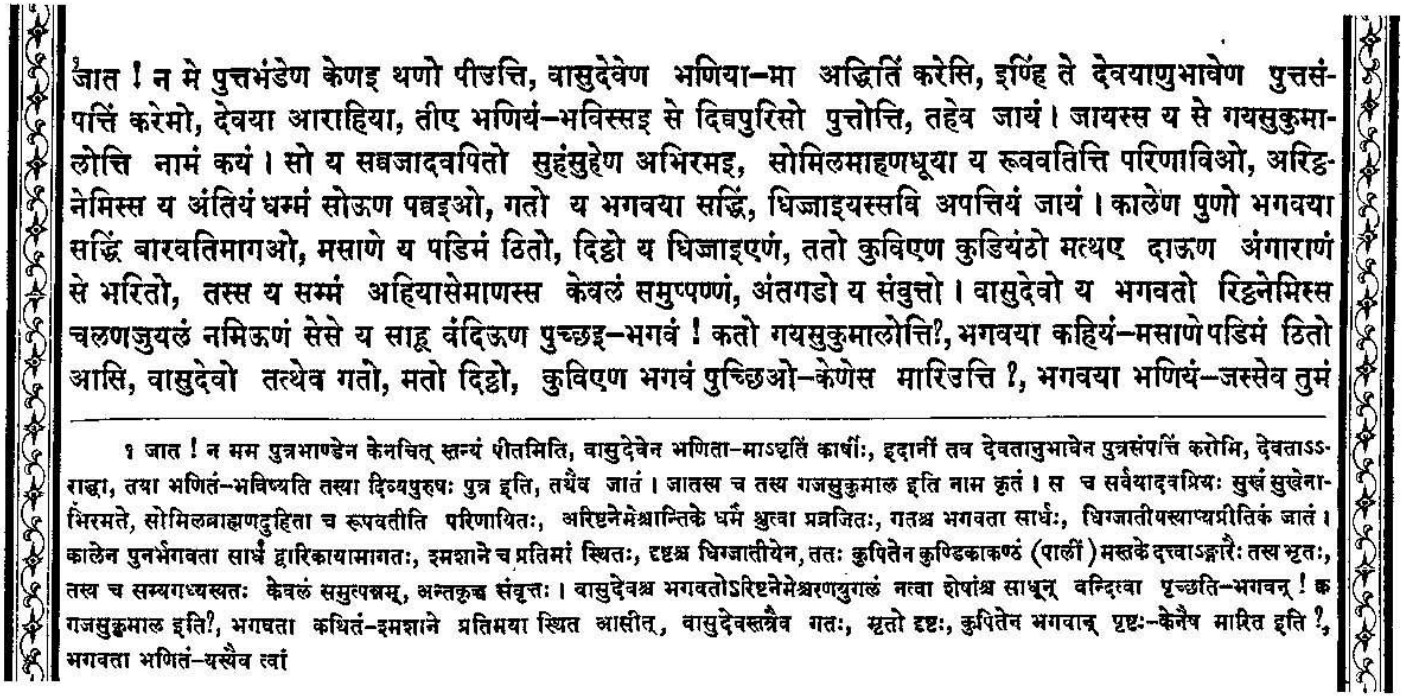

जात ! न मे पुत्तभंडेण केणइ थणो पीउत्ति, वासुदेवेण भणिया–मा अद्धितिं करेसि, इण्हिं ते देवयाणुभावेण पुत्तसंपत्तिं करेमो, देवया आराहिया, तीए भणियं–भविस्सइ से दिव्वपुरिसो पुत्तोत्ति, तहेव जायं। जायस्स य से गयसुकुमालोत्ति नामं कयं। सो य सव्वजादवप्पितो सुहंसुहेण अभिरमइ, सोमिलमाहणधूया य रूववतित्ति परिणाविओ, अरिट्ठनेमिस्स य अंतियं धम्मं सोऊण पव्वइओ, गतो य भगवया सद्धिं, धिज्जाइयस्सवि अपत्तियं जायं। कालेण पुणो भगवया सद्धिं बारवतिमागओ, मसाणे य पडिमं ठितो, दिट्ठो य धिज्जाइएणं, ततो कुविएण कुडियंठो मत्थए दाऊण अंगाराणं से भरितो, तस्स य सम्मं अहियासेमाणस्स केवलं समुप्पण्णं, अंतगडो य संवुत्तो। वासुदेवो य भगवतो रिट्ठनेमिस्स चलणजुयलं नमिऊणं सेसे य साहू वंदिऊण पुच्छइ–भगवं ! कतो गयसुकुमालोत्ति?, भगवया कहियं–मसाणे पडिमं ठितो आसि, वासुदेवो तत्थेव गतो, मतो दिट्ठो, कुविएण भगवं पुच्छिओ–केणेस मारिउत्ति ?, भगवया भणियं–जस्सेव तुमं

---

१ जात ! न मम पुत्रभाण्डेन केनचित् स्तन्यं पीतमिति, वासुदेवेन भणिता–माऽधृतिं कार्षीः, इदानीं तव देवतानुभावेन पुत्रसंपत्तिं करोमि, देवताऽऽराद्धा, तया भणितं–भविष्यति तस्या दिव्यपुरुषः पुत्र इति, तथैव जातं। जातस्य च तस्य गजसुकुमाल इति नाम कृतं। स च सर्वेषादवप्रियः सुखं सुखेनाभिरमते, सोमिलब्राह्मणदुहिता च रूपवतीति परिणायितः, अरिष्टनेमेश्चान्तिके धर्मं श्रुत्वा प्रव्रजितः, गतश्च भगवता सार्धः, धिग्जातीयस्याप्यप्रीतिकं जातं। कालेन पुनर्भगवता सार्धं द्वारिकायामागतः, श्मशाने च प्रतिमां स्थितः, दृष्टश्च धिग्जातीयेन, ततः कुपितेन कुण्डिकाकण्ठं (पालीं) मस्तके दत्त्वाऽङ्गारैः तस्य भृतः, तस्य च सम्यगध्यस्यतः केवलं समुत्पन्नम्, अन्तकृच्च संवृत्तः। वासुदेवश्च भगवतोऽरिष्टनेमेश्चरणयुगलं नत्वा शेषांश्च साधून् वन्दित्वा पृच्छति–भगवन् ! क गजसुकुमाल इति?, भगवता कथितं–श्मशाने प्रतिमया स्थित आसीत्, वासुदेवस्तत्रैव गतः, मृतो दृष्टः, कुपितेन भगवान् पृष्टः–केनैष मारित इति ?, भगवता भणितं–यस्यैव त्वं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

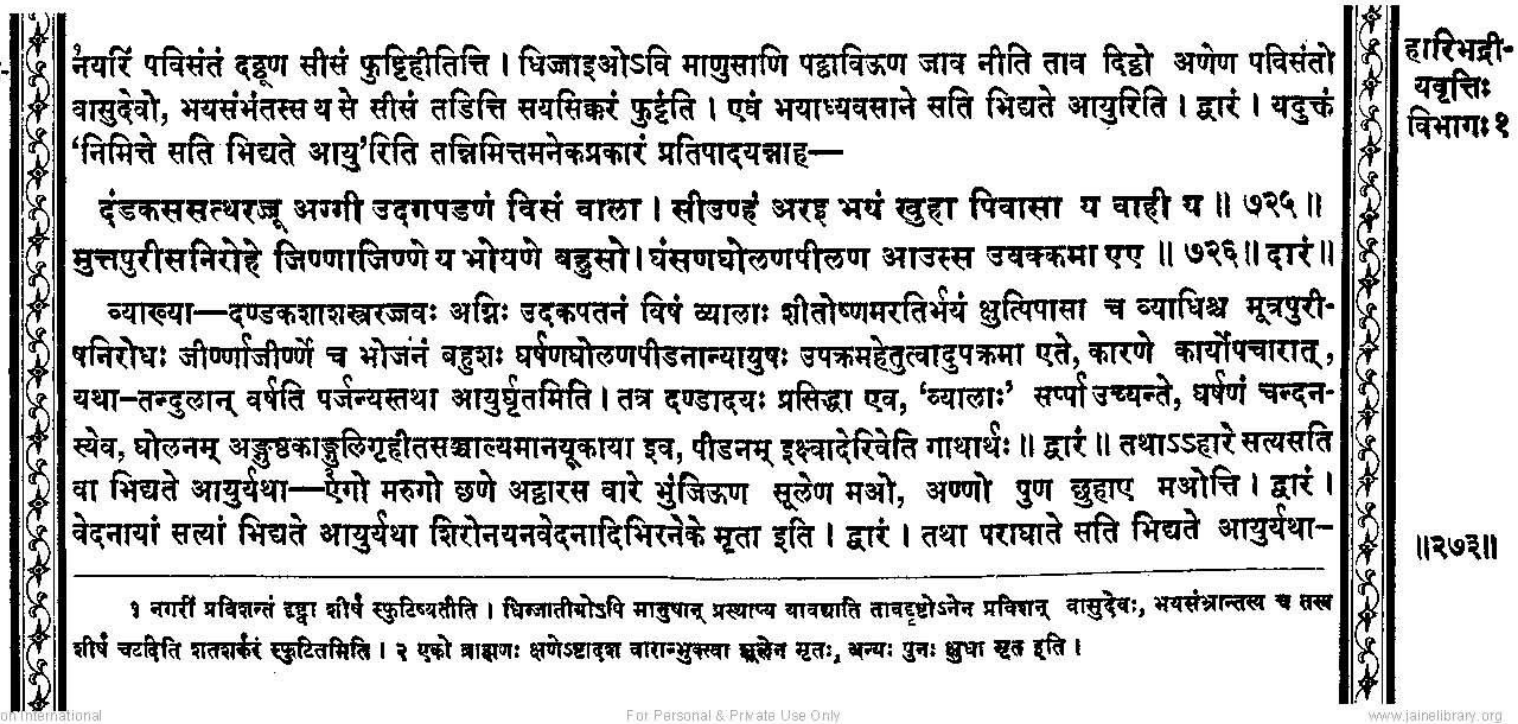

[1]नयरिं पविसंतं दट्ठूण सीसं फुट्टिहीतित्ति । धिज्जाइओऽवि माणुसाणि पट्ठाविऊण जाव नीति ताव दिट्ठो अणेण पविसंतो वासुदेवो, भयसंभंतस्स य से सीसं तडित्ति सयसिक्करं फुट्टंति । एवं भयाध्यवसाने सति भिद्यते आयुरिति । द्वारं । यदुक्तं 'निमित्ते सति भिद्यते आयु'रिति तन्निमित्तमनेकप्रकारं प्रतिपादयन्नाह—

दंडकससत्थरज्जू अग्गी उदगपडणं विसं वाला । सीउण्हं अरइ भयं खुहा पिवासा य वाही य ॥ ७२५ ॥
मुत्तपुरीसनिरोहे जिण्णाजिण्णे य भोयणे बहुसो । घंसणघोलणपीलण आउस्स उवक्कमा एए ॥ ७२६ ॥ दारं ॥

व्याख्या—दण्डकशाशस्त्ररज्जवः अग्निः उदकपतनं विषं व्यालाः शीतोष्णमरतिर्भयं क्षुत्पिपासा च व्याधिश्च मूत्रपुरीषनिरोधः जीर्णाजीर्णे च भोजनं बहुशः घर्षणघोलणपीडनान्यायुषः उपक्रमहेतुत्वादुपक्रमा एते, कारणे कार्योपचारात्, यथा–तन्दुलान् वर्षति पर्जन्यस्तथा आयुर्घृतमिति । तत्र दण्डादयः प्रसिद्धा एव, 'व्यालाः' सर्प्पा उच्यन्ते, घर्षणं चन्दनस्येव, घोलनम् अङ्गुष्ठकाङ्गुलिगृहीतसञ्चाल्यमानयूकाया इव, पीडनम् इक्ष्वादेरिवेति गाथार्थः ॥ द्वारं ॥ तथाऽऽहारे सत्यसति वा भिद्यते आयुर्यथा—एगो मरुगो छणे अट्ठारस वारे भुंजिऊण सूलेण मओ, अण्णो पुण छुहाए मओत्ति । द्वारं । वेदनायां सत्यां भिद्यते आयुर्यथा शिरोनयनवेदनादिभिरनेके मृता इति । द्वारं । तथा पराघाते सति भिद्यते आयुर्यथा–

---

१ नगरीं प्रविशन्तं दृष्ट्वा शीर्षं स्फुटिष्यतीति । धिग्जातीयोऽपि मानुषान् प्रस्थाप्य यावद्याति तावद्दृष्टोऽनेन प्रविशन् वासुदेवः, भयसंभ्रान्तस्य च तस्य शीर्षं चटदिति शतशर्करं स्फुटितमिति । २ एको ब्राह्मणः क्षणेऽष्टादश वारान्भुक्त्वा शूलेन मृतः, अन्यः पुनः क्षुधा मृत इति ।

॥२७३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

विज्झले वा तडीए वा खाणीए वा पेल्लियस्सेति। द्वारं। तथा स्पर्शे सति भिद्यते आयुर्यथा—तयाविसेणं सप्पेणं छित्तस्स, जहा वा बंभदत्तस्स इत्थीरयणं, तंमि मए पुत्तेण से भणियं–मए सद्धिं भोगे भुंजाहिसि, तीए भणियं–न तरसि मज्झं फरिसं विसहित्तए, न पत्तियइ, आसो आणिओ, सो तीए हत्थेण मुहाओ कडिं जाव छित्तो, सो गलिऊण सुक्कक्खएण मतो, तहावि अपत्तियंतेण लोहमयपुरिसो कओ, तीए अवरुंडिओ, सोऽवि विलीणोति। द्वारं। तथा प्राणापाननिरोधे सति भिद्यते आयुर्यथा–छगलगाणं जण्णवाडादिसु मारिज्जंताणं। द्वारं। एवं सप्तविधं भिद्यते आयुरिति । न चैतत्सर्वेषामेव, किं तु सोपक्रमायुषां न निरुपक्रमायुषामिति। तत्र–देवा नेरइया वा असंखवासाउया य तिरिमणुया। उत्तमपुरिसा य तहा चरिमसरीरा य निरुवक्कमा ॥ १ ॥ सेसा संसारत्था भइया निरुवक्कमा व इतरे वा। सोवक्कमनिरुवक्कमभेदो भणिओ समासेणं ॥ २ ॥ आह—अध्यवसायादीनां निमित्तत्वापरित्यागाद्भेदोपन्यासो विरुध्यत इति, न, आन्तरेतरविचित्रोपाधिभेदेन निमित्तभेदानामेवोपन्यासात्, सकलजनसाधरणत्वाच्च शास्त्रारम्भस्य, आह–यद्येवमुपक्रम्यते

---

१ कर्दमेन वा तट्या वा खन्या वा प्रेरितस्येति। त्वग्विषेण सर्पेण स्पृष्टस्य, यथा वा ब्रह्मदत्तस्य स्त्रीरत्नं, तस्मिन् मृते पुत्रेण तस्मै भणितं–मया सार्धं भोगान् भुङ्क्ष्वेति, तया भणितं–न शक्नोपि मम स्पर्शं विसोढुं, न प्रत्येति, अश्व आनीतः, स तया हस्तेन मुखात्कटीं यावत्स्पृष्टः, स गिलित्वा (विलीय) शुक्रक्षयेण मृतः, तथाप्यप्रत्यायता लोहमयपुरुषः कृतः, तया आलिङ्गितः, सोऽपि विलीन इति। अजानां यज्ञपाटकादिषु मार्यमाणानाम्। देवा नैरयिका वा असंख्यवर्षायुषश्च तिर्यङ्नराः। उत्तमपुरुषाश्च तथा चरमशरीराश्च निरुपक्रमाः ॥ १ ॥ शेषाः संसारस्था भक्ता निरुपक्रमा वा इतरे वा। सोपक्रमनिरुपक्रमभेदो भणितः समासेन ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आयुस्ततश्च कृतनाशोऽकृताभ्यागमश्च, कथम् ?, संवत्सरशतमुपनिबद्धमायुः, तस्यापान्तराल एव व्यपगमात्कृतनाशः, येन च कर्मणा तदुपक्रम्यते तस्याकृतस्यैवाभ्यागम इति, अत्रोच्यते, यथा वर्षशतभक्तमप्यग्निकव्याधितस्याल्पेनापि कालेनोपभुञ्जानस्य न कृतनाशो नाप्यकृताभ्यागमस्तद्वदिहापीति, आह च भाष्यकारः–"[1]कम्मोवक्कामिज्जइ अपत्तकालंपि जइ ततो पत्ता । अकयागमकयनासामोक्खानासासयादोसा ॥ १ ॥ न हि दीहकालियस्सवि णासो तस्साणुभूतितो खिप्पं । बहुकालाहारस्स व दुयमग्गितरोगिणो भोगो ॥ २ ॥ सव्वं च पदेसतया भुज्जइ कम्ममणुभावतो भइतं । तेणावस्साणुभवे के कतनासादयो तस्स ? ॥ ३ ॥ किंचिदकालेऽवि फलं पाविज्जइ पच्चए य कालेण । तह कम्मं पाविज्जइ कालेणवि पच्चए अण्णं ॥ ४ ॥ जह वा दीहा रज्जू डज्झइ कालेण पुंजिया खिप्पं । विततो पडोऽवि सुस्सइ पिंडीभूतो य कालेणं ॥ ५ ॥" इत्यादि । ततश्च यथोक्तदोषानुपपत्तिरिति द्वारगाथावयवार्थः । व्याख्यात उपक्रमकालः, साम्प्रतं देशकालद्वारावयवार्थ उच्यते–तत्र देशकालः प्रस्तावोऽभिधीयते, स च प्रशस्तोऽप्रशस्तश्च, तत्र प्रशस्तस्वरूपप्रतिपादनायाह—

निद्धूमगं च गामं महिलाथूभं च सुण्णयं दट्ठुं । णीयं च कागा ओलेन्ति जाया भिक्खस्स हरहरा ॥ ७२७ ॥

---

१ कर्मोपक्रम्यते अप्राप्तकालेऽपि यदि ततः प्राप्ताः । अकृतागमकृतनाशमोक्षानाश्वासतादोषाः ॥ १ ॥ न हि दीर्घकालिकस्यापि नाशस्तस्यानुभूतिः क्षिप्रम् । बहुकालीनाहारस्येव द्रुतमग्निकरोगिणो भोगः ॥ २ ॥ सर्वं च प्रदेशतया भुज्यते कर्म अनुभावतो भक्तम् । तेनावश्यानुभवे के कृतनाशादयस्तस्य ? ॥ ३ ॥ किञ्चिदकालेऽपि फलं पाच्यते पच्यते च कालेन । तथा कर्म पाच्यते कालेनापि पच्यतेऽन्यत् ॥ ४ ॥ यथा वा दीर्घा रज्जूर्दह्यते कालेन पुञ्जिता क्षिप्रम् । विततः पटोऽपि शुष्यति पिण्डीभूतश्च कालेन ॥ ५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

व्याख्या—निर्द्धूमकं च ग्रामं महिलास्तूपं च कूपतटमित्यर्थः, शून्यं दृष्ट्वा, तथा नीचं च काकाः 'ओलिन्ति' त्ति गृहाणि प्रति परिभ्रमन्ति, तांश्च दृष्ट्वा विद्यात् यथा जाता भैक्षस्य 'हरहरे' त्यतीव भिक्षाप्रस्ताव इति, पाठान्तरं वा 'नीयं च काए ओलिन्ते' दृष्ट्वेत्यनुवर्त्तत इति गाथार्थः । अप्रशस्तदेशकालस्वरूपाभिधित्सयाऽऽह—

निम्माच्छियं महुं पायडो णिही खज्जगावणो सुण्णो। जा यंगणे पसुत्ता पउत्थवइया य मत्ता य ॥ ७२८ ॥ दारं ॥

व्याख्या—निर्म्माक्षिकं मधु, प्रकटो निधिः, खाद्यकापणः शून्यः, कुलूरिकापण इति भावार्थः, अतो मध्वादीनां ग्रहणप्रस्तावः, तथा या चाङ्गणे प्रसुप्ता प्रोषितपतिका च मत्ता च तस्या अपि ग्रहणं प्रति प्रस्ताव एवेति, आसवेन मदनाकुलीकृतत्वात्तस्या इति गाथार्थः । दारं । इदानीं कालकालः प्रतिपाद्यते–कालस्य–सत्त्वस्य श्वादेः कालो–मरणं कालकालः, अमुमेवार्थं प्रतिपादयन्नाह—

कालेण कओ कालो अम्हं सज्झायदेसकालंमि । तो तेण हओ कालो अकालकालं करेंतेणं ॥ ७२९ ॥

व्याख्या—'कालेन' शुना 'कृतः कालः' कृतं मरणम् अस्माकं स्वाध्यायदेशकाले ततोऽनेन हतः कालः–भग्नः स्वाध्यायकालः, 'अकाले' अप्रस्तावे 'कालं' मरणं कुर्वतेति गाथार्थः । द्वारम् । इदानीं प्रमाणकालः प्रतिपाद्यते–तत्राद्धाकालविशेष एव मनुष्यलोकान्तर्वर्त्ती विशिष्टव्यवहारहेतुः अहर्निशरूपः प्रमाणकाल इति, आह च—

दुविहो पमाणकालो दिवसपमाणं च होइ राई अ । चउपोरिसिओ दिवसो राती चउपोरिसी चेव ॥ ७३० ॥

व्याख्या—द्विविधः प्रमाणकालः–दिवसप्रमाणं च भवति रात्रिश्च, चतुष्पौरुषिकौ दिवसः रात्रिश्चतुष्पौरुष्येव, ततश्च

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

प्रमाणमेव कालः प्रमाणकालः, पौरुषीप्रमाणं त्वन्यत्रोत्कृष्टहीनादिभेदभिन्नं प्रतिपादितमेवेति गाथार्थः। द्वारं। इदानीं वर्णकालस्वरूपप्रदर्शनायाह—

पंचण्हं वण्णाणं जो खलु वण्णेण कालओ वण्णो। सो होइ वण्णकालो वण्णिज्जइ जो व जं कालं ॥ ७३१ ॥

व्याख्या—पञ्चानां शुक्लादीनां वर्णानां यः खलु वर्णेन छायया कालको वर्णः, खलुशब्दस्यावधारणार्थत्वात्कृष्ण एव, अनेन गौरादेर्नामकृष्णस्य च व्यवच्छेदः, स भवति वर्णकालः, वर्णश्चासौ कालश्चेति वर्णकालः, 'वण्णिज्जइ जो व जं कालं'ति वर्णनं वर्णः, प्ररूपणमित्यर्थः, ततश्च वर्ण्यते–प्ररूप्यते यो वा कश्चित्पदार्थो यत्कालं स वर्णकालः, वर्णप्रधानः कालो वर्णकाल इति गाथार्थः॥ इदानीं भावकालः प्रतिपाद्यते–भावानामौदयिकादीनां स्थितिर्भावकाल इति, आह च—

सादीसपज्जवसिओ चउभंगविभागभावणा एत्थं। ओदइयादीयाणं तं जाणसु भावकालं तु ॥ ७३२ ॥

व्याख्या—सादिः सपर्यवसितश्चतुर्भङ्गविभागभावना अत्र कार्या, केषाम् ?–औदयिकादीनां भावानामिति, ततश्च योऽसौ विभागभावनाविषयस्तं जानीहि भावकालं तु, इयमक्षरगमनिका, अयं भावार्थः–औदयिको भावः सादिः सपर्यवसानः सादिरपर्यवसानः अनादिः सपर्यवसानः अनादिरपर्यवसान इत्येवमौपशमिकादिष्वपि चतुर्भङ्गिका द्रष्टव्या, इयं पुनरत्र विभागभावना–औदयिकचतुर्भङ्गिकायां द्वितीयभङ्गशून्यानां शेषभङ्गानामयं विषयः–नारकादीनां नारकादिभवः खल्वौदयिको भावः सादिसपर्यवसानः, मिथ्यात्वादयो भव्यानामौदयिको भावोऽनादिसपर्यवसानः, स एवाभव्यानां चरमभङ्ग इति। उक्तः औदयिकः, औपशमिकचतुर्भङ्गिकायां तु द्वयादयः शून्या एव, प्रथमभङ्गस्त्वौपशमिकसम्यक्त्वादयः, औपश-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

मिको भावः सादिसपर्यवसान इति। उक्त औपशमिकः, क्षायिकचतुर्भङ्गिकायां तु त्र्यादयः शून्या एव, क्षायिकं चारित्रं दानादिलब्धिपञ्चकं च क्षायिको भावः सादिसपर्यवसानः, सिद्धस्य चारित्र्यचारित्र्यादिविकल्पातीतत्वात्, क्षायिकज्ञानदर्शने तु सादिरपर्यवसाने इति, अन्ये तु द्वितीयभङ्ग एव सर्वमिदं प्रतिपादयन्ति। उक्तः क्षायिकः, क्षायोपशमिकचतुर्भङ्गिकायां द्वितीयभङ्गशून्यानां शेषभङ्गानामयं विषयः–चत्वारि ज्ञानानि क्षायोपशमिको भावः सादिसपर्यवसानः, मत्यज्ञानश्रुताज्ञाने भव्यानामनादिसपर्यवसाने, एते एवाभव्यानां चरमभङ्ग इति। उक्तः क्षायोपशमिकः, पारिणामिकचतुर्भङ्गिकायां द्वितीयभङ्गशून्यानां शेषभङ्गानामयं गोचरः–पुद्गलकाये द्व्यणुकादिः पारिणामिको भावः सादिसपर्यवसानः, भव्यत्वं भव्यानामनादिः सपर्यवसानः, जीवत्वं पुनः चरमभङ्ग इति, उक्तः पारिणामिकः। उक्तार्थसङ्ग्रहगाथा–बीयं दुतियादीया भंगा वज्जेत्तु बिइयगं सेसे। भवमिच्छसम्मचरणे दिट्ठीनाणेतराणुभवजिए ॥ १ ॥ इति गाथार्थः—

एत्थं पुण अहिगारो पमाणकालेण होइ नायव्वो। खेत्तंमि कंमि काले विभासियं जिणवरिंदेणं ? ॥ ७३३ ॥

व्याख्या—'अत्र पुनः' अनेकविधकालप्ररूपणायाम् 'अधिकारः' प्रयोजनं प्रस्तावः प्रमाणकालेन भवति ज्ञातव्यः। आह–'दवे अद्धे' इत्यादिद्वारगाथायां 'पगयं तु भावेणंती' त्युक्तं, साम्प्रतमत्र पुनरधिकारः प्रमाणकालेन भवति ज्ञातव्य इत्युच्यमानं कथं न विरुद्ध्यत इति ?, उच्यते, क्षायिकभावकाले भगवता प्रमाणकाले च पूर्वाह्णे सामायिकं भाषितमित्य-

१ (औदयिकाद्यनुक्रमेण) द्वितीयं द्वितीयादीन् तृतीयादीन् भङ्गान् वर्जयित्वा शेषयोरपि द्वितीयं वर्जयित्वा (३–१–२–३–३ भङ्गाः) भवे मिथ्यात्वे (भव्येऽभव्ये च) (औ०) सम्यक्त्वे(क्षा.) चरणे (व्रतरूपे) (क्षायो) दर्शनज्ञानयोः मत्यादौ अज्ञाने (भव्ये अभव्ये च) (पा.) अणौ भव्यत्वे जीवत्वे॥ १॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

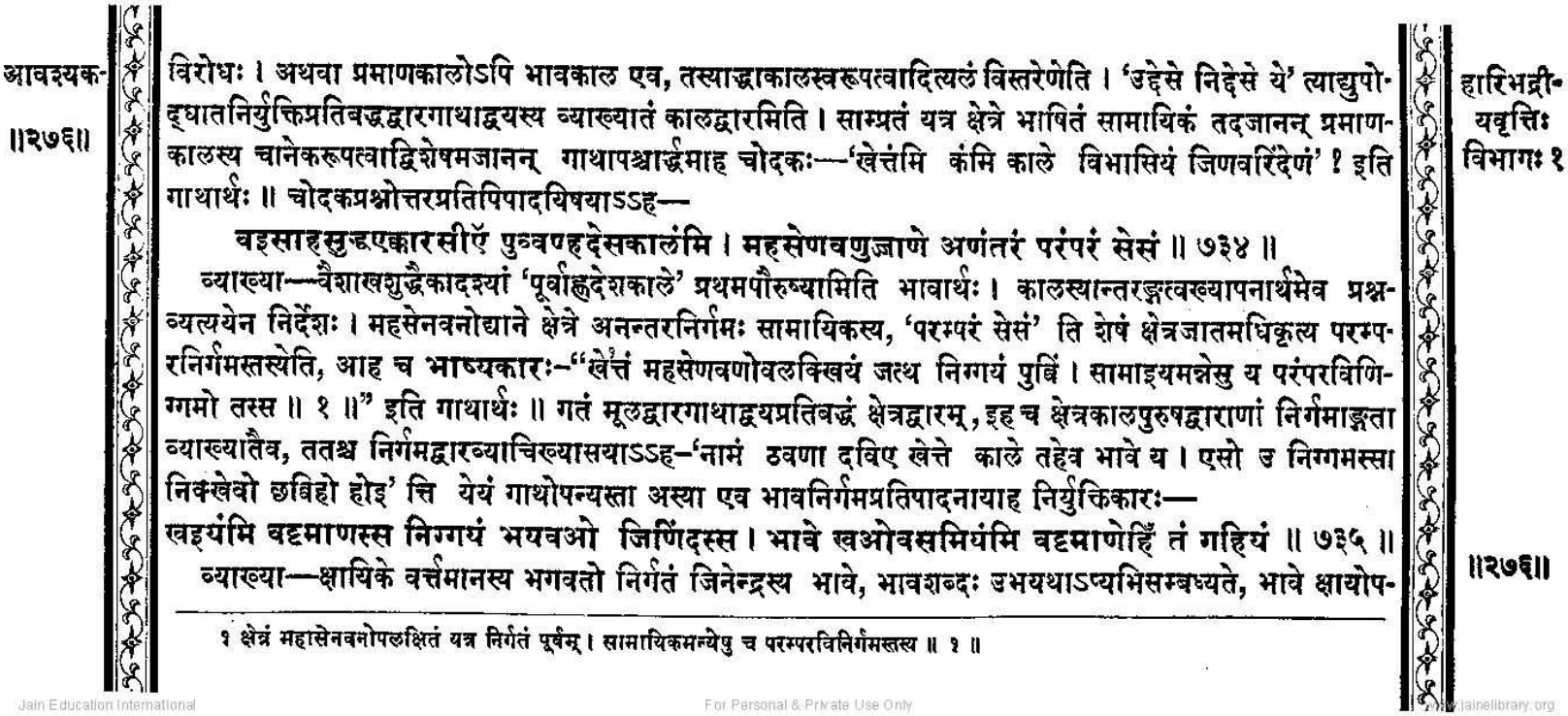

आवश्यक- ॥२७६॥

विरोधः । अथवा प्रमाणकालोऽपि भावकाल एव, तस्याद्धाकालस्वरूपत्वादित्यलं विस्तरेणेति । 'उद्देसे निद्देसे ये' त्याद्युपोद्घातनिर्युक्तिप्रतिबद्धद्वारगाथाद्वयस्य व्याख्यातं कालद्वारमिति । साम्प्रतं यत्र क्षेत्रे भाषितं सामायिकं तदजानन् प्रमाणकालस्य चानेकरूपत्वाद्विशेषमजानन् गाथापश्चार्द्धमाह चोदकः—'खेत्तंमि कंमि काले विभासियं जिणवरिंदेणं' ? इति गाथार्थः ॥ चोदकप्रश्नोत्तरप्रतिपिपादयिषयाऽऽह—

वइसाहसुद्धएक्कारसीऍ पुव्वण्हदेसकालंमि । महसेणवणुज्जाणे अणंतरं परंपरं सेसं ॥ ७३४ ॥

व्याख्या—वैशाखशुद्धैकादश्यां 'पूर्वाह्णदेशकाले' प्रथमपौरुष्यामिति भावार्थः । कालस्यान्तरङ्गत्वख्यापनार्थमेव प्रश्नव्यत्ययेन निर्देशः । महसेनवनोद्याने क्षेत्रे अनन्तरनिर्गमः सामायिकस्य, 'परम्परं सेसं' ति शेषं क्षेत्रजातमधिकृत्य परम्परनिर्गमस्तस्येति, आह च भाष्यकारः–"खेत्तं महसेणवणोवलक्खियं जत्थ निग्गयं पुव्विं । सामाइयमन्नेसु य परंपरविणिग्गमो तस्स ॥ १ ॥" इति गाथार्थः ॥ गतं मूलद्वारगाथाद्वयप्रतिबद्धं क्षेत्रद्वारम्, इह च क्षेत्रकालपुरुषद्वाराणां निर्गमाङ्गता व्याख्यातैव, ततश्च निर्गमद्वारव्याचिख्यासयाऽऽह–'नामं ठवणा दविए खेत्ते काले तहेव भावे य । एसो उ निग्गमस्सा निक्खेवो छव्विहो होइ' त्ति येयं गाथोपन्यस्ता अस्या एव भावनिर्गमप्रतिपादनायाह निर्युक्तिकारः—

खइयंमि वट्टमाणस्स निग्गयं भयवओ जिणिंदस्स । भावे खओवसमियंमि वट्टमाणेहिं तं गहियं ॥ ७३५ ॥

व्याख्या—क्षायिके वर्त्तमानस्य भगवतो निर्गतं जिनेन्द्रस्य भावे, भावशब्दः उभयथाऽप्यभिसम्बध्यते, भावे क्षायोप-

१ क्षेत्रं महासेनवनोपलक्षितं यत्र निर्गतं पूर्वम् । सामायिकमन्येषु च परम्परविनिर्गमस्तस्य ॥ १ ॥

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

॥२७६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

शमिके वर्त्तमानैः 'तत्' सामायिकमन्यच्च श्रुतं गृहीतं, गणधरादिभिरिति गम्यते । तत्र गौतमस्वामिना निषद्यात्रयेण चतुर्दश पूर्वाणि गृहीतानि, प्रणिपत्य पृच्छा निषद्योच्यते, भगवांश्चाचष्टे–उप्पण्णे इ वा विगमे इ वा धुवे इ वा, एता एव तिस्रो निषद्याः, आसामेव सकाशाद्गणभृताम् 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सदि' ति प्रतीतिरुपजायते, अन्यथा सत्ताऽयोगात्, ततश्च ते पूर्वभवभावितमतयो द्वादशाङ्गमुपरचयन्ति, ततो भगवमणुण्णं करेइ, सक्को य दिव्वं वइरमयं थालं दिव्वचुण्णाणं भरेऊण सामिमुवागच्छइ, ताहे सामी सीहासणाओ उट्ठित्ता पडिपुण्णं मुट्ठिं केसराणं गेण्हइ, ताहे गोयमसामिप्पमुहा एक्कारसवि गणहरा इसिं ओणया परिवाडीए ठायंति, ताहे देवा आउज्जगीयसद्दं निरुंभंति, ताहे सामी पुव्वं तित्थं गोयमसामिस्स दव्वेहिं गुणेहिं पज्जवेहिं अणुजाणामित्ति भणति चुण्णाणि य से सीसे छुहइ, ततो देवावि चुण्णवासं पुप्फवासं च उवरिं वासंति, गणं च सुधम्मसामिस्स धुरे ठवेऊण अणुजाणइ । एवं सामाइयस्सवि अत्थो भगवतो निग्गओ, सुत्तं गणहरेहिंतो निग्गतं, इत्यलं विस्तरेणेति गाथार्थः । (ग्रन्थाग्रम् ७०००) साम्प्रतं पुरुषद्वारावयवार्थप्रतिपिपादयिषयाऽऽह–

दव्वाभिलावचिंधे वेए धम्मत्थभोगभावे य । भावपुरिसो उ जीवो भावे पगयं तु भावेणं ॥ ७३६ ॥

---

१ भगवाननुज्ञां करोति, शक्रश्च दिव्यं वज्ररत्नमयं स्थालं दिव्यचूर्णैर्भृत्वा स्वामिनमुपागच्छति, तदा स्वामी सिंहासनादुत्थाय प्रतिपूर्णां मुष्टिं गन्धानां गृह्णाति, तदा गौतमस्वामिप्रमुखा एकादशापि गणधरा ईषदवनताः परिपाट्या तिष्ठन्ति, तदा देवा आतोद्यगीतशब्दं निरुन्धन्ति, तदा स्वामी पूर्वं तीर्थं गौतमस्वामिने द्रव्यैर्गुणैः पर्यवैरनुजानामीति भणति चूर्णानि च तस्य शीर्षे क्षिपति, ततो देवा अपि चूर्णवर्षां पुष्पवर्षां च उपरि वर्षन्ति, गणं च सुधर्मस्वामिनं धुरि स्थापयित्वाऽनुजानाति । एवं सामायिकस्यापि अर्थो भगवतो निर्गतः, सूत्रं गणधरेभ्यो निर्गतम् । * मणसीकरेइ प्र०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

व्याख्या–'दव्व' त्ति द्रव्यपुरुषः, स चागमनोआगमज्ञशरीरभव्यशरीरातिरिक्तैकभविकबद्धायुष्काभिमुखनामगोत्रभेदभिन्नो द्रष्टव्यः, अथवा व्यतिरिक्तो द्विधा–मूलगुणनिर्मितः उत्तरगुणनिर्मितश्च, तत्र मूलगुणनिर्मितः पुरुषप्रायोग्याणि द्रव्याणि, उत्तरगुणनिर्मितस्तु तदाकारवन्ति तान्येव, अभिलप्यतेऽनेनेति अभिलापः–शब्दः, तत्राभिलापपुरुषः पुल्लिङ्गाभिधानमात्रं घटः पट इति वा, चिह्नपुरुषस्त्वपुरुषोऽपि पुरुषचिह्नोपलक्षितो यथा नपुंसकं श्मश्रुचिह्नमित्यादि, तथा त्रिष्वपि लिङ्गेषु स्त्रीपुन्नपुंसकेषु तृणज्वालोपमवेदानुभवकाले वेदपुरुष इति, तथा धर्मार्जनव्यापारपरः साधुर्धर्मपुरुषः, अर्थार्जनपरस्त्वर्थपुरुषो मम्मणनिधिपालवत्, भोगपुरुषस्तु सम्प्राप्तसमस्तविषयसुखभोगोपभोगसमर्थश्चक्रवर्त्तिवत्, 'भावे य' त्ति भावपुरुषश्च, चशब्दो नामाद्यनुक्तभेदसमुच्चयार्थः, 'भावपुरिसो उ जीवो भावे' त्ति पूः–शरीरं पुरि शेते इति निरुक्तवशाद् भावपुरुषस्तु जीवः, 'भावि' त्ति भावद्वारे निरूप्यमाणे भावद्वारचिन्तायामिति भावार्थः, अथवा 'भावे' त्ति भावनिर्गमप्ररूपणायामधिकृतायां, किम्?–'पगयं तु भावेणं' ति 'प्रकृतम्' उपयोगस्तु भावेनेत्युपलक्षणाद् भावपुरुषेण–शुद्धेन जीवेन, तीर्थकरेणेत्यर्थः, तुशब्दाद्वेदपुरुषेण च गणधरेणेति, एतदुक्तं भवति–अर्थतस्तीर्थकरान्निर्गतं सूत्रतो गणधरेभ्य इति, एवमन्येऽपि यथासम्भवमायोज्या इति गाथार्थः ॥ गतं पुरुषद्वारं, साम्प्रतं कारणद्वारावयवार्थव्याचिख्यासयाऽऽह—

णिक्खेवो कारणंमी चउव्विहो दुविहु होइ दव्वंमि । तद्दव्वमण्णदव्वे अहवावि णिमित्तनेमित्ती ॥७३७॥दारं॥

अस्या गमनिका–निक्षेपणं निक्षेपो न्यास इत्यर्थः, करोतीति कारणं, कार्यं निर्वर्त्तयतीति हृदयं, तस्मिन् कारणे–कारण-

॥२७७॥

* षण्ढः क्लीबो नपुंसकमिति हैम्युक्तेः नपुंसत्वम्.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

विषयः 'चतुर्विधः' चतुर्भेदः नामस्थापनाद्रव्यभावलक्षणः, नामस्थापने सुज्ञाने, द्रव्यकारणं व्यतिरिक्तं द्विधा, यत आह– द्विविधो भवति द्रव्ये, निक्षेप इति वर्त्तते, सूचनात्सूत्रमितिकृत्वा द्रव्ये इति द्रव्यकारणविषयो द्विविधो निक्षेपः परिगृह्यते, तदेव द्रव्यकारणद्वैविध्यं दर्शयति–'तद्द्रव्य'मिति तस्यैव पटादेर्द्रव्यं तद्द्रव्यं–तन्त्वादि, तदेव कारणमिति द्रष्टव्यं, तद्विपरीतं वेमाद्यन्यद्रव्यकारणमिति । अथवाऽन्यथा द्विविधत्वं–निमित्तं नैमित्तिकमपि, अपिशब्दादन्यथापि कारणनानातेति, तां वक्ष्यति । तत्र पटस्य निमित्तं तन्तवस्त एव कारणं, तद्व्यतिरेकेण पटानुत्पत्तेः, यथा च तन्तुभिर्विना न भवति पटस्तथा तद्वतातानादिचेष्टादिव्यतिरेकेणापि न भवत्येव, तस्याश्च चेष्टाया वेमादिनिमित्तं, ततो निमित्तस्येदं नैमित्तिकमिति गाथार्थः ॥

समवाइ असमवाई छव्विह कत्ता य कम्म* करणं च । तत्तो य संपयाणापयाण तह संनिहाणे य ॥ ७३८ ॥

व्याख्या—समेकीभावे अवोऽपृथक्त्वे अय गतौ, ततश्चैकीभावेनापृथग्गमनं समवायः–संश्लेषः स येषां विद्यते ते समवायिनः–तन्तवो यस्मात्तेषु पटः समवैतीति, समवायिनश्च ते कारणं च समवायिकारणं–तन्तुसंयोगाः, कारणद्रव्यान्तरधर्मत्वात् पटाख्यकार्यद्रव्यान्तरस्य दूरवर्त्तित्वात् असमवायिनः त एव कारणमसमवायिकारणमिति । आह–अर्थाभेदे सत्यनेकधा कारणद्वयोपन्यासोऽनर्थक इति, न, सञ्ज्ञाभेदेन तन्त्रान्तरीयाभ्युपगमप्रदर्शनपरत्वात्तस्य, अथवा षड्विधं कारणम्, अनुस्वारलोपोऽत्र द्रष्टव्यः, करोतीति कर्त्तरि व्युत्पत्तेः, स्वेन व्यापारेण कार्ये यदुपयुज्यते तत्कारणं, कथं षड्वि-

* करण कम्मं चेति व्याख्या.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

धमित्याह–कर्त्ता च कारणं, तस्य कार्ये स्वातन्त्र्येणोपयोगात्, तमन्तरेण विवक्षितकार्यानुत्पत्तेः अभीष्टकारणवत्, ततश्च घटोत्पत्तौ कुलालः कारणं, तथा करणं च–मृत्पिण्डादि करणं, तस्य साधकतमत्वात्, तथा कर्म च कारणं, क्रियते-निर्वर्त्यते यत्तत्कर्म–कार्यम्, आह–तत्कथमलब्धात्मलाभं तदा कारणमिति?, अत्रोच्यते, कार्यनिर्वर्त्तनक्रियाविषयत्वात्तस्योपचारात्कारणता, उक्तं च–"निर्वर्त्यं वा विकार्यं वा, प्राप्यं वा यत्क्रियाफलम्। तत् दृष्टादृष्टसंस्कारं, कर्म कर्तुर्यदीप्सितम् ॥ १ ॥" इत्यादि, मुख्यवृत्त्या वा सौकर्यगुणेन कर्म कारणं, तथा सम्प्रदानं च घटस्य कारणं, तस्य कर्मणाऽभिप्रेतत्वात्, तमन्तरेण तस्याभावात्, सम्यक् सत्कृत्य वा प्रयत्नेन दानं सम्प्रदानम्, अत एव च रजकस्य वस्त्रं ददातीति न सम्प्रदाने चतुर्थी, किं तु ब्राह्मणाय घटं ददातीति, तथाऽपादानं कारणं, विवक्षितपदार्थापायेऽपि तस्य ध्रुवत्वेन कार्योपकारकत्वाद्, 'दो अवखण्डने' दानं खण्डनम् अपसृत्य मर्यादया दानमपादानं, पिण्डापायोऽपि मृदो ध्रुवत्वादपादानतेति, सा च घटस्य कारणं, तामन्तरेण तस्यानुत्पत्तेः, तथा सन्निधानं च कारणं, तस्याधारतया कार्योपकारकत्वात्, सन्निधीयते यत्र कार्यं तत्सन्निधानम्–अधिकरणं, तच्च घटस्य चक्रं, तस्यापि भूः, तस्या अप्याकाशम्, आकाशस्य त्वधिकरणं नास्ति, स्वरूपप्रतिष्ठितत्वात्, घटस्य चेदं कारणम्, एतदभावे घटानुत्पत्तेरिति गाथार्थः ॥ उक्तं द्रव्यकारणम्, इदानीं भावकारणप्रतिपादनायाह—

दुविहं च होइ भावे अपसत्थ पसत्थगं च अपसत्थं। संसारस्सेगविहं दुविहं तिविहं च नायव्वं ॥ ७३९ ॥

व्याख्या—भवतीति भावः, स चौदयिकादिः, स एव कारणं संसारापवर्गयोरिति भावकारणं, तत्र 'द्विविधं च' द्विप्र-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

कारं च भवति, भावे विचार्यमाणे, कारणमिति प्रक्रमाद्गम्यते, भावविषयं वा, भावकारणमित्यर्थः, अप्रशस्तम्–अशोभनं प्रशस्तं–शोभनं च, तत्राप्रशस्तं संसारस्य सम्बन्धि एकविधम्–एकभेदं द्विविधं–द्विभेदं त्रिविधं–त्रिभेदं च ज्ञातव्यं, चशब्दश्चतुर्विधाद्यनुक्तकारणभेदसमुच्चयार्थ इति गाथार्थः ॥ यदुक्तं–'संसारस्यैकविध' मित्यादि, तदुपप्रदर्शनायाह—

अस्संजमो य एक्को अण्णाणं अविरई य दुविहं तु । अण्णाणं मिच्छत्तं च अविरती चेव तिविहं तु ॥ ७४० ॥

व्याख्या—'असंयमः' अविरतिलक्षणः, स ह्येक एव संसारकारणम्, अज्ञानादीनां तदुपष्टम्भकत्वादप्रधानत्वादिति, तथाऽज्ञानमविरतिश्च द्विविधं तु संसारकारणं, तत्राज्ञानं–कर्म्माच्छादितजीवस्य विपरीतावबोध इति, अविरतिस्तु सावद्ययोगानिवृत्तिरिति, तथा मिथ्यात्वमज्ञानं चाविरतिश्चैव त्रिविधं तु संसारकारणं, तत्र मिथ्यात्वम्–अतत्त्वार्थश्रद्धानं, शेषं गतार्थम्, एवं कषायादिसम्पर्कादन्येऽपि भेदाः प्रतिपादयितव्या इति गाथार्थः ॥ उक्तमप्रशस्तं भावकारणम्, अधुना प्रशस्तमुच्यते—

होइ पसत्थं मोक्खस्स कारणं एगदुविहतिविहं वा । तं चेव य विवरीयं अहिगारो पसत्थएणेत्थं ॥ ७४१ ॥

व्याख्या—भवति प्रशस्तं भावकारणं मोक्षस्य कारणमिति, तच्च 'एक' मित्येकविधं द्विविधं त्रिविधं वा, इदं पुनः 'तदेव' च संसारकारणम् असंयमादि विपरीतं द्रष्टव्यम्, एकविधं संयमः, द्विविधं ज्ञानसंयमौ, त्रिविधं सम्यग्दर्शनज्ञानसंयमा इति, 'अधिकारः' प्रस्तावः 'प्रशस्तेन' भावकारणेन 'अत्र' सामायिकाध्ययने, मोक्षाङ्गत्वादस्येति । ततश्च प्रशस्त-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

भावरूपं चेदं, कारणं च मोक्षस्य इति अधिकारभावनेति गाथार्थः ॥ इत्थं कारणद्वारे अधिकारं प्रदर्श्य पुनः कारण-द्वारसङ्गतमेव वक्तव्यताशेषमाशङ्काद्वारेणाभिधित्सुराह—

तित्थयरो किं कारण भासइ सामाइयं तु अज्झयणं ? । तित्थयरणामगोत्तं कम्मं मे वेइयव्वंति ॥ ७४२ ॥

व्याख्या—तीर्थकरणशीलस्तीर्थकरः, तीर्थं पूर्वोक्तं, स 'किंकारणं' किंनिमित्तं भाषते सामायिकं त्वध्ययनं?, तुशब्दा-दन्याध्ययनपरिग्रहः, तस्य कृतकृत्यत्वादिति हृदयम्, अत्रोच्यते–'तीर्थकरनामगोत्रं' तीर्थकरनामसञ्ज्ञं, गोत्रशब्दः सञ्ज्ञा-यां, कर्म मया वेदितव्यमित्यनेन कारणेन भाषत इति गाथार्थः ॥

तं च कहं वेइज्जइ ? अगिलाए धम्मदेसणाईहिं । बज्झइ तं तु भगवओ तइयभवोसक्कइत्ता णं ॥ ७४३ ॥

व्याख्या—पूर्ववत् ॥

णियमा मणुयगतीए इत्थी पुरिसेयरोव्व सुहलेसो । आसेवियबहुलेहिं वीसाए अण्णयरएहिं ॥ ७४४ ॥

व्याख्या—पूर्ववदेव । इत्थं तीर्थकृतः सामायिकभाषणे कारणमभिधायाधुना गणभृतामाशङ्काद्वारेण तच्छ्रवणकारणं प्रतिपादयन्नाह—

गोयममाई सामाइयं तु किंकारणं निसामिन्ति ? । णाणस्स तं तु सुंदरमंगुलभावाण उवलद्धी ॥ ७४५ ॥

व्याख्या—गौतमादयो गणधराः 'किंकारणं तु' किंनिमित्तं, किंप्रयोजनमित्यर्थः, सामायिकं 'निशामयन्ति' शृण्वन्ति, अत्रोच्यते–'नाणस्स' त्ति प्राकृतशैल्या चतुर्थ्यर्थे षष्ठी, ततश्च ज्ञानाय–ज्ञानार्थं, तादर्थ्ये चतुर्थी, तेषां हि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

भगवद्वदननिर्गतं सामायिकशब्दं श्रुत्वा तदर्थविषयं ज्ञानमुत्पद्यत इति भावना, तच्च ज्ञानं 'सुन्दरमङ्गुलभावानां' शुभेतररूपदार्थानां 'उवलद्धी' त्ति उपलब्धये–उपलब्धिनिमित्तमिति गाथार्थः ॥ सा च सुन्दरमङ्गुलभावोपलब्धिः प्रवृत्तिनिवृत्त्योः कारणम्, आह च—

होइ पवित्तिनिवित्ती संजमतव पावकम्मअग्गहणं । कम्मविवेगो य तहा कारणमसरीरया चेव ॥ ७४६ ॥

व्याख्या—शुभेतरभावपरिज्ञानाद्भवतः 'प्रवृत्तिनिवृत्ती' शुभेषु प्रवृत्तिर्भवतीतरेभ्यो निवृत्तिरिति, ते च प्रवृत्तिनिवृत्ती 'संयमतव' इति संयमतपसोः कारणं, तत्र निवृत्तिकारणत्वेऽपि संयमस्य प्रागुपादानमपूर्वकर्मागमनिरोधोपकारेण प्राधान्यख्यापनार्थं, तत्पूर्वकं च वस्तुतः सफलं तपः, कारणान्यथोपन्यासस्तु संयमे सत्यपि तपसि प्रवृत्तिः कार्येत्यमुनाऽंशेन प्राधान्यख्यापनार्थमेवेत्यलं प्रसङ्गेन, तयोश्च संयमतपसोः 'पावकम्मअग्गहणं' ति पापकर्माग्रहणं कर्मविवेकश्च, तथा 'कारणं' निमित्तं प्रयोजनं यथासङ्ख्यम्, उक्तं च परममुनिभिः–'संयमे अणण्हयफले, तवे वोदाणफले' इत्यादि, अणण्हयः–अनाश्रवः वोदाणं–कर्मनिर्जरा, कर्मविवेकस्य च प्रयोजनम् 'असरीरया चेवे'ति अशरीरतैव, चः पूरणार्थः, इति गाथार्थः ॥ साम्प्रतं विवक्षितमर्थमुक्तानुवादेन प्रतिपादयन्नाह—

कम्मविवेगो असरीरयाय असरीरया अणाबाहा । होअणबाहनिमित्तं अवेयणमणाउलो निरुओ ॥ ७४७ ॥

व्याख्या—'कर्मविवेकः' कर्मपृथग्भावः अशरीरतायाः कारणम्, अशरीरता 'अणाबाहाए' त्ति अनाबाधायाः कारणं

१ संयमोऽनाश्रवफलः तपो व्यवदानफलं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

भवति, 'अनाबाधनिमित्तम्' 'अनाबाधकार्यं, निमित्तशब्दः कार्यवाचकः, तथा च वक्तारो भवन्ति–अनेन निमित्तेन–अनेन कारणेन मयेदं प्रारब्धम्, अनेन कार्येणेत्यर्थः, ततश्च भवत्यनाबाधकार्यम्, 'अवेदनः' वेदनारहितो, जीव इति गम्यते, स चावेदनत्वाद् 'अनाकुलः' अविह्वल इत्यर्थः, अनाकुलत्वाच्च नीरुग्भवतीति गाथार्थः ॥

नीरुयत्ताए अयलो अयलत्ताए य सासओ होइ। सासयभावमुवगओ अव्वाबाहं सुहं लहइ ॥ ७४८ ॥ दारं ॥

व्याख्या—स हि जीवः नीरुक्तया अचलो भवति, अचलतया च शाश्वतो भवति, शाश्वतभावमुपगतः किम्?, अव्याबाधं सुखं लभत इति गाथार्थः ॥ इत्थं पारम्पर्येणाव्याबाधसुखार्थं सामायिकश्रवणमिति । गतं कारणद्वारं, प्रत्ययद्वारमधुना व्याख्यायत इति, आह च—

पच्चयणिक्खेवो खलु दव्वंमी तत्तमासगाइओ। भावंमि ओहिमाई तिविहो पगयं तु भावेणं ॥ ७४९ ॥

व्याख्या—प्रत्याययतीति प्रत्ययः प्रत्ययनं वा प्रत्ययः, तन्निक्षेपः–तद्न्यासः, खलुशब्दोऽनन्तरोक्तकारणनिक्षेपसाम्यप्रदर्शनार्थः, ततश्च नामादिश्चतुर्विधः प्रत्ययनिक्षेपो, नामस्थापने सुगमे, 'द्रव्ये' द्रव्यविषयस्तप्तमाषकादिः, आदिशब्दाद्घटदिव्यादिपरिग्रहः, द्रव्यं च तत्प्रत्याय्यप्रतीतिहेतुत्वात् प्रत्ययश्च द्रव्यप्रत्ययः–तप्तमाषकादिरेव, तज्ञो वा प्रत्याय्यपुरुषप्रत्यय इति, 'भावम्मि' त्ति भावे विचार्यमाणेऽवध्यादिस्त्रिविधो भावप्रत्ययः, तस्य बाह्यलिङ्गकारणानपेक्षत्वाद्, आदिशब्दान्मनःपर्यायकेवलपरिग्रहः, मतिश्रुते तु बाह्यलिङ्गकारणापेक्षित्वान्न विवक्षिते, बहु चात्र वक्तव्यं तच्च नोच्यते, ग्रन्थविस्तरभयादिति, 'प्रकृतम्' उपयोगस्तु सामायिकमङ्गीकृत्य 'भावेणं' ति भावप्रत्ययेनेति गाथार्थः ॥ अत एवाह—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

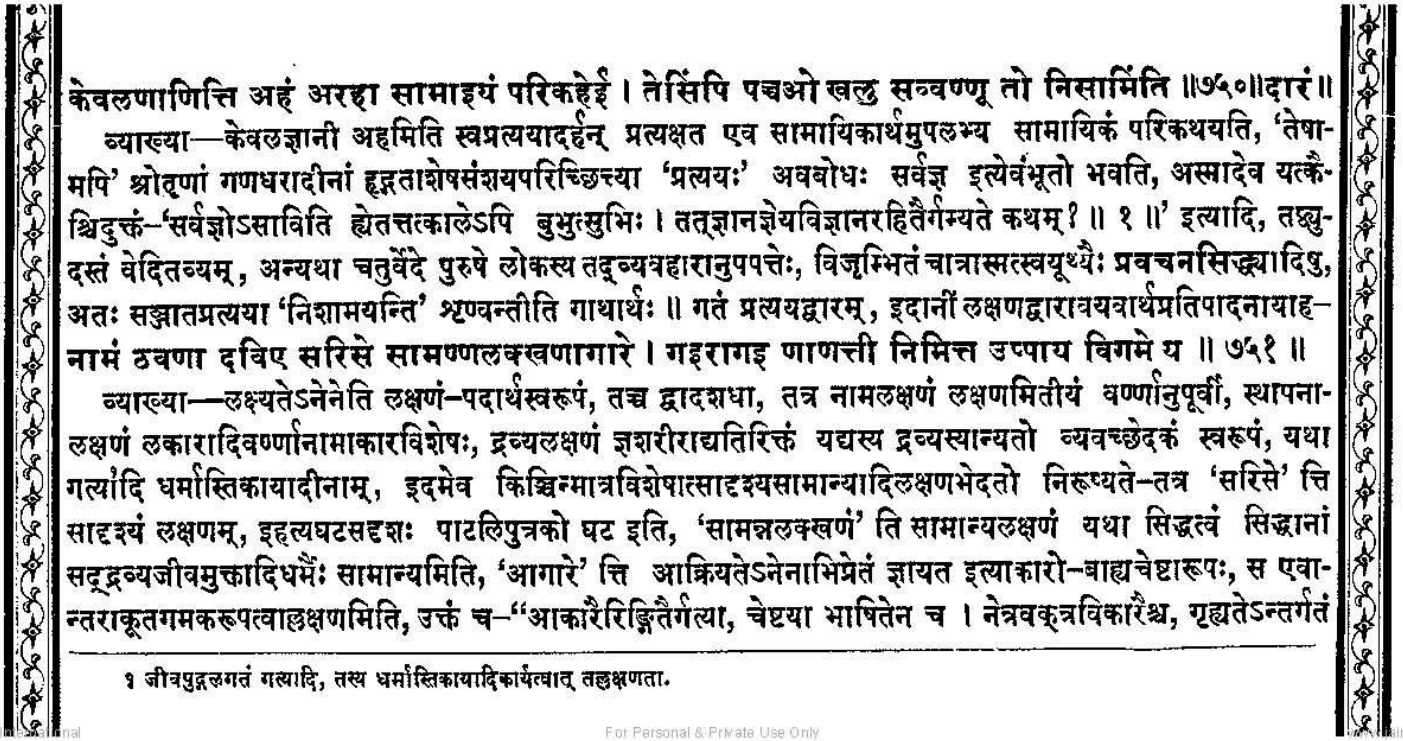

केवलणाणित्ति अहं अरहा सामाइयं परिकहेई । तेसिंपि पच्चओ खलु सव्वण्णू तो निसामिति ॥७५०॥दारं॥

व्याख्या—केवलज्ञानी अहमिति स्वप्रत्ययादर्हन् प्रत्यक्षत एव सामायिकार्थमुपलभ्य सामायिकं परिकथयति, 'तेषामपि' श्रोतृणां गणधरादीनां हृद्गताशेषसंशयपरिच्छित्त्या 'प्रत्ययः' अवबोधः सर्वज्ञ इत्येवंभूतो भवति, अस्मादेव यत्कैश्चिदुक्तं–'सर्वज्ञोऽसाविति ह्येतत्तत्कालेऽपि बुभुत्सुभिः । तत्ज्ञानज्ञेयविज्ञानरहितैर्गम्यते कथम्? ॥ १ ॥' इत्यादि, तच्छुद्दस्तं वेदितव्यम्, अन्यथा चतुर्वेदे पुरुषे लोकस्य तद्व्यवहारानुपपत्तेः, विजृम्भितं चात्रास्मत्स्वयूथ्यैः प्रवचनसिद्ध्यादिषु, अतः सञ्जातप्रत्यया 'निशामयन्ति' शृण्वन्तीति गाथार्थः ॥ गतं प्रत्ययद्वारम्, इदानीं लक्षणद्वारावयवार्थप्रतिपादनायाह–

नामं ठवणा दविए सरिसे सामण्णलक्खणागारे । गइरागइ णाणत्ती निमित्त उप्पाय विगमे य ॥ ७५१ ॥

व्याख्या—लक्ष्यतेऽनेनेति लक्षणं–पदार्थस्वरूपं, तच्च द्वादशधा, तत्र नामलक्षणं लक्षणमितीयं वर्णानुपूर्वी, स्थापनालक्षणं लकारादिवर्णानामाकारविशेषः, द्रव्यलक्षणं ज्ञशरीराद्यतिरिक्तं यद्यस्य द्रव्यस्यान्यतो व्यवच्छेदकं स्वरूपं, यथा गत्यादि धर्मास्तिकायादीनाम्, इदमेव किञ्चिन्मात्रविशेषात्सादृश्यसामान्यादिलक्षणभेदतो निरूप्यते–तत्र 'सरिसे' त्ति सादृश्यं लक्षणम्, इहत्यघटसदृशः पाटलिपुत्रको घट इति, 'सामन्नलक्खणं' ति सामान्यलक्षणं यथा सिद्धत्वं सिद्धानां सद्द्रव्यजीवमुक्तादिधर्मैः सामान्यमिति, 'आगारे' त्ति आक्रियतेऽनेनाभिप्रेतं ज्ञायत इत्याकारो–बाह्यचेष्टारूपः, स एवान्तराकूतगमकरूपत्वाल्लक्षणमिति, उक्तं च–"आकारैरिङ्गितैर्गत्या, चेष्टया भाषितेन च । नेत्रवक्त्रविकारैश्च, गृह्यतेऽन्तर्गतं

१ जीवपुद्गलगतं गत्यादि, तस्य धर्मास्तिकायादिकार्यत्वात् तल्लक्षणता.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

मनः ॥ १ ॥" इति, 'गइरागइ' त्ति गत्यागतिलक्षणं द्वयोर्द्वयोः पदयोर्विशेषणविशेष्यतया अनुकूलं गमनं गतिः प्रत्यावृत्त्या प्रातिकूल्येनागमनमागतिः, गतिश्चागतिश्च गत्यागती ताभ्यां ते एव वा लक्षणं गत्यागतिलक्षणं, तच्चतुर्धा–पूर्वपदव्याहतमुत्तरपदव्याहतमुभयपदव्याहतमुभयपदाव्याहतमिति, तत्र पूर्वपदव्याहतोदाहरणम्–'जीवे णं भंते ! नेरइए ? नेरइए जीवे ?, गोयमा ! जीवे सिय नेरइए सिय अनेरईए, नेरइए पुण नियमा जीवे' उत्तरपदव्याहतोदाहरणम्–'जीवइ भंते ! जीवे जीवे जीवइ ?, गोयमा ! जीवइ ताव नियमा जीवे, जीवे पुण सिय जीवइ सिय नो जीवइ' सिद्धानां जीवनाभावादिति हृदयम्, उभयपदव्याहतोदाहरणम्–'भवसिद्धिए णं भंते ! नेरइए, नेरइए भवसिद्धिए ?, गोयमा भवसिद्धिए सिय नेरइए सिय अनेरइए, नेरइएवि सिय भवसिद्धिए सिय अभवसिद्धिए' उभयपदाव्याहतोदाहरणम्–जीवे भंते ! जीवे जीवे जीवे ?, गोयमा ! जीवे नियमा जीवे जीवेऽवि नियमा जीवे' उपयोगो नियमाज्जीवः जीवोऽपि नियमादुपयोग इति भावना । लोकेऽपि गत्यागतिलक्षणं–'रूवी य घडोत्ति चूतो दुमोत्ति नीलोप्पलं च लोगंमि । जीवो सचेयणोत्ति य विगप्पनियमादयो भणिया ॥ १ ॥' तथा 'नाणत्ति' त्ति नानाभावो नानाता–भिन्नता, सा च लक्षणं, सा पुनश्चतुर्धा–द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतो भावतश्च, तत्र द्रव्यतो नानाता द्विधा–तद्द्रव्यनानाता अन्यद्रव्यनानाता च, तत्र तद्द्रव्यनानाता परमा-

१ जीवो भदन्त ! नैरयिको नैरयिको जीवः ?, गौतम ! जीवः स्यान्नैरयिकः स्यादनैरयिकः, नैरयिकः पुनर्नियमाज्जीवः । जीवति भदन्त ! जीवो जीवो जीवति ?, गौतम ! जीवति तावन्नियमाज्जीवः, जीवः पुनः स्याज्जीवति स्याच्च जीवति । भवसिद्धिको भदन्त ! नैरयिको नैरयिको भवसिद्धिकः ?, गौतम ! भवसिद्धिकः स्यान्नैरयिकः स्यादनैरयिकः, नैरयिकोऽपि स्याद्भव्यसिद्धिकः स्यादभव्यसिद्धिकः । जीवो भदन्त ! जीवो जीवो जीवो ?, गौतम ! जीवो नियमाज्जीवः जीवोऽपि नियमाज्जीवः । २ रूपी च घट इति चूतो द्रुम इति नीलोत्पलं च लोके । जीवः सचेतन इति च विकल्पनियमादयो भणिताः ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

णूनां परस्परतो भिन्नता, अन्यद्रव्यनानाता परमाणोर्द्व्यणुकादिभेदभिन्नता, एवमेकादिप्रदेशावगाढैकादिसमयस्थित्येकादिगुणशुक्लानां तदतन्नानाता वाच्या, इदं च लक्षणं पदार्थस्वरूपावस्थापकत्वात् 'निमित्तं' ति लक्ष्यते शुभाशुभमनेनेति लक्षणं निमित्तमेव लक्षणं निमित्तलक्षणं, तच्चाष्टधा, उक्तं च—"भोमंसुमिणंतरिक्खं दिव्वं अंगसर लक्खणं तह य। वंजणमट्ठविहं खलु निमित्तमेयं मुणेयव्वं ॥१॥" स्वरूपमस्य ग्रन्थान्तरादवसेयम् ॥ 'उप्पाद' त्ति यतो नानुत्पन्नं वस्तु लक्ष्यते अत उत्पादोऽपि वस्तुलक्षणं, 'विगमोय' त्ति विगमश्च विनाशश्च वस्तुलक्षणं, तमन्तरेणोत्पादाभावात्, न हि वक्रतयाऽविनष्टमङ्गुलिद्रव्यं ऋजुतयोत्पद्यत इति भावनेति गाथार्थः ॥

वीरियभावे य तहा लक्खणमेयं समासओ भणियं। अहवावि भावलक्खण चउव्विहं सद्दहणमाई ॥७५२॥

व्याख्या—'वीरियं' ति वीर्यं–सामर्थ्यं यद्यस्य वस्तुनः तदेव लक्षणं वीर्यलक्षणम्, आह च भाष्यकारः–"विरियंति बलं जीवस्स लक्खणं जं च जस्स सामत्थं। दव्वस्स चित्तरूवं जह विरियं महोसहादीणं ॥१॥" तथा भावानाम्–औदयिकादीनां लक्षणं पुद्गलविपाकादिरूपं भावलक्षणं, यथोदयलक्षणः औदयिकः, उपशमलक्षणस्त्वौपशमिकः, तथानुत्पत्तिलक्षणः क्षायिको, मिश्रलक्षणः क्षायोपशमिकः, परिणामलक्षणः पारिणामिकः, संयोगलक्षणः सान्निपातिक इति। अथवा भावाश्च ते लक्षणं चात्मन इति भावलक्षणं, तत्र सामायिकस्य जीवगुणत्वात् क्षयोपशमोपशमक्षयस्वभावत्वाद् भावलक्षणता, अमु-

१ भौमं स्वाममान्तरीक्षं दिव्यमाङ्गं स्वरगतं लक्षणगतं तथा च। व्यञ्जनमष्टविधं खलु निमित्तमेतद् मुणितव्यम् ॥ १ ॥ २ वीर्यमिति बलं जीवस्य लक्षणं यच्च यस्य सामर्थ्यम्। द्रव्यस्य चित्ररूपं यथा वीर्यं महौषधादीनाम् ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

मेवार्थं चेतस्यारोप्याह–'भावे य' इत्यादि, भावे च–विचार्य्यमाणे तथा लक्षणमिदं 'समासतः' सङ्क्षेपतो भणितं । सामायिकस्य वैशेषिकलक्षणाभिधित्सयाऽऽह–'अहवावि भावलक्खण चउव्विधं सद्दहणमादी' अथवाऽपि भावस्य–सामायिकस्य लक्षणमनुस्वारलोपोऽत्र द्रष्टव्यः, चतुर्विधं श्रद्धानादीति गाथार्थः ॥ यदुक्तं–'चतुर्विधं श्रद्धानादि' तत्प्रदर्शनायाह—

सद्दहण जाणणा खलु विरती मीसा य लक्खणं कहए । तेऽवि णिसामेंति तहा चउलक्खणसंजुयं चेव ॥७५३॥दारं

व्याख्या—इह सामायिकं चतुर्विधं भवति, तद्यथा–सम्यक्त्वसामायिकं श्रुतसामायिकं चारित्रसामायिकं चारित्राचारित्रसामायिकं च, अस्य यथायोगं लक्षणं 'सद्दहणं' ति श्रद्धानं, लक्षणमिति योगः सम्यक्त्वसामायिकस्य, 'जाणण'त्ति ज्ञानं ज्ञा–संवित्तिरित्यर्थः, सा च श्रुतसामायिकस्य, खलुशब्दो निश्चयतः परस्परतः सापेक्षत्वविशेषणार्थः, 'विरति'त्ति विरमणं विरतिः–अशेषसावद्ययोगनिवृत्तिः, सा च चारित्रसामायिकस्य लक्षणं, 'मीसा य' त्ति मिश्रा–विरताविरतिः, सा च चारित्राचारित्रसामायिकस्य लक्षणं, कथयतीत्यनेन स्वमनीषिकाऽपोहेन शास्त्रपारतन्त्र्यमाह, भगवान् जिन एवं कथयति, तस्य च कथयतः 'तेऽपि' गणधरादयः 'निशामयन्ति' शृण्वन्ति 'तथा' तेनैव प्रकारेण चतुर्लक्षणसंयुक्तमेवेति गाथार्थः ॥ उक्तं लक्षणद्वारम्, अधुना नयद्वारं प्रतिपिपादयिषुराह—

णेगमसंगहववहारउज्जुसुए चेव होइ बोद्धव्वे । सद्दे य समभिरूढे एवंभूए य मूलणया ॥ ७५४ ॥

व्याख्या—नयन्तीति नयाः–वस्त्ववबोधगोचरं प्रापयन्त्यनेकधर्मात्मकज्ञेयाध्यवसायान्तरहेतव इत्यर्थः, ते च नैगमा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समायिक्स्य सम्यक्त्व-आदि चतुर्भेदा:, अथ सप्त मूल-नयानाम वर्णनं क्रियते

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

दयः, नैगमः सङ्ग्रहः व्यवहारः ऋजुसूत्रश्चैव भवति बोद्धव्यः, शब्दश्च समभिरूढः एवम्भूतश्च मूलनया इति गाथासमुदायार्थो निगदसिद्धः ॥ अवयवार्थं तु प्रतिनयं नयाभिधाननिरुक्तद्वारेण वक्ष्यति, आह च—

णेगेहिं माणेहिं मिणइत्ती णेगमस्स णेरुत्ती । सेसाणंपि णयाणं लक्खणमिणमो सुणेह वोच्छं ॥ ७५५ ॥

व्याख्या—न एकं नैकं–प्रभूतानीत्यर्थः, नैकैर्मानैः–महासत्तासामान्यविशेषज्ञानैर्मिमीते मिनोतीति वा नैकम इति, इयं नैकमस्य निरुक्तिः, निगमेषु वा भवो नैगमः, निगमाः–पदार्थपरिच्छेदाः, तत्र सर्वं सदित्येवमनुगताकारावबोधहेतुभूतां महासत्तामिच्छति अनुवृत्तव्यावृत्तावबोधहेतुभूतं च सामान्यविशेषं द्रव्यत्वादिव्यावृत्तावबोधहेतुभूतं च विशेषं परमाणुमिति । आह–इत्थं तर्ह्ययं नैगमः सम्यग्दृष्टिरेवास्तु, सामान्यविशेषाभ्युपगमपरत्वात्, साधुवदिति, नैतदेवं, सामान्यविशेषवस्तूनामत्यन्तभेदाभ्युपगमपरत्वात्तस्येति, आह च भाष्यकारः–"जं सामण्णविसेसे परोप्परं वत्थुतो य सो भिण्णे । मन्नइ अच्चंतमतो मिच्छदिट्ठी कणातोव्व ॥ १ ॥ दोहिवि णएहि नीतं सत्थमुलूएण तहवि मिच्छत्तं । जं सविसयप्पहाणत्तणेण अन्नोन्ननिरवेक्खा ॥ २ ॥" अथवा निलयनप्रस्थकग्रामोदाहरणेभ्योऽनुयोगद्वारप्रतिपादितेभ्यः खल्वयमवसेय इत्यलं विस्तरेण, गमनिकामात्रमेतत् । 'सेसाण' मित्यादि शेषाणामपि नयानां–सङ्ग्रहादीनां लक्षणमिदं शृणुत 'वक्ष्ये' अभिधास्य इत्ययं गाथार्थः ॥

१ यत् सामान्यविशेषौ परस्परं वस्तुतश्च स भिन्नौ । मन्यतेऽत्यन्तमतो मिथ्यादृष्टिः कणाद इव ॥ १ ॥ द्वाभ्यामपि नयाभ्यां नीतं शास्त्रमुलूकेन तथापि मिथ्यात्वम् । यत् स्वविषयप्रधानत्वेनान्योऽन्यनिरपेक्षौ ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

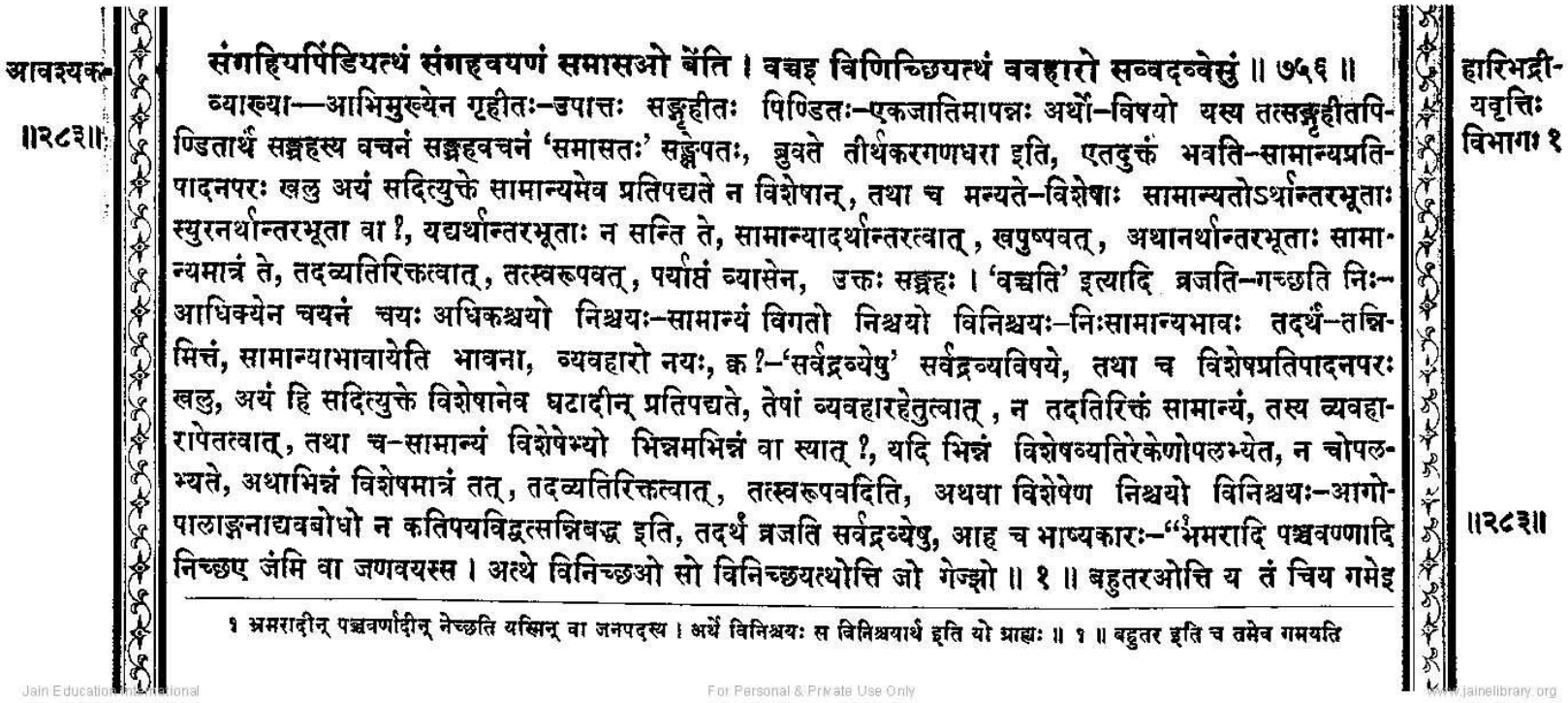

आवश्यक- ॥२८३॥

संगहियपिंडियत्थं संगहवयणं समासओ बेंति । वच्चइ विणिच्छियत्थं ववहारो सव्वदव्वेसुं ॥ ७५६ ॥

व्याख्या—आभिमुख्येन गृहीतः–उपात्तः सङ्गृहीतः पिण्डितः–एकजातिमापन्नः अर्थो–विषयो यस्य तत्सङ्गृहीतपिण्डितार्थं सङ्ग्रहस्य वचनं सङ्ग्रहवचनं 'समासतः' सङ्क्षेपतः, ब्रुवते तीर्थकरगणधरा इति, एतदुक्तं भवति–सामान्यप्रतिपादनपरः खलु अयं सदित्युक्ते सामान्यमेव प्रतिपद्यते न विशेषान्, तथा च मन्यते–विशेषाः सामान्यतोऽर्थान्तरभूताः स्युरनर्थान्तरभूता वा ?, यद्यर्थान्तरभूताः न सन्ति ते, सामान्यादर्थान्तरत्वात्, खपुष्पवत्, अथानर्थान्तरभूताः सामान्यमात्रं ते, तदव्यतिरिक्तत्वात्, तत्स्वरूपवत्, पर्याप्तं व्यासेन, उक्तः सङ्ग्रहः । 'वच्चति' इत्यादि व्रजति–गच्छति निःआधिक्येन चयनं चयः अधिकश्चयो निश्चयः–सामान्यं विगतो निश्चयो विनिश्चयः–निःसामान्यभावः तदर्थं–तन्निमित्तं, सामान्याभावायेति भावना, व्यवहारो नयः, क्व ?–'सर्वद्रव्येषु' सर्वद्रव्यविषये, तथा च विशेषप्रतिपादनपरः खलु, अयं हि सदित्युक्ते विशेषानेव घटादीन् प्रतिपद्यते, तेषां व्यवहारहेतुत्वात्, न तदतिरिक्तं सामान्यं, तस्य व्यवहारापेतत्वात्, तथा च–सामान्यं विशेषेभ्यो भिन्नमभिन्नं वा स्यात् ?, यदि भिन्नं विशेषव्यतिरेकेणोपलभ्येत, न चोपलभ्यते, अथाभिन्नं विशेषमात्रं तत्, तदव्यतिरिक्तत्वात्, तत्स्वरूपवदिति, अथवा विशेषेण निश्चयो विनिश्चयः–आगोपालाङ्गनाद्यवबोधो न कतिपयविद्वत्सन्निबद्ध इति, तदर्थं व्रजति सर्वद्रव्येषु, आह च भाष्यकारः–"[1]भमरादि पञ्चवण्णादि निच्छए जंमि वा जणवयस्स । अत्थे विनिच्छओ सो विनिच्छयत्थोत्ति जो गेज्झो ॥ १ ॥ बहुतरओत्ति य तं चिय गमेइ

१ भ्रमरादीन् पञ्चवर्णादीन् नेच्छति यस्मिन् वा जनपदस्य । अर्थे विनिश्चयः स विनिश्चयार्थ इति यो ग्राह्यः ॥ १ ॥ बहुतर इति च तमेव गमयति

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

॥२८३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

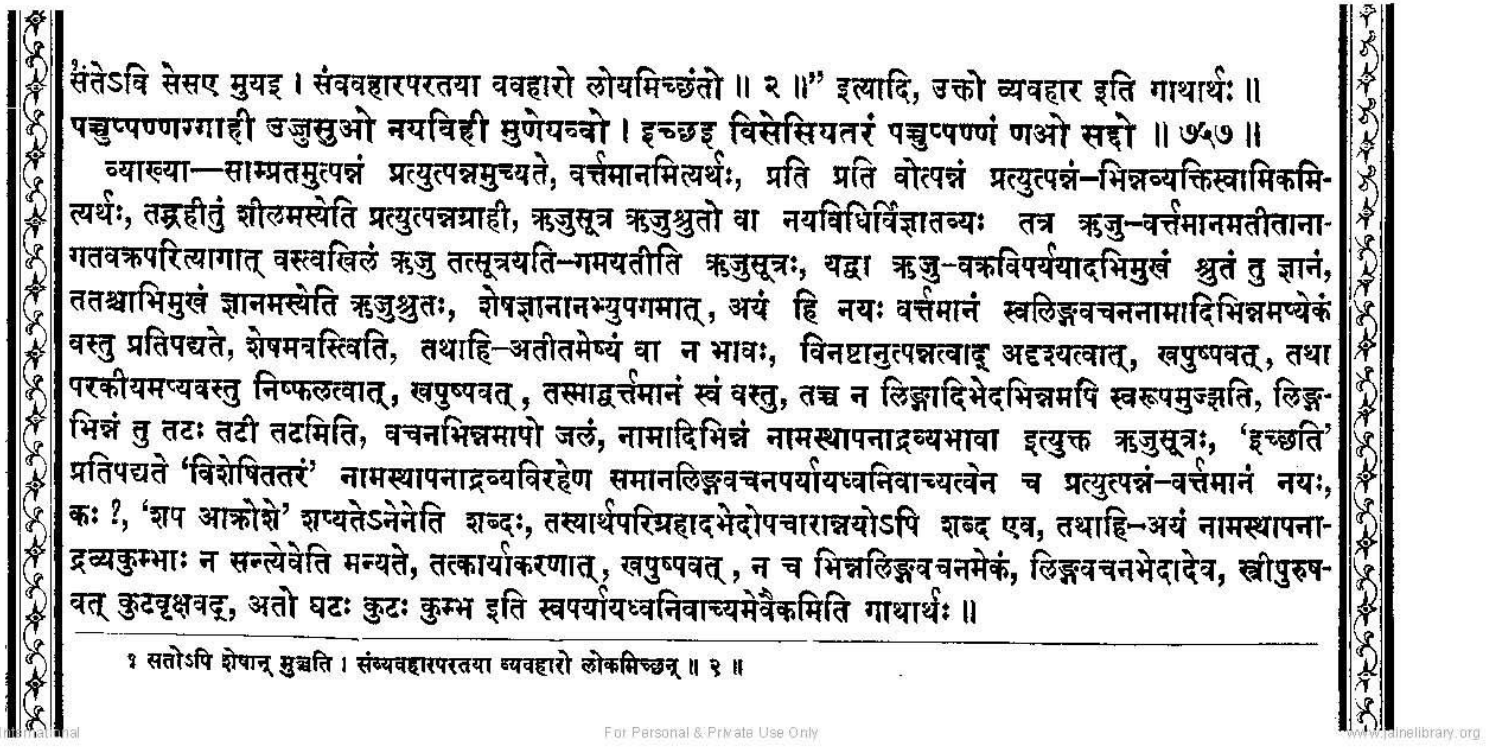

संतेऽवि सेसए मुयइ । संववहारपरतया ववहारो लोयमिच्छंतो ॥ २ ॥" इत्यादि, उक्तो व्यवहार इति गाथार्थः ॥

पच्चुप्पण्णग्गाही उज्जुसुओ नयविही मुणेयव्वो । इच्छइ विसेसियतरं पच्चुप्पण्णं णओ सद्दो ॥ ७५७ ॥

व्याख्या—साम्प्रतमुत्पन्नं प्रत्युत्पन्नमुच्यते, वर्त्तमानमित्यर्थः, प्रति प्रति वोत्पन्नं प्रत्युत्पन्नं–भिन्नव्यक्तिस्वामिकमित्यर्थः, तद्ग्रहीतुं शीलमस्येति प्रत्युत्पन्नग्राही, ऋजुसूत्र ऋजुश्रुतो वा नयविधिर्विज्ञातव्यः तत्र ऋजु–वर्त्तमानमतीतानागतवक्रपरित्यागात् वस्त्वखिलं ऋजु तत्सूत्रयति–गमयतीति ऋजुसूत्रः, यद्वा ऋजु–वक्रविपर्ययादभिमुखं श्रुतं तु ज्ञानं, ततश्चाभिमुखं ज्ञानमस्येति ऋजुश्रुतः, शेषज्ञानानभ्युपगमात्, अयं हि नयः वर्त्तमानं स्वलिङ्गवचननामादिभिन्नमप्येकं वस्तु प्रतिपद्यते, शेषमवस्त्विति, तथाहि–अतीतमेष्यं वा न भावः, विनष्टानुत्पन्नत्वाद् अदृश्यत्वात्, खपुष्पवत्, तथा परकीयमप्यवस्तु निष्फलत्वात्, खपुष्पवत्, तस्माद्वर्त्तमानं स्वं वस्तु, तच्च न लिङ्गादिभेदभिन्नमपि स्वरूपमुज्झति, लिङ्गभिन्नं तु तटः तटी तटमिति, वचनभिन्नमापो जलं, नामादिभिन्नं नामस्थापनाद्रव्यभावा इत्युक्त ऋजुसूत्रः, 'इच्छति' प्रतिपद्यते 'विशेषिततरं' नामस्थापनाद्रव्यविरहेण समानलिङ्गवचनपर्यायध्वनिवाच्यत्वेन च प्रत्युत्पन्नं–वर्त्तमानं नयः, कः ?, 'शप आक्रोशे' शप्यतेऽनेनेति शब्दः, तस्यार्थपरिग्रहादभेदोपचारान्नयोऽपि शब्द एव, तथाहि–अयं नामस्थापनाद्रव्यकुम्भाः न सन्त्येवेति मन्यते, तत्कार्याकरणात्, खपुष्पवत्, न च भिन्नलिङ्गवचनमेकं, लिङ्गवचनभेदादेव, स्त्रीपुरुषवत् कुटवृक्षवद्, अतो घटः कुटः कुम्भ इति स्वपर्यायध्वनिवाच्यमेवैकमिति गाथार्थः ॥

१ सतोऽपि शेषान् मुञ्चति । संव्यवहारपरतया व्यवहारो लोकमिच्छन् ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

वत्थूओ संकमणं होइ अवत्थू णए समभिरूढे । वंजणमत्थतदुभयं एवंभूओ विसेसेइ ॥ ७५८ ॥

व्याख्या—वस्तुनः सङ्क्रमणं भवति अवस्तु नये समभिरूढे, वस्तुनो–घटाख्यस्य सङ्क्रमणम्–अन्यत्र कुटाख्यादौ गमनं किम् ?–भवति अवस्तु–असदित्यर्थः, नये पर्यालोच्यमाने एकस्मिन्नानार्थसमभिरोहणात्समभिरूढः तस्मिन् , इयमत्र भावना–घटः कुटः कुम्भ इत्यादिशब्दान् भिन्नप्रवृत्तिनिमित्तत्वाद्भिन्नार्थगोचरानेव मन्यते, घटपटादिशब्दानिव, तथा च घटनाद् घटः, विशिष्टचेष्टावानर्थो घट इति, तथा 'कुट कौटिल्ये' कुटनात्कुटः, कौटिल्ययोगात्कुटः, तथा 'उभ उम्भ पूरणे' उम्भनात् उम्भः, कुस्थितपूरणादित्यर्थः, ततश्च यदा घटार्थे कुटादिशब्दः प्रयुज्यते तदा वस्तुनः कुटादेस्तत्र सङ्क्रान्तिः कृता भवति, तथा च सति सर्वधर्माणां नियतस्वभावत्वादन्यत्र सङ्क्रान्त्योभयस्वभावापगमतोऽवस्तुतेत्यलं विस्तरेण, उक्तः समभिरूढः । 'वञ्जण' मित्यादि व्यज्यतेऽनेन व्यनक्तीति वा व्यञ्जनं–शब्दः अर्थस्तु–तद्गोचरः, तच्च तदुभयं च तदुभयं–शब्दार्थलक्षणम् 'एवम्भूतो' यथाभूतो नयः विशेषयति, इदमत्र हृदयम्–शब्दमर्थेन विशेषयत्यर्थं च शब्देन, 'घट चेष्टाया' मित्यत्र चेष्टया घटशब्दं विशेषयति, घटशब्देनापि चेष्टां, न स्थानभरणक्रियां, ततश्च यदा योषिन्मस्तकव्यवस्थितः चेष्टावानर्थो घटशब्देनोच्यते तदा स घटः, तद्वाचकश्च शब्दः, अन्यदा वस्त्वन्तरस्येव चेष्टाऽयोगादघटत्वं तद्ध्वनेश्चावाचकत्वमिति गाथार्थः ॥ एवं तावन्नैगमादीनां मूलजातिभेदेन संक्षेपलक्षणमभिधायाधुना तत्प्रभेदसङ्ख्यां प्रदर्शयन्नाह–

एक्केको य सयविहो सत्त णयसया हवंति एमेव । अण्णोऽवि य आएसो पंचेव सया नयाणं तु ॥ ७५९ ॥

व्याख्या—अनन्तरोक्तनैगमादिनयानामेकैकश्च स्वभेदापेक्षया 'शतविधः' शतभेदः सप्त नयशतानि भवन्ति एवं तु,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

अन्योऽपि चाऽऽदेशः पञ्च शतानि भवन्ति तु नयानां, शब्दादीनामेकत्वाद् एकैकस्य च शतविधत्वादिति हृदयम् । अपि-शब्दात्षट् चत्वारि द्वे वा शते, तत्र षट् शतानि नैगमस्य सङ्ग्रहव्यवहारद्वये प्रवेशाद्, एकैकस्य च शतभेदत्वात्, तथा चत्वारि शतानि सङ्ग्रहव्यवहारऋजुसूत्रशब्दानामेकैकनयानां शतविधत्वात्, शतद्वयं तु नैगमादीनामृजुसूत्रपर्यन्तानां द्रव्यास्तिकत्वात्, शब्दादीनां च पर्यायास्तिकत्वात्, तयोश्च शतभेदत्वादिति गाथार्थः ॥

एएहिं दिट्ठिवाए परूवणा सुत्तअत्थकहणा य । इह पुण अणब्भुवगमो अहिगारो तिहि उ ओसन्नं ॥ ७६० ॥

व्याख्या—'एभिः' नैगमादिभिर्नयैः सप्तभेदैर्दृष्टिवादे प्ररूपणा, सर्ववस्तूनां क्रियत इति वाक्यशेषः, सूत्रार्थकथना च, आह–वस्तूनां सूत्रार्थानतिलङ्घनादध्याहारोऽनर्थक इति, न, तत्सूत्रोपनिबद्धस्यैव सूत्रार्थत्वेन विवक्षितत्वात्, तद्व्यतिरेकेणापि च वस्तुसम्भवात्, 'इह पुनः' कालिकश्रुते 'अनभ्युपगमः' नावश्यं नयैर्व्याख्या कार्येति, किन्तु ?, श्रोत्रपेक्षं कार्या, तत्राप्यधिकारस्त्रिभिराद्यैः 'उत्सन्नं' प्रायस इति गाथार्थः ॥ आह–'इह पुनरनभ्युपगम' इत्यभिधाय पुनस्त्रि-नयानुज्ञा किमर्थमिति, उच्यते—

णत्थि णएहि विहूणं सुत्तं अत्थो व जिणमए किंचि । आसज्ज उ सोयारं णए णयविसारओ बूया ॥ ७६१ ॥

व्याख्या—नास्ति नयैर्विहीनं सूत्रमर्थो वा जिनमते किञ्चिदित्यतस्त्रिनयपरिग्रहः, अशेषनयप्रतिषेधस्त्वाचार्यविनेयानां विशिष्टबुद्ध्यभावमपेक्ष्य इति । आह च–आश्रित्य पुनः श्रोतारं–विमलमतिं, तुशब्दः पुनःशब्दार्थे, किम् ?–नयान्नयविशा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

रदो–गुरुर्ब्रूयादिति गाथार्थः ॥ उक्तं नयद्वारम्, अधुना समवतारद्वारमुच्यते–कतेषां नयानां समवतारः?, क्व वाऽनवतार इति संशयापोहायाह—

मूढनइयं सुयं कालियं तु ण णया समोयरंति इहं । अपुहुत्ते समोयारो नत्थि पुहुत्ते समोयारो ॥ ७६२ ॥

व्याख्या—मूढा नया यस्मिन् तन्मूढनयं तदेव मूढनयिकं, स्वार्थे ठक्, अथवा अविभागस्था मूढाः, मूढाश्च ते नयाश्च मूढनयाः तेऽस्मिन्विद्यन्ते 'अत इनिठना' (पा० ५–२–११५) विति मूढनयिकं, श्रुतं 'कालिकं तु' कालिकमिति काले–प्रथमचरमपौरुषीद्वये पठ्यत इति कालिकं, न नयाः समवतरन्ति, अत्र प्रतिपदं न भण्यन्त इति भावना । आह— क्व पुनरमीषां समवतारः?, 'अपुहुत्ते समोतारो' अपृथग्भावोऽपृथक्त्वं चरणधर्मसङ्ख्याद्रव्यानुयोगानां प्रतिसूत्रमविभागेन वर्त्तनमित्यर्थः, तस्मिन्नयानां विस्तरेण विरोधाविरोधसम्भवविशेषादिना समवतारः, 'नत्थि पुहुत्ते समोतारो' नास्ति पृथक्त्वे समवतारः, पुरुषविशेषापेक्षं वाऽवतार्य्यन्त इति गाथार्थः ॥ आह–कियन्तं कालमपृथक्त्वमासीत्?, कुतो वा समारभ्य पृथक्त्वं जातमिति?, उच्यते,

जावंति अज्जवइरा अपुहुत्तं कालियाणुओगस्स । तेणारेण पुहुत्तं कालियसुअ दिट्ठिवाए य ॥ ७६३ ॥

व्याख्या—यावदार्यवैराः गुरवो महामतयस्तावदपृथक्त्वं कालिकानुयोगस्यासीत्, तदा साधूनां तीक्ष्णप्रज्ञत्वात्, कालिकग्रहणं प्राधान्यख्यापनार्थम्, अन्यथा सर्वानुयोगस्यैवापृथक्त्वमासीदिति। तत आरतः पृथक्त्वं कालिकश्रुते दृष्टिवादे चेति गाथार्थः ॥ अथ क्व एते आर्य्यवैरा इति?, तत्र स्तवद्वारेण तेषामुत्पत्तिमभिधित्सुराह—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

तुंबवणसंनिवेसाओ निग्गयं पिउसगासमल्लीणं । छम्मासियं छसु जयं माऊयसमन्नियं वंदे ॥ ७६४ ॥

व्याख्या—तुम्बवनसन्निवेशान्निर्गतं पितुः सकाशमालीनं षाण्मासिकं षट्सु–जीवनिकायेषु यतं–प्रयत्नवन्तं मात्रा च समन्वितं वन्दे, अयं समुदायार्थः । अवयवार्थस्तु कथानकादवसेयः, तच्चेदम्—

[1]वइरसामी पुव्वभवे सक्कस्स देवरण्णो वेसमणस्स सामाणिओ आसि । इतो य भगवं वद्धमाणसामी पिट्ठिचंपाए नयरीए सुभूमिभागे उज्जाणे समोसढो, तत्थ य सालो राया महासालो जुवराया, तेसिं भगिणी जसवती, तीसे भत्ता पिठरो, पुत्तो य से गागलीनाम कुमारो, ततो सालो भगवतो समीवे धम्मं सोऊण भणइ–जं नवरं महासालं रज्जे अभिसिंचामि ततो तुम्हं पादमूले पव्वयामि, तेण गंतूण भणितो महासालो–राया भवसु, अहं पव्वयामि, सो भणइ–अहंपि पव्वयामि, जहा तुब्भे इह अम्हाणं मेढीपमाणं तहा पव्वइयस्सवित्ति, ताहे गागिली कंपिल्लपुरातो आणेउं रज्जे अभिसिंचितो, तस्स माया जसवती कंपिल्लपुरे नगरे दिण्णिया पिठररायपुत्तस्स, तेण ततो आणिओ, तेण पुण तेसिं दो पुरिससहस्सवाहिणीओ

१ वज्रस्वामी पूर्वभवे शक्रस्य देवराजस्य वैश्रमणस्य सामानिक आसीत् । इतश्च भगवान् वर्धमानस्वामी पृष्ठचम्पायां नगर्यां सुभूमिभाग उद्याने समवसृतः, तत्र च शालो नाम राजा महाशालो युवराजः, तयोर्भगिनी यशोमती, तस्या भर्त्ता पिठरः, पुत्रश्च तस्या गागलीर्नाम कुमारः, ततः शालो भगवतः समीपे धर्मं श्रुत्वा भणति–यन्नवरं महाशालं राज्येऽभिषिञ्चामि, ततो युष्माकं पादमूले प्रव्रजामि, तेन गत्वा भणितो महाशालः–राजा भव, अहं प्रव्रजामि, स भणति–अहमपि प्रव्रजामि, यथा यूयमिह अस्माकं मेढीप्रमाणास्तथा प्रव्रजितस्यापीति, तदा गागिलीः काम्पील्यपुरादानीय राज्येऽभिषिक्तः, तस्य माता यशोमती काम्पील्यपुरे नगरे दत्ता पिठरराजपुत्राय, तेन तत आनीतः, तेन पुनस्तयोर्द्वे सहस्रपुरुषवाहिन्यौ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वज्रस्वामिनः कथानकं

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

सीयाओ कारियाओ, जाव ते पव्वइया, सावि तेसिं भगिणी समणोवासिया जाया, तेऽवि एक्कारसंगाइं अहिज्जिया। अण्णया य भगवं रायगिहे समोसढो, ततो भगवं निग्गतो चंपं जतो पधावितो, ताहे सालमहासाला सामिं पुच्छंति–अम्हे पिट्ठिचंपं वच्चामो, जइ नाम कोइ तेसिं पव्वएज्ज सम्मत्तं वा लभेज्ज, सामी जाणइ—जहा ताणि संबुज्झिहिन्ति, ताहे तेसिं सामिणा गोतमसामी बिइज्जओ दिण्णो, सामी चंपं गतो, गोयमसामीऽवि पिट्ठिचंपं गतो, तत्थ समवसरणं, गागलि पिठरो जसवती य निग्गयाणि, ताणि परमसंविग्गाणि, धम्मं सोऊण गागलीपुत्तं रज्जे अभिसिंचिऊण मातापितिसहितो पव्वइओ, गोयमसामी ताणि घेत्तूण चंपं वच्चइ, तेसिं सालमहासालाणं चंपं वच्चंताणं हरिसो जातो–संसारातो उत्तारियाणित्ति, ततो सुभेणऽज्झवसाणेण केवलनाणं उप्पन्नं, तेसिंपि चिंता जाया–जहा अम्हे एतेहिं रज्जे ठावियाणि पुणरवि धम्मे ठावियाणि संसारातो मोइयाणि, एवं चिंतंताणं सुभेणऽज्झवसाणेण तिण्हवि केवलनाणं समुप्पण्णं, एवं ताणि उप्पण्णनाणाणि

१ शिबिके कारिते, यावत्तौ प्रव्रजितौ, साऽपि तयोर्भगिनी श्रमणोपासिका जाता, तावपि एकादशाङ्गान्यधीतवन्तौ। अन्यदा च भगवान् राजगृहे समवसृतः, ततो भगवान् निर्गतः चम्पां यतः प्रधावितः, तदा शालमहाशालौ स्वामिनं पृच्छतः–आवां व्रजावः पृष्ठचम्पां, यदि नाम कोऽपि तेषां प्रव्रजेत् सम्यक्त्वं वा लभेत, स्वामी जानाति–यथा ते संभोत्स्यन्ते, तदा तयोः स्वामिना गौतमस्वामी द्वितीयको दत्तः, स्वामी चम्पां गतः, गौतमस्वाम्यपि पृष्ठचम्पां गतः, तत्र समवसरणं, गागलीः पिठरो यशोमती च निर्गताः, ते परमसंविग्नाः, धर्मं श्रुत्वा गागलीः पुत्रं राज्येऽभिषिच्य मातापितृसहितः प्रव्रजितः, गौतमस्वामी तान् गृहीत्वा चम्पां व्रजति, तयोः शालमहाशालयोश्चम्पां व्रजतोर्हर्षो जातः–संसारादुत्तारिता इति, ततः शुभेनाध्यवसायेन केवलज्ञानमुत्पन्नं, तेषामपि चिन्ता जाता–यथा वयमेताभ्यां राज्ये स्थापिताः पुनरपि धर्मे स्थापिताः संसारान्मोचिताः, एवं चिन्तयतां शुभेनाध्यवसायेन त्रयाणामपि केवलज्ञानं समुत्पन्नम्, एवं ते उत्पन्नज्ञान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

गयाणि चंपं, सामिं पदक्खिणेउं तित्थं नमिऊण केवलिपरिसं पधाविताणि, गोयमसामीऽवि भगवं पदक्खिणेऊण पादेसु पडितो उट्ठितो भणइ–कहं वच्चह ?, एह सामिं वंदह, ताहे भगवया भणिओ–मा गोयम ! केवली आसाएहि, ताहे आउट्टो खामेइ, संवेगं चागतो, चिंतेइ य–माऽहं न चेव सिज्झेज्जा । इतो य सामिणा पुव्वं वागरियं अणागए गोयमसामिम्मि–जहा जो अट्ठापदं विलग्गइ चेइयाणि य वंदइ धरणिगोयरो सो तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति, तं च देवा अन्नमन्नस्स कहिंति, जहा किर धरणिगोयरो अट्ठावयं जो विलग्गति सो तेणेव भवेण सिज्झइ, ततो गोयमसामी चिंतइ–जह अट्ठावयं वच्चेज्जा, ततो सामी तस्स हिययाकूतं जाणिऊण तावसा य संबुज्झिहिन्तित्ति भगवया भणितो–वच्च गोयम ! अट्ठावयं चेइयं वंदेउं, ताहे भगवं गोयमो हट्ठतुट्ठो भगवं वंदित्ता गतो अट्ठावयं, तत्थ य अट्ठावदे जणवायं सोऊण तिण्णि तावसा पंचसयपरिवारा पत्तेयं २ अट्ठावयं विलग्गामोत्ति, तंजहा–कोंडिण्णो दिण्णो सेवाली, कोंडिण्णो

---

१ गताश्चम्पां, स्वामिनं प्रदक्षिणय्य तीर्थं नत्वा केवलिपर्षदं प्रधाविताः, गौतमस्वाम्यपि भगवन्तं प्रदक्षिणय्य पादयोः पतित उत्थितो भणति–कथं (क) व्रजत, एत स्वामिनं वन्दध्वं, तदा भगवता भणितः–मा गौतम ! केवलिन आशातय, तदाऽऽवृत्तः क्षमयति, संवेगं चागतः, चिन्तयति च–माऽहं नैव सैत्स्यम् । इतश्च स्वामिना पूर्वं व्याकृतमनागते गौतमस्वामिनि–यथा योऽष्टापदं विलगति चैत्यानि च वन्दते धरणीगोचरः स तेनैव भवग्रहणेन सिध्यति, तच्च देवा अन्योऽन्यं कथयन्ति, यथा किल धरणीगोचरोऽष्टापदं यो विलगति स तेनैव भवेन सिध्यति, ततो गौतमस्वामी चिन्तयति–यथाऽष्टापदं व्रजेयं, ततः स्वामी तस्य हृदयाकूतं ज्ञात्वा तापसाश्च संभोत्स्यन्त इति भगवता भणितः–व्रज गौतमाष्टापदं चैत्यं वन्दितुं, तदा भगवान् गौतमो हृष्टतुष्टो भगवन्तं वन्दित्वा गतोऽष्टापदं, तत्र चाष्टापदे जनवादं श्रुत्वा त्रयस्तापसाः पञ्चशतपरिवाराः प्रत्येकं प्रत्येकं अष्टापदं विलगाम इति, तद्यथा–कौण्डिन्यः दत्तः शेवालः, कौण्डिन्यः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

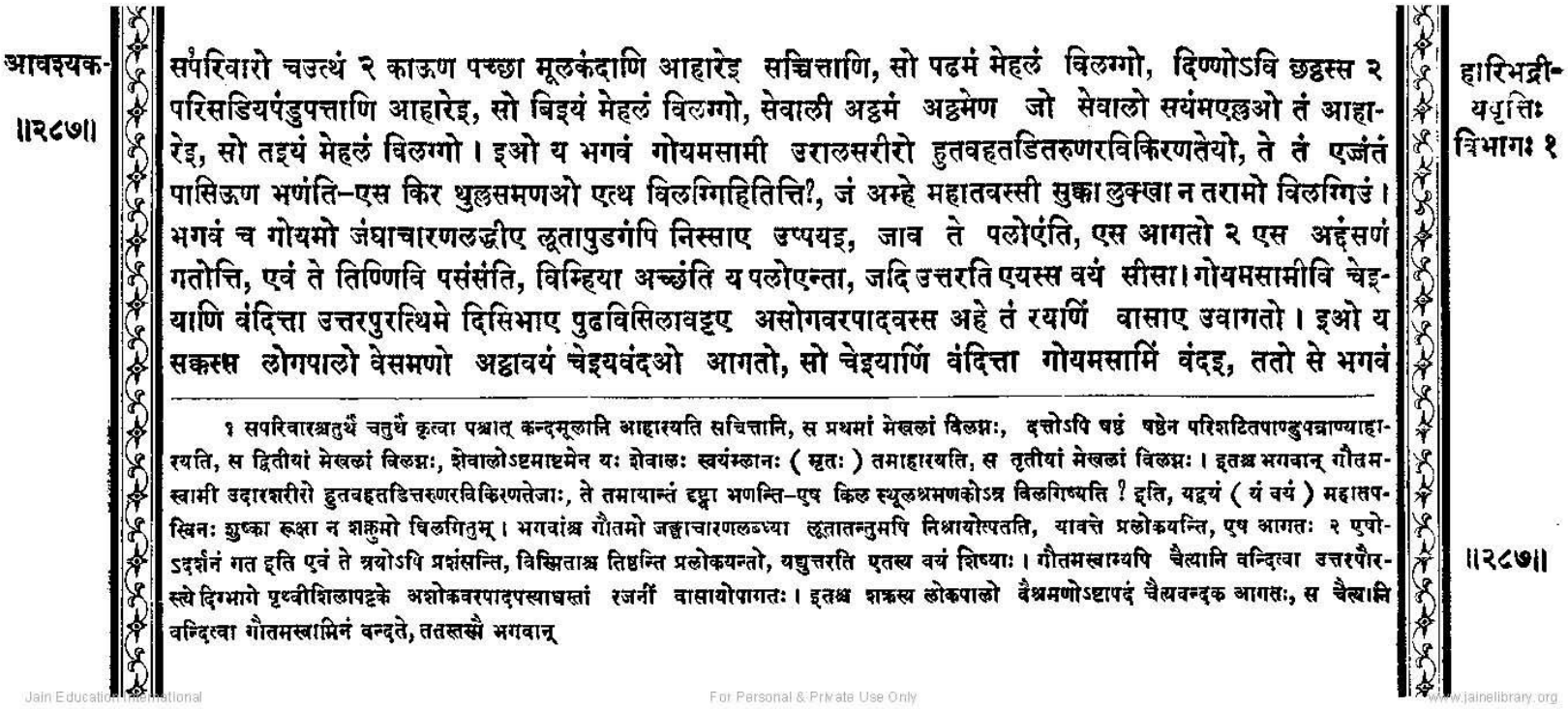

आवश्यक- ॥२८७॥

सपरिवारो चउत्थं २ काऊण पच्छा मूलकंदाणि आहारेइ सच्चित्ताणि, सो पढमं मेहलं विलग्गो, दिण्णोऽवि छट्ठस्स २ परिसडियपंडुपत्ताणि आहारेइ, सो बिइयं मेहलं विलग्गो, सेवाली अट्ठमं अट्ठमेण जो सेवालो सयंमएल्लओ तं आहारेइ, सो तइयं मेहलं विलग्गो। इओ य भगवं गोयमसामी उरालसरीरो हुतवहतडितरुणरविकिरणतेयो, ते तं एज्जंतं पासिऊण भणंति–एस किर थुल्लसमणओ एत्थ विलग्गिहितित्ति?, जं अम्हे महातवस्सी सुक्का लुक्खा न तरामो विलग्गिउं। भगवं च गोयमो जंघाचारणलद्धीए लूतापुडगंपि निस्साए उप्पयइ, जाव ते पलोएंति, एस आगतो २ एस अहंसणं गतोत्ति, एवं ते तिण्णिवि पसंसंति, विम्हिया अच्छंति य पलोएन्ता, जदि उत्तरति एयस्स वयं सीसा। गोयमसामीवि चेइयाणि वंदित्ता उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए पुढविसिलावट्टए असोगवरपादवस्स अहे तं रयणिं वासाए उवागतो। इओ य सक्कस्स लोगपालो वेसमणो अट्ठावयं चेइयवंदओ आगतो, सो चेइयाणिं वंदित्ता गोयमसामिं वंदइ, ततो से भगवं

१ सपरिवारश्चतुर्थं चतुर्थं कृत्वा पश्चात् कन्दमूलानि आहारयति सचित्तानि, स प्रथमां मेखलां विलग्नः, दत्तोऽपि षष्ठं षष्ठेन परिशटितपाण्डुपत्राण्याहारयति, स द्वितीयां मेखलां विलग्नः, शैवालोऽष्टमाष्टमेन यः शैवालः स्वयंम्लानः (मृतः) तमाहारयति, स तृतीयां मेखलां विलग्नः। इतश्च भगवान् गौतमस्वामी उदारशरीरो हुतवहतडित्तरुणरविकिरणतेजाः, ते तमायान्तं दृष्ट्वा भणन्ति–एष किल स्थूलश्रमणकोऽत्र विलगिष्यति ? इति, यद्वयं (यं वयं) महातपस्विनः शुष्का रूक्षा न शक्नुमो विलगितुम्। भगवांश्च गौतमो जङ्घाचारणलब्ध्या लूतातन्तुमपि निश्रायोत्पतति, यावत्ते प्रलोकयन्ति, एष आगतः २ एषोऽदर्शनं गत इति एवं ते त्रयोऽपि प्रशंसन्ति, विस्मिताश्च तिष्ठन्ति प्रलोकयन्तो, यद्युत्तरति एतस्य वयं शिष्याः। गौतमस्वाम्यपि चैत्यानि वन्दित्वा उत्तरपौरस्त्ये दिग्भागे पृथ्वीशिलापट्टके अशोकवरपादपस्याधस्तां रजनीं वासायोपागतः। इतश्च शक्रस्य लोकपालो वैश्रमणोऽष्टापदं चैत्यवन्दक आगतः, स चैत्यानि वन्दित्वा गौतमस्वामिनं वन्दते, ततस्तस्मै भगवान्

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

॥२८७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

धम्मकहावसरे अणगारगुणे परिकहेइ, जहा भगवंतो साहवो अंताहारा पंताहारा एवमादि, वेसमणो चिंतेइ–एस भगवं एरिसे साहुगुणे वण्णेइ, अप्पणो य से इमा सरीरसुकुमारता जा देवाणवि न अत्थि, ततो भगवं तस्साकूतं नाऊण पुंडरीयं नाममज्झयणं परूवेइ, जहा–पुंडरिगिणी नगरी पुंडरीओ राया कंडरीओ जुवराया जहा नातेसु, तं मा तुमं बलियत्तं दुब्बलियत्तं वा गेण्हाहि, जहा सो कंडरीओ तेणं दुब्बलेणं अट्टदुहट्टो कालगतो अहे सत्तमाए उववण्णो, पुंडरीओ पुण पडिपुण्णगल्लकपोलोऽवि सव्वट्ठसिद्धे उववण्णो, एवं देवाणुप्पिया! दुब्बलो बलिओ वा अकारणं, एत्थ झाणनिग्गहो कायव्वो, झाणनिग्गहो परं पमाणं, ततो वेसमणो अहो भगवया मम हिययाकूतं नायंति आउट्टो संवेगमावण्णो वंदित्ता पडिगतो। तत्थ वेसमणस्स एगो सामाणिओ देवो जंभगो, तेण तं पुंडरीयज्झयणं उग्गहियं पंचसयाणि, सम्मत्तं च पडिवण्णो, ततो भगवं बिइयदिवसे चेइयाणि वंदित्ता पच्चोरुहइ, ते य तावसा भणंति–तुब्भे अम्हं आयरिया अम्हे तुब्भं

---

१ धर्मकथावसरेऽनगारगुणान् परिकथयति, यथा भगवन्तः साधवोऽन्ताहाराः प्रान्ताहारा एवमादीन्, वैश्रमणश्चिन्तयति–एष भगवान् ईदृशान् साधुगुणान् वर्णयति, आत्मनश्चास्येयं शरीरसुकुमारता यादृशी देवानामपि नास्ति, ततो भगवान् तस्याकूतं ज्ञात्वा पुण्डरीकं नामाध्ययनं प्ररूपयति, यथा–पुण्डरीकिणी नगरी पुण्डरीको राजा कण्डरीको युवराजः यथा ज्ञातेषु, तन्मा त्वं बलित्वं दुर्बलत्वं वा ग्राहीः, यथा स कण्डरीकस्तेन दौर्बल्येन आर्त्तदुःखार्त्तः कालगतोऽधः सप्तम्यामुत्पन्नः, पुण्डरीकः पुनः प्रतिपूर्णगल्लकपोलोऽपि सर्वार्थसिद्धे उत्पन्नः, एवं देवानुप्रिय! दुर्बलो बलिको वाऽकारणम्, अत्र ध्याननिग्रहः कर्त्तव्यः, ध्याननिग्रहः परं प्रमाणं, ततो वैश्रमणोऽहो भगवता मम हृदयाकूतं ज्ञातमित्यावृत्तः संवेगमापन्नो वन्दित्वा प्रतिगतः। तत्र वैश्रमणस्य एकः सामानिको देवो जृम्भकः, तेन तत् पुण्डरीकाध्ययनमवगृहीतं पञ्चशतानि, सम्यक्त्वं च प्रतिपन्नः, ततो भगवान् द्वितीयदिवसे चैत्यानि वन्दित्वा प्रत्यवतरति, ते च तापसा भणन्ति—यूयमस्माकमाचार्या वयं युष्माकं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

सीसा, सामी भणति—तुब्भ य अम्ह य तिलोयगुरू आयरिया, ते भणंति–तुब्भवि अण्णो?, ताहे सामी भयवतो गुणसंथवं करेइ, ते पव्वाविता, देवयाए लिंगाणि उवणीयाणि, ताहे भगवया सद्धिं वच्चंति, भिक्खावेला य जाता, भगवं भणइ–किं आणिज्जउ पारणंमित्ति ?, ते भणंति–पायसो, भगवं च सव्वलद्धिसंपुण्णो पडिग्गहं घतमधुसंजुत्तस्स पायसस्स भरेत्ता आगतो, ते भगवता अक्खीणमहाणसिएण सव्वे उवट्ठिया, पच्छा अप्पणा जिमितो, ततो ते सुट्ठतरं आउट्टा, तेसिं च सेवालभक्खाणं पंचण्हवि सयाणं गोतमसामिणो तं लद्धिं पासिऊण केवलनाणं उप्पण्णं, दिण्णस्स पुणो सपरिवारस्स भगवतो छत्तातिच्छत्तं पासिऊण केवलनाणं उप्पन्नं, कोडिण्णस्सवि सामिं दट्ठूण केवलनाणं उप्पन्नं, भगवं च पुरओ पकड्ढेमाणो सामिं पदाहिणं करेइ, ते केवलिपरिसं गता, गोयमसामी भणइ–एह सामिं वंदह, सामी भणइ–गोयमा! मा केवली आसाएहि, भगवं आउट्टो मिच्छामिदुक्कडंति करेइ, ततो भगवओ सुट्ठुतरं अद्धिती जाया, ताहे सामी गोयमं

१ शिष्याः, स्वामी भणति–युष्माकमस्माकं च त्रिलोकगुरव आचार्याः, ते भणन्ति–युष्माकमपि अन्यः ?, तदा स्वामी भगवतो गुणसंस्तवं करोति, ते प्रव्राजिताः, देवतया लिङ्गान्युपनीतानि, तदा भगवता सार्धं व्रजन्ति, भिक्षावेला च जाता, भगवान् भणति–किमानीयतां पारणमिति?, ते भणन्ति–पायसः, भगवांश्च सर्वलब्धिसंपूर्णः पतद्ग्रहं घृतमधुसंयुक्तेन पायसेन भृत्वाऽऽगतः, ते भगवताऽक्षीणमहानसिकेन सर्वे उपस्थापिताः, पश्चादात्मना जेमितः, ततस्ते सुष्ठुतरमावृत्ताः, तेषां च शैवालभक्षकाणां पञ्चानामपि शतानां गौतमस्वामिनस्तां लब्धिं दृष्ट्वा केवलज्ञानमुत्पन्नं, दत्तस्य पुनः सपरिवारस्य भगवतश्छत्रातिच्छत्रं दृष्ट्वा केवलज्ञानमुत्पन्नं, कौण्डिन्यस्यापि स्वामिनं दृष्ट्वा केवलज्ञानमुत्पन्नं, भगवांश्च पुरतः प्रक्रुष्यन् स्वामिनं प्रदक्षिणीकरोति, ते केवलिपर्षदं गताः, गौतमस्वामी भणति–एत स्वामिनं वन्दध्वं, स्वामी भणति–गौतम! मा केवलिन आशातय, भगवानावृत्तो मिथ्यामेदुष्कृतमिति करोति, ततो भगवतः सुष्ठतरमधृतिर्जाता, तदा स्वामी गौतमं

॥२८८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

भणति–किं देवाणं वयणं गेज्झं ? अहो तो जिणवराणं ?, गोयमो भणति–जिणवराणं, तो किं अद्धितिं करेसि ?, ताहे सामी चत्तारि कडे पण्णवेइ, तंजहा–सुंबकडे विदलकडे चम्मकडे कंबलकडे, एवं सीसावि सुंबकडसमाणे ४, तुमं च गोयमा ! मम कम्बलकडसमाणो, अविय–चिरसंसिट्ठोऽसि मे गोयमा !, पण्णत्तीआलावगा भाणियव्वा, जाव अविसेसमणाणत्ता अंते भविस्सामो, ताहे सामी गोयमनिस्साए दुमपत्तयं पण्णवेइ । देवो वेसमणसामाणिओ ततो चइऊण अवंतीजणवए तुंबवणसन्निवेसे धणगिरी नाम इब्भपुत्तो, सो य सड्ढो पव्वइउकामो, तस्स मातापितरो वारेंति, पच्छा सो जत्थ जत्थ वरिज्जइ ताणि २ विपरिणामेइ, जहाऽहं पव्वइउकामो । इतो य धणपालस्स इब्भस्स दुहिया सुनंदानाम, सा भणइ–ममं देह, ताहे सा तस्स दिण्णा । तीसे य भाया अज्जसमिओ नाम पुव्वं पव्वइतओ सीहगिरिसगासे । सुनंदाए सो देवो कुच्छिंसि गब्भत्ताए उववण्णो, ताहे धणगिरी भणइ–एस ते गब्भो बिइज्जओ होहित्ति सीहगिरिसगासे पव्वइओ, इमोऽवि नवण्हं मासाणं दारगो

१ भणति–किं देवानां वचनं ग्राह्यमातो जिनवराणाम् ?, गौतमो भणति–जिनवराणां, ततः किमधृतिं करोषि ?, तदा स्वामी चतुरः कटान् प्रज्ञापयति तद्यथा–शुम्बकटो विदलकटश्चर्मकटः कम्बलकटः, एवं शिष्या अपि शुम्बकटसमानाः ४, त्वं च गौतम ! मम कम्बलकटसमानः, अपिच–चिरसंसृष्टोऽसि मया गौतम !, प्रज्ञप्त्यालापका भणितव्याः, यावत् अविशेषनानात्वौ अन्ते भविष्यावः, तदा स्वामी गौतमनिश्रया द्रुमपत्रकं प्रज्ञापयति । देवो वैश्रमणसामानिकस्ततश्च्युत्वाऽवन्तीजनपदे तुम्बवनसन्निवेशे धनगिरिर्नामेभ्यपुत्रः, स च श्राद्धः प्रव्रजितुकामः, तस्य मातापितरौ वारयतः, पश्चात्स यत्र यत्र म्रियते तान् तान् विपरिणमयति यथाऽहं प्रव्रजितुकामः । इतश्च धनपालस्येभ्यस्य दुहिता सुनन्दा नाम, सा भणति–मां दत्त, तदा सा तस्मै दत्ता । तस्याश्च भ्राताऽऽर्यसमितो नाम पूर्वं प्रव्रजितः सिंहगिरिसकाशे । सुनन्दायाः स देवः कुक्षौ गर्भतयोत्पन्नः, तदा धनगिरिर्भणति–एष तव गर्भो द्वितीयको भविष्यतीति सिंहगिरिसकाशे प्रव्रजितः, अयमपि नवसु मासेषु दारको * उयाहो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

जाओ, तत्थ य महिलाहिं आगताहिं भण्णइ–जइ से पिया ण पव्वइओ होंतो तो लट्ठं होंतं, सो सण्णी जाणति–जहा मम पिया पव्वइओ, तस्सेवमणुचिंतेमाणस्स जाईसरणं समुप्पन्नं, ताहे रत्तिं दिवा य रोवइ, वरं निविज्जंती, तो सुहं पव्वइस्संति, एवं छम्मासा वच्चंति। अण्णया आयरिया समोसढा, ताहे अज्जसमिओ धणगिरी य आयरियं आपुच्छंति–जहा सण्णातगाणि पेच्छामोत्ति, संदिसाविंति, सउणेण य वाहितं, आयरिएहिं भणियं–महति लाहो, जं अज्ज सच्चित्तं अचित्तं वा लहह तं सव्वं लएह, ते गया, उवसग्गिज्जिउमारद्धा, अण्णाहिं महिलाहिं भण्णइ–एयं दारगं उवट्ठेहिं, तो कहिं णेहिंति, पच्छा ताए भणियं–मए एवइयं कालं संगोविओ, एत्ताहे तुमं संगोवाहि, पच्छा तेण भणियं–मा ते पच्छायावो भविस्सइ, ताहे सक्खिं काऊण गहितो छम्मासिओ ताहे चोलपट्टएण पत्ताबंधिओ, न रोवइ, जाणइ सण्णी, ताहे तेहिं आयरिएहिं भाणं भरियंति हत्थो पसारिओ, दिण्णो, हत्थो भूमिं पत्तो, भणइ–अज्जो! नज्जइ वइरंति, जाव पेच्छंति देवकुमारोवमं दारगंति,

---

१ जातः, तत्र च महिलाभिरागताभिर्भण्यते–यद्येतस्य पिता न प्रव्रजितोऽभविष्यत्तदा लष्टमभविष्यत्, स संज्ञी जानाति–यथा मम पिता प्रव्रजितः, तस्यैवमनुचिन्तयतो जातिस्मरणं समुत्पन्नं, तदा रात्रौदिवा च रोदिति, वरं निर्विद्यते इति, ततः सुखं प्रव्रजिष्यामीति, एवं षण्मासा व्रजन्ति। अन्यदाऽऽचार्याः समवसृताः, तदाऽऽर्यसमितो धनगिरिश्चाचार्यमापृच्छतो–यथा सज्ञातीयान् पश्याव इति, संदिशतः, शकुनेन च व्याहृतम्, आचार्यैर्भणितम्–महांल्लाभो, यदद्य सचित्तमचित्तं वा लभेयाथां तत्सर्वं ग्राह्यं, तौ गतौ, उपसर्गयितुमारब्धा, अन्याभिर्महिलाभिर्भण्यते–एनं दारकमुपस्थापय, ततः क्व नेष्यतः, पश्चात्तया भणितं–मयैतावन्तं कालं संगोपितोऽधुना त्वं संगोपय, पश्चात्तेन भणितं–मा तव पश्चात्तापो भूत्, तदा साक्षिणः कृत्वा गृहीतः षाण्मासिकस्तदा चोलपट्टकेन पात्रबन्धयित्वा (झोलिकां कृत्वा), न रोदिति, जानाति संज्ञी, तदा तैराचार्यैर्भाजनं भारितमिति हस्तः प्रसारितः, दत्तो, हस्तो भूमिं प्राप्तः, भणति–आर्य! ज्ञायते वज्रमिति' यावत् प्रेक्षन्ते देवकुमारोपमं दारकमिति,

॥२८९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

भणइ य–सारक्खह एयं, पवयणस्स आहारो भविस्सइ एस, तत्थ से वइरो चेव नामं कयं, ताहे संजईण दिण्णो, ताहिं सेज्जातरकुले, सेज्जातरगाणि जाहे अप्पणगाणि चेडरूवाणि ण्हाणेंति मंडेंति वा पीहगं वा देंति ताहे तस्स पुव्विं, जाहे उच्चारादी आयरति ताहे आगारं दंसेइ कूवइ वा, एवं संवड्ढइ, फासुयपडोयारो तेसिमिट्ठो, साहूवि ताहिं विहरंति, ताहे सुनंदा पमग्गिया, ताओ निक्कूखेवगोत्ति न देंति, सा आगंतूण थणं देइ, एवं सो जाव तिवरिसो जातो। अन्नता साहू विहरंता आगता, तत्थ राउले ववहारो जाओ, सो भणइ–मम एयाए दिण्णओ, नगरं सुनंदाए पक्खियं, ताए बहूणि खेलणगाणि गहियाणि, रण्णो पासे ववहारच्छेदो, तत्थ पुवहोत्तो राया दाहिणतो संघो सुनंदा ससयणपरियणा वामपासे णरवइस्स, तत्थ राया भणइ–ममकएण तुब्भे जतो चेडो जाति तस्स भवतु, पडिस्सुतं, को पढमं वाहरतु ?, पुरिसा–तीओ धम्मुत्ति पुरिसो वाहरतु, ततो नगरजणो आह–एएसिं संवसितो, माता सद्दावेउ, अवियमाता दुक्करकारिया

१ भणति च–संरक्षतैनं, प्रवचनस्याधारो भविष्यत्येषः, तत्र तस्य वज्र एव नाम कृतं, तदा संयतीभ्यो दत्तः, ताभिः शय्यातरकुले, शय्यातरा यदाऽऽत्मनश्चेटरूपाणि स्नपयन्ति मण्डयन्ति वा स्तन्यं वा ददति तदा तस्मै पूर्वं, यदोच्चारादि आचरति तदाऽऽकारं दर्शयति कूजति वा, एवं संवर्धते, प्रासुकप्रतिकारस्तेषामिष्टः, साधवोऽपि बहिर्विहरन्ति, तदा सुनन्दा मार्गयितुमारब्धा, ता निक्षेपक इति न ददति, साऽऽगत्य स्तन्यं ददाति, एवं स यावत्त्रिवार्षिको जातः। अन्यदा साधवो विहरन्त आगताः, तत्र राजकुले व्यवहारो जातः, स भणति–ममैतया दत्तः, नगरं सुनन्दायाः पाक्षिकं, तया बहूनि क्रीडनकानि गृहीतानि राज्ञः पार्श्वे व्यवहारच्छेदः, तत्र पूर्वाभिमुखो राजा दक्षिणस्यां सङ्घः सुनन्दा सस्वजनपरिजनाः वामपार्श्वे नरपतेः, तत्र राजा भणति–ममीकृतेन युष्माकं यतो दारको याति तस्य भवतु, प्रतिश्रुतं, कः प्रथमं व्याहरतु ?, पुरुषादिको धर्म इति पुरुषो व्याहरतु, ततो नगरजन आह–एतेषां परिचितः, माता शब्दयतु, अपिच—माता दुष्करकारिका

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पुणो य पेलवसत्ता, तम्हा एसा चेव वाहरउ, ताहे सा आसाहत्थीरहवसहगेहि य मणिकणगरयणचित्तेहिं बालभावलोभावाएहिं भणइ–एहि वइरसामी !, ताहे पलोइंतो अच्छइ, जाणइ–जइ संघं अवमन्नामि तो दीहसंसारिओ भविस्सामि, अविय–एसावि पव्वइस्सइ, एवं तिन्नि वारा सद्दाविओ न एइ, ताहे से पिया भणइ–जइऽसिं कयववसाओ धम्मज्झयमूसियं इमं वइर !। गेण्ह लहुं रयहरणं कम्मरयपमज्जणं धीर !॥ १॥ ताहेऽणेण तुरितं गंतूण गहियं, लोगेण य जयइ धम्मोत्ति उक्कट्ठिसीहनाओ कतो, ताहे से माया चिंतेइ–मम भाया भत्ता पुत्तो य पव्वइओ, अहं किं अच्छामि?, एवं सावि पव्वाइया

जो गुज्झएहिं बालो णिमंतिओ भोयणेण वासंते। णेच्छइ विणीयविणओ तं वइररिसिं णमंसामि ॥७६५॥

व्याख्या—यः गुह्यकैर्देवैः बालरूपेण 'निमंतिउ' त्ति आमन्त्रितः भोजनेन वर्षति सति, पर्जन्य इति गम्यते, नेच्छति विनीतविनय इति, वर्त्तमाननिर्देशस्त्रिकालगोचरसूत्रप्रदर्शनार्थः, पाठान्तरं वा 'नेच्छिंसु विणयजुत्तो तं वइररिसिं नमंसामि' त्ति, अयं गाथासमुदायार्थः। अवयवार्थः कथानकादवसेयः, तच्चेदम्—

---

१ पुनश्च कोमलसत्त्वा, तस्मादेषैव व्याहरतु, तदा सा अश्वहस्तिरथवृषभैश्च मणिकनकरत्नचित्रैर्बालभावलोभावहैर्भणति–एहि वज्रस्वामिन् !, तदा प्रलोकयन् तिष्ठति, जानाति–यदि सङ्घमवमन्ये तदा दीर्घसंसारो भविष्यामि, अपिच–एषाऽपि प्रव्रजिष्यति, एवं त्रीन् वारान् शब्दितो नैति, तदा तस्य पिता भणति–यद्यसि कृतव्यवसायो धर्मध्वजमुच्छ्रितमिमं वज्र !। गृहाण लघु रजोहरणं कर्मरजःप्रमार्जनं धीर !॥ १॥ तदाऽनेन त्वरितं गत्वा गृहीतं, लोकेन च जयति जिनधर्म इत्युत्कृष्टसिंहनादः कृतः, तदा तस्य माता चिन्तयति–मम भ्राता भर्त्ता पुत्रश्च प्रव्रजितः, अहं किं तिष्ठामि ?, एवं साऽपि प्रव्रजिता, *सुकयज्झवसाओ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

सोऽवि जाहे थणं न पियइत्ति पव्वाविओ, पव्वइयाण चेव पासे अच्छइ, तेण तासिं पासे इक्कारस अंगाणि सुयाणि पढं तीण, ताणि से उवगयाणि, पदाणुसारी सो भगवं, ताहे अट्ठवरिसिओ संजइपडिस्सयाओ निक्कालिओ, आयरियसगासे अच्छइ, आयरिया य उज्जेणीं गता, तत्थ वासं पडति अहोधारं, ते य से पुव्वसंगइया जंभगा तेणंतेण वोलेंता तं पेच्छंति, ताहे ते परिक्खानिमित्तं उत्तिण्णा वाणिययरूवेणं, तत्थ वइल्ले उल्लदेत्ता उवक्खडेंति, सिद्धे निमंतिंति, ताहे पट्ठितो, जाव फुसियमत्थि, ताहे पडिनियत्तो, ताहे तंपि ठितं, पुणो सद्दावेंति, ताहे वइरो गंतूण उवउत्तो दव्वतो ४, दव्वओ पुप्फफलादि खेत्तओ उज्जेणी कालओ पढमपाउसो भावतो धरणिछिवणणयणनिमेसादिरहिता पहट्ठतुट्ठा य, ताहे देवत्तिकाऊण नेच्छति, देवा तुट्ठा भणंति–तुमं दट्ठुमागता, पच्छा वेउव्वियं विज्जं देंति,

उज्जेणीए जो जंभगेहि आणक्खिऊण थुयमहिओ । अक्खीणमहाणसियं सीहगिरिपसंसियं वंदे ॥ ७६६ ॥

---

१ सोऽपि यदा स्तन्यं न पिबतीति (तदा) प्रव्राजितः, प्रव्रजितानां चैव पार्श्वे तिष्ठति, तेन तासां पार्श्वे एकादशाङ्गानि श्रुतानि पठन्तीनां, तानि तस्योपगतानि, पदानुसारी स भगवान्, तदाऽष्टवार्षिकः संयतीप्रतिश्रयात् निष्काशितः, आचार्यसकाशे तिष्ठति, आचार्याश्चोज्जयिनीं गताः, तत्र वर्षा पतती अहतधारं, ते च तस्य पूर्वसंगतिका जृम्भकाः तेन मार्गेण व्यतिक्राम्यन्तस्तं परीक्षन्ते, तदा ते परीक्षानिमित्तमवतीर्णाः वणिग्रूपेण, तत्र बलीवर्दान् अवलाद्य (उत्तार्य) उपस्कुर्वन्ति, सिद्धे निमन्त्रयन्ति, तदा प्रस्थितः, यावत् बिन्दुपातः (फुसारिका) अस्ति, तदा प्रतिनिवृत्तः, तदा सोऽपि स्थितः, पुनः शब्दयन्ति, तदा वज्रो गत्वोपयुक्तो द्रव्यतः ४ द्रव्यतः पुष्पफलादि क्षेत्रत उज्जयिनी कालतः प्रथमप्रावृट् भावतो धरणिस्पर्शनयननिमेषादिरहिताः प्रहृष्टतुष्टाश्च, तदा देव इति कृत्वा नेच्छति, देवास्तुष्टा भणन्ति-त्वां द्रष्टुमागताः, पश्चाद्वैक्रियविद्यां ददति.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

व्याख्या—उज्जयिन्यां यो 'जृम्भकैः' देवविशेषैः 'आणक्खिऊणं' ति परीक्ष्य 'स्तुतमहितः' स्तुतो वाक्स्तवेन महितो विद्यादानेन अक्षीणमहानसिकं सिंहगिरिप्रशंसितं वन्द इति गाथाक्षरार्थः । अवयवार्थः कथानकादवसेयः, तच्चेदं—

पुणरवि अन्नया जेट्ठमासे सन्नाभूमिं गयं घयपुन्नेहिं निमंतेन्ति, तत्थवि दव्वादिओ उवओगो, नेच्छति, तत्थ से णहगामिणी विज्जा दिण्णा, एवं सो विहरइ । जाणि य ताणि पयाणुसारिलद्धीए गहियाणि एक्कारस अंगाणि ताणि से संजयमज्झे थिरयराणि जायाणि, तत्थ जो अज्झाति पुव्वगयं तंपि णेण सव्वं गहियं, एवं तेण बहु गहियं, ताहे वुच्चति पढाहि, ततो सो एयंतगंपि कुट्टेंतो अच्छइ, अन्नं सुणेंतो । अण्णया आयरिया मज्झण्हे साहूसु भिक्खं निग्गएसु सन्नाभूमिं निग्गया, वइरसामीवि पडिस्सयवालो, सो तेसिं साहूणं वेंटियाओ मंडलिए रएत्ता मज्झे अप्पणा ठाउं वायणं देति, ताहे परिवाडीए एक्कारसवि अंगाइं वाएइ, पुव्वगयं च, जाव आयरिया आगया चिंतेंति—लहुं साहू आगया, सुणंति सद्दं

---

१ पुनरपि अन्यदा ज्येष्ठमासे संज्ञाभूमिं गतं घृतपूर्णैर्निमन्त्रयन्ति, तत्रापि द्रव्यादिक उपयोगः, नेच्छति, तत्र तस्मै नभोगामिनी विद्या दत्ता, एवं स विहरति । यानि च तानि पदानुसारिलब्ध्या गृहीतान्येकादशाङ्गानि, तानि तस्य संयतमध्ये स्थिरतराणि जातानि, तत्र थोऽध्येति पूर्वगतं तदप्यनेन सर्वं गृहीतम्, एवं तेन बहु गृहीतं, तदोच्यते पठ, ततः स आगच्छदपि (अधीतमपि) कुट्टयन् तिष्ठति, अन्यत् शृण्वन् । अन्यदा आचार्या मध्याह्ने साधुषु भिक्षायै निर्गतेषु संज्ञाभूमिं निर्गताः, वज्रस्वाम्यपि प्रतिश्रयपालः, स तेषां साधूनां विष्टिका मण्डल्या रचयित्वा मध्ये आत्मना स्थित्वा वाचनां ददाति, तदा परिपाट्या एकादशाप्यङ्गानि वाचयति, पूर्वगतं च, यावदाचार्या आगतास्तिन्तयन्ति-लघु साधव आगताः, शृण्वन्ति शब्दं

॥२९१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

मघोघरसियं, बहिया सुणेंता अच्छंति, नायं जहा वइरोत्ति, पच्छा ओसरिऊण सद्दपडियं निसीहियं करेइ, मा से संका भविस्सइ, ताहे तेण तुरियं विंटियाओ सट्ठाणे ठवियाओ, निग्गंतूण य दंडयं गेण्हइ, पाए य पमज्जेइ, ताहे आयरिया चिंतेन्ति–मा णं साहू परिहविस्संति ता जाणावेमि, ताहे रत्तिं आपुच्छइ–अमुगं गामं वच्चामि? तत्थ दो वा तिन्नि वा दिवसे अच्छिस्सामि, तत्थ जोगपडिवण्णगा भणंति–अम्हं को वायणायरिओ?, आयरिया भणंति–वइरोत्ति, विणीया तहत्ति पडिसुतं, आयरिया चेव जाणंति, ते गया, साहूवि पए वसहिं पडिलेहित्ता वसहिकालणिवेयणादि वइरस्स करेंति, निसिज्जा य से रइया, सो तत्थ निविट्ठो, तेऽवि जहा आयरियस्स तहा विणयं पउंजंति, ताहे सो तेसिं करकरसद्देण सव्वेसिं अणुपरिवाडीए आलावए देइ, जेऽवि मंदमेहावी तेवि सिग्घं पट्ठवेउमारद्धा, ततो ते विम्हिया, जोऽवि एइ आलावगो पुव्वपढिओ तंपि विण्णासणत्थं पुच्छंति, सोऽवि सव्वं आइक्खइ, ताहे ते तुट्ठा भणंति–जइ आयरिया कइवयाणि दियहाणि अच्छेज्जा ततो

---

१ मेघौघरसितं, बहिः शृण्वन्तस्तिष्ठन्ति, ज्ञातं यथा वज्र इति, पश्चादपसृत्य शब्दपतितं नैषेधिकीं करोति, मा तस्य शङ्का भूत्, तदा तेन विण्टिकास्वरितं स्वस्थाने स्थापिताः, निर्गत्य च दण्डकं गृह्णाति, पादौ च प्रमार्जयति, तदाऽऽचार्याश्चिन्तयन्ति–मैनं साधवः परिभूवन् तत् ज्ञापयामि, तदा रात्रावापृच्छति–अमुकं ग्रामं व्रजामि?, तत्र द्वौ वा त्रीन् वा दिवसान् स्थास्यामि, तत्र योगप्रतिपन्ना भणन्ति–अस्माकं को वाचनाचार्यः?, आचार्या भणन्ति–वज्र इति, विनीता (इति) तथेति प्रतिश्रुतम्, आचार्या एव जानन्ति, ते गताः, साधवोऽपि प्रभाते वसतिं प्रतिलेख्य वसतिकालनिवेदनादि वज्राय कुर्वन्ति, निषिद्या च तस्मै रचिता, स तत्र निविष्टः, तेऽपि यथा आचार्यस्य तथा विनयं प्रयुञ्जन्ति, तदा स तेभ्यः व्यक्तव्यक्तशब्देन सर्वेभ्योऽनुपरिपाट्या आलापकान् ददाति, येऽपि मन्दमेधसस्तेऽपि शीघ्रं प्रस्थापयितुमारब्धाः, ततस्ते विस्मिताः, योऽप्येति आलापकः पूर्वपठितस्तमपि विन्यासनार्थं पृच्छन्ति, सोऽपि सर्वमाख्याति, तदा ते तुष्टा भणन्ति–यद्याचार्याः कतिपयान् दिवसान् तिष्ठेयुस्ततः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

एसं सुयक्खंधो लहुं समप्पेज्जा, जं आयरियसगासे चिरेण परिवाडीए गिण्हंति तं इमो एक्काए पोरसीए सारेइ, एवं सो तेसिं बहुमओ जाओ, आयरियाऽवि जाणाविओत्तिकाऊण आगया, अवसेसं च वरं अज्झाविज्जउत्ति, पुच्छंति य –सरिओ सज्झाओ?, ते भणंति–सरिओ, एसच्चेव अम्ह वायणायरिओ भवउ, आयरिया भणंति–होहिइ, मा तुब्भे एतं परिभविस्सह अतो जाणावणाणिमित्तं अहं गओ, ण उण एस कप्पो, जओ एतेण सुयं कन्नाहेडएण गहियं, अओ एयस्स उस्सारकप्पो करेयव्वो, सो सिग्घमोस्सारेइ, बितियपोरुसीए अत्थं कहेइ, तदुभयकप्पजोगोत्तिकाऊण, जे य अत्था आयरियस्सवि संकिता तेऽवि तेण उग्घाडिया, जावइयं दिट्ठिवायं जाणंति तत्तिओ गहिओ, ते विहरंता दसपुरं गया, उज्जेणीए भद्दगुत्ता नामायरिया, थेरकप्पट्ठिता, तेसिं दिट्ठिवाओ अत्थि, संघाडओ से दिन्नो, गओ तस्स सगासं, भद्दगुत्ता य थेरा सुविणगं पासंति–जहा किर मम पडिग्गहो खीरभरिओ आगंतुएण पीऊ *समासासिओ य, पभाए साहूणं

---

१ एष श्रुतस्कन्धो लघु समाप्नुयात्, यदाचार्यसकाशे चिरेण परिपाट्या गृह्यते तदयमेकया पौरुष्या सारयति, एवं स तेषां बहुमतो जातः, आचार्या अपि ज्ञापित इतिकृत्वा आगताः, अवशेषं च वरमध्याप्यतामिति, पृच्छन्ति च–सूतः स्वाध्यायः?, ते भणन्ति–सूतः, एष एवास्माकं वाचनाचार्यो भवतु, आचार्या भणन्ति–भविष्यति, मा यूयमेनं परिभूत अतो ज्ञापनानिमित्तमहं गतः, न पुनरेष कल्पः, यत एतेन श्रुतं कर्णाहेटकेन गृहीतम्, अत एतत्स्योत्सारकल्पः कर्त्तव्यः, स शीघ्रमुत्सारयति, द्वितीयपौरुष्यामर्थं कथयति, तदुभयकल्पयोग्य इतिकृत्वा, ये चार्था आचार्यस्यापि शङ्कितास्तेऽपि तेनोद्घाटिताः, यावन्तं दृष्टिवादं जानन्ति तावान् गृहीतः, ते विहरन्तो दशपुरं गताः, उज्जयिन्यां भद्रगुप्तनामान आचार्याः स्थविरकल्पस्थिताः, तेषां दृष्टिवादोऽस्ति, संघाटकोऽस्मै दत्तः, गतस्तस्य सकाशं, भद्रगुप्ताश्च स्थविराः स्वप्नं पश्यन्ति–यथा किल मम पतद्ग्रहः क्षीरभृत आगन्तुकेन पीतः समाश्वासितश्च, प्रभाते साधुभ्यः

* समासिओ अ प्र०

॥२९२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

साहेंति, ते अन्नमन्नाणि वागरेंति, गुरू भणंति–ण याणह तुब्भे, अज्ज मम पाडिच्छओ एहिति, सो सवं सुत्तत्थं घेत्थिहित्ति, भगवंपि बाहिरियाए वुच्छो, ताहे अइगओ दिट्ठो, सुयपुवो एस सो वइरो, तुट्ठेहिं उवगूहिओ, ताहे तस्स सगासे दस पुवाणि पढिताणि, तो अणुण्णानिमित्तं जहिं उद्दिट्ठो तहिं चेव अणुजाणियव्वोत्ति दसपुरमागया । तत्थ अणुण्णा आरद्धा ताव नवरि तेहिं जंभगेहिं अणुण्णा उवट्ठविया, दिवाणि पुप्फाणि चुण्णाणि य से उवणीयाणित्ति ॥ अमुमेवार्थं चेतस्यारोप्याह ग्रन्थकृत्—

जस्स अणुन्नाए वायगत्तणे दसपुरंमि नयरंमि । देवेहि कया महिमा पयाणुसारिं नमंसामि ॥ ७६७ ॥

व्याख्या—यस्यानुज्ञाते 'वाचकत्वे' आचार्यत्वे दसपुरे नगरे 'देवैः' जृम्भकैः कृता महिमा, सम्पादिता पूजेति भावना, तं पदानुसारिणं नमस्य इति गाथार्थः ॥ ४४ ॥

अण्णया य सीहगिरि वइरस्स गणं दाऊण भत्तं पच्चक्खाइऊणं देवलोगं गओ । वइरसामीऽवि पंचहिं अणगारसएहिं संपरिवुडो विहरइ, जत्थ जत्थ वच्चइ तत्थ तत्थ ओरालवण्णकित्तिसद्दा परिब्भमंति, अहो भगवंति, एवं भगवं

---

१ कथयन्ति, ते अन्यदन्यत् व्याकुर्वन्ति, गुरवो भणन्ति–न जानीथ यूयम्, अद्य मम प्रतीच्छक एष्यति, स सर्वं सूत्रार्थं ग्रहीष्यतीति, भगवानपि बाहिरिकायामुषितः, तदा आगतो दृष्टः, श्रुतपूर्व एष स वज्रः, तुष्टैरुपगूहितः, तदा तस्य सकाशे दश पूर्वाणि पठितानि, ततोऽनुज्ञानिमित्तं यत्रोद्दिष्टस्तत्रैवानुज्ञालब्ध इति दशपुरमागताः तत्राऽनुज्ञाऽऽरब्धा तावन्नवरं तैर्जृम्भकैरनुज्ञा उपस्थापिता, दिव्यानि पुष्पाणि चूर्णानि चास्मै उपनीतानीति । २ अन्यदा च सिंहगिरिर्वज्रस्वामिनं गणं दत्त्वा भक्तं प्रत्याख्याय देवलोकं गतः । वज्रस्वाम्यपि पञ्चभिरनगारशतैः संपरिवृतो विहरति, यत्र यत्र व्रजति तत्र तत्र उदारवर्णकीर्तिशब्दाः परिभ्राम्यन्ति, अहो भगवानिति, एवं भगवान्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

भविजणविबोहणं करेंतो विहरइ । इओ य पाडलिपुत्ते नयरे धणो सेट्ठी, तस्स धूया अइव रूववती, तस्स य जाणसालाए साहूणीओ ठियाओ, ताओ पुण वइरस्स गुणसंथवं करेंति, सभावेण य लोगो कामियकामियओ, सिट्ठिधूया चिंतेइ— जइ मम सो पति होज्ज तोऽहं भोगे भुंजिस्सं, इयरहा अलं भोगेहिं, वरगा एंति, सा पडिसेहावेइ, ताहे साहेति पवइयाओ सो ण परिणेइ, सा भणइ–जइ न परिणेइ अहंपि पवज्जं गिण्हिस्सं, भगवंपि विहरंतो पाडलिपुत्तमागओ, तत्थ से राया सपरियणो अम्मोगइयाए निग्गओ, ते पवइगा फड्डुगफड्डुगेहिं एंति, तत्थ बहवो उरालसरीरा, राया पुच्छइ–इमो भगवं वइरसामी ?, ते भणंति–न हवइ, इमो तस्स सीसो, जाव अपच्छिमं विंदं, तत्थ पविरलसाहुसहितो दिट्ठो, राइणा वंदिओ, ताहे उज्जाणे ठिओ, धम्मोऽणेण कहिओ, खीरासवलद्धी भगवं, राया हयहियओ कओ, अंतेउरे साहइ, ताओ भणंति–अम्हेऽवि वच्चामो, सव्वं अंतेउरं निग्गयं, सा य सेट्ठिधूया लोगस्स पासे सुणेत्ता किह पेच्छिज्जामित्ति चिंतेंती

१ भव्यजनविबोधनं कुर्वन् विहरति । इतश्च पाटलीपुत्रे नगरे धनः श्रेष्ठी, तस्य दुहिता अतीव रूपवती, तस्य च यानशालायां साध्व्यः स्थिताः, ताः पुनर्वज्रस्य गुणसंस्तवं कुर्वन्ति, स्वभावेनैव लोकः कामितकामुकः, श्रेष्ठिदुहिता चिन्तयति-यदि मम स पतिर्भवेत् तदाऽहं भोगान् भोक्ष्ये, इतरथाऽलं भोगैः, वरा आयान्ति, सा प्रतिषेधयति, तदा साधयन्ति प्रव्रजितकाः–स न परिणेष्यति, सा भणति–यदि न परिणेष्यति अहमपि प्रव्रज्यां ग्रहीष्यामि, भगवानपि विहरन् पाटलीपुत्रमागतः, तत्र तस्य (स) राजा सपरिजनः अहंपूर्विकया निर्गतः, ते प्रव्रजितकाः स्पर्धकेस्पर्धकैरायान्ति, तत्र बहव उदारशरीराः, राजा पृच्छति–अयं भगवान् वज्रस्वामी ?, ते भणन्ति–न भवति, अयं तस्य शिष्यः, यावदपश्चिमं वृन्दं, तत्र प्रविरलसाधुसहितो दृष्टः, राज्ञा वन्दितः, तदोद्याने स्थितो, धर्मोऽनेन कथितः, क्षीराश्रवलब्धिको भगवान्, राजा हृतहृदयः कृतः, अन्तःपुराय कथयति, ता भणन्ति–वयमपि व्रजामः, सर्वमन्तःपुरं निर्गतं, सा च श्रेष्ठिदुहिता लोकस्य पार्श्वे श्रुत्वा कथं प्रेक्षयिष्य इति चिन्तयन्ती

॥२९३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

अच्छति, बितियदिवसे पिया विन्नविओ–तस्स देहि, अण्णहा अप्पाणं विवाएमि, ताहे सव्वालंकारभूसियसरीरा कया, अणेगाहिं धणकोडिहिं सहिया णीणिया, धम्मो कहिओ, भगवं च खीरासवलद्धीओ, लोओ भणति–अहो सुस्सरो भगवं सव्वगुणसंपन्नो, णवरि रूवविहूणो, जइ रूवं होंतं सव्वगुणसंपया होंता, भगवं तेसिं मणोगयं नाउं तत्थ सयसहस्सपत्तपउमं विउव्वति, तस्स उवरि निविट्ठो, रूवं विउव्वति अतीव सोमं, जारिसं परं देवाणं, लोगो आउट्टो भणति–एयं एयस्स साहाविगं रूवं, मा पत्थणिज्जो होहामित्ति विरूवेण अच्छइ सातिसउत्ति, रायाऽवि भणति–अहो भगवओ एयमवि अत्थि, ताहे अणगारगुणे वण्णेइ–पभू य असंखेज्जे दीवसमुद्दे विउव्वित्ता आइन्नविइन्नए करेत्तएत्ति, ताहे तेण रूवेण धम्मं कहेति, ताहे सेट्ठिणा निमंतिओ भगवं विसए निंदति, जइ ममं इच्छइ तो पव्वयउ, ताहे पव्वतिया ॥ अमुमेवार्थं हृदि व्यवस्थाप्याह—

जो कन्नाइ धणेण य निमंतिओ जुव्वणंमि गिहवइणा । नयरंमि कुसुमनामे तं वइररिसिं नमंसामि ॥ ७६८ ॥

---

१ तिष्ठति, द्वितीयदिवसे पिता विज्ञप्तः–तस्मै देहि, अन्यथा आत्मानं व्यापादयामि, तदा सर्वालङ्कारभूषितशरीरा कृता, अनेकाभिर्धनकोटिभिः सहिता नीता, धर्मः कथितः, भगवांश्च क्षीराश्रवलब्धिकः, लोको भणति–अहो सुस्वरो भगवान् सर्वगुणसंपन्नः, नवरं रूपविहीनः, यदि रूपमभविष्यत् सर्वगुणसंपद्-भविष्यत्, भगवान् तेषां मनोगतं ज्ञात्वा तत्र शतसहस्रपत्रपद्मं विकुर्वति, तस्योपरि निविष्टः, रूपं विकुर्वति अतीव सौम्यं, यादृशं परं देवानां, लोक आवृत्तो भणति–एतदेतस्य स्वाभाविकं रूपं, मा प्रार्थनीयो भूदमिति विरूपस्तिष्ठति सातिशय इति, राजाऽपि भणति–अहो भगवत एतदप्यस्ति, तदा अनगारगुणान् वर्णयति–प्रभुश्चासंख्येयान् द्वीपसमुद्रान् विकुर्व्य आकीर्णविप्रकीर्णान् कर्तुमिति, तदा तेन रूपेण धर्मं कथयति, तदा श्रेष्ठिना निमन्त्रितो, भगवान् विषयान् निन्दति, यदि मामिच्छति तदा प्रव्रजतु, तदा प्रव्रजिता ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

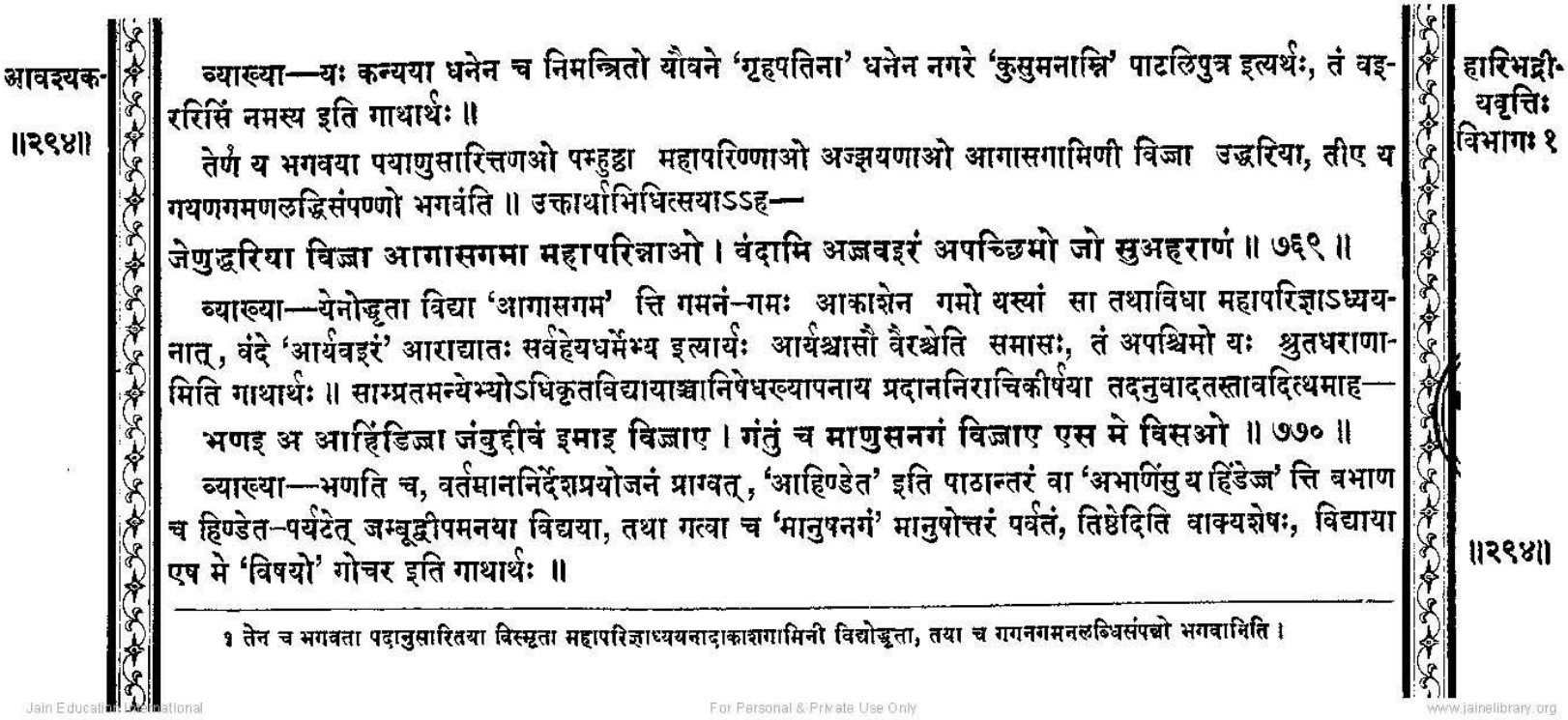

आवश्यक- ॥२९४॥

व्याख्या—यः कन्यया धनेन च निमन्त्रितो यौवने 'गृहपतिना' धनेन नगरे 'कुसुमनाम्नि' पाटलिपुत्र इत्यर्थः, तं वइ-ररिसिं नमस्य इति गाथार्थः ॥

तेणं य भगवया पयाणुसारित्तणओ पम्हुट्ठा महापरिण्णाओ अज्झयणाओ आगासगामिणी विज्जा उद्धरिया, तीए य गयणगमणलद्धिसंपण्णो भगवंति ॥ उक्तार्थाभिधित्सयाऽऽह—

जेणुद्धरिया विज्जा आगासगमा महापरिन्नाओ । वंदामि अज्जवइरं अपच्छिमो जो सुअहराणं ॥ ७६९ ॥

व्याख्या—येनोद्धृता विद्या 'आगासगम' त्ति गमनं–गमः आकाशेन गमो यस्यां सा तथाविधा महापरिज्ञाऽध्यय-नात्, वंदे 'आर्यवइरं' आराद्यातः सर्वहेयधर्मेभ्य इत्यार्यः आर्यश्चासौ वैरश्चेति समासः, तं अपश्चिमो यः श्रुतधराणा-मिति गाथार्थः ॥ साम्प्रतमन्येभ्योऽधिकृतविद्यायाश्चानिषेधख्यापनाय प्रदाननिराचिकीर्षया तदनुवादतस्तावदित्थमाह—

भणइ अ आहिंडिज्जा जंबुद्दीवं इमाइ विज्जाए । गंतुं च माणुसनगं विज्जाए एस मे विसओ ॥ ७७० ॥

व्याख्या—भणति च, वर्तमाननिर्देशप्रयोजनं प्राग्वत्, 'आहिण्डेत' इति पाठान्तरं वा 'अभाणिंसु य हिंडेज्ज' त्ति बभाण च हिण्डेत–पर्यटेत् जम्बूद्वीपमनया विद्यया, तथा गत्वा च 'मानुषनगं' मानुषोत्तरं पर्वतं, तिष्ठेदिति वाक्यशेषः, विद्याया एष मे 'विषयो' गोचर इति गाथार्थः ॥

१ तेन च भगवता पदानुसारितया विस्मृता महापरिज्ञाध्ययनादाकाशगामिनी विद्योद्धृता, तया च गगनगमनलब्धिसंपन्नो भगवानिति ।

हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः १

॥२९४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

भणइ अ धारेअव्वा न हु दायव्वा इमा मए विज्जा। अप्पिड्ढिया उ मणुआ होहिंति अओ परं अन्ने॥ ७७१॥

व्याख्या—'भणति च' इत्यस्य पूर्ववद्व्याख्या, 'धारयितव्या' प्रवचनोपकाराय न पुनर्दातव्या इयं मया विद्या, हुशब्दः पुनःशब्दार्थः, किमिति ?–'अप्पिड्ढिया उ मणुया होहिंति अतो परं अण्णे' अल्पर्द्धय एव मनुष्या भविष्यन्ति अतः परमन्ये एष्या इति गाथार्थः॥ ४८॥ सो भगवं एवं गुणविज्जाजुत्तो विहरंतो पुव्वदेसाओ उत्तरावहं गओ, तत्थ दुब्भिक्खं जायं, पंथावि वोच्छिण्णा, ताहे संघो उवागओ नित्थारेहित्ति, ताहे पडविज्जाए संघो चडिओ,तत्थ य सेज्जायरो चारीए गओ एइ, ते य उप्पतिते पासइ,ताहे सो असियएण सिहं छिंदित्ता भणति–अहंपि भगवं! तुम्ह साहम्मिओ, ताहे सोऽवि लइओ इमं सुत्तं सरंतेण–'साहम्मियवच्छलंमि उज्जुया उज्जुया य सज्झाए। चरणकरणंमि य तहा, तित्थस्स पभावणाए य॥ १॥' ततो पच्छा उप्पइओ भगवं पत्तो पुरियं नयरिं, तत्थ सुभिक्खं, तत्थ य सावया बहुया, तत्थ राया तच्चण्णिओ सड्ढओ, तत्थ अम्हच्चयाणं सड्ढयाणं तच्चण्णिओवासगाण य विरुद्धेण मल्लारुहणाणि वट्टंति, सव्वत्थ ते उवासगा पराइज्जंति, ताहे तेहिं राया पुप्फाणि

१ स भगवान् एवं गुणविद्ययायुक्तो विहरन् पूर्वदेशात् उत्तरापथं गतः, तत्र दुर्भिक्षं जातं, पन्थानोऽपि व्युच्छिन्नाः, तदा सङ्घ उपागतः निस्तारयेति (निस्तारयिष्यतीति), तदा पटविद्यया (द्यायां) सङ्घश्चटितः, तत्र च शय्यातरश्चार्थे गत आयाति, तांश्चोत्पतितान् पश्यति, तदा स दात्रेण शिखां छित्त्वा भणति–अहमपि भगवन्! तव साधर्मिकः, तदा सोऽपि लगित इदं सूत्रं स्मरता–'साधर्मिकवात्सल्ये उद्युक्ता उद्युक्ताश्च स्वाध्याये। चरणकरणे च तथा तीर्थस्य प्रभावनायां च॥ १॥' ततः पश्चादुत्पतितो भगवान् प्राप्तः पुरिकां नगरीं, तत्र सुभिक्षं, तत्र च श्रावका बहवः, तत्र च राजा तच्चनिकः (बौद्धः) श्राद्धः, तत्रास्माकीनानां श्राद्धानां तच्चनिकोपासकानां च विरुद्धतया माल्यारोहणानि वर्त्तन्ते, सर्वत्र ते उपासकाः पराजीयन्ते, तदा तै राज्ञा पुष्पाणि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

वारावितओ पज्जोसवणाए, सड्ढा अइण्णा जाया नत्थि पुप्फाणित्ति, ताहे सबालवुड्ढा वइरसामिं उवट्ठिया, तुब्भे जाणह, जइ तुब्भेहिं नाहेहिं पवयणं ओहामिज्जइ, एवं भणितो बहुप्पयारं ताहे उप्पइऊण माहेसरिं गओ, तत्थ हुयासणं नाम वाणमंतरं, तत्थ कुंभो पुप्फाण उट्ठेइ, तत्थ भगवतो पितिमित्तो तडिओ, सो संभंतो भणइ–किमागमणप्पओयणं ?, ताहे भणति–पुप्फेहिं पओयणं, सो भणइ–अणुग्गहो, भगवया भणिओ–ताव तुब्भे गहेह जाव एमि, पच्छा चुल्लहिमवंते सिरिसगासं गओ, सिरीए य चेतियअच्चणियनिमित्तं पउमं छिन्नगं, ताहे वंदित्ता सिरीए निमंतिओ, तं गहाय एइ अग्गिघरं, तत्थऽणेणं विमाणं विउव्वियं, तत्थ कुंभं छोढुं पुप्फाणं ततो सो जंभगगणपरिवुडो दिव्वेणं गीयगंधव्वनिनाएणं आगासेणं आगओ, तस्स पउमस्स वेंटे वइरसामी ठिओ, ततो ते तच्चण्णिया भणंति–अम्ह एयं पाडिहेरं, अग्घं गहाय निग्गया, तं वोलेत्ता विहारं अरहंतघरं गया, तत्थ देवेहिं महिमा कया, तत्थ लोगस्स अतीव बहुमाणो जाओ, रायावि आउट्टो समणोवासओ जाओ ॥ उक्तमेवार्थं बुद्धबोधायाह—

१ निवारितानि पर्युषणायां, श्राद्धाः खिन्ना जाताः, न सन्ति पुष्पाणीति, तदा सबालवृद्धा वज्रस्वामिनमुपस्थिताः यूयं जानीथ यदि युष्मासु नाथेषु प्रवचनमवधाव्यते, एवं भणितो बहुप्रकारं तदोत्पत्य माहेश्वरीं गतः, तत्र हुताशनं नाम व्यन्तरायतनं, तत्र कुम्भः पुष्पाणामुत्तिष्ठते, तत्र भगवतः पितृमित्रमारामिकः, स संभ्रान्तो भणति–किमागमनप्रयोजनम् ?, तदा भणति–पुष्पैः प्रयोजनं, स भणति–अनुग्रहः, भगवता भणितः–तावद्यूयं गृह्णीत यावदायामि, पश्चात्क्षुल्लहिमवति श्रीसकाशं गतः, श्रिया च चैत्यार्चनिकानिमित्तं पद्मं छिन्नं, तदा वन्दित्वा श्रिया निमन्त्रितः, तद् गृहीत्वाऽऽयाति अग्निगृहं, तत्रानेन विमानं विकुर्वितं, तत्र कुम्भं निक्षिप्य पुष्पाणां ततः स जृम्भकगणपरिवृतो दिव्येन गीतगन्धर्वनिनादेनाकाशेनागतः, तस्य पद्मस्य वृन्ते वज्रस्वामी स्थितः, ततस्ते तच्चनिका भणन्ति– अस्माकमेतत् प्रातिहार्यम्, अर्घं गृहीत्वा निर्गताः, तं व्यतिक्रम्य विहारमर्हद्गृहं गताः, तत्र देवैर्महिमा कृतः, तत्र लोकस्यातीव बहुमानो जातः, राजाऽप्यावृत्तः श्रमणोपासको जातः।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

माहेसरीउ सेसा पुरिअं नीआ हुआसणगिहाओ। गयणयलमइवइत्ता वइरेण महाणुभागेण ॥ ७७२ ॥

व्याख्या—'माहेश्वर्याः' नगर्याः 'सेस'त्ति पुष्पसमुदायलक्षणा, सा पुरिकां नगरीं नीता 'हुताशनगृहात्' व्यन्तरदेवकुलसमन्वितोद्यानात्, कथम्?—गगनतलमतिव्यतीत्य—अतीवोल्लङ्घ्य, वइरेण महानुभागेन, भागः—अचिन्त्या शक्तिरिति गाथाक्षरार्थः ॥ एवं सो विरहंतो चेव सिरिमालं गओ। एवं जाव अपुहत्तमासी, एत्थ गाहा—

अपुहुत्ते अणुओगो चत्तारि दुवार भासई एगो। पुहताणुओगकरणे ते अत्थ तओ उ वुच्छिन्ना ॥ ७७३ ॥

व्याख्या—अपृथक्त्वे सति अनुयोगः चत्वारि द्वाराणि—चरणधर्मकालद्रव्याख्यानि भाषते एकः, वर्तमाननिर्देशफलं प्राग्वत्, पृथक्त्वानुयोगकरणे पुनस्तेऽर्थाः—चरणादयः तत एव—पृथक्त्वानुयोगकरणाद् व्यवच्छिन्ना इति गाथार्थः ॥ साम्प्रतं येन पृथक्त्वं कृतं तमभिधातुकाम आह—

देविंदवंदिएहि महाणुभागेहि रक्खिअज्जेहिं। जुगमासज्ज विभत्तो अणुओगो तो कओ चउहा ॥ ७७४ ॥

व्याख्या—देवेन्द्रवन्दितैर्महानुभागैः रक्षितार्यैर्दुर्बलिकापुष्पमित्रं प्राज्ञमप्यतिगुपिलत्वादनुयोगस्य विस्मृतसूत्रार्थमवलोक्य युगमासाद्य प्रवचनहिताय 'विभक्तः' पृथक् पृथगवस्थापितोऽनुयोगः, ततः कृतश्चतुर्द्धा—चरणकरणानुयोगादिरिति गाथार्थः ॥ साम्प्रतमार्यरक्षितस्वामिनः प्रसूतिं प्रतिपिपादयिषयाऽऽह—

माया य रुद्दसोमा पिआ य नामेण सोमदेवुत्ति। भाया य फग्गुरक्खिअ तोसलिपुत्ता य आयरिया ॥७७५॥
निज्जवण भद्दगुत्ते वीसुं पढणं च तस्स पुव्वगयं। पव्वाविओ अ भाया रक्खिअखमणेहिं जणओ अ ॥ ७७६ ॥

१ एवं स विहरन्नेव श्रीमालं गतः, एवं यावदपृथक्त्वमासीत्, अत्र गाथा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

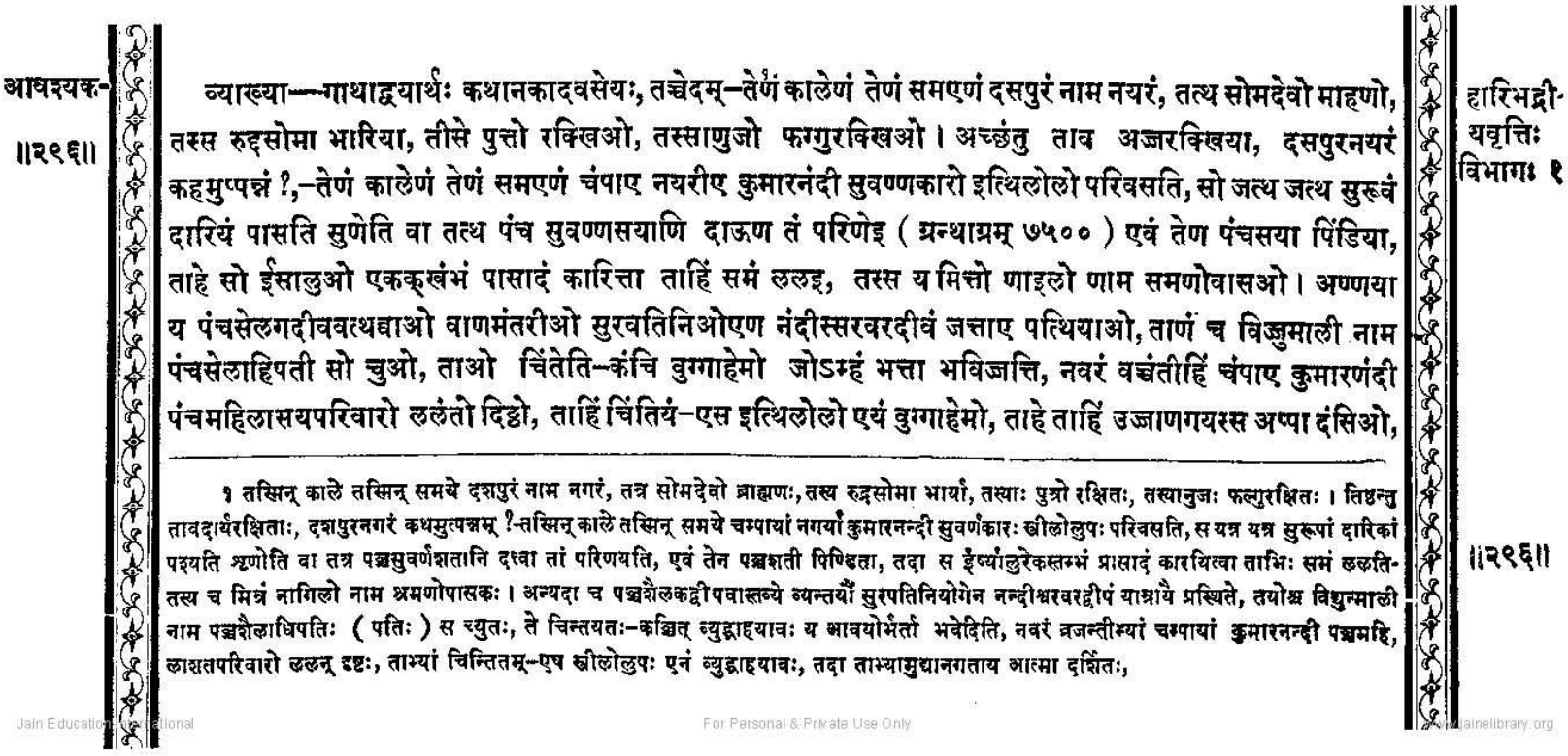

आवश्यक- ॥२९६॥

व्याख्या—गाथाद्वयार्थः कथानकादवसेयः, तच्चेदम्–तेणं कालेणं तेणं समएणं दसपुरं नाम नयरं, तत्थ सोमदेवो माहणो, तस्स रुद्दसोमा भारिया, तीसे पुत्तो रक्खिओ, तस्साणुजो फग्गुरक्खिओ। अच्छंतु ताव अज्जरक्खिया, दसपुरनयरं कहमुप्पन्नं ?,–तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपाए नयरीए कुमारनंदी सुवण्णकारो इत्थिलोलो परिवसति, सो जत्थ जत्थ सुरूवं दारियं पासति सुणेति वा तत्थ पंच सुवण्णसयाणि दाऊण तं परिणेइ (ग्रन्थाग्रम् ७५००) एवं तेण पंचसया पिंडिया, ताहे सो ईसालुओ एकक्खंभं पासादं कारित्ता ताहिं समं ललइ, तस्स य मित्तो णाइलो णाम समणोवासओ। अण्णया य पंचसेलगदीववत्थव्वाओ वाणमंतरीओ सुरवतिनिओएण नंदीस्सरवरदीवं जत्ताए पत्थियाओ, ताणं च विज्जुमाली नाम पंचसेलाहिपती सो चुओ, ताओ चिंतेति–कंचि वुग्गाहेमो जोऽम्हं भत्ता भविज्जत्ति, नवरं वच्चंतीहिं चंपाए कुमारणंदी पंचमहिलासयपरिवारो ललंतो दिट्ठो, ताहिं चिंतियं–एस इत्थिलोलो एयं वुग्गाहेमो, ताहे ताहिं उज्जाणगयस्स अप्पा दंसिओ,

१ तस्मिन् काले तस्मिन् समये दशपुरं नाम नगरं, तत्र सोमदेवो ब्राह्मणः, तस्य रुद्रसोमा भार्या, तस्याः पुत्रो रक्षितः, तस्यानुजः फल्गुरक्षितः। तिष्ठन्तु तावदार्यरक्षिताः, दशपुरनगरं कथमुत्पन्नम् ?-तस्मिन् काले तस्मिन् समये चम्पायां नगर्यां कुमारनन्दी सुवर्णकारः स्त्रीलोलुपः परिवसति, स यत्र यत्र सुरूपां दारिकां पश्यति शृणोति वा तत्र पञ्चसुवर्णशतानि दत्त्वा तां परिणयति, एवं तेन पञ्चशती पिण्डिता, तदा स ईर्ष्यालुरेकस्तम्भं प्रासादं कारयित्वा ताभिः समं ललति-तस्य च मित्रं नागिलो नाम श्रमणोपासकः। अन्यदा च पञ्चशैलकद्वीपवास्तव्ये व्यन्तर्यौ सुरपतिनियोगेन नन्दीश्वरवरद्वीपं यात्रायै प्रस्थिते, तयोश्च विद्युन्माली नाम पञ्चशैलाधिपतिः (पतिः) स च्युतः, ते चिन्तयतः–कञ्चित् व्युद्ग्राहयावः य आवयोर्भर्ता भवेदिति, नवरं व्रजन्तीभ्यां चम्पायां कुमारनन्दी पञ्चमहि, लाशतपरिवारो ललन् दृष्टः, ताभ्यां चिन्तितम्–एष स्त्रीलोलुपः एनं व्युद्ग्राहयावः, तदा ताभ्यामुद्यानगताय आत्मा दर्शितः,

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

॥२९६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आर्यरक्षितस्वामिनः कथानकं (तन्मध्ये कुमारनन्दी सुवर्णकार, प्रभावती राज्ञि, उदायन राजानाम् अपि कथानकं)

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

ताहे सो भणति-काओ तुब्भे ?, ताओ भणंति-देवयाओ, सो मुच्छिओ ताओ पत्थेइ, ताओ भणंति-जइ अम्हाहिं कज्जं तो पंचसेलगं दीवं एज्जाहित्ति भणिऊणं उप्पतित्ता गयाओ, सो तासु मुच्छिओ राउले सुवण्णगं दाऊण पडहगं णीणेति-कुमारणंदि जो पंचसेलगं णेइ तस्स धणकोडिं देइ, थेरेण पडहओ वारिओ, वहणं कारियं, पत्थयणस्स भरियं, थेरो तं दव्वं पुत्ताण दाऊण कुमारणंदिणा सह जाणवत्तेण पत्थिओ, जाहे दूरे समुद्देण गओ ताहे थेरेण भण्णइ-किंचिवि पेच्छसि ?, सो भणति-किंपि कालयं दीसइ, थेरो भणति-एस वडो समुद्दकूले पव्वयपादे जाओ, एयस्स हेट्ठेण एयं वहणं जाहिति, तो तुमं अमूढो वडे विलग्गेज्जासि, ताहे पंचसेलगाओ भारंडपक्खी एहिंति, तेसिं जुगलस्स तिन्नि पाया, ततो तेसु सुत्तेसु मज्झिले पादे सुलग्गो होज्जाहि पडेण अप्पाणं बंधिउं, तो ते तं पंचसेलयं णेहिंति, अह तं वडं न विलग्गसि तो एयं वहणं वलयामुहं पविसिहित्ति तत्थ विणस्सिहिसि, एवं सो विलग्गो, णीओ य पक्खीहि, ताहे ताहिं वाणमंतरीहिं

---

१ तदा स भणति-के यूयं ?, ते भणतः-देवते, स मूर्च्छितः ते प्रार्थयते, ते भणतः-यद्यावाभ्यां कार्यं तत् पञ्चशैलं द्वीपमाया इति भणित्वोत्पत्य गते, स तयोर्मूर्छितो राजकुले सुवर्णं दत्त्वा पटहं निष्काशयति-कुमारनन्दी यः पञ्चशैलं नयति तस्मै धनकोटीं ददाति, स्थविरेण पटहो वारितः, प्रवहणं कारितं, पथ्यदनेन भृतं, स्थविरस्तत् द्रव्यं पुत्रेभ्यो दत्त्वा कुमारनन्दिना सह यानपात्रेण प्रस्थितः, यदा दूरं समुद्रेण गतस्तदा स्थविरेण भण्यते-किञ्चिदपि प्रेक्षसे ?, स भणति-किमपि कृष्णं दृश्यते, स्थविरो भणति-एष वटः समुद्रकूले पर्वतमूले जातः, एतस्याधस्तात् एतत् प्रवहणं यास्यति, तत् त्वममूढो वटे विलगेः, तत्र पञ्चशैलात् भारण्डपक्षिण एष्यन्ति, तयोर्युगलयोस्त्रयः पादाः, ततस्तेषु सुप्तेषु मध्यमे पादे सुलग्नो भवेः पटेनात्मानं बद्ध्वा, ततस्ते त्वां पञ्चशैलं नेष्यन्ति, अथ तं वटं न विलगिष्यसि तदा एतत् प्रवहणं वलयामुखं प्रवेक्ष्यति इति तत्र विनङ्क्ष्यसि, एवं स विलग्नः, नीतश्च पक्षिभिः, तदा ताभ्यां व्यन्तरीभ्यां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

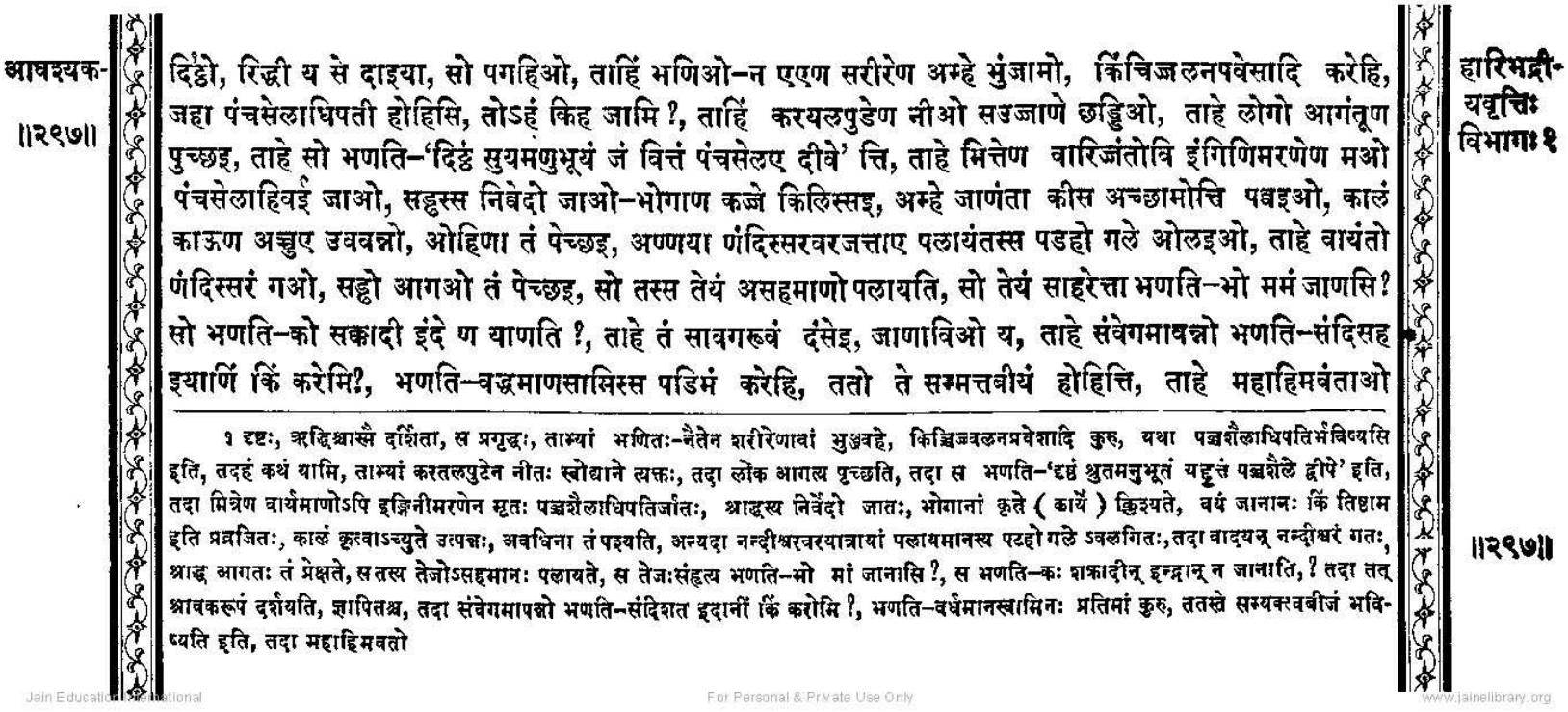

आवश्यक- ॥२९७॥

दिट्ठो, रिद्धी य से दाइया, सो पगहिओ, ताहिं भणिओ–न एएण सरीरेण अम्हे भुंजामो, किंचिज्जलनपवेसादि करेहि, जहा पंचसेलाधिपती होहिसि, तोऽहं किह जामि ?, ताहिं करयलपुडेण नीओ सउज्जाणे छड्डिओ, ताहे लोगो आगंतूण पुच्छइ, ताहे सो भणति–'दिट्ठं सुयमणुभूयं जं वित्तं पंचसेलए दीवे' त्ति, ताहे मित्तेण वारिज्जंतोवि इंगिणिमरणेण मओ पंचसेलाहिवई जाओ, सड्ढस्स निवेदो जाओ–भोगाण कज्जे किलिस्सइ, अम्हे जाणंता कीस अच्छामोत्ति पव्वइओ, कालं काऊण अच्चुए उववन्नो, ओहिणा तं पेच्छइ, अण्णया णंदिस्सरवरजत्ताए पलायंतस्स पडहो गले ओलइओ, ताहे वायंतो णंदिस्सरं गओ, सड्ढो आगओ तं पेच्छइ, सो तस्स तेयं असहमाणो पलायति, सो तेयं साहरेत्ता भणति–भो ममं जाणसि? सो भणति–को सक्कादी इंदे ण याणति ?, ताहे तं सावगरूवं दंसेइ, जाणाविओ य, ताहे संवेगमावन्नो भणति–संदिसह इयाणिं किं करेमि?, भणति–वद्धमाणसामिस्स पडिमं करेहि, ततो ते सम्मत्तबीयं होहित्ति, ताहे महाहिमवंताओ

१ दृष्टः, ऋद्धिश्चास्मै दर्शिता, स प्रगृद्धः, ताभ्यां भणितः–नैतेन शरीरेणावां भुञ्जवहे, किञ्चिज्ज्वलनप्रवेशादि कुरु, यथा पञ्चशैलाधिपतिर्भविष्यसि इति, तदहं कथं यामि, ताभ्यां करतलपुटेन नीतः स्वोद्याने त्यक्तः, तदा लोक आगत्य पृच्छति, तदा स भणति–'दृष्टं श्रुतमनुभूतं यद्दत्तं पञ्चशैले द्वीपे' इति, तदा मित्रेण वार्यमाणोऽपि इङ्गिनीमरणेन मृतः पञ्चशैलाधिपतिर्जातः, श्राद्धस्य निर्वेदो जातः, भोगानां कृते (कार्ये) क्लिश्यते, वयं जानानः किं तिष्ठाम इति प्रव्रजितः, कालं कृत्वाऽच्युते उत्पन्नः, अवधिना तं पश्यति, अन्यदा नन्दीश्वरयात्रायां पलायमानस्य पटहो गले ऽवलगितः, तदा वादयन् नन्दीश्वरं गतः, श्राद्ध आगतः तं प्रेक्षते, स तस्य तेजोऽसहमानः पलायते, स तेजःसंहृत्य भणति–भो मां जानासि ?, स भणति–कः शक्रादीन् इन्द्रान् न जानाति, ? तदा तत् श्रावकरूपं दर्शयति, ज्ञापितश्च, तदा संवेगमापन्नो भणति–संदिशत इदानीं किं करोमि ?, भणति–वर्धमानस्वामिनः प्रतिमां कुरु, ततस्ते सम्यक्त्वबीजं भविष्यति इति, तदा महाहिमवतो

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः१

॥२९७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

गोसीसचंदणरुक्खं छेत्तूण तत्थ पडिमं निवत्तेऊण कट्ठसंपुडे छुभित्ता आगओ भरहवासं, वाहणं पासइ समुद्दस्स मज्झे उप्पाइएण छम्मासे भमंतं, ताहे तेण तं उप्पाइयं उवसामियं सा य खोडी दिन्ना, भणिओ य–देवाहिदेवस्स एत्थ पडिमा कायव्वा, वीतभए उत्तारिया, उदायणो राया, तावसभत्तो, पभावती देवी, वणिएहिं कहितं–देवाहिदेवस्स पडिमा करेयव्वत्ति, ताहे इंदादीणं करेंति, परसू ण वहति, पभावतीए सुयं, भणति–वद्धमाणसामी देवाहिदेवो तस्स कीरउ, जाहे आहयं ताव पुव्वनिम्माया पडिमा, अंतेउरे चेइयघरं कारियं, पभावती ण्हाया तिसंझं अच्चेइ, अण्णया देवी णच्चइ राया वीणं वाएइ, सो देवीए सीसं न पेच्छइ, अच्छिती से जाया, तओ वीणावायणयं हत्थओ भट्ठं, देवी रुट्ठा भणइ–किं दुट्ठु नच्चियं?, निब्बंधे से सिट्ठं, सा भणति–किं मम?, सुचिरं सावयत्तणं अणुपालियं, अण्णया चेडिं ण्हाया भणति–पोत्ताइं आणेहि, ताए रत्ताणि आणीयाणि, रुट्ठा अदाएण आहया, जिणघरं पविसंतीए रत्तगाणि देसित्ति, आहया मया चेडी,

१ गोशीर्षचन्दनवृक्षं छित्त्वा तत्र प्रतिमां निर्वर्त्य काष्ठसंपुटे क्षिप्त्वा आगतो भरतवर्षं, प्रवहणं पश्यति समुद्रस्य मध्ये उत्पातेन षण्मास्या भ्रमत्, तदा तेन तदुत्पातिकमुपशमितं सा च पेटा दत्ता, भणितश्च–देवाधिदेवस्यात्र प्रतिमा कर्त्तव्या, वीतभये उत्तारिता, उदायनो राजा, तापसभक्तः, प्रभावती देवी, वणिग्भिः कथितं-देवाधिदेवस्य प्रतिमा कर्त्तव्येति, तदेन्द्रादीनां कुर्वन्ति, परशुर्न वहति, प्रभावत्या श्रुतं, भणति–वर्धमानस्वामी देवाधिदेवस्तस्य क्रियतां, यदा आहतं तावत्पूर्वनिर्मिता प्रतिमा, अन्तःपुरे चैत्यगृहं कारितं, प्रभावती स्नाता त्रिसन्ध्यमर्चयति, अन्यदा देवी नृत्यति राजा वीणां वादयति, स देव्याः शीर्षं न प्रेक्षते, अधृतिस्तस्य जाता, ततो वीणावादनं हस्ताद् भ्रष्टं, देवी रुष्टा भणति–किं दुष्टं नृत्तं, निर्बन्धे तस्यै शिष्टं, सा भणति–किं मम? सुचिरं श्रावकत्वमनुपालितम्, अन्यदा चेटीं स्नाता भणति–पोतान्यानय, तया रक्तान्यानीतानि, रुष्टा, आदर्शेनाहता, जिनगृहं प्रविशन्त्या रक्तानि ददासीरिति, आहता मृता चेटी,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

ताहे चिंतेइ–मए वयं खंडियं, किं जीवितेणंति?, रायाणं आपुच्छइ–भत्तं पच्चक्खामित्ति, निब्बंधे जइ परं बोधेसि, पडिस्सुयं, भत्तपच्चक्खाणेण मया देवलोगं गया, जिणपडिमं देवदत्ता दासचेडी खुज्जा सुस्सूसति, देवो उदायणं संबोहेति, न संबुज्झति, सो य तावसभत्तो, ताहे देवो तावसरूवं करेइ, अमयफलाणि गहाय सो आगओ, रण्णा आसाइयाणि, पुच्छिओ–कहिं एयाणि फलाणि?, नगरस्स अदूरे आसमो तहिं, तेण समं गओ, तेहिं पारद्धो, णासंतो वणसंडे साहवो पेच्छइ, तेहिं धम्मो कहिओ, संबुद्धो, देवो अत्ताणं दरिसेइ, आपुच्छित्ता गओ, जाव अत्थाणीए चेव अत्ताणं पेच्छइ, एवं सड्ढो जाओ। इओ य गंधारओ सावगो सवाओ जम्मभूमीओ वंदित्ता वेयड्ढे कणगपडिमाउ सुणेत्ता उववासेण ठिओ, जइ वा मओ दिट्ठाओ वा, देवयाए दंसियाओ, तुट्ठा य सव्वकामियाणं गुलिगाणं सयं देति, ततो णीतो सुणेइ–वीतभए जिणपडिमा गोसीसचंदणमई, तं वंदओ एइ, वंदति, तत्थ पडिभग्गो, देवदत्ताए पडियरिओ, तुट्ठेण य से ताओ गुलियाओ

---

१ तदा चिन्तयति–मया व्रतं खण्डितं, किं जीवितेनेति, राजानमापृच्छति–भक्तं प्रत्याख्यामीति, निर्बन्धे यदि परं बोधयसि, प्रतिश्रुतं, भक्तप्रत्याख्यानेन मृता देवलोकं गता, जिनप्रतिमां देवदत्ता दासी कुब्जा शुश्रूषते, देव उदायनं संबोधयति, न संबुध्यते, स च तापसभक्तः, तदा देवस्तापसरूपं करोति, अमृतफलानि स गृहीत्वाऽऽगतः, राज्ञा आस्वादितानि, पृष्टः–कैतानि फलानि?, नगरस्यादूरे आश्रमः तत्र, तेन समं गतः, तैः प्रारब्धः, नश्यन् वनखण्डे साधून् पश्यति, तैर्धर्मः कथितः, संबुद्धः, देव आत्मानं दर्शयति, आपृच्छ्य गतः, यावदास्थानिकायामेवात्मानं पश्यति, एवं श्राद्धो जातः। इतश्च गान्धारः श्रावकः सर्वां जन्मभूमीर्वन्दित्वा वैताढ्ये कनकप्रतिमाः श्रुत्वोपवासेन स्थितः, यदि वा मृतो दृष्टा वा, देवतया दर्शिताः, तुष्टा च सर्वकामितानां गुटिकानां शतं ददाति, ततो निर्गच्छन् शृणोति–वीतभये जिनप्रतिमा गोशीर्षचन्दनमयी, तां वन्दितुमायाति, वन्दते, तत्र प्रतिभग्नः, देवदत्तया प्रतिचरितः, तुष्टेन च तस्यै ता गुटिका

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

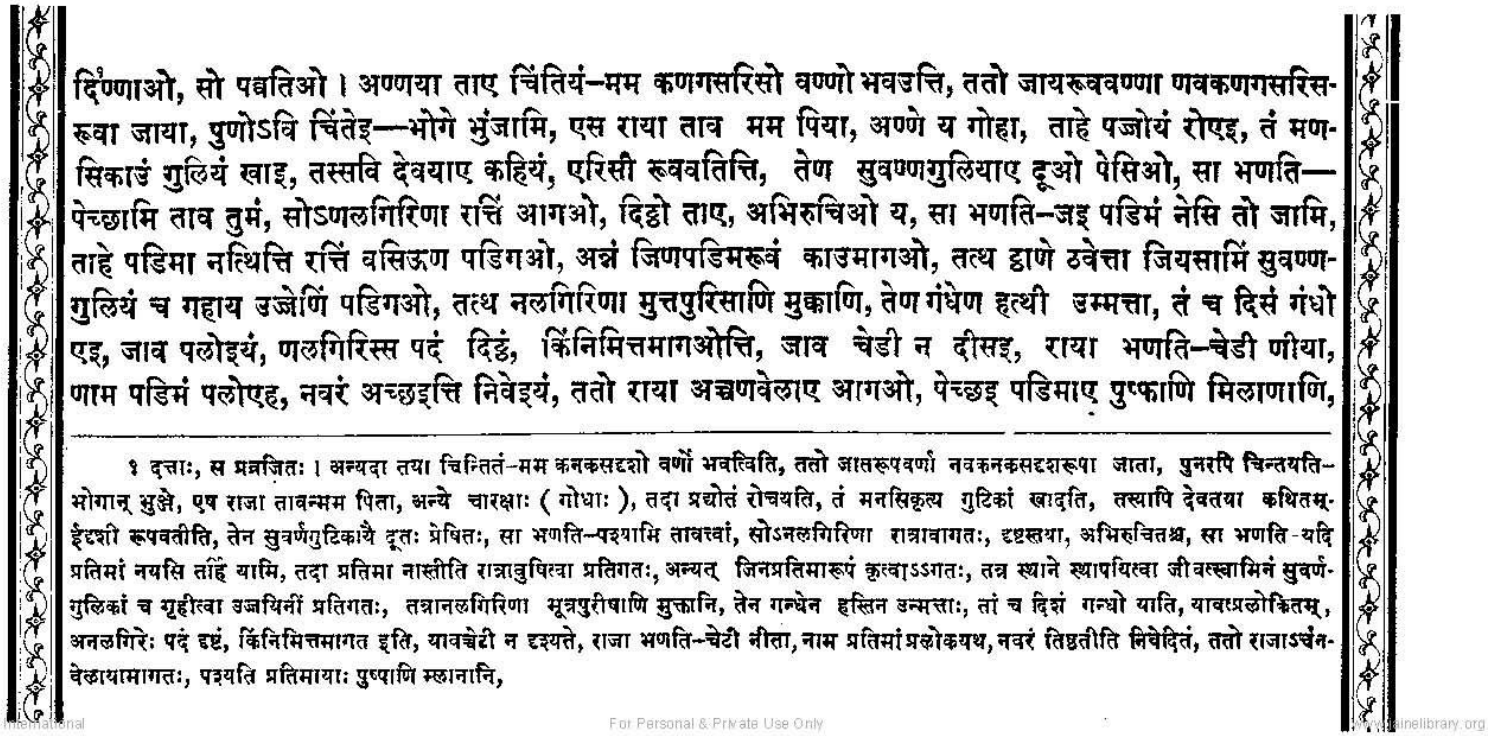

दिण्णाओ, सो पव्वतिओ। अण्णया ताए चिंतियं–मम कणगसरिसो वण्णो भवउत्ति, ततो जायरूववण्णा णवकणगसरिसरूवा जाया, पुणोऽवि चिंतेइ—भोगे भुंजामि, एस राया ताव मम पिया, अण्णे य गोहा, ताहे पज्जोयं रोएइ, तं मणसिकाउं गुलियं खाइ, तस्सवि देवयाए कहियं, एरिसी रूववतित्ति, तेण सुवण्णगुलियाए दूओ पेसिओ, सा भणति—पेच्छामि ताव तुमं, सोऽणलगिरिणा रत्तिं आगओ, दिट्ठो ताए, अभिरुचिओ य, सा भणति–जइ पडिमं नेसि तो जामि, ताहे पडिमा नत्थित्ति रत्तिं वसिऊण पडिगओ, अन्नं जिणपडिमरूवं काउमागओ, तत्थ ट्ठाणे ठवेत्ता जियसामिं सुवण्णगुलियं च गहाय उज्जेणिं पडिगओ, तत्थ नलगिरिणा मुत्तपुरिसाणि मुक्काणि, तेण गंधेण हत्थी उम्मत्ता, तं च दिसं गंधो एइ, जाव पलोइयं, णलगिरिस्स पदं दिट्ठं, किंनिमित्तमागओत्ति, जाव चेडी न दीसइ, राया भणति–चेडी णीया, णाम पडिमं पलोएह, नवरं अच्छइत्ति निवेइयं, ततो राया अच्चणवेलाए आगओ, पेच्छइ पडिमाए पुप्फाणि मिलाणाणि,

१ दत्ताः, स प्रव्रजितः। अन्यदा तया चिन्तितं–मम कनकसदृशो वर्णो भवत्विति, ततो जातरूपवर्णा नवकनकसदृशरूपा जाता, पुनरपि चिन्तयति–भोगान् भुञ्जे, एष राजा तावन्मम पिता, अन्ये चारक्षाः (गोधाः), तदा प्रद्योतं रोचयति, तं मनसिकृत्य गुटिकां खादति, तस्यापि देवतया कथितम्-ईदृशी रूपवतीति, तेन सुवर्णगुटिकायै दूतः प्रेषितः, सा भणति–पश्यामि तावत्त्वां, सोऽनलगिरिणा रात्रावागतः, दृष्टस्तया, अभिरुचितश्च, सा भणति-यदि प्रतिमां नयसि तर्हि यामि, तदा प्रतिमा नास्तीति रात्रावुषित्वा प्रतिगतः, अन्यत् जिनप्रतिमारूपं कृत्वाऽऽगतः, तत्र स्थाने स्थापयित्वा जीवन्तस्वामिनं सुवर्णगुलिकां च गृहीत्वा उज्जयिनीं प्रतिगतः, तत्रानलगिरिणा मूत्रपुरीषाणि मुक्तानि, तेन गन्धेन हस्तिन उन्मत्ताः, तां च दिशं गन्धो याति, यावत्प्रलोकितम्, अनलगिरेः पदं दृष्टं, किंनिमित्तमागत इति, यावच्चेटी न दृश्यते, राजा भणति–चेटी नीता, नाम प्रतिमां प्रलोकयथ, नवरं तिष्ठतीति निवेदितं, ततो राजाऽर्चनवेलायामागतः, पश्यति प्रतिमायाः पुष्पाणि म्लानानि,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

संतो निव्वण्णंतेण नायं पडिरूवगन्ति, हरिया पडिमा, ततोऽणेण पज्जोयस्स दूओ विसज्जिओ, ण मम चेडीए कज्जं, पडिमं विसज्जेहि, सो ण देइ, ताहे पहाविओ जेट्ठमासे दसहिं राइहिं समं, उत्तरंताण य मरुं खंधावारो तिसाए मरिउमारद्धो, रण्णो निवेइयं, ततोऽणेण पभावती चिंतिता, आगया, तीए तिन्नि पोक्खराणि कयाणि, अग्गिमस्स मज्झिमस्स पच्छिमस्स, ताहे आसत्थो, गओ उज्जेणिं, भणिओ य रण्णा–किं लोगेण मारितेण ?, तुज्झं मज्झ य जुद्धं भवतु, अस्सरहहत्थिपाएहिं वा जेण रुच्चइ, ताहे पज्जोओ भणति–रहेहिं जुज्झामो, ताहे णलगिरिणा पडिकप्पितेणागओ, राया रहेण, ततो रण्णा भणिओ–अहो असच्चसंधोऽसि, तहावि ते नत्थि मोक्खो, ततोऽणेण रहो मंडलीए दिन्नो, हत्थी वेगेण पच्छओ लग्गो, रहेण जिओ, जं जं पायं उक्खिवइ तत्थ तत्थ सरे छुभइ, जाव हत्थी पडिओ, उत्तरन्तो बद्धो, निडाले य से अंको कओ–दासीपतिओ उदायणरण्णो, पच्छा णिययणगरं पहाविओ, पडिमा नेच्छइ, अंतरा वासेण उबद्धो ठिओ,

१ ततो निर्वर्णयता ज्ञातं प्रतिरूपकमिति, हृता प्रतिमा, ततोऽनेन प्रद्योताय दूतो विसृष्टः, न मम चेट्या कार्यं, प्रतिमां विसर्जय, स न ददाति, तदा प्रधावितो ज्येष्ठमासे दशभिः राजभिः समम्, उत्तरतां च मरुं स्कन्धावारस्तृषा मर्तुमारब्धः, राज्ञे निवेदितं, ततोऽनेन प्रभावती चिन्तिता, आगता, तया त्रीणि पुष्कराणि कृतानि, अग्रस्य मध्यस्य पाश्चात्यस्य, तदा विश्वस्तः, गत उज्जयिनीं, भणितश्च राज्ञा–किं लोकेन मारितेन ?, तव मम च युद्धं भवतु, अश्वरथहस्तिपादैर्वा येन रोचते, तदा प्रद्योतो भणति–रथैर्युध्यावहे, तदाऽनलगिरिणा प्रतिकल्पितेनागतो, राजा रथेन, ततो राज्ञा भणितः–अहो असत्यसन्धोऽसि, तथाऽपि ते नास्ति मोक्षः, ततोऽनेन रथो मण्डल्यां दत्तः, हस्ती वेगेन पृष्ठतो लग्नः, रथेन जितः, यं यं पादमुक्षिपति तत्र तत्र शरान् क्षिपति, यावद्धस्ती पतितः, अवतरन् बद्धो, ललाटे च तस्याङ्कः कृतः–दासीपतिः उदायनराजस्य, पश्चान्निजं नगरं प्रधावितः, प्रतिमा नेच्छति, अन्तरा वर्षयाऽवबद्धः स्थितः,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

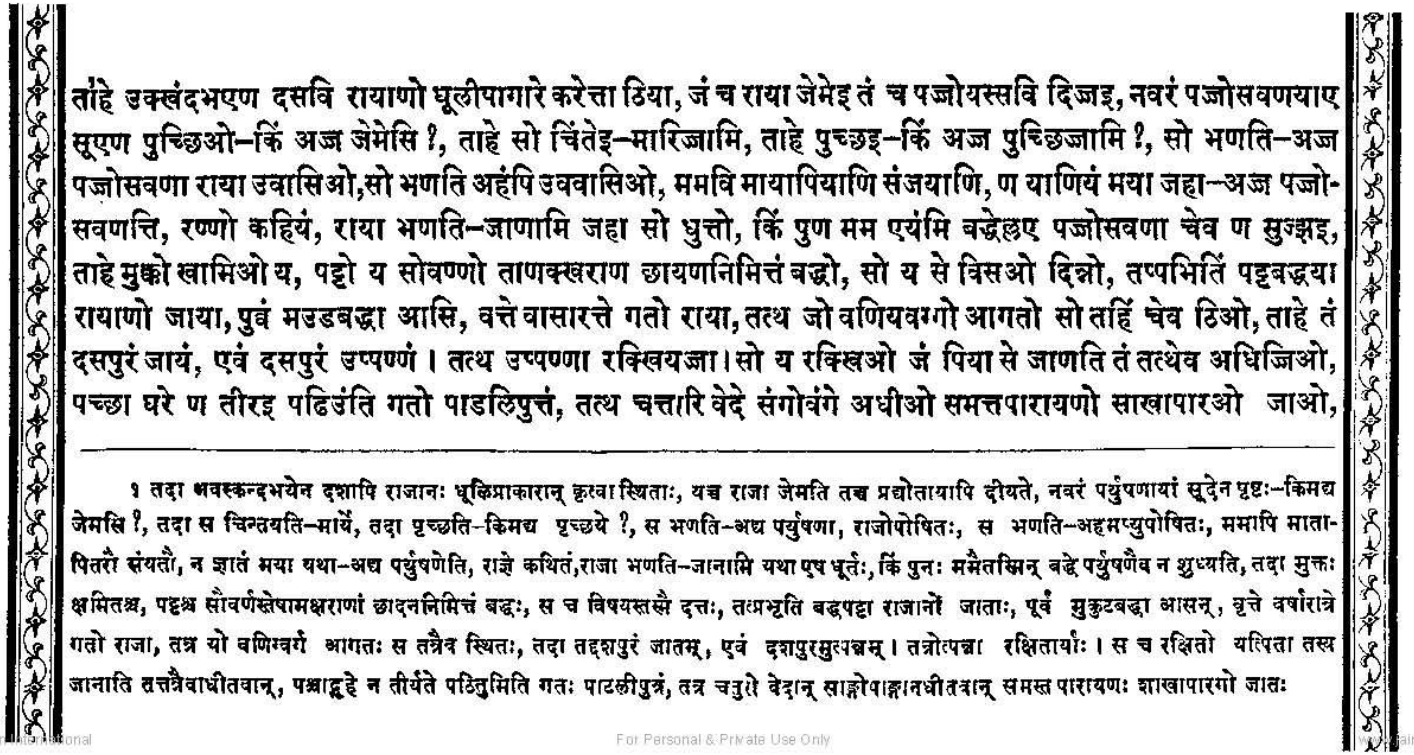

ताहे उक्खंदभएण दसवि रायाणो धूलीपागारे करेत्ता ठिया, जं च राया जेमेइ तं च पज्जोयस्सवि दिज्जइ, नवरं पज्जोसवणयाए सूएण पुच्छिओ–किं अज्ज जेमेसि ?, ताहे सो चिंतेइ–मारिज्जामि, ताहे पुच्छइ–किं अज्ज पुच्छिज्जामि ?, सो भणति–अज्ज पज्जोसवणा राया उवासिओ,सो भणति अहंपि उववासिओ, ममवि मायापियाणि संजयाणि, ण याणियं मया जहा–अज्ज पज्जोसवणत्ति, रण्णो कहियं, राया भणति–जाणामि जहा सो धुत्तो, किं पुण मम एयंमि बद्धेल्लए पज्जोसवणा चेव ण सुज्झइ, ताहे मुक्को खामिओ य, पट्टो य सोवण्णो ताणक्खराण छायणनिमित्तं बद्धो, सो य से विसओ दिन्नो, तप्पभितिं पट्टबद्धया रायाणो जाया, पुवं मउडबद्धा आसि, वत्ते वासारत्ते गतो राया, तत्थ जो वणियवग्गो आगतो सो तहिं चेव ठिओ, ताहे तं दसपुरं जायं, एवं दसपुरं उप्पण्णं। तत्थ उप्पण्णा रक्खियज्जा। सो य रक्खिओ जं पिया से जाणति तं तत्थेव अधिज्जिओ, पच्छा घरे ण तीरइ पढिउंति गतो पाडलिपुत्तं, तत्थ चत्तारि वेदे संगोवंगे अधीओ समत्तपारायणो साखापारओ जाओ,

---

१ तदा भवस्कन्दभयेन दशापि राजानः धूलिप्राकारान् कृत्वा स्थिताः, यच्च राजा जेमति तच्च प्रद्योतायापि दीयते, नवरं पर्युषणायां सूदेन पृष्टः–किमद्य जेमसि ?, तदा स चिन्तयति–मार्ये, तदा पृच्छति–किमद्य पृच्छये ?, स भणति–अद्य पर्युषणा, राजोपोषितः, स भणति–अहमप्युपोषितः, ममापि मातापितरौ संयतौ, न ज्ञातं मया यथा–अद्य पर्युषणेति, राज्ञे कथितं,राजा भणति–जानामि यथा एष धूर्तः, किं पुनः ममैतस्मिन् बद्धे पर्युषणैव न शुध्यति, तदा मुक्तः क्षमितश्च, पट्टश्च सौवर्णस्तेषामक्षराणां छादननिमित्तं बद्धः, स च विषयस्तस्मै दत्तः, तत्प्रभृति बद्धपट्टा राजानो जाताः, पूर्वं मुकुटबद्धा आसन्, वृत्ते वर्षारात्रे गतो राजा, तत्र यो वणिग्वर्गो आगतः स तत्रैव स्थितः, तदा तद्दशपुरं जातम्, एवं दशपुरमुत्पन्नम्। तत्रोत्पन्ना रक्षितार्याः। स च रक्षितो यत्पिता तस्य जानाति तत्तत्रैवाधीतवान्, पश्चाद्धेतुं न तीर्यते पठितुमिति गतः पाटलीपुत्रं, तत्र चतुरो वेदान् साङ्गोपाङ्गानधीतवान् समस्त पारायणः शाखापारगो जातः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

आर्य रक्षितस्य प्रबन्धः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

किं बहुणा ?, चोद्दस विज्जाठाणाणि गहियाणि णेण, ताहे आगतो दसपुरं, ते य रायकुलसेवगा णज्जंति रायकुले, तेणं संविदितं रण्णो कयं जहा एमि, ताहे ऊसियपडागं नगरं कयं, राया सयमेव अम्मोगतियाए निग्गओ, दिट्ठो सक्कारिओ अग्गाहारो य से दिन्नो, एवं सो नगरेण सव्वेण अहिनंदिज्जंतो हत्थिखंधवरगओ अप्पणो घरं पत्तो, तत्थवि बाहिरब्भंतरिया परिसा आढाति, तंपि चंदणकलसादिसोभियं, तत्थ बाहिरियाए उवट्ठाणसालाए ठिओ, लोयस्स अग्घं पडिच्छइ, ताहे वयंसगा मित्ता य सव्वे आगए पेच्छइ, दिट्ठो परीयणेण य जणेण अग्घेण पज्जेण य पूइओ, घरं च से दुपयचउप्पयहिरण्णसुवण्णादिणा भरियं, ताहे चिंतेइ-अंमं न पेच्छामि, ताहे घरं अतियओ, मायरं अभिवादेइ, ताए भण्णइ–सागयं पुत्तत्ति?, पुणरवि मज्झत्था चेव अच्छइ, सो भणति–किं न अम्मो ! तुज्झ तुट्ठी ?, जेण मए एंतेण णगरं विम्हियं चोद्दसण्हं विज्जाठाणाणं आगमे कए, सा भणति–कहं पुत्त! मम तुट्ठी भविस्सति?, जेण तुमं बहूणं सत्ताणं वहकारणं अधिज्जिउमागओ,

१ किं बहुना ?, चतुर्दश विद्यास्थानानि गृहीतान्यनेन, तदाऽऽगतो दशपुरं, ते च राजकुलसेवका ज्ञायन्ते राजकुले, तेन संविदितं राज्ञः कृतं यथैमि, ततोच्छ्रितपताकं नगरं कृतं, राजा स्वयमेव अभिमुखो निर्गतः, दृष्टः सत्कारितः अग्रासनं च तस्मै दत्तम्, एवं स नगरेण सर्वेणाभिनन्द्यमानो वरहस्तिस्कन्धगत आत्मनो गृहं प्राप्तः, तत्रापि बाह्याभ्यन्तरिका पर्षदाद्रियते, तदपि चन्दनकलशादिशोभितं, तत्र बाह्यायामास्थानशालायां स्थितः, लोकस्यार्घं प्रतीच्छति, तदा वयस्या मित्राणि च सर्वानागतान् पश्यति, दृष्टः परिजनेन च जनेन अर्घेण पाद्येन च पूजितः, गृहं च तस्य द्विपदचतुष्पदहिरण्यसुवर्णादिना भृतं, तदा चिन्तयति–अम्बां न पश्यामि, तदा गृहमतिगतो, मातरमभिवादयते, तया भण्यते–स्वागतं पुत्रेति, पुनरपि मध्यस्थैव तिष्ठति, स भणति–किं नाम्ब ! तव तुष्टिः ?, येन मयाऽऽगच्छता नगरं विस्मितं चतुर्दशानां विद्यास्थानानामागमे कृते, सा भणति–कथं पुत्र ! मम तुष्टिर्भवेत् ?, येन त्वं बहूनां सत्त्वानां वधकारणमधीत्यागतो.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

जेणं संसारो वड्ढिज्जइ तेण कहं तुस्सामि ?, किं तुमं दिट्ठीवायं पढिउमागओ ?, पच्छा सो चिंतेइ–केत्तिओ वा सो होहिति ?, जामि पढामि, जेण माउए तुट्ठी भवति, किं मम लोगेणं तोसिएणं ?, ताहे भणति–अम्मो ! कहिं सो दिट्ठिवाओ ?, सा भणति–साहूणं दिट्ठिवाओ, ताहे सो नामस्स अक्खरत्थं चिंतेउमारद्धो–दृष्टीनां वादो दृष्टिवादः,ताहे सो चिंतेइ-नामं चेव सुंदरं, जइ कोइ अज्झावेइ तो अज्झामि, मायावि तोसिया भवउत्ति, ताहे भणइ–कहिं ते दिट्ठिवादजाणंतगा ?, सा भणइ–अम्ह उच्छुघरे तोसलिपुत्ता नाम आयरिया, सो भणइ–कल्लं अज्झामि, मा तुज्झे उस्सुगा होही, ताहे सो रत्तिं दिट्ठिवायणामत्थं चिन्तंतो न चेव सुत्तो, बितियदिवसे अप्पभाए चेव पट्ठिओ, तस्स य पितिमित्तो बंभणो उवनगरगामे वसइ, तेण हिज्जो न दिट्ठओ, अज्ज पेच्छामि च्छणंति उच्छुलट्ठीओ गहाय एति नव पडिपुण्णाओ एगं च खंडं, इमो य नीइ, सो पत्तो, को तुमं ?, अज्जरक्खिओऽहं, ताहे सो तुट्ठो उवगूहइ, सागयं ?, अहं तुज्झे दट्ठुमागओ,

---

१ येन संसारो वर्ध्यते तेन कथं तुष्यामि ?, किं त्वं दृष्टिवादं पठित्वाऽऽगतः, पश्चात्स चिन्तयति–कियान्वा स भविष्यति ?, यामि पठामि, येन मातुस्तुष्टिर्भवति, किं मम लोकेन तोषितेन ?, तदा भणति–अम्ब ! क्व स दृष्टिवादः ?, सा भणति–साधूनां दृष्टिवादः, तदा स नाम्नोऽक्षरार्थं (पदार्थं) चिन्तयितुमारब्धः, तदा स चिन्तयति–नामैव सुन्दरं, यदि कोऽप्यध्यापयति तदाऽधीये, माताऽपि तोषिता भवत्विति, तदा भणति–क्व ते दृष्टिवादं जानानाः ?, सा भणति–अस्माकमिक्षुगृहे तोसलिपुत्रा नामाचार्याः, स भणति–कल्येऽध्येष्ये,मोत्सुकात्वं भूः,तदा स रात्रौ दृष्टिवादनामार्थं चिन्तयन् नैव सुप्तः, द्वितीयदिवसेऽप्रभात एव प्रस्थितः, तस्य च पितृमित्रं ब्राह्मण उपनगरग्रामे वसति, तेन ह्यो न दृष्टः, अद्य प्रेक्षे क्षणमिति इक्षुयष्टीर्गृहीत्वाऽऽयाति नव प्रतिपूर्णा एकं च खण्डम्, अथ च निर्गच्छति, स प्राहः, कस्त्वम्?, आर्यरक्षितोऽहं, तदा स तुष्ट उपगूहते, स्वागतम् ?, अहं युष्मान् द्रष्टुमागतः,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

ताहे सो भणति–अतीहि, अहं सरीरचिंताए जामि, एयाओ य उच्छुलट्ठीओ अम्माए पणामिज्जासि भणिज्जसु य—दिट्ठो मए अज्जरक्खितो, अहमेव पढमं दिट्ठो, सा तुट्ठा चिंतेइ–मम पुत्तेण सुंदरं मंगलं दिट्ठं, नव पुव्वा घेत्तव्वा खंडं च, सोऽवि चिंतेइ–मए दिट्ठिवादस्स नव अंगाणि अज्झयणाणि वा घेत्तव्वाणि, दसमं न य सव्वं, ताहे गतो उच्छुघरे, तत्थ चिंतेइ—किह एमेव अतीमि ? गोहो जहा अयाणंतो, जो एएसिं सावगो भविस्सइ तेण समं पविसामि, एगपासे अच्छइ अल्लीणो, तत्थ य ढड्ढरो नाम सावओ, सो सरीरचिंतं काऊण पडिस्सयं वच्चइ, ताहे तेण दूरट्ठिएण तिन्नि निसीहिआओ कताओ, एवं सो इरियादी ढड्ढरेणं सरेणं करेइ, सो पुण मेहावी तं अवधारेइ, सोऽवि तेणेव कमेण उवगतो, सव्वेसिं साहूणं वंदणयं कयं, सो सावगो न वंदितो, ताहे आयरिएहिं नातं–एस णवसड्ढो, पच्छा पुच्छइ–कतो धम्माहिगमो ?, तेण भणियं–एयस्स सावगस्स मूलाओ, साहूहिं कहियं–जहेस सड्ढीए तणओ जो सो कलं हत्थिखंधेण अतिणीतो, कहंति ?, ताहे सव्वं

१ तदा स भणति–यायाः, अहं शरीरचिन्तायै यामि,एताश्चेक्षुयष्टयो मात्रे दत्त्वा भणेश्च–दृष्टो मयाऽऽर्यरक्षितः, अहमेव प्रथमं दृष्टः, सा तुष्टा चिन्तयति–मम पुत्रेण सुन्दरं मङ्गलं दृष्टं, नव पूर्वाणि ग्रहीतव्यानि खण्डं च, सोऽपि चिन्तयति–मया दृष्टिवादस्य नवाङ्गानि अध्ययनानि वा ग्रहीतव्यानि, दशमं च न सर्वं, तदा गत इक्षुगृहे, तत्र चिन्तयति–कथमेवमेव प्रविशामि प्राकृतो यथाऽजानानः, य एतेषां श्रावको भविष्यति तेन समं प्रविशामि, एकपार्श्वे तिष्ठति आलीनः, तत्र च ढड्ढरो नाम श्रावकः, स शरीरचिन्तां कृत्वा प्रतिश्रयं व्रजति, तदा तेन दूरस्थितेन तिस्रो नैषेधिक्यः कृताः, एवं स ईर्यादि ढड्ढरेण (महता) स्वरेण करोति, स पुनर्मेधावी तदवधारयति, सोऽपि तेनैव क्रमेणोपगतः, सर्वेषां साधूनां वन्दनं कृतं, स श्रावको न वन्दितः, तदा आचार्यैर्ज्ञातम्–एष नवश्राद्धः, पश्चात्पृच्छति–कुतो धर्माधिगमः ?, तेन भणितम्–एतस्य श्रावकस्य मूलात्, साधुभिः कथितं–यथैष श्राद्धाश्रुतयः यः स कल्ये हस्तिस्कन्धेन प्रवेशितः (इति), कथमिति, तदा सर्वं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

सोहेइ, अहं दिट्ठिवातं अज्झाइउं तुज्झ पासं आगतो, आयरिया भणंति–अम्ह दिक्खा अब्भुवगमेण अज्झाइज्जइ, भणइ–पव्वयामि, सोवि परिवाडीए अज्झाइज्जइ, एवं होउ, परिवाडीए अज्झामि, किं तु मम एत्थ न जाइ पव्वइउं, अण्णत्थ वच्चामो, एस राया ममाणुरत्तो, अण्णो य लोगो, पच्छा ममं बलावि नेज्जा, तम्हा अण्णहिं वच्चामो, ताहे तं गहाय अण्णत्थ गता, एस पढमा सेहनिप्फेडिया, एवं तेण अचिरेण कालेण एक्कारस अंगाणि अहिज्जियाणि, जो दिट्ठिवादो तोसलिपुत्ताणं आयरियाणं सोऽवि अणेण गहितो, तत्थ य अज्जवइरा सुबंति जुगप्पहाणा, तेसिं दिट्ठिवादो बहुओ अत्थि, ताहे सो तत्थ वच्चइ उज्जेणिं मज्झेणं, तत्थ भद्दगुत्ताण थेराणं अंतियं उवगतो, तेहिंवि अणुवूहितो–धण्णो कतत्थो यत्ति, अहं संलेहियसरीरो, नत्थि ममं निज्जामओ, तुमं निज्जामओ होहित्ति, तेण तहत्ति पडिस्सुयं, तेहिं कालं करेंतेहिं भण्णइ–मा वइरसामिणा समं अच्छिज्जासि, वीसुं पडिस्सए ठितो पढेज्जासि, जो तेहिं समं एगमवि रत्तिं संवसइ

---

१ कथयति, अहं दृष्टिवादमध्येतुं तव पार्श्वमागतः, आचार्या भणन्ति–अस्माकं दीक्षाया अभ्युपगमेन अध्याप्यते, भणति–प्रव्रजामि, सोऽपि परिपाट्याऽध्याप्यते, एवं भवतु, परिपाट्याऽधीये, किन्तु ममात्र न जायते प्रव्रजितुम्, अन्यत्र व्रजामः, एष राजा मय्यनुरक्तः, अन्यश्च लोकः, पश्चात् मां बलादपि नयेत्, तस्मादन्यत्र व्रजामः, तदा तं गृहीत्वा अन्यत्र गताः, एषा प्रथमा शिष्यनिस्फेटिका, एवं तेनाचिरेण कालेनैकादशाङ्गानि अधीतानि, यो दृष्टिवादस्तोसलिपुत्राणामाचार्याणां सोऽप्यनेन गृहीतः, तदा चार्यवज्राः श्रूयन्ते युगप्रधानाः, तेषां (पार्श्वे) दृष्टिवादो बहुरस्ति, तदा स तत्र व्रजति उज्जयिनीमध्येन, तत्र भद्रगुप्तानां स्थविराणामन्तिकमुपगतः, तैरप्यनुबृंहितः–धन्यः कृतार्थश्चेति, अहं संलिखितशरीरः, नास्ति मम निर्यापकः, त्वं निर्यापको भवेति, तेन तथेति प्रतिश्रुतं, तैः कालं कुर्वद्भिः भण्यते–मा वज्रस्वामिना समं स्थाः, विष्वक् प्रतिश्रये स्थितः पठेः, यस्तैः सममेकामपि रात्रिं संवसति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

सो तेहिं अणु मरइ, तेण य पडिस्सुतं, कालगए गतो वइरसामिसगासं, बाहिं ठितो, तेऽवि सुविणयं पेच्छंति, तेसिं पुण थोवमवसिट्ठं जातं, तेहिं वि तहेव परिणामियं, आगतो, पुच्छितो–कत्तो ?, तोसलिपुत्ताणं पासातो, अज्जरक्खितो ?, आमं, साहु, सागतं ?, कहिं ठितो ?, बाहिं, ताहे आयरिया भणंति–बाहिंठियाणं किं जाइ अज्झाइउं ?, किं तुमं न याणसि ?, ताहे सो भणइ–खमासमणेहिं अहं भद्दगुत्तेहिं थेरेहिं भणितो–बाहिं ठाएज्जासि, ताहे उवउज्जित्ता जाणंति–सुंदरं, न निक्कारणेण भणंति आयरिया, अच्छह, ताहे अज्झाइउं पवत्तो, अचिरेण कालेण नव पुव्वा अहिज्जिया, दसमं आढत्तो घेत्तुं, ताहे अज्जवइरा भणंति–जवियाइं करेहि, एतं परिकंमं एयस्स, ताणि य सुहुमाणि गाढंताणि य, चउवीसं जवियाणि गहियाणि अणेण, सोऽवि ताव अज्झाइ । इतो य से मायापियरं सोगेण गहियं–उज्जोयं करिस्सामि अंधकारतरं कयं, ताहे ताणि य अप्पाहिंति, तहवि न एइ, ततो डहरतो से भाता फग्गुरक्खिओ, सो पट्ठविओ, एहि सव्वाणिऽवि

१ स ताननु म्रियते, तेन च प्रतिश्रुतं, कालगते गतो वज्रस्वामिसकाशं, बहिःस्थितः, तेऽपि स्वप्नं पश्यन्ति, तेषां पुनः स्तोकमवशिष्टं जातं (स्थितं), तैरपि तथैव परिणामितम्, आगतः, पृष्टः–कुतः ?, तोसलिपुत्राणां पार्श्वात्, आर्यरक्षितः ?, ओं, साधु, स्वागतम् ?, क्व स्थितः ?, बहिः, तदा आचार्या भणन्ति—बहिःस्थितानां किं जायतेऽध्येतुं (शक्यतेऽध्यापयितुं), किं त्वं न जानीषे ?, तदा स भणति–क्षमाश्रमणैरहं भद्रगुप्तैः स्थविरैर्भणितः–बहिः तिष्ठेः, तदोपयुज्य जानन्ति–सुन्दरं, न निष्कारणं भणन्त्याचार्याः, तिष्ठ, तदाऽध्येतुं प्रवृत्तः, अचिरेण कालेन नव पूर्वाण्यधीतानि, दशममादतो ग्रहीतुं, तदा आर्यवज्रा भणन्ति–यावकानि कुरु, एतत् परिकर्मैतस्य, तानि च सूक्ष्माणि गाढान्तानि च, चतुर्विंशतिर्यविकानि गृहीतानि अनेन, सोऽपि तावदध्येति । इतश्च तस्य मातापितरौ शोकेन गृहीतौ–उद्योतं करिष्यामि अन्धकारतरं कृतं, तदा तौ च संदिश्यतः, तथापि नैति, ततो लघुस्तस्य भ्राता फल्गुरक्षितः, स प्रस्थापितः, एहि सर्वेऽपि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

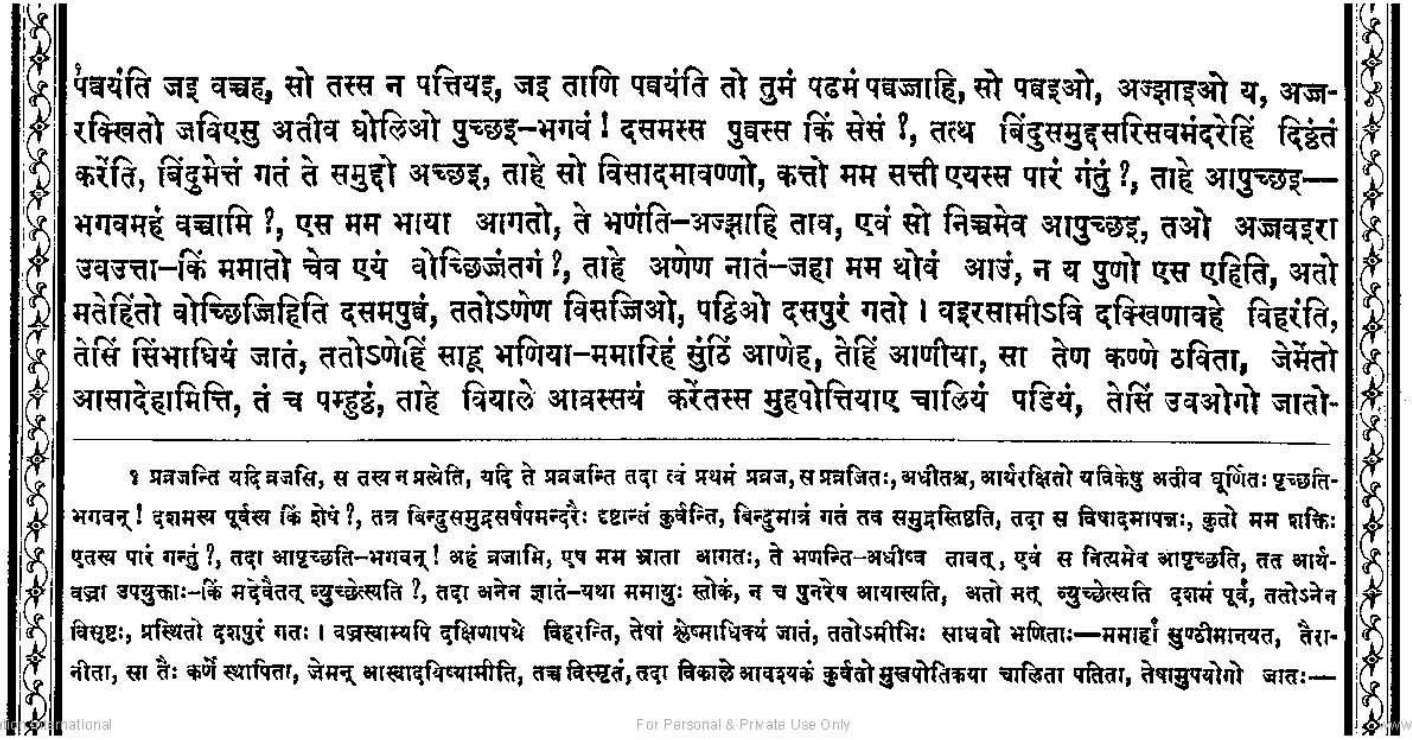

पवयंति जइ वच्चह, सो तस्स न पत्तियइ, जइ ताणि पवयंति तो तुमं पढमं पवज्जाहि, सो पवइओ, अज्झाइओ य, अज्ज-रक्खितो जविएसु अतीव घोलिओ पुच्छइ–भगवं ! दसमस्स पुव्वस्स किं सेसं ?, तत्थ बिंदुसमुद्दसरिसवमंदरेहिं दिट्ठंतं करेंति, बिंदुमेत्तं गतं ते समुद्दो अच्छइ, ताहे सो विसादमावण्णो, कत्तो मम सत्ती एयस्स पारं गंतुं ?, ताहे आपुच्छइ—भगवमहं वच्चामि ?, एस मम भाया आगतो, ते भणंति–अज्झाहि ताव, एवं सो निच्चमेव आपुच्छइ, तओ अज्जवइरा उवउत्ता–किं ममातो चेव एयं वोच्छिज्जंतगं ?, ताहे अणेण नातं–जहा मम थोवं आउं, न य पुणो एस एहिति, अतो मतेहिंतो वोच्छिज्जिहिति दसमपुव्वं, ततोऽणेण विसज्जिओ, पट्ठिओ दसपुरं गतो । वइरसामीऽवि दक्खिणावहे विहरंति, तेसिं सिंभाधियं जातं, ततोऽणेहिं साहू भणिया–ममारिहं सुंठिं आणेह, तेहिं आणीया, सा तेण कण्णे ठविता, जेमेंतो आसादेहामित्ति, तं च पम्हुट्ठं, ताहे वियाले आवस्सयं करेंतस्स मुहपोत्तियाए चालियं पडियं, तेसिं उवओगो जातो-

१ प्रव्रजन्ति यदि व्रजसि, स तस्य न प्रत्येति, यदि ते प्रव्रजन्ति तदा त्वं प्रथमं प्रव्रज, स प्रव्रजितः, अधीतश्च, आर्यरक्षितो यविकेषु अतीव घूर्णितः पृच्छति-भगवन् ! दशमस्य पूर्वस्य किं शेषं ?, तत्र बिन्दुसमुद्रसर्षपमन्दरैः दृष्टान्तं कुर्वन्ति, बिन्दुमात्रं गतं तव समुद्रस्तिष्ठति, तदा स विषादमापन्नः, कुतो मम शक्तिः एतस्य पारं गन्तुं ?, तदा आपृच्छति–भगवन् ! अहं व्रजामि, एष मम भ्राता आगतः, ते भणन्ति–अधीष्व तावत्, एवं स नित्यमेव आपृच्छति, तत आर्य-वज्रा उपयुक्ताः–किं मदेवैतत् व्युच्छेत्स्यति ?, तदा अनेन ज्ञातं–यथा ममायुः स्तोकं, न च पुनरेष आयास्यति, अतो मत् व्युच्छेत्स्यति दशमं पूर्वं, ततोऽनेन विसृष्टः, प्रस्थितो दशपुरं गतः । वज्रस्वाम्यपि दक्षिणापथे विहरन्ति, तेषां श्लेष्माधिक्यं जातं, ततोऽमीभिः साधवो भणिताः—ममार्हां सुण्ठीमानयत, तैरा-नीता, सा तैः कर्णे स्थापिता, जेमन् आस्वादयिष्यामीति, तच्च विस्मृतं, तदा विकाले आवश्यकं कुर्वतो मुखपोतिकया चालिता पतिता, तेषामुपयोगो जातः—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

अहो पमत्तो जातोऽहं, पमत्तस्स य नत्थि संजमो, तं सेयं खलु मे भत्तं पच्चक्खाएत्तए, एवं संपेहेति, दुब्भिक्खं च बारसवरिसियं जायं, सवतो समंता छिन्ना पंथा, निराधारं जायं, ताहे वइरसामी विज्जाए आहडपिंडं आणेऊण पवइयाण देइ, भणइ य–एवं बारसवरिसे भोत्तव्वं, भिक्खा य नत्थि, जइ जाणह उस्सरंति संजमगुणा तो भुंजह, अह जाणह नवि तो भत्तं पच्चक्खामो, ताहे भणंति-किं एरिसेण विज्जापिंडेण भुत्तेणं ?, भत्तं पच्चक्खामो, आयरिएहि य पुव्वमेव नाऊण सिस्सो वइरसेणो नाम पेसणेण पट्ठवियओ, भणियओ य–जाहे तुमं सतसहस्सनिप्फण्णं भिक्खं लहिहिसि ताहे जाणिज्जासि–जहा नट्ठं दुब्भिक्खंति । तओ वइरसामी समणगणपरिवारिओ एगं पव्वयं विलग्गिउमारद्धो, एत्थ भत्तं पच्चक्खामोत्ति । एगो य तत्थ खुड्डुओ साहूहिं वुच्चइ—तुमं वच्च, सो नेच्छइ, ताहे सो एगंमि गामे तेहिं विमोहिओ, पच्छा गिरि विलग्गा, खुड्डुतो ताण य गइमग्गेण गंतूण मा तेसिं असमाही होउत्ति तस्सेव हेट्ठा सिलातले पाओवगतो,

१ अहो प्रमत्तो जातोऽहं, प्रमत्तस्य च नास्ति संयमः, तच्छ्रेयः खलु मम भक्तं प्रत्याख्यातुम्, एवं संप्रेक्षते, दुर्भिक्षं च द्वादशवार्षिकं जातं, सर्वतः समन्तात् छिन्नाः पन्थानः, निराधारं जातं, तदा वज्रस्वामी विद्याहृतं पिण्डमानीय प्रव्रजितेभ्यो ददाति, भणति च—एवं द्वादश वर्षाणि भोक्तव्यं, भिक्षा च नास्ति, यदि जानीथ-उत्सर्पन्ति संयमगुणास्तदा भुञ्जध्वं, अथ जानीथ नैव तदा भक्तं प्रत्याख्यामः, तदा भणन्ति–किमीदृशेन विद्यापिण्डेन भुक्तेन ?, भक्तं प्रत्याख्यामः, आचार्यैश्च पूर्वमेव ज्ञात्वा शिष्यो वज्रसेनो नाम प्रेषया प्रस्थापितः, भणितश्च–यदा त्वं शतसहस्रनिष्पन्नां भिक्षां लभेथास्तदा जानीथाः–यथा नष्टं दुर्भिक्षमिति । ततो वज्रस्वामी श्रमणगणपरिवृत एकं पर्वतं विलगितुमारब्धः, अत्र भक्तं प्रत्याख्याम इति । एकश्च तत्र क्षुल्लकः साधुभिरुच्यते–त्वं व्रज, स नेच्छति, तदा स एकस्मिन् ग्रामे तैर्विमोहितः, पश्चात् गिरिं विलग्नाः, क्षुल्लकः तेषां च गतिमार्गेण गत्वा मा तेषामसमाधिर्भूरिति तस्यैवाधस्तात् शिलातले पादपोपगतः,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

ततो सो उण्हेण नवनीतो जहा विरातो अचिरेण चेव कालगतो, देवेहिं महिमा कया, ताहे आयरिया भणंति–खुड्डएण साहिओ अट्ठो, ततो ते साहूणो दुगुणाणियसद्धासंवेगा भणंति–जइ ताव बालएण होंतएण साहिओ अट्ठो तो किं अम्हे ण सुंदरतरं करेमो ?, तत्थ य देवया पडिणीया, ते साहूणो साविआरूवेण भत्तपाणेण निमंतेइ, अज्ज भे पारणयं, पारेह, ताहे आयरिएहिं नायं–जहा अचियत्तोग्गहोत्ति, तत्थ य अब्भासे अण्णो गिरी तं गया, तत्थ देवताए काउस्सग्गो कतो, सा आगंतूण भणइ–अहो मम अणुग्गहो, अच्छह, तत्थ समाहीए कालगता, ततो इंदेण रहेण वंदिया पदाहिणीकरितेण, तरुवरतणगहणादीणि पासल्लाणि कताणि, ताणि अज्जवि तहेव संति, तस्स य पव्वयस्स रहावत्तोत्ति नामं जायं । तंमि य भगवंते अद्धनारायसंघयणं दस पुव्वाणि य वोच्छिण्णा । सो य वइरसेणो जो पेसिओ पेसणेण सो भमंतो सोपारयं पत्तो, तत्थ य साविया अभिगता ईसरी, सा चिंतेइ–किह जीविहामो ? पडिक्कओ, नत्थि, ताहे सयसहस्सेण तद्दिवसं भत्तं

१ ततः स उष्णेन यथा नवनीतं विलीनोऽचिरेण कालेनैव कालगतः, देवैर्महिमा कृतः, तदा आचार्या भणन्ति–क्षुल्लकेन साधितोऽर्थः, ततस्ते साधवो द्विगुणानीतश्रद्धासंवेगा भणन्ति–यदि बालकेन सता तावत् साधितोऽर्थः तदा किं वयं सुन्दरतरं न कुर्मः?, तत्र च देवता प्रत्यनीका, तान् साधून् श्राविकारूपेण भक्तपानेन निमन्त्रयति, अद्य भवतां पारणकं, पारयत, तदा आचार्यैर्ज्ञातं–यथा अप्रीतिकावग्रह इति, तत्र चाभ्यासेऽन्यो गिरिस्तं गताः, तत्र देवतायाः कायोत्सर्गः कृतः, साऽऽगत्य भणति–अहो ममानुग्रहः, तिष्ठत, तत्र समाधिना कालगताः, ततः इन्द्रेण रथेन वन्दिताः प्रदक्षिणीकुर्वता, तरुवरतृणगहनानि नतपार्श्वानि कृतानि, तान्यद्यापि तथैव सन्ति, तस्य च पर्वतस्य रथावर्त्त इति नाम जातम् । तस्मिंश्च भगवति अर्धनाराचसंहननं दश पूर्वाणि च व्युच्छिन्नानि (दशमं पूर्वं च व्युच्छिन्नं) । स च वज्रसेनो यः प्रेषितः प्रेषया स आगच्छन् सोपारकं प्राप्तः, तत्र च श्राविका अभिगता (अभिगतजीवाजीवा) ईश्वरी, सा चिन्तयति–कथं जीविष्यामः ?, प्रतिक्रिया (आधारो) नास्ति, तदा शतसहस्रेण तद्दिवसे भक्तं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

निप्फाइयं, चिंतियं–इत्थ अम्हे सव्वकालं उज्जितं जीविए, मा इदाणिं पत्थेव देहबलियाए वित्तिं कप्पेमो, नत्थि पडिक्कओ तो एत्थ सयसहस्सनिप्फण्णे विसं छोढूण जेमेऊण सनमोक्काराणि कालं करेमो, तं च सज्जितं, नवि ता विसेणं संजोइज्जइ, सो य साहू हिंडंतो संपत्तो, ताहे सा हट्ठतुट्ठा तं साहुं तेण परमण्णेण पडिलाभेति, तं च परमत्थं साहइ, सो साहू भणइ–मा भत्तं पच्चक्खाह, अहं वइरसामिणा भणिओ–जया तुमं सतसहस्सनिप्फण्णं भिक्खं लहिहिसि ततो पए चेव सुभिक्खं भविस्सइ, ताहे पव्वइस्सह, ताहे सा वारिया ठिता। इओ य तद्दिवसं चेव वाहणेहिं तंदुला आणिता, ताहे पडिक्कओ जातो, सो साहू तत्थेव ठितो, सुभिक्खं जातं, ताणि सावयाणि तस्संतिए पव्वइयाणि, ततो वइरसामितस्स पउप्पयं जातं वंसो अवट्ठिओ। इतो य अज्जरक्खिएहिं दसपुरं गंतूण सव्वो सयणवग्गो पव्वाविओ माता भगिणीओ, जो सो तस्स खंतओ सोऽवि तेसिं अणुराएण तेहिं चेव समं अच्छइ, न पुण लिंगं गिण्हइ लज्जाए, किह समणो पव्वइस्सं ?, एत्थ मम धूताओ

---

१ निष्पादितं, चिन्तितम्–अत्र वयं सर्वकालमूर्जितं जीविताः, मेदानीं अत्रैव देहबलिकया वृत्तिं कल्पयामः, नास्ति आधारस्ततोऽत्र शतसहस्रनिष्पन्ने विषं क्षिप्त्वा जिमित्वा सनमस्काराः कालं कुर्मः, तच्च सज्जितं, नैव तावद्विषेण संयुज्यते, स च साधुर्हिण्डमानः संप्राप्तः, तदा स हृष्टतुष्टा तं साधुं तेन परमान्नेन प्रतिलाभयति, तं च परमार्थं साधयति, स साधुर्भणति–मा भक्तं प्रत्याख्यासिष्ट, अहं वज्रस्वामिना भणितः–यदा त्वं शतसहस्रनिष्पन्नां भिक्षां लप्स्यसे ततः प्रभात एव सुभिक्षं भविष्यति, तदा प्रव्रजिष्यथ, तदा सा वारिता स्थिता। इतश्च तद्दिवस एव प्रवहणैस्तन्दुला आनीताः, तदाऽऽधारो जातः, स साधुस्तत्रैव स्थितः, सुभिक्षं जातं, ते सर्वे श्रावकाः तस्यान्तिकं प्रव्रजिताः, ततो वज्रस्वामिनः पदोत्पतनं जातं वंशोऽवस्थितः। इतश्चार्यरक्षितैर्दशपुरं गत्वा सर्वः स्वजनवर्गः प्रव्राजितः माता भगिन्यो, यस्तस्य स पिता सोऽप्यनुरागेण तेषां तैः सममेव तिष्ठति, न पुनर्लिङ्गं गृह्णाति लज्जया, कथं श्रमणः प्रव्रजिष्यामि ?, अत्र मम दुहितरः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

सुण्हातो नत्तुइओ य, किह तासिं पुरओ नग्गओ अच्छिस्सं ?, आयरिया य तं बहुसो २ भणंति–पव्वयसु, सो भणइ–जइ समं जुयलेणं कुंडियाए छत्तएणं उवाहणेहिं जन्नोवइएण य तो पव्वयामि, आमंति पडिस्सुतं, पव्वइओ, सो पुण चरणकरणसज्झायं अणुयत्तंतेहिं गेण्हावितव्वोत्ति, ततो सो कडिपट्टगच्छत्तवाणहकुंडियबंभसुत्ताणि न मुयइ, सेसं सव्वं परिहरइ। अण्णया चेइयवंदया गया, आयरिएहिं पुव्वं चेडरूवाणि गाहियाणि भणंति–सव्वे वंदामो छत्तइल्लं मोत्तुं, ताहे सो चिंतेइ–एते मम पुत्ता नतुगा य वंदिज्जंति अहं कीस न वंदिज्जामि ?, ततो सो भणइ–अहं किं न पव्वइओ ?, ताणि भणंति–कुंतो पव्वइयाण छत्तयाणि भवंति ?, ताहे सो चिंतेइ–एताणि वि ममं पडिचोदेंति, ता छड्डेमि, ताहे पुत्तं भणइ–अलाहि, पुत्ता ! छत्तएण, ताहे सो भणति–अलाहि, जाहे उण्हं होहिति ताहे कप्पो उवरिं कीरहिति, ततो पुणो भणंति–मोत्तूण कुंडइल्लं, ताहे पुत्तेण भणिओ—मत्तएण चेव सन्नाभूमिं गम्मइ, एवं जन्नोवइयंपि मुयइ, आयरिया भणंति—

१ स्नुषा नप्तारश्च, कथं तासां पुरतो नग्नः स्थास्यामि, आचार्याश्च तं बहुशो २ भणन्ति–प्रव्रज, स भणति–यदि समं युगलेन कुण्डिकया छत्रकेणोपानद्भ्यां यज्ञोपवीतेन च तदा प्रव्रजामि, ओमिति प्रतिश्रुतं, प्रव्रजितः, स पुनश्चरणकरणस्वाध्यायमनुवर्त्तयद्भिर्ग्राहयितव्य इति, ततः स कटीपट्टकच्छत्रोपानत्कुण्डिकाब्रह्मसूत्राणि न मुञ्चति, शेषं सर्वं परिहरति। अन्यदा चैत्यवन्दका गताः, आचार्यैः पूर्वं डिम्भरूपाणि ग्राहितानि भणन्ति–सर्वान् वन्दामहे छत्रिणं मुक्त्वा, तदा स चिन्तयति–एते मम पुत्रा नप्तारश्च वन्द्यन्ते अहं कथं न वन्द्ये ?, ततः स भणति–अहं किं न प्रव्रजितः ?, तानि भणन्ति–कुतः प्रव्रजितानां छत्राणि भवेयुः?, तदा स चिन्तयति–एतान्यपि मां प्रति नोदयन्ति, ततस्त्यजामि, तदा पुत्रं भणति–अलं पुत्र ! छत्रेण, तदा स भणति–अलं, यदोष्णं भविष्यति तदा कल्प उपरि करिष्यते, ततः पुनर्भणन्ति–मुक्त्वा कुण्डिकावन्तं, तदा पुत्रेण भणितः–मात्रकेणैवसंज्ञाभूमिं गम्यते, एवं यज्ञोपवीतमपि मुञ्चति, आचार्या भणन्ति-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

को वा अम्हे न याणइ जहा बंभणा ?, एवं तेण ताणि सव्वाणि मुक्काणि, पच्छा ताणि भणंति–सव्वे वंदामो मोत्तूण कडिपट्टइलं, ताहे सो भणइ–सह अज्जयपज्जएहिं मा वंदह, अण्णो वंदिहिति ममं, न मुयइ कडिपट्टयं । तत्थ य साहू भत्तपच्चक्खातो, ततो कडिपट्टयवोसिरणट्ठयाए आयरिया वण्णेंति–एयं मडयं जो वहइ तस्स महलं फलं भवति, पुव्वं च साहू सण्णिएल्लगा चेव भणंति–अम्हे एतं वहामो, ततो आयरियसयणवग्गो भणइ—अम्हे वहामो, ते भण्डंता आयरियसगासं पत्ता, आयरिएहिं भणिया–अम्हं सयणवग्गो किं मा निज्जरं पावउ ?, तुम्हे चेव भणह–अम्हे वहामो, ताहे सो थेरो भणइ-किं एत्थ पुत्ता ! बहुया निज्जरा ?, आयरिया भणंति–आमंति, ततो सो भणइ—अहं वहामि, आयरिया भणंति–एत्थ उवसग्गा उप्पज्जंति, चेडरूवाणि नग्गेंति, जइ तरसि अहियासेउं तो वहाहि, अह नाहियासिहि ताहे अम्ह न सुंदरं होइ, सो भणइ–अहियासेस्सं, जाहे सो उक्खित्तो ताहे तस्स मग्गतो पव्वइया उट्ठिया, ताहे खुड्डगा भणंति–मुयह कडिपट्टयं,

१ को वाऽस्मान्न जानाति यथा ब्राह्मणा (इति), एवं तेन तानि सर्वाणि मुक्तानि, पश्चात्तानि भणन्ति–सर्वान् वन्दामहे मुक्त्वा कटीपट्टकवन्तं, तदा स भणति–सह पितृपितामहैर्मा वन्दिद्ढ्वम्, अन्यो वन्दिष्यते मां, न मुञ्चति कटीपट्टं । तत्र च साधुः प्रत्याख्यातभक्तः, ततः कटीपट्टकव्युत्सर्जनायाचार्या वर्णयन्ति–एतन् मृतकं यो वहति तस्य महत्फलं भवति, पूर्वं च साधवः संज्ञिता एव भणन्ति–वयमेतत् वहामः, तत आचार्यस्वजनवर्गो भणति–वयं वहामः, ते कलहायमाना आचार्यसकाशं प्राप्ताः, आचार्यैर्भणिताः–अस्माकं स्वजनवर्गः किं मा निर्जरां प्रापत् ?, यूयमेव भणथ–वयं वहामः, तदा स स्थविरो भणति–किमत्र पुत्र ! बह्वी निर्जरा ?, आचार्या भणन्ति–ओमिति, ततः स भणति–अहं वहामि, आचार्या भणन्ति–अत्रोपसर्गा उत्पद्यन्ते, चेटरूपाणि नग्नयन्ति, यदि शक्नोष्यध्यासितुं तदा वह, अथ नाध्यासयसि तदा अस्माकं न सुन्दरं भवति, स भणति–अध्यासिष्ये, यदा स उत्क्षिप्तस्तदा तस्य पृष्ठतः प्रव्रजिता उत्थिताः, तदा क्षुल्लका भणन्ति–मुञ्च कटीपट्टं,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

सो मोत्तूण पुरतो कतो दोरेण बद्धो, ताहे सो लज्जंतो तं वहइ, मग्गतो मम सुण्हादी पेच्छंति, एवं तेण उवसग्गो उट्ठितो अहितासेतव्वोत्ति काऊण वूढो, पच्छा आगतो तहेव, ताहे आयरिया भणंति–किं खंत ! इमं ?, सो भणइ–उवसग्गो उट्ठिओ, आयरिया भणंति–आणेह साडयं, ताहे भणइ–किं एत्थ साडएण ?, दिट्ठं जं दिट्ठवं, चोलपट्टओ चेव भवउ, एवं ता सो चोलपट्टयं गिण्हावितो। पच्छा भिक्खं न हिंडइ, ताहे आयरिया चिंतेंति–एस जइ भिक्खं न हिंडइ तो को जाणइ कयादि किंचि भवेज्ज ?, पच्छा एकल्लओ किं काहिति ?, अवि य–एसो निज्जरं पावेयव्वो, तो तहा कीरउ जह भिक्खं हिंडइ, एवं चेव आयवेयावच्चं, पच्छा परवेयावच्चंपि काहिति, ततोऽणेण सव्वे साहूणो अप्पसागारियं भणिया— अहं वच्चामि, तुम्हे एक्कल्लया समुदिसेज्जाह पुरतो खंतस्स, तेहिं पडिस्सुतं, ततो आयरिया भणंति–तुब्भे सम्मं वट्टेज्जह खंतस्स अहं गामं वच्चामित्ति, गता आयरिया, तेऽवि भिक्खं हिंडेऊण सव्वे एगल्लया समुद्दिसंति, सो चिंतेइ–मम एस दाहिति

---

१ स मुक्त्वा पुरतः कृतः दवरकेन बद्धः, तदा स लज्जन् तं वहति, पृष्ठतो मम स्नुषाद्याः पश्यन्ति, एवं तेनोपसर्ग उत्थितोऽध्यासितव्य इतिकृत्वा व्यूढम्, पश्चात् आगतस्तथैव, तदा आचार्या भणन्ति–किं वृद्ध ! इदं ?, स भणति–उपसर्ग उत्थितः, आचार्या भणन्ति–आनय शाटकं, तदा भणति–किमत्र शाटकेन ?, दृष्टं यद्दृष्टव्यं, चोलपट्ट एव भवतु, एवं तावत्स चोलपट्टकं ग्राहितः। पश्चात् भिक्षां न हिण्डते, तदा आचार्याश्चिन्तयन्ति–एष यदि भिक्षां न हिण्डते तदा को जानाति कदाचित् किञ्चित् भवेत् ?, पश्चादेकाकी किं करिष्यति ?, अपि च–एष निर्जरां प्रापयितव्यस्ततस्तथा क्रियतां यथा भिक्षां हिण्डते, एवमेवात्मवैयावृत्यं, पश्चात्परवैयावृत्यमपि करिष्यति, ततोऽनेन सर्वे साधवोऽल्पसागारिकं भणिताः–अहं व्रजामि यूयमेकाकिनः समुद्दिशेत पुरतः पितुः, तैः प्रतिश्रुतं, तत आचार्या भणन्ति–यूयं सम्यक् वृद्धस्य वर्त्तिताध्वे अहं ग्रामं व्रजामीति, गता आचार्याः, तेऽपि भिक्षां हिण्डित्वा सर्वे एकाकिनः समुद्दिशन्ति, स चिन्तयति–मह्यमेष दास्यति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

इमो दाहि, एक्कोवि तस्स न देइ, अण्णो दाहिति, एस वराओ किं लभइ?, अण्णो दाहिति, एवं तस्स न केणइ किंचिवि दिन्नं, ताहे आसुरुत्तो न किंचिवि आलवेइ, चिंतेइ–कलं ताव एउ पुत्तो मम, तो पेक्ख एए जं पावेमि, ताहे बीयदिवसे आगता, आयरिया भणंति–किह खन्ता! वट्टियं भे?, ताहे भणइ–पुत्त! जइ तुमं न होंतो तोऽहं एक्कंपि दिवसं न जीवंतो, एतेवि जे अण्णे मम पुत्ता नत्तुगा य तेऽवि न किंचि दिन्ति, ताहे ते आयरिएण तस्समक्खं अंबाडिया, तेविय अब्भुवगया, ताहे आयरिया भणंति–आणेह भायणाणि जाऽहं अप्पणा खन्तस्स पारणयं आणेमि, ताहे सो खंतो चिंतेइ–कह मम पुत्तो हिंडइ?, लोगप्पगासो न कयाइ हिंडियपुव्वो, भणइ–अहं चेव हिंडामि, ताहे सो अप्पणा खंतो निग्गतो, सो य पुण लद्धिसंपुण्णो चिरावि गिहत्थत्तणे, सो य अहिंडंतो न याणइ–कतो दारं वा अवदारं वा, ततो सो एगं घरं अवदारेण अतिगतो, तत्थ तद्दिवसं पगतं वत्तेलयं, तत्थ घरसामिणा भणितो–कतो अवदारेण पवइयओ अइयओ?,

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

॥३०६॥

---

१ अयं दास्यति, एकोऽपि तस्मै न ददाति, अन्यो दास्यति एष वराकः किं लभते?, अन्यो दास्यति, एवं तस्मै न केनचित्किञ्चिदपि दत्तं, तदा क्रुद्धो न किञ्चिदप्यलपति, चिन्तयति–कल्ये तावदायातु पुत्रो मम, तर्हि प्रेक्षध्वमेतान् यत्प्रापयामि, तदा द्वितीयदिवसे आगताः, आचार्या भणन्ति–कथं पितर्दृत्तं तव?, तदा भणति–पुत्र! यदि त्वं नाभविष्यस्तर्ह्यहमेकमपि दिवसं नाजीविष्यमेतेऽपि चेऽन्ये मम पुत्रा नप्तारश्च तेऽपि न किञ्चिद्दति, तदा ते आचार्येण तत्समक्षं तैर्भर्त्सिताः, तेऽप्यभ्युपगतवन्तः, तदा आचार्या भणन्ति–आनयत पात्राणि यावदहमात्मना पितुः पारणमानयामि, तदा स वृद्धश्चिन्तयति–कथं मम पुत्रो हिण्डेत?, लोकप्रकाशो न कदाचित् हिण्डितपूर्वः, भणति–अहमेव हिण्डे, तदा स आत्मना वृद्धो निर्गतः, स च पुनर्लब्धिसंपूर्णः चिरादपि गृहस्थत्वे, स चाहिण्डमानो न जानाति–कुतो द्वारं वाऽपद्वारं वा?, ततः स एकं गृहमपद्वारेणातिगतः, तत्र तद्दिवसे प्रकृतं वर्तते, तत्र गृहस्वामिना भणितः–कुतोऽपद्वारेण प्रव्रजित आयातः, *अन्नदिवसं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

खंतेणं भणितो–सिरीए आयंतीए कओ दारं वा अवदारं वा?, यतो अतीति ततो सुंदरा, गिहसामिणा भणियं–देह से भिक्खं, तत्थ लड्डुगा लद्धा बत्तीसं, सो ते घेत्तूण आगतो, आलोइयं अणेण, पच्छा आयरिया भणंति–तुज्झं बत्तीसं सीसा होहिंति परंपरेण आवलियाठावगा, ततो आयरिएहिं भणिता–जाहे तुब्भे किंचि राउलातो लहह विसेसं तं कस्स देह?, भणइ–बंभणाणं, एवं चेव अम्ह साहूणो पूयणिज्जा, एतेसिं चेव एस पढमलाभो दिज्जउ, सव्वे साहूण दिण्णा, ताहे पुणो अप्पणो अट्ठाए उत्तिण्णो, पच्छा अणेण परमन्नं घतमहुसंजुत्तं आणितं, पच्छा सयं समुद्दिट्ठो, एवं सो अप्पणा चेव पहिंडितो लद्धिसंपुण्णो बहूणं बालदुब्बलाणं आहारो जातो। तत्थ य गच्छे तिण्णि पूसमित्ता–एगो दूबलियापूसमित्तो, एगो घयपुस्समित्तो एगो वत्थपुस्समित्तो, जो दुबलिओ सो झरओ, घयपूसमित्तो घतं उप्पादेति, तस्सिमा लद्धी–दव्वओ ४ दव्वतो घतं उप्पादेयव्वं, खेत्तओ उज्जेणीए, कालतो जेट्ठासाढेसु मासेसु, भावतो एगा धिज्जाइणि गुव्विणी, तीसे भत्तुणा

१ वृद्धेन भणितः–श्रिया आयान्त्याः कुतो द्वारं वा अपद्वारं वा, यत आयाति ततः सुन्दरा, गृहस्वामिना भणितं–देहि अस्मै भिक्षां, तत्र मोदका लब्धा द्वात्रिंशत्, स तान् गृहीत्वाऽऽगतः, आलोचितमनेन, पश्चादाचार्या भणन्ति–युष्माकं द्वात्रिंशच्छिष्या भविष्यन्ति परम्परकेणावलिकास्थापकाः, तत आचार्यैर्भणिताः–यदा यूयं कञ्चिद् राजकुलात् लभध्वं विशेषं तं कस्मै दत्त?, भणति–ब्राह्मणेभ्यः, एवमेवास्माकं साधवः पूजनीयाः, एतेभ्य एवैष प्रथमलाभो दीयतां, सर्वे साधुभ्यो दत्ताः, तदा पुनरात्मनोऽर्थायोत्तीर्णः, पश्चादनेन परमान्नं घृतमधुसंयुक्तमानीतं, पश्चात्स्वयं समुद्दिष्टः, एवं स आत्मनैव प्रहिण्डितो लब्धिसंपूर्णो बहूनां बालदुर्बलानामाधारो जातः। तत्र च गच्छे त्रयः पुष्पमित्राः–एको दुर्बलिकापुष्पमित्र एको घृतपुष्पमित्र एको वस्त्रपुष्पमित्रः, यो दुर्बलिकः स स्मारकः, घृतपुष्पमित्रो घृतमुत्पादयति,तस्येयं लब्धिः–द्रव्यतो ४ द्रव्यतो घृतमुत्पादयितव्यं क्षेत्रत उज्जयिन्यां कालतो ज्येष्ठाषाढयोर्मासयोः, भावत एका धिग्जातीया गुर्वी, तस्या भर्त्रा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

थोवं थोवं पिंडंतेण छहिं मासेहिं वारओ घतस्स उप्पाइतो, वरं से वियाइयाए उवजुज्जिहितित्ति, तेण य जाइयं, अन्नं नत्थि, तंपि सा हट्ठतुट्ठा दिज्जा, परिमाणतो जत्तियं गच्छस्स उवजुज्जइ, सो य णिंतो चेव पुच्छइ–कस्स कित्तिएणं घएणं कज्जं ?, जत्तियं भणति तत्तियं आणेइ । वत्थपुस्समित्तस्स पुण एसेव लद्धी वत्थेसु उप्पाइयवएसु, दवतो वत्थं, खेत्ततो वइदिसे महुराए वा, कालतो वासासु सीतकाले वा, भावओ जहा एका कावि रंडा तीए दुक्खदुक्खेण छुहाए मरंतीए कत्तिऊण एक्का पोत्ती वुणाविया कल्लं नियंसेहामित्ति, एत्थंतरे सा पुस्समित्तेण जाइया हट्ठतुट्ठा दिज्जा, परिमाणओ सवस्स गच्छस्स उप्पाएति । जो दुबलियपुस्समित्तो तेण नवावि पुव्वा अहिज्जिया, सो ताणि दिवा य रत्तीं य झरति, एवं सो झरणाए दुब्बलो जातो, जइ सो न झरेज्ज ताहे तस्स सव्वं चेव पम्हुसइ, तस्स पुण दसपुरे चेव नियल्लगाणि, ताणि पुण रत्तवडोवासगाणि, आयरियाण पासं अल्लियंति, ततो ताणि भणंति–अम्ह भिक्खुणो झाणपरा, तुब्भं झाणं नत्थि,

१ स्तोकं स्तोकं पिण्डयता षड्भिर्मासैर्घटो घृतस्य उत्पादितः, वरं तस्याः प्रसूताया उपयुज्यते इति, तेन च याचितम्, अन्यन्नास्ति, तदपि सा हृष्टतुष्टा दद्यात्, परिमाणतो यावद्गच्छस्योपयुज्यते, स च निर्गच्छन्नेव पृच्छति–कस्य कियता घृतेन कार्यम् ?, यावद्भणति तावदानयति । वस्त्रपुष्पमित्रस्य पुनरेषैव लब्धिः वस्त्रेषूत्पादयितव्येषु, द्रव्यतो वस्त्रं क्षेत्रतो वैदेशे मथुरायां वा, कालतो वर्षासु शीतकाले वा, भावतो यथा एका काऽपि विधवा तया अतिदुःखेन क्षुधा म्रियमाणया कर्त्तयित्वा एकं वस्त्रं वायितं कल्ये परिधास्य इति, अत्रान्तरे सा पुष्पमित्रेण याचिता हृष्टतुष्टा दद्यात्, परिमाणतो यावद्गच्छस्य सर्वस्य उत्पादयति । यो दुर्बलिकापुष्पमित्रस्तेन नवापि पूर्वाणि अधीतानि, स तानि दिवा रात्रौ च स्मरति, एवं स स्मरणेन दुर्बलो जातः, यदि स न स्मरेत् तदा तस्य सर्वमेव विस्मरति, तस्य पुनर्दशपुरे एव निजकाः, ते पुना रक्तपटोपासकाः, आचार्याणां पार्श्वे आगच्छन्ति (पार्श्वमाश्रयन्ति) ततस्ते भणन्ति–अस्माकं भिक्षवो ध्यान-पराः, युष्माकं ध्यानं नास्ति,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आयरिया भणंति–अम्ह झाणं, एस तुब्भ जो निएल्लओ दुब्बलियपुस्समित्तो एस झाणेण चेव दुब्बलो, ताणि भणंति— एस गिहत्थत्तणे निद्धाहारेहिं बलिओ, इयाणिं नत्थि, तेण दुब्बलो, आयरिओ भणइ–एस नेहेण विणा न कयाइ जेमेइ, ताणि भणंति–कतो तुब्भं नेहो ?, आयरिया भणंति–घतपूसमित्तो आणेइ, ताणि न पत्तियंति, ताहे आयरिया भणंति– एस तुम्ह मूले किं आहारेत्ताइतो ?, ताणि भणंति–निद्धपेसलाणि आहारेत्ताइतो, तेसिं संबोहणाए घरं ताणं विसज्जिओ, एत्ताहे देह, तहेव दाउं पयत्ताणि, सोऽवि झरइ, तंपि नज्जइ छारे छुब्भइ, ताणि गाढयरं देंति, ततो निविण्णाणि, ताहे भणिओ–एत्ताहे मा झरउ, अंतपंतं च आहारेइ, ताहे सो पुणोऽवि पोराणसरीरो जातो, ताहे ताण उवगतं, धम्मो कहिओ, सावगाणि जायाणि । तत्थ य गच्छे इमे चत्तारि जणा पहाणा तंजहा–सो चेव दुब्बलियपूसमित्तो विंझो फग्गुर-क्खितो गोट्ठामाहिलोत्ति, जो विंझो सो अतीव मेहावी, सुत्तत्थतदुभयाणं गहणधारणासमत्थो, सो पुण सुत्तमंडलीए

१ आचार्या भणन्ति–अस्माकं ध्यानम्, एष युष्माकं यो निजको दुर्बलिकापुष्पमित्र एष ध्यानेनैव दुर्बलः, ते भणन्ति–एष गृहस्थत्वे स्निग्धाहारैर्बलिकः, इदानीं नास्ति, तेन दुर्बलः, आचार्या भणति–एष स्नेहेन विना न कदाचित् जेमति, ते भणन्ति–कुतो युष्माकं स्नेहः?, आचार्या भणन्ति–घृतपुष्पमित्र आनयति, ते न प्रतियन्ति, तदा आचार्या भणन्ति–एष युष्माकं मूले किमाहृतवान्?, ते भणन्ति–स्निग्धपेशलानि आहृतवान्, तेषां संबोधनाय गृहे तेषां विसृष्टः, अधुना दत्त, तथैव दातुं प्रवृत्ताः, सोऽपि स्मरति, तदपि ज्ञायते क्षारे क्षिप्यते (यथा), ते गाढतरं ददति, ततो निर्विण्णानि, तदा भणितः–अधुना मा स्मार्षीः, अन्त-प्रान्तं चाहारयति, तदा स पुनरपि पुराणशरीरो जातः, तदा तेषामुपगतं, धर्मः कथितः, श्रावका जाताः । तत्र च गच्छे इमे चत्वारो जनाः प्रधानास्तद्यथा– स एव दुर्बलिकापुष्पमित्रः विन्ध्यः फल्गुरक्षितः गोष्ठमाहिल इति, यो विन्ध्यः सोऽतीव मेधावी, सूत्रार्थतदुभयानां ग्रहणधारणासमर्थः, स पुनः सूत्रमण्डल्यां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

विसूरइ जाव परिवाडी आलावगस्स एइ ताव पलिभज्जइ, सो आयरिए भणइ–अहं सुत्तमंडलीए विसूरामि, जओ चिरेण आलावगो परिवाडीए एइ, तो मम वायणायरियं देह, ततो आयरिएहिं दुब्बलियपुस्समित्तो तस्स वायणायरिओ दिण्णो, ततो सो कइवि दिवसे वायणं दाऊण आयरियमुवट्ठितो भणइ–मम वायणं देंतस्स नासति, जं च सण्णायघरे नाणुप्पेहियं, अतो मम अज्झरंतस्स नवमं पुवं नासिहिति, ताहे आयरिया चिंतेंति–जइ ताव एयस्स परममेहाविस्स एवं झरंतस्स नासइ अन्नस्स चिरनट्ठं चेव–अतिसयकओवओगो मतिमेहाधारणाइपरिहीणे। नाऊण सेसपुरिसे खेत्तं कालाणुभावं च ॥ १ ॥ सोऽणुग्गहाणुओगे वीसुं कासी य सुयविभागेण। सुहगहणादिनिमित्तं णए य सुणिगूहियविभाए ॥ २ ॥ सविसयमसद्दहंता नयाण तंमत्तयं च गेण्हंता। मन्नंता य विरोहं अप्परिणामाइपरिणामा ॥ ३ ॥ गच्छिज्ज मा हु मिच्छं परिणामा य सुहमाऽइबहुभेया। होज्जाऽसत्ता घेत्तूं ण कालिए तो नयविभागो ॥ ४ ॥' यदुक्तम्—'अनुयोगस्ततः कृतश्चतुर्द्धे' ति, तत्रानुयोगचातुर्विध्यमुपदर्शयन्नाह मूलभाष्यकारः—

१ विषीदति यावत् परिपाट्यालापकस्यायाति तावत्प्रतिभज्यते, स आचार्यान् भणति–अहं सूत्रमण्डल्यां विषीदामि, यतश्चिरेणालापकः परिपाट्याऽऽयाति, तन्मह्यं वाचनाचार्यं दत्त, तत आचार्यैर्दुर्बलिकापुष्पमित्रस्तस्मै वाचनाचार्यो दत्तः, ततः स कतिचिदपि दिवसान् वाचनां दत्त्वाऽऽचार्यमुपस्थितो भणति–मम वाचनां ददतो नश्यति, यच्च सज्ञातीयगृहे नानुप्रेक्षितम्, अतो ममास्मरतो नवमं पूर्वं नङ्क्ष्यति, तदा आचार्याश्चिन्तयन्ति–यदि तावदेतस्य परममेधाविन एवं स्मरतो नश्यति अन्यस्य चिरनष्टमेव। कृतातिशयोपयोगो मतिमेधाधारणाभिः परिहीणान्। ज्ञात्वा शेषपुरुषान् क्षेत्रं कालानुभावं च ॥ १ ॥ सोऽनुग्रहाय अनुयोगान् पृथक् अकार्षीच्च श्रुतविभागेन। सुखग्रहणादिनिमित्तं नयांश्च सुनिगूहितविभागान् ॥ २ ॥ स्वविषयमश्रद्दधतो नयानां तन्मात्रं च गृह्णन्तः। मन्यमानाश्च विरोधमपरिणामा अतिपरिणामाः (च)॥ ३ ॥ गमत मा मिथ्यात्वं परिणामाश्च सूक्ष्मा अतिबहुभेदाः। भवेयुरशक्ता ग्रहीतुं न कालिके ततो नयविभागः ॥४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

कालियसुयं च इसिभासियाइं तइओ य सूरपण्णत्ती।सव्वो य दिट्ठिवाओ चउत्थओ होइ अणुओगो १२४(मू.भा)

व्याख्या—कालिकश्रुतं चैकादशाङ्गरूपं, तथा ऋषिभाषितानि–उत्तराध्ययनादीनि, 'तृतीयश्च' कालानुयोगः, स च सूर्यप्रज्ञप्तिरिति, उपलक्षणात् चन्द्रप्रज्ञप्त्यादि, कालिकश्रुतं चरणकरणानुयोगः, ऋषिभाषितानि धर्मकथानुयोग इति गम्यते, सर्वश्च दृष्टिवादश्चतुर्थो भवत्यनुयोगः, द्रव्यानुयोग इति हृदयमिति गाथार्थः ॥ तत्र ऋषिभाषितानि धर्मकथानुयोग इत्युक्तं, ततश्च महाकल्पश्रुतादीनामपि ऋषिभाषितत्वाद् दृष्टिवादादुद्धृत्य तेषां प्रतिपादितत्वाद् धर्मकथानुयोगत्वप्रसङ्ग इत्यतस्तदपोद्धारचिकीर्षयाऽऽह—

जं च महाकप्पसुयं जाणि य सेसाणि छेयसुत्ताणि । चरणकरणाणुओगोत्ति कालियत्थे उवगयाइं ॥ ७७७ ॥

व्याख्या—यच्च महाकल्पश्रुतं यानि च शेषाणि छेदसूत्राणि कल्पादीनि चरणकरणानुयोग इतिकृत्वा कालिकार्थे उपगतानीति गाथार्थः ॥

इयाणिं जहा देविंदवंदिया अज्जरक्खिया तहा भण्णइ–ते विहरंता महुरं गया, तत्थ भूतगुहाए वाणमंतरघरे ठिता । इतो य सक्को देवराया महाविदेहे सीमंधरसामिं पुच्छइ निगोदजीवे, जाहे निओयजीवा भगवया वागरिया ताहे

१ इदानीं यथा देवेन्द्रवन्दिता आर्यरक्षितास्तथा भण्यते–ते विहरन्तो मथुरां गताः, तत्र भूतगुहायां व्यन्तरगृहे स्थिताः । इतश्च शक्रो देवराजो महाविदेहेषु सीमन्धरस्वामिनं पृच्छति निगोदजीवान्, यदा निगोदजीवा भगवता व्याकृतास्तदा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

अनुयोगस्य चतुर् भेदाः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

भणइ–अत्थि पुण भारहे वासे कोइ जो निओए वागरेज्जा ?, भगवता भणितं–अत्थि अज्जरक्खितो, ततो माहणरूवेण सो आगतो, तं च थेररूवं करेऊण पव्वइएसु निग्गएसु अतिगतो, ताहे सो वंदित्ता पुच्छइ–भगवं ! मज्झ सरीरे महल्लवाही इमो, अहं च भत्तं पच्चक्खाएज्ज ततो जाणह मम केत्तियं आऊयं होज्जा ?, जविएहिं किर भणिया आऊसेढी, तत्थ उवउत्ता आयरिया जाव पेच्छंति आउं वरिससतमहियं दो तिन्नि वा, ताहे चिंतेइ–भारहो एस मणुस्सो न भवइ, विज्जाहरो वा वाणमंतरो वा, जाव दो सागरोवमाइं ठिती, ताहे भमुहाओ हत्थेहिं उक्खिवित्ता भणइ–सक्को भवाणं, ताहे सव्वं साहइ–जहा महाविदेहे मए सीमंधरसामी पुच्छितो, इहं चम्हि आगतो, तं इच्छामि सोउं निओयजीवे, ताहे से कहिया, ताहे तुट्ठो आपुच्छइ—वच्चामि ?, आयरिया भणंति–अच्छह मुहुत्तं, जाव संजता एन्ति, एत्ताहे दुक्कहा संजाता, थिरा भवंति जे चला, जहा एत्ताहेऽवि देविंदा एन्तित्ति, ततो सो भणति–जइ ते मम पेच्छंति

---

१ भणति–अस्ति पुनर्भारते वर्षे कश्चित् यो निगोदान् व्याकुर्यात् ?, भगवता भणितम्–अस्ति आर्यरक्षितः, ततो ब्राह्मणरूपेण स आगतः, तच्च स्थविररूपं कृत्वा प्रव्रजितेषु निर्गतेषु अतिगतः, तदा स वन्दित्वा पृच्छति—भगवन् ! मम शरीरे महान् व्याधिरयम्, अहं च भक्तं प्रत्याख्यायां ततो ज्ञापयत मम कियदायुरस्ति ?, यविकेषु किल भणिता आयुश्रेणिः, तत्रोपयुक्ता आचार्या यावत्पश्यन्ति आयुर्वर्षशतमधिकं द्वे त्रीणि वा, तदा चिन्तयति–भारत एष मनुष्यो न भवति, विद्याधरो वा व्यन्तरो वा, यावत् द्वे सागरोपमे स्थितिः, तदा भ्रुवौ हस्ताभ्यामुत्क्षिप्य भणति–शक्रो भवान्, तदा सर्वं कथयति–यथा महाविदेहेषु मया सीमन्धरस्वामी पृष्टः, इह चास्म्यागतः, तदिच्छामि श्रोतुं निगोदजीवान्, तदा तस्मै कथिताः, तदा तुष्ट आपृच्छति–व्रजामि ?, आचार्या भणन्ति–तिष्ठत मुहूर्त्तं, यावत्संयता आयान्ति, अधुना दुष्कथा संजाता, स्थिरा भवन्ति ये चलाः, यथाऽधुनाऽपि देवेन्द्रा आयान्तीति, ततः स भणति–यदि ते मां पश्यन्ति.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

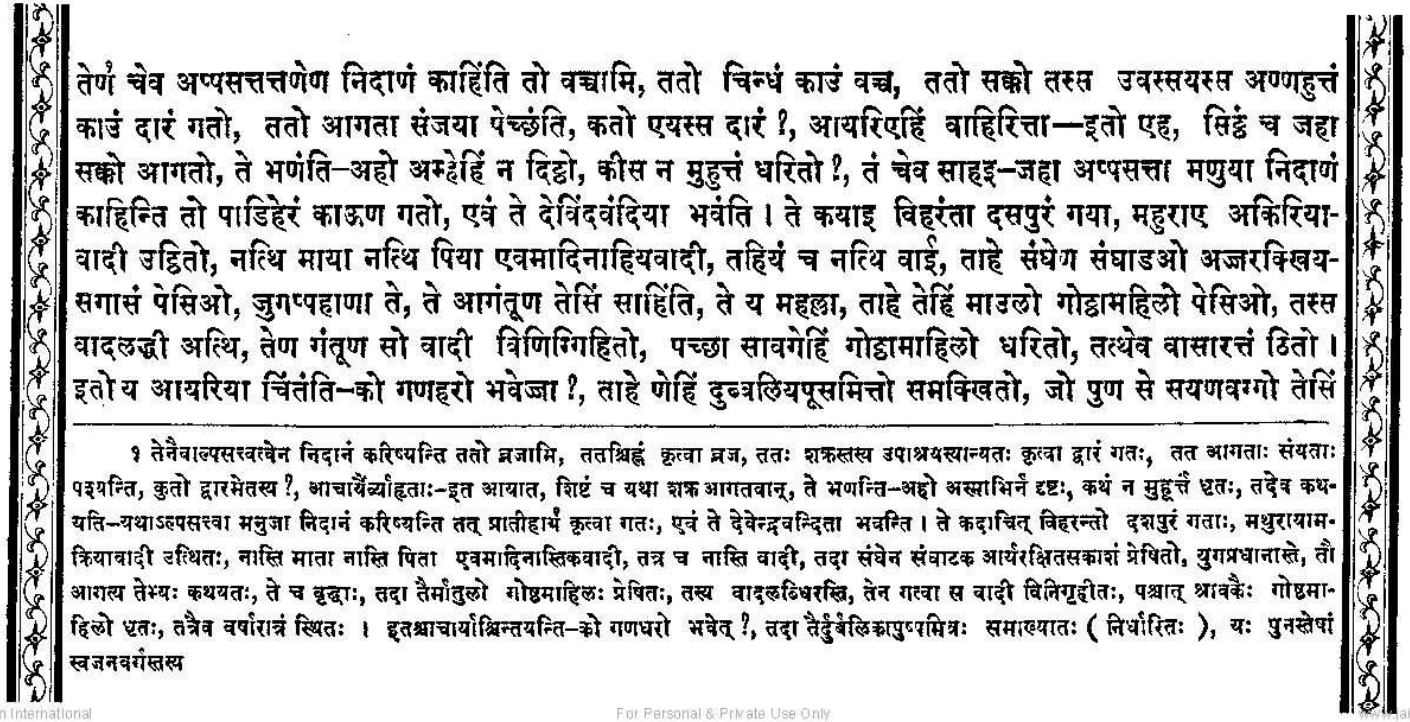

तेणं चेव अप्पसत्तत्तणेण निदाणं काहिंति तो वच्चामि, ततो चिन्धं काउं वच्च, ततो सक्को तस्स उवस्सयस्स अण्णहुत्तं काउं दारं गतो, ततो आगता संजया पेच्छंति, कतो एयस्स दारं ?, आयरिएहिं वाहिरित्ता—इतो एह, सिट्ठं च जहा सक्को आगतो, ते भणंति–अहो अम्हेहिं न दिट्ठो, कीस न मुहुत्तं धरितो ?, तं चेव साहइ–जहा अप्पसत्ता मणुया निदाणं काहिन्ति तो पाडिहेरं काऊण गतो, एवं ते देविंदवंदिया भवंति । ते कयाइ विहरंता दसपुरं गया, महुराए अकिरियावादी उट्ठितो, नत्थि माया नत्थि पिया एवमादिनाहियवादी, तहियं च नत्थि वाई, ताहे संघेण संघाडओ अज्जरक्खियसगासं पेसिओ, जुगप्पहाणा ते, ते आगंतूण तेसिं साहिंति, ते य महल्ला, ताहे तेहिं माउलो गोट्ठामहिलो पेसिओ, तस्स वादलद्धी अत्थि, तेण गंतूण सो वादी विणिग्गिहितो, पच्छा सावगेहिं गोट्ठामाहिलो धरितो, तत्थेव वासारत्तं ठितो । इतो य आयरिया चिंतंति–को गणहरो भवेज्जा ?, ताहे णेहिं दुब्बलियपूसमित्तो समक्खितो, जो पुण से सयणवग्गो तेसिं

१ तेनैवाल्पसत्त्वत्वेन निदानं करिष्यन्ति ततो व्रजामि, ततश्चिह्नं कृत्वा व्रज, ततः शक्रस्तस्य उपाश्रयस्यान्यतः कृत्वा द्वारं गतः, तत आगताः संयताः पश्यन्ति, कुतो द्वारमेतस्य ?, आचार्यैर्व्याहृताः–इत आयात, शिष्टं च यथा शक्र आगतवान्, ते भणन्ति–अहो अस्माभिर्न दृष्टः, कथं न मुहूर्त्तं धृतः, तदेव कथयति–यथाऽल्पसत्त्वा मनुजा निदानं करिष्यन्ति तत् प्रातीहार्यं कृत्वा गतः, एवं ते देवेन्द्रवन्दिता भवन्ति । ते कदाचित् विहरन्तो दशपुरं गताः, मथुरायामक्रियावादी उत्थितः, नास्ति माता नास्ति पिता एवमादिनास्तिकवादी, तत्र च नास्ति वादी, तदा संघेन संघाटक आर्यरक्षितसकाशं प्रेषितो, युगप्रधानास्ते, तौ आगत्य तेभ्यः कथयतः, ते च वृद्धाः, तदा तैर्मातुलो गोष्ठमाहिलः प्रेषितः, तस्य वादलब्धिरस्ति, तेन गत्वा स वादी विनिगृहीतः, पश्चात् श्रावकैः गोष्ठमाहिलो धृतः, तत्रैव वर्षारात्रं स्थितः । इतश्चार्याश्चिन्तयन्ति–को गणधरो भवेत् ?, तदा तैर्दुर्बलिकापुष्पमित्रः समाख्यातः (निर्धारितः), यः पुनस्तेषां स्वजनवर्गस्तस्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आर्यरक्षितस्य कथा मध्ये गोष्ठा माहिल, फ़ल्गुरक्षित एवं दुर्बलिका पुष्पमित्रस्य कथानकं

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

गोट्ठामाहिलो फग्गुरक्खितो वाऽभिमतो, ततो आयरिया सवे सद्दावित्ता दिट्ठंतं करिंति–जहा तिण्णि कुडगा–निप्पावकुडो तेल्लकुडो घयकुडोत्ति, ते तिन्निवि हेट्ठाहुत्ता कता निप्फावा सवेऽवि णिंति, तेल्लमवि नीति, तत्थ पुण अवयवा लग्गंति, घतकुडे बहुं चेव लग्गइ, एवमेव अज्जो! अहं दुब्बलियपूसमित्तं प्रति सुत्तत्थतदुभएसु निप्फावकुडसमाणो जातो, फग्गुरक्खितं प्रति तेल्लकुडसमाणो, गोट्ठामाहिलं प्रति घतकुडसमाणो, अतो एस सुत्तेण य अत्थेण य उवगतो दुब्बलियपूसमित्तो तुब्भ आयरिओ भवउ, तेहिं पडिच्छितो, इयरोवि भणिओ–जहाऽहं वट्टिओ फग्गुरक्खियस्स गोट्ठामाहिलस्स य तहा तुम्हेहिं वट्टियवं, ताणिवि भणियाणि–जहा तुब्भे मम वट्टियाणि तहा एयस्स वट्टेज्जह, अविय–अहं कए वा अकए वा न रूसामि, एस न खमहिति, तो सुतरामेव एयस्स वट्टेज्जाह, एवं दोवि वग्गे अप्पाहेत्ता भत्तं पच्चक्खाइउं देवलोगं गता। गोट्ठामाहिलेणवि सुतं जहा-आयरिया कालगता, ताहे आगतो पुच्छइ–को गणहरो ठविओ?, कुडगदिट्ठंतो य सुतो, तओ सो वीसुं पडिस्सए ठाइऊणागतो

१ गोष्ठमाहिलः फल्गुरक्षितो वाऽभिमतः, तत आचार्याः सर्वान् शब्दयित्वा दृष्टान्तं कुर्वन्ति–यथा त्रयः कुटाः–निष्पावकुटस्तैलकुटो घृतकुट इति, ते त्रयोऽपि अधोमुखीकृता निष्पावाः सर्वेऽपि निर्गच्छन्ति, तैलमपि निर्गच्छति, तत्र पुनरवयवा लगन्ति, घृतकुटे बह्वेव लगति, एवमेवार्याः! अहं दुर्बलिकापुष्पमित्रं प्रति सूत्रार्थतदुभयेषु निष्पावकुटसमानो जातः, फल्गुरक्षितं प्रति तैलकुटसमानः, गोष्ठमाहिलं प्रति घृतकुटसमानः, अत एष सूत्रेण चार्थेन चोपगतो दुर्बलिकापुष्पमित्रो युष्माकमाचार्यो भवतु, तैः प्रतीप्सितः, इतरोऽपि भणितः–यथाऽहं वृत्तः फल्गुरक्षिते गोष्ठमाहिले च तथा त्वयाऽपि वर्त्तितव्यं, तेऽपि भणिताः–यथा यूयं मयि वृत्तास्तथैतस्मिन् वर्त्तेध्वम्, अपिच–अहं कृते वा अकृते वा नास्यमेष न क्षमिष्यते, ततः सुतरामेवैतस्मिन् वर्त्तेध्वम्, एवं द्वावपि वर्गौ संदिश्य भक्तं प्रत्याख्याय देवलोकं गताः। गोष्ठमाहिलेनापि श्रुतं-यथा आचार्याः कालगताः, तदा आगतः पृच्छति–को गणधरः स्थापितः?, कुटदृष्टान्तश्च श्रुतः, ततः स पृथग् प्रतिश्रये स्थित्वा आगतः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

तेसिं सगासं, ताहे तेहिं सव्वेहिं अब्भुट्ठितो भणिओ य–इह चेव ठाहि, ताहे नेच्छइ, ताहे सो बाहिंठितो अण्णे वुग्गाहेइ, ते न सक्कंति वुग्गाहेउं। इतो य आयरिया अत्थपोरुसिं करेंति, सो न सुणइ, भणइ य–तुब्भेऽत्थ निप्पावयकुडगा, ताहे तेसु उट्ठिएसु विंझो अणुभासइ तं सुणेइ, अट्ठमे कम्मप्पवायपुव्वे कम्मं वण्णिज्जइ, जहा कम्मं बज्झइ, जीवस्स य कम्मस्स य कहं बंधो?, एत्थ विचारे सो अभिनिवेसेण अन्नहा मन्नंतो परूविंतो य निण्हओ जाओत्ति ॥ अनेन प्रस्तावेन क एते निह्नवा इत्याशङ्क्याऽपनोदाय तान् प्रतिपिपादयिषुराह—

बहुरय पएस अव्वत्तसमुच्छादुगतिगअबद्धिया चेव। सत्तेए णिण्हगा खलु तित्थंमि उ वद्धमाणस्स॥७७८॥

व्याख्या—'बहुरय'त्ति एकसमयेन क्रियाध्यासितरूपेण वस्तुनोऽनुत्पत्तेः प्रभूतसमयैश्चोत्पत्तेर्बहुषु समयेषु रताः–सक्ताः बहुरताः, दीर्घकालद्रव्यप्रसूतिप्ररूपिण इत्यर्थः १। 'पदेस' त्ति पूर्वपदलोपात् जीवप्रदेशाः प्रदेशाः, यथा महावीरो वीर इति, जीवः प्रदेशो येषां ते जीवप्रदेशाः निह्नवा, चरमप्रदेशजीवप्ररूपिण इति हृदयम् २। 'अवत्त' त्ति उत्तरपदलोपादव्यक्तमता अव्यक्ताः, यथा भीमसेनो भीम इति, व्यक्तं–स्फुटं, न व्यक्तमव्यक्तम्–अस्फुटं मतं येषां तेऽव्यक्तमताः, संयताद्यवगमे सन्दिग्धबुद्धय इति भावना ३। 'समुच्छेद' त्ति प्रसूत्यनन्तरं सामस्त्येन प्रकर्षच्छेदः समुच्छेदः–विनाशः, समुच्छे-

१ तेषां सकाशं, तदा नतैः सर्वैरभ्युत्थितो भणितश्च–इहैव तिष्ठ, तदा नेच्छति, तदा स बहिःस्थितोऽन्यान् व्युद्ग्राहयति, तान् न शक्नोति व्युद्ग्राहयितुम्। इतश्चाचार्या अर्थपौरुषीं कुर्वन्ति, स न शृणोति, भणति च–यूयमत्र निष्पावकुटसमानाः, तदा तेषूत्थितेषु विन्ध्योऽनुभाषते तत् शृणोति, अष्टमे कर्मप्रवादपूर्वे कर्म वर्ण्यते, यथा कर्म बध्यते, जीवस्य च कर्मणश्च कथं बन्धः?, अत्र विचारे सोऽभिनिवेशेनान्यथा मन्यमानः प्ररूपयंश्च निह्नवो जातः इति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निह्नवाः, तेषाम् सप्त-मताः, तेषाम् नामानि इत्यादिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

दमधीयते तद्वेदिनो वा 'तदधीते तद्वेत्ती' (पा० ४–२–५९) त्यण् सामुच्छेदाः, क्षणक्षयिभावप्ररूपका इति भावार्थः ४ । 'दुग'त्ति उत्तरपदलोपादेकसमये द्वे क्रिये समुदिते द्विक्रियं तदधीयते तद्वेदिनो वा द्वैक्रियाः, कालाभेदेन क्रियाद्वयानुभवप्ररूपिण इत्यर्थः ५ । 'तिग' त्ति त्रैराशिका जीवाजीवनोजीवभेदास्त्रयो राशयः समाहृताः त्रिराशि तत्प्रयोजनं येषां ते त्रैराशिकाः, राशित्रयख्यापका इति भावना ६ । 'अबद्धिगा चेव' त्ति स्पृष्टं जीवेन कर्म न स्कन्धवद् बद्धमबद्धम्, अबद्धमेषामस्ति विदन्ति वेत्यबद्धिकाः, स्पृष्टकर्मविपाकप्ररूपका इति हृदयम् ७ । 'सत्तेते निण्हया खलु तित्थंमि उ वद्धमाणस्स' त्ति सप्तैते निह्नवाः खलु, निह्नव इति कोऽर्थः ?–स्वप्रपञ्चतस्तीर्थकरभाषितं निह्नुतेऽर्थं पचाद्यचि (नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः पा० ३–१–१३४) ति निह्नवो—मिथ्यादृष्टिः, उक्तं च–"सूत्रोक्तस्यैकस्याप्यरोचनादक्षरस्य भवति नरः । मिथ्यादृष्टिः सूत्रं हि नः प्रमाणं जिनाभिहितम् ॥ १ ॥" खल्विति विशेषणे, किं विशिनष्टि ?–अन्ये तु द्रव्यलिङ्गतोऽपि भिन्ना बोटिकाख्या इति, तीर्थे वर्द्धमानस्य, पाठान्तरं वा—'एतेसिं निग्गमणं वोच्छामि अहाणुपुवीए' त्ति गाथार्थः ॥ साम्प्रतं येभ्यः समुत्पन्नास्तान् प्रतिपादयन्नाह—

बहुरय जमालिपभवा जीवपएसा य तीसगुत्ताओ । अव्वत्ताऽऽसाढाओ सामुच्छेयाऽऽसमित्ताओ ॥७७९॥

व्याख्या—बहुरताः जमालिप्रभवाः, जमालेराचार्यात् प्रभवो येषां ते तथाविधाः, जीवप्रदेशाश्च तिष्यगुप्तादुत्पन्नाः, अव्यक्ता आषाढात्, सामुच्छेदाः अश्वमित्रादिति गाथार्थः ॥

गंगाओ दोकिरिया छलुगा तेरासियाण उप्पत्ती । थेरा य गोट्ठमाहिल पुट्ठमबद्धं परूविंति ॥ ७८० ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

व्याख्या—गङ्गात् द्वैक्रियाः, षडुलूकात् त्रैराशिकानामुत्पत्तिः, स्थविराश्च गोष्ठामाहिलाः स्पृष्टमबद्धं प्ररूपयन्ति, कर्मेति गम्यते, 'पुट्ठमबद्धं परूविंसु' वा पाठान्तरं, ततश्चाबद्धिका गोष्ठामाहिलात् सञ्जाता इति गाथार्थः ॥ साम्प्रतं येषु पुरेषूत्पन्नास्त एते निह्नवास्तानि प्रतिपादयन्नाह—

सावत्थी उसभपुरं सेयविया मिहिल उल्लगातीरं । पुरिमंतरंजि दसपुर रहवीरपुरं च नगराइं ॥ ७८१ ॥

व्याख्या—श्रावस्ती ऋषभपुरं श्वेतविका मिथिला, उल्लुकातीरं पुरमन्तरञ्जि दशपुरं रथवीरपुरं च नगराणि, निह्नवानां यथायोगं प्रभवस्थानानि, वक्ष्यमाणभिन्नद्रव्यलिङ्गमिथ्यादृष्टिबोटिकप्रभवस्थानरथवीरपुरोपन्यासो लाघवार्थ इति गाथार्थः ॥ भगवतः समुपजातकेवलस्य परिनिर्वृतस्य च कः कियता कालेन निह्नवः समुत्पन्न इति प्रतिपादयन्नाह—

चोद्दससोलस वासा चोद्दसवीसुत्तरा य दोण्णि सया । अट्ठावीसा य दुवे पंचेव सया उ चोयाला ॥ ७८२ ॥

व्याख्या—चतुर्दशषोडशवर्षाणि तथा 'चोद्दसवीसुत्तरा य दोन्नि सय' त्ति चतुर्दशाधिके द्वे शते विंशत्युत्तरे च द्वे शते, वर्षाणामिति गम्यते, तथाऽष्टाविंशत्यधिके च द्वे शते, तथा पञ्चैव शतानि चतुश्चत्वारिंशदधिकानि, इति गाथार्थः ॥ अवयवार्थं तु भाष्यकार एव प्रतिपादयिष्यति ॥

पंच सया चुलसीया छच्चेव सया णवोत्तरा होंति । णाणुप्पत्तीय दुवे उप्पण्णा णिव्वुए सेसा ॥ ७८३ ॥

व्याख्या—पञ्च शतानि चतुरशीत्यधिकानि षट् चैव शतानि नवोत्तराणि भवन्ति । ज्ञानोत्पत्तेरारभ्य चतुर्दशषोडशवर्षाणि यावदतिक्रान्तानि तावदन्तरे द्वावाद्यावुत्पन्नौ, उत्पन्ना निर्वृत्ते भगवति, यथोक्तकाले चातिक्रान्ते शेषाः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

स्वल्वव्यक्तादय इति, बोटिकप्रभवकालाभिधानं लाघवार्थमेवेति गाथार्थः ॥ अधुना सूचितमेवार्थं मूलभाष्यकृद् यथाक्रमं स्पष्टयन्नाह—

चोद्दस वासाणि तया जिणेण उप्पाडियस्स णाणस्स। तो बहुरयाण दिट्ठी सावत्थीए समुप्पण्णा॥१२५॥(मू०भा०)

व्याख्या—चतुर्दशवर्षाणि तदा 'जिनेन' वीरेणोत्पादितस्य ज्ञानस्य ततोऽन्तरे बहुरतानां दृष्टिः श्रावस्त्यां नगर्यां समुत्पन्नेति गाथार्थः ॥ यथोत्पन्ना तथोपदर्शयन् सङ्ग्रहगाथामाह—

जेट्ठा सुदंसण जमालिऽणोज्ज सावत्थितेंदुगुज्जाणे। पंचसया य सहस्सं ढंकेण जमालि मोत्तूणं॥१२६॥(मू०भा०)

व्याख्या—कुण्डपुरं नगरं, तत्थ जमाली सामिस्स भाइणिज्जो, सो सामिस्स मूले पंचसयपरिवारो पव्वइओ, तस्स भज्जा सामिणो दुहिता, तीसे नामाणि जेट्ठत्ति वा सुदंसणत्ति वा अणोज्जत्ति वा, सावि सहस्सपरिवारा अणुपव्वइया, जहा पण्णत्तीए तहा भाणियव्वं, एक्कारसंगा अहिज्जिया, सामिं आपुच्छिऊण पंचसयपरिवारो जमाली सावत्थीं गतो, तत्थ तेंदुगे उज्जाणे कोट्ठए चेइए समोसढो, तत्थ से अंतपंतेहिं रोगो उप्पन्नो, न तरइ निसन्नो अच्छिउं, तो समणे भणियाइओ–सेज्जासंथारयं करेह, ते काउमारद्धा ॥ अत्रान्तरे जमालिर्दाहज्वराभिभूतस्तान् विनेयान् पप्रच्छ–संस्तृतं न

१ कुण्डपुरं नगरं, तत्र जमालिः स्वामिनो भागिनेयः, स स्वामिनो मूले पञ्चशतपरीवारः प्रव्रजितः, तस्य भार्या स्वामिनो दुहिता, तस्या नामानि–ज्येष्ठेति वा सुदर्शनेति वा अनवद्येति वा, साऽपि सहस्रपरिवारा अनुप्रव्रजिता, यथा प्रज्ञप्तौ तथा भणितव्यम्, एकादशाङ्गान्यधीतानि, स्वामिनमापृच्छ्य पञ्चशतपरीवारो जमालिः श्रावस्तीं गतः, तत्र तिन्दुक उद्याने कोष्ठके चैत्ये समवसृतः, तत्र तस्यान्तप्रान्तै रोग उत्पन्नः, न शक्नोति निषण्णः स्थातुं, ततः श्रमणान् भणितवान्–शय्यासंस्तारकं कुरुत, ते कर्तुमारब्धाः.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जमाली-प्रथम निह्नवस्य कथानकं

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

वेति ?, ते उक्तवन्तः—संस्तृतमिति, स चोत्थितो जिगमिषुरर्धसंस्तृतं दृष्ट्वा क्रुद्धः, सिद्धान्तवचनं स्मृत्वा 'क्रियमाणं कृत'-मित्यादि कर्मोदयतो वितथमिति चिन्तयामास, 'क्रियमाणं कृत' मित्येतद् भगवद्वचनं वितथं, प्रत्यक्षविरुद्धत्वात्, अश्रावणशब्दवचनवत्, प्रत्यक्षविरुद्धता चास्यार्धसंस्तृतसंस्तारासंस्तृतदर्शनात्, ततश्च क्रियमाणत्वेन प्रत्यक्षसिद्धेन कृतत्वधर्मोऽपनीयत इति भावना, ततो यद् भगवानाह तदनृतं, किन्तु कृतमेव कृतमिति, एवं पर्यालोच्यैवमेव प्ररूपणां चकारेति, स चेत्थं प्ररूपयन् स्वगच्छस्थविरैरिदमुक्तः—हे आचार्य ! 'क्रियमाणं कृत' मित्यादि भगवद्वचनमवितथमेव, नाध्यक्षविरुद्धं, यदि क्रियमाणं क्रियाविष्टं कृतं नेष्यते ततः कथं प्राक् क्रियाऽनारम्भसमय इव पश्चादपि क्रियाऽभावे तदिष्यत इति, सदा प्रसङ्गात्, क्रियाऽभावस्याविशिष्टत्वात्, तथा यच्चोक्तं भवता 'अर्द्धसंस्तृतसंस्तारासंस्तृतदर्शनात्' तदप्ययुक्तं, यतो यद् यदा यत्राकाशदेशे वस्त्रमास्तीर्यते तत्तदा तत्रास्तीर्णमेव, एवं पाश्चात्यवस्त्रास्तरणसमये खल्वसावास्तीर्ण एव, विशिष्टसमयापेक्षीणि च भगवद्वचनानि, अतोऽदोष इति ॥ एवं सो जाहे न पडिवज्जइ ताहे केइ असद्दहंता तस्स वयणं गया सामिसगासं, अण्णे तेणेव समं ठिया, पियदंसणावि, तत्थेव ढंको नाम कुंभगारो समणोवासओ, तत्थ ठिया, सा वंदितुं आगया, तंपि तहेव पण्णवेइ, सा य तस्साणुराएण मिच्छत्तं विपडिवण्णा, अज्जाणं परिकहेइ, तं च ढंकं भणति, सो जाणति—एसाऽवि विप्पडिवण्णा नाहव्वएणं, ताहे सो भणति—सम्मं अहं न याणामि एयं विसेसतरं, अण्णया

१ एवं स यदा न प्रतिपद्यते तदा केचिदश्रद्दधतस्तस्य वचनं स्वामिसकाशं गताः, अन्ये तेनैव समं स्थिताः, प्रियदर्शनाऽपि, तत्रैव ढङ्को नाम कुम्भकारः श्रमणोपासकः, तत्र स्थिता, सा वन्दितुमागता, तामपि तथैव प्रज्ञापयति, सा च तस्यानुरागेण मिथ्यात्वं विप्रतिपन्ना, आर्याभ्यः परिकथयति, तं च ढङ्कं भणति, स जानाति-एषाऽपि विप्रतिपन्ना नाथवचनेन, तदा स भणति-सम्यगहं न जानामि एतत् विशेषतरम्, अन्यदा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

कयाई सज्झायपोरुसिं करेइ, ततो ढंकेण भायणाणि उव्वत्तेंतेण ततोहुत्तो इंगालो छूढो, ततो तीसे संघाडीए एगदेसो दड्ढो, सा भणइ–सावय ! किं ते संघाडी दड्ढा ?, सो भणइ–तुब्भे चेव पण्णवेह जहा–दज्झमाणे अडड्ढे, केण तुब्भ संघाडी दड्ढा ?, ततो सा संबुद्धा भणइ–इच्छामि संमं पडिचोयणा, ताहे सा गंतूण जमालिं पण्णवेइ बहुविहं, सो जाहे न पडिवज्जइ ताहे सा सेससाहुणो य सामिं चेव उवसंपण्णाइं, इतरोऽवि एगागी अणालोइयपडिक्कंतो कालगतो ॥ एष सङ्ग्रहार्थः, अक्षराणि त्वेवं नीयन्ते, जेट्ठा सुदंसणा अणोज्जति जमालिघरणीए नामाइं, सावत्थीए नयरीए तेंदुगुज्जाणे जमालिस्स एसा दिट्ठी उप्पण्णा, तत्थ पंचसया य साहूणं सहस्सं च संजईणं, एतेसिं जे सतं ण पडिबुद्धं तं ढंकेण पडिबोहियंति वक्कसेसं, जमालिं मोत्तूणंति ॥ अन्ये त्वेवं व्याचक्षते–जेट्ठा महत्तरिगा सुदंसणाऽभिहाणा भगवतो भगिणी, तीसे जमाली पुत्तो, तस्स अण्णोज्जा नाम भगवतो दुहिता भारिया ॥ शेषं पूर्ववत् । गतः प्रथमो निह्नवः, साम्प्रतं द्वितीयं प्रतिपादयन्नाह—

१ कदाचित्स्वाध्यायपौरुषीं करोति, ततो ढङ्केन भाजनान्युद्वर्त्तयता ततोऽङ्गारः क्षिप्तः, ततस्तस्याः संघाट्या एकदेशो दग्धः, सा भणति–श्रावक! किं त्वया संघाटी दग्धा ?, स भणति–यूयमेव प्रज्ञापयत यथा–दह्यमानमदग्धं, केन युष्माकं संघाटी दग्धा ?, ततः सा संबुद्धा भणति–इच्छामि सम्यक् प्रतिचोदनां, तदा सा गत्वा जमालिं प्रज्ञापयति बहुविधं, स यदा न प्रतिपद्यते तदा सा शेषसाधवश्च स्वामिनमेवोपसंपन्नाः, इतरोऽपि एकाकिनालोचितप्रतिक्रान्तः कालगतः। २ ज्येष्ठा सुदर्शना अनवद्येति जमालिगृहिण्या नामानि, श्रावस्त्यां नगर्यां तिन्दुकोद्याने जमालेरेषा दृष्टिरुत्पन्ना, तत्र पञ्चशतानि च साधूनां सहस्रं च संयतीनां, एतेषां ये स्वयं न प्रतिबुद्धास्ते ढङ्केन प्रतिबोधिता इति वाक्यशेषः, जमालिं मुक्त्वेति । अन्ये त्वेवं व्याचक्षते–ज्येष्ठा–महत्तरा सुदर्शनाभिधाना भगवतो भगिनी, तस्या जमालिः पुत्रः, तस्य अनवद्या नाम भगवतो दुहिता भार्या ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

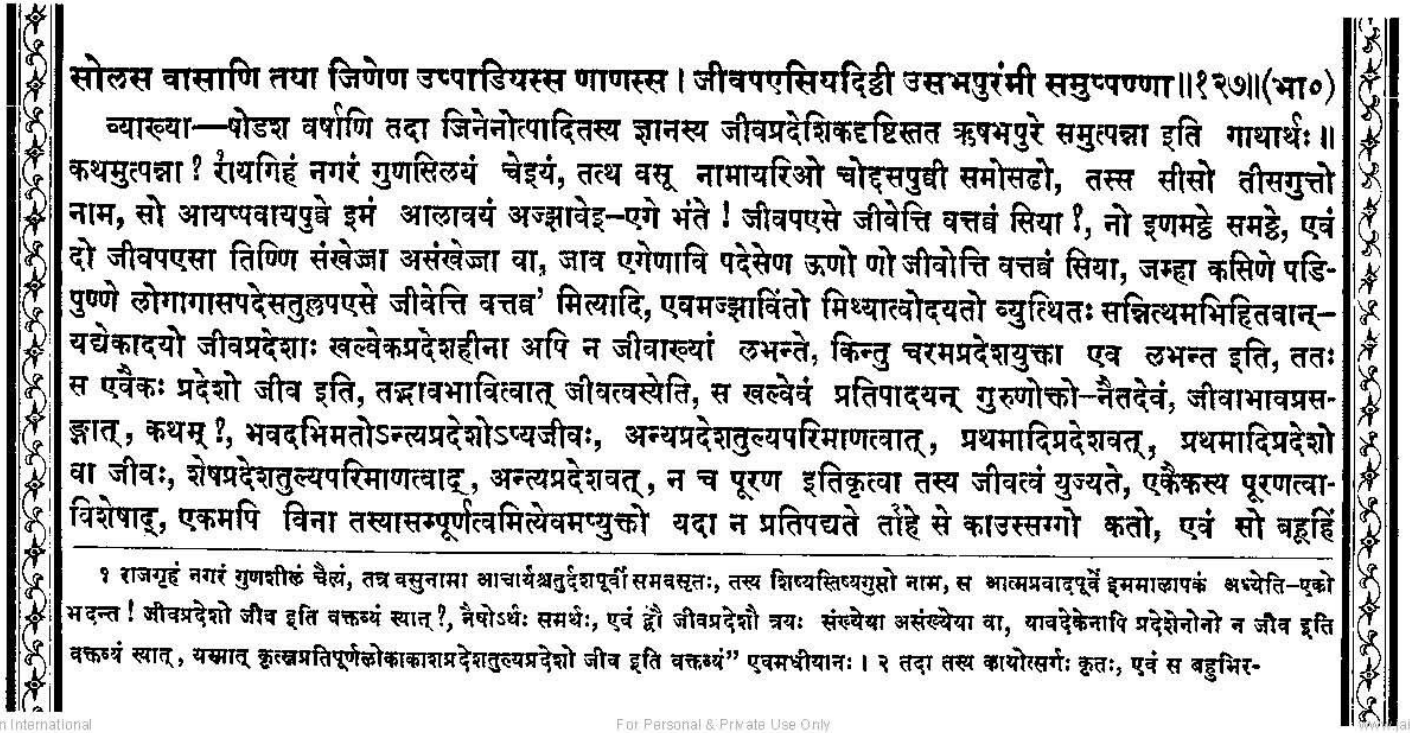

सोलस वासाणि तया जिणेण उप्पाडियस्स णाणस्स। जीवपएसियदिट्ठी उसभपुरंमी समुप्पण्णा॥१२७॥(भा०)

व्याख्या—षोडश वर्षाणि तदा जिनेनोत्पादितस्य ज्ञानस्य जीवप्रदेशिकदृष्टिस्तत ऋषभपुरे समुत्पन्ना इति गाथार्थः॥ कथमुत्पन्ना ? रायगिहं नगरं गुणसिलयं चेइयं, तत्थ वसू नामायरिओ चोद्दसपुव्वी समोसढो, तस्स सीसो तीसगुत्तो नाम, सो आयप्पवायपुव्वे इमं आलावयं अज्झावेइ–एगे भंते ! जीवपएसे जीवेत्ति वत्तव्वं सिया ?, नो इणमट्ठे समट्ठे, एवं दो जीवपएसा तिण्णि संखेज्जा असंखेज्जा वा, जाव एगेणावि पदेसेण ऊणो णो जीवोत्ति वत्तव्वं सिया, जम्हा कसिणे पडिपुण्णे लोगागासपदेसतुल्लपएसे जीवेत्ति वत्तव्व' मित्यादि, एवमज्झाविंतो मिथ्यात्वोदयतो व्युत्थितः सन्नित्थमभिहितवान्–यद्येकादयो जीवप्रदेशाः खल्वेकप्रदेशहीना अपि न जीवाख्यां लभन्ते, किन्तु चरमप्रदेशयुक्ता एव लभन्त इति, ततः स एवैकः प्रदेशो जीव इति, तद्भावभावित्वात् जीवत्वस्येति, स खल्वेवं प्रतिपादयन् गुरुणोक्तो–नैतदेवं, जीवाभावप्रसङ्गात्, कथम् ?, भवदभिमतोऽन्त्यप्रदेशोऽप्यजीवः, अन्यप्रदेशतुल्यपरिमाणत्वात्, प्रथमादिप्रदेशवत्, प्रथमादिप्रदेशो वा जीवः, शेषप्रदेशतुल्यपरिमाणत्वाद्, अन्त्यप्रदेशवत्, न च पूरण इतिकृत्वा तस्य जीवत्वं युज्यते, एकैकस्य पूरणत्वाविशेषाद्, एकमपि विना तस्यासम्पूर्णत्वमित्येवमप्युक्तो यदा न प्रतिपद्यते तदा से काउस्सग्गो कतो, एवं सो बहूहिं

१ राजगृहं नगरं गुणशीलं चैत्यं, तत्र वसुनामा आचार्यश्चतुर्दशपूर्वी समवसृतः, तस्य शिष्यस्तिष्यगुप्तो नाम, स आत्मप्रवादपूर्वे इममालापकं अध्येति–एको भदन्त ! जीवप्रदेशो जीव इति वक्तव्यं स्यात् ?, नैषोऽर्थः समर्थः, एवं द्वौ जीवप्रदेशौ त्रयः संख्येया असंख्येया वा, यावदेकेनापि प्रदेशेनोनो न जीव इति वक्तव्यं स्यात्, यस्मात् कृत्स्नप्रतिपूर्णलोकाकाशप्रदेशतुल्यप्रदेशो जीव इति वक्तव्यं" एवमधीयानः। २ तदा तस्य कायोत्सर्गः कृतः, एवं स बहुभिर-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तिष्यगुप्त – द्वितिय निह्नवस्य कथानकं

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

असब्भावुब्भावणाहिं मिच्छत्ताभिनिवेसेण य अप्पाणं च परं च तदुभयं च वुग्गाहेमाणो वुप्पाएमाणो गतो आमलकप्पं नगरिं, तत्थ अंबसालवणे ठितो, तत्थ मित्तसिरी नाम समणोवासओ, सो जाणइ–जहेस निण्हओ, अण्णया कयाइ तस्स संखडी जाता, ताहे तेण निमंतिओ–तुब्भेहिं सयमेव घरं आगंतव्वं, ते गता, ताहे तस्स निविट्ठस्स विउला खज्जगविही नीणिता, ताहे सो ताओ एक्केक्काओ खंडं खंडं देइ, एवं कूरस्स कुसणस्स वत्थस्स, पच्छा पादेसु पडितो, सयणं च भणइ–एह वंदह, साहू पडिलाभिया, अहो अहं धण्णो सपुण्णो जं तुब्भे मम घरं सयमेवागता, ताहे ते भणंति–किं धरिसियामो अम्हे एवं तुमे ?, सो भणति–ससिद्धंतेण तुम्हे मया पडिलाभिया, जइ नवरं वद्धमाणसामिस्स तणएण सिद्धंतेण पडिलाभेमि, तत्थ सो संबुद्धो भणइ–इच्छामि अज्जो! सम्मं पडिचोयणा, ताहे पच्छा सावएण विहिणा पडिलाभितो, मिच्छामि दुक्कडं च कतं, एवं ते सव्वे संबोहिया, आलोइय पडिकंता विहरंति ॥ अमुमेवार्थमुपसंजिहीर्षुराह—

१०सद्भावोद्भावनाभिर्मिथ्यात्वाभिनिवेशेन चात्मानं परं च तदुभयं च व्युद्ग्राहयन् व्युत्पादयन् गत आमलकल्पां नगरीं, तत्र आम्रशालवने स्थितः, तत्र मित्रश्रीर्नाम श्रमणोपासकः, स जानाति–यथैष निह्नवः, अन्यदा कदाचित् तस्य(गृहे)संखडी जाता, तदा तेन निमन्त्रितः–युष्माभिः स्वयमेव गृहमागन्तव्यं,ते गताः, तदा तस्य निविष्टस्य विपुलः खाद्यकविधिरानीतः, तदा स तस्मात् एकैकस्मात् खण्डं खण्डं ददाति, एवं कूरस्य कुसिणस्य (व्यञ्जनस्य) वस्त्रस्य, पश्चात्पादयोः पतितः, स्वजनं च भणति–आयात वन्दध्वं, साधवः प्रतिलाभिताः, अहो अहं धन्यः सपुण्यो यत्स्वयं यूयमेव मम गृहमागताः, तदा ते भणन्ति–किं धर्षिताः स्मो वयमेवं त्वया ?, स भणति–स्वसिद्धान्तेन यूयं मया प्रतिलाभिताः, यदि परं वर्धमानस्वामिसत्केन सिद्धान्तेन प्रतिलम्भयामि, तत्र स सम्बुद्धो भणति–इच्छाम्यार्य ! सम्यक् प्रतिचोदनां, तदा पश्चात् श्रावकेन विधिना प्रतिलम्भितो, मिथ्या मे दुष्कृतं च कृतम्, एवं ते सर्वे संबोधिताः, आलोचितप्रतिक्रान्ता विहरन्ति।

॥३१४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

रायगिहे गुणसिलए वसु चोद्दसपुव्वि तीसगुत्ताओ। आमलकप्पा णयरी मित्तसिरी कूरपिंडाई ॥ १२८॥(भा०)

व्याख्या—अस्याः प्रपञ्चार्थ उक्त एव, अक्षरगमनिका तु उसभंपुरंति वा रायगिहंति वा एगट्ठा, तत्थ रायगिहे गुणसिलए उज्जाणे वसु चोद्दसपुवी आयरिओ समोसढो, तस्स सीसाओ तीसगुत्ताओ एसा दिट्ठी समुप्पण्णा, सो मिच्छत्ताभिभूओ आमलकप्पा नाम नयरी तं गओ, मित्तसिरी सावओ, तेण कूरपुवगादि [देशीयवचनत्वात् कूरसिक्थादिनेत्यर्थः] दिट्ठंतेहिं पडिबोहिउत्ति ॥ गतो द्वितीयो निह्नवः, साम्प्रतं तृतीयं प्रतिपादयन्नाह—

चोद्दा दोवाससया तइया सिद्धिं गयस्स वीरस्स। अव्वत्तयाण दिट्ठी सेयवियाए समुप्पन्ना ॥ १२९ ॥ (भा०)

व्याख्या—चतुर्दशाधिके द्वे वर्षशते तदा सिद्धिं गतस्य वीरस्य ततोऽव्यक्तकदृष्टिः श्वेतव्यां नगर्यां समुत्पन्नेति गाथार्थः ॥ कथमुत्पन्ना ?—सेयवियाए नयरीए पोलासे उज्जाणे अज्जासाढा नामायरिया समोसढा, तेसिं सीसा बहवे आगाढजोगं पडिवन्ना, स एवायरिओ तेसिं वायणायरिओ, अन्नो तत्थ नत्थि, ते य रत्तिं हिययसूलेण मया सोहम्मे नलिणिगुम्मे विमाणे देवा उववन्ना, ओहिं पउंजंति, जाव पेच्छंति तं सरीरगं, ते य साहू आगाढजोवाही, तेवि न

१ ऋषभपुरमिति वा राजगृहमिति वा एकार्थौ, तत्र राजगृहे गुणशील उद्याने वसुश्चतुर्दशपूर्वी आचार्यः समवसृतः, तस्य शिष्यात्तिष्यगुप्तात् एषा दृष्टिः समुत्पन्ना, स मिथ्यात्वाभिभूत आमलकल्पा नाम नगरी तां गतः, मित्रश्रीः श्रावकः, तेन कूरसिक्थादिदृष्टान्तैः प्रतिबोधित इति । २ श्वेतविकायां नगर्यां पोलासमुद्यानमार्याषाढा नाम आचार्या समवसृताः, तेषां शिष्या बहव आगाढयोगं प्रतिपन्नाः, स एवाचार्यस्तेषां वाचनाचार्यः, अन्यस्तत्र नास्ति, ते च रात्रौ हृदयशूलेन मृताः सौधर्मे नलिनीगुल्मे विमाने देवा उत्पन्नाः, अवधिं प्रयुञ्जन्ति, यावत्प्रेक्षन्ते तच्छरीरकं, ते च साधव आगाढयोगवाहिनस्तेऽपि न

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अव्यक्तमत रूप तृतीय निह्नव संबंधे आषाढाचार्यस्य कथानकं

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

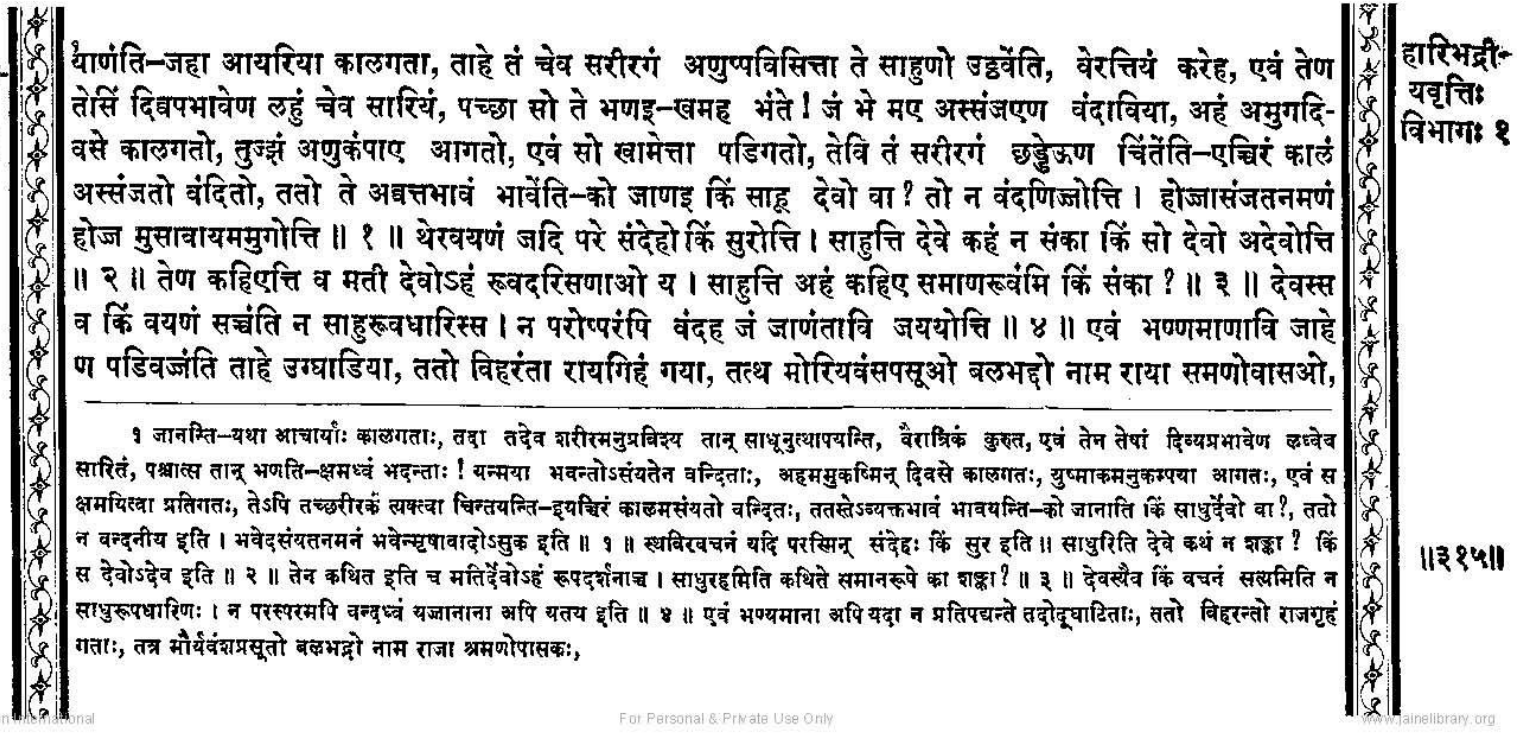

आवश्यक- ॥३१५॥

थाणंति–जहा आयरिया कालगता, ताहे तं चेव सरीरगं अणुप्पविसित्ता ते साहुणो उट्ठवेंति, वेरत्तियं करेह, एवं तेण तेसिं दिव्वपभावेण लहुं चेव सारियं, पच्छा सो ते भणइ–खमह भंते! जं मे मए अस्संजएण वंदाविया, अहं अमुगदिवसे कालगतो, तुज्झं अणुकंपाए आगतो, एवं सो खामेत्ता पडिगतो, तेवि तं सरीरगं छड्डेऊण चिंतेंति–एच्चिरं कालं अस्संजतो वंदितो, ततो ते अवत्तभावं भावेंति–को जाणइ किं साहू देवो वा? तो न वंदणिज्जोत्ति। होज्जासंजतनमणं होज्ज मुसावायममुगोत्ति ॥ १ ॥ थेरवयणं जदि परे संदेहो किं सुरोत्ति। साहुत्ति देवे कहं न संका किं सो देवो अदेवोत्ति ॥ २ ॥ तेण कहिएत्ति व मती देवोऽहं रूवदरिसणाओ य। साहुत्ति अहं कहिए समाणरूवंमि किं संका? ॥ ३ ॥ देवस्स व किं वयणं सच्चंति न साहुरूवधारिस्स। न परोप्परंपि वंदह जं जाणंतावि जययोत्ति ॥ ४ ॥ एवं भण्णमाणावि जाहे ण पडिवज्जंति ताहे उग्घाडिया, ततो विहरंता रायगिहं गया, तत्थ मोरियवंसपसूओ बलभद्दो नाम राया समणोवासओ,

१ जानन्ति–यथा आचार्याः कालगताः, तदा तदेव शरीरमनुप्रविश्य तान् साधूनुत्थापयन्ति, वैरात्रिकं कुरुत, एवं तेन तेषां दिव्यप्रभावेण लब्धेव सारितं, पश्चात्स तान् भणति–क्षमध्वं भदन्ताः! यन्मया भवन्तोऽसंयतेन वन्दिताः, अहममुकस्मिन् दिवसे कालगतः, युष्माकमनुकम्पया आगतः, एवं स क्षमयित्वा प्रतिगतः, तेऽपि तच्छरीरकं त्यक्त्वा चिन्तयन्ति–इयच्चिरं कालमसंयतो वन्दितः, ततस्तेऽव्यक्तभावं भावयन्ति–को जानाति किं साधुर्देवो वा?, ततो न वन्दनीय इति। भवेदसंयतनमनं भवेन्मृषावादोऽसुक इति ॥ १ ॥ स्थविरवचनं यदि परस्मिन् संदेहः किं सुर इति॥ साधुरिति देवे कथं न शङ्का? किं स देवोऽदेव इति ॥ २ ॥ तेन कथित इति च मतिर्देवोऽहं रूपदर्शनाच्च। साधुरहमिति कथिते समानरूपे का शङ्का? ॥ ३ ॥ देवस्यैव किं वचनं सत्यमिति न साधुरूपधारिणः। न परस्परमपि वन्दध्वं यजानाना अपि यतय इति ॥ ४ ॥ एवं भण्यमाना अपि यदा न प्रतिपद्यन्ते तदोद्घाटिताः, ततो विहरन्तो राजगृहं गताः, तत्र मौर्यवंशप्रसूतो बलभद्रो नाम राजा श्रमणोपासकः,

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

॥३१५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

तेणं ते आगमिया–जहा इहमागतत्ति, ताहे तेण गोहा आणत्ता–वच्चह गुणसिलगातो पवइयए आणेह, तेहिं आणीता, रण्णा पुरिसा आणत्ता–सिग्घं एते कडगमद्देण मारेह, ततो हत्थी कडगेहि य आणीएहिं ते पभणिया–अम्हे जाणामो जहा तुमं सावओ, तो कहं अम्हे मारावेहि ?, राया भणइ–तुम्हे चोरा णु चारिया णु अभिमरा णु ?, को जाणइ ?, ते भणंति–अम्हे साहुणो, राया भणइ–किह तुब्भे समणा ?, जं अन्नत्ता परोप्परस्सवि न वंदह, तुब्भे समणा वा चारिया वा ?, अहंपि सावगो वा न वा ?, ताहे ते संबुद्धा लज्जिया पडिवन्ना निस्संकिया जाया, ताहे अंबाडिया खरेहिं मउएहि य, संबोहणट्ठाए तुब्भं इमं मए एयाणुरूवं कयं, मुक्का खामिया य ॥ अमुमेवार्थमुपसंहरन्नाह—

सेयवि पोलासाढे जोगे तद्दिवसहिययसूले य । सोहंमि णलिणिगुम्मे राय गिहे मुरिय बलभद्दे ॥ १३० ॥ (भा०)

व्याख्या—श्वेतव्यां नगर्यां पोलासे उद्याने आषाढाख्य आचार्यः, योग उत्पादिते सति तद्दिवस एव हृदयशूले च, उत्पन्ने मृत इति वाक्यशेषः, स च सौधर्मे कल्पे नलिनिगुल्मे विमाने, समुत्पद्यावधिना पूर्ववृत्तान्तमवगम्य विनेयानां

---

१ तेन ते ज्ञाता–यथेहागता इति, तदा तेन आरक्षा आज्ञप्ता–व्रजत गुणशीलात् प्रव्रजितान् आनयत, तैरानीताः, राज्ञा पुरुषा आज्ञप्ताः–शीघ्रमेतान् कटकमर्देन मर्दयत, ततो हस्तिषु कटकेषु चानीतेषु ते प्रभणिताः–वयं जानीमो यथा त्वं श्रावकः, तत् कथं अस्मान् मारयिष्यसि ?, राजा भणति–यूयं चौरा नु चारिका नु अभिमरा नु ?, को जानाति ?, ते भणन्ति–वयं साधवः, राजा भणति–कथं यूयं श्रमणाः ?, यदव्यक्ताः परस्परमपि न वन्दध्वं, यूयं श्रमणा वा चारिका वा ? अहमपि श्रावको वा न वा ?, तदा ते संबुद्धा लज्जिताः प्रतिपन्ना निश्शङ्किता जाताः, तदा निर्भर्त्सिताः खरैर्मृदुभिश्च, संबोधनार्थाय युष्माकं मयेदमेतदनुरूपं कृतं, मुक्ताः क्षामिताश्च.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

योगान् सारितवानिति वाक्यशेषः, सुरलोकगते तस्मिन्नव्यक्तमतास्तद्विनेया विहरन्तो राजगृहे नगरे मौर्ये बलभद्रो राजा, तेन सम्बोधिता इति वाक्यशेषः, एवमन्या अपि सङ्ग्रहगाथा स्वबुद्ध्या व्याख्येया इति। उक्तस्तृतीयो निह्नवः, चतुर्थव्याचिख्यासयाऽऽह—

वीसा दो वाससया तइया सिद्धिं गयस्स वीरस्स। सामुच्छेइयदिट्ठी मिहिलपुरीए समुप्पण्णा ॥ १३१ ॥ (भा०)

व्याख्या—विंशत्युत्तरे द्वे वर्षशते तदा सिद्धिं गतस्य वीरस्य ततोऽन्तरे सामुच्छेदिकदृष्टिः मिथिलापुर्यां समुत्पन्नेति गाथार्थः ॥ यथोत्पन्ना तथा प्रदर्शयन्नाह—

मिहिलाए लच्छिघरे महगिरिकोडिण्ण आसमित्ते य। णेउणियाणुप्पवाए रायगिहे खंडरक्खा य ॥१३२॥ (भा०)

व्याख्या—मिहिलाए नयरीए लच्छिहरे चेतिए महागिरीआयरियाण कोडिण्णो नाम सीसो ठितो, तस्स आसमित्तो सीसो, सो अणुप्पवादपुवे नेउणियं वत्थुं पढति, तत्थ छिण्णछेदणयवत्तव्वयाए आलावगो जहा पडुप्पन्नसमयनेरइया वोच्छिज्जिस्संति, एवं जाव वेमाणियत्ति, एवं बिइयादिसमएसु वत्तव्वं, एत्थ तस्स वितिगिच्छा जाया–जहा सवे पडुप्पन्नसमयसंजाता वोच्छिज्जिस्संति–'एवं च कतो कम्माणुवेयणं सुकयदुक्कयाणंति ?। उप्पादाणंतरतो सवस्स विणाससब्भावा ॥१॥

---

१ मिथिलायां नगर्यां लक्ष्मीगृहे चैत्ये महागिर्यार्याणां कोण्डिन्यो नाम शिष्यः स्थितः, तस्याश्वमित्रः शिष्यः, सोऽनुप्रवादपूर्वे नैपुणिकं वस्तु पठति, तत्र छिन्नच्छेदनकवक्तव्यतायामालापको यथा–प्रत्युत्पन्नसमयनैरयिका व्युच्छेत्स्यन्ति, एवं यावद्वैमानिका इति, एवं द्वितीयादिसमयेष्वपि वक्तव्यम्, अत्र तस्य विचिचिकित्सा जाता–यथा सर्वे प्रत्युत्पन्नसमयसंजाता व्युच्छेत्स्यन्ति–एवं च कुतः कर्माणुवेदनं सुकृतदुष्कृतानामिति। उत्पादानन्तरं सर्वस्य विनाशसद्भावात् ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्थ निह्नव अश्वमित्रस्य कथानकं

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

सो एवमादि परुवेंतो गुरुणा भणिओ–'एगनयमएणमिणं सुत्तं वच्चाहि मा हु मिच्छत्तं। निरवेक्खो सेसाणवि नयाण हिदयं वियारेहि ॥ २ ॥ नहि सव्वहा विणासो अद्धापज्जायमेत्तणासंमि । सपरप्पज्जाया अणंतधम्मिणो वत्थुणो जुत्ता ॥ ३ ॥ अह सुत्तातोत्ति मती णणु सुत्ते सासयंपि निद्दिट्ठं। वत्थुं दव्वट्ठाए असासयं पज्जवट्ठाए ॥ ४ ॥ तत्थवि ण सव्वनासो समयादिविसेसणं जतोऽभिहितं। इहरा ण सव्वनासे समयादिविसेसणं जुत्तं ॥ ५ ॥' जाहे पण्णविओवि नेच्छति ताहे उग्घाडितो, ततो सो समुच्छेदं वागरेंतो कंपिल्लपुरं गतो, तत्थ खंडरक्खा नाम समणोवासया, ते य सुंकपाला, तेहिं ते आगमिएल्लगा, तेहिं ते गहिया, ते मारेउमारद्धा, ते भणंति भयभीया–अम्हेहिं सुयं जहा तुब्भे सावगा, तहावि एते साहू मारेह, ते भणंति–जे ते साहू ते वोच्छिण्णा तुज्झं चेव सिद्धंतो एस, अतो तुब्भे अण्णे केवि चोरा, ते भणंति— मा मारेह, एवं तेहिं संबोहिया पडिवण्णा सम्मत्तं। अयं गाथार्थः ॥ अक्षराणि तु क्रियाध्याहारतः स्वधिया ज्ञेयानि। गतश्चतुर्थो निह्नवः, साम्प्रतं पञ्चममभिधित्सुराह—

१ स एवमादि प्ररूपयन् गुरुणा भणितः–एकनयमतेनेदं सूत्रं व्राजीर्मा मिथ्यात्वम्। निरपेक्षः शेषाणामपि नयानां हृदयं विचारय ॥ २ ॥ न हि सर्वथा विनाशोऽद्धापर्यायमात्रनाशे। स्वपरपर्यायैरनन्तधर्मिणो वस्तुनो युक्तः ॥ ३ ॥ अथ सूत्रादिति मतिर्नन्नु सूत्रे शाश्वतमपि निर्दिष्टम्। वस्तु द्रव्यार्थतयाऽशाश्वत पर्यवार्थतया ॥ ४ ॥ तत्रापि न सर्वनाशः समयादिविशेषणं यतोऽभिहितम् । इतरथा न सर्वनाशे समयादिविशेषणं युक्तम् ॥ ५ ॥ यदा प्रज्ञापितोऽपि नेच्छति तदोद्घाटितः, ततः स सामुच्छेदं व्याकुर्वन् काम्पील्यपुरं गतः, तत्र खण्डरक्षा नाम श्रमणोपासकाः, ते च शुल्कपालाः, तैस्ते ज्ञाताः, तैस्ते गृहीताः, ते मारयितुमारब्धाः, ते भणन्ति भयभीताः–अस्माभिः श्रुतं यथा यूयं श्रावकाः, तथापि एतान् साधून् मारयथ, ते भणन्ति–ये ते साधवस्ते व्युच्छिन्ना युष्माकमेव सिद्धान्त एषः, अतो यूयमन्ये केऽपि चौराः, ते भणन्ति–मा भीमरत, एवं तैः संबोधिताः प्रतिपन्नाः सम्यक्त्वम्।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

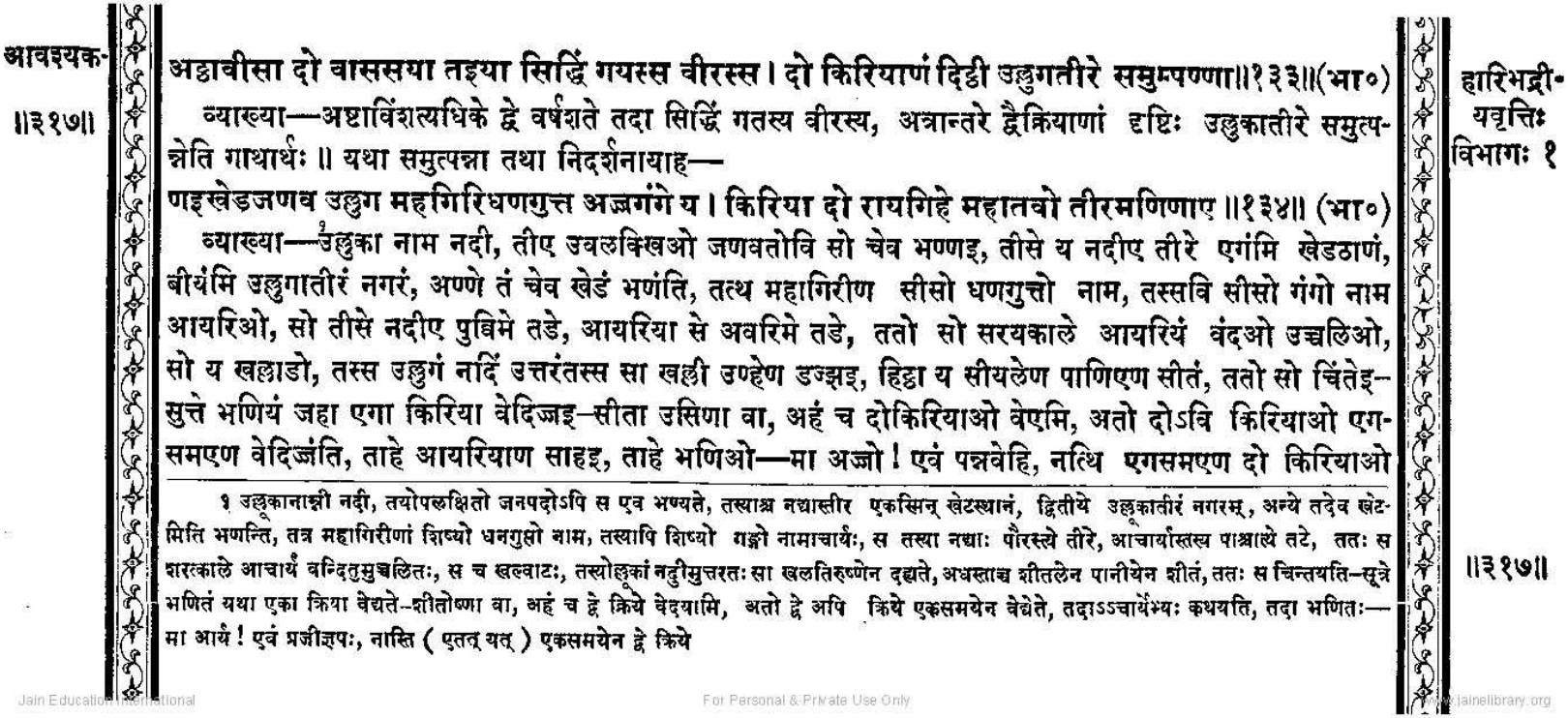

आवश्यक- ॥३१७॥

अट्ठावीसा दो वाससया तइया सिद्धिं गयस्स वीरस्स। दो किरियाणं दिट्ठी उल्लुगतीरे समुप्पण्णा॥१३३॥(भा०)

व्याख्या—अष्टाविंशत्यधिके द्वे वर्षशते तदा सिद्धिं गतस्य वीरस्य, अत्रान्तरे द्वैक्रियाणां दृष्टिः उल्लुकातीरे समुत्पन्नेति गाथार्थः ॥ यथा समुत्पन्ना तथा निदर्शनायाह—

णइखेडजणव उल्लुग महगिरिधणगुत्त अज्जगंगे य। किरिया दो रायगिहे महातवो तीरमणिणाए ॥१३४॥ (भा०)

व्याख्या—उल्लुका नाम नदी, तीए उवलक्खिओ जणवतोवि सो चेव भण्णइ, तीसे य नदीए तीरे एगंमि खेडठाणं, बीयंमि उल्लुगातीरं नगरं, अण्णे तं चेव खेडं भणंति, तत्थ महागिरीण सीसो धणगुत्तो नाम, तस्सवि सीसो गंगो नाम आयरिओ, सो तीसे नदीए पुव्विमे तडे, आयरिया से अवरिमे तडे, ततो सो सरयकाले आयरियं वंदओ उच्चलिओ, सो य खल्लाडो, तस्स उल्लुगं नदिं उत्तरंतस्स सा खल्ली उण्हेण डज्झइ, हिट्ठा य सीयलेण पाणिएण सीतं, ततो सो चिंतेइ–सुत्ते भणियं जहा एगा किरिया वेदिज्जइ–सीता उसिणा वा, अहं च दोकिरियाओ वेएमि, अतो दोऽवि किरियाओ एगसमएण वेदिज्जंति, ताहे आयरियाण साहइ, ताहे भणिओ—मा अज्जो! एवं पन्नवेहि, नत्थि एगसमएण दो किरियाओ

१ उल्लूकानाम्नी नदी, तयोपलक्षितो जनपदोऽपि स एव भण्यते, तस्याश्च नद्यास्तीर एकस्मिन् खेटस्थानं, द्वितीये उल्लूकातीरं नगरम्, अन्ये तदेव खेटमिति भणन्ति, तत्र महागिरीणां शिष्यो धनगुप्तो नाम, तस्यापि शिष्यो गङ्गो नामाचार्यः, स तस्या नद्याः पौरस्त्ये तीरे, आचार्यास्तस्य पाश्चात्ये तटे, ततः स शरत्काले आचार्यं वन्दितुमुच्चलितः, स च खल्वाटः, तस्योल्लूकां नदीमुत्तरतः सा खलतिरुष्णेन दह्यते, अधस्ताच्च शीतलेन पानीयेन शीतं, ततः स चिन्तयति–सूत्रे भणितं यथा एका क्रिया वेद्यते–शीतोष्णा वा, अहं च द्वे क्रिये वेदयामि, अतो द्वे अपि क्रिये एकसमयेन वेद्येते, तदाऽऽचार्येभ्यः कथयति, तदा भणितः—मा आर्य! एवं प्रज्ञापयः, नास्ति (एतत् यत्) एकसमयेन द्वे क्रिये

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १ ॥३१७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पंचम निह्नव गंग-आचार्यस्य कथानकं

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

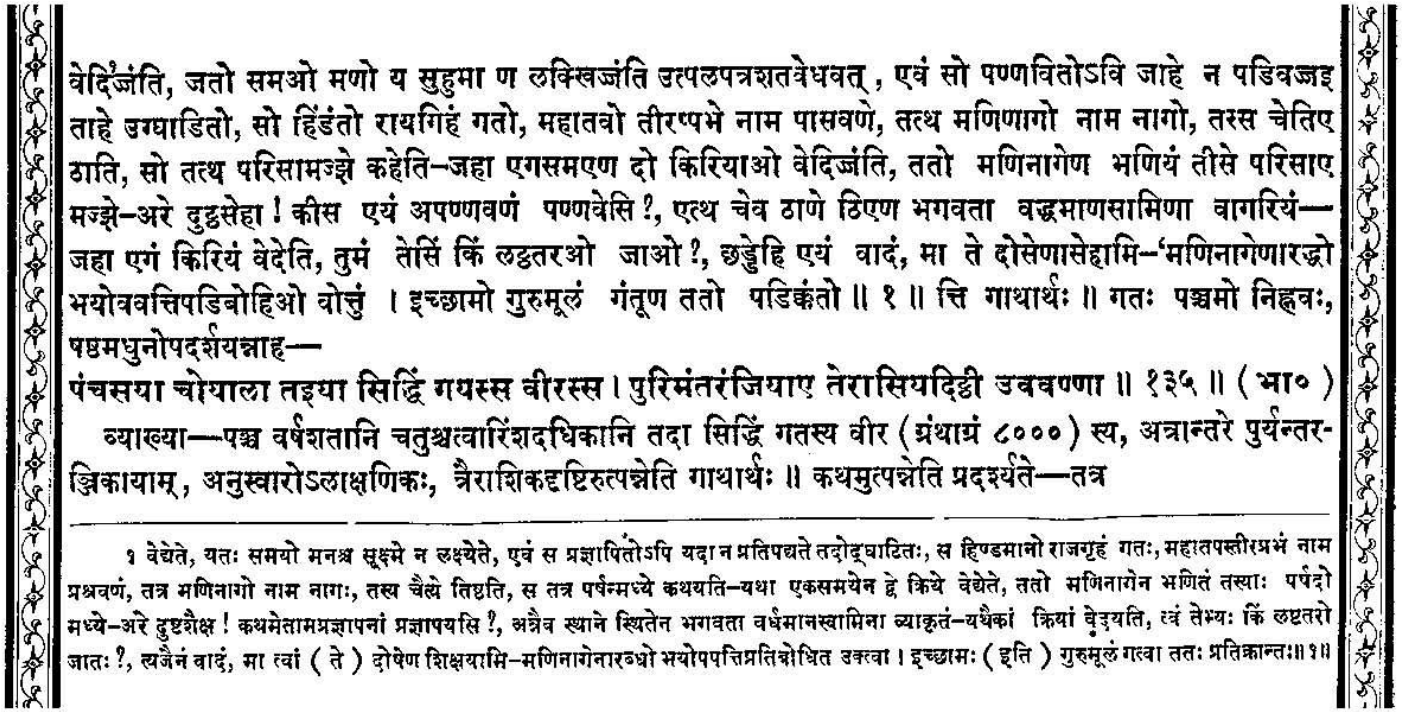

वेदिज्जंति, जतो समओ मणो य सुहुमा ण लक्खिज्जंति उत्पलपत्रशतवेधवत्, एवं सो पण्णवितोऽवि जाहे न पडिवज्जइ ताहे उग्घाडितो, सो हिंडंतो रायगिहं गतो, महातवो तीरप्पभे नाम पासवणे, तत्थ मणिणागो नाम नागो, तस्स चेतिए ठाति, सो तत्थ परिसामज्झे कहेति–जहा एगसमएण दो किरियाओ वेदिज्जंति, ततो मणिनागेण भणियं तीसे परिसाए मज्झे–अरे दुट्ठसेहा ! कीस एयं अपण्णवणं पण्णवेसि ?, एत्थ चेव ठाणे ठिएण भगवता वद्धमाणसामिणा वागरियं—जहा एगं किरियं वेदेति, तुमं तेसिं किं लट्ठतरओ जाओ ?, छड्डेहि एयं वादं, मा ते दोसेणासेहामि–'मणिनागेणारद्धो भयोववत्तिपडिबोहिओ वोत्तुं । इच्छामो गुरुमूलं गंतूण ततो पडिक्कंतो ॥ १ ॥ त्ति गाथार्थः ॥ गतः पञ्चमो निह्नवः, षष्ठमधुनोपदर्शयन्नाह—

पंचसया चोयाला तइया सिद्धिं गयस्स वीरस्स । पुरिमंतरंजियाए तेरासियदिट्ठी उववण्णा ॥ १३५ ॥ (भा०)

व्याख्या—पञ्च वर्षशतानि चतुश्चत्वारिंशदधिकानि तदा सिद्धिं गतस्य वीर (ग्रंथाग्रं ८०००) स्य, अत्रान्तरे पुर्यन्तरञ्जिकायाम्, अनुस्वारोऽलाक्षणिकः, त्रैराशिकदृष्टिरुत्पन्नेति गाथार्थः ॥ कथमुत्पन्नेति प्रदर्श्यते—तत्र

---

१ वेद्येते, यतः समयो मनश्च सूक्ष्मे न लक्ष्येते, एवं स प्रज्ञापितोऽपि यदा न प्रतिपद्यते तदोद्घाटितः, स हिण्डमानो राजगृहं गतः, महातपस्तीरप्रभं नाम प्रश्रवणं, तत्र मणिनागो नाम नागः, तस्य चैत्ये तिष्ठति, स तत्र पर्षन्मध्ये कथयति–यथा एकसमयेन द्वे क्रिये वेद्येते, ततो मणिनागेन भणितं तस्याः पर्षदो मध्ये–अरे दुष्टशैक्ष ! कथमेतामप्रज्ञापनां प्रज्ञापयसि ?, अत्रैव स्थाने स्थितेन भगवता वर्धमानस्वामिना व्याकृतं–यथैकां क्रियां वेदयति, त्वं तेभ्यः किं लष्टतरो जातः ?, त्यजैनं वादं, मा त्वां (ते) दोषेण शिक्षयामि–मणिनागेनारब्धो भयोपपत्तिप्रतिबोधित उक्त्वा । इच्छामः (इति) गुरुमूलं गत्वा ततः प्रतिक्रान्तः॥ १॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

षष्ठ निह्नवरूप त्रैराशिकमत प्ररुपक रोहगुप्तस्य कथानकं

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पुरिमंतरंजि भूयगुह बलसिरि सिरिगुत्त रोहगुत्ते य। परिवायपोट्टसाले घोसणपडिसेहणा वाए ॥ १३६ ॥(भा०)

व्याख्या—सङ्ग्रहगाथा। अस्याश्च कथानकादर्थोऽवसेयः, तच्चेदम्–अंतरंजिया नाम पुरी; तत्थ भूयगुहं नाम चेतियं, तत्थ सिरिगुत्ता नाम आयरिया ठिता, तत्थ बलसिरी नाम राया, तेसिं सिरिगुत्ताणं थेराणं सेंढियरो रोहउत्तो नाम सीसो, अण्णगामे ठितओ, ततो सो उवज्झायं वंदओ एति, एगो य परिवायओ पोट्टं लोहपट्टएण बंधिउं जंबुसालं गहाय हिंडइ, पुच्छितो भणइ–नाणेण पोट्टं फुट्टइ तो लोहपट्टेण बद्धं, जंबुडालं च जहा एत्थ जंबूदीवे णत्थि मम पडिवादित्ति, ततो तेण पडहतो णीणाविंतो–जहा सुण्णा परप्पवादा, तस्स लोगेण पोट्टसालो चेव नामं कतं, सो पडहतो रोहगुत्तेण वारिओ, अहं वादं देमित्ति, ततो सो पडिसेहित्ता गतो आयरियसगासं, आलोएइ–एवं मए पडहतो विणिवारिओ, आयरिया भणंति–दुट्ठु कयं, जतो सो विज्जाबलिओ, वादे पराजितोऽवि विज्जाहिं उवट्ठाइत्ति तस्स इमाओ सत्त विज्जाओ, तंजहा–

विच्छुय सप्पे मूसग मिई वराही य कायपोआई। एयाहिं विज्जाहिं सो उ परिव्वायओ कुसलो ॥१३७॥ (भा०)

---

१ अन्तरञ्जिका नाम पुरी, तत्र भूतगुहं नाम चैत्यं, तत्र श्रीगुप्ता नाम आचार्याः स्थिताः, तत्र बलश्रीनाम राजा, तेषां श्रीगुप्तानां स्थविराणां अतिश्राद्धो रोहगुप्तो नाम शिष्यः, अन्यग्रामे स्थितः, ततः स उपाध्यायं वन्दितुमायाति, एकश्च परिव्राट् लोहपट्टेनोदरं बद्ध्वा, जम्बूशालां गृहीत्वा हिण्डते, पृष्टो भणति–ज्ञानेनोदरं स्फुटति तत् लोहपट्टेन बद्धं, जम्बूशाखां च यथाऽत्र जम्बूद्वीपे नास्ति मम प्रतिवादीति, ततस्तेन पटहो निष्काशितो–यथा शून्याः परप्रवादाः, तस्य लोकेन पोट्टशाल एव नाम कृतं, स पटहो रोहगुप्तेन वारितः, अहं वादं ददामीति, ततः स प्रतिषिध्य गत आचार्यसकाशम्, आलोचयति–एवं मया पटहो विनिवारितः, आचार्या भणन्ति–दुष्ठु कृतं, यतः स विद्याबली, वादे पराजितोऽपि विद्याभिरुत्तिष्ठते, तस्येमाः सप्त विद्याः, तद्यथा—+ सद्धिं एगो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

व्याख्या—तत्र वृश्चिकेति वृश्चिकप्रधाना विद्या गृह्यते, सर्पेति सर्पप्रधाना, 'मूसग' त्ति मूषकप्रधाना, तथा मृगी नाम विद्या, मृगीरूपेणोपघातकारिणी, एवं वाराही च, 'कागपोत्ति' त्ति–काकविद्या, पोताकीविद्या च, पोताक्यः सकुनिका भण्यन्ते, एतासु विद्यासु, एताभिर्वा विद्याभिः स परिव्राजकः कुशल इति गाथार्थः ॥ सो भणइ–किं सक्का एत्ताहे निलुक्किउं ?, ततो सो आयरिएण भणिओ–पढियसिद्धाउ इमाउ सत्त पडिवक्खविज्जाओ गेण्ह, तंजहा—

मोरी नउलि बिराली वग्घी सीही उलूगि ओवाई। एयाओ विज्जाओ गेण्ह परिवायमहणीओ ॥ १३८ ॥ (भा०)

व्याख्या—मोरी नकुली बिराली व्याघ्री सिंही च उलूकी 'ओवाइ' त्ति ओलावयप्रधाना, एता विद्या गृहाण परिव्राजकमथिन्य इति गाथार्थः ॥ रयहरणं च से अभिमंतेउं दिण्णं, जइ अन्नंपि उड्डेइ तो रयहरणं भमाडिज्जासि, तो अजेयो होहिसि, इंदेणावि सक्किहिसि नो जेतुं, ताहे ताओ विज्जाओ गहाय गओ सभं, भणियं चऽणेण—एस किं जाणति ?, एयस्स चेव पुव्वपक्खो होउ, परिव्वाओ चिंतेइ–एए निउणा तो एयाण चेव सिद्धंतं गेण्हामि, जहा–मम दो रासी, तंजहा–जीवा य अजीवा य, ताहे इयरेण चिंतियं–एतेण अम्ह चेव सिद्धंतो गहिओ, तेण तस्स बुद्धिं परिभूय तिन्नि

१ स भणति–किं शक्या अधुना निलातुम् ?, ततः स आचार्येण भणितः–पठितसिद्धा इमाः सप्त प्रतिपक्षविद्या गृहाण, तद्यथा– । रजोहरणं च तस्मायभिमन्त्र्य दत्तं, यद्यन्यदपि उत्तिष्ठते तदा रजोहरणं भ्रामयेस्ततोऽजय्यो भविष्यसि, इन्द्रेणापि शक्ष्यसे नो जेतुं, तदा ता विद्या गृहीत्वा गतः सभां, भणितं चानेन–एष किं जानाति ?, एतस्यैव पूर्वपक्षो भवतु, परिव्राट् चिन्तयति–एते निपुणास्तत एतेषामेव सिद्धान्तं गृह्णामि, यथा मम द्वौ राशी, तद्यथा–जीवाश्च अजीवाश्च, तदा इतरेण चिन्तितम्–एतेनास्माकमेव सिद्धान्तो गृहीतः, तेन तस्य बुद्धिं परिभूय त्रयो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

रासी ठविया–जीवा अजीवा नोजीवा, तत्थ जीवा संसारत्था, अजीवा घडादि, नोजीवा घिरोलियाछिन्नपुच्छाई, दिट्ठंतो दंडो, जहा दंडस्स आदिमज्झं अग्गं च, एवं सव्वे भावा तितिहा, एवं सो तेण निप्पट्ठपसिणवागरणो कओ, ताहे सो परिवायओ रुट्ठो विच्छुए मुयइ, ताहे सो तेसिं पडिवक्खे मोरे मुयइ, ताहे तेहिं हएहिं विंछिएहि पच्छा सप्पे मुयइ, इयरो तेसिं पडिघाए नउले मुयइ, ताहे उंदुरे तेसिं मज्जारे, मिए तेसिं वग्घे, ताहे सूयरे तेसिं सीहे, काके तेसिं उलुगे, ताहे पोयागीं मुयइ तेसिं ओलाइं, एवं जाहे न तरइ ताहे गद्दभी मुक्का, तेण य सा रयहरणेण आहया, सा परिवायगस्स उवरिं छेरित्ता गया, ताहे सो परिवायगो हीलिज्जंतो निच्छूढो, ततो सो परिवायगं पराजिणित्ता गओ आयरियसगासं, आलोएइ–जहा जिओ एवं, आयरिया आह–कीस तए उड्ढिएण न भणियं ?–नत्थित्ति तिन्नि रासी, एयस्स मए बुद्धिं परिभूय पण्णविया, इयाणिंपि गंतुं भणाहि, सो नेच्छइ, मा मे ओहावणा होउत्ति, पुणो पुणो भणिओ भणइ–को वा एत्थ

१ राशयः स्थापिताः–जीवा अजीवा नोजीवाः, तत्र जीवाः संसारस्थाः, अजीवा घटादयः, नोजीवा गृहकोकिलाछिन्नपुच्छादयः, दृष्टान्तो दण्डः, यथा दण्डस्यादिर्मध्यमग्रं च, एवं सर्वे भावास्त्रिविधाः, एवं स तेन निष्पृष्टप्रश्नव्याकरणः कृतः, तदा स परिव्राट् रुष्टो वृश्चिकान् मुञ्चति, तदा स तेषां प्रतिपक्षान् मयूरान् मुञ्चति, तदा तैर्हतेषु वृश्चिकेषु पश्चात्सर्पान् मुञ्चति, इतरस्तेषां प्रतिघाताय नकुलान् मुञ्चति, तदोन्दुरान् तेषां मार्जारान्, मृगान् तेषां व्याघ्रान्, तदा शूकरान् तेषां सिंहान्, काकांस्तेषामुलूकान्, तदा पोताक्यस्तासामोलवकान्, एवं यदा न शक्नोति तदा गर्दभी मुक्ता, तेन च सा रजोहरणेनाहता, सा परिव्राज उपरि हृदित्वा गता, तदा स परिव्राट् ह्रीत्यमानो निष्काशितः, ततः स परिव्राजकं पराजित्य गत आचार्यसकाशम्, आलोचयति–यथा जित एवम्, आचार्या आहुः–कथं तदोत्तिष्ठता न भणितं–न सन्ति राशयस्त्रय इति, एतस्य बुद्धिं परिभूय मया प्रज्ञापिताः, इदानीमपि गत्वा भण, स नेच्छति, मा मेऽप्रभ्राजना भूदिति, पुनः पुनर्भणितो भणति–को वाऽत्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

दोसो ? जइ तिन्नि रासी भणिया, अत्थि चेव तिन्नि रासी, आयरिया आह–अज्जो ! असब्भावो तित्थगरस्स आसायणा य, तहावि न पडिवज्जइ, ततो सो आयरिएण समं वायं लग्गो, ताहे आयरिया राउलं गया भणंति–तेण मम सिस्सेण अवसिद्धंतो भणिओ, अम्हं दुवे चेव रासी, इयाणिं सो विपडिवन्नो, तो तुब्भे अम्हं वायं सुणेह, पडिस्सुयं राइणा, ततो तेसिं रायसभाए रायपुरओ आवडियं, जहेगदिवसं उट्ठाय २ छम्मासा गया, ताहे राया भणइ–मम रज्जं अवसीदति, ताहे आयरिएहिं भणियं–इच्छाए मए एच्चिरं कालं धरिओ, एत्ताहे पासह कलं दिवसं आगए निगिण्हामि, ताहे पभाए भणइ–कुत्तियावणे परिक्खिज्जउ, तत्थ सव्वदव्वाणि अत्थि, आणेह जीवे अजीवे नोजीवे य, ताहे देवयाए जीवा अजीवा य दिण्णा, नोजीवा नत्थि, एवमादिचोयालसएणं पुच्छाणं निग्गहिओ ॥ अमुमेवार्थमुपसंहरन्नाह—

सिरिगुत्तेणऽवि छलुगो छम्मासे कड्ढिऊण वाय जिओ। आहरणकुत्तियावण चोयालसएण पुच्छाणं॥१३९॥भा०

---

१ दोषः ? यदि त्रयो राशयो भणिताः, सन्त्येव त्रयो राशयः, आचार्या आहुः–आर्य ! असद्भावस्तीर्थकरस्याशातना च, तथापि न प्रतिपद्यते, ततः स आचार्येण समं वादं (कर्तुं) लग्नः, तदा आचार्या राजकुलं गता भणन्ति–तेन मम शिष्येणापसिद्धान्तो भणितः, अस्माकं द्वौ एव राशी, इदानीं स विप्रतिपन्नः, तत् यूयमावयोर्वादं शृणुत, प्रतिश्रुतं राज्ञा, ततस्त्रयो राजसभायां राज पुरत आपतितः (वादः), यथेको दिवसस्तथोत्थाय २ षण्मासी गता, तदा राजा भणति–मम राज्यं अवसीदति, तदाचार्यैर्भणितम्–इच्छया मयेयच्चिरं कालं धृतः,अधुना पश्यत कल्ये दिवसे आगते निगृह्णामि,तदा प्रभाते भणति–कुत्रिकापणे परीक्ष्यतां, तत्र सर्वद्रव्याणि सन्ति, आनय जीवान् अजीवान् नोजीवांश्च, तदा देवतया जीवा अजीवाश्च दत्ता, नोजीवा न सन्ति, एवमादिचतुश्चत्वारिंशेन शतेन पृच्छानां निगृहीतः ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

व्याख्या—निगदसिद्धा, नवरं चोयालसयं–तेण रोहेण छम्मूलपयत्था गहिया, तंजहा—दव्वगुणकम्मसामन्नविसेसा छट्ठओ य समवाओ, तत्थ दव्वं नवहा, तंजहा–भूमी उदयं जलणो पवणो आगासं कालो दिसा अप्पओ मणो यत्ति, गुणा सत्तरस, तंजहा–रूवं रसो गंधो फासो संखा परिमाणं पुहुत्तं संओगो विभागो परापरत्तं बुद्धी सुहं दुक्खं इच्छा दोसो पयत्तो य, कम्मं पंचधा–उक्खेवणं अवक्खेवणं आउंचणं पसारणं गमणं च, सामण्णं तिविहं–महासामण्णं १ सत्तासामण्णं तिपदार्थसद्बुद्धिकारि २ सामण्णविसेसो द्रव्यत्वादि ३, अन्ये त्वेवं व्याख्यानयन्ति—त्रिपदार्थसत्करी सत्ता, सामण्णं द्रव्यत्वादि, सामन्नविसेसो पृथिवीत्वादि, विसेसा अंता (अणंता य), इहपच्चयहेऊ य समवाओ, एए छत्तीसं भेया, एत्थ एक्केके चत्तारि भंगा भवंति, तंजहा–भूमी अभूमी नोभूमी नोअभूमी, एवं सव्वत्थ, तत्थ कुत्तियावणे भूमी मग्गिया लेट्ठुओ लद्धो, अभूमीए पाणियं, नोभूमीए जलाद्येव तु नो राश्यन्तरं, नोअभूमीए लेट्ठुए चेव एवं सव्वत्थ ॥ आह च भाष्यकारः–जीवमजीवं दाउं णोजीवं जाइओ पुणो अजीवं देइ चरिमंमि जीवं न उ णोजीवं सजीवदलं

१ चतुश्चत्वारिंशं शतं–तेन रोहगुप्तेन षट् मूलपदार्था गृहीताः, तद्यथा–द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषाः षष्ठश्च समवायः, तत्र द्रव्यं नवधा, तद्यथा–भूमिरुदकं ज्वलनः पवन आकाशं कालो दिक् आत्मा मनश्चेति, गुणाः सप्तदश, तद्यथा–रूपं रसो गन्धः स्पर्शः संख्या परिमाणं पृथक्त्वं संयोगो विभागः परत्वमपरत्वं बुद्धिः सुखं दुःखमिच्छा द्वेषः प्रयत्नश्च, कर्म पञ्चधा–उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुञ्चनं प्रसारणं गमनं च, सामान्यं त्रिविधं–महासामान्यं सत्तासामान्यं सामान्यविशेषः, सामान्यं सामान्यविशेषः विशेषा अन्त्या (अनन्त्याश्च), इहप्रत्ययहेतुश्च समवायः, एते षट्त्रिंशत् भेदाः, अत्रैकैकस्मिन् चत्वारो भङ्गा भवन्ति, तद्यथा–भूमिरभूमिर्नोभूमिर्नोअभूमिः, एवं सर्वत्र, तत्र कुत्रिकापणे भूमिर्मार्गिता लेष्टुर्दत्तः, अभूमेः (मार्गणे) पानीयं, नोभूमेर्जलाद्येव, नोअभूमेर्लेष्टुरेव, एवं सर्वत्र । जीवमजीवं दत्त्वा नोजीवं याचितः पुनरजीवम् । ददाति चरमे जीवं नतु नो जीवं सजीवदलम् ॥ १ ॥ * भाष्यगता दश गाथा अत्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

ततो निग्गहिओ छलूगो, गुरुणा से खेलमल्लो मत्थए भग्गो, ततो निद्धाडिओ, गुरूवि पूतिओ णगरे य गोसणयं कयं—वद्धमाणसामी जयइत्ति ॥ अमुमेवार्थमुपसंहरन्नाह—

वाए पराजिओ सो निव्विसओ कारिओ नरिंदेणं। घोसावियं च णगरे जयइ जिणो वद्धमाणोत्ति॥१४०॥(भा०)

निगदसिद्धा, तेणावि सरक्खरडिएणं चेव वइसेसियं पणीयं, तं च अण्णमण्णेहिं खाइं णीयं, तं चोलूयपणीयन्ति वुच्चइ, जओ सो गोत्तेणोलूओ आसि ॥ गतः षष्ठो निह्नवः, साम्प्रतं सप्तमं प्रतिपादयितुमाह—

पंचसया चुलसीया तइया सिद्धिं गयस्स वीरस्स। अबद्धियाण दिट्ठी दसपुरनयरे समुप्पण्णा ॥ १४१ ॥(भा०)

व्याख्या—पञ्च वर्षशतानि चतुरशीत्यधिकानि तदा सिद्धिं गतस्य वीरस्य, ततोऽबद्धिकदृष्टिः दशपुरनगरे समुत्पन्नेति गाथार्थः ॥ कथमुत्पन्ना ?, तत्रार्यरक्षितवक्तव्यतायां कथानकं प्रायः कथितमेव, यावद् गोष्ठामाहिलः प्रत्युच्चारके कर्मबन्धचिन्तायां कर्मोदयादभिनिविष्टो विप्रतिपन्न इति। तथा च कथानकानुसन्धानाय प्रागुक्तानुवादपरां सङ्ग्रहगाथामाह—

दसपुरे नगरुच्छुघरे अज्जरक्खियपूसमित्ततियगं च। गोट्ठामाहिल नवमट्ठमेसु पुच्छा य विंझस्स ॥१४२॥ (भा०)

इयमर्थतः प्राग्व्याख्यातैवेति न विव्रियते, प्रकृतसम्बन्धस्तु–विंझो[३] अट्ठमे कम्मप्पवायपुव्वे कम्मं परूवेति, जहा

---

१ ततो निगृहीतः षड्डुलूकः, गुरुणा तस्य मस्तके श्लेष्मकुण्डिका भग्ना, ततो निर्धाटितः, गुरुरपि पूजितो, नगरे च घोषणं कृतं–वर्धमानस्वामी जयतीति। २ तेनापि स्वभस्मखरण्टितेनैव वैशेषिकं प्रणीतं, तच्चान्यान्यैः ख्यातिं नीतं, तच्चोलूकप्रणीतमित्युच्यते, यतः स गोत्रेणोलूक आसीत्। ३ विन्ध्योऽष्टमे कर्मप्रवादपूर्वे कर्म प्ररूपयति, यथा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सप्तम निह्नव गोष्ठा माहिलस्य कथानकं

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

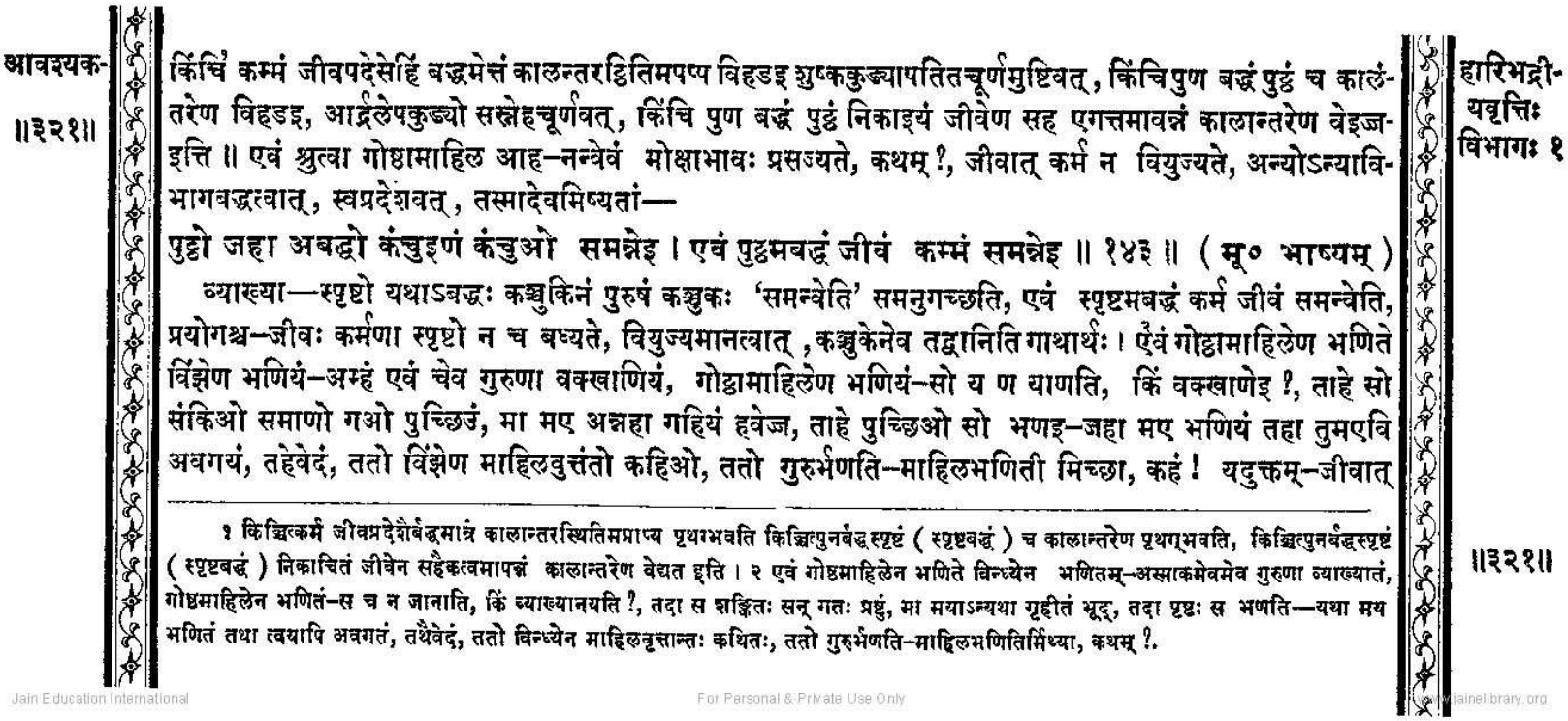

आवश्यक- ॥३२१॥

किंचिं कम्मं जीवपदेसेहिं बद्धमेत्तं कालन्तरट्ठितिमपप्प विहडइ शुष्ककुड्यापतितचूर्णमुष्टिवत्, किंचिपुण बद्धं पुट्ठं च कालंतरेण विहडइ, आर्द्रलेपकुड्यो सस्नेहचूर्णवत्, किंचि पुण बद्धं पुट्ठं निकाइयं जीवेण सह एगत्तमावन्नं कालान्तरेण वेइज्जइत्ति ॥ एवं श्रुत्वा गोष्ठामाहिल आह–नन्वेवं मोक्षाभावः प्रसज्यते, कथम्?, जीवात् कर्म न वियुज्यते, अन्योऽन्याविभागवद्धत्वात्, स्वप्रदेशवत्, तस्मादेवमिष्यतां—

पुट्ठो जहा अबद्धो कंचुइणं कंचुओ समन्नेइ । एवं पुट्ठमबद्धं जीवं कम्मं समन्नेइ ॥ १४३ ॥ (मू० भाष्यम्)

व्याख्या—स्पृष्टो यथाऽबद्धः कञ्चुकिनं पुरुषं कञ्चुकः 'समन्वेति' समनुगच्छति, एवं स्पृष्टमबद्धं कर्म जीवं समन्वेति, प्रयोगश्च–जीवः कर्मणा स्पृष्टो न च बध्यते, वियुज्यमानत्वात्, कञ्चुकेनेव तद्वानिति गाथार्थः । एवं गोट्ठामाहिलेण भणिते विंझेण भणियं–अम्हं एवं चेव गुरुणा वक्खाणियं, गोट्ठामाहिलेण भणियं–सो य ण याणति, किं वक्खाणेइ?, ताहे सो संकिओ समाणो गओ पुच्छिउं, मा मए अन्नहा गहियं हवेज्ज, ताहे पुच्छिओ सो भणइ–जहा मए भणियं तहा तुमएवि अवगयं, तहेवेदं, ततो विंझेण माहिलवुत्तंतो कहिओ, ततो गुरुभणति–माहिलभणिती मिच्छा, कहं! यदुक्तम्–जीवात्

१ किञ्चित्कर्म जीवप्रदेशैर्बद्धमात्रं कालान्तरस्थितिमप्राप्य पृथग्भवति किञ्चित्पुनर्बद्धस्पृष्टं (स्पृष्टबद्धं) च कालान्तरेण पृथग्भवति, किञ्चित्पुनर्बद्धस्पृष्टं (स्पृष्टबद्धं) निकाचितं जीवेन सहैकत्वमापन्नं कालान्तरेण वेद्यत इति । २ एवं गोष्ठमाहिलेन भणिते विन्ध्येन भणितम्–अस्माकमेवमेव गुरुणा व्याख्यातं, गोष्ठमाहिलेन भणितं–स च न जानाति, किं व्याख्यानयति?, तदा स शङ्कितः सन् गतः प्रष्टुं, मा मयाऽन्यथा गृहीतं भूद्, तदा पृष्टः स भणति—यथा मय भणितं तथा त्वयापि अवगतं, तथैवेदं, ततो विन्ध्येन माहिलवृत्तान्तः कथितः, ततो गुरुर्भणति–माहिलभणितिर्मिथ्या, कथम्?.

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

॥३२१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

कर्म न वियुज्यत इत्यादि, अत्र प्रत्यक्षविरोधिनी प्रतिज्ञा, यस्मादायुष्ककर्मवियोगात्मकं मरणमध्यक्षसिद्धमिति, हेतुरप्यनैकान्तिकः, अन्योऽन्याविभागसम्बद्धानामपि क्षीरोदकादीनामुपायतो वियोगदर्शनात्, दृष्टान्तोऽपि न साधनधर्मानुगतः, स्वप्रदेशस्य युक्तत्वासिद्धेः, तादूप्येणानादिरूपत्वाच्छिन्नं च जीवात् कर्मेति, तथा यच्चोक्तम्–'जीवः कर्मणा स्पृष्टो न बध्यत इत्यादि' अत्रापि किं प्रतिप्रदेशं स्पृष्टो नभसेव उत त्वङ्मात्रे कंचुकेनेव, यदि प्रतिप्रदेशं दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोरसाम्यं, कंचुकेन प्रतिप्रदेशमस्पृष्टत्वात्, अथ त्वग्मात्रे स्पृष्ट इति, ततो नापान्तरालगत्यनुयायि कर्म, पर्यन्तमात्रवर्त्तित्वाद्, बाह्याङ्गमलवत्, एवं च सर्वो जीवो मोक्षभाक्, कर्मानुगमरहितत्वात्, मुक्तवत्, तथाऽन्तर्वेदनाऽभावप्रसङ्गः, तन्निमित्तकर्माभावात्, सिद्धस्येव, न च भिन्नदेशस्यापि वेदनाहेतुत्वं युज्यते, शरीरान्तरगतेनातिप्रसङ्गात्, न च स्वकृतत्वं निबन्धनम्, अत्रान्तर्वर्तिप्रदेशानां कर्मयोगरहितानां कर्तृत्वानुपपत्तेः, तस्माद् यत् किञ्चिदेतदिति। एवं गेण्हिऊण सो विंझेण भणितो–एवं आयरिया भणंति, ततो सो तुण्हिक्को ट्ठिओ चिंतेइ–समप्पउ तो खोडेहामि, अन्नया नवमे पुव्वे साहूण पच्चक्खाणं वण्णिज्जइ, जहा–पाणाइवायं पच्चक्खामि जावज्जीवाए इत्यादि, गोट्ठामाहिलो भणति–नैवं सोहणं, किं तर्हि?

पच्चक्खाणं सेयं अपरिमाणेण होइ कायव्वं। जेसिं तु परीमाणं तं दुट्ठं आससा होइ ॥ १४४ ॥ (मू० भा०)

व्याख्या—प्रत्याख्यानं श्रेयः, 'अपरिमाणेन' कालावधिं विहाय कर्तव्यं, एवं क्रियमाणं श्रेयो भवति, येषां तु परिमाणं

१ एवं गृहीत्वा स विन्ध्येन भणितः-एवमाचार्या भणन्ति, ततः स तूष्णीकः स्थितश्चिन्तयति–समाप्यतां ततः स्खलयिष्यामि, अन्यदा नवमे पूर्वे साधूनां प्रत्याख्यानं वर्ण्यते, यथा प्राणातिपातं प्रत्याख्यामि यावज्जीवं, नैवं शोभनम्।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

प्रत्याख्याने तत् प्रत्याख्यानं 'दुष्टम्' अशोभनं, किमिति ?, यतस्तत्र 'आससा होइ' त्ति अनुस्वारलोपादाशंसा भवति, प्रयोगश्च–यावज्जीवकृतावधिप्रत्याख्यानमाशंसादोषदुष्टं, परिमाणपरिच्छिन्नावधित्वात्, श्वः सूर्योदयात् परतः पारयिष्यामीत्युपवासप्रत्याख्यानवत्, तस्मादपरिमाणमेव प्रत्याख्यानं श्रेयः, आशंसारहितत्वात्, तीरितादिविशुद्धोपवासादिवदिति गाथार्थः ॥ एवं पन्नवेंतो विंझेण भणिओ–न होति एयं एवं जं तुमे भणियं, सुण, एत्थंतरंमि य जं तस्स अवसेसं नवमपुव्वस्स तं समत्तं, ततो सो अभिनिवेसेण पूसमित्तसयासं चेव गंतूण भणइ–अण्णहा आयरिएहिं भणियं अन्नहा तुमं पण्णवेसि ॥ उपन्यस्तश्चानेन तत्पुरतः स्वपक्षः, तत्राऽऽचार्य आह–ननु यदुक्तं भवता–'यावज्जीवं कृतावधिप्रत्याख्यानमाशंसादोषदुष्टमित्यादि' एतदयुक्तं, यतः कृतप्रत्याख्यानानां साधूनां नाशंसा–मृताः सेविष्याम इति, किन्तु मृतानां देवभवे मा भूद् व्रतभङ्ग इति कालावधिकरणम्, अपरिमाणपक्षे तु भूयांसो दोषाः, कथम् ?, अपरिमाणमिति कोऽर्थः ?, किं यावच्छक्तिः उत अनागताद्धा आहोश्विदपरिच्छेदः ?, यदि यावच्छक्तिरस्ति, एवं सति शक्तिमितकालावध्युपगमादस्मन्मतानुवाद एव, आशंसादोषोऽपि काल्पनिकस्तुल्यः, अनागताद्धापक्षेऽपि भवान्तरेऽवश्यंभावी व्रतभङ्गः, अपरिच्छेदपक्षेऽपि कालानियमात् व्रतभङ्गादयो दोषा इति। एवं आयरिएहिं भणिए न पडिवज्जइ, ततो जेऽवि

१ एवं प्रज्ञापयन् विन्ध्येन भणितः–न भवत्येतत् एवं यत्त्वया भणितं, शृणु, अत्रान्तरे च यत्तस्यावशिष्टं नवमपूर्वस्य तत्समाप्तं, ततः सोऽभिनिवेशेन पुष्पमित्रसकाशमेव गत्वा भणति–अन्यथाऽऽचार्यैर्भणितमन्यथा त्वं प्रज्ञापयसि २ एवमाचार्यैर्भणिते न प्रतिपद्यते, ततो येऽपि

॥३२२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

[1]अण्णगच्छेल्लया थेरा बहुस्सुया ते पुच्छिया भणंति–एत्तियं चेव, ततो सो भणति–तुब्भे किं जाणह ?, तित्थगरेहिं एत्तियं भणियं जहाऽहं भणामि, ते भणंति–तुमं न याणसि, मा तित्थगरे आसाएहि, जाहे न ठाइ ताहे संघसमवाओ कओ, ततो सव्वसंघेण देवयाए काउस्सग्गो कओ जा भद्दिया सा आगया भणति–संदिसहत्ति, ताहे सा भणिया–वच्च तित्थगरं पुच्छ –किं जं गोट्ठामाहिलो भणति तं सच्चं किं जं दुब्बलियापूसमित्तप्पमुहो संघोत्ति, ताहे सा भणइ–मम अणुग्गहं देह काउसग्गं गमणापडिघायनिमित्तं, तओ ठिया काउस्सग्गं, ताहे सा भगवंतं पुच्छिऊण आगया भणति–जहा संघो सम्मावादी, इयरो मिच्छावादी, निह्नओ एस सत्तमओ, ताहे सो भणति–एसा अप्पिड्ढिया वराई, का एयाए सत्ती गंतूणं ?, तोवि न सद्दहइ, ताहे संघेण बज्झो कओ, ततो सो अणालोइयपडिक्कंतो कालगतो ॥ गतः सप्तमो निह्नवः, भणिताश्च देशविसंवादिनो निह्नवाः, साम्प्रतमनेनैव प्रस्तावेन प्रभूतविसंवादिनो बोटिका भण्यन्ते, तत्र कदैते समुत्पन्ना इति प्रतिपादयन्नाह–

छब्बाससयाइं नवुत्तराइं तइया सिद्धिं गयस्स वीरस्स। तो बोडियाण दिट्ठी रहवीरपुरे समुप्पण्णा ॥१४५॥(भा०)

---

१ अन्यगच्छीयाः स्थविरा बहुश्रुतास्ते पृष्टा भणन्ति–एतावदेव, ततः स भणति–यूयं किं जानीथ, तीर्थकरैरेतावद्भणितं यथाऽहं भणामि, ते भणन्ति–त्वं न जानासि, मा तीर्थकरान् आशातय, यदा न तिष्ठति तदा सङ्घसमवायः कृतः, ततः सर्वसङ्घेन देवतायाः कायोत्सर्गः कृतो, या भद्रिका सा आगता भणति–संदिशतेति, तदा सा भणिता–व्रज तीर्थकरं पृच्छ–किं यत् गोष्ठमाहिलो भणति तत्सत्यं किं यद्दुर्बलिकापुष्पमित्रप्रमुखः सङ्घ इति ?, तदा सा भणति–ममानुग्रहं दत्त कायोत्सर्गं गमनाप्रतिघातनिमित्तं, ततः स्थिताः कायोत्सर्गे, तदा सा भगवन्तं पृष्ट्वा आगता भणति—यथा सङ्घः सम्यग्वादी, इतरो मिथ्यावादी, निह्नव एष सप्तमकः, तदा स भणति–एषाऽल्पर्द्धिका वराकी कैतस्याः शक्तिर्गन्तुं, ततोऽपि न श्रद्दधाति, तदा सङ्घेन बाह्यः कृतः, ततः सोऽनालोचितप्रतिक्रान्तः कालगतः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

निगदसिद्धैव, तत्र यथा बोटिकानां दृष्टिरुत्पन्ना तथा संग्रहगाथयोपदर्शयन्नाह—

रहवीरपुरं नयरं दीवगमुज्जाण अज्जकण्हे य। सिवभूइस्सुवहिंमि य पुच्छा थेराण कहणा य ॥१४६॥ (मू० भा०)

व्याख्या—[1]रहवीरपुरं नगरं, तत्थ दीवगमुज्जाणं, तत्थ अज्जकण्हा णामायरिया समोसढा, तत्थ य एगो सहस्समल्लो सिवभूती नाम, तस्स भज्जा, सा तस्स मायं वट्टेइ–तुज्झ पुत्तो दिवसे २ अड्ढरत्ते एइ, अहं जग्गामि छुहातिया अच्छामि, ताहे ताए भण्णति–मा दारं देज्जाहि, अहं अज्ज जग्गामि, सा पसुत्ता, इयरा जग्गइ, अड्ढरत्ते आगओ बारं मग्गइ, मायाए अंबाडिओ–जत्थ एयाए वेलाए उग्घाडियाणि दाराणि तत्थ वच्च, सो निग्गओ, मग्गंतेण साहुपडिस्सओ उग्घाडिओ दिट्ठो, वंदित्ता भणति–पव्वावेह मं, ते नेच्छंति, सयं लोओ कओ, ताहे से लिंगं दिण्णं, ते विहरिया। पुणो आगयाणं रण्णा कंबलरयणं से दिण्णं, आयरिएण किं एएण जतीणं ?, किं गहियंति भणिऊण तस्स अणापुच्छाए फालियं निसिज्जाओ य कयाओ, ततो कसाईओ। अन्नया जिणकप्पिया वण्णिज्जंति, जहा–'जिणकप्पिया य दुविहा पाणीपाया

१ रथवीरपुरं नगरं, तत्र दीपकाख्यमुद्यानं, तत्र आर्यकृष्णा नामाचार्याः समवसृताः, तत्र चैकः सहस्रमल्लः शिवभूतिर्नाम, तस्य भार्या, सा तस्य मातरं कलहयति–तव पुत्रो दिवसे दिवसेऽर्धरात्रे आयाति,अहं जागर्मि क्षुधार्दिता तिष्ठामि, तदा तया भण्यते–मा दारं पिधाः, अहमद्य जागर्मि, सा प्रसुप्ता, इतरा जागर्त्ति, अर्धरात्रे आगतो द्वारं मार्गयति, मात्रा निर्भर्त्सितः–यत्रैतस्यां वेलायामुद्घाटितानि द्वाराणि तत्र व्रज, स निर्गतः, मार्गयता साधुप्रतिश्रय उद्घाटितो दृष्टः, वन्दित्वा भणति–प्रव्राजयत मां, ते नेच्छन्ति, स्वयं लोचः कृतः, तदा तस्मै लिङ्गं दत्तं,ते विहृताः। पुनरागतेषु राज्ञा कम्बलरत्नं तस्मै दत्तम्, आचार्येण किमेतेन यतीनाम्? किं गृहीतमिति भणित्वा तमनापृच्छय स्फाटितं निषद्याश्च कृताः, ततः कषायितः। अन्यदा जिनकल्पिका वर्ण्यन्ते, यथा–जिनकल्पिकाश्च द्विविधाः पाणिपात्राः.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बोटिक मत-उत्पत्ति संबंधे शिवभूतिकथा

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

[1]पडिग्गहधरा य । पाउरणमपाउरणा एक्केका ते भवे दुविहा ॥ १ ॥ दुगतिगचउक्कपणगं नवदसएक्कारसेव बारसगं । एए अट्ठ विकप्पा जिणकप्पे होंति उवहिस्स ॥२॥ केसिंचि दुविहो उवही रयहरणं पोत्तिया य,अन्नेसिं तिविहो–दो ते चेव कप्पो वड्ढिओ, चउव्विहे दो कप्पा, पंचविहे तिण्णि,नवविहे रयहरणमुहपत्तियाओ, तहा–'पत्तं पत्ताबंधो पायट्ठवणं च पायकेसरिया । पडलाइं रयत्ताणं च गोच्छओ पायणिज्जोगो ॥ १ ॥' दसविहे कप्पो वड्ढितो, एगारसविहे दो, बारसविहे तिन्नि । एत्थंतरे सिवभूइणा पुच्छिओ–किमियाणिं एत्तिओ उवही धरिज्जति ?, जेण जिणकप्पो न कीरइ, गुरुणा भणियं–ण तीरइ-सो इयाणिं वोच्छिन्नो, ततो सो भणति–किं वोच्छिज्जति ?, अहं करेमि, सो चेव परलोगत्थिणा कायव्वो, किं उवहिपडिग्गहेण ?, परिग्गहसब्भावे कसायमुच्छाभयाइया बहुदोसा, अपरिग्गहत्तं च सुए भणियं, अचेला य जिणिंदा, अतो अचेलया सुंदरत्ति, गुरुणा भणिओ–देहसब्भावेऽवि कसायमुच्छाइया कस्सवि हवंति, तो देहोऽवि परिच्चइयव्वोत्ति,

---

१ पतद्ग्रहधराश्च । सप्रावरणा अप्रावरणा एकैकास्ते भवेयुर्द्विविधाः ॥ १ ॥ द्विकः त्रिकः चतुष्कः पञ्चको नवको दशक एकादशक एव द्वादशकः । एतेऽष्ट विकल्पा जिनकल्पे भवन्त्युपधेः ॥ २ ॥ केषाञ्चिद्द्विविध उपधिः रजोहरणं मुखवस्त्रिका च, अन्येषां त्रिविधः–द्वौ तावेव कल्पो वर्धितः, चतुर्विधे द्वौ कल्पौ, पञ्चविधे त्रयः, नवविधे रजोहरणमुखवस्त्रिके, तथा–पात्रं पात्रबन्धः पात्रस्थापनं च पात्रकेशरिका । पटला रजस्त्राणं च गोच्छकः पात्रनियोगः ॥ १ ॥ दशविधे कल्पो वर्धितः, एकादशविधे द्वौ, द्वादशविधे त्रयः । अत्रान्तरे शिवभूतिना पृष्टः–किमिदानीमेतावानुपधिर्धार्यते, येन जिनकल्पो न क्रियते, गुरुणा भणितं–न शक्यते, स इदानीं व्युच्छिन्नः, ततः स भणति–किं व्युच्छिद्यते ?, अहं करोमि, स एव परलोकार्थिना कर्त्तव्यः, किमुपधिपरिग्रहेण ?, परिग्रहसद्भावे कषायमूर्च्छाभयादिका बहवो दोषाः, अपरिग्रहत्वं च श्रुते भणितम्, अचेलाश्च जिनेन्द्राः, अतोऽचेलता सुन्दरेति, गुरुणा भणितः–देहसद्भावेऽपि कषायमूर्च्छादयः कस्यचित् भवन्ति, ततो देहोऽपि परित्यक्तव्य इति,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

अपरिग्गहत्तं च सुते भणियं, धम्मोपकरणेवि मुच्छा न कायव्वत्ति, जिणावि णेगंतेण अचेला, जओ भणियं–'सवेवि एग-दूसेण निग्गया जिणवरा इत्यादि' एवं थेरेहिं कहणा से कतत्ति गाथार्थः ॥ एवंपि पण्णविओ कम्मोदएण चीवराणि छड्डेत्ता गओ, तस्सुत्तरा भइणी, उज्जाणे ठियस्स वंदिया गया, तं दट्ठूण तीएवि चीवराणि छड्डियाणि, ताहे भिक्खं पविट्ठा, गणियाए दिट्ठा, मा अम्ह लोगो विरज्जिहित्ति उरे से पोत्ती बद्धा, ताहे सा नेच्छइ, तेण भणियं–अच्छउ एसा, तव देवयाए दिण्णा, तेण य दो सीसा पव्वाविया–कोडिन्नो कोट्टवीरे य, ततो सीसाण परंपराफासो जाओ, एवं बोडिया उप्पण्णा ॥ अमुमेवार्थमुपसंजिहीर्षुराह मूलभाष्यकारः—

ऊहाए पण्णत्तं बोडियसिवभूइउत्तराहि इमं । मिच्छादंसणमिणमो रहवीरपुरे समुप्पण्णं ॥ १४७ ॥
बोडियसिवभूईओ बोडियलिंगस्स होइ उप्पत्ती । कोडिण्णकोट्टवीरा परंपराफाससमुप्पण्णा ॥१४८॥ (मू० भा०)

व्याख्या—'ऊहया' स्वतर्कबुद्ध्या 'प्रज्ञप्तं' प्रणीतं बोटिकशिवभूत्युत्तराभ्यामिदं मिथ्यादर्शनम्, 'इणमो'त्ति एतच्च क्षेत्रतो रथवीरपुरे समुत्पन्नमिति गाथार्थः ॥ बोटिकशिवभूतेः सकाशात् बोटिकलिङ्गस्य भवत्युत्पत्तिः, वर्तमाननिर्देशप्रयोजनं पूर्ववत्, पाठान्तरं वा 'बोडियलिंगस्स आसि उप्पत्ती' ततः कौडिन्यः कुट्टवीरश्च,'सर्वो द्वन्द्वो विभाषया एकवद्भव-

१ अपरिग्रहत्वं च सूत्रे भणितं, धर्मोपकरणेऽपि मूर्च्छा न कर्त्तव्येति, जिना अपि नैकान्तेनाचेलाः, यतो भणितं–'सर्वेऽपि एकदूष्येण निर्गता जिनाश्चतुर्विंशतिः, एवं स्थविरैः कथना तस्मै कृतेति । एवमपि प्रज्ञापितः कर्मोदयेन चीवराणि त्यक्त्वा गतः, तस्योत्तरा भगिनी, उद्यानस्थिताय वन्दितुं गता, तं दृष्ट्वा तयाऽपि चीवराणि त्यक्तानि, तदा भिक्षायै प्रविष्टा, गणिकया दृष्टा, माऽस्मासु लोको विरङ्क्षीदिति उरसि तस्या वस्त्रं बद्धं, तदा सा नेच्छति, तेन भणितं–तिष्ठ:वेतत् तुभ्यं देवतया दत्तं, तेन च द्वौ शिष्यौ प्रव्राजितौ–कौण्डिन्यः कोट्टवीरश्च, ततः शिष्याणां परम्परास्पर्शो जातः, एवं बोटिका उत्पन्नाः ।

॥३२४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

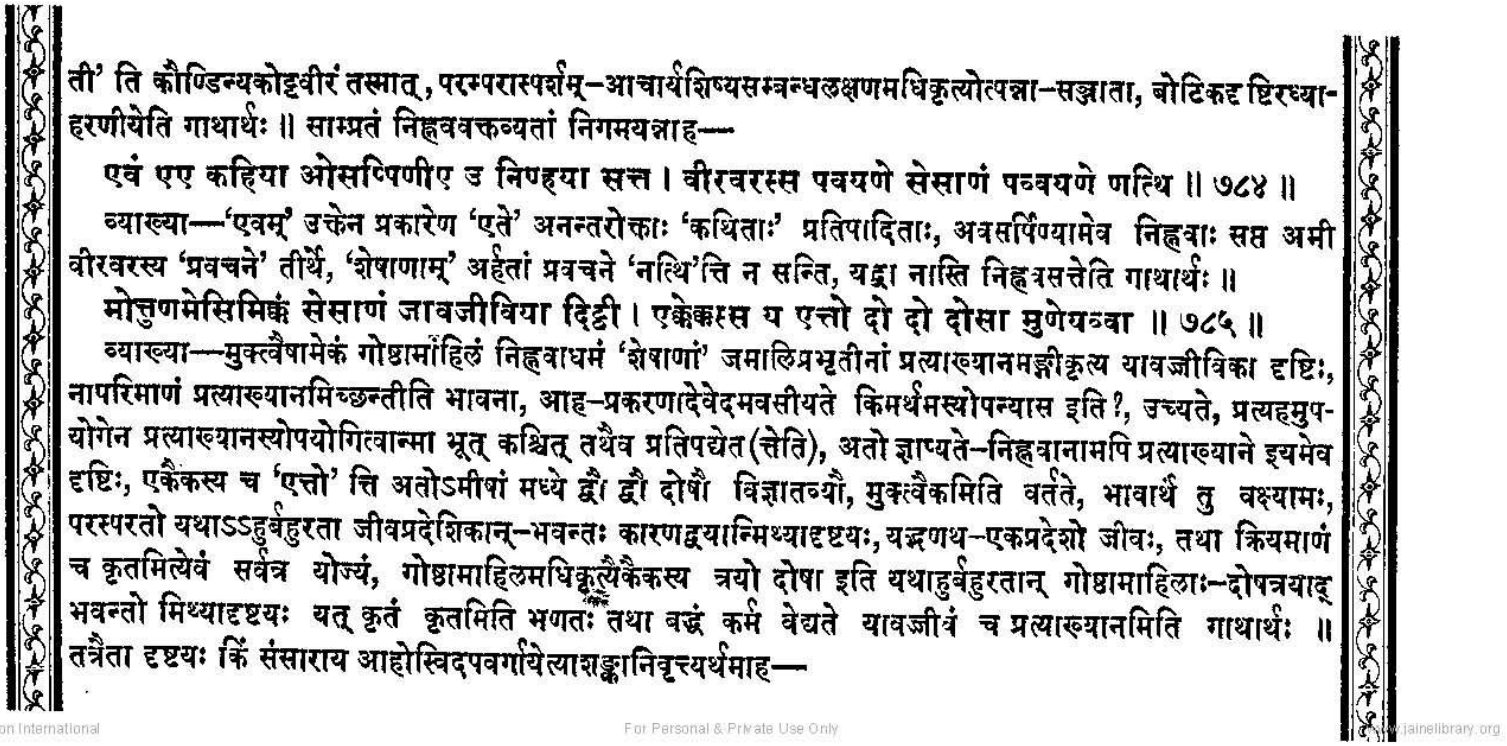

ती' ति कौण्डिन्यकोट्टवीरं तस्मात्, परम्परास्पर्शम्–आचार्यशिष्यसम्बन्धलक्षणमधिकृत्योत्पन्ना–सञ्जाता, बोटिकदृष्टिरध्याहरणीयेति गाथार्थः ॥ साम्प्रतं निह्नववक्तव्यतां निगमयन्नाह—

एवं एए कहिया ओसप्पिणीए उ निण्हया सत्त । वीरवरस्स पवयणे सेसाणं पव्वयणे णत्थि ॥ ७८४ ॥

व्याख्या—'एवम्' उक्तेन प्रकारेण 'एते' अनन्तरोक्ताः 'कथिताः' प्रतिपादिताः, अवसर्पिण्यामेव निह्नवाः सप्त अमी वीरवरस्य 'प्रवचने' तीर्थे, 'शेषाणाम्' अर्हतां प्रवचने 'नत्थि'त्ति न सन्ति, यद्वा नास्ति निह्नवसत्तेति गाथार्थः ॥

मोत्तुणमेसिमिक्कं सेसाणं जावजीविया दिट्ठी । एक्केक्कस्स य एत्तो दो दो दोसा मुणेयव्वा ॥ ७८५ ॥

व्याख्या—मुक्त्वैषामेकं गोष्ठामाहिलं निह्नवाधमं 'शेषाणां' जमालिप्रभृतीनां प्रत्याख्यानमङ्गीकृत्य यावज्जीविका दृष्टिः, नापरिमाणं प्रत्याख्यानमिच्छन्तीति भावना, आह–प्रकरणादेवेदमवसीयते किमर्थमस्योपन्यास इति?, उच्यते, प्रत्यहमुपयोगेन प्रत्याख्यानस्योपयोगित्वान्मा भूत् कश्चित् तथैव प्रतिपद्येत(त्तेति), अतो ज्ञाप्यते–निह्नवानामपि प्रत्याख्याने इयमेव दृष्टिः, एकैकस्य च 'एत्तो' त्ति अतोऽमीषां मध्ये द्वौ द्वौ दोषौ विज्ञातव्यौ, मुक्त्वैकमिति वर्तते, भावार्थं तु वक्ष्यामः, परस्परतो यथाऽऽहुर्बहुरता जीवप्रदेशिकान्–भवन्तः कारणद्वयान्मिथ्यादृष्टयः, यद्गणथ–एकप्रदेशो जीवः, तथा क्रियमाणं च कृतमित्येवं सर्वत्र योज्यं, गोष्ठामाहिलमधिकृत्यैकैकस्य त्रयो दोषा इति यथाहुर्बहुरतान् गोष्ठामाहिलाः–दोषत्रयाद् भवन्तो मिथ्यादृष्टयः यत् कृतं कृतमिति भणतः तथा बद्धं कर्म वेद्यते यावज्जीवं च प्रत्याख्यानमिति गाथार्थः ॥ तत्रैता दृष्टयः किं संसाराय आहोस्विदपवर्गायेत्याशङ्कानिवृत्त्यर्थमाह—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

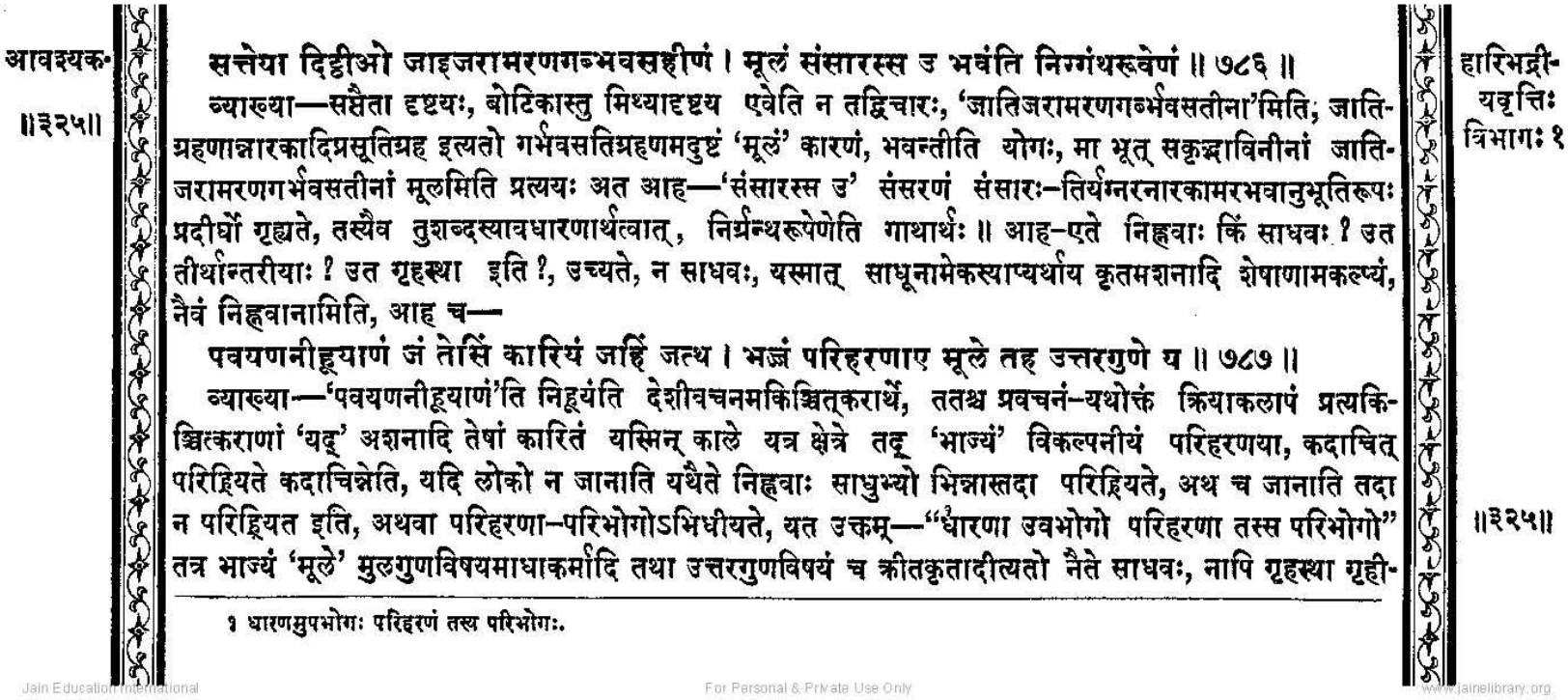

आवश्यक- ॥३२५॥

सत्तेया दिट्ठीओ जाइजरामरणगब्भवसहीणं । मूलं संसारस्स उ भवंति निग्गंथरूवेणं ॥ ७८६ ॥

व्याख्या—सप्तैता दृष्टयः, बोटिकास्तु मिथ्यादृष्टय एवेति न तद्विचारः, 'जातिजरामरणगर्भवसतीना'मिति; जातिग्रहणान्नारकादिप्रसूतिग्रह इत्यतो गर्भवसतिग्रहणमदुष्टं 'मूलं' कारणं, भवन्तीति योगः, मा भूत् सकृद्भाविनीनां जातिजरामरणगर्भवसतीनां मूलमिति प्रत्ययः अत आह—'संसारस्स उ' संसरणं संसारः–तिर्यग्नरनारकामरभवानुभूतिरूपः प्रदीर्घो गृह्यते, तस्यैव तुशब्दस्यावधारणार्थत्वात्, निर्ग्रन्थरूपेणेति गाथार्थः ॥ आह–एते निह्नवाः किं साधवः ? उत तीर्थान्तरीयाः ? उत गृहस्था इति ?, उच्यते, न साधवः, यस्मात् साधूनामेकस्याप्यर्थाय कृतमशनादि शेषाणामकल्प्यं, नैवं निह्नवानामिति, आह च—

पवयणनीहूयाणं जं तेसिं कारियं जहिं जत्थ । भज्जं परिहरणाए मूले तह उत्तरगुणे य ॥ ७८७ ॥

व्याख्या—'पवयणनीहूयाणं'ति निहूयंति देशीवचनमकिञ्चित्करार्थे, ततश्च प्रवचनं–यथोक्तं क्रियाकलापं प्रत्यकिञ्चित्कराणां 'यद्' अशनादि तेषां कारितं यस्मिन् काले यत्र क्षेत्रे तद् 'भाज्यं' विकल्पनीयं परिहरणया, कदाचित् परिहियते कदाचिन्नेति, यदि लोको न जानाति यथैते निह्नवाः साधुभ्यो भिन्नास्तदा परिहियते, अथ च जानाति तदा न परिहियत इति, अथवा परिहरणा–परिभोगोऽभिधीयते, यत उक्तम्—"[1]धारणा उवभोगो परिहरणा तस्स परिभोगो" तत्र भाज्यं 'मूले' मुलगुणविषयमाधाकर्मादि तथा उत्तरगुणविषयं च क्रीतकृतादीत्यतो नैते साधवः, नापि गृहस्था गृही-

१ धारणमुपभोगः परिहरणं तस्य परिभोगः.

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

॥३२५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

तलिङ्गत्वात्, नापि तीर्थान्तरीयाः, नान्यतीर्थ्याः, यतस्तदर्थाय यत् कृतं तत् कल्प्यमेव भवति, अतोऽव्यक्ता एत इति गाथार्थः ॥ आह–बोटिकानां यत् कारितं तत्र का वार्ता ?, उच्यते—

मिच्छादिट्ठीयाणं जं तेसिं कारियं जहिं जत्थ । सव्वंपि तयं सुद्धं मूले तह उत्तरगुणे य ॥ ७८८ ॥ दारं ॥

व्याख्या—'मिथ्यादृष्टीनां' बोटिकानां 'यद्' अशनादि तेषां कारितं यस्मिन् काले यत्र क्षेत्रे सर्वमपि तत् शुद्धं –कल्प्यमिति भावना, मूलगुणविषयं तथोत्तरगुणविषयं चेति गाथार्थः ॥ उक्तं समवतारद्वारम् , अधुनाऽनुमतद्वारं व्याख्यायते–तत्र यद्यस्य नयस्य सामायिकं मोक्षमार्गत्वेनानुमतं तदुपदर्शयन्नाह—

तवसंजमो अणुमओ निग्गंथं पवयणं च ववहारो । सद्दज्जुसुयाणं पुण निव्वाणं संजमो चेव ॥ ७८९ ॥ दारं ॥

व्याख्या—तापयतीति तपः तपःप्रधानः संयमस्तपःसंयमः असौ 'अनुमतः' अभीष्टो मोक्षाङ्गतयेति, निर्ग्रन्थानामिदं नैर्ग्रन्थ्यम्–आर्हतमिति भावना, किं ?–प्रवचनं श्रुतमित्यर्थः, चशब्दोऽनुक्तसम्यक्त्वसामायिकसमुच्चयार्थः, 'ववहारो' त्ति एवं व्यवहारो व्यवस्थितः, व्यवहारग्रहणाच्च तदधोवर्तिनैगमसंग्रहनयद्वयमपि गृहीतं वेदितव्यं, ततश्चैतदुक्तं भवति—नैगमसंग्रहव्यवहारास्त्रिविधमपि सामायिकं मोक्षमार्गतयाऽनुमन्यन्ते, तपःसंयमग्रहणाच्चारित्रसामायिकं, प्रवचनग्रहणाद् श्रुतसामायिकं, चशब्दात् सम्यक्त्वसामायिकम्, आह–यद्येवं किमिति मिथ्यादृष्टयः ?, उच्यते, यतो व्यस्तान्यप्यनुमन्यन्ते, न सापेक्षाण्येव, शब्दऋजुसूत्रयोः पुनः कारणे कार्योपचारात् निर्वाणमार्ग एव निर्वाणं संयम एवेत्यनुमतम् , ऋजुसूत्रमुल्लङ्घ्यादौ शब्दोपन्यासः शेषोपरितननयानुमतसंग्रहार्थः, एतदुक्तं भवति–ऋजुसूत्रादयः सर्वे चारित्रसामायि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

कमेव मोक्षमार्गत्वेनानुमन्यन्ते, नेतरे द्वे, तद्भावेऽपि मोक्षाभावात्, तथाहि—समग्रज्ञानदर्शनलाभेऽपि नानन्तरमेव मोक्षः, किन्तु सर्वसंवररूपचारित्रावाप्त्यनन्तरमेव, अतस्तद्भावभावित्वात् तदेव मोक्षमार्ग इति गाथार्थः ॥ द्वारं ॥ 'उद्देसे निद्देसे य' इत्याद्युपोद्घातनिर्युक्तिप्रथमद्वारगाथावयवार्थो गतः, इदानीं द्वितीयद्वारगाथाप्रथमावयवः किमिति द्वारं व्याख्यायते–किं सामायिकं ?, किं तावज्जीवः ? उताजीवः ? अथोभयम् ? उतानुभयं ?, जीवाजीवत्वेऽपि किं द्रव्यं ? उत गुण इत्याशङ्कासम्भवे सत्याह—

आया खलु सामइयं पच्चक्खायंतओ हवइ आया। तं खलु पच्चक्खाणं आवाए सव्वदव्वाणं ॥ ७९० ॥

व्याख्या—'आत्मा' जीवः खलुशब्दोऽवधारणे, आत्मैव–जीव एव सामायिकमित्यजीवादिपूर्वोक्तविकल्पव्यवच्छेदः, 'पच्चक्खायंतओ हवइ आय' त्ति स च प्रत्याचक्षाणः–प्रत्याख्यानं कुर्वन् 'क्रियमाणं कृत' मिति क्रियाकालनिष्ठाकालयोरभेदाद् वर्तमानस्यैवातीतापत्तेः कृतप्रत्याख्यानोऽपि गृह्यते, स एव च परमार्थत आत्मा, श्रद्धानज्ञानसावद्यनिवृत्तिस्वस्वभावावस्थितत्वात्, शेषः संसारी पुनरात्मैव न भवति, प्रचुरघातिकर्मभिस्तस्य स्वाभाविकगुणतिरस्करणात्, अतो द्वितीयाऽऽत्मग्रहणं, 'तं खलु पच्चक्खाणं' ति खलुशब्दः सामायिकस्य जीवपरिणतित्वज्ञापनार्थः, तत् प्रत्याख्यानं जीवपरिणतिरूपत्वाद्विषयमधिकृत्य 'आवाए सव्वदव्वाणं' ति सर्वद्रव्याणामापाते—आभिमुख्येन समवाये, निष्पद्यत इति वाक्यशेषः, तस्य श्रद्धेयज्ञेयक्रियोपयोगित्वात् सर्वद्रव्याणामिति। आह—किं सामायिकमिति स्वरूपप्रश्ने प्रस्तुते सति-विषयनिरूपणमस्यान्याय्यम्, अप्रस्तुतत्वाद्, बाह्यशास्त्रवत्, उच्यते, अप्रस्तुतत्वादित्यसिद्धं, तथाहि–सामायिकस्य विषयनि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

रूपणं प्रस्तुतमेव, सामायिकस्याङ्गभूतत्वात्, सामायिकस्वात्मवदित्यलं विस्तरेण, इति गाथार्थः ॥ तत्र यदुक्तम् 'आत्मा खलु सामायिक' मिति, तत्र यथाभूतोऽसौ सामायिकं तथाभूतमभिधित्सुराह मूलभाष्यकारः—

सावज्जजोगविरओ तिगुत्तो छसु संजओ । उवउत्तो जयमाणो आया सामाइयं होई ॥१४९॥ (मू० भा)

व्याख्या—सावद्ययोगविरतः अवद्यं मिथ्यात्वकषायनोकषायलक्षणं सहावद्येन सावद्यो योगस्तद्विरतः–तद्विनिवृत्तः, त्रिभिः–मनोवाक्कायैर्गुप्तः षट्सु–जीवनिकायेषु संयतः–प्रयत्नवान्, तथाऽवश्यंकर्तव्येषु योगेषु सदोपयुक्तः, यतमानश्च तेष्वेवासेवनया, इत्थम्भूत एवात्मा सामायिकं भवतीति गाथार्थः ॥ साम्प्रतं यदुक्तम् 'तं खलु पच्चक्खाणं आवाए सव्वदव्वाणं' ति, तत्र साक्षान्महाव्रतरूपं चारित्रसामायिकमधिकृत्य सर्वद्रव्यविषयतामस्योपदर्शयन्नाह—

पढमंमि सव्वजीवा बिइए चरिमे य सव्वदव्वाइं । सेसा महव्वया खलु तदेक्कदेसेण दव्वाणं ॥ ७९१ ॥

व्याख्या—'प्रथमे' प्राणातिपातनिवृत्तिरूपे व्रते विषयद्वारेण चिन्त्यमाने 'सर्वजीवाः' त्रसस्थावरसूक्ष्मेतरभेदा विषयत्वेन द्रष्टव्याः, तदनुपालनरूपत्वात् तस्येति, तथा 'द्वितीये' मृषावादनिवृत्तिरूपे 'चरिमे च' परिग्रहनिवृत्तिरूपे सर्वद्रव्याणि विषयत्वेन द्रष्टव्यानि, कथम् ?, नास्ति पञ्चास्तिकायात्मको लोक इति मृषावादस्य सर्वद्रव्यविषयत्वात्, तन्निवृत्तिरूपत्वाच्च द्वितीयव्रतस्य, तथा मूर्च्छाद्वारेण परिग्रहस्यापि सर्वद्रव्यविषयत्वाच्चरमव्रतस्य च तन्निवृत्तिरूपत्वादशेषद्रव्यविषयतेति पूर्वार्द्धभावना । 'सेसा महव्वया खलु तदेक्कदेसेण दव्वाणं' ति शेषाणि महाव्रतानि, खल्वित्यवधारणार्थः, तस्य च व्यवहितः सम्बन्धः, तेषामेकदेशस्तदेकदेशस्तेन तदेकदेशेनैव हेतुभूतेन द्रव्याणां, भवन्तीति क्रियाध्याहारः,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सामायिक-स्वरुप संबंधे वक्तव्यता

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

कथम् ?–तृतीयस्य ग्रहणधारणीयद्रव्यादत्तादानविरतिरूपत्वात्, चतुर्थस्य च रूपरूपसहगतद्रव्यसम्बन्ध्यब्रह्मविरतिरूपत्वात्, षष्ठस्य च रात्रिभोजनविरतिरूपत्वादिति पश्चार्द्धभावना, इति गाथार्थः ॥ एवं चारित्रसामायिकं निवृत्तिद्वारेण सर्वद्रव्यविषयं श्रुतसामायिकमपि श्रुतज्ञानात्मकत्वात् सर्वद्रव्यविषयमेव सम्यक्त्वसामायिकमपि सर्वद्रव्याणां सगुणपर्यायाणां श्रद्धानरूपत्वात् सर्वविषयमेवेत्यलं प्रसङ्गेन, प्रकृतं प्रस्तुमः–तत्र सामायिकमजीवादिव्युदासेन जीव एवेत्युक्तं, तस्य च नयमतभेदेन द्रव्यगुणप्राप्तौ सकलनयाधारद्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकाभ्यां स्वरूपव्यवस्थोपस्थापनायाह—

जीवो गुणपडिवन्नो णयस्स दव्वट्ठियस्स सामइयं । सो चेव पज्जवणयट्ठियस्स जीवस्स एस गुणो ॥ ७९२ ॥

व्याख्या—'जीवः' आत्मा, गुणैः प्रतिपन्नः–आश्रितः–गुणप्रतिपन्नः, गुणाश्च सम्यक्त्वादयः खल्वौपचारिकाः, 'नयस्य' द्रव्यार्थिकस्य सामायिकमिति वस्तुत आत्मैव सामायिकं, गुणास्तु तद्व्यतिरेकेणानवगम्यमानत्वान्न सन्त्येव, तत्प्रतिपत्तिरपि तस्य भ्रान्ता, चित्रे निम्नोन्नतभेदप्रतिपत्तिवदिति भावना, स एव सामायिकादिर्गुणः पर्यायार्थिकनयस्य, परमार्थतो यस्माज्जीवस्य एष गुण इति, उत्तरपदप्रधानत्वात् तत्पुरुषस्य, यथा तैलस्य धारेति, न तत्र धाराऽतिरेकेणापरं तैलमस्ति, एवं न गुणातिरिक्तो जीव इति, इत्थं चेदमङ्गीकर्तव्यमिति मन्यते, तथाहि–गुणातिरिक्तो जीवो नास्ति, प्रमाणानुपलब्धेः, रूपाद्यर्थान्तररूपघटवत्, तस्माद्गुणः सामायिकमिति हृदयं, न तु जीव इति गाथार्थः ॥ साम्प्रतं पर्यायार्थिक एव स्वं पक्षं समर्थयन्नाह—

उप्पज्जंति वयंति य परिणम्मंति य गुणा ण दव्वाइं । दव्वप्पभवा य गुणा ण गुणप्पभवाइं दव्वाइं ॥७९३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

व्याख्या—उत्पद्यन्ते व्ययन्ते च, अनेनोत्पादव्ययरूपेण परिणमन्ति च गुणाः, चशब्द एवकारार्थः स चावधारणे, तस्य चैवं प्रयोगः-गुणा एव न द्रव्याण्युत्पादव्ययरूपेण परिणमन्तीति, अतस्त एव सन्ति, उत्पादव्ययपरिणामत्वात्, पत्रनीलतारक्तकतादिवत्, तदतिरिक्तस्तु गुणी नास्त्येव, उत्पादव्ययपरिणामरहितत्वाद्, वान्ध्येयादिवत्, किञ्च 'दव्वप्पभवा य गुणा न' द्रव्यात् प्रभवो येषां ते द्रव्यप्रभवाः, चशब्दो युक्त्यन्तरसमुच्चये, गुणा न भवन्ति, तथा गुणप्रभवाणि द्रव्याणि, नैवेति वर्तते, अतो न कारणत्वं नापि कार्यत्वं द्रव्याणामित्यभावः, सतः कार्यकारणरूपत्वात्, अथवा द्रव्यप्रभवाश्च गुणा न, किन्तु गुणप्रभवाणि द्रव्याणि, प्रतीत्यसमुत्पादोपजातगुणसमुदये द्रव्योपचारात्, तस्माद् गुणः सामायिकमिति गाथार्थः ॥ एवं पर्यायार्थिकेन स्वमते प्रतिपादिते सति द्रव्यार्थिक आह—द्रव्यं प्रधानं न गुणाः, यस्मात्—

जं जं जे जे भावे परिणमइ पओगवीससा दव्वं। तं तह जाणाइ जिणो अपज्जवे जाणणा नत्थि ॥७९४॥ दारं ॥

व्याख्या—यद् यद् यान् यान् भावान् विज्ञानघटादीन् परिणमति प्रयोगविस्रसातो द्रव्यं तत्, प्रयोगेन घटादीन् विस्रसातोऽभ्रेन्द्रधनुरादीन्, द्रव्यमेव तदुत्प्रेक्षितपर्यायमुत्फणविफणकुण्डलितादिपर्यायसमन्वितसर्पद्रव्यवत्, तथाहि–न तत्र केचनोत्फणादयः सर्पद्रव्यातिरिक्ताः सन्ति, निर्मूलत्वात्, किन्तु तदेव तत्र परमार्थसदिति, किञ्च–तत् 'तथैव' अन्वयप्रधानं पर्यायोपसर्जनं जानाति परिच्छिनत्ति जिनः 'अपज्जवे जाणणा णत्थि' त्ति अपर्याये–निराकारे 'जाणणा नत्थि'त्ति परिज्ञा नास्ति, न च ते पर्यायाः तत्र वस्तुनि सन्तो द्रव्यमेव, तदाकारवत्, ततश्च तदेव सत्, केवलिनाऽप्यवगम्यमानत्वात्, केवलस्वात्मवत्, तस्माज्जीव एव सामायिकमिति गाथार्थः॥ अथवा 'उप्पज्जंति' त्ति इयमेव गाथा द्रव्यार्थिकमतेन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

व्याख्यायते–द्रव्यार्थिकवादी पर्यायार्थिकवादिनं प्रत्याह–गुणा न सन्त्येव, कुतो ?, यस्मादुत्पद्यन्ते व्ययन्ते च, अनेनोत्पाद्व्ययपरिणामेन परिणमन्ति गुणा एव, न द्रव्याणि, ततश्च तान्येव सन्ति, सततमवस्थितत्वाद् , अपरोपादेयत्वात् , द्रव्यप्रभवाश्च गुणाः परोपादाना वर्तन्ते, न गुणप्रभवाणि द्रव्याण्यपरोपादानत्वात्, तस्मादात्मैव सामायिकमिति गाथार्थः ॥ एवमवगतोभयनयमतश्चोदक आह–किमत्र तत्त्वमिति ?, अत्रोच्यते–सामायिकभावपरिणतः आत्मा सामायिकं, यस्माद् यत् सत् तद् द्रव्यपर्यायोभयरूपमिति, तथा चागमः—

जं जं जे जे भावे परिणमइ पओगवीससा दव्वं। तं तह जाणाइ जिणो अपज्जवे जाणणा नत्थि ॥ ७९५ ॥

व्याख्या—यद् यद् यान् यान् 'भावान्' आध्यात्मिकान् बाह्यांश्च परिणमति प्रयोगविस्रसा(तो) द्रव्यं, भावार्थः पूर्ववत्, तत्तथापरिणाममेव जानाति जिनः, अपर्याये परिज्ञा नास्ति, तस्मादुभयात्मकं वस्तु, केवलिना तथाऽवगतत्वादिति गाथार्थः ॥ साम्प्रतं कतिविधमिति द्वारमिति व्याख्यायते, तत्र—

सामाइयं च तिविहं सम्मत्त सुयं तहा चरित्तं च। दुविहं चेव चरित्तं अगारमणगारियं चेव ॥ ७९६ ॥

व्याख्या—'सामायिकं' प्रागनिरूपितशब्दार्थं, 'चः' पूरणे 'त्रिविधं' त्रिभेदं, सम्यक्त्वम्, अनुस्वारलोपात्, श्रुतं तथा चारित्रं, चशब्दः स्वगतानेकभेदप्रदर्शनार्थः, तत्र सम्यक्त्वमिति सम्यक्त्वसामायिकं, तद् द्विविधं–नैसर्गिकमधिगमजं च, अथवा दशविधम्–एकैकस्यौपशमिकसास्वादनक्षायोपशमिकवेदकक्षायिकभेदभिन्नत्वात्, अथवा त्रिविधं–क्षायिकं क्षायोपशमिकमौपशमिकं च, कारकरोचकव्यञ्जकभेदं वा, श्रुतमिति श्रुतसामायिकं, तच्च सूत्रार्थोभयात्मकत्वात् त्रिवि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

धम्, अक्षरानक्षरादिभेदादनेकविधं चेति, 'चारित्रम्' इति चारित्रसामायिकं, तच्च क्षायिकादि त्रिविधं, सामायिकच्छेदोपस्थाप्यपरिहारविशुद्धिकसूक्ष्मसम्परायययथाख्यातभेदेन वा पञ्चविधम्, अथवा गृहीताशेषविकल्पं द्विविधम्–अगारसामायिकमनगारसामायिकं च, तथा चाह—'दुविधं चेव चरित्तं अगारमणगारियं चेव' द्विविधमेव चारित्रं मूलभेदेन, अगाः–वृक्षास्तैः कृतमगारं–गृहं तदस्यास्तीति मतुवृलोपादगारः–गृहस्थस्तस्येदम्–आगारिकम्, इदं चानेकभेदं, देशविरतेश्चित्ररूपत्वात्, अनगारः–साधुस्तस्येदम्–आनगारिकं चैव । आह—सम्यक्त्वश्रुतसामायिके विहाय चारित्रसामायिकभेदस्य साक्षादभिधानं किमर्थम्?, उच्यते, अस्मिन् सति तयोर्नियमेन भाव इति ज्ञापनार्थं, चरमत्वाद्वा यथाऽस्य भेद उक्त एवं शेषयोरपि वाच्य इति ज्ञापनार्थमिति गाथार्थः ॥ साम्प्रतं मूलभाष्यकारः श्रुतसामायिकं व्याचिख्यासुस्तस्याध्ययनरूपत्वादाह—

अज्झयणंपि य तिविहं सुत्ते अत्थे य तदुभए चेव। सेसेसुवि अज्झयणेसु होइ एसेव निज्जुत्ती ॥ १५० ॥ (भा०)

व्याख्या—अध्ययनमपि च त्रिविधं सूत्रविषयमर्थविषयं च तदुभयविषयं चैव, अपिशब्दात् सम्यक्त्वसामायिकमप्यौपशमिकादिभेदात् त्रिविधमिति। प्रक्रान्तोपोद्घातनिर्युक्तेरशेषाध्ययनव्यापितां दर्शयन्नाह–'शेषेष्वपि' चतुर्विंशतिस्तवादिष्वन्येषु वाऽध्ययनेषु भवति एषैव निर्युक्तिः–उद्देशनिर्देशादिका निरुक्तिपर्यवसानेति। आह—अशेषद्वारपरिसमाप्तावतिदेशो न्याय्यः, अपान्तराले किमर्थमिति?, उच्यते, 'मध्यग्रहणे आद्यन्तयोर्ग्रहणं भवती' ति न्यायप्रदर्शनार्थ इति गाथार्थः ॥ द्वारं ॥ अधुना कस्येति द्वारं प्रतिपाद्यते, तत्र यस्य तद् भवति तदभिधित्सयाऽऽह—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

जस्स सामाणिओ अप्पा, संजमे नियमे तवे । तस्स सामाइयं होइ, इइ केवलिभासियं ॥ ७९७ ॥

व्याख्या—यस्य 'सामानिकः' सन्निहितः, अप्रवसित इत्यर्थः, 'आत्मा' जीवः, क्व ?–'संयमे' मूलगुणेषु 'नियमे' उत्तरगुणेषु 'तपसि' अनशनादिलक्षणे 'तस्य' एवम्भूतस्याप्रमादिनः सामायिकं भवति, 'इति' एवं केवलिभिर्भाषितमिति गाथार्थः ॥

जो समो सव्वभूएसु, तसेसु थावरेसु य । तस्स सामाइयं होइ, इइ केवलिभासियं ॥ ७९८ ॥

व्याख्या—यः 'समः' मध्यस्थः, आत्मानमिव परं पश्यतीत्यर्थः, 'सर्वभूतेषु' सर्वप्राणिषु 'त्रसेषु' द्वीन्द्रियादिषु 'स्थावरेषु च' पृथिव्यादिषु, तस्य सामायिकं भवति, एतावत् केवलिभाषितमिति गाथार्थः ॥ साम्प्रतं फलप्रदर्शनद्वारेणास्य करणविधानं प्रतिपादयन्नाह—

सावज्जजोगप्परिवज्जणट्ठा,सामाइयं केवलियं पसत्थं। गिहत्थधम्मा परमंति णच्चा,कुज्जा बुहो आयहियं परत्थं ।

व्याख्या—सावद्ययोगपरिवर्जनार्थं सामायिकं 'कैवलिकं' परिपूर्णं 'प्रशस्तं' पवित्रम्, एतदेव हि गृहस्थधर्मात् 'परमं' प्रधानम् 'इति' एवं ज्ञात्वा कुर्याद् 'बुधः' विद्वान् 'आत्महितम्' आत्मोपकारकं 'परार्थम्' इति परः–मोक्षस्तदर्थं, न तु सुरलोकाद्यवाप्त्यर्थम्, अनेन निदानपरिहारमाह, इति वृत्तार्थः ॥ ७९९ ॥ परिपूर्णसामायिककरणशक्त्यभावे गृहस्थोऽपि गृहस्थसामायिकं 'करेमि भंते ! सामाइयं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि दुविहं तिविहेणं जाव नियमं पज्जुवासामी'त्येवं कुर्यात्,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आह–तस्य सर्वं त्रिविधं त्रिविधेन प्रत्याचक्षाणस्य को दोष इति ?, उच्यते, प्रवृत्तकर्मारम्भानुमत्यनिवृत्त्या करणासम्भव एव, तथा भङ्गप्रसङ्गदोषश्चेति । आह च—

सव्वंति भाणिऊणं विरई खलु जस्स सव्विया णत्थि । सो सव्वविरइवाई चुक्कइ देसं च सव्वं च ॥ ८०० ॥

व्याख्या—'सर्वं' ति उपलक्षणात् सर्वं सावद्यं योगं प्रत्याख्यामि त्रिविधं त्रिविधेन, इत्येवं 'भाणिऊण' अभिधाय 'विरतिः' निवृत्तिः खलु यस्य 'सर्विका' सर्वा नास्ति, प्रवृत्तकर्मारम्भानुमतिसद्भावात्, स सर्वविरतिवादी 'चुक्कइ'त्ति भ्रश्यति 'देसं च सव्वं चे' ति देशविरतिं सर्वविरतिं च, प्रतिज्ञाताकरणात् । आह–आगमे त्रिविधं त्रिविधेनेति गृहस्थप्रत्याख्यानमुक्तं तत्कथमिति ?, उच्यते, स्थूलसावद्ययोगविषयमेव तत्, आह च भाष्यकारः—"[1]जति किंचिदप्पजोयणमपप्पं वा विसेसिउं वत्थुं । पच्चक्खेज्ज ण दोसो सयंभुरमणादिमच्छव ॥ १ ॥ जो वा निक्खमिउमणो पडिमं पुत्तादिसंतइणिमित्तं । पडिवज्जिज्ज तओ वा करिज्ज तिविहंपि तिविहेणं ॥ २ ॥ जो पुण पुव्वारद्धाणुज्झियसावज्जकम्मसंताणो । तदणुमतिपरिणतिं सो ण तरति सहसा णियत्तेउं ॥ ३ ॥ इत्यादि" तथाऽपि गृहस्थसामायिकमपि परलोकार्थिना कार्यमेव, तस्यापि विशिष्टफलसाधकत्वाद्, आह च निर्युक्तिकारः—

सामाइयंमि उ कए समणो इव सावओ हवइ जम्हा । एएण कारणेणं बहुसो सामाइयं कुज्जा ॥ ८०१ ॥

---

१ यदि किञ्चिदप्रयोजनमप्राप्यं वा विशेष्य वस्तु । प्रत्याचक्षीत न दोषः स्वयम्भूरमणादिमत्स्य इव ॥१॥ यो वा निष्क्रमितुमनाः प्रतिमां पुत्रादिसन्ततिनिमित्तम् । प्रतिपद्येत सको वा कुर्यात्त्रिविधमपि त्रिविधेन ॥२॥ यः पुनः पूर्वारब्धानुज्झितसावद्यकर्मसंतानः । तदनुमतिपरिणतिं स न शक्नोति सहसा निवर्त्तयितुम् ३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

व्याख्या—सामायिक एव कृते सति श्रमण इव श्रावको भवति, यस्मात् प्रायोऽशुभयोगरहितत्वात् कर्मवेदक इत्यर्थः, अनेन कारणेन 'बहुशः' अनेकधा सामायिकं कुर्यादिति गाथार्थः ॥ किञ्च—

जीवो पमायबहुलो बहुसोऽवि अ बहुविहेसु अत्थेसुं । एएण कारणेणं बहुसो सामाइयं कुज्जा ॥ ८०२ ॥

व्याख्या—जीवः प्रमादबहुलः 'बहुशः' अनेकधाऽपि च बहुविधेष्वर्थेषु–शब्दादिषु प्रमादवांश्चैकान्तेनाशुभबन्धक एव, अतोऽनेन कारणेन तत्परिजिहीर्षया बहुशः सामायिकं कुर्यात्–मध्यस्थो भूयादिति गाथार्थः ॥ द्वारं ॥ साम्प्रतं सङ्क्षेपेण सामायिकवतो मध्यस्थस्य लक्षणमभिधित्सुराह—

जो णवि वट्टइ रागे णवि दोसे दोण्ह मज्झयारंमि । सो होइ उ मज्झत्थो सेसा सव्वे अमज्झत्था ॥ ८०३ ॥

व्याख्या—यो नापि वर्तते रागे नापि द्वेषे, किं तर्हि?–'दोण्ह मज्झयारंमि' द्वयोर्मध्य इत्यर्थः, स भवति मध्यस्थः, शेषाः सर्वेऽमध्यस्था इति गाथार्थः ॥ द्वारं ॥ साम्प्रतं क्व किं सामायिकमिति निरूपयन् द्वारगाथात्रयमाह—

खेत्तदिसाकालगइभवियसण्णिऊसासदिट्ठिमाहारे । पज्जत्तसुत्तजम्मट्ठितिवेयसण्णाकसायाऊ ॥ ८०४ ॥

णाणे जोगुवओगे सरीरसंठाणसंघयणमाणे । लेसा परिणामे वेयणा समुग्घाय कम्मे य ॥ ८०५ ॥

णिव्वेढणमुव्वट्टे आसवकरणे तहा अलंकारे । सयणासणठाणत्थे चंकम्मंते य किं कहियं॥८०६॥ दारगाहाओ

व्याख्या—आसां समुदायार्थः क्षेत्रदिक्कालगतिभव्यसंज्ञिउच्छ्वासदृष्ट्याहारकानङ्गीकृत्याऽऽलोचनीयं, किं क्व सामायिकमिति योगः, तथा पर्याप्तसुप्तजन्मस्थितिवेदसंज्ञाकषायायूंषि चेति, तथा ज्ञानं योगोपयोगौ शरीरसंस्थानसंहननमा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

नानि लेश्याः परिणामं वेदनां समुद्घातं कर्म च क्रिया पूर्ववत्, तथा निर्वेष्टनोद्वर्त्तने अङ्गीकृत्यालोचनीयं–क्व किमिति ? आश्रवकरणं तथाऽलङ्कारं तथा शयनासनस्थानस्थानधिकृत्येति, तथा चङ्क्रमतश्च विषयीकृत्य किं सामायिकं क्व इत्यालोचनीयमिति समुदायार्थः । अवयवार्थं तु प्रतिद्वारं स्वयमेव वक्ष्यति–तत्रोर्ध्वलोकादिक्षेत्रमङ्गीकृत्य सम्यक्त्वादिसामायिकानां लाभादिभावमभिधित्सुराह—

संमसुआणं लंभो उड्ढं च अहे अ तिरिअलोए अ । विरई मणुस्सलोए विरयाविरई य तिरिएसुं ॥ ८०७ ॥

व्याख्या—सम्यक्त्वश्रुतसामायिकयोः 'लाभः' प्राप्तिः 'उड्ढं च' इत्यूर्ध्वलोके च 'अधे य' त्ति अधोलोके च तिर्यग्लोके च, इयमत्र भावना–ऊर्ध्वलोके मेरुसुरलोकादिषु ये सम्यक्त्वं प्रतिपद्यन्ते जीवास्तेषां श्रुताज्ञानमपि तदैव सम्यक्श्रुतं भवतीति, एवमधोलोकेऽपि महाविदेहाधोलौकिकग्रामेषु नरकेषु च ये प्रतिपद्यन्ते, एवं तिर्यग्लोकेऽपीति, 'विरई मणुस्सलोगे' त्ति विरतिशब्देन सर्वविरतिसामायिकं गृह्यते, तच्च लाभापेक्षया मनुष्यलोक एव भवति, नान्यत्र, मनुष्या एवास्य प्रतिपत्तार इति भावना, क्षेत्रनियमं तु विशिष्टश्रुतविदो विदन्ति, 'विरयाविरई य तिरिएसुं' ति विरताविरतिश्च देशविरतिसामायिकलक्षणा लाभविचारे तिर्यक्षु भवति, मनुष्येषु च केषुचित् ॥

पुव्वपडिवन्नगा पुण तीसुवि लोएसु निअमओ तिण्हं । चरणस्स दोसु निअमा भयणिज्जा उड्ढलोगंमि ॥८०८॥

व्याख्या—पूर्वप्रतिपन्नकास्तु त्रयाणां नियमेन त्रिष्वपि लोकेषु विद्यन्ते, चारित्रसामायिकं त्वधोलोकतिर्यग्लोकयो-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

रेव, ऊर्ध्वलोके तु भाज्या इत्यलं प्रसङ्गेनेति गाथार्थः ॥ द्वारं ॥ साम्प्रतं दिग्द्वारावयवार्थाभिधित्सया दिक्स्वरूपप्रतिपादनायाह—

नामं ठवणा दविए खेत्तदिसा तावखेत्त पन्नवए। सत्तमिया भावदिसा सा होअट्ठारसविहा उ ॥ ८०९॥ दारं ॥

व्याख्या—नामस्थापने सुगमे 'दविए' त्ति द्रव्यविषया दिक् द्रव्यदिक्,सा च जघन्यतस्त्रयोदशप्रदेशिकं दशदिक्प्रभवं द्रव्यं, तत्रैकैकः प्रदेशो विदिक्ष्वेते चत्वारः, मध्ये त्वेक इत्येते पञ्च, चतसृषु च दिक्ष्वायतावस्थितौ द्वौ द्वाविति, आह च भाष्यकारः–'तेरसपदेसियं खलु तावतिएसुं भवे पदेसेसुं। जं दव्वं ओगाढं जहण्णगं तं दसदिसागं ॥ १ ॥' अस्य चेयं स्थापनेति,

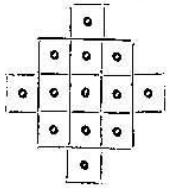

उत्कृष्टतस्त्वनन्तप्रदेशिकमिति, 'खेत्तदिस' त्ति क्षेत्रदिक्, सा चानेकभेदा मेरुमध्याष्टप्रादेशिकरुचकाद् बहिर्द्व्यादिद्व्युत्तरश्रेण्या शकटोर्द्धिसंस्थानाश्चतस्रो दिशः, चतसृणामप्यन्तरालकोणावस्थिता एकप्रदेशिकाश्छिन्नावलिसंस्थानाश्चतस्र एव विदिशः ऊर्ध्वं चतुःप्रदेशिकचतुरस्रदण्डसंस्थाना एकैव, अधोऽप्येवंप्रकारा द्वितीयेति, उक्तं च—'अट्ठपदेसो रुयगो तिरियं लोगस्स मज्झयारंमि । एस पभवो दिसाणं एसेव भवेऽणुदिसाणं ॥ १ ॥ दुपदेसादिदुरुत्तर एगपदेसा अणुत्तरा चेव । चउरो चउरो य दिसा चउरादि अणुत्तरा दोण्णि ॥२॥ सगडुद्धिसंठिताओ महादिसाओ भवंति चत्तारि । मुत्तावली य चउरो दो चेव य होन्ति रुयगनिभा ॥३॥

१ त्रयोदशप्रादेशिकं खलु तावत्सु भवेत्प्रदेशेषु। यद्द्रव्यमवगाढं जघन्यं तद्दशदिक्कम् ॥१॥ २ अष्टप्रदेशो रुचकस्तिर्यग्लोकस्य मध्ये । एष प्रभवो दिशामेष एव भवेदनुदिशाम् ॥ १ द्विप्रदेशादिद्व्युत्तरैकप्रदेशाऽनुत्तरैव । चतस्रश्चतस्रो दिशश्च । चतुराद्ये अनुत्तरे द्वे ॥ २ ॥ शकटोर्द्धिसंस्थिता महादिशो भवन्ति चतस्रः। मुक्तावलीव चतस्रो द्वे एव भवतो रुचकनिभे ॥ ३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

इयं च स्थापनेति

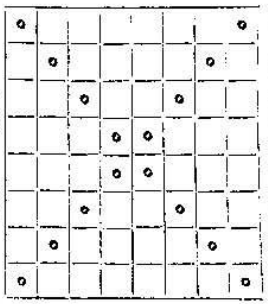

आसां च नामानि–'इंदग्गेई जम्मा य णेरती वारुणी य वायव्वा । सोमा ईसाणाऽवि य विमला यं तमा य बोद्धव्वा ॥ १ ॥ इंदा विजयद्दाराणुसारतो सेसिया पदक्खिणतो । अट्ठवि तिरिय-दिसाओ उड्ढं विमला तमा चाधो ॥ २ ॥ 'तावखेत्त' त्ति, तापः–सविता तदुपलक्षिता क्षेत्रदिक् तापक्षेत्रदिक्, सा चानियता–'जे सिं जत्तो सूरो उदेति तेसिं तई हवइ पुव्वा । तावक्खेत्तदिसाओ पदाहिणं सेसियाओसिं ॥ १ ॥' 'पण्णवए' त्ति प्रज्ञापकस्य दिक् प्रज्ञापकदिक्–'पण्णवओ जद-भिमुहो सा पुव्वा सेसिया पदाहिणतो । तस्सेवणुगंतव्वा अग्गेयादी दिसा नियमा ॥ १ ॥' सप्तमी भावदिक् सा भवत्यष्टादशविधैव, दिश्यते अयममुक इति संसारी यया सा भावदिक्, सा चेत्थं भवत्यष्टादशविधा–पुढविजलजलण वाया मूला खंधग्गपोरबीया य । बितिचउपंचेंदिय तिरियनारगा देवसं-घाया ॥ १ ॥ संमुच्छिमकम्माकम्मभूमगणरा तहऽन्तरद्दीवा । भावदिसा दिस्सइ जं संसारी णियथमेताहिं ॥ २ ॥'

१ ऐन्द्री आग्नेयी यमा च नैर्ऋती वारुणी च वायव्या । सोमा ईशानाऽपिच विमला च तमा (मी) च बोद्धव्या ॥ १ ॥ ऐन्द्री विजयद्वारानुसारतः शेषाः प्रदक्षिणतः । अष्टापि तिर्यग्दिशः ऊर्ध्वं विमला तमा चाधः ॥ २ ॥ २ येषां यतः सूर्य उदेति तेषां सा भवति पूर्वा । तापक्षेत्रदिशः प्रादक्षिण्येन शेषाः अनयोः ॥ १ ॥ ३ प्रज्ञापको यदभिमुखः सा पूर्वा शेषाः प्रदक्षिणतः । तस्या एवानुगन्तव्या आग्नेय्याद्या दिशो नियमात् ॥ १ ॥ ४ पृथ्वीजलज्वलनवातां मूलानि स्कन्धाग्रपर्ववीजानि च । द्वित्रिचतुष्पञ्चेन्द्रियाः तिर्यञ्चो नारकाः देवसंघाताः ॥ १ ॥ संमूर्छजकर्मभूमिकनरास्तथान्तरद्वीपाः । भावदिक् दिश्यते यत् संसारी नियतमेताभिः ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

ति गाथार्थः ॥ इह च नामस्थापनाद्रव्यदिग्भिरनधिकार एव, शेषासु यथासम्भवं सामायिकस्य प्रतिपद्यमानकः पूर्वप्रतिपन्नो वा वाच्यः, तत्र क्षेत्रदिशोऽधिकृत्य तावदाह—

पुव्वाईआसु महादिसासु पडिवज्जमाणओ होइ । पुव्वपडिवन्नओ पुण अन्नयरीए दिसाए उ ॥ ८१० ॥

व्याख्या—पूर्वाद्यासु महादिक्षु विवक्षिते काले सर्वेषां सामायिकानां प्रतिपद्यमानको भवति, न तु विदिक्षु, तास्वेकप्रदेशिकत्वेन जीवावगाहनाभावात्, आह च **भाष्यकारः**—"छिण्णावलिरुयगागिइदिसासु सामाइयं ण जं तासु । सुद्धासु णावगाहइ जीवो ताओ पुण फुसेज्जा ॥ १ ॥" पूर्वप्रतिपन्नकः पुनरन्यतरस्यां दिशि भवत्येव, पुनःशब्दस्यैवकारार्थत्वादिति गाथार्थः ॥ ८११ ॥ तापक्षेत्रप्रज्ञापकदिक्षु पुनरष्टसु चतुर्णामपि सामायिकानां पूर्वप्रतिपन्नोऽस्ति, प्रतिपद्यमानकश्च सम्भवति, अधऊर्ध्वदिग्द्वये तु सम्यक्त्वश्रुतसामायिकयोरेवमेव, देशविरतिसर्वविरतिसामायिकयोस्तु पूर्वप्रतिपन्नकः सम्भवति, प्रतिपद्यमानकस्तु नैवेति, उक्तं च–"[2]अट्ठसु चउण्ह नियमा पुव्वपवण्णो उ दोसु दोण्हेव । दोण्ह तु पुव्वपवण्णो सिय णण्णो तावपण्णवए ॥१॥" भावदिक्षु पुनरेकेन्द्रियेषु न प्रतिपद्यमानको नापि पूर्वप्रतिपन्नश्चतुर्णामपि, विकलेन्द्रियेषु सम्यक्त्वश्रुतसामायिकयोः पूर्वप्रतिपन्नः सम्भवति नेतरः, पञ्चेन्द्रियतिर्यक्षु सर्वविरतिवर्जानां पूर्वप्रतिपन्नोऽस्ति, प्रतिपद्यमानको भाज्यः, विवक्षितकाले नारकामराकर्मभूमिजान्तरद्वीपकनरेषु सम्यक्त्वश्रुतयोः पूर्वप्रतिपन्नकोऽस्त्येव,

१ छिन्नावलीरुचकाकृतिदिक्षु सामायिकं न यस्मात्तासु । शुद्धासु नावगाहते जीवः ताः पुनः स्पृशेत् ॥ १ ॥ २ अष्टसु चतुर्णां नियमात्पूर्वप्रपन्नस्तु द्वयोर्द्वयोरेव । द्वयोस्तु पूर्वप्रपन्नः स्यात् नान्यस्तापप्रज्ञापकयोः ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

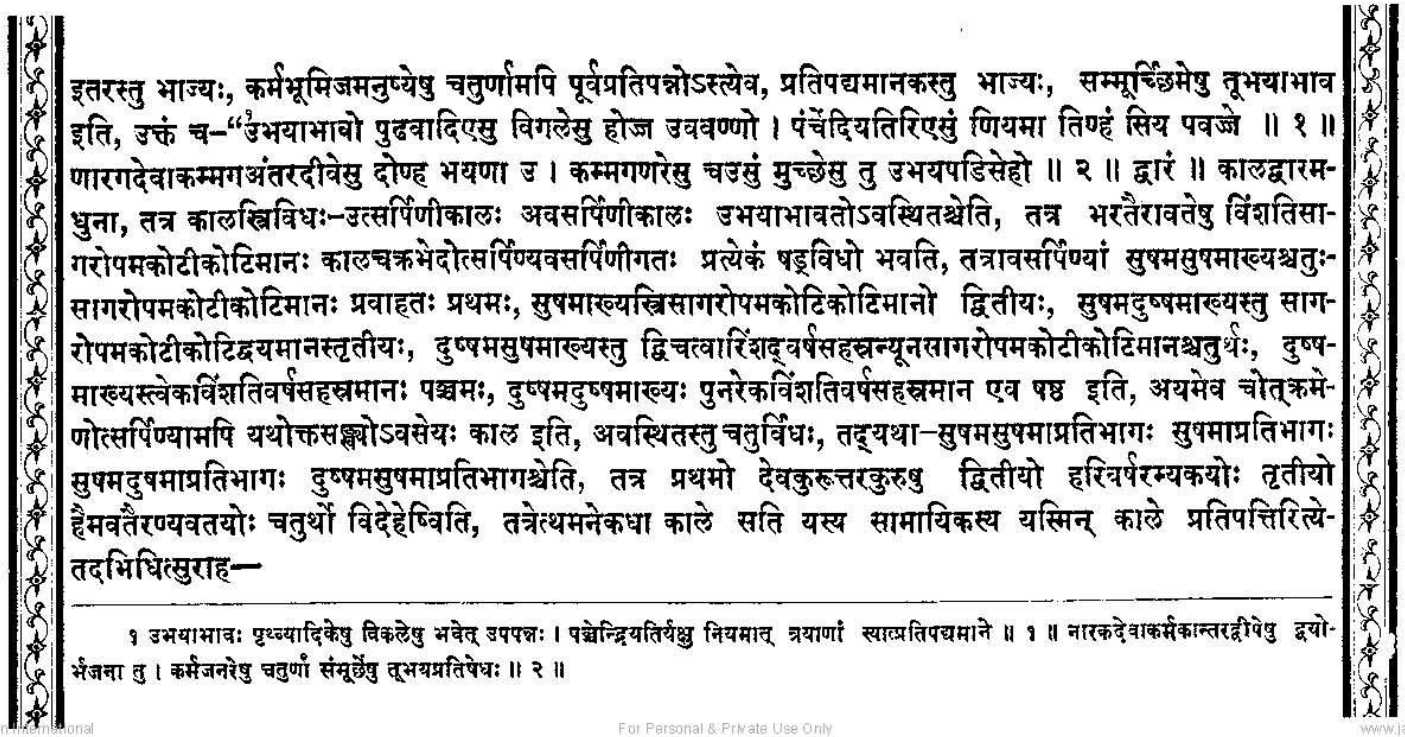

इतरस्तु भाज्यः, कर्मभूमिजमनुष्येषु चतुर्णामपि पूर्वप्रतिपन्नोऽस्त्येव, प्रतिपद्यमानकस्तु भाज्यः, सम्मूर्च्छिमेषु तूभयाभाव इति, उक्तं च–"[1]उभयाभावो पुढवादिएसु विगलेसु होज्ज उववण्णो । पंचेंदियतिरिएसुं णियमा तिण्हं सिय पवज्जे ॥ १ ॥ णारगदेवाकम्मगअंतरदीवेसु दोण्ह भयणा उ । कम्मगणरेसु चउसुं मुच्छेसु तु उभयपडिसेहो ॥ २ ॥ द्वारं ॥ कालद्वारमधुना, तत्र कालस्त्रिविधः–उत्सर्पिणीकालः अवसर्पिणीकालः उभयाभावतोऽवस्थितश्चेति, तत्र भरतैरावतेषु विंशतिसागरोपमकोटीकोटिमानः कालचक्रभेदोत्सर्पिण्यवसर्पिणीगतः प्रत्येकं षड्विधो भवति, तत्रावसर्पिण्यां सुषमसुषमाख्यश्चतुःसागरोपमकोटीकोटिमानः प्रवाहतः प्रथमः, सुषमाख्यस्त्रिसागरोपमकोटिकोटिमानो द्वितीयः, सुषमदुष्षमाख्यस्तु सागरोपमकोटीकोटिद्वयमानस्तृतीयः, दुष्षमसुषमाख्यस्तु द्विचत्वारिंशद्वर्षसहस्रन्यूनसागरोपमकोटीकोटिमानश्चतुर्थः, दुष्षमाख्यस्त्वेकविंशतिवर्षसहस्रमानः पञ्चमः, दुष्षमदुष्षमाख्यः पुनरेकविंशतिवर्षसहस्रमान एव षष्ठ इति, अयमेव चोत्क्रमेणोत्सर्पिण्यामपि यथोक्तसङ्ख्योऽवसेयः काल इति, अवस्थितस्तु चतुर्विधः, तद्यथा–सुषमसुषमाप्रतिभागः सुषमाप्रतिभागः सुषमदुषमाप्रतिभागः दुष्षमसुषमाप्रतिभागश्चेति, तत्र प्रथमो देवकुरूत्तरकुरुषु द्वितीयो हरिवर्षरम्यकयोः तृतीयो हैमवतैरण्यवतयोः चतुर्थो विदेहेष्विति, तत्रेत्थमनेकधा काले सति यस्य सामायिकस्य यस्मिन् काले प्रतिपत्तिरित्येतदभिधित्सुराह—

---

१ उभयाभावः पृथ्व्यादिकेषु विकलेषु भवेत् उपपन्नः । पञ्चेन्द्रियतिर्यक्षु नियमात् त्रयाणां स्यात्प्रतिपद्यमाने ॥ १ ॥ नारकदेवाकर्मकान्तरद्वीपेषु द्वयोर्भजना तु । कर्मजनरेषु चतुर्णां संमूर्छेषु तूभयप्रतिषेधः ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

संमत्तस्स सुयस्स य पडिवत्ती छव्विहंमि कालंमि । विरइं विरयाविरइं पडिवज्जइ दोसु तिसु वावि ॥८११॥

व्याख्या—सम्यक्त्वस्य श्रुतस्य च द्वयोरप्येतयोः सामायिकयोः प्रतिपत्तिः षड्विधे–सुषमसुषमादिलक्षणे काले सम्भवति, स च प्रतिपत्ता सुषमसुषमादिषु देशन्यूनपूर्वकोट्यायुष्क एव प्रतिपद्यते, पूर्वप्रतिपन्नकास्त्वनयोर्विद्यन्त एव, 'विरतिं' समग्रचारित्रलक्षणां तथा 'विरताविरतिं' देशचारित्रात्मिकां प्रतिपद्यते कश्चित् द्वयोः कालयोस्त्रिषु वाऽपि कालेषु, अपिः सम्भावने, अस्य चार्थमुपरिष्टाद्वक्ष्यामः,तत्रेयं प्रकृतभावना–उत्सर्पिण्यां द्वयोर्दुष्षमसुषमायां सुषमदुष्षमायां च,अवसर्पिण्यां त्रिषु सुषमदुष्षमायां दुष्षमसुषमायां दुष्षमायां चेति,पूर्वप्रतिपन्नस्तु विद्यत एव, अपिशब्दात् संहरणं प्रतीत्य पूर्वप्रतिपन्नकः सर्वकालेष्वेव सम्भवति, प्रतिभागकालेषु तु त्रिषु सम्यक्त्वश्रुतयोः प्रतिपद्यमानकः सम्भवति, पूर्वप्रतिपन्नकस्त्वस्त्येव, चतुर्थे तु प्रतिभागे चतुर्विधस्यापि प्रतिपद्यमानकः सम्भवति, पूर्वप्रतिपन्नकस्तु विद्यत एव, बाह्यद्वीपसमुद्रेषु तु काललिङ्गरहितेषु त्रयाणां प्रतिपद्यमानकः सम्भवति, पूर्वप्रतिपन्नस्त्वस्त्येवेति गाथार्थः ॥८११॥ द्वारं ॥ साम्प्रतं गतिद्वारमुच्यते–

चउसुवि गतीसु णियमा सम्मत्तसुयस्स होइ पडिवत्ती । मणुएसु होइ विरती विरयाविरई य तिरिएसुं ८१२

व्याख्या—चतसृष्वपि गतिषु, नियमात् इति नियमग्रहणमवधारणार्थं चतसृष्वेव न मोक्षगताविति हृदयं, सम्यक्त्वश्रुतयोर्भवति प्रतिपत्तिः, सम्भवति विवक्षिते काल इत्यर्थः, अपिशब्दः पृथिव्यादिषु गत्यन्तर्गतेषु न भवत्यपीति सम्भावयति, पूर्वप्रतिपन्नकस्त्वनयोर्विद्यत एव, तथा मनुष्येषु भवति विरतिः—प्रतिपत्तिमङ्गीकृत्य मनुष्येष्वेव सम्भवति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

'विरतिः' समग्रचारित्रात्मिका, पूर्वप्रतिपन्नापेक्षया तु सदा भवत्येव, 'विरताविरतिश्च' देशचारित्रात्मिका तिर्यक्षु, भवतीत्यनुवर्तते, भावना मनुष्यतुल्येति गाथार्थः ॥ ८१२ ॥ भव्यसंज्ञिद्वारावयवार्थाभिधित्सयाऽऽह—

भवसिद्धिओ उ जीवो पडिवज्जइ सो चउण्हमण्णयरं । पडिसेहो पुण असण्णिमीसए सण्णि पडिवज्जे ॥८१३॥

व्याख्या—भवसिद्धिको भव्योऽभिधीयते, भवसिद्धिकस्तु जीवः प्रतिपद्यते 'चतुर्णां' सम्यक्त्वसामायिकादीनाम् 'अन्यतरत्' एकं द्वे त्रीणि सर्वाणि वा, व्यवहारनयापेक्षयेत्थं प्रतिपाद्यते, न तु निश्चयतः केवलसम्यक्त्वसामायिकसम्भवोऽस्ति, श्रुतसामायिकानुगतत्वात् तस्य, एवं संइयपि, यत आह–संज्ञि पडिवज्जे, पूर्वप्रतिपन्नकस्तु भव्यसंज्ञिषु विद्यत एव, प्रतिषेधः पुनरसंज्ञिनि मिश्रकेऽभव्ये च,इदमत्र हृदयम्–अन्यतमसामायिकस्य प्रतिपद्यमानकान् प्राक्प्रतिपन्नान् वाऽऽश्रित्य प्रतिषेधः असंज्ञिनि 'मिश्रके' सिद्धे, यतोऽसौ न संज्ञी नाप्यसंज्ञी न भव्यो नाप्यभव्यः अतो मिश्रः, अभव्ये च, पुनःशब्दस्तु पूर्वप्रतिपन्नोऽसंज्ञी सास्वादनो जन्मनि सम्भवतीति विशेषणार्थः, संज्ञी प्रतिपद्यत इति व्याख्यातमेवेति गाथार्थः ॥ ८१३ ॥ गतं द्वारद्वयम् ॥ उच्छ्वासदृष्टिद्वारद्वयाभिधित्सयाऽऽह—

ऊसासग णीसासग मीसग पडिसेह दुविह पडिवण्णो । दिट्ठीइ दोण्णया खलु ववहारो निच्छओ चेव ॥८१४॥दारं

व्याख्या—उच्छ्वसितीति उच्छ्वासकः, निःश्वसितीति निःश्वासकः, आनापानपर्याप्तिपरिनिष्पन्न इत्यर्थः, स हि चतुर्णामपि प्रतिपद्यमानकः सम्भवति, पूर्वप्रतिपन्नस्त्वस्त्येवेति वाक्यशेषः, मिश्रः खल्वानापानपर्याप्त्याऽपर्याप्तो भण्यते, तत्र प्रतिपत्तिमङ्गीकृत्य प्रतिषेधः, नासौ चतुर्णामपि प्रतिपद्यमानकः सम्भवतीति भावना, 'दुविहपडिवन्नो' त्ति स एव द्विवि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

धस्य सम्यक्त्वश्रुतसामायिकस्य प्रतिपन्नः–पूर्वप्रतिपन्नो भवति, देवादिर्जन्मकाल इति, अथवा 'मिश्रः' सिद्धः, तत्र चतुर्णामप्युभयथाऽपि प्रतिषेधः, द्विविधस्य दर्शनचारित्रसामायिकस्य शैलेशीगतः पूर्वप्रतिपन्नो भवति, असावपि च तावन्मिश्र एवेति । दृष्टौ विचार्यमाणायां द्वौ नयौ खलु विचारकौ–व्यवहारो निश्चयश्चैव, तत्राद्यस्य सामायिकरहितः सामायिकं प्रतिपद्यते, इतरस्य तद्युक्त एव, क्रियाकालनिष्ठाकालयोरभेदादिति गाथार्थः ॥ ८१४ ॥ गतं द्वारद्वयं, साम्प्रतमाहारकपर्याप्तकद्वारद्वयं प्रतिपादयन्नाह—

आहारओ उ जीवो पडिवज्जइ सो चउण्हमण्णयरं । एमेव य पज्जत्तो सम्मत्तसुए सिया इयरो ॥ ८१५ ॥

व्याख्या—आहारकस्तु जीवः प्रतिपद्यते स चतुर्णामन्यतरत्, पूर्वप्रतिपन्नस्तु नियमादस्त्येव, एवमेव च पर्याप्तः षड्भिरप्याहारादिपर्याप्तिभिश्चतुर्णामन्यतरत् प्रतिपद्यते, पूर्वप्रतिपन्नस्त्वस्त्येव, 'सम्मत्तसुए सिया इयरो' त्ति इतरः–अनाहारकोऽपर्याप्तकश्च, तत्रानाहारकोऽपान्तरालगतौ सम्यक्त्वश्रुते अङ्गीकृत्य स्यात्–भवेत् पूर्वप्रतिपन्नः, प्रतिपद्यमानकस्तु नैवेति वाक्यशेषः, केवली तु समुद्घातशैलेश्यवस्थायामनाहारको दर्शनचरणसामायिकद्वयस्येति, अपर्याप्तोऽपि सम्यक्त्वश्रुते अधिकृत्य स्यात् पूर्वप्रतिपन्न इति गाथार्थः ॥ ८१५ ॥ गतं द्वारद्वयं, साम्प्रतं सुप्तजन्मद्वारद्वयव्याचिख्यासयेदमाह–

णिद्दाए भावओऽवि य जागरमाणो चउण्हमण्णयरं । अंडयपोयजराउय तिग तिग चउरो भवे कमसो ॥८१६॥

व्याख्या—इह सुप्तो द्विविधः–द्रव्यसुप्तो भावसुप्तश्च, एवं जाग्रदपीति, तत्र द्रव्यसुप्तो निद्रया, भावसुप्तस्त्वज्ञानी, तथा द्रव्यजागरो निद्रया रहितः, भावजागरः सम्यग्दृष्टिः, तत्र निद्रया भावतोऽपि च जाग्रत् चतुर्णां सामायिकानाम-

॥३३४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

न्यतरत् प्रतिपद्यते, पूर्वप्रतिपन्नस्त्वस्त्येवेत्यध्याहारः, अपिशब्दो विशेषणे, किं विशिनष्टि ?–भावजागरः द्वयोः प्रथमयोः पूर्वप्रतिपन्न एव, द्वयस्य तु प्रतिपत्ता भवतीति, निद्रासुप्तस्तु चतुर्णामपि पूर्वप्रतिपन्नो भवति, न तु प्रतिपद्यमानकः, भावसुप्तस्तूभयविकलः, नयमताद्वा प्रतिपद्यमानको भवति, अलं विस्तरेण । जन्म त्रिविधम्–अण्डजपोतजजरायुजभेदभिन्नं, तत्र यथासङ्ख्यं 'तिग तिग चउरो भवे कमसो' त्ति अण्डजाः–हंसादयः त्रयाणां प्रतिपद्यमानकाः सम्भवन्ति, पूर्वप्रतिपन्नास्तु सन्त्येव, पोतजाः–हस्त्यादयोऽप्येवमेव, जरायुजाः–मनुष्यास्तेऽपि चतुर्णामित्थमेव, औपपातिकास्तु प्रथमयोर्द्वयोरेवमिति गाथार्थः ॥ ८१६ ॥ स्थितिद्वारमधुनाऽऽह—

उक्कोसयट्ठितीए पडिवज्जंते य णत्थि पडिवण्णो । अजहण्णमणुक्कोसे पडिवज्जंते य पडिवण्णे ॥ ८१७ ॥

व्याख्या—आयुर्वर्जानां सप्तानां कर्मप्रकृतीनामुत्कृष्टस्थितिर्जीवश्चतुर्णामपि सामायिकानां 'पडिवज्जंते य णत्थि पडिवण्णो' त्ति प्रतिपद्यमानको नास्ति प्रतिपन्नश्च नास्तीति, चशब्दस्य व्यवहितः सम्बन्धः, आयुषस्तूत्कृष्टस्थितौ द्वयोः पूर्वप्रतिपन्न इति, अजघन्योत्कृष्टस्थितिरेवाजघन्योत्कृष्टः स्थितिशब्दलोपात्, 'पडिवज्जंते य पडिवण्णो' त्ति, स हि चतुर्णामपि प्रतिपद्यमानकः सम्भवति, प्रतिपन्नश्चास्त्येव, जघन्यायुष्कस्थितिस्तु न प्रतिपद्यते, न पूर्वप्रतिपन्नः, क्षुल्लकभवगत इति, शेषकर्मराशिजघन्यस्थितिस्तु देशविरतिरहितस्य सामायिकत्रयस्य पूर्वप्रतिपन्नः स्याद्, दर्शनसप्तकातिक्रान्तः क्षपकः अन्तकृत् केवली, तस्य तस्यामवस्थायां देशविरतिपरिणामाभावात्, जघन्यस्थितिकर्मबन्धकत्वाच्च जघन्यस्थितित्वं तस्य,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

न तूपात्तकर्मप्रवाहापेक्षयेति, आह च भाष्यकारः–"ण जहण्णाउठिईए पडिवज्जइ णेव पुव्वपडिवण्णो। सेसे पुव्वपवण्णो देसविरतिवज्जिए होज्ज ॥ १ ॥" त्ति गाथार्थः ॥ ८१७ ॥ द्वारं ॥ साम्प्रतं वेदसंज्ञाकषायद्वारत्रयं व्याचिख्यासुराह—

चउरोऽवि तिविहवेदे चउसुवि सण्णासु होइ पडिवत्ती। हेट्ठा जहा कसाएसु वण्णियं तह य इहयंपि॥८१८॥

व्याख्या—'चत्वार्यपि' सामायिकानि 'त्रिविधवेदे' स्त्रीपुंनपुंसकलक्षणे उभयथाऽपि, सन्तीति वाक्यशेषः, इयं भावना-चत्वार्यपि सामायिकान्यधिकृत्य त्रिविधवेदे विवक्षिते काले प्रतिपद्यमानकः सम्भवति, पूर्वप्रतिपन्नस्त्वस्त्येव, अवेदस्तु देशविरतिरहितानां त्रयाणां पूर्वप्रतिपन्नः स्यात्, क्षीणवेदः क्षपको, न तु प्रतिपद्यमानकः। द्वारं। तथा चतसृष्वपि संज्ञासु-आहारभयमैथुनपरिग्रहरूपासु चतुर्विधस्यापि सामायिकस्य भवति 'प्रतिपत्तिः' प्रतिपद्यमानको भवति, न न भवति, इतरस्त्वस्त्येव। द्वारम्। अधो यथा 'पढमिल्लुगाण उदये' इत्यादिना कषायेषु वर्णितम्, इहापि तथैव वर्णितव्यं, समुदायार्थस्त्वयम्–सकषायी चतुर्णामप्युभयथाऽपि भवति, अकषायी तु छद्मस्थवीतरागत्रयाणां पूर्वप्रतिपन्नो भवति, न तु प्रतिपद्यमानकः। द्वारमिति गाथार्थः ॥ ८१८ ॥ गतं द्वारत्रयं, साम्प्रतमायुर्ज्ञानद्वारद्वयाभिधित्सयाऽऽह—

संखिज्जाऊ चउरो भयणा सम्मसुयऽसंखवासीणं। ओहेण विभागेण य नाणी पडिवज्जई चउरो ॥ ८१९ ॥

व्याख्या—सङ्ख्येयायुर्नरः चत्वारि प्रतिपद्यते, प्रतिपन्नस्त्वस्त्येवेति वाक्यशेषः, 'भयणा सम्मसुयऽसंखवासीणं' ति भजना–विकल्पना सम्यक्त्वश्रुतसामायिकयोरसङ्ख्येयवर्षायुषाम्, इयं भावना–विवक्षितकालेऽसङ्ख्येयवर्षायुषां सम्यक्त्व-

१ न जघन्यायुःस्थितौ प्रतिपद्यते नैव पूर्वप्रतिपन्नः। शेषे पूर्वप्रतिपन्नो देशविरतिवर्जिते भवेत् ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

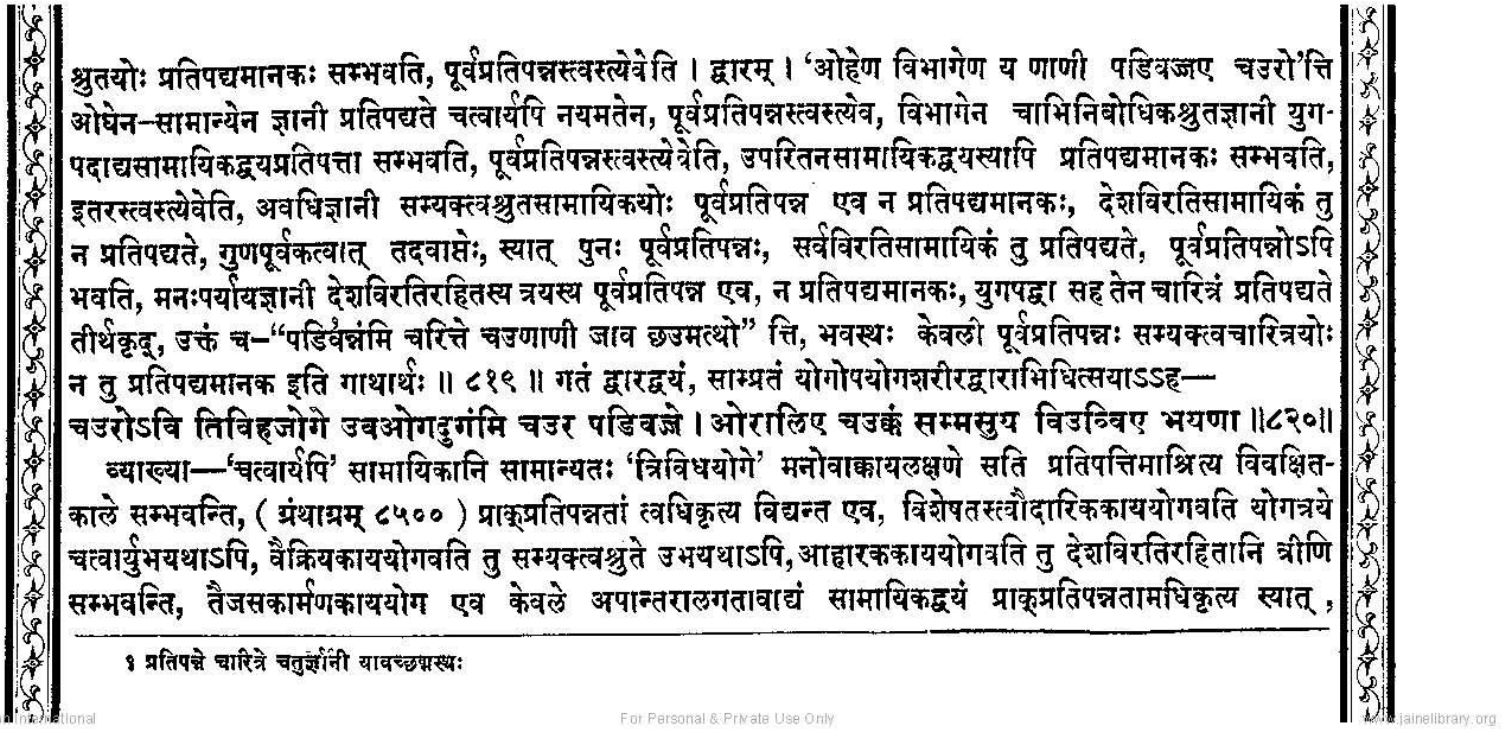

श्रुतयोः प्रतिपद्यमानकः सम्भवति, पूर्वप्रतिपन्नस्त्वस्त्येवेति । द्वारम् । 'ओहेण विभागेण य णाणी पडिवज्जए चउरो'त्ति ओघेन–सामान्येन ज्ञानी प्रतिपद्यते चत्वार्यपि नयमतेन, पूर्वप्रतिपन्नस्त्वस्त्येव, विभागेन चाभिनिबोधिकश्रुतज्ञानी युगपदाद्यसामायिकद्वयप्रतिपत्ता सम्भवति, पूर्वप्रतिपन्नस्त्वस्त्येवेति, उपरितनसामायिकद्वयस्यापि प्रतिपद्यमानकः सम्भवति, इतरस्त्वस्त्येवेति, अवधिज्ञानी सम्यक्त्वश्रुतसामायिकयोः पूर्वप्रतिपन्न एव न प्रतिपद्यमानकः, देशविरतिसामायिकं तु न प्रतिपद्यते, गुणपूर्वकत्वात् तदवाप्तेः, स्यात् पुनः पूर्वप्रतिपन्नः, सर्वविरतिसामायिकं तु प्रतिपद्यते, पूर्वप्रतिपन्नोऽपि भवति, मनःपर्यायज्ञानी देशविरतिरहितस्य त्रयस्य पूर्वप्रतिपन्न एव, न प्रतिपद्यमानकः, युगपद्वा सह तेन चारित्रं प्रतिपद्यते तीर्थकृद्, उक्तं च–"पडिवन्नंमि चरित्ते चउणाणी जाव छउमत्थो" त्ति, भवस्थः केवली पूर्वप्रतिपन्नः सम्यक्त्वचारित्रयोः न तु प्रतिपद्यमानक इति गाथार्थः ॥ ८१९ ॥ गतं द्वारद्वयं, साम्प्रतं योगोपयोगशरीरद्वाराभिधित्सयाऽऽह—

चउरोऽवि तिविहजोगे उवओगदुगंमि चउर पडिवज्जे । ओरालिए चउक्कं सम्मसुय विउव्विए भयणा ॥८२०॥

व्याख्या—'चत्वार्यपि' सामायिकानि सामान्यतः 'त्रिविधयोगे' मनोवाक्कायलक्षणे सति प्रतिपत्तिमाश्रित्य विवक्षितकाले सम्भवन्ति, (ग्रंथाग्रम् ८५००) प्राक्प्रतिपन्नतां त्वधिकृत्य विद्यन्त एव, विशेषतस्त्वौदारिककाययोगवति योगत्रये चत्वार्युभयथाऽपि, वैक्रियकाययोगवति तु सम्यक्त्वश्रुते उभयथाऽपि, आहारककाययोगवति तु देशविरतिरहितानि त्रीणि सम्भवन्ति, तैजसकार्मणकाययोग एव केवले अपान्तरालगतावाद्यं सामायिकद्वयं प्राक्प्रतिपन्नतामधिकृत्य स्यात्,

१ प्रतिपन्ने चारित्रे चतुर्ज्ञानी यावच्छद्मस्थः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

मनोयोगे केवले न किञ्चित्, तस्यैवाभावाद्, एवं वाग्योगेऽपि, कायवाग्योगद्वये तु स्याद् द्वयमाद्यं प्राक्प्रतिपन्नताम-धिकृत्य, सम्यक्त्वात् प्रतिपततो विकलेन्द्रियोपपातिषु घण्टालालान्यायेनेति विस्तरेणालम् । द्वारम् । 'उवओगदुगंमि चउरो पडिवज्जे' त्ति उपयोगद्वये–साकारानाकारभेदे चत्वारि प्रतिपद्यते, प्राक्प्रतिपन्नस्तु विद्यत एव, अत्राह– 'सव्वाओ लद्धीओ सागारोवओगोवउत्तस्स भवन्ती' त्यागमादनाकारोपयोगे सामायिकलब्धिविरोधः, उच्यते, प्रवर्धमानपरिणामजीवविषयत्वात् तस्यागमस्य, अवस्थितौपशमिकपरिणामापेक्षया चानाकारोपयोगे सामायिकलब्धिप्रतिपादनाद-विरोध इति, आह च भाष्यकारः–"[1]ऊसरदेसं दड्ढुलयं च विज्झाइ वणदवो पप्प । इय मिच्छस्स अणुदए उवसमसंमं लहइ जीवो ॥ १ ॥" अवस्थितपरिणामता चास्य–'जं मिच्छ[2]स्साणुदओ ण हायए तेण तस्स परिणामो । जं पुण सयमुवसंतं ण वड्ढएऽवट्ठितो तेणं ॥२॥ दारं । 'ओरालिए चउक्कं सम्मसुत विउव्विए भयण' त्ति औदारिके शरीरे सामायिकचतुष्कमुभयथाऽप्यस्ति, सम्यक्त्वश्रुतयोर्वैक्रियशरीरे भजना–विकल्पना कार्या, एतदुक्तं भवति–सम्यक्त्वश्रुतयोर्वैक्रियशरीरी प्रतिपद्यमानकः पूर्वप्रतिपन्नश्चास्ति, उपरितनसामायिकद्वयस्य तु प्राक्प्रतिपन्न एव, विकुर्वितवैक्रियशरीरश्चारणश्रावकादिः श्रमणो वा, न प्रतिपद्यमानकः, प्रमत्तत्वात्, शेषशरीरविचारो योगद्वारानुसारतोऽनुसरणीय इति गाथार्थः ॥८२०

द्वारत्रयं गतं, साम्प्रतं संस्थानादिद्वारत्रयावयवार्थप्रतिपादनायाह—

१ ऊषरदेशं दग्धं च विध्याति वनदवः प्राप्य । इति मिथ्यात्वस्यानुदये औपशमिकसम्यक्त्वं लभते जीवः ॥ १ ॥ २ यन्मिथ्यात्वस्यानुदयो न हीयते तेन तस्य परिणामः । यत्पुनः सदुपशान्तं न वर्धते अवस्थितस्तेन ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

सव्वेसुवि संठाणेसु लहइ एमेव सव्वसंघयणे । उक्कोसजहण्णं वज्जिऊण माणं लहे मणुओ ॥ ८२१ ॥ दारं ॥

व्याख्या—संस्थितिः संस्थानम्–आकारविशेषलक्षणं, तच्च षोढा भवति, उक्तं च–"समचउरंसे णग्गोहमंडले साइ वामणे खुज्जे । हुंडेऽवि य संठाणे जीवाणं छम्मुणेयवा ॥१॥ तुल्लं वित्थडबहुलं उस्सेहबहुं च मडहकुट्ठं च । हेट्ठिलकायमडहं सव्वत्थासंठियं हुंडं ॥ २ ॥"[2] इत्यादि, तत्र सर्वेष्वपि संस्थानेषु 'लभते' प्रतिपद्यते चत्वार्यपि सामायिकानि, प्राक्प्रतिपन्नोऽप्यस्तीत्यध्याहारः, 'एमेव सव्वसंघयणे' त्ति एवमेव सर्वसंहननविषयो विचारो वेदितव्यः, तानि च षट् संहननानि भवन्तीति, उक्तं च–"वज्जरिसभणारायं पढमं बितियं च रिसभणारायं । णाराय अद्धणारायं कीलिया तहय छेवट्टं ॥ १ ॥ रिसभो उ होइ पट्टो वज्जं पुण कीलिया मुणेयवा । उभओमक्कडबंधं णारायं तं वियाणाहि ॥ २ ॥" इह चेत्थंभूतास्थिसञ्चयोपमितः शक्तिविशेषः संहननमुच्यते न त्वस्थिसञ्चय एव, देवानामस्थिरहितानामपि प्रथमसंहननयुक्तत्वात् । 'उक्कोसजहण्णं वज्जिऊण माणं लभे मणुओ' त्ति उत्कृष्टं जघन्यं च वर्जयित्वा मानं–शरीरप्रमाणं लभते–प्रतिपद्यते मनुजः प्रकरणादनुवर्तमानं चतुर्विधमपि सामायिकं, प्राक् प्रतिपन्नोऽपि विद्यत इति गाथार्द्धहृदयम्, अन्यथा नारकादयोऽपि सामान्येन सामायिकद्वयं त्रीणि वा लभन्त एवेति, उक्तं च–"किं[3] जहण्णोगाहणगा पडिवज्जंति उक्कोसोगाहणगा

१ समचतुरस्रं न्यग्रोधमण्डलं सादि वामनं कुब्जम् । हुण्डमपि च संस्थानानि जीवानां षड् ज्ञातव्यानि ॥१॥ तुल्यं विस्तारबहुलमुत्सेधबहुलं च मडभकोष्ठं च । अधस्तनकायमडभं सर्वत्रासंस्थितं हुण्डम् ॥ २ ॥ २ वज्रर्षभनाराचं प्रथमं द्वितीयं च ऋषभनाराचम् । नाराचमर्धनाराचं कीलिका तथैव सेवार्त्तम् ॥ १ ॥ ऋषभस्तु भवति पट्टो वज्रं पुनः कीलिका ज्ञातव्या । उभयतो मर्कटबन्धो नाराचं तत् विजानीहि ॥ २ ॥ ३ किं जघन्यावगाहना प्रतिपद्यन्ते उत्कृष्टावगाहनका

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

अजहण्णुक्कोसोगाहणग त्ति पुच्छा ?, गोतमा ! णेरइयदेवा ण जहण्णोगाहणगा किंचि पडिवज्जंति, पुव्वपडिवण्णगा पुण सिया सम्मत्तसुताण, ते चेव अजहण्णुक्कोसोगाहणगा उक्कोसोगाहणगा य सम्मत्तसुते पडिवज्जंति, णो सेसेत्ति । पुव्वपडिवण्णगा दोवि दोण्हं चेव । तिरिएसु पुच्छा ?, गोतमा ? एगेंदिया तिसुवि ओगाहणासु ण किंचि पडिवज्जंति, णावि पुव्वपडिवण्णगा । जहण्णोगाहणगा विगलिंदिया सम्मत्तसुयाणं पुव्वपडिवण्णगा हवेज्जा ण पडिवज्जमाणगा, अजहण्णुक्कोसोगाहणगा उक्कोसोगाहणगा पुण ण पुव्वपडिवण्णा णावि पडिवज्जमाणगा, सेसतिरिया जहण्णोगाहणगा सम्मत्तसुयाण पुव्वपडिवण्णगा होज्जा णो पडिवज्जमाणगा, अजहन्नुक्कोसोगाहणगा पुण तिण्हं दुहावि संति, उक्कोसोगाहणगा दोण्हं दुहावि। मणुएसु पुच्छा ?, गोतमा ! संमुच्छिममणुस्से पडुच्च तिसुवि ओगाहणासु चउण्हंपि सामाइयाणं ण पुव्वपडिवण्णगा नो पडिवज्जमाणगा । गब्भवक्कंतिय जहण्णोगाहणमणूसा

---

१ अजघन्योत्कृष्टावगाहना इति पृच्छा ?, गौतम ! नैरयिकदेवा न जघन्यावगाहनाः किञ्चित्प्रतिपद्यन्ते, पूर्वप्रतिपन्नकाः पुनः स्युः सम्यक्त्वश्रुतयोः, त एवाजघन्योत्कृष्टावगाहना उत्कृष्टावगाहनाश्च सम्यक्त्वश्रुते प्रतिपद्यन्ते, न शेषे इति। पूर्वप्रतिपन्नका द्वयेऽपि द्वयोरेव । तिर्यक्षु पृच्छा ?, गौतम ! एकेन्द्रियास्तिसृष्वप्यवगाहनासु न किञ्चित् प्रतिपद्यन्ते, नापि पूर्वप्रतिपन्नाः । जघन्यावगाहना विकलेन्द्रियाः सम्यक्त्वश्रुतयोः पूर्वप्रतिपन्ना भवेयुर्न प्रतिपद्यमानाः, अजघन्योत्कृष्टावगाहना उत्कृष्टावगाहनाः पुनर्न पूर्वप्रतिपन्ना नापि प्रतिपद्यमानाः, शेषतिर्यञ्चो जघन्यावगाहनाः सम्यक्त्वश्रुतयोः पूर्वप्रतिपन्ना भवेयुर्न प्रतिपद्यमानाः, अजघन्योत्कृष्टावगाहनाः पुनस्त्रयाणां द्विधाऽपि सन्ति, उत्कृष्टावगाहना द्वयोर्द्विधाऽपि । मनुजेषु पृच्छा ?, गौतम ! संमूर्छनजमनुष्यान् प्रतीत्य तिसृष्वप्यवगाहनासु चतुर्णामपि सामायिकादीनां न पूर्वप्रतिपन्ना न प्रतिपद्यमानाः । गर्भव्युत्क्रान्तिकजघन्यावगाहनमनुष्याः

॥३३७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

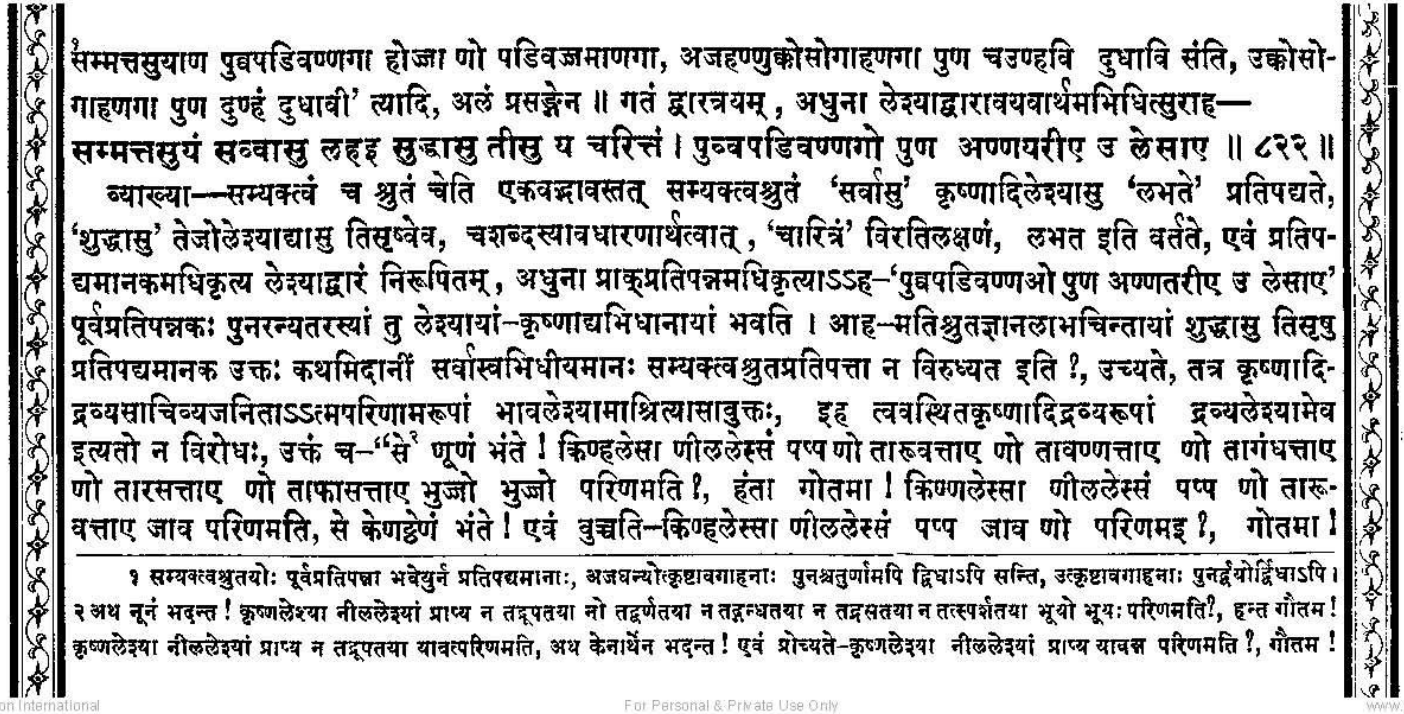

सम्मत्तसुयाण पुव्वपडिवण्णगा होज्जा णो पडिवज्जमाणगा, अजहण्णुक्कोसोगाहणगा पुण चउण्हवि दुधावि संति, उक्कोसोगाहणगा पुण दुण्हं दुधावी' त्यादि, अलं प्रसङ्गेन ॥ गतं द्वारत्रयम्, अधुना लेश्याद्वारावयवार्थमभिधित्सुराह—

सम्मत्तसुयं सव्वासु लहइ सुद्धासु तीसु य चरित्तं। पुव्वपडिवण्णगो पुण अण्णयरीए उ लेसाए ॥ ८२२ ॥

व्याख्या—सम्यक्त्वं च श्रुतं चेति एकवद्भावस्तत् सम्यक्त्वश्रुतं 'सर्वासु' कृष्णादिलेश्यासु 'लभते' प्रतिपद्यते, 'शुद्धासु' तेजोलेश्याद्यासु तिसृष्वेव, चशब्दस्यावधारणार्थत्वात्, 'चारित्रं' विरतिलक्षणं, लभत इति वर्तते, एवं प्रतिपद्यमानकमधिकृत्य लेश्याद्वारं निरूपितम्, अधुना प्राक्प्रतिपन्नमधिकृत्याऽऽह–'पुव्वपडिवण्णओ पुण अण्णतरीए उ लेसाए' पूर्वप्रतिपन्नकः पुनरन्यतरस्यां तु लेश्यायां–कृष्णाद्यभिधानायां भवति। आह–मतिश्रुतज्ञानलाभचिन्तायां शुद्धासु तिसृषु प्रतिपद्यमानक उक्तः कथमिदानीं सर्वास्वभिधीयमानः सम्यक्त्वश्रुतप्रतिपत्ता न विरुध्यत इति ?, उच्यते, तत्र कृष्णादिद्रव्यसाचिव्यजनिताऽऽत्मपरिणामरूपां भावलेश्यामाश्रित्यासावुक्तः, इह त्ववस्थितकृष्णादिद्रव्यरूपां द्रव्यलेश्यामेव इत्यतो न विरोधः, उक्तं च–"से[२] णूणं भंते ! किण्हलेसा णीललेस्सं पप्प णो तारूवत्ताए णो तावण्णत्ताए णो तागंधत्ताए णो तारसत्ताए णो ताफासत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमति ?, हंता गोतमा ! किण्णलेस्सा णीललेस्सं पप्प णो तारूवत्ताए जाव परिणमति, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति–किण्हलेस्सा णीललेस्सं पप्प जाव णो परिणमइ ?, गोतमा !

१ सम्यक्त्वश्रुतयोः पूर्वप्रतिपन्ना भवेयुर्न प्रतिपद्यमानाः, अजघन्योत्कृष्टावगाहनाः पुनश्चतुर्णामपि द्विधाऽपि सन्ति, उत्कृष्टावगाहनाः पुनर्द्वयोर्द्विधाऽपि।
२ अथ नूनं भदन्त ! कृष्णलेश्या नीललेश्यां प्राप्य न तद्रूपतया नो तद्वर्णतया न तद्गन्धतया न तद्रसतया न तत्स्पर्शतया भूयो भूयः परिणमति?, हन्त गौतम ! कृष्णलेश्या नीललेश्यां प्राप्य न तद्रूपतया यावत्परिणमति, अथ केनार्थेन भदन्त ! एवं प्रोच्यते–कृष्णलेश्या नीललेश्यां प्राप्य यावन्न परिणमति ?, गौतम !

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

[1]आगारभावमायाए वा से सिया पलिभागमायाए वा से सिया, किण्हलेस्सा णं सा णो खलु णीललेसा, तत्थ गता उसक्कति वा अहिसक्कइ वा, से तेणट्ठेणं गोतमा ! एवं वुच्चति–किण्हलेस्सा णीललेस्सं पप्प जाव णो परिणमति, अयमस्यार्थः–'आगार' इत्यादि, आकार एव भाव आकारभावः, आकारभाव एव आकारभावमात्रं, मात्रशब्दः खल्वाकारभावव्यतिरिक्तप्रतिबिम्बादिधर्मान्तरप्रतिषेधवाचकः, अतस्तेनाकारभावमात्रेणैवासौ नीललेश्या स्यात्, न तु तत्स्वरूपापत्तितः, तथा प्रतिरूपो भागः प्रतिभागः, प्रतिबिम्बमित्यर्थः, प्रतिभाग एव प्रतिभागमात्रं, मात्रशब्दो वास्तवपरिणामप्रतिषेधवाचकः, अतस्तेन प्रतिभागमात्रेणैव असौ नीललेश्या स्यात् , न तु तत्स्वरूपत एवेत्यर्थः, स्फटिकवदुपधानवशादुपधानरूप इति दृष्टान्तः ततश्च स्वरूपेण कृष्णलेश्यैवासौ न नीललेश्या, किं तर्हि ?, तत्र गतोत्सर्पति, किमुक्तं भवति ?–तत्रस्थैव–स्वरूपस्थैव नीललेश्यादि लेश्यान्तरं प्राप्योत्सर्पते इत्याकारभावं प्रतिबिम्बभागं वा नीललेश्यासम्बन्धिनमासादयतीत्यर्थः "एवं नीललेसा काउलेसं पप्प जाव णीललेसा णं सा णो खलु काउलेसा, तत्थ गता उस्सक्कइ वा ओसक्कइ वा" अयं भावार्थः— तत्र गतोत्सर्पति, किमुक्तं भवति ?–तत्रस्थैव स्वरूपस्थैवोत्सर्पति, आकारभावं प्रतिबिम्बभागं वा कापोतलेश्यासम्बन्धिनमासादयति, तथाऽपसर्पति वा–नीललेश्यैव कृष्णलेश्यां प्राप्य, भावार्थस्तु पूर्ववत्, 'एवं काउलेसा तेउलेसं पप्प,

१ आकारभावमात्रेण वा तस्याःस्यात् प्रतिभागमात्रेण वा तस्याः स्यात्, कृष्णलेश्या सा, न खलु नीललेश्या सा, तत्र गता अवष्वष्कति वा अभिष्वष्कति वा, तत् तेनार्थेन गौतम ! एवमुच्यते–कृष्णलेश्या नीललेश्यां प्राप्य यावन्न परिणमति । २ एवं नीललेश्या कापोतलेश्यां प्राप्य यावन्नीललेश्या सा न खलु कापोतलेश्या, तत्र गतोत्सर्पति वा अपसर्पति वा । ३ एवं कापोतलेश्या तेजोलेश्यां प्राप्य,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

तेउलेसा पम्हलेसं पप्प, पम्हलेसा सुक्कलेसं पप्प, एवं सुक्कलेसा पम्हलेसं पप्प' भावार्थस्तु पूर्ववत्, 'एवं किण्हेलसा नील-लेसं पप्प, किण्हलेसा काउलेसं पप्प, किण्हलेसा तेउलेसं पप्प, एवं जाव सुक्कलेसं पप्प, एवमेगेगा सवाहिं चारिज्जति', ततश्च सम्यक्त्वश्रुतं सर्वास्ववस्थितकृष्णादिद्रव्यलेश्यासु लभते नारकादिरपि, शुद्धासु तेजोलेश्याद्यासु तत्तद्द्रव्यसाचिव्य-सञ्जातात्मपरिणामलक्षणासु तिसृषु च चारित्रं, शेषं पूर्ववदिति गाथार्थः ॥ ८२२ ॥ द्वारं ॥ साम्प्रतं परिणामद्वारावयव-वार्थं प्रतिदर्शयन्नाह—

वहुंते परिणामे पडिवज्जइ सो चउण्हमण्णयरं । एमेवऽवट्ठियंमिवि हायंति न किंचि पडिवज्जे ॥ ८२३ ॥

व्याख्या—परिणामः—अध्यवसायविशेषः, तत्र शुभशुभतररूपतया वर्द्धमाने परिणामे प्रतिपद्यते स 'चतुर्णां' सम्य-क्त्वादिसामायिकानामन्यतरत्, 'एमेवऽवट्ठियंमिवि' त्ति एवमेवावस्थितेऽपि शुभे परिणामे प्रतिपद्यते स चतुर्णामन्य-तरदिति, 'हायंति ण किंचि पडिवज्जे' त्ति क्षीयमाणे शुभे परिणामे न किञ्चित् सामायिकं प्रतिपद्यते, प्राक्प्रतिपन्नस्तु त्रिष्वपि परिणामेषु भवतीति गाथार्थः ॥ ८२३ ॥ द्वारम् ॥ अधुना वेदनासमुद्घातकर्मद्वारद्वयव्याचिख्यासयाऽऽह—

दुविहाएँ वेयणाए पडिवज्जइ सो चउण्हमण्णयरं । असमोहओऽवि एमेव पुव्वपडिवण्णए भयणा ॥ ८२४ ॥

व्याख्या—द्विविधायां वेदनायां—सातासातरूपायां सत्यां प्रतिपद्यते स चतुर्णामन्यतरत्, प्राक्प्रतिपन्नश्च भवति,

---

१ तेजोलेश्या पद्मलेश्यां प्राप्य, पद्मलेश्या शुक्ललेश्यां प्राप्य, एवं शुक्ललेश्या पद्मलेश्यां प्राप्य । एवं कृष्णलेश्या नीललेश्यां प्राप्य कृष्णलेश्या कापोत-लेश्यां प्राप्य कृष्णलेश्या तेजोलेश्यां प्राप्य, एवं यावत् शुक्ललेश्यां प्राप्य, एवमेकैका सर्वाभिश्चार्यते.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

'असमोहतोऽवि एमेव' त्ति असमवहतोऽप्येवमेव प्रतिपद्यते स चतुर्णामन्यतरत्, प्राक्प्रतिपन्नश्च भवति, समवहतस्तु केवलिसमुद्घातादिना सप्तविधेन प्रतिपद्यते, किन्तु 'पुव्वपडिवण्णए भयण' त्ति पूर्वप्रतिपन्नके समवहते विचारयितुमारब्धे भजना सेवना समर्थना कार्या, पूर्वप्रतिपन्नो भवतीत्यर्थः, सप्तविधत्वं पुनः समुद्घातस्य, यथोक्तम्–'केवलि कसायमरणे वेदण वेउवि तेय आहारे। सत्तविह समुग्घातो पन्नत्तो वीयरागेहिं ॥ १ ॥'[1] इह च पूर्वप्रतिपन्नके भजना, समवहतो हि सामायिकद्वयस्य त्रयस्य वा पूर्वप्रतिपन्नको भावनीय इति गाथार्थः ॥ ८२४ ॥ गतं द्वारद्वयं, निर्वेष्टनद्वारप्रतिपादनायाह—

दव्वेण य भावेण य निव्विट्ठंतो चउण्हमण्णयरं। नरएसु अणुव्वट्टे दुगं चउक्कं सिया उ उव्वट्टे ॥ ८२५ ॥

व्याख्या—द्रव्यतो भावतश्च निर्वेष्टयन् चतुर्णामन्यतरत् प्रतिपद्यते प्राक्प्रतिपन्नश्चास्ति, द्रव्यनिर्वेष्टनं कर्मप्रदेशविसङ्घातरूपं भावनिर्वेष्टनं क्रोधादिहानिलक्षणं, तत्र सर्वमपि कर्म निर्वेष्टयंश्चतुष्टयं लभते, विशेषतस्तदावरणं ज्ञानावरणं निर्वेष्टयन् श्रुतसामायिकमाप्नोति मोहनीयं तु शेषत्रयमिति, संवेष्टयंस्त्वनन्तानुबन्ध्यादीन् न प्रतिपद्यते, शेषकर्म त्वङ्गीकृत्योभयथाऽप्यस्ति। द्वारम्। उद्वर्तनाद्वारमधुना–नरकेषु–अधिकरणभूतेष्वनुद्वर्तयन्, तत्रस्थ एवेत्यर्थः, नरकाद्वेति पाठान्तरं, 'दुगं' ति आद्यं सामायिकद्विकं प्रतिपद्यते, तदेव चाधिकृत्य पूर्वप्रतिपन्नो भवति, उद्वृत्तस्तु 'स्यात्' कदाचित् चतुष्कं प्रतिप्रद्यते कदाचित् त्रिकं, पूर्वप्रतिपन्नोऽप्यस्त्येवेति गाथार्थः ॥ ८२५ ॥

तिरिएसु अणुव्वट्टे तिगं चउक्कं सिया उ उव्वट्टे। मणुएसु अणुव्वट्टे चउरो ति दुगं तु उव्वट्टे ॥ ८२६ ॥

१ केवली कषायो मरणं वेदना वैक्रियं तैजस आहारकः। सप्तविधः समुद्घातः प्रज्ञप्तो वीतरागैः ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

व्याख्या—'तिर्यक्षु' गर्भव्युत्क्रान्तिकेषु संज्ञिष्वनुद्वृत्तः सन् 'त्रिकम्' आद्यं सामायिकत्रयमधिकृत्य प्रतिपत्ता प्राक्-प्रतिपन्नश्च भवतीत्यध्याहारः, 'चउक्कं सिया उ उव्वट्टे' उद्वृत्तस्तु मनुष्यादिष्वायातः 'स्यात्' कदाचिच्चतुष्टयं स्यात् त्रिकं स्यात् द्विकमधिकृत्योभयथाऽपि भवतीति, 'मणुएसु अणुव्वट्टे चउरो ति दुगं तु उव्वट्टे' मनुष्येष्वनुद्वृत्तः सन् चत्वारि प्रति-पद्यते प्राक्प्रतिपन्नश्च भवति, त्रीणि द्विकं, तुशब्दो विशेषणे, उद्वृत्तस्तिर्यग्नारकामरेष्वायातः त्रीणि द्विकं वाऽधिकृत्यो-भयथाऽपि भवतीति गाथार्थः ॥ ८२६ ॥

देवेसु अणुव्वट्टे दुगं चउक्कं सिया उ उव्वट्टे । उव्वट्टमाणओ पुण सव्वोऽवि न किंचि पडिवज्जे ॥ ८२७ ॥

व्याख्या—देवेष्वनुद्वृत्तः सन् 'द्विकम्' आद्यं सामायिकद्वयमाश्रित्योभयथाऽपि भवतीति क्रिया, 'चउक्कं सिया उ उवट्टे' त्ति पूर्ववत्, उद्वर्तमानकः पुनरपान्तरालगतौ सर्वोऽप्यमरादिर्न किञ्चित् प्रतिपद्यते, प्राक्प्रतिपन्नस्तु द्वयोर्भवतीति गाथार्थः ॥ ८२७ ॥ द्वारम् ॥ आश्रवकरणद्वारप्रतिपादनायाह—

णीसवमाणो जीवो पडिवज्जइ सो चउण्हमण्णयरं । पुव्वपडिवण्णओ पुण सिय आसवओ व णीसवओ ॥८२८॥

व्याख्या—निश्रावयन् यस्मात् सामायिकं प्रतिपद्यते, तदावरणं कर्म निर्जरयन्नित्यर्थः, शेषकर्म तु बध्नन्नपि जीव—आत्मा प्रतिपद्यते स चतुर्णामन्यतरत्, पूर्वप्रतिपन्नकः पुनः स्यादाश्रवको बन्धक इत्यर्थः, निःश्रावको वा, वाशब्दस्य व्यवहितः सम्बन्धः, आह-निर्वेष्टनद्वारादस्य को विशेष इति?, उच्यते, निर्वेष्टनस्य कर्मप्रदेशविसङ्घातरूपत्वात् क्रिया-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

कालो गृहीतः, निःश्रवणस्य तु निर्जरारूपत्वान्निष्ठाकाल इति, अथवा तत्र संवेष्टनवक्तव्यताऽर्थतोऽभिहिताः, इह तु साक्षादिति गाथार्थः ॥ ८२८ ॥ द्वारम् ॥ अधुनाऽलङ्कारशयनासनस्थानचङ्क्रमणद्वारकदम्बकव्याचिख्यासयाऽऽह—

उम्मुक्कमणुम्मुक्के उम्मुंचंते य केसलंकारे । पडिवज्जेज्जऽन्नयरं सयणाईसुंपि एमेव ॥ ८२९ ॥

व्याख्या—'उन्मुक्ते' परित्यक्ते 'अनुन्मुक्ते' अपरित्यक्ते अनुस्वारोऽलाक्षणिकः, उन्मुञ्चंश्च केशालङ्कारान्, केशग्रहणं कटककेयूराद्युपलक्षणं, प्रतिपद्येत अन्यतरच्चतुर्णां 'सयणादीसुंपि एमेव' त्ति शयनादिष्वपि द्वारेषु तिसृष्वप्यवस्थास्वेवमेव योजना कार्या, उन्मुक्तशयनोऽनुन्मुक्तशयनः तथोन्मुञ्चन् चतुर्णामन्यतरत् प्रतिपद्यते प्राक्प्रतिपन्नश्च भवति, एवं शेषयोजना कार्या, इति गाथार्थः ॥ ८२९ ॥ उपोद्घातनिर्युक्तौ द्वितीयद्वारगाथायां क्वेति द्वारं गतम्, अधुना केष्विति द्वारं व्याचिख्यासुराह—

सव्वगयं सम्मत्तं सुए चरित्ते ण पज्जवा सव्वे । देसविरइं पडुच्चा दोण्हवि पडिसेहणं कुज्जा ॥ ८३० ॥

व्याख्या—अथ केषु द्रव्येषु पर्यायेषु वा सामायिकमिति?, तत्र सर्वगतं सम्यक्त्वं, सर्वद्रव्यपर्यायरुचिलक्षणत्वात् तस्य, तथा 'श्रुते' श्रुतसामायिके 'चारित्रे' चारित्रसामायिके न पर्यायाः सर्वे विषयाः, श्रुतस्याभिलाप्यविषयत्वाद्, द्रव्यस्य चाभिलाप्यानभिलाप्यपर्याययुक्तत्वात्, चारित्रस्यापि 'पढमंमि सव्वजीवा' इत्यादिना सर्वद्रव्यासर्वपर्यायविषयतायाः प्रतिपादितत्वात्, देशविरतिं प्रतीत्य द्वयोरपि–सकलद्रव्यपर्याययोः प्रतिषेधनं कुर्यात्, न सर्वद्रव्यविषयं नापि सर्वपर्यायविषयं देशविरतिसामायिकमिति भावना । आह–अयं सामायिकविषयः किंद्वारे प्ररूपित एवेति किं पुनरभिधानम्?,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

उच्यते, किं तदिति तत्र सामायिकं जातिमात्रमुक्तं, विषयविषयिणोरभेदेन, इह पुनः सामायिकस्य किंद्वार एव द्रव्यत्व-गुणत्वनिरूपितस्य ज्ञेयभावेन विषयाभिधानमिति, आह च भाष्यकारः–"किं तंति जातिभावेण तत्थ इह णेयभावतोऽभिहितं । इह विसयविसयिभेदो तत्थाभेदोवयारो त्ति ॥ १ ॥" गाथार्थः ॥ ८३१ ॥ केष्विति गतं, कथं पुनः सामायिकमवाप्यते ?, तत्र चतुर्विधमपि मनुष्यादिस्थानावाप्तौ सत्यामवाप्यत इतिकृत्वा तत्क्रमदुर्लभताख्यापनायाह निर्युक्तिकारः–

माणुस्स खेत्त जाई कुलरूवारोग्गमाउयं बुद्धी । सवणोग्गह सद्धा संजमो य लोगंमि दुलहाइं ॥ ८३१ ॥

इंदियलद्धी निवत्तणा य पज्जत्ति निरुवहयखेमं । धायारोग्गं सद्धा गाहगउवओग अट्ठो य (अन्यदीया)

चोल्लग पासग धण्णे जूए रयणे य सुमिण चक्के य । चम्मजुगे परमाणू दस दिट्ठन्ता मणुयलंभे ॥ ८३२ ॥

व्याख्या—'मानुष्यं' मनुजत्वं 'क्षेत्रम्' आर्यं 'जातिः' मातृसमुत्था 'कुलं' पितृसमुत्थं 'रूपम्' अन्यूनाङ्गता 'आरोग्यं' रोगाभावः 'आयुष्कं' जीवितं 'बुद्धिः' परलोकप्रवणा 'श्रवणं' धर्मसम्बद्धम् 'अवग्रहः' तदवधारणम् अथवा श्रवणावग्रहो–यत्यवग्रहः 'श्रद्धा' रुचिः 'संयमश्च' अनवद्यानुष्ठानलक्षणः, एतानि स्थानानि लोके दुर्लभानि, एतदवाप्तौ च विशिष्टसामायिकलाभ इति गाथार्थः ॥ ८३२ ॥ अथ चैतानि दुर्लभानि–'इन्द्रियलब्धिः' पञ्चेन्द्रियलब्धिरित्यर्थः, निर्वर्त्तना च इन्द्रियाणामेव, पर्याप्तिः–स्वविषयग्रहणसामर्थ्यलक्षणा, 'निरुवहत'त्ति निरुपहतेन्द्रियता, 'क्षेमं' विषयस्य 'ध्रातं' सुभिक्षम् 'आरोग्यं' नीरोगता 'श्रद्धा' भक्तिः 'ग्राहकः' गुरु 'उपयोगः' श्रोतुस्तदभिमुखता 'अट्ठो य' त्ति अर्थित्वं च

१ किं तदिति (द्वारे) जातिद्वारेण तत्रेह ज्ञेयभावतोऽभिहितम् । अत्र विषयविषयिभेदः तत्राभेदोपचारः इति ॥ १ ॥ * भावना प्र०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्यभवस्य दुर्लभत्व संबंधे दश दृष्टान्ताः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

धर्म इति गाथार्थः ॥ भिन्नकर्तृकी किलेयम् । जीवो मानुष्यं लब्ध्वा पुनस्तदेव दुःखेन लप्स्यते, बह्वन्तरायान्तरितत्वात्, ब्रह्मदत्तचक्रवर्तिमित्रब्राह्मणचोल्लकभोजनवत्, अत्र कथानकम्–बंभदत्तस्स एगो कप्पडिओ ओलग्गओ, बहुसु आवतीसु अवत्थासु य सवत्थ सहायो आसि, सो य रज्जं पत्तो, बारससंवच्छरिओ अभिसेओ कओ, कप्पडिओ तत्थ अल्लियावंपि ण लहति, ततोऽणेण उवाओ चिन्तितो, उवाहणाओ धए बंधिऊण धयवाहएहिं समं पधावितो, रण्णा दिट्ठो, उत्तिण्णेणं अवगूहितो, अण्णे भणंति–तेण दारवाले सेवमाणेण बारसमे संवच्छरे राया दिट्ठो, ताहे राया तं दट्ठूण संभंतो, इमो सो वराओ मम सुहदुक्खसहायगो, एत्ताहे करेमि वित्तिं, ताधे भणति– किं देमि त्ति ?, सो भणति–देह करचोल्लए घरे घरे जाव सव्वंमि भरहे, जाधे णिट्ठितं होज्जा ताहे पुणोवि तुब्भ घरे आढवेऊण भुंजामि, राया भणति–किं ते एतेण ?, देसं ते देमि, तो सुहं छत्तछायाए हत्थिखंधवरगतो हिंडिहिसि, सो भणति–किं मम एद्दहेण आहट्टेण ?, ताहे सो दिण्णो चोल्लगो, ततो पढमदिवसे राइणो घरे जिमितो, तेण से जुवलयं दीणारो य दिण्णो, एवं सो परिवाडीए सव्वेसु राउलेसु

१ ब्रह्मदत्तस्यैकः कार्पटिकोऽवलगकः, बह्वीष्वापत्सु अवस्थासु च सर्वत्र सहाय आसीत्, स च राज्यं प्राप्तः, द्वादशवार्षिकोऽभिषेकः कृतः, कार्पटिकस्तत्र प्रवेशमपि न लभते, ततोऽनेनोपायश्चिन्तितः, उपानहौ ध्वजे बद्ध्वा ध्वजवाहकैः समं प्रधावितः, राज्ञा दृष्टः, उत्तीर्णेनावगूढः, अन्ये भणन्ति–तेन द्वारपालान् सेवमानेन द्वादशे संवत्सरे राजा दृष्टः,तदा राजा तं दृष्ट्वा संभ्रान्तः, अयं स वराको मम सुखदुःखसहायकः, अधुना करोमि वृत्तिं, तदा भणति–किं ददामीति, स भणति–देहि करभोजनं (करतया यद्भोजनं) गृहे गृहे यावत् सर्वस्मिन् भरते, यदा निष्ठितं भवेत्तदा पुनरपि तव गृहादारभ्य भुञ्जे, राजा भणति–किं ते एतेन ?, देशं तुभ्यं ददामि, ततः सुखं छत्रच्छायायां वरहस्तिस्कन्धगतो हिण्डिष्यसे, स भणति–किं ममैतावता आडम्बरेण (उपाधिना) ?, तदा तत्तस्मै दत्तं (कर) भोजनं, ततः प्रथमदिवसे राज्ञो गृहे जिमितः, तेन तस्मै युगलं दीनारश्च दत्तः, एवं स परिपाट्या सर्वेषु राजकुलेषु

॥३४१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

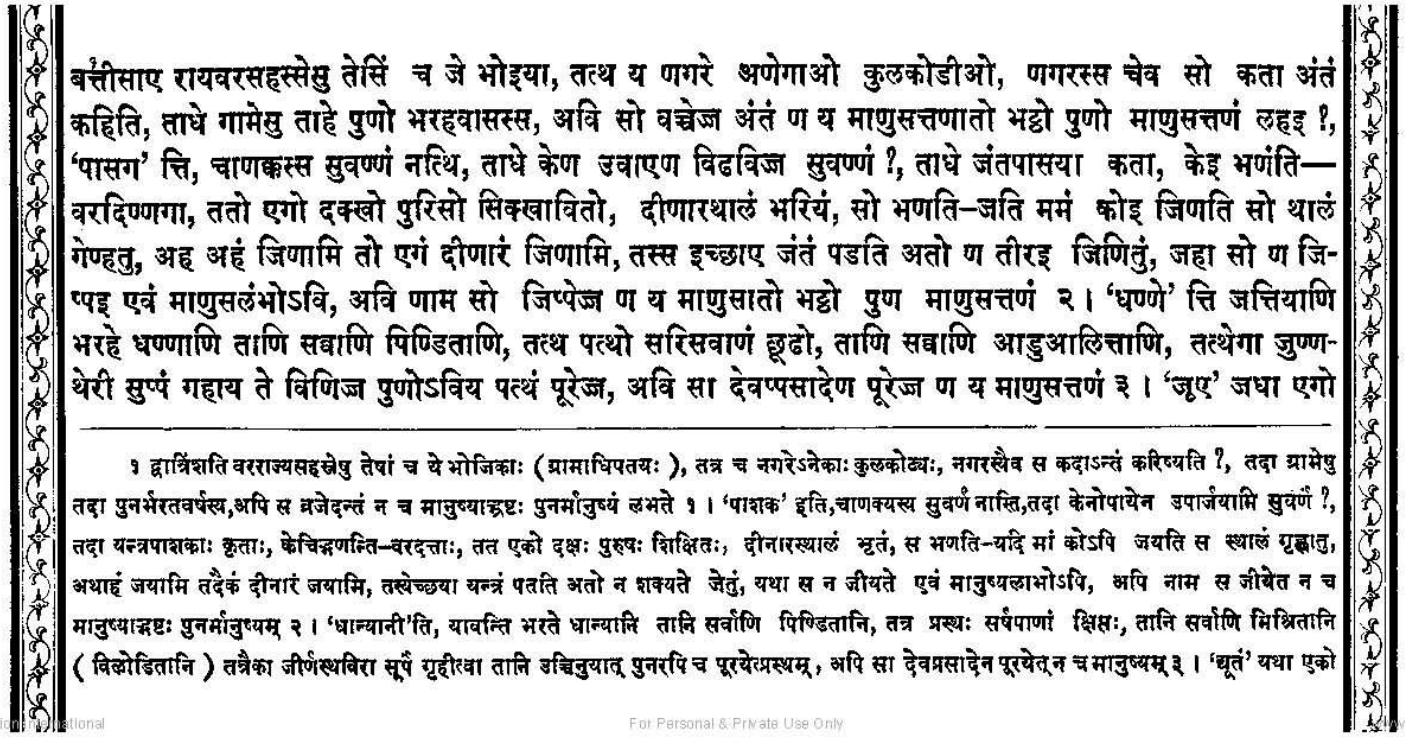

बत्तीसाए रायवरसहस्सेसु तेसिं च जे भोइया, तत्थ य णगरे अणेगाओ कुलकोडीओ, णगरस्स चेव सो कता अंतं कहिति, ताधे गामेसु ताहे पुणो भरहवासस्स, अवि सो वच्चेज्ज अंतं ण य माणुसत्तणातो भट्ठो पुणो माणुसत्तणं लहइ ?, 'पासग' त्ति, चाणक्कस्स सुवण्णं नत्थि, ताधे केण उवाएण विढविज्ज सुवण्णं ?, ताधे जंतपासया कता, केइ भणंति— वरदिण्णगा, ततो एगो दक्खो पुरिसो सिक्खाविंतो, दीणारथालं भरियं, सो भणति–जति ममं कोइ जिणति सो थालं गेण्हतु, अह अहं जिणामि तो एगं दीणारं जिणामि, तस्स इच्छाए जंतं पडति अतो ण तीरइ जिणितुं, जहा सो ण जिप्पइ एवं माणुसलंभोऽवि, अवि णाम सो जिप्पेज्ज ण य माणुसातो भट्ठो पुण माणुसत्तणं २। 'धण्णे' त्ति जत्तियाणि भरहे धण्णाणि ताणि सव्वाणि पिण्डितानि, तत्थ पत्थो सरिसवाणं छूढो, ताणि सव्वाणि आडुआलित्ताणि, तत्थेगा जुण्णथेरी सुप्पं गहाय ते विणिज्ज पुणोऽविय पत्थं पूरेज्ज, अवि सा देवप्पसादेण पूरेज्ज ण य माणुसत्तणं ३। 'जूए' जधा एगो

---

१ द्वात्रिंशति वरराज्यसहस्रेषु तेषां च ये भोजिकाः (ग्रामाधिपतयः), तत्र च नगरेऽनेकाः कुलकोट्यः, नगरस्यैव स कदाऽन्तं करिष्यति ?, तदा ग्रामेषु तदा पुनर्भरतवर्षस्य,अपि स व्रजेदन्तं न च मानुष्याद्भ्रष्टः पुनर्मानुष्यं लभते १। 'पाशक' इति,चाणक्यस्य सुवर्णं नास्ति,तदा केनोपायेन उपार्जयामि सुवर्णं ?, तदा यन्त्रपाशकाः कृताः, केचिद्भणन्ति–वरदत्ताः, तत एको दक्षः पुरुषः शिक्षितः, दीनारस्थालं भृतं, स भणति–यदि मां कोऽपि जयति स स्थालं गृह्णातु, अथाहं जयामि तदैकं दीनारं जयामि, तस्येच्छया यन्त्रं पतति अतो न शक्यते जेतुं, यथा स न जीयते एवं मानुष्यलाभोऽपि, अपि नाम स जीयेत न च मानुष्याद्भ्रष्टः पुनर्मानुष्यम् २। 'धान्यानी'ति, यावन्ति भरते धान्यानि तानि सर्वाणि पिण्डितानि, तत्र प्रस्थः सर्षपाणां क्षिप्तः, तानि सर्वाणि मिश्रितानि (विलोडितानि) तत्रैका जीर्णस्थविरा सूर्पं गृहीत्वा तानि उच्चिनुयात् पुनरपि च पूरयेत्प्रस्थम्, अपि सा देवप्रसादेन पूरयेत् न च मानुष्यम् ३। 'द्यूतं' यथा एको

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

रायाँ, तस्स सभा अट्ठखंभसतसंनिविट्ठा जत्थ अत्थायणयं देति, एक्केको य खंभो अट्ठसयंसिओ, तस्स रण्णो पुत्तो रज्ज-कंखी चिंतेति–थेरो राया, मारिऊण रज्जं गिण्हामि, तं च अमच्चेण णायं, तेण रण्णो सिट्ठं, ततो राया तं पुत्तं भणति— अम्ह जो ण सहइ अणुक्कमं सो जूतं खेलति, जति जिणति रज्जं से दिज्जति, कह पुण जिणियव्वं ?, तुज्झ एगो आओ, अवसेसा अम्हं आया, जति तुमं एगेण आएण अट्ठसतस्स खंभाणं एक्केक्कं अंसियं अट्ठसते वारा जिणासि तो तुज्झ रज्जं, अवि य देवताविभासा ४ । 'रतणे' त्ति, जहा एगो वाणियओ बुड्ढो, रयणाणि से अत्थि, तत्थ य महे महे अण्णे वाणिययाकोडिपडागाओ उब्भेंति, सो ण उब्भवेति, तस्स पुत्तेहिं थेरे पउत्थे ताणि रयणाणि देसी वाणिययाण हत्थे विक्कीताणि, वरं अम्हेऽवि कोडिपडागाओ उब्भवेन्ता, ते य वाणियगा समंततो पडिगया पारसकूलादीणि, थेरो आगतो, सुतं जधा विक्कीताणि, ते अंबाडेति, लहुं रयणाणि आणेह, ताहे ते सव्वतो हिंडितुमारद्धा, किं ते सव्वरयणाणि पिंडिज्ज ?, अवि य

---

१ राजा, तस्य सभाऽष्टोत्तरस्तम्भशतसन्निविष्टा यत्रास्थानिकां ददाति,एकैकश्च स्तम्भोऽष्टशतांशिकः, तस्य राज्ञः पुत्रो राज्यकाङ्क्षी चिन्तयति–वृद्धो राजा, मारयित्वा राज्यं गृह्णामि, तच्चामात्येन ज्ञातं, तेन राज्ञे शिष्टं, ततो राजा तं पुत्रं भणति–अस्माकं यो न सहतेऽनुक्रमं स द्यूतं क्रीडति, यदि जयति राज्यं तस्मै दीयते, कथं पुनर्जेतव्यम् ?, तवैक आयः अवशेषा अस्माकमायाः, यदि त्वमेकेनायेनाष्टशतस्य स्तम्भानामेकैकमस्त्रिमष्टशतवारान् जयसि तदा तव राज्यम्, अपिच देवताविभाषा ४ । 'रत्नानी'ति, यथैको वणिक् वृद्धः, रत्नानि तस्य सन्ति, तत्र च महे महेऽन्ये वणिजः कोटीपताका उच्छ्रयन्ति, स नोच्छ्रयति,तस्यं पुत्रैः स्थविरे प्रोषिते तानि रत्नानि देशीयवणिजां हस्ते विक्रीतानि, वरं वयमपि कोटीपताका उच्छ्रयन्तः, ते च वणिजः समन्ततः प्रतिगताः पारसकूलादीनि (स्थानानि), स्थविर आगतः, श्रुतं यथा विक्रीतानि, तान् निर्भर्त्सयति, लघु रत्नानि आनयत,तदा ते सर्वतो हिण्डितुमारब्धाः, किं ते सर्वरत्नानि पिण्डयेयुः ?, अपि च

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

देवप्पभावेण विभासा ५। 'सुविणए' त्ति–एगेण कप्पडिएण सुमिणए चंदो गिलितो, कप्पडियाण कथितं, ते भणंति–संपुण्णचंदमंडलसरिसं पोवलियं लभिहिसि, लद्धा घरच्छादणियाए, अण्णेणवि दिट्ठो, सो ण्हाइऊण पुप्फफलाणि गहाय सुविणपाढगस्स कथेति, तेण भणितं–राया भविस्ससि। इत्तो य सत्तमे दिवसे तत्थ राया मतो अपुत्तो, सो य णिव्विण्णो अच्छति, जाव आसो अधियासितो आगतो, तेण तं दट्ठूण हेसितं पदक्खिणीकतो य, ततो विलइओ पुट्ठे, एवं सो राया जातो, ताहे सो कप्पडिओ तं सुणेति, जधा–तेणऽवि दिट्ठो एरिसो सुविणओ, सोवि आदेसफलेण किर राया जातो, सोय चिंतेति–वच्चामि जत्थ गोरसो तं पिबेत्ता सुवामि, जाव पुणो तं चेव सुमिणं पेच्छामि, अत्थि पुण सो पेच्छेज्जा ?, अवि य सो ण माणुसातो ६। 'चक्क'त्ति दारं, इंदपुरं नगरं, इंददत्तो राया, तस्स इट्ठाणं वराणं देवीणं बावीसं पुत्ता, अण्णे भणंति–एक्काए चेव देवीए पुत्ता, राइणो पाणसमा, अण्णा एक्का अमच्चधूया, सा परं परिणिंतेण दिट्ठेल्लिया,

---

१ देवप्रभावेण विभाषा ५। स्वप्नक इति, एकेन कार्पटिकेन स्वप्ने चन्द्रो गिलितः, कार्पटिकेभ्यः कथितं, ते भणन्ति–संपूर्णचन्द्रमण्डलसदृशीं पोलिकां लप्स्यसे, लब्धा गृहच्छादनिक्या, अन्येनापि दृष्टः, स ज्ञात्वा पुष्पफलानि गृहीत्वा स्वप्नपाठकाय कथयति, तेन भणितं–राजा भविष्यसि। इतश्च सप्तमे दिवसे तत्र राजा मृतोऽपुत्रः, स च निर्विण्णस्तिष्ठति, यावदश्वोऽध्यासितः (ऽधिवासितः) आगतः, तेन तं दृष्ट्वा हेषितं प्रदक्षिणीकृतश्च, ततो विलगितः पृष्ठे, एवं स राजा जातः, तदा स कार्पटिकस्तत् शृणोति, यथा–तेनापि दृष्ट ईदृशः स्वप्नः, स त्वादेशफलेन किल राजा जातः, स च चिन्तयति–व्रजामि यत्र गोरसं पीत्वा स्वपिमि, यावत्पुनस्तमेव स्वप्नं प्रेक्षयिष्ये, अस्ति पुनः स प्रेक्षेत ?, अपि च स न मानुष्यात् ६। चक्रमिति द्वारम्, इन्द्रपुरं नगरम्, इन्द्रदत्तो राजा, तस्येष्टानां वराणां देवीनां द्वाविंशतिः पुत्राः, अन्ये भणन्ति–एकस्या एव देव्याः पुत्राः, राज्ञः प्राणसमाः, अन्या एकाऽमात्यदुहिता, सा परं परिणयता दृष्टा,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

सा अण्णता कताइ रितुण्हाता समाणी अच्छति, रायणा य दिट्ठा, का एसत्ति ?, तेहिं भणितं–तुब्भे देवी एसा, ताहे सो ताए समं रत्तिं एक्कं वसितो, सा य रितुण्हाता, तीसे गब्भो लग्गो, साय अमच्चेण भणिएल्लिता–जया तुमं गब्भो आहूतो भवति तदा ममं साहिज्जसु, ताए तस्स कथितं–दिवसो मुहुत्तो जं च रायाएण उल्लवितं सातियंकारो, तेण तं पत्तए लिहितं, सो सारवेति, णवण्हं मासाणं दारओ संजातो, तस्स दासचेडाणि तद्दिवसं जाताणि, तंजहा–अग्गियओ पव्वतओ बहुलियो सागरो य, ताणि य सहजातगाणि, तेण कलायरियस्स उवणीतो, तेण लेहाइताओ गणियप्पहाणाओ कलाओ गाहितो, जाहे ताओ गाहिंति आयरिया ताधे ताणि तं कड्ढंति वाउल्लेंति य, पुव्वपरिचएणं ताणि रोडंति, तेण ताणि ण चेव गणिताणि, गहिताओ कलाओ, ते य अण्णे बावीसं कुमारा गाहिज्जंता तं आयरियं पिट्टंति अवयणाणि य भणंति, जति सो आयरिओ पिट्टेति ताहे गंतूण मातूणं साहंति, ताहे ताओ तं आयरियं खिंसंति–कीस आहणसि ?, किं सुलभाणि

---

१ साऽन्यदा कदाचित् ऋतुस्नाता सती तिष्ठति, राज्ञा च दृष्टा, कैषेति ?, तैर्भणितं–युष्माकं देव्येषा, तदा स तया सह रात्रिमेकामुषितः, सा च ऋतुस्नाता तस्या गर्भो लग्नः, सा चामात्येन भणितपूर्वा–यदा तव गर्भ उत्पन्नो भवति तदा मह्यं कथयेः, तया तस्मै कथितं–दिवसो मुहूर्तो यच्च राज्ञोल्लसं सत्यङ्कारः, तेन तत्पत्रे लिखितं, स संरक्षति, नवसु मासेषु दारकः संजातः, तस्य दासचेटास्तद्दिवसे जाताः, तद्यथा–अग्निः पर्वतो बाहुलिकः सागरश्च, ते च सहजाताः, तेन कलाचार्यायोपनीतः, तेन लेखादिका गणितप्रधानाः कला ग्राहितः, यदा ता ग्राहयन्त्याचार्यास्तदा ते तं निन्दयन्ति व्याकुलयन्ति च, पूर्वपरिचयेन ते तिरस्कुर्वन्ति तेन ते नैव गणिताः, गृहीताः कलाः, ते चान्ये द्वाविंशतिः कुमारा ग्राह्यमाणास्तमाचार्यं पिट्टयन्ति अवचनानि च भणन्ति, यदि स आचार्यः पिट्टति तदा गत्वा मातृभ्यः कथयन्ति, तदा ताः तमाचार्यं हीलयन्ति (उपालभन्ते) कथमाहंसि?, किं सुलभानि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पुत्तजम्माणि?, अतो ते ण सिक्खिता । इओ य महुराए पवयओ राया, तस्स सुता णिव्वुती णाम दारिया, सा रण्णो अलंकिया उवणीता, राया भणति–जो तव रोयति भत्तारो, तो ताए भणितं–जो सूरो वीरो विक्कंतो सो मम भत्ता होउ, से पुण रज्जं दिज्जा, ताधे सा तं बलवाहणं गहाय गता इंदपुरं नगरं, तस्स इंददत्तस्स बहवे पुत्ता, इंददत्तो तुट्ठो चिंतेइ– णूणं अहं अण्णेहिंतो राईहिंतोलट्ठो तो आगता, ततो तेण उस्सितपडागं नगरं कारितं, तत्थ एक्कंमि अक्खे अट्ठ चक्काणि, तेसिं पुरतो धिइल्लिया ठविया, सा अच्छिम्मि विंधितव्वा, ततो इंददत्तो राया सन्नद्धो णिग्गतो सह पुत्तेहिं, सावि कण्णा सव्वालंकारभूसिया एगंमि पासे अच्छति, सो रंगो ते य रायाणो ते य दंडभडभोइया जारिसो दोवतीए, तत्थ रण्णो जेट्ठो पुत्तो सिरिमालीणाम कुमारो, सो भणितो–पुत्त ! एस दारिया रज्जं च घेत्तव्वं, अतो विंध एतं पुत्तलियंति, ताधे सोऽकतकरणो तस्स समूहस्स मज्झे धणुं चेव गेण्हित्तुं ण तरति, कहऽविऽणेण गहितं, तेण जतो वच्चतु ततो वच्चतुत्ति मुक्को

१ पुत्रजन्मानि?, अतस्ते न शिक्षिताः । इतश्च मथुरायां पर्वतो राजा, तस्य सुता निर्वृतिर्नाम दारिका, सा राज्ञेऽलङ्कृतोपनीता, राजा भणति–यस्तुभ्यं रोचते भर्त्ता स, ततस्तया भणितं–यः शूरो वीरो विक्रान्तः स मम भर्त्ता भवतु, स पुना राज्यं दद्यात्, तदा सा तद्बलवाहनं गृहीत्वा गता इन्द्रपुरं नगरं, तस्येन्द्रदत्तस्य बहवः पुत्राः, इन्द्रदत्तस्तुष्टश्चिन्तयति–नूनमहमन्येभ्यो राजभ्यो लष्टस्तत आगता, ततस्तेनोच्छ्रितपताकं नगरं कारितं, तत्रैकस्मिन् अक्षे (अक्षाटके) अष्ट चक्राणि, तेषां पुरतः शालभञ्जिका स्थापिता, साऽक्ष्णि वेधितव्या, तत इन्द्रदत्तो राजा सन्नद्धो निर्गतः सह पुत्रैः, साऽपि कन्या सर्वालङ्कारभूषितैकस्मिन् पार्श्वे तिष्ठति, स राजः ते च राजानस्ते च दण्डभटभोजिका यादृशो द्रौपद्याः, तत्र राज्ञो ज्येष्ठः पुत्रः श्रीमाली नाम कुमारः, स भणितः–पुत्र ! एषा दारिका राज्यं च ग्रहीतव्यम् , अतो विध्यनां शालभञ्जिकां इति, तदा सोऽकृतकरणः तस्य समूहस्य मध्ये धनुरेव ग्रहीतुं न शक्नोति, कथमप्यनेन गृहीतं, तेन यतो व्रजतु ततो व्रजत्विति मुक्तः * पएसे प्र.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

सरो, सो चक्के अप्फिडिऊण भग्गो, एवं कस्सइ एक्कं अरगंतरं वोलीणो कस्सइ दोण्णि कस्सइ तिण्णि अण्णेसिं वाहिरेण चेव णीति, ताधे राया अधितिं पगतो–अहोऽहं एतेहिं धरिसितोत्ति, ततो अमच्चेण भणितो–कीस अधितिं करेह ?, राया भणति–एतेहिं अहं अप्पधाणो कतो, अमच्चो भणति–अत्थि अण्णो तुब्भ पुत्तो मम धूताए तणइओ सुरिंददत्तो णाम, सो समत्थो विंधितुं, अभिण्णाणाणि से कहिताणि, कहिं सो ?, दरिसितो, ततो सो राइणा अवगूहितो, भणितो–सेयं तव एए अट्ठ रहचक्के भेत्तूण पुत्तलियं अच्छिम्मि विंधित्ता रज्जसुक्कं णिबुतिदारियं संपावित्तए, ततो कुमारो जधाऽऽणवेहत्ति भणिऊण ठाणं ठाइत्तूण धणुं गेण्हति, लक्खाभिमुहं सरं सज्जेति, ताणि य दासरूवाणि चउद्दिसं ठिताणि रोडिंति, अण्णे य उभयतो पासिं गहितखग्गा, जति कहवि लक्खस्स चुक्कति ततो सीसं छिंदितवंति, सोऽवि से उवज्झाओ पासे ठितो भयं देति–मारिज्जसि जति चुक्कसि, ते बावीसंपि कुमारा मा एस विन्धिस्सतित्ति विसेसउलंठाणि विग्घाणि करेंति,

१ शरः, स चक्रे आस्फाल्य भग्नः, एवं कस्यचित् एकमरकान्तरं व्यतिक्रान्तः कस्यचित् द्वे कस्यचित्रीणि, अन्येषां बाह्य एव निर्गच्छति, तदा राजाऽधृतिं प्रगतः–अहो अहमेतैर्धर्षित इति, ततोऽमात्येन भणितः–किमधृतिं करोषि ?, राजा भणति–एतैरहमप्रधानः कृतः, अमात्यो भणति–अस्त्यन्यो युष्माकं पुत्रो मम दुहितुस्सनुजः सुरेन्द्रदत्तो नाम, स समर्थो वेधितुम्, अभिज्ञानानि तस्मै कथितानि, कुत्र सः ?, दर्शितः, ततः स राज्ञाऽवगूहितो, भणितः–श्रेयस्तवैतानि अष्ट रथचक्राणि भित्त्वा शालभञ्जिकामक्षिणि विद्ध्वा राज्यशुल्कां निर्वृतिदारिकां संप्रापुं, ततः कुमारो यथाऽऽज्ञापयतेति भणित्वा स्थानं स्थित्वा धनुर्गृह्णाति, लक्ष्याभिमुखं शरं निसृजति (सज्जयति), ते च दासाश्चतुर्दिशं स्थिताः स्खलनां कुर्वन्ति, अन्यौ चोभयतः पार्श्वयोर्गृहीतखड्गौ, यदि कथमपि लक्ष्याद्भ्रश्यति तदा शीर्षं छेत्तव्यमिति, सोऽपि तस्योपाध्यायः पार्श्वे स्थितः भयं ददाति–मारयिष्यसे यदि भ्रश्यसि, ते द्वाविंशतिरपि कुमारा मा एष व्यात्सीदिति विशेषोच्छृङ्खला विघ्नान् कुर्वन्ति.

॥३४४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

ततो ताणि चत्तारि ते य दो पुरिसे बावीसं च कुमारे अगणंतेण ताणं अट्ठण्हं रहचक्काणं अंतरं जाणिऊणं तंमि लक्खे णिरुद्धाए दिट्ठीए अण्णमतिं अकुणमाणेण सा धिइल्लिया वामे अच्छिम्मि विद्धा, ततो लोगेण उक्किट्ठिसीहणाद-कलकलुमिस्सो साधुकारो कतो, जधा तं चक्कं दुक्खं भेत्तुं एवं माणुसत्तणंपि ७। 'चम्मे'त्ति–जधा एगो दहो जोयणसय-सहस्सविच्छिण्णो चम्मेण णद्धो, एगं से मज्झे छिड्डं जत्थ कच्छभस्स गीवा मायति, तत्थ कच्छभो वासस ते वाससते गते गीवं पसारेति, तेण कहवि गीवा पसारिता, जाव तेण छिड्डेण निग्गता, तेण जोतिसं दिट्ठं कोमुदीए पुप्फफलाणि य, सो आगतो, सयणिज्जयाणं दाएमि, आणेत्ता सवतो पलोयति, ण पेच्छति, अवि सो, ण य माणुसातो ८। युगदृष्टान्त-प्रतिपादनायाऽऽह—

पुव्वंते होज्ज जुगं अवरंते तस्स होज्ज समिला उ। जुगछिड्डंमि पवेसो इय संसइओ मणुयलंभो ॥ ८३३ ॥

व्याख्या—जलनिधेः पूर्वान्ते भवेद् युगम्, अपरान्ते तस्य भवेत् समिला तु, एवं व्यवस्थिते सति यथा युगच्छिद्रे प्रवेशः संशयितः, 'इय' एवं संशयितो मनुष्यलाभो, दुर्लभ इति गाथार्थः ॥

१ ततस्तांश्चतुरस्त्रौ च द्वौ पुरुषौ द्वाविंशतिं च कुमारानगणयता तेषामष्टानां रथचक्राणामन्तरं ज्ञात्वा तस्मिंल्लक्ष्ये निरुद्धया दृष्ट्या अन्यत्र मतिमकुर्वता सा शालभञ्जिका वामेऽक्षिणि विद्धा, ततो लोकेनोत्कृष्टसिंहनादकलकलोन्मिश्रः साधुकारः कृतः, यथा तच्चक्रं दुःखं भेत्तुमेवं मानुष्यमपि ७। चर्मेति–यथैको ह्रदो योजनशतसहस्रविस्तीर्णश्चर्मणा नद्धः, एकं तस्य मध्ये छिद्रं यत्र कच्छपस्य ग्रीवा याति, तत्र कच्छपो वर्षशते वर्षशते गते ग्रीवां प्रसारयति, तेन कथमपि ग्रीवा प्रसारिता यावत्तेन छिद्रेण निर्गता, तेन ज्योतिर्दृष्टं कौमुद्यां पुष्पफलानि च, स आगतः, स्वजनानां दर्शयामि, आनीय सर्वतः प्रलोकयति, न प्रेक्षते, अपि सः, न च मानुष्यात् ८।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

जह समिला पब्भट्ठा सागरसलिले अणोरपारंमि । पविसेज्ज जुग्गछिड्डं कहवि भमंती भमंतंमि ॥ ८३४ ॥

व्याख्या—यथा समिला प्रभ्रष्टा 'सागरसलिले' समुद्रपानीये 'अणोरपार'मिति देशीवचनं प्रचुरार्थे उपचारत आराद्भागपरभागरहित इत्यर्थः, प्रविशेत् युगच्छिद्रं कथमपि भ्रमन्ती भ्रमति युग इत्येवं दुर्लभं मानुष्यमिति गाथार्थः ॥

सा चंडवायवीचीपणुल्लिया अवि लभेज्ज युगछिड्डं । ण य माणुसाउ भट्ठो जीवो पडिमाणुसं लहइ ॥ ८३५ ॥

व्याख्या—सा समिला चण्डवातवीचीप्रेरिता सत्यपि लभेत युगच्छिद्रं, न च मानुष्याद् भ्रष्टो जीवः प्रतिमानुषं लभत इति गाथार्थः ॥ [1]इदानीं परमाणू, जहा एगो खंभो महापमाणो, सो देवेणं चुण्णेऊणं अविभागिमाणि खंडाणि काऊण णालियाए पक्खितो, पच्छा मंदरचूलियाए ठितेण फुमितो, ताणि णट्ठाणि, अत्थि पुण कोवि ?, तेहिं चेव पोग्गलेहिं तमेव खंभं णिव्व त्तेज्ज ?, णो त्ति, एस अभावो, एवं भट्ठो माणुसातो ण पुणो । अहवा सभा अणेगखंभसतसहस्ससंनिविट्ठा, सा कालंतरेण झामिता पडिता, अत्थि पुण कोइ ?, तेहिं चेव पोग्गलेहिं करेज्जा, णोत्ति, एवं माणुस्सं दुल्लहं ।

इय दुल्लहलंभं माणुसत्तणं पाविऊण जो जीवो । ण कुणइ पारत्तहियं सो सोयइ संकमणकाले ॥ ८३६ ॥

व्याख्या—'इय' एवं दुर्लभलाभं मानुषत्वं प्राप्य यो जीवो न करोति परत्र हितं–धर्मं, दीर्घत्वमलाक्षणिकं, स शोचति 'सङ्क्रमणकाले' मरणकाल इति गाथार्थः ॥

---

१ इदानीं परमाणुः–यथैकः स्तम्भो महाप्रमाणः, स चूर्णयित्वा देवेनाविभागानि खण्डानि कृत्वा नालिकायां प्रक्षिप्तः, पश्चान्मन्दरचूलायां स्थितेन फूत्कृतः, तानि नष्टानि, अस्ति पुनः कोऽपि ?, तैरेव पुद्गलैस्तमेव स्तम्भं निर्वर्त्तयेत्, नेति, एषोऽभावः, एवं भ्रष्टो मानुष्यान्न पुनः । अथवा सभा अनेकस्तम्भशतसहस्रसन्निविष्टा, सा कालान्तरेण दग्धा पतिता, अस्ति पुनः कोऽपि ?, तैरेव पुद्गलैः कुर्यात्, नेति, एवं मानुष्यं दुर्लभम् ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

जह वारिमज्झछूढोव्व गयवरो मच्छउव्व गलगहिओ। वग्गुरपडिउव्व मओ संवट्टइओ जह व पक्खी ॥ ८३७॥

व्याख्या—यथा वैारिमध्यक्षिप्त इव गजवरो मत्स्यो वा गलगृहीतः वागुरापतितो वा मृगः संवर्त–जालम् इतः—प्राप्तो यथा वा पक्षीति गाथार्थः ॥

सो सोयइ मच्चुजरासमोच्छुओ तुरियणिद्दपक्खित्तो। तायारमविंदंतो कम्मभरपणोल्लिओ जीवो ॥ ८३८ ॥

व्याख्या—सोऽकृतपुण्यः शोचति, मृत्युजरासमास्तृतो–व्याप्तः, त्वरितनिद्रया प्रक्षिप्तः, मरणनिद्रयाऽभिभूत इत्यर्थः, त्रातारम् 'अविन्दन्' †अलभन्नित्यर्थः, कर्मभरप्रेरितो जीव इति गाथार्थः ॥ स चेत्थं मृतः सन्—

काऊणमणेगाइं जम्ममरणपरियट्टणसयाइं। दुक्खेण माणुसत्तं जइ लहइ जहिच्छया जीवो ॥ ८३९ ॥

व्याख्या—कृत्वाऽनेकानि जन्ममरणपरावर्तनशतानि दुःखेन मानुषत्वं लभते जीवो यदि यदृच्छया, कुशलपक्षकारी पुनः सुखेन मृत्वा सुखेनैव लभत इति गाथार्थः ॥

तं तह दुल्लहलंभं विज्जुलयाचंचलं *माणुसत्तं। लद्धूण जो पमायइ सो कापुरिसो न सप्पुरिसो ॥ ८४० ॥

व्याख्या—तत्तथा दुर्लभलाभं विद्युल्लताचञ्चलं मानुषत्वं लब्ध्वा यः 'प्रमाद्यति' प्रमादं करोति स कापुरुषो न सत्पुरुष इति

---

* वारिर्वाग्गजबन्धन्योरिति मेदिन्याम् † आत्मनेपदमनित्यमित्यत्र प्राप्तमपि न स्याद् अप्राप्तमपि च स्यादित्यनित्यस्यार्थस्तेन 'सम्यक् प्रणम्य न लभन्ति कदाचनापि' इत्यत्रेवात्र परस्मैपदित्वापेक्षया न शतृर्विरोधावहः + मणुसत्तं प्र०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

गाथार्थः ॥ इत्यलं प्रसङ्गेन, प्रकृतं प्रस्तुमः–यथैभिर्दशभिर्दृष्टान्तैर्मानुष्यं दुर्लभं तथाऽऽर्यक्षेत्रादीन्यपि स्थानानि, ततश्च सामायिकमपि दुष्प्रापमिति, अथवा मानुष्ये लब्धेऽप्येभिः कारणैर्दुर्लभं सामायिकमिति प्रतिपादयन्नाह—

आलस्स मोहऽवण्णा थंभा कोहा पमाय किवणत्ता । भयसोगा अण्णाणा वक्खेव कुतूहला रमणा ॥८४१॥

व्याख्या—आलस्यान्न साधुसकाशं गच्छति शृणोति वा, मोहाद् गृहकर्तव्यतामूढो वा, अवज्ञातो वा किमेते विजानन्तीति, स्तम्भाद् वा जात्याद्यभिमानात् क्रोधाद् वा साधुदर्शनादेव कुप्यति, 'प्रमादात्' वा मद्यादिलक्षणात् 'कृपणत्वात्' वा दातव्यं किञ्चिदिति, 'भयात्' वा नरकादिभयं वर्णयन्तीति, 'शोकात्' वा इष्टवियोगजात् 'अज्ञानात्' कुदृष्टिमोहितः, 'व्याक्षेपाद्' बहुकर्तव्यतामूढः, 'कुतूहलात्' नटादिविषयात्, 'रमणात्' लावकादिखेडुनेति गाथार्थः ॥८४१॥

एतेहिं कारणेहिं लद्धूण सुदुल्लहंपि माणुस्सं । ण लहइ सुतिं हियकरिं संसारुत्तारणिं जीवो ॥ ८४२ ॥

व्याख्या—एभिः 'कारणैः' आलस्यादिभिर्लब्ध्वा सुदुर्लभमपि मानुष्यं न लभते श्रुतिं हितकारिणीं संसारोत्तारिणीं जीव इति गाथार्थः ॥ व्रतादिसामग्रीयुक्तस्तु कर्मरिपून् विजित्याविकलचारित्रसामायिकलक्ष्मीमवाप्नोति, यानादिगुणयुक्तयोधवज्जयलक्ष्मीमिति ॥ आह च—

जाणावरणपहरणे जुद्धे कुसलत्तणं च णीती य । दक्खत्तं ववसाओ सरीरमारोग्गया चेव ॥ ८४३ ॥

व्याख्या—यानं हस्त्यादि, आवरणं-कवचादि, प्रहरणं–खड्गादि, यानावरणप्रहरणानि, युद्धे कुशलत्वं च–सम्यग् ज्ञानमित्यर्थः, 'नीतिश्च' निर्गमप्रवेशरूपा 'दक्षत्वम्' आशुकारित्वं 'व्यवसायः' शौर्यं शरीरम् अविकलम् 'आरोग्यता,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

व्याधिवियुक्तता चैवेति । एतावद्गुणसामग्र्यविकल एव योधो जयश्रियमाप्नोतीति दृष्टान्तः, दार्ष्टान्तिकयोजना त्वियं– 'जीवो जोहो जाणं वयाणि आवरणमुत्तमा खंती । झाणं पहरणमिट्ठं गीयत्थत्तं च कोसल्लं ॥ १ ॥ दव्वाइजहोवाया-णुरूवपडिवत्तिवत्तिया णीति । दक्खत्तं किरियाणं जं करणमहीणकालंमि ॥ २ ॥ करणं सहणं च तवोवसग्गदुग्गावतीएँ ववसाओ । एतेहिं सुणिरोगो कम्मरिउं जिणति सवेहिं ॥ ३ ॥' विजित्य च समग्रसामायिकश्रियमासादयतीति गाथार्थः ॥ ८४३ ॥ अथवाऽनेन प्रकारेणाऽऽसाद्यत इति—

दिट्ठे सुएऽणुभूए कम्माण खए कए उवसमे अ । मणवयणकायजोगे अ पसत्थे लब्भए बोही ॥ ८४४ ॥

व्याख्या—दृष्टे भगवतः प्रतिमादौ सामायिकमवाप्यते, यथा श्रेयांसेन भगवद्दर्शनादवाप्तमिति, कथानकं चाधः कथितमेव, श्रुते चावाप्यते यथाऽऽनन्दकामदेवाभ्यामवाप्तमिति, अत्र कथानकमुपरितनाङ्गादवसेयम्, अनुभूते क्रिया-कलापे सत्यवाप्यते, यथा वल्कलचीरिणा पित्रुपकरणं प्रत्युपेक्षमाणेनेति, कथानकं कथिकातोऽवसेयं, कर्मणां क्षये कृते सति प्राप्यते, यथा चण्डकौशिकेन प्राप्तम्, उपशमे च सत्यवाप्यते यथाऽङ्गऋषिणा, मनोवाक्काययोगे च प्रशस्ते लभ्यते बोधिः, सामायिकमनर्थान्तरमिति गाथार्थः ॥ अथवाऽनुकम्पादिभिरवाप्यते सामायिकमित्याह—

अणुकंपऽकामणिज्जर बालतवे दाणविणयविब्भंगे । संयोगविप्पओगे वसणूसवइड्ढि सक्कारे ॥ ८४५ ॥

१ जीवो योधो यानं व्रतानि आवरणमुत्तमा क्षान्तिः । ध्यानं प्रहरणमिष्टं गीतार्थत्वं च कौशल्यम् ॥ १ ॥ द्रव्यादियथोपायानुरूपप्रतिपत्तिवर्त्तिता नीतिः । दक्षत्वं क्रियाणां यत्करणमहीनकाले ॥ २ ॥ करणं सहनं च तपसः उपसर्गदुर्गापत्तौ व्यवसायः । एतैः सुनीरोगः कर्मरिपुं जयति सर्वैः ॥ ३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सामायिक-लाभ संबंधे किञ्चित् वक्तव्यता एवं दृष्टान्ता:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

वेज्जे मेंठे तह इंदणाग कयउप्पण पुप्फसालसुए । सिवदुमहुरवणिभाउय आहीरदसण्णिलापुत्ते ॥ ८४६ ॥

व्याख्या—अनुकम्पाप्रवणचित्तो जीवः सामायिकं लभते, शुभपरिणामयुक्तत्वाद्, वैद्यवत्, प्रतिज्ञेयमेव मनाग् विशेषितव्या, हेतुदृष्टान्तान्यत्वं तु प्रतिप्रयोगं भणिष्यामः–अकामनिर्जरावान् जीवः सामायिकं लभते, शुभपरिणामयुक्तत्वान्मिण्ठवत्, बालतपोयुक्तत्वादिन्द्रनागवत्, सुपात्रप्रयुक्तयथाशक्तिश्रद्धादानत्वात् कृतपुण्यकवत्, आराधितविनयत्वात् पुष्पशालसुतवत्, अवाप्तविभङ्गज्ञानत्वात् तापसशिवराजऋषिवत्, दृष्टद्रव्यसंयोगविप्रयोगत्वात् मथुराद्वयवासिवणिग्द्वयवत्, अनुभूतव्यसनत्वाद् भ्रातृद्वयशकटचक्रव्यापादितमण्डीलब्धमानुषत्वस्त्रीगर्भजातप्रियद्वेष्यपुत्रद्वयवत्, अनुभूतोत्सवत्वादाभीरवत्, दृष्टमहर्द्धिकत्वाद्दशार्णभद्रराजवत्, सत्कारकाङ्क्षिणोऽप्यलब्धसत्कारत्वादिलापुत्रवत्, इयमक्षरगमनिका, साम्प्रतमुदाहरणानि प्रदर्श्यन्ते–बारवतीए कण्हस्स वासुदेवस्स दो वेज्जा–धन्नंतरी वेतरणी य, धन्नंतरी अभविओ, वेतरणी भविओ, सो साधूण गिलाणाणं पिएण साहति, जं जस्स कायव्वं तं तस्स फासुएण पडोआरेण साहति, जति से अप्पणो अत्थि ओसधाणि तो देति, धण्णंतरी पुण जाणि सावज्जाणि ताणि साहति असाधुपाओग्गाणि, ततो साहुणो भणंति–अम्हं कतो एताणि ?, सो भणति–ण मए समणाणं अट्ठाए अज्झाइतं वेज्जसत्थं, ते दोवि महारंभा महापरिग्गहा

१ द्वारिकायां कृष्णस्य वासुदेवस्य द्वौ वैद्यौ–धन्वन्तरी वैतरणिश्च, धन्वन्तर्यभव्यो, वैतरणिर्भव्यः, स साधुभ्यो ग्लानेभ्यः प्रीत्या कथयति, यद्यस्य कर्त्तव्यं तत्तस्मै प्रासुकेन प्रतीकारेण कथयति, यदि तस्यात्मनोऽस्ति (सन्ति) औषधानि तदा ददाति, धन्वन्तरी पुनर्यानि सावद्यानि तानि कथयति असाधुप्रायोग्याणि, ततः साधवो भणन्ति–अस्माकं कुत एतानि?, स भणति–न मया श्रमणानामर्थाय वैद्यकशास्त्रमधीतं, तौ द्वावपि महारम्भौ महापरिग्रहौ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

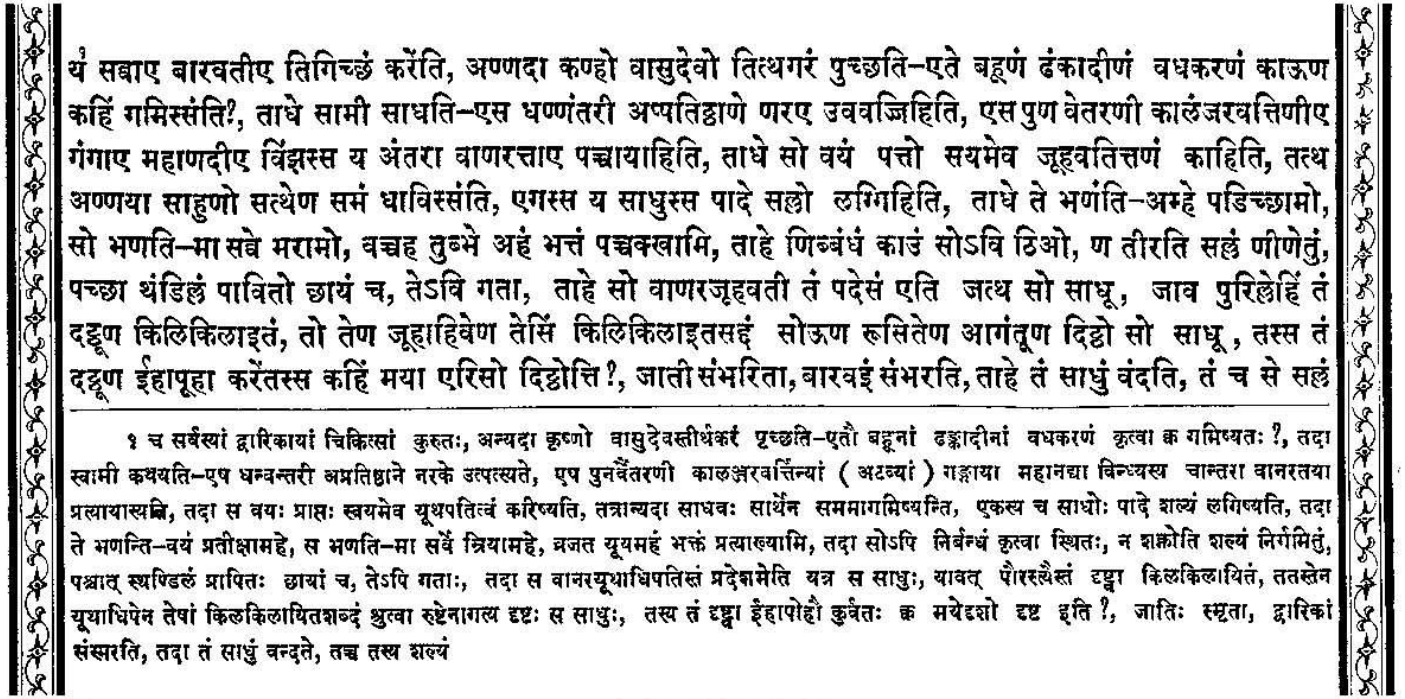

यं सव्वाए बारवतीए तिगिच्छं करेंति, अण्णदा कण्हो वासुदेवो तित्थगरं पुच्छति–एते बहूणं ढंकादीणं वधकरणं काऊण कहिं गमिस्संति?, ताधे सामी साधति–एस धण्णंतरी अप्पतिट्ठाणे णरए उववज्जिहिति, एस पुण वेतरणी कालंजरवत्तिणीए गंगाए महाणदीए विंझस्स य अंतरा वाणरत्ताए पच्चायाहिति, ताधे सो वयं पत्तो सयमेव जूहवतित्तणं काहिति, तत्थ अण्णया साहुणो सत्थेण समं धाविस्संति, एगस्स य साधुस्स पादे सल्लो लग्गिहिति, ताधे ते भणंति–अम्हे पडिच्छामो, सो भणति–मा सव्वे मरामो, वच्चह तुब्भे अहं भत्तं पच्चक्खामि, ताहे णिब्बंधं काउं सोऽवि ठिओ, ण तीरति सल्लं णीणेतुं, पच्छा थंडिलं पावितो छायं च, तेऽवि गता, ताहे सो वाणरजूहवती तं पदेसं एति जत्थ सो साधू, जाव पुरिल्लेहिं तं दट्ठूण किलिकिलाइतं, तो तेण जूहाहिवेण तेसिं किलिकिलाइतसद्दं सोऊण रूसितेण आगंतूण दिट्ठो सो साधू, तस्स तं दट्ठूण ईहापूहा करेंतस्स कहिं मया एरिसो दिट्ठोत्ति?, जातीसंभरिता, बारवइं संभरति, ताहे तं साधुं वंदति, तं च से सल्लं

१ च सर्वस्यां द्वारिकायां चिकित्सां कुरुतः, अन्यदा कृष्णो वासुदेवस्तीर्थंकरं पृच्छति–एतौ बहूनां ढङ्कादीनां वधकरणं कृत्वा क्व गमिष्यतः?, तदा स्वामी कथयति–एष धन्वन्तरी अप्रतिष्ठाने नरके उत्पत्स्यते, एष पुनर्वैतरणी कालञ्जरवर्त्तिन्यां (अटव्यां) गङ्गाया महानद्या विन्ध्यस्य चान्तरा वानरतया प्रत्यायास्यति, तदा स वयः प्राप्तः स्वयमेव यूथपतित्वं करिष्यति, तत्रान्यदा साधवः सार्थेन सममागमिष्यन्ति, एकस्य च साधोः पादे शल्यं लगिष्यति, तदा ते भणन्ति–वयं प्रतीक्षामहे, स भणति–मा सर्वे म्रियामहे, व्रजत यूयमहं भक्तं प्रत्याख्यामि, तदा सोऽपि निर्बन्धं कृत्वा स्थितः, न शक्नोति शल्यं निर्गमितुं, पश्चात् स्थण्डिलं प्रापितः छायां च, तेऽपि गताः, तदा स वानरयूथाधिपतिस्तं प्रदेशमेति यत्र स साधुः, यावत् पौरस्त्यैस्तं दृष्ट्वा किलकिलायितं, ततस्तेन यूथाधिपेन तेषां किलकिलायितशब्दं श्रुत्वा रुष्टेनागत्य दृष्टः स साधुः, तस्य तं दृष्ट्वा ईहापोहौ कुर्वतः क्व मयेदृशो दृष्ट इति?, जातिः स्मृता, द्वारिकां संस्मरति, तदा तं साधुं वन्दते, तच्च तस्य शल्यं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पासति, ताहे तिगिच्छं सव्वं संभरति, ततो सो गिरिं विलग्गिऊण सल्लुद्धरणिसल्लरोहणीओ ओसहीओ य गहाय आगतो, ताधे सल्लुद्धरणीए पादो आलित्तो, ततो एगंमुहुत्तेण पडिओ सल्लो, पउणाविओ संरोहणीए, ताहे तस्स पुरतो अक्खराणि लिहति, जधा–अहं वेतरणी नाम वेज्जो पुव्वभवे बारवतीए आसि, तेहिंवि सो सुतपुव्वो, ताधे सो साधू धम्मं कथेति, ताहे सो भत्तं पच्चक्खाति, तिण्णि रातिंदियाणि जीवित्ता सहस्सारं गतो ॥ तथा चाऽऽह—

सो वाणरजूहवती कंतारे सुविहियाणुकंपाए । भासुरवरबोंदिधरो देवो वेमाणिओ जाओ ॥ ८४७ ॥

व्याख्या—निगदसिद्धा । ओहिं पयुंजति जाव पेच्छति तं सरीरगं तं च साधुं, ताहे आगंतूण देविड्ढिं दाएति, भणति य–तुज्झप्पसादेण मए देविड्ढी लद्धत्ति, ततोऽणेण सो साधू साहरितो तेसिं साधूणं सगासंति, ते पुच्छंति–किहऽसि आगतो ?, ताहे साहति । एवं तस्स वाणरस्स सम्मत्तसामाइयसुयसामाइयचरित्ताचरित्तसामाइयाण अणुकंपाए लाभो जातो, इतरधा णिरयपायोग्गाणि कम्माणि करेत्ता णरयं गतो होन्तो । ततो चुतस्स चरित्तसामाइयं भविस्सति सिद्धी य १।

---

१ पश्यति, तदा चिकित्सां सर्वां संस्मरति, ततः स गिरिं विलग्य शल्योद्धरणीशल्यरोहिण्योषध्यौ च गृहीत्वाऽऽगतः, तदा शल्योद्धरण्या पाद आलिप्तः, तत एकेन मुहूर्त्तेन पतितं शल्यं, प्रयुणितः संरोहण्या, तदा तस्य पुरतोऽक्षराणि लिखति–यथाऽहं वैतरणिर्नाम वैद्यः पूर्वभवे द्वारिकायामासं, तैरपि श्रुतपूर्वः सः, तदा स साधुर्धर्मं कथयति, तदा स भक्तं प्रत्याख्याति, त्रीन् रात्रिन्दिवान् जीवित्वा सहस्रारं गतः ॥ अवधिं प्रयुणक्ति यावत्प्रेक्षते तच्छरीरं तं च साधुं, तदाऽऽगत्य देवर्धिं दर्शयति, भणति च–युष्मत्प्रसादेन मया देवर्धिर्लब्धेति, ततोऽनेन स साधुः संहृतस्तेषां साधूनां सकाशमिति, ते पृच्छन्ति–कथमस्यागतः ?, तदा कथयति । एवं तस्य वानरस्य सम्यक्त्वसामायिकश्रुतसामायिकचारित्राचारित्रसामायिकानामनुकम्पया लाभो जातः, इतरथा नरकप्रायोग्याणि कर्माणि कृत्वा नरकं गतोऽभविष्यत्, ततश्च्युतस्य चारित्रसामायिकं भविष्यति सिद्धिश्च १ । * एगंते

॥३४८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

अकामणिज्जराए, वसंतपुरे नगरे इब्भवधुगा णदीए ण्हाति, अण्णो य तरुणो तं दट्ठूण भणति–सुण्हातं ते पुच्छति एस णदी मत्तवारणकरोरु!। एते य णदीरुक्खा अहं च पादेसु ते पडिओ ॥ १ ॥ सा भणति–'सुभगा होंतु णदीओ चिरं च जीवंतु जे णदीरुक्खा। सुण्हातपुच्छगाण य घत्तिहामो पियं काउं ॥ २ ॥ ततो सो तीए घरं वा दारं वा अयाणन्तो चिन्तेति–"अन्नपानैर्हरेद्बालां, यौवनस्थां विभूषया। वेश्यां स्त्रीमुपचारेण, वृद्धां कर्कशसेवया ॥ १ ॥" तीसे बिइज्जियाणि चेडरूवाणि रुक्खे पलोएंताणि अच्छंति, तेण तेसिं पुप्फाणि फलाणि य दाऊण पुच्छिताणि–का एसा?, ताणि भणंति–अमुगस्स सुण्हा, ताहे सो चिंतेति–केण उवाएण एतीए समं मम संपयोगो भवेज्जा?, ततो णेण चरिका दाणमाणसंगहीता काऊण विसज्जिता तीए सगासं, ताए गंतूण सा भणिता–जधा अमुगो ते पुच्छति, तीए रुट्ठाए पत्तुल्लगाणि धोवंतीए मसिलित्तेण हत्थेण पिट्ठीए आहता, पंचंगुलीओ जाताओ, ओवारेण य णिच्छूढा, सा गता साहति–णामंपि ण

---

१ अकामनिर्जरया, वसन्तपुरे नगरे इभ्यवधूर्नद्यां स्नाति, अन्यश्च तरुणस्तां दृष्ट्वा भणति–सुस्नातं ते पृच्छति एषा नदी मत्तवारणकरोरु!। एते च नदीवृक्षा अहं च पादयोस्ते पतितः ॥ १ ॥ सा भणति–सुभगा भवन्तु नद्यश्चिरं च जीवन्तु ये नदीवृक्षाः। सुस्नातपृच्छकेभ्यश्च प्रियं कर्तुं यतिष्यामहे ॥ १ ॥ ततः स तस्या गृहं वा द्वारं वा अजानानश्चिन्तयति–तस्याः द्वितीयानि (तया सहागतानि) चेटरूपाणि वृक्षान् प्रलोकयन्ति तिष्ठन्ति, तेन तेभ्यः पुष्पाणि फलानि च दत्त्वा पृष्टानि–कैषा?, तानि भणन्ति–अमुकस्य स्नुषा, तदा स चिन्तयति–केनोपायेनैतया समं मम संप्रयोगो भवेत्?, ततोऽनेन चरिका दानमानसंगृहीता कृत्वा विसृष्टा तस्याः सकाशं, तया गत्वा सा भणिता–यथाऽमुकस्त्वां पृच्छति, तया रुष्टया भाजनान्युद्वर्त्तयन्त्या मषीलिप्तेन हस्तेन पृष्ठौ आहता, पञ्चाङ्गुलयो जाता अवद्वारेण च निष्काशिता, सा गता कथयति–नामापि न

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

सहति, तेण णातं जहा–कालपक्खपंचमीए, ताहे तेण पुणरवि पेसिता पवेसजाणणानिमित्तं, ताहे सलज्जाए आहणिऊण असोगवणियाए छिंडियाए निच्छूढा, सा गता साहति–णामंपि ण सहति, तेण णातो पवेसो, तेणावदारेण अइगतो, असोगवणियाए सुत्ताणि, जाव ससुरेण दिट्ठा, तेण णातं, जधा–ण मम पुत्तोत्ति, पच्छा से पादातो णेउरं गहितं, चेतितं च तीए, भणितो य णाए–णास लहुं, सहायकिच्चं करेज्जासि, इतरी गंतूण भत्तारं भणति–इत्थं धम्मो, जामो असोगवणियं, गताणि, असोगवणियाए पसुत्ताणि, ताहे भत्तारं उट्ठवेत्ता भणति–तुज्झं एतं कुलाणुरूवं ?, जं मम पादातो ससुरो णेउरं गेण्हति, सो भणति–सुवसु लभिहिसि पभाते, थेरेण सिट्ठं, सो रुट्ठो भणति–विवरीतोऽसि थेरा ?, सो भणति–मए दिट्ठो अण्णो, ताहे विवादे सा भणति–अहं अप्पाणं सोहेमि, एवं करेहि, ण्हाता, ताहे जक्खघरं अइगता, जो कारी सो लग्गति दोण्हं जंघाणं अंतरेण वोलंतओ, अकारी मुच्चति, सा पधाविता, ताहे सो विडो पिसायरूवं काऊण सागतएणं गेण्हति,

१ सहते, तेन ज्ञातं यथा–कृष्णपक्षपञ्चम्यां, तदा तेन पुनरपि प्रेषिता प्रवेशज्ञानार्थं, तदा सलज्जया आहत्याशोकवनिकायाश्छिण्डिकया निष्काशिता, सा गता कथयति–नामापि न सहते, तेन ज्ञातः प्रवेशः, तेनापद्वारेणातिगतोऽशोकवनिकायां सुप्तौ, यावत् श्वशुरेण दृष्टौ, तेन ज्ञातं–यथा न मम पुत्र इति, पश्चात्तस्याः पादात् नूपुरं गृहीतं, चेतितं च तया, भणितश्चानया–नश्य लघु, सहायकृत्यं कुर्याः, इतरा गत्वा भर्त्तारं भणति–अत्र धर्मः, यावोऽशोकवनिकां, गतौ, अशोकवनिकायां प्रसुप्तौ, तदा भर्त्तारमुत्थाप्य भणति–युष्माकमेतत् कुलानुरूपं ?, यन्मम पादाच्छ्वशुरो नूपुरं गृह्णाति, स भणति–स्वपिहि लप्स्यसे प्रभाते, स्थविरेण शिष्टं, स रुष्टो भणति–विपरीतोऽसि स्थविर ?, स भणति–मया दृष्टोऽन्यः, तदा विवादे सा भणति–अहमात्मानं शोधयामि, एवं कुरु, स्नाता, तदा यक्षगृहमतिगता, योऽपराधी स लगति द्वयोर्जङ्घयोरन्तरा व्यतिक्रामन्, अनपराधो मुच्यते, सा प्रधाविता, तदा स विटोऽपि पिशाचरूपं कृत्वा आलिङ्गनेन गृह्णाति,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

ताहे तत्थ गंतूण जक्खं भणति–जो मम पितिदिण्णओ तं च पिसायं मोत्तूण जइ अण्णं जाणामि तो मे तुमं जाणासित्ति, जक्खो विलक्खो चिंतेति–पेच्छह केरिसाणि मंतेति ?, अहंपि वंचितो णाए, णत्थि सतित्तणं धुत्तीए, जाव चिंतेति ताव णिप्फिडिता, ताहे सो थेरो सव्वेण लोगेण हीलितो, तस्स ताए अद्धितीए निद्दा नट्ठा, ताहे रण्णो तं कण्णे गतं, रायाणएण अंतेउरवालओ कतो, आभिसिक्कं च हत्थिरयणं रण्णो वासघरस्स हेट्ठा बद्धं अच्छति, देवी य हत्थिमेंठे आसत्तिया, णवरं रत्तिं हत्थिणा हत्थो पसारितो, सा पासायाओ ओयारिया, पुणरवि पभाए पडिविलइत्ता, एवं वच्चति कालो, अण्णता चिरं जातंति हत्थिमेंठेण हत्थिसंकलाए हता, सा भणति–सो पुरिसो तारिसो ण सुवति, मा रूसह, तं थेरो पेच्छति, सो चिंतेति–जति एताओवि एरिसिओ, किंनु ताओ भद्दियाउत्ति सुत्तो, पभाते सव्वो लोगो उट्ठितो, सो न उट्ठितो, राया भणति–सुवउ, सत्तमे दिवसे उट्ठितो, राइणा पुच्छितेण कहितं–जहेगा देवी ण याणामि कतरत्ति, ताहे

१ तदा तत्र गत्वा यक्षं भणति–यो मम पितृदत्तस्तं च पिशाचं मुक्त्वा यद्यन्यं जानामि तदा मां त्वं जानासि इति, यक्षो विलक्षश्चिन्तयति–प्रेक्षध्वं कीदृशानि मन्त्रयति ?, अहमपि वञ्चितोऽनया, नास्ति सतीत्वं धूर्तायाः, यावच्चिन्तयति तावन्निर्गता, तदा स स्थविरः सर्वेण लोकेन हीलितः, तस्य तयाऽधृत्या निद्रा नष्टा, तदा राज्ञस्तत् कर्णे गतं, राज्ञाऽन्तःपुरपालकः कृतः, आभिषेकं च हस्तिरत्नं राज्ञो वासगृहस्याधस्ताद्बद्धं तिष्ठति, देवी च हस्तिमेण्ठे आसक्ता, नवरं रात्रौ हस्तिना हस्तः प्रसारितः, सा प्रासादात् अवतारिता, पुनरपि प्रभाते प्रतिविलगिता, एवं व्रजति कालः, अन्यदा चिरं जातमिति हस्तिमेण्ठेन हस्तिशृङ्खलया हता, सा भणति–स पुरुषस्तादृशो न स्वपिति, मा रुषः, तत् स्थविरः पश्यति, स चिन्तयति–यद्येता अपि ईदृश्यः किंनु ता भद्रिका इति सुप्तः, प्रभाते सर्वो लोक उत्थितः, स नोत्थितः, राजा भणति–स्वपितु, सप्तमे दिवसे उत्थितः, राज्ञा पृष्टेन कथितं–यथैका देवी न जानामि कतरेति, तदा

* एरिसं करेंति.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

राइणा भेंडमओ हत्थी कारितो, सव्वाओ अंतेपुरियाओ भणियाओ–एयस्स अच्चणियं करेत्ता ओलंडेह, सव्वाहिं ओलंडितो, सा णेच्छति, भणति–अहं बीहेमि, ताहे राइणा उप्पलणालेण आहता, जाव उमुच्छिता पडिया ततो से उवगतं–जधेसा कारित्ति, भणिता–'मत्तं गयमारुहंतीए भेंडमयस्स गयस्स भयतिए। इह मुच्छित उप्पलाहता तत्थ न मुच्छित संकलाहता ॥ १ ॥' पुट्ठी से जोइया, जाव संकलपहारा दिट्ठा, ताहे राइणा हत्थिमेंठो सा य दुयगाणि वि तम्मि हत्थिम्मि विलग्गाविऊण छण्णकडए विलइताणि, भणितो मिंठो–एत्थ अप्पततीओ गिरिप्पवातं देहि, हत्थिस्स दोहिवि पासेहिं वेलुग्गाहा ठविता, जाव हत्थिणा एगो पादो आगासे कतो, लोगो भणति–किं तिरिओ जाणति ?, एताणि मारेतव्वाणि, तहावि राया रोसं ण मुयति, ततो दो पादा आगासे ततियवारए तिन्नि पादा आगासे एक्केण पादेण ठितो, लोगेण अक्कंदो कतो–किं एतं हत्थिरयणं विणासेहि ?, रण्णो चित्तं ओआलितं, भणितो–तरसि णियत्तेउं?,

---

१ राज्ञा भिण्डमयो हस्ती कारितः, सर्वा अन्तःपुरिका भणिताः–एतस्यार्चनिकां कृत्वोल्लङ्घयत, सर्वाभिरुल्लङ्घितः, सा नेच्छति, भणति–अहं बिभेमि, तदा राज्ञोत्पलनालेनाहता, यावन्मूर्छिता पतिता, ततस्तेनोपगतं–यथैषाऽपराधिनीति, भणिता–मत्तं गजमारोहन्ति !, भिण्डमयात् गजात् बिभ्यन्ति !। इह मूर्छितोत्पलाहता, तत्र न मूर्च्छिता शृङ्खलाहता ॥ १ ॥ पृष्ठिस्तस्या अवलोकिता, यावत् शृङ्खलाप्रहारा दृष्टाः, तदा राज्ञा हस्तिमेण्ठः सा च द्वे अपि तस्मिन् हस्तिनि विलगय्य छिन्नकटके विलगितानि, भणितो मेण्ठः–अत्रात्मतृतीयो गिरिप्रपातं देहि, हस्तिनो द्वयोरपि पार्श्वयोः कुन्तग्राहाः स्थापिताः, यावद्धस्तिना एकः पाद आकाशे कृतः, लोको भणति–किं तिर्यङ् जानाति ?, एतौ मारयितव्यौ, तथाऽपि राजा रोषं न मुञ्चति, ततो द्वौ पादावाकाशे तृतीयवारे त्रयः पादा आकाशे एकेन पादेन स्थितः, लोकेनाक्रन्दः कृतः–किमेतत् हस्तिरत्नं विनाशयत ?, राज्ञश्चित्तं द्रावितं, भणितः–शक्नोषि निवर्त्तयितुं ?,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

भणति–जति अभयं देह, दिण्णं, तेण णियत्तितो अंकुसेण जहा भमित्ता थले ठितो, ताहे उत्तारेत्ता णिविसताणि कयाणि। एगत्थ पच्चंतगामे सुन्नघरे ठिताणि, तत्थ य गामेल्लयपारद्धो चोरो तं सुन्नघरं अतिगतो, ते भणंति–वेढेतुं अच्छामो, मा कोवि पविसउ, गोसे घेच्छामो, सोऽवि चोरो लुट्ठंतो किहवि तीसे दुक्को, तीसे फासो वेदितो, सा दुक्का भणति–कोऽसि तुमं ?, सो भणति–चोरोऽहं, तीए भणियं–तुमं मम पती होहि, जा एतं साहामो जहा एस चोरोत्ति, तेहिं कल्लं पभाए मेंठो गहिओ, ताहे उविद्धो सूलाए भिण्णो, चोरेण समं सा वच्चति, जावंतरा णदी, सा तेण भणिता–जधा एत्थ सरत्थंभे अच्छ, जा अहं एताणि वत्थाभरणाणि उत्तारेमि, सो गतो, उत्तिण्णो पधाविती, सा भणति–"पुण्णा णदी दीसइ कागपेज्जा, सव्वं पियाभंडग तुज्झ हत्थे। जधा तुमं पारमतीतुकामो, धुवं तुमं भंड गहीउकामो ॥ १ ॥ सो भणति–चिरसंथुतो बालि ! असंथुएणं, मेल्हे पिया ताव धुओऽधुवेणं। जाणेमि तुज्झ प्पयइस्सभावं, अण्णो णरो

---

१ भणति–यद्यभयं दत्त, दत्तं, तेन निवर्त्तितोऽङ्कुशेन यथा भ्रान्त्वा स्थले स्थितः, तदोत्तार्य निर्विषीकृतौ । एकत्र प्रत्यन्तग्रामे शून्यगृहे स्थितौ, तत्र च ग्रामेयकप्रारब्धश्चौरस्तत् शून्यगृहमतिगतः, ते भणन्ति–वेष्टयित्वा तिष्ठामः, मा कोऽपि प्रविक्षत्, प्रत्यूषे ग्रहीष्यामः, सोऽपि चौरो गच्छन् (लुठन्) कथमपि तया स्पृष्टः, तस्याः स्पर्शो विदितः, सा स्पृष्टा भणति–कोऽसि त्वं ?, स भणति–चौरोऽहं, तया भणितं–त्वं मम पतिर्भव, यावदेनं कथयावो यथैष चौर इति, तैः कल्ये प्रभाते मेण्ठो गृहीतः, तदावबद्धः शूलायां भिन्नः, चौरेण समं सा व्रजति, यावदन्तरा नदी, सा तेन भणिता–यथाऽत्र शरस्तम्बे तिष्ठ, यावदहमेतानि वस्त्राभरणान्युत्तारयामि, स गतः, उत्तीर्णः प्रधावितः, सा भणति–पूर्णा नदी दृश्यते काकपेया, सर्वं प्रियाभाण्डकं तव हस्ते। यथा त्वं पारमतिगन्तुकामो, ध्रुवं त्वं भाण्डं ग्रहीतुकामः ॥ १ ॥ स भणति–चिरसंस्तुतो बाले ! असंस्तुतेन, त्यजसि प्रियं तावत् ध्रुवोऽध्रुवेन । जानामि तव प्रकृतिस्वभावमन्यो नरः * पेच्छामो + उवट्ठो.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

कों तुह विस्ससेज्जा? ॥ १ ॥" सा भणति–किं जाहि?, सो भणति–जहा ते सो मारावितो एवं ममंपि कहंचि मारेहिसि। इतरोवि तत्थ विद्धो उदगं मग्गति, तत्थेगो सड्ढो, सो भणति–जति नमोक्कारं करेसि तो देमि, सो उदगस्स अट्ठा गतो, जाव तंमि एंते चेव सो णमोक्कारं करेंतो चेव कालगतो, वाणमंतरो जातो, सड्ढोवि आरक्खियपुरिसेहिं गहितो, सो देवो ओहिं पयुंजति, पेच्छति सरीरगं सड्ढं च बद्धं, ताहे सो सिलं विउव्वित्ता मोएति, तं च पेच्छंति सरथंभे णिलुक्कं, ताहे से घिणा उप्पण्णा, सियालरूवं विउव्वित्ता मंसपेसीए गहियाए उदगतीरेण वोलेति, जाव णदीतो मच्छो उच्छलिऊण तडे पडितो, ततो सो मंसपेसिं मोत्तूण मच्छस्स पधावितो, सो पाणिए पडितो, मंसपेसीवि सेणेण गहिता, ताहे सियालो झायति, ताए भण्णति–मंसपेसीं परिच्चज्ज मच्छं पेच्छसि जंबुआ!। चुक्को मंसं च मच्छं च कलुणं झायसि कोण्हुआ! ॥ १ ॥ तेण भण्णति–'पत्तपुडपडिच्छण्णे! जणयस्स अयसकारिए!। चुक्का पत्तिं च जारं च

---

१ कस्त्वयि विश्वस्यात्? ॥ १ ॥ सा भणति–किं यासि?, स भणति–यथा त्वया स मारितः एवं मामपि कथञ्चिन्मारयिष्यसीति। इतरोऽपि तत्र विद्ध उदकं मार्गयति, तत्रैकः श्राद्धः, स भणति–यदि नमस्कारं करोषि तदा ददामि, स उदकार्थं गतः, यावत्तस्मिन्नागच्छति चैव स नमस्कारं कुर्वन्नेव कालगतः, व्यन्तरो जातः, श्राद्धोऽप्यारक्षकपुरुषैर्गृहीतः, स देवोऽवधिं प्रयुनक्ति, पश्यति शरीरं श्राद्धं च बद्धं, तदा स शिलां विकुर्व्य मोचयति, तां च पश्यति शरस्तम्बे निलीनां, तदा तस्य घृणोत्पन्ना, शृगालरूपं विकुर्व्य गृहीतमांसपेशीक उदकतीरेण व्यतिव्रजति यावन्नद्या मत्स्य उच्छल्य तटे पतितः, ततः स मांसपेशीं मुक्त्वा मत्स्याय प्रधावितः, स पानीये पतितः, मांसपेश्यपि श्येनेन गृहीता, तदा शृगालो ध्यायति, तया भण्यते–मांसपेशीं परित्यज्य मत्स्यं प्रार्थयसे जम्बूक!। भ्रष्टो मांसाच्च मत्स्याच्च करुणं ध्यायसि जम्बूक!॥ १ ॥ तेन भण्यते–पत्रपुटप्रतिच्छन्ने! जनकस्य अयशस्कारिके?। भ्रष्टा पत्युश्च जाराच्च

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

कलुणं झायसि बंधकी! ॥ २ ॥ एवं भणिया ता विलिया जाता, ताहे सो सयं रूवं दंसेति, पण्णवित्ता वुत्ता–पव्वयाहि, ताहे सो राया तज्जितो, तेण पडिवण्णा, सक्कारेण णिक्खंता, देवलोयं गता एवमकामनिज्जराए मेण्ठस्स २ ॥ बालतवेण–वसंतपुरं नगरं, तत्थ सिट्ठिघरं मारिए उच्छादितं, इंदणागो नाम दारओ, सो छुट्टो, छुहितो गिलाणो पाणितं मग्गति, जाव सव्वाणि मताणि पेच्छति, बारंपि लोगेण कंटियाहिं ढक्कियं, ताहे सो सुण्णइयच्छिद्देण णिग्गंतूण तंमि णगरे कप्परेण भिक्खं हिंडति, लोगो से देइ सदेसभूतपुव्वोत्तिकाउं, एवं सो संवड्ढइ। इतो य एगो सत्थवाहो रायगिहं जाउकामो घोसणं घोसावेति, तेण सुतं, सत्थेण समं पत्थितो, तत्थ तेण सत्थे कूरो लद्धो, सो जिमितो, ण जिण्णो, बितियदिवसे अच्छति, सत्थवाहेण दिट्ठो, चिंतेति–णूणं एस उववासिओ, सो य अव्वत्तलिंगो, बितियदिवसे हिंडंतस्स सेट्ठिणा बहुं णिद्धं च दिण्णं, सो तेण दुवे दिवसा अजिण्णएण अच्छति, सत्थवाहो जाणति–एस छट्ठण्णकालिओ, तस्स सद्धा जाता,

---

१ करुणं ध्यायसि पुंश्चलि? ॥ १ ॥ एवं भणिता तदा व्यलीका जाता, तदा स स्वकीयं रूपं दर्शयति, प्रज्ञाप्योक्ता–प्रव्रज, तदा स राजा तर्जितः, तेन प्रतिपन्ना, सत्कारेण निष्क्रान्ता, देवलोकं गता एवमकामनिर्जरया मेण्ठस्य २ ॥ बालतपसा–वसन्तपुरं नगरं, तत्र श्रेष्ठिगृहं मार्योत्सादितम्, इन्द्रनागो नाम दारकः, स क्षुटितः, बुभुक्षितो ग्लानः पानीयं मार्गयति, यावत्सर्वान् मृतान् पश्यति, द्वारमपि लोकेन कण्टकैराच्छादितं, तदा स शून्यच्छिद्रेण निर्गत्य तस्मिन्नगरे कर्परेण भिक्षां हिण्डते, लोकस्तस्मै ददाति स्वदेशे भूतपूर्व इतिकृत्वा, एवं स संवर्धते। इतश्चैकः सार्थवाहो राजगृहं यातुकामो घोषणां घोषयति, तेन श्रुतं, सार्थेन समं प्रस्थितः, तत्र सार्थे तेन कूरो लब्धः, स जिमितः, न जीर्णः, द्वितीयदिवसे तिष्ठति, सार्थवाहेन दृष्टः, चिन्तयति–नूनमेष उपोषितः, स चाव्यक्तलिङ्गो, द्वितीयदिवसे हिण्डमानाय श्रेष्ठिना बहु स्निग्धं च दत्तं, स तेन द्वौ दिवसौ अजीर्णेन तिष्ठति, सार्थवाहो जानाति–एष षष्ठान्नकालिकः, तस्य श्रद्धा जाता, * सत्कारेण दीक्षाग्रहणाय.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

सो ततियदिवसे हिंडंतो सत्थवाहेण सद्दावितो, कीसऽसि कल्लं णागतो ?, तुण्हिक्को अच्छति, जाणइ, जधा–छट्ठं कतेल्लयं, ताहे से दिण्णं, तेणवि अण्णेवि दो दिवसे अच्छावितो, लोगोवि परिणतो, अण्णस्स णिमंतेंतस्सवि ण गेण्हति, अण्णे भणंति–एसो एगपिंडिओ, तेण तं अट्ठापदं लद्धं, वाणिएण भणितो–मा अण्णस्स खणं गेण्हेज्जासि, जाव णगरं गम्मति ताव अहं देमि, गता णगरं, तेण से णियघरे मढो कतो, ताधे सीसं मुंडावेति कासायाणि य चीवराणि गेण्हति, ताधे विक्खातो जणे जातो, ताधे तस्सवि घरे णेच्छति, ताधे जद्दिवसं से पारणयं तद्दिवसं से लोगो आणेइ भत्तं, एगस्स पडिच्छति, ततो लोगो ण याणति–कस्स पडिच्छितंति ?, ताधे लोगेण जाणणाणिमित्तं भेरी कता, जो देति सो ताडेति, ताहे लोगो पविसति, एवं वच्चति कालो। सामी य समोसरितो, ताहे साधू संदिसावेत्ता भणिता–मुहुत्तं अच्छह, अणेसणा, तंमि जिमिते भणिता–ओयरह, गोतमो य भणितो–मम वयणेणं भणेज्जासि–भो अणेगपिंडिया ! एगपिंडितो ते

१ स तृतीयदिवसे हिण्डमानः सार्थवाहेन शब्दितः, किमासीः कल्ये नागतः ?, तूष्णीकस्तिष्ठति, जानाति, यथा–षष्ठं कृतं, तदा तस्मै दत्तं, तेनाप्यन्यावपि द्वौ दिवसौ स्थापितः, लोकोऽपि परिणतः, अन्यस्य निमन्त्रयतोऽपि न गृह्णाति, अन्ये भणन्ति–एष एकपिण्डिकः, तेन तत् अर्थात्पदं लब्धं, वणिजा भणितः–माऽन्यस्य पारणं गृह्णीयाः, यावन्नगरं गम्यते तावदहं दास्यामि, गता नगरं, तेन तस्य निजगृहे मठः कृतः, तदा शीर्षं मुण्डयति काषायिकाणि च चीवराणि गृह्णाति, तदा विख्यातो जनो जातः, तदा तस्यापि गृहे नेच्छति, तदा यस्मिन् दिवसे तस्य पारणं तस्मिन् दिवसे तस्य लोक आनयति भक्तम्, एकस्य प्रतीच्छति, ततो लोको न जानाति–कस्य प्रतीष्टमिति, तदा लोकेन ज्ञापनानिमित्तं भेरी कृता, यो ददाति स ताडयति, तदा लोकः प्रविशति, एवं व्रजति कालः। स्वामी च समवसृतः, तदा साधवः संदिशन्तो भणिताः–मुहूर्त्तं तिष्ठत, अनेषणा, तस्मिन् जिमिते भणिताः–अवतरत, गौतमश्च भणितो–मम वचनेन भणेः–भो अनेकपिण्डिक ! एकपिण्डिकस्त्वं * अहापदं प्र०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

दट्ठुमिच्छति, ताहे गोतमसामिणा भणितो रुट्ठो, तुब्भे अणेगाणि पिंडसताणि आहारेह, अहं एगं पिंडं भुंजामि, तो अहं चेव एगपिंडिओ, मुहुत्तन्तरस्स उवसंतो चिंतेति–ण एते मुसं वदंति, किह होज्जा ?, लद्धा सुती, होमि अणेगपिंडितो, जद्दिवसं मम पारणयं तद्दिवसं अणेगाणि पिंडसताणि कीरंति, एते पुण अकतमकारितं भुंजंति, तं सच्चं भणंति, चिन्तंतेण जाती सरिता, पत्तेयबुद्धो जातो, अज्झयणं भासति, इंदणागेण अरहता वुत्तं, सिद्धो य। एवं बालतवेण सामाइयं लद्धं तेण ३। दाणेण, जधा–एगाए वच्छवालीए पुत्तो, लोगेण उस्सवे पायसं ओवक्खडितं, तत्थासन्नघरे दारगरूवाणि पासति पायसं जिमिंताणि, ताधे सो मायरं भणेइ–ममऽवि पायसं रंधेहि, ताहे णत्थित्ति सा अद्धितीए परुण्णा, ताओ सएज्झियाओ पुच्छंति, णिब्बंधे कथितं, ताहिं अणुकंपाए अण्णाएवि अण्णाएवि आणीतं खीरं साली तंदुला य, ताधे थेरीए पायसो रद्धो, ततो तस्स दारयस्स ण्हायस्स पायसस्स घतमधुसंजुत्तस्स थालं भरेऊण उवट्ठितं, साधू य

१ द्रष्टुमिच्छति, तदा गौतमस्वामिना भणितो रुष्टः, यूयमनेकानि पिण्डशतान्याहारयत, अहमेकं पिण्डं भुञ्जे, ततोऽहमेवैकपिण्डिकः, मुहूर्त्तान्तरेणोपशान्तश्चिन्तयति–नैते मृषा वदन्ति, कथं भवेत् ?, लब्धा श्रुतिः, भवाम्यनेकपिण्डिको, यद्दिवसे मम पारणं तद्दिवसेऽनेकानि पिण्डशतानि क्रियन्ते, एते पुनरकृतमकारितं भुञ्जन्ति, तत्सत्यं भणन्ति, चिन्तयता जातिः स्मृता, प्रत्येकबुद्धो जातः, अध्ययनं भाषते, इन्द्रनागेन अर्हत्ता वृत्ता, सिद्धश्च। एवं बालतपसा सामायिकं लब्धं तेन ३। दानेन, यथा–एकस्या वत्सपाल्याः पुत्रः, लोकेनोत्सवे पायसमुपस्कृतं, तत्रासन्नगृहे दारकरूपाणि पश्यति पायसं जिमन्ति, तदा स मातरं भणति–ममापि पायसं पच, तदा नास्तीति साऽधृत्या प्ररुदिता, ताः सख्यः पृच्छन्ति, निर्बन्धे कथितं, ताभिरनुकम्पया अन्ययाऽपि अन्ययाऽपि आनीतं क्षीरं शालयस्तन्दुलाश्च, तदा स्थविरया पायसं पक्वं, ततः तस्मै दारकाय स्नाताय घृतमधुसंयुक्तेन पायसेन स्थालो भृत्वोपस्थापितः, साधुश्च. * चउत्थं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

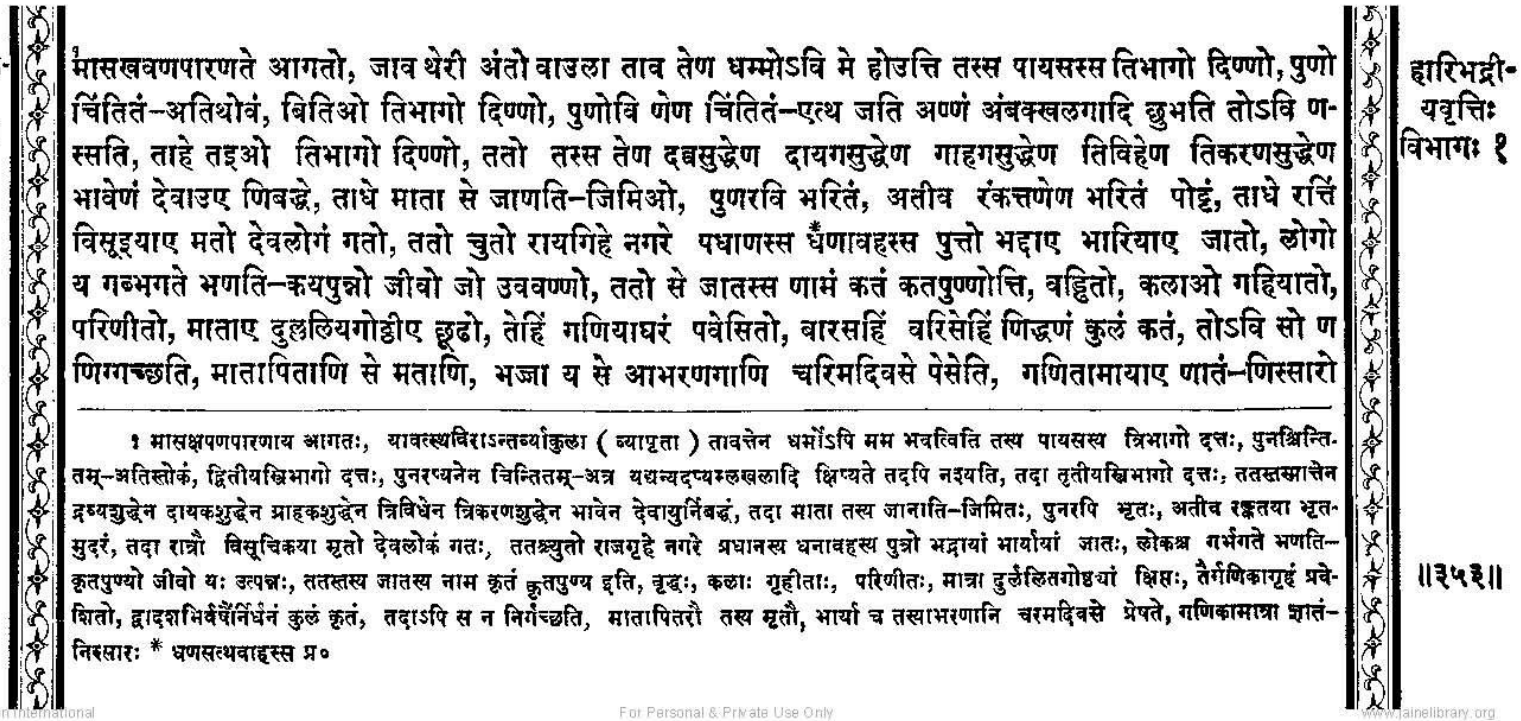

[1]मासखवणपारणते आगतो, जाव थेरी अंतो वाउला ताव तेण धम्मोऽवि मे होउत्ति तस्स पायसस्स तिभागो दिण्णो, पुणो चिंतितं–अतिथोवं, बितिओ तिभागो दिण्णो, पुणोवि णेण चिंतितं–एत्थ जति अण्णं अंबक्खलगादि छुभति तोऽवि णस्सति, ताहे तइओ तिभागो दिण्णो, ततो तस्स तेण दव्वसुद्धेण दायगसुद्धेण गाहगसुद्धेण तिविहेण तिकरणसुद्धेण भावेणं देवाउए णिबद्धे, ताधे माता से जाणति–जिमिओ, पुणरवि भरितं, अतीव रंकत्तणेण भरितं पोट्टं, ताधे रत्तिं विसूइयाए मतो देवलोगं गतो, ततो चुतो रायगिहे नगरे पधाणस्स धणावहस्स पुत्तो भद्दाए भारियाए जातो, लोगो य गब्भगते भणति–कयपुन्नो जीवो जो उववण्णो, ततो से जातस्स णामं कतं कतपुण्णोत्ति, वड्ढितो, कलाओ गहियातो, परिणीतो, माताए दुल्लियगोट्ठीए छूढो, तेहिं गणियाघरं पवेसितो, बारसहिं वरिसेहिं णिद्धणं कुलं कतं, तोऽवि सो ण णिग्गच्छति, मातापिताणि से मताणि, भज्जा य से आभरणगाणि चरिमदिवसे पेसेति, गणितामायाए णातं–णिस्सारो

---

१ मासक्षपणपारणाय आगतः, यावत्स्थविराऽन्तर्व्याकुला (व्यापृता) तावत्तेन धर्मोऽपि मम भवत्विति तस्य पायसस्य त्रिभागो दत्तः, पुनश्चिन्तितम्–अतिस्तोकं, द्वितीयत्रिभागो दत्तः, पुनरप्यनेन चिन्तितम्–अत्र यद्यन्यदप्यम्लखलादि क्षिप्यते तदपि नश्यति, तदा तृतीयत्रिभागो दत्तः, ततस्तस्यात्तेन द्रव्यशुद्धेन दायकशुद्धेन ग्राहकशुद्धेन त्रिविधेन त्रिकरणशुद्धेन भावेन देवायुर्निबद्धं, तदा माता तस्य जानाति–जिमितः, पुनरपि भृतः, अतीव रङ्कतया भृतमुदरं, तदा रात्रौ विसूचिकया मृतो देवलोकं गतः, ततश्च्युतो राजगृहे नगरे प्रधानस्य धनावहस्य पुत्रो भद्रायां भार्यायां जातः, लोकश्च गर्भगते भणति–कृतपुण्यो जीवो यः उत्पन्नः, ततस्तस्य जातस्य नाम कृतं कृतपुण्य इति, वृद्धः, कलाः गृहीताः, परिणीतः, मात्रा दुर्ललितगोष्ठ्यां क्षिप्तः, तैर्गणिकागृहं प्रवेशितो, द्वादशभिर्वर्षैर्निर्धनं कुलं कृतं, तदाऽपि स न निर्गच्छति, मातापितरौ तस्य मृतौ, भार्या च तस्याभरणानि चरमदिवसे प्रेषते, गणिकामात्रा ज्ञातं–निस्सारः * धणसत्थवाहस्स प्र०

॥३५३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

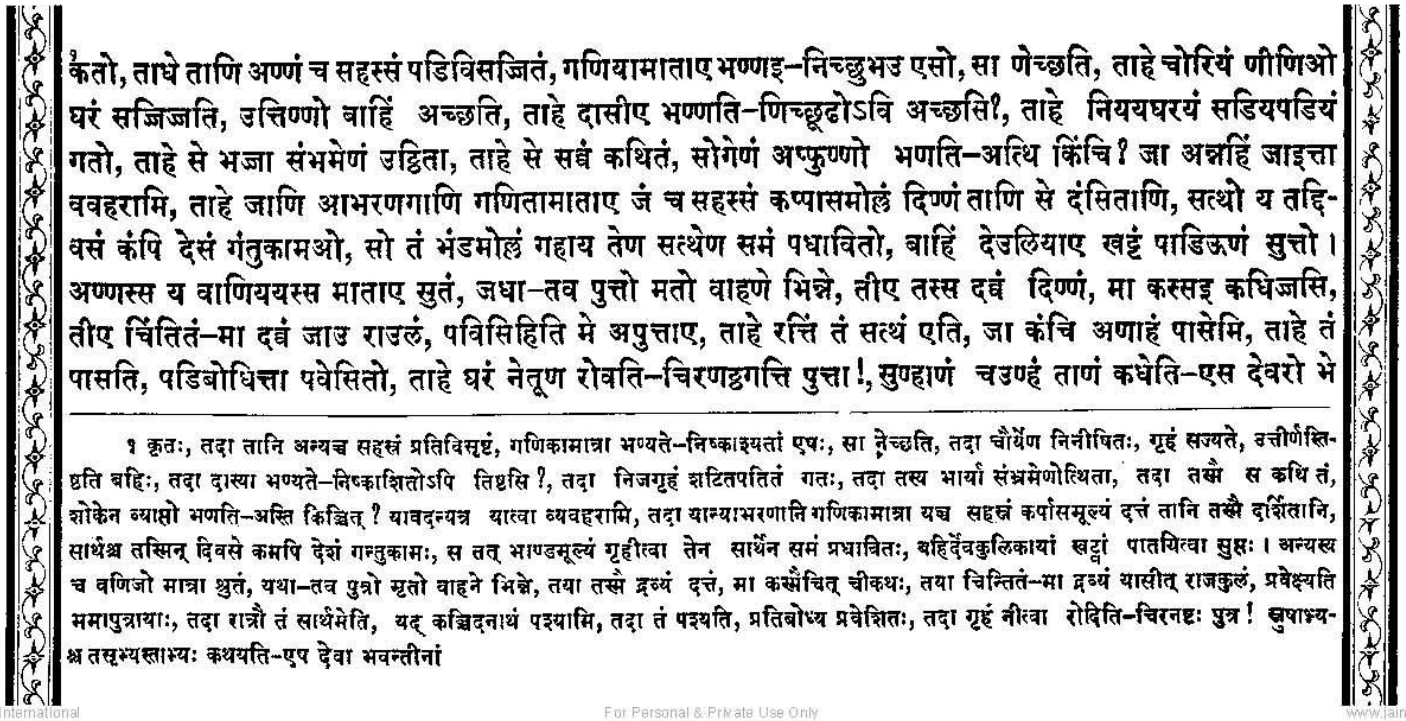

कृतो, ताधे ताणि अण्णं च सहस्सं पडिविसज्जितं, गणियामाताए भण्णइ–निच्छुभउ एसो, सा णेच्छति, ताहे चोरियं णीणिओ घरं सज्जिज्जति, उत्तिण्णो बाहिं अच्छति, ताहे दासीए भण्णति–णिच्छूढोऽवि अच्छसि?, ताहे नियघरयं सडियपडियं गतो, ताहे से भज्जा संभमेणं उट्ठिता, ताहे से सव्वं कथितं, सोगेणं अप्फुण्णो भणति–अत्थि किंचि? जा अन्नहिं जाइत्ता ववहरामि, ताहे जाणि आभरणगाणि गणितामाताए जं च सहस्सं कप्पासमोलं दिण्णं ताणि से दंसिताणि, सत्थो य तद्दिवसं कंपि देसं गंतुकामओ, सो तं भंडमोलं गहाय तेण सत्थेण समं पधावितो, बाहिं देउलियाए खट्टं पाडिऊणं सुत्तो। अण्णस्स य वाणिययस्स माताए सुतं, जधा–तव पुत्तो मतो वाहणे भिन्ने, तीए तस्स दव्वं दिण्णं, मा कस्सइ कधिज्जसि, तीए चिंतितं–मा दव्वं जाउ राउलं, पविसिहिति मे अपुत्ताए, ताहे रत्तिं तं सत्थं एति, जा कंचि अणाहं पासेमि, ताहे तं पासति, पडिबोधित्ता पवेसितो, ताहे घरं नेतूण रोवति–चिरणट्ठगत्ति पुत्ता!, सुण्हाणं चउण्हं ताणं कधेति–एस देवरो भे

१ कृतः, तदा तानि अन्यच्च सहस्रं प्रतिविसृष्टं, गणिकामात्रा भण्यते–निष्काश्यतां एषः, सा नेच्छति, तदा चौर्येण निनीषितः, गृहं सज्यते, उत्तीर्णस्तिष्ठति बहिः, तदा दास्या भण्यते–निष्काशितोऽपि तिष्ठसि?, तदा निजगृहं शटितपतितं गतः, तदा तस्य भार्या संभ्रमेणोत्थिता, तदा तस्मै स कथितं, शोकेन व्याप्तो भणति–अस्ति किञ्चित्? यावदन्यत्र यात्वा व्यवहरामि, तदा यान्याभरणानि गणिकामात्रा यच्च सहस्रं कर्पासमूल्यं दत्तं तानि तस्मै दर्शितानि, सार्थश्च तस्मिन् दिवसे कमपि देशं गन्तुकामः, स तत् भाण्डमूल्यं गृहीत्वा तेन सार्थेन समं प्रधावितः, बहिर्देवकुलिकायां खट्टां पातयित्वा सुप्तः। अन्यस्य च वणिजो मात्रा श्रुतं, यथा–तव पुत्रो मृतो वाहने भिन्ने, तया तस्मै द्रव्यं दत्तं, मा कस्मैचित् चीकथः, तया चिन्तितं–मा द्रव्यं यासीत् राजकुलं, प्रवेक्ष्यति ममापुत्रायाः, तदा रात्रौ तं सार्थमेति, यद् कञ्चिदनाथं पश्यामि, तदा तं पश्यति, प्रतिबोध्य प्रवेशितः, तदा गृहं नीत्वा रोदिति–चिरनष्टः पुत्र! स्नुषाभ्यश्च तस्मभ्यस्ताभ्यः कथयति–एष देवा भवन्तीनां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

चिरेणट्ठओ, ताओ तस्स लाइताओ, तत्थवि बारस वरिसाणि अच्छति, तत्थ एक्केक्काए चत्तारि पंच चेडरूवाणि जाताणि, थेरीए भणितं–एत्ताहे णिच्छुभतु, ताओ ण तरंति धरितुं, ताधे ताहिं संबलमोदगा कता, अंतो रयणाण भरिता, वरं से एयं पाओग्गं होति, ताधे वियडं पाएत्ता ताए चेव देवउलियाए ओसीसए से संबलं ठवेत्ता पडियागता, सोऽवि सीतलएण पवणेणं संबुद्धो पभातं च, सोवि सत्थो तद्दिवसमागतो, इमाएवि गवेसओ पेसिओ, ताहे उट्ठवित्ता घरं णीतो, भज्जा से संभमेण उट्ठिता, संबलं गहितं, पविट्ठो, अब्भंगादीणि करेति, पुत्तो य से तदा गब्भिणीए जातो, सो एक्कारसवरिसो जाओ, लेहसालाओ आगतो रोयति–देहि मे भत्तं, मा उवज्झाएण हम्मिहामित्ति, ताए ताओ संबलथइयातो मोयगो दिण्णो, णिग्गतो खायंतो, तत्थ रयणं पासति, लेहचेडएहिं दिट्ठं, तेहिं पूवियस्स दिण्णं, दिवे दिवे अम्ह पोलियाओ देहित्ति, इमोवि जिमिते मोयगे भिंदति, तेण दिट्ठाणि, भणति–सुक्कभएण कताणि, तेहिं रयणेहिं तहेव

---

१ चिरनष्टः, तास्तस्मिन् लग्नाः, तत्रापि द्वादश वर्षाणि तिष्ठति, तत्रैकैकस्याश्चत्वारः पञ्च पुत्रा जाताः, स्थविरया भणितम्–अधुना निष्काशयन्तु, ता न धर्त्तुं शक्नुवन्ति, तदा ताभिः शम्बलमोदकाः कृताः, अन्तो रत्नेन भृताः, वरं तस्यैतत् प्रायोग्यं भवति, तदा विकटं पाययित्वा तस्यामेव देवकुलिकायामुच्छीर्षके तस्य शम्बलं स्थापयित्वा प्रत्यागता, सोऽपि शीतलेन पवनेन संबुद्धः प्रभातं च, सोऽपि सार्थस्तस्मिन् दिवसे आगतः, अनयाऽपि गवेषकः प्रेषितः, तदोत्थाप्य गृहं नीतः, भार्या तस्य संभ्रमेण उत्थिता, शम्बलं गृहीतं, प्रविष्टः, अभ्यङ्गादीनि करोति, पुत्रश्च तस्य तदा गर्भिण्या जातः, स एकादशवार्षिको जातः, लेखशालाया आगतो रोदिति–देहि मह्यं भक्तं मोपाध्यायेन धानिषम्, तया तस्याः शम्बलस्थगिकातो मोदको दत्तः, निर्गतः खादन्, तत्र रत्नं पश्यति, लेखदारकैर्दृष्टं, तैरापूपिकाय दत्तं, दिवसे दिवसेऽस्माकं पोलिका दद्या इति, अयमपि जिमिते मोदकान् भिनत्ति, तेन दृष्टानि, भणति–शुल्कभयेन कृतानि, तै रत्नैस्तथैव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पविट्ठो। सेयणओ य गंधहत्थी णदीए तंतुएण गहितो, राया आदण्णो, अभयो भणति–जइ जलकंतो अत्थि तो छड्डेति, सो राउले अतिबहुअत्तणेण रतणाण चिरेण लब्भिहितित्तिकाऊण पडहओ णिप्फिडितो–जो जलकंतं देति तस्स राया रज्जं अद्धं धूतं च देति, ताधे पुविएण दिण्णो,णीतो, उदगं पगासितं, तंतुओ जाणति–थलं णीतो, मुक्को, णट्ठो, राया चिंतेति–कतो ?, पुवियस्स पुच्छति–कतो एस तुज्झं ?, निब्बंधे सिट्ठं–कयपुण्णगपुत्तेण दिण्णो, राया तुट्ठो, कस्स अण्णस्स होहिति?, रण्णा सद्दाविऊण कतपुण्णओ धूताए विवाहितो, विसओ से दिण्णो, भोगे भुंजति, गणितावि आगता भणति–एच्चिरं कालं अहं वेणीबंधेण अच्छिता, सव्ववेतालीओ तुमं अट्ठाए गवेसाविताओ, एत्थ दिट्ठोत्ति, कतपुण्णओ अभयं भणति–एत्थ मम चत्तारि महिलाओ, तं च घरं ण याणामि, ताहे चेतियघरं कतं, लेप्पगजक्खो कतपुण्णगसरिसो कतो, तस्स अच्चणिया घोसाविता, दो य बाराणि कताणि, एगेण पवेसो एगेण णिप्फेडो, तत्थ अभओ

---

१ प्रविस्तृतः। सेचनकश्च गन्धहस्ती नद्यां तन्तुकेन गृहीतः, राजा खिन्नः, अभयो भणति–यदि जलकान्तो भवेत् तदा त्यजेत्, स राजकुलेऽतिबहुत्वेन रत्नानां चिरेण लप्स्यत इतिकृत्वा पटहो दापितः–यो जलकान्तं ददाति तस्मै राजा राज्यमर्धं दुहितरं च ददाति, तदाऽऽपूपिकेन दत्तो, नीतः, उदकं प्रकाशितं, तन्तुको जानाति–स्थलं नीतः, मुक्तो, नष्टः, राजा चिन्तयति–कुतः ?, आपूपिकं पृच्छति–कुत एष तव?, निर्बन्धे शिष्टं–कृतपुण्यकपुत्रेण दत्तः, राजा तुष्टः, कस्यान्यस्य भवेत् ?, राज्ञा शब्दयित्वा कृतपुण्यको दुहित्रा विवाहितः, विषयस्तस्मै दत्तः, भोगान् भुनक्ति, गणिकाऽप्यागता, भणति–इयच्चिरं कालमहं वेणीबन्धेन स्थिता, सर्ववैतालिकास्त्वदर्थं गवेषिताः, अत्र दृष्ट इति, कृतपुण्यकोऽभयं भणति–अत्र मम चतस्रो महेलाः, तत्र गृहं न जानामि, तदा चैत्यगृहं कृतं, लेप्ययक्षः कृतपुण्यकसदृशः कृतः, तस्यार्चनिका घोषिता, द्वे च द्वारे कृते, एकेन प्रवेश एकेन निर्गमः, तत्राभयः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

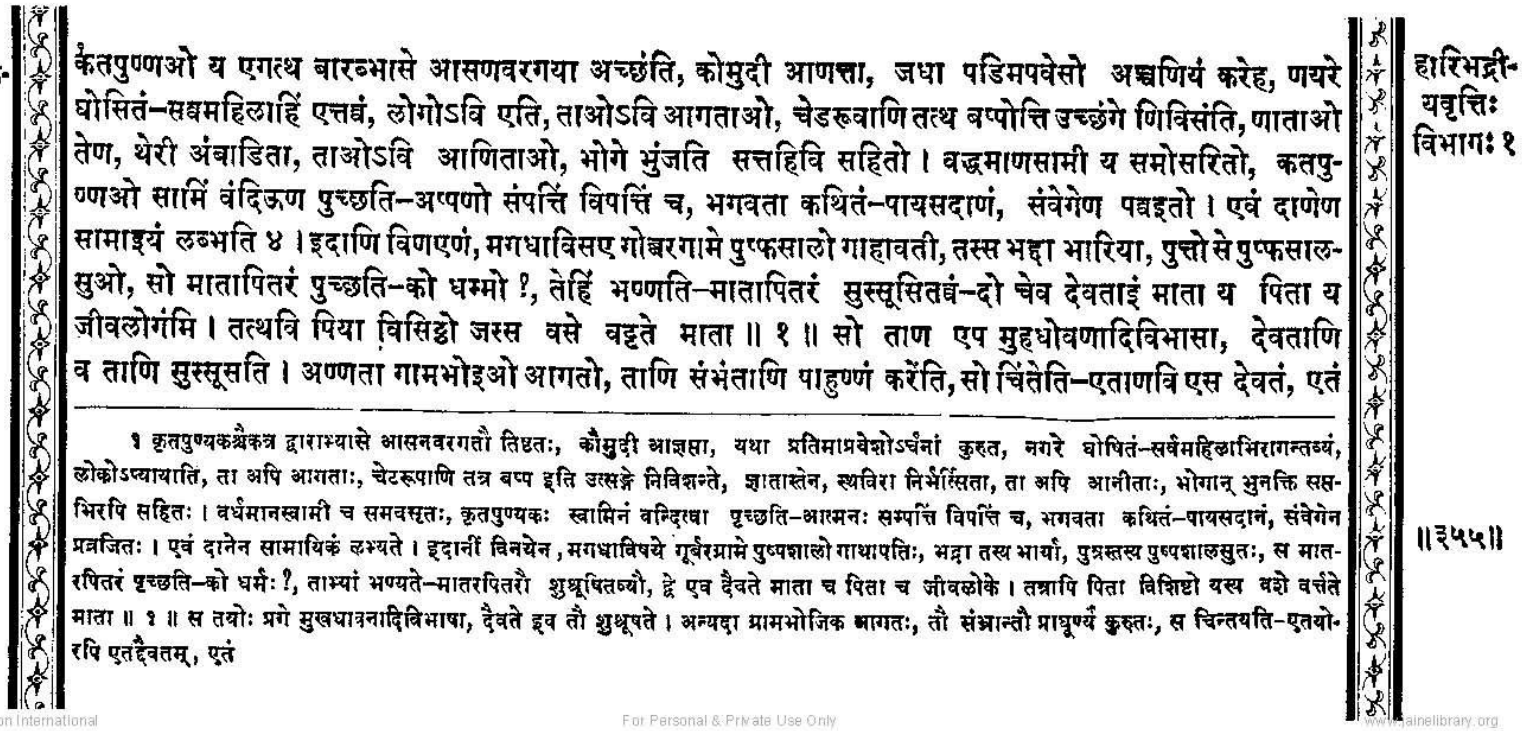

आवश्यक- ॥३५५॥

कृतपुण्णओ य एगत्थ बारब्भासे आसणवरगया अच्छंति, कोमुदी आणत्ता, जधा पडिमपवेसो अच्चणियं करेह, णयरे घोसितं–सव्वमहिलाहिं एत्तव्वं, लोगोऽवि एति, ताओऽवि आगताओ, चेडरूवाणि तत्थ बप्पोत्ति उच्छंगे णिविसंति, णाताओ तेण, थेरी अंबाडिता, ताओऽवि आणिताओ, भोगे भुंजति सत्तहिवि सहितो। वद्धमाणसामी य समोसरितो, कतपुण्णओ सामिं वंदिऊण पुच्छति–अप्पणो संपत्तिं विपत्तिं च, भगवता कथितं–पायसदाणं, संवेगेण पव्वइतो। एवं दाणेण सामाइयं लब्भति ४। इदाणि विणएणं, मगधाविसए गोब्बरगामे पुप्फसालो गाहावती, तस्स भद्दा भारिया, पुत्तो से पुप्फसालसुओ, सो मातापितरं पुच्छति–को धम्मो ?, तेहिं भण्णति–मातापितरं सुस्सूसितव्वं–दो चेव देवताइं माता य पिता य जीवलोगंमि। तत्थवि पिया विसिट्ठो जस्स वसे वट्टते माता ॥ १ ॥ सो ताण एप मुहधोवणादिविभासा, देवताणि व ताणि सुस्सूसति। अण्णता गामभोइओ आगतो, ताणि संभंताणि पाहुण्णं करेंति, सो चिंतेति–एताणवि एस देवतं, एतं

१ कृतपुण्यकश्चैकत्र द्वाराभ्यासे आसनवरगतौ तिष्ठतः, कौमुदी आज्ञप्ता, यथा प्रतिमाप्रवेशोऽर्चनां कुरुत, नगरे घोषितं–सर्वमहिलाभिरागन्तव्यं, लोकोऽप्यायाति, ता अपि आगताः, चेटरूपाणि तत्र बप्प इति उत्सङ्गे निवेशन्ते, ज्ञातास्तेन, स्थविरा निर्भर्त्सिता, ता अपि आनीताः, भोगान् भुनक्ति सप्तभिरपि सहितः। वर्धमानस्वामी च समवसृतः, कृतपुण्यकः स्वामिनं वन्दित्वा पृच्छति–आत्मनः सम्पत्तिं विपत्तिं च, भगवता कथितं–पायसदानं, संवेगेन प्रव्रजितः। एवं दानेन सामायिकं लभ्यते। इदानीं विनयेन, मगधाविषये गूर्बरग्रामे पुष्पशालो गाथापतिः, भद्रा तस्य भार्या, पुत्रस्तस्य पुष्पशालसुतः, स मातरपितरं पृच्छति–को धर्मः ?, ताभ्यां भण्यते–मातरपितरौ शुश्रूषितव्यौ, द्वे एव दैवते माता च पिता च जीवलोके। तत्रापि पिता विशिष्टो यस्य वशे वर्त्तते माता ॥ १ ॥ स तयोः प्रगे मुखधावनादिविभाषा, दैवते इव तौ शुश्रूषते। अन्यदा ग्रामभोजिक आगतः, तौ संभ्रान्तौ प्राघूर्ण्यं कुरुतः, स चिन्तयति–एतयोरपि एतद्दैवतम्, एतं

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

॥३५५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पूएमि तो धम्मो होहिति, तस्स सुस्सूसं पकतो। अण्णता तस्स भोइओ, तस्सवि अण्णो, तस्सवि अण्णो, जाव सेणियं रायाणं ओलग्गिउमारद्धो, सामी समोसढो, सेणिओ इड्ढीए गंतूण वंदति, ताहे सो सामिं भणति–अहं तुब्भे ओलग्गामि?, सामिणा भणितं–अहं रयहरणपडिग्गहमत्ताए ओलग्गिज्जामि, ताणं सुणणाए संबुद्धो, एवं विणएण सामाइयं लब्भति५। इदानीं विभंगेण लब्भति, जधा–अत्थि मगधाजणवए सिवो राया, तस्स धणधन्नहिरण्णाइ पइदियहं वड्ढति, चिंता जाया–अत्थि धम्मफलंति, तो महं हिरण्णादि वड्ढति, ता पुण्णं करेमित्तिकलिऊण भोयणं कारितं, दाणं च णेण दिण्णं, ततो पुत्तं रज्जे ठवेऊण सकततंबमयभिक्खाभायणकडुच्छुगोवगरणो दिसापोक्खियतावसाण मज्झे तावसो जातो, छट्ठछमातो परिसडियपंडुपत्ताणि आणिऊण आहारेति, एवं से चिट्ठमाणस्स कालेण विभंगणाणं समुप्पन्नं संखेज्जदीवसमुद्दविसयं, ततो णगरमागंतूण जधोवलद्धे भावे पण्णवेति। अण्णता साधवो दिट्ठा, तेसिं किरियाकलावं विभंगाणुसारेण

---

१ पूजयामि ततो धर्मो भविष्यति, तस्य शुश्रूषां प्रकृतः। अन्यदा तस्य भोजिकः, तस्याप्यन्यः, तस्याप्यन्यः यावच्छ्रेणिकं राजानमवलगितुमारब्धः, स्वामी समवसृतः, श्रेणिक ऋद्ध्या गत्वा वन्दते, तदा स स्वामिनं भणति–अहं त्वामवलगामि?, स्वामिना भणितम्–अहं रजोहरणप्रतिग्रहमात्रयाऽवलग्ये, तेषां श्रवणेन संबुद्धः। एवं विनयेन सामायिकं लभ्यते। इदानीं विभङ्गेन लभ्यते, यथाऽस्ति मगधाजनपदे शिवो राजा, तस्य धनधान्यहिरण्यादि प्रतिदिवसं वर्धते, चिन्ता जाता–अस्ति धर्मफलमिति, ततो मम हिरण्यादि वर्धते, तत् पुण्यं करोमीति कलयित्वा भोजनं कारितं, दानं चानेन दत्तं, ततः पुत्रं राज्ये स्थापयित्वा स्वकृततात्रमयभिक्षाभाजनकडुच्छुकोपकरणो दिक्प्रोक्षिततापसानां मध्ये तापसो जातः, षष्ठाष्टमात् परिशटितपाण्डुपत्राणि आनीय आहारयति, एवं तस्य तिष्ठतः कालेन विभङ्गज्ञानं समुत्पन्नं संख्येयद्वीपसमुद्रविषयं, ततो नगरमागत्य यथोपलब्धान् भावान् प्रज्ञापयति। अन्यदा साधवो दृष्टाः, तेषां क्रियाकलापं विभङ्गानुसारेण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

लोएमाणस्स विसुद्धपरिणामस्स अपुव्वकरणं जातं, ततो केवली संवुत्तोत्ति ६ । संयोगविओगओऽवि लब्भति, जधा दो मथुराओ–दाहिणा उत्तरा य, तत्थ उत्तराओ वाणियओ दक्खिणं गतो, तत्थ एगो वाणियओ तप्पडिमो, तेण से पाहुण्णं कतं, ताहे ते णिरंतरं मित्ता जाता, अम्हं थिरतरा पीती होहितित्ति जति अम्ह पुत्तो धूता य जायति तो संयोगं करेस्सामो, ताहे दक्खिणेण उत्तरस्स धूता वरिता, दिण्णाणि बालाणि, एत्थंतरे दक्खिणमथुरावाणियओ मतो, पुत्तो से तंमि ठाणे ठितो, अण्णता सो ण्हाति, चउद्दिसं चत्तारि सोवण्णिया कलसा ठविता, ताण बाहिं रोप्पिया, ताणं बाहिं तंबिया, ताण बाहिं मट्टिया, अण्णा य ण्हाणविधी रइता, ततो तस्स पुव्वाए दिसाए सोवण्णिओ कलसो णट्ठो, एवं चउदिसंपि, एवं सव्वे णट्ठा, उट्ठितस्स ण्हाणपीढंपि णट्ठं, तस्स अद्धिती जाता, णाडइज्जाओ वारिताओ, जाव घरं पविट्ठो ताधे उवट्ठविता भोयणविही, ताधे सोवण्णियरूप्पमताणि रइयाणि भायणाणि, ताधे एक्केकं भायणं णासिउमारद्धं, ताहे सो

---

१ लोकमानस्य विशुद्धपरिणामस्यापूर्वकरणं जातं, ततः केवली संवृत्त इति । संयोगवियोगतोऽपि लभ्यते, यथा द्वे मथुरे–दक्षिणोत्तरा च, तत्रोत्तरस्या वणिक् दक्षिणां गतः, तत्र एको वणिक् तत्प्रतिमः, तेन तस्य प्राघूर्ण्यं कृतं, तदा तौ निरन्तरं मित्रे जातौ, आवयोः स्थिरतरा प्रीतिर्भविष्यतीति यद्यावयोः पुत्रो दुहिता वा जायते तदा संयोगं करिष्यावः, तदा दाक्षिणात्येनौत्तरस्य दुहिता वृता, दत्ता बालिका । अत्रान्तरे दक्षिणमथुरावणिक् मृतः, पुत्रस्तस्य तस्मिन् स्थाने स्थितः, अन्यदा स स्नाति, चतुर्दिशं चत्वारः सौवर्णिकाः कलशाः स्थापिताः, तेभ्यो बहिः रौप्यकाः तेभ्यो बहिस्ताम्रास्तेभ्यो बहिः मार्त्तिकाः, अन्यश्च स्नानविधी रचितः, ततस्तस्य पूर्वस्या दिशः सौवर्णः कलशो नष्टः, एवं चतुर्दिग्भ्योऽपि, एवं सर्वे नष्टाः, उत्थितस्य स्नानपीठमपि नष्टं, तस्याधृतिर्जाता, नाटकीया वारिताः, यावद्गृहं प्रविष्टस्तदोपस्थितो भोजनविधिः, तदा सौवर्णरूप्यमयानि रचितानि भाजनानि, तदा एकैकं भाजनं नंष्टुमारब्धं, तदा स

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पेच्छंति णासंति, जावि से मूलपत्ती सावि णासिउमाढत्ता, ताहे तेण गहिता, जत्तियं गहियं तत्तियं ठितं, सेसं नट्ठं, ताधे गतो सिरिघरं जोएति, सोऽवि रित्तओ, जंपि णिहाणपउत्तं तंपि णट्ठं, जंपि आभरणं तंपि णत्थि, जंपि वुड्ढिपउत्तं तेवि भणंति–तुमं ण याणामो, जोऽवि दासीवग्गो सोऽवि णट्ठो, ताधे चिंतेति–अहो अहं अधण्णो, ताधे चिंतेति–पव्वयामि, पव्वइतो। थोवं पढित्ता हिंडति तेण खंडेण हत्थगयेण कोउहल्लेणं, जइ पेच्छिज्जामि, विहरंतो उत्तरमधुरं गतो। ताणिऽवि रयणाणि ससुरकुलं गताणि, ते य कलसा, ताहे सो मज्जति, उत्तर माथुरो वाणिओ उवगिज्जंतो जाव ते आगया कलसा, ताहे सो तेहिं चेव पमज्जितो, ताहे भोयणवेलाए तं भोयणभंडं उवट्ठवितं, जहापरिवाडीय ठितं, ततो सोऽवि साधू तं घरं पविट्ठो, तत्थ तस्स सत्थवाहस्स धूया पढमजोव्वणे वट्टमाणी वीयणयं गहाय अच्छति, ताहे सो साधू तं भोयणभंडं पेच्छति, (ग्रं० ९०००) सत्थवाहेण भिक्खा णीणाविता, गहितेवि अच्छति, ताहे पुच्छइ–किं भगवं! एयं चेडिं पलोएह,

१ प्रेक्षते नश्यन्ति, यापि च तस्य मूलपात्री साऽपि नंष्टुमारब्धा, तदा तेन गृहीता, यावद्गृहीतं तावत्स्थितं, शेषं नष्टं, तदा गतः श्रीगृहं पश्यति, सोऽपि रिक्तः, यदपि निधानप्रयुक्तं तदपि नष्टं, यदप्याभरणं तदपि नास्ति, यदपि वृद्धिप्रयुक्तं तेऽपि भणन्ति–वयं न जानीमः, योऽपि दासीवर्गः सोऽपि नष्टः, तदा चिन्तयति–अहो अहमधन्यः, तदा चिन्तयति–प्रव्रजामि, प्रव्रजितः। श्लोकं पठित्वा हिण्डते तेन खण्डेन हस्तगतेन कौतूहलेन, यदि प्रेक्षेय, विहरन् उत्तरमथुरां गतः,। तान्यपि रत्नानि श्वशुरकुलं गतानि, ते च कलशाः, तदा स मज्जति उत्तरमाथुरवणिगुपगीयमानः यावच्च आगताः कलशाः, तदा स तैरेव प्रमृक्तः, तदा भोजनवेलायां तदेव भोजनभाण्डमुपस्थितं यथापरिपाटि च स्थितं, ततः सोऽपि साधुस्तद्गृहं प्रविष्टः, तत्र तस्य सार्थवाहस्य दुहिता प्रथमयौवने वर्तमाना व्यजनं गृहीत्वा तिष्ठति, तदा स साधुस्तद् भोजनभाण्डं प्रेक्षते, सार्थवाहेन भिक्षा आनायिता, गृहीतायामपि तिष्ठति, तदा पृच्छति–किं भगवन्! एतां चेटीं प्रलोकयति?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

ताहे सो भणति–ण मम चेडीए पयोयणं, एयं भोयणभंडं पलोएमि, ततो पुच्छति–कतो एतस्स तुज्झ आगमो?, सो भणति–अज्जयपज्जयागतं, तेण भणितं–सब्भावं साह, तेण भणियं–मम ण्हायंतस्स एवं चेव ण्हाणविही उवट्ठिता, एवं सव्वाणिऽवि जेमणभोयणविही सिरिघराणिऽवि भरिताणि, णिक्खित्ताणि दिट्ठाणि, अदिट्ठपुव्वा य धारिया आणेत्ता देंति, साहू भणति–एयं मम आसी, किह?, ताहे कहेति–ण्हाणादि, जइ ण पत्तियसि ततो णेण तं भोयणवत्तीखंडं ढोइतं, चडत्ति लग्गं, पिउणो य णामं साहति, ताहे णातं जहा एस सो जामातुओ, ताहे उट्ठेऊण अवथासित्ता परुण्णो भणति— एयं सव्वं तदवत्थं अच्छति, एसा ते पुव्वदिण्णा चेडी पडिच्छसुत्ति, सो भणति–पुरिसो वा पुव्वं कामभोगे विप्पजहति, कामभोगा वा पुव्वं पुरिसं विप्पहयंति, ताहे सोऽवि संवेगमावण्णो ममंपि एमेव विप्पयहिस्संतित्ति पव्वइतो। तत्थेगेण विप्पयोगेण लद्धं, एगेण संयोगेण सामाइयं लद्धंति । इदाणिं वसणेण, दो भाउगा सगडेण वच्चंति, चक्कुलेण्डा य

---

१ तदा स भणति–न मम चेट्या प्रयोजनं, एतत् भोजनभाण्डं प्रलोकयामि, ततः पृच्छति–कुत एतस्य तवागमः?, स भणति–आर्यकप्रार्यकागतं (पितृपितामहागतं), तेन भणितं–सद्भावं कथय, तेन भणितं–मम स्नायमानस्यैवमेव स्नानविधिरुपस्थितः, एवं सर्वोऽपि जेमनभोजनविधिः, श्रीगृहाण्यपि भृतानि, निखातानि दृष्टानि, अदृष्टपूर्वाश्च धारका आनीय ददति, साधुर्भणति–एतन्ममासीत्, कथम्?, तदा कथयति–स्नानादि, यदि न प्रत्येषि (यदा न प्रत्यगात्) तदाऽनेन तद्भोजनपात्रीखण्डं ढौकितं, झटिति लग्नं, पितुश्च नाम कथयति, तदा ज्ञातं यथा एष स जामाता, तदोत्थायावकाश्य प्ररुदितो भणति– एतत् सर्वं तदवस्थं तिष्ठति, एषा त्वया पूर्वं दत्ता चेटी प्रतीच्छेति, स भणति–पुरुषो वा पूर्वं कामभोगान् विप्रजहाति, कामभोगा वा पूर्वं पुरुषं विप्रजहति, तदा सोऽपि संवेगमापन्नो मामप्येवमेव विप्रहास्यन्तीति प्रव्रजितः। तत्रैकेन विप्रयोगेन लब्धमेकेन संयोगेन सामायिकं लब्धमिति। इदानीं व्यसनेन, द्वौ भ्रातरौ शकटेन व्रजतः, चक्कौलण्डिका (द्विमुखः सर्पः) च.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

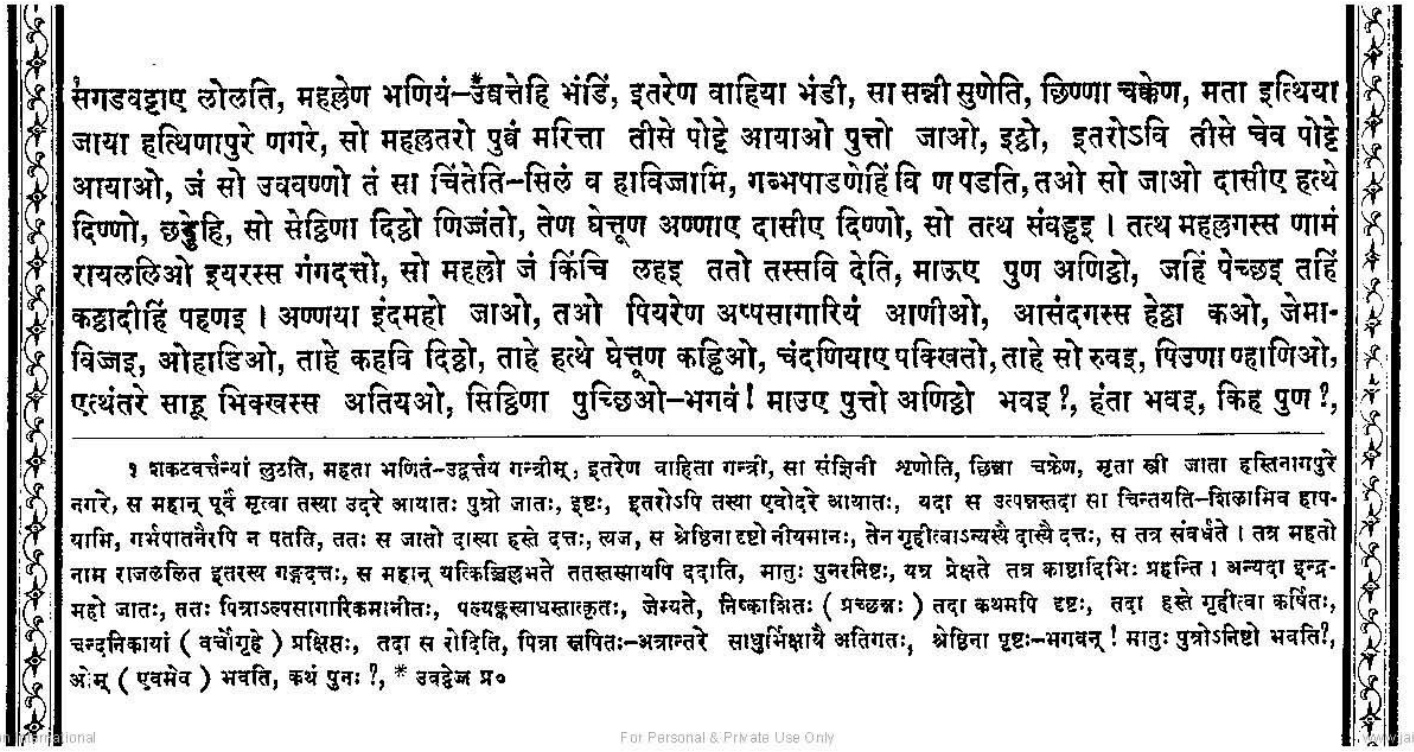

सगडवट्टाए लोलति, महल्लेण भणियं–उव्वत्तेहि भंडिं, इतरेण वाहिया भंडी, सा सन्नी सुणेति, छिण्णा चक्केण, मता इत्थिया जाया हत्थिणापुरे णगरे, सो महल्लतरो पुव्वं मरित्ता तीसे पोट्टे आयाओ पुत्तो जाओ, इट्ठो, इतरोऽवि तीसे चेव पोट्टे आयाओ, जं सो उववण्णो तं सा चिंतेति–सिलं व हाविज्जामि, गब्भपाडणेहिं वि ण पडति, तओ सो जाओ दासीए हत्थे दिण्णो, छड्डेहि, सो सेट्ठिणा दिट्ठो णिज्जंतो, तेण घेत्तूण अण्णाए दासीए दिण्णो, सो तत्थ संवड्ढइ । तत्थ महल्लगस्स णामं रायललिओ इयरस्स गंगदत्तो, सो महल्लो जं किंचि लहइ ततो तस्सवि देति, माऊए पुण अणिट्ठो, जहिं पेच्छइ तहिं कट्ठादीहिं पहणइ । अण्णया इंदमहो जाओ, तओ पियरेण अप्पसागारियं आणीओ, आसंदगस्स हेट्ठा कओ, जेमाविज्जइ, ओहाडिओ, ताहे कहवि दिट्ठो, ताहे हत्थे घेत्तूण कड्ढिओ, चंदणियाए पक्खितो, ताहे सो रुवइ, पिउणा ण्हाणिओ, एत्थंतरे साहू भिक्खस्स अतियओ, सिट्ठिणा पुच्छिओ–भगवं! माउए पुत्तो अणिट्ठो भवइ?, हंता भवइ, किह पुण?,

---

१ शकटवर्त्तन्यां लुठति, महता भणितं–उद्वर्त्तय गन्त्रीम्, इतरेण वाहिता गन्त्री, सा संज्ञिनी शृणोति, छिन्ना चक्रेण, मृता स्त्री जाता हस्तिनागपुरे नगरे, स महान् पूर्वं मृत्वा तस्या उदरे आयातः पुत्रो जातः, इष्टः, इतरोऽपि तस्या एवोदरे आयातः, यदा स उत्पन्नस्तदा सा चिन्तयति–शिलामिव हापयामि, गर्भपातनैरपि न पतति, ततः स जातो दास्या हस्ते दत्तः, त्यज, स श्रेष्ठिना दृष्टो नीयमानः, तेन गृहीत्वाऽन्यस्यै दास्यै दत्तः, स तत्र संवर्धते । तत्र महतो नाम राजललित इतरस्य गङ्गदत्तः, स महान् यत्किञ्चिल्लभते ततस्तस्मायपि ददाति, मातुः पुनरनिष्टः, यत्र प्रेक्षते तत्र काष्ठादिभिः प्रहन्ति । अन्यदा इन्द्रमहो जातः, ततः पित्राऽल्पसागारिकमानीतः, पल्यङ्कस्याधस्तात्कृतः, जेम्यते, निष्काशितः (प्रच्छन्नः) तदा कथमपि दृष्टः, तदा हस्ते गृहीत्वा कर्षितः, चन्दनिकायां (वर्चोगृहे) प्रक्षिप्तः, तदा स रोदिति, पित्रा क्षपितः–अत्रान्तरे साधुर्भिक्षायै अतिगतः, श्रेष्ठिना पृष्टः–भगवन्! मातुः पुत्रोऽनिष्टो भवति?, ओम् (एवमेव) भवति, कथं पुनः?, * उवट्टेज्ज प्र०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

ताहे भणति–'यं दृष्ट्वा वर्धते क्रोधः, स्नेहश्च परिहीयते । स विज्ञेयो मनुष्येण, एष मे पूर्ववैरिकः ॥ १ ॥ यं दृष्ट्वा वर्धते स्नेहः, क्रोधश्च परिहीयते । स विज्ञेयो मनुष्येण, एष मे पूर्वबान्धवः ॥ २ ॥ ताहे सो भणइ–भगवं ? पव्वावेह एयं?, बाढंति विसज्जिओ पव्वइओ । तेसिं आयरियाण सगासे भायावि से णेहाणुरागेण पव्वइओ, ते साहू जाया इरियासमिया, अणिस्सितं तवं करेंति, ताहे सो तत्थ णिदाणं करेइ–जइ अत्थि इमस्स तवणियमसंजमस्स फलं तो आगमेस्साणं जणमणणयणाणंदो भवामि, घोरं तवं करेत्ता देवलोयं गओ । ततो चुओ वसुदेवपुत्तो वासुदेवो जाओ, इयरोऽवि बलदेवो, एवं तेण वसणेण सामाइयं लद्धं ७ । उस्सवे, एगंमि पच्चंतियगामे आभीराणि, ताणि साहूणं पासे धम्मं सुणेंति, ताहे देवलोए वण्णेंति, एवं तेसिं अत्थि धम्मे सुबुद्धी । अण्णदा कयाइ इंदमहे वा अण्णंमि वा उस्सवे गयाणि णगरिं, जारिसा बारवइ, तत्थ लोयं पासन्ति मंडितपसाहियं सुगंधं विचित्तणेवत्थं, ताणि तं दट्ठूण भणंति–एस सो देवलोओ जो साहूहिं वण्णिओ,

---

१ तदा भणति–तदा स भणति–भगवन् ! प्रव्राजयैनं?, बाढमिति, विसृष्टः प्रव्रजितः । तेषामाचार्याणां सकाशे भ्राताऽपि तस्य स्नेहानुरागेण प्रव्रजितः, तौ साधू जातौ ईर्यासमितौ, अनिश्रितं तपः कुरुतः, तदा स तत्र निदानं करोति–यद्यस्ति अस्य तपोनियमसंयमस्य फलं तदायत्यां जनमनोनयनानन्दो भवेयं, घोरं तपः कृत्वा देवलोकं गतः । ततश्च्युतो वसुदेवपुत्रो वासुदेवो जातः, इतरोऽपि बलदेवः, एवं तेन व्यसनेन सामायिकं लब्धम् । उत्सवे, एकस्मिन् प्रत्यन्तग्रामे आभीराः, ते साधूनां पार्श्वे धर्मं शृण्वन्ति, तदा देवलोकान् वर्णयन्ति, एवं तेषामस्ति धर्मे सुबुद्धिः । अन्यदा कदाचित् इन्द्रमहे वाऽन्यस्मिन्वोत्सवे गता नगरीं, यादृशा द्वारिका, तत्र लोकं पश्यन्ति मण्डितप्रसाधितं सुगन्धं विचित्रनेपथ्यं, ते तं दृष्ट्वा भणन्ति–एष स देवलोको यः साधुभिर्वर्णितः'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

एत्ताहे जइ वच्चामो सुंदरं करेमो, अम्हेवि देवलोए उववज्जामो, ताहे ताणि गंतूण साहूण साहंति–जो तुब्भेहिं अम्ह कहिओ देवलोओ सो पच्चक्खो अम्हेहिं दिट्ठो, साहू भणंति–ण तारिसो देवलोओ, अण्णारिसो, अतो अणंतगुणो, तओ ताणि अब्भहियजातविम्हयाणि पव्वइयाणि । एवं उस्सवेण सामाइयलंभो ९। इद्धित्ति, दसण्णपुरे णगरे दसण्णभद्दो राया, तस्स पंच देवीसयाणि ओरोहो, एवं सो रूवेण जोव्वणेण बलेण य वाहणेण य पडिबद्धो एरिसं णत्थित्ति अण्णस्स चिंतेइ, सामी समोसरिओ दसण्णकूडे पव्वते । ताहे सो चिंतेइ–तहा कलं वंदामि जहा ण केणइ अण्णेण वंदियपुव्वो, तं च अब्भत्थियं सक्को णाऊण चिंतेइ–वराओ अप्पाणयं ण याणति, तओ राया महया समुदएण णिग्गओ वंदिउं सविड्ढिए, सक्को य देवराया एरावणं विलग्गो, तस्स अट्ठ मुहे विउव्वइ, मुहे २ अट्ठ अट्ठ दंते विउव्वेइ, दंते २ अट्ठ अट्ठपुक्खरणिओ विउव्वेइ, एक्केक्काए पुक्करणीए अट्ठ २ पउमे विउव्वेइ, पउमे २ अट्ठ अट्ठ पत्ते विउव्वेइ, पत्ते २ अट्ठ २ बत्तीसबद्धाणि दिव्वाणि णाडगाणि विउव्वइ,

---

१ अधुना (अत्र) यदि आयास्यामः सुन्दरमकरिष्यामः, वयमपि देवलोके उत्पत्स्यामहे, तदा ते गत्वा साधून् कथयन्ति–यो युष्माभिरस्मान् कथितो देवलोकः स प्रत्यक्षोऽस्माभिर्दृष्टः, साधवो भणन्ति–न तादृशो देवलोकः, अन्यादृशः, अतोऽनन्तगुणः, ततस्तेऽभ्यधिकजातविस्मयाः प्रव्रजिताः । एवमुत्सवेन सामायिकलाभः । ऋद्धिरिति, दशार्णपुरे नगरे दशार्णभद्रो राजा, तस्य पञ्च देवीशतानि अवरोधः, एवं स रूपेण यौवनेन बलेन च वाहनेन च प्रतिबद्धः ईदृशं नास्त्यन्यस्येति चिन्तयति, स्वामी समवसृतो दशार्णकूटे पर्वते । तदा स चिन्तयति–तथा कल्ये वन्दिताहे यथा न केनचिदन्येन वन्दितपूर्वः, तच्चाभ्यर्थितं शक्रो ज्ञात्वा चिन्तयति–वराक आत्मानं न जानाति, ततो राजा महता समुदयेन निर्गतो वन्दितुं सर्वर्द्ध्या, शक्रश्च देवराज ऐरावणं विलग्नः, तस्याष्टौ मुखानि विकुर्वति, मुखे २ अष्टाष्ट दन्तान् विकुर्वति, दन्ते २ अष्ट अष्ट पुष्करिणीर्विकुर्वति, एकैकस्यां पुष्करिण्यामष्टाष्ट पद्मानि विकुर्वति, पद्मे २ अष्टाष्ट पत्राणि विकुर्वति, पत्रे २ अष्टाष्ट द्वात्रिंशद्बद्धानि दिव्यानि नाटकानि विकुर्वति,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

एवं सो सक्किट्ठीए उवगिज्जमाणो आगओ, तओ एरावणं विलग्गो चेव तिक्खुत्तो आदाहिणं पयाहिणं सामिं करेइ, ताहे सो हत्थी अग्गपादेहिं भूमीए ठिओ, ताहे तस्स हत्थिस्स दसण्णकूडे पव्वते देवताप्पसाएण अग्गपायाणि उट्ठिताणि, तओ सेणामं कतं गयग्गपादगोत्ति, ताहे सो दसण्णभद्दो चिंतेइ–एरिसा कओ अम्हाणं इड्ढित्ति?, अहो कएल्लओऽणेण धम्मो, अहमवि करेमि, ताहे सो सव्वं छड्डेऊण पव्वइओ। एवं इड्ढीए सामाइयं लहइ १०। इयाणिं असक्कारेणं, एगो धिज्जाइओ तहारूवाणं थेराणं अंतिए धम्मं सोच्चा समहिलिओ पव्वइओ, उग्गं २ पव्वज्जं करेंति, णवरमवरोप्परं पीती ण ओसरइ, महिलामणागं धिज्जाइणित्ति गव्वमुव्वहति, मरिऊण देवलोयं गयाणि, जहाउगं भुत्तं। अतो य इलावद्धणे णगरे इलादेवया, तं एगा सत्थवाही पुत्तकामा ओलग्गति, सो चविऊण पुत्तो से जाओ, णामं च से कयं इलापुत्तो त्ति, इयरीवि गव्वदोसेणं तओ चुया लंखगकुले उप्पण्णा, दोऽवि जोव्वणं पत्ताणि, अण्णया तेण सा लंखगचेडी दिट्ठा, पुव्वभवरागेण अज्झोववण्णो,

---

१ एवं स सर्वैर्ध्योपगीयमान आगतः, तत ऐरावणे विलग्न एव त्रिकृत्व आदक्षिणप्रदक्षिणं स्वामिनं करोति, तदा स हस्ती अग्रपादैः भूमौ स्थितः, तदा तस्य हस्तिनो दशार्णकूटे पर्वते देवताप्रसादेन अग्रपादा उत्थिताः, ततस्तस्य कृतं नाम गजाग्रपादक इति, तदा स दशार्णभद्रश्चिन्तयति–ईदृशा कुतोऽस्माकमृद्धिरिति अहो कृतोऽनेन धर्मः, अहमपि करोमि, तदा स सर्वं त्यक्त्वा प्रव्रजितः। एवमृद्धया सामायिकं लभ्यते। इदानीमसत्कारेण–एको धिग्जातीयस्तथारूपाणां स्थविराणामन्तिके धर्मं श्रुत्वा समहिलः प्रव्रजितः, उग्रामुग्रां प्रव्रज्यां कुरुतः, नवरं परस्परं प्रीतिर्नापसरति, महेला धिग्जातीयेति मनाक् गर्वमुद्वहति, मृत्वा देवलोकं गतौ, यथायुष्कं भुक्तम्। इतश्चेलावर्धने नगरे इलादेवता, तामेका सार्थवाही पुत्रकामाऽवलगति, स च्युत्वा पुत्रस्य जातः, नाम च तस्य कृतमिलापुत्र इति, इतरापि गर्वदोषेण ततश्च्युता लङ्घककुले उत्पन्ना, द्वावपि यौवनं प्राप्तौ, अन्यदा तेन सा लङ्घकचेटी दृष्टा, पूर्वभवरागेणाध्युपपन्नः,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

सा मग्गिज्जंतीवि ण लब्भइ जत्तिएण तुलइ तत्तिएण सुवण्णेण ताणि भणंति–एसा अम्ह अक्खयणिही, जइ सिप्पं सिक्खसि अम्हेहि य समं हिंडसि तो ते देमो, सो तेहिं समं हिंडिओ सिक्खिओ य, ताहे विवाहणिमित्तं रण्णो पेच्छयणं करेहित्ति भणितो, वेण्णातडं गयाणि, तत्थ राया पेच्छति संतेपुरो, इलापुत्तो य खेड्डाउ करेइ, रायाए दिट्ठी दारियाए, राया ण देइ, रायाणए अदेन्ते अण्णेऽवि ण देंति, साहुक्काररावं वदृति, भणिओ–लंख ! पडणं करेह, तं च किर वंससिहरे अड्डं कट्ठं कतेलयं, तत्थ खीलयाओ, सो पाउआउ आहिंधइ मूले विंधियाओ, तओऽसिखेडगहत्थगओ आगासं उप्पइत्ता ते खीलगा पाउआणालियाहि पवेसेतद्धा सत्त अग्गिमाइद्धे सत्त पच्छिमाइद्धे काऊण, जइ फिडइ तओ पडिओ सयहा खंडिज्जइ, तेण कयं, राया दारियं पलोएइ, लोएण कलकलो कओ, ण य देइ राया राया ण पेच्छइ, राया चिंतेइ–जइ मरइ तो अहं एयं दारियं परिणेमि, भणइ–ण दिट्ठं, पुणो करेहि, पुणोऽवि कयं, तत्थऽवि ण दिट्ठं, ततियंपि वाराकयं, तत्थवि ण दिट्ठं,

१ सा मार्ग्यमाणापि न लभ्यते यावता तोल्यते तावता सुवर्णेन, ते भणन्ति–एषाऽस्माकमक्षयनिधिः, यदि शिल्पं शिक्षसे अस्माभिश्च समं हिण्डसे तदा तुभ्यं दद्मः, स तैः समं हिण्डितः शिक्षितश्च, तदा विवाहनिमित्तं राज्ञः प्रेक्षणकं कुर्विति भणितो, वेन्नातटं गताः, तत्र राजा प्रेक्षते सान्तःपुरः, इलापुत्रश्च क्रीडाः करोति, राज्ञो दृष्टिर्दारिकायां, राजा न ददाति, राज्यददति अन्येऽपि न ददति, साधुकाररवो वर्त्तते, भणितो–लङ्घक ! पतनं कुरु, तत्र च वंशशिखरे तिर्यक्काष्ठं कृतं, तत्र कीलिकाः, स पादुके परिदधाति मूलविद्धे, ततोऽसिखेटकहस्तगत आकाशमुत्पत्य ताः कीलिकाः पादुकानलिकासु प्रवेशयितव्याः सप्ताग्राविद्धाः सप्त पश्चादाविद्धाः कृत्वा, यदि स्खलति ततः पतितः शतधा खण्ड्यते, तेन कृतं, राजा दारिकां प्रलोकयति, लोकेन कलकलः कृतः, राजा न च ददाति राजा न प्रेक्षते, राजा चिन्तयति–यदि म्रियते तदाऽहमेतां दारिकां परिणयामि, भणति–न दृष्टं, पुनः कुरु, पुनरपि कृतं, तत्रापि न दृष्टं, तृतीयवारमपि कृतं, तत्रापि न दृष्टं, * पाउ आबंधति प्र०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

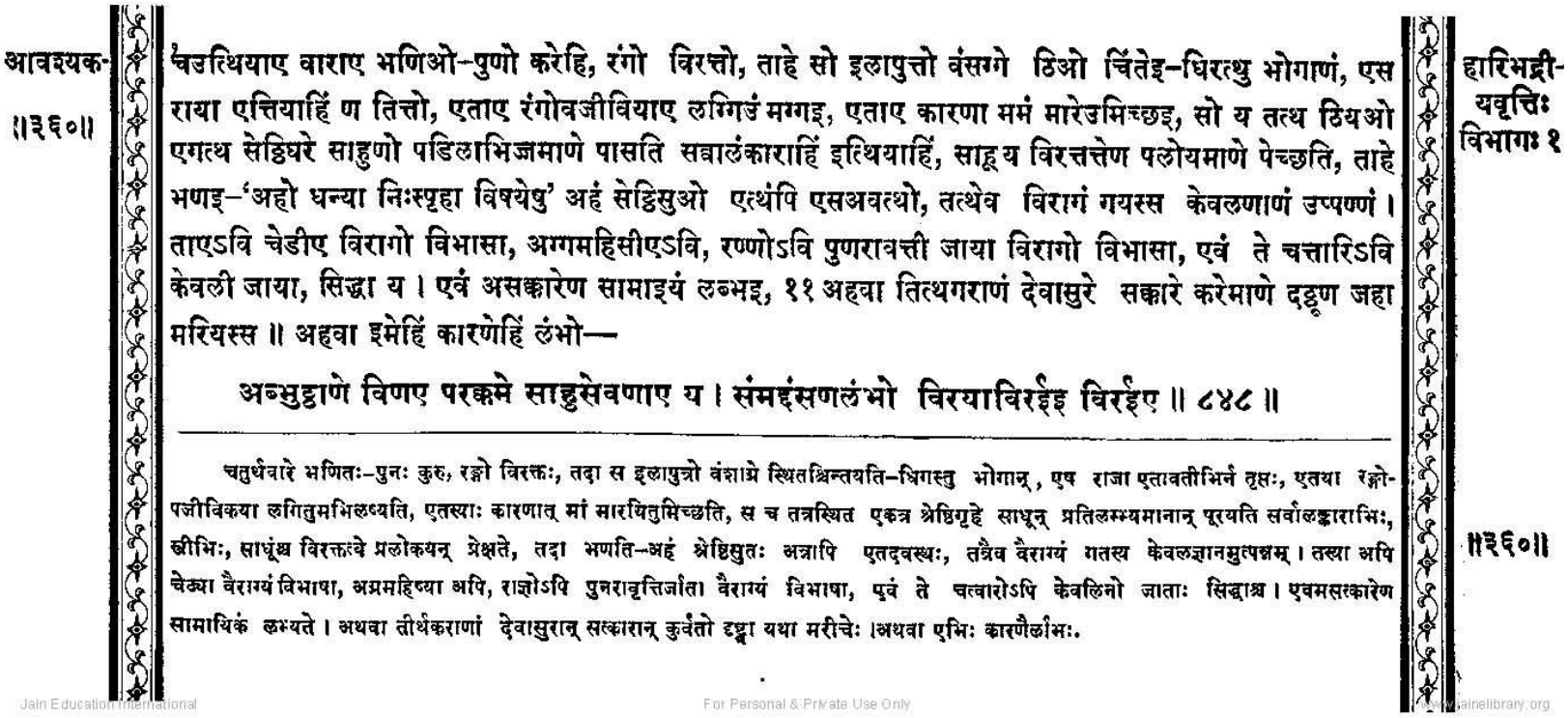

आवश्यक- ॥३६०॥

चउत्थियाए वाराए भणिओ–पुणो करेहि, रंगो विरत्तो, ताहे सो इलापुत्तो वंसग्गे ठिओ चिंतेइ–धिरत्थु भोगाणं, एस राया एत्तियाहिं ण तित्तो, एताए रंगोवजीवियाए लग्गिउं मग्गइ, एताए कारणा ममं मारेउमिच्छइ, सो य तत्थ ठियओ एगत्थ सेट्ठिघरे साहुणो पडिलाभिज्जमाणे पासति सव्वालंकाराहिं इत्थियाहिं, साहू य विरत्तत्तेण पलोयमाणे पेच्छति, ताहे भणइ–'अहो धन्या निःस्पृहा विषयेषु' अहं सेट्ठिसुओ एत्थंपि एसअवत्थो, तत्थेव विरागं गयस्स केवलणाणं उप्पण्णं। ताएऽवि चेडीए विरागो विभासा, अग्गमहिसीएऽवि, रण्णोऽवि पुणरावत्ती जाया विरागो विभासा, एवं ते चत्तारिऽवि केवली जाया, सिद्धा य। एवं असक्कारेण सामाइयं लब्भइ, ११ अहवा तित्थगराणं देवासुरे सक्कारे करेमाणे दट्ठूण जहा मरियस्स ॥ अहवा इमेहिं कारणेहिं लंभो—

अब्भुट्ठाणे विणए परक्कमे साहुसेवणाए य। संमद्दंसणलंभो विरयाविरईइ विरईए ॥ ८४८ ॥

चतुर्थवारे भणितः–पुनः कुरु, रङ्गो विरक्तः, तदा स इलापुत्रो वंशाग्रे स्थितश्चिन्तयति–धिगस्तु भोगान्, एष राजा एतावतीभिर्न तृप्तः, एतया रङ्गोपजीविकया लगितुमभिलष्यति, एतस्याः कारणात् मां मारयितुमिच्छति, स च तत्रस्थित एकत्र श्रेष्ठिगृहे साधून् प्रतिलम्भ्यमानान् पूरयति सर्वालङ्काराभिः, स्त्रीभिः, साधूंश्च विरक्तत्वे प्रलोकयन् प्रेक्षते, तदा भणति–अहं श्रेष्ठिसुतः अत्रापि एतदवस्थः, तत्रैव वैराग्यं गतस्य केवलज्ञानमुत्पन्नम्। तस्या अपि चेट्या वैराग्यं विभाषा, अग्रमहिष्या अपि, राज्ञोऽपि पुनरावृत्तिर्जाता वैराग्यं विभाषा, एवं ते चत्वारोऽपि केवलिनो जाताः सिद्धाश्च। एवमसत्कारेण सामायिकं लभ्यते। अथवा तीर्थकराणां देवासुरान् सत्कारान् कुर्वतो दृष्ट्वा यथा मरीचेः। अथवा एभिः कारणैर्लाभः.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हारिभद्रीय-वृत्तिः विभागः १

॥३६०॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

सामायिक-लाभस्य अन्य कारणानि प्रस्तुयते

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

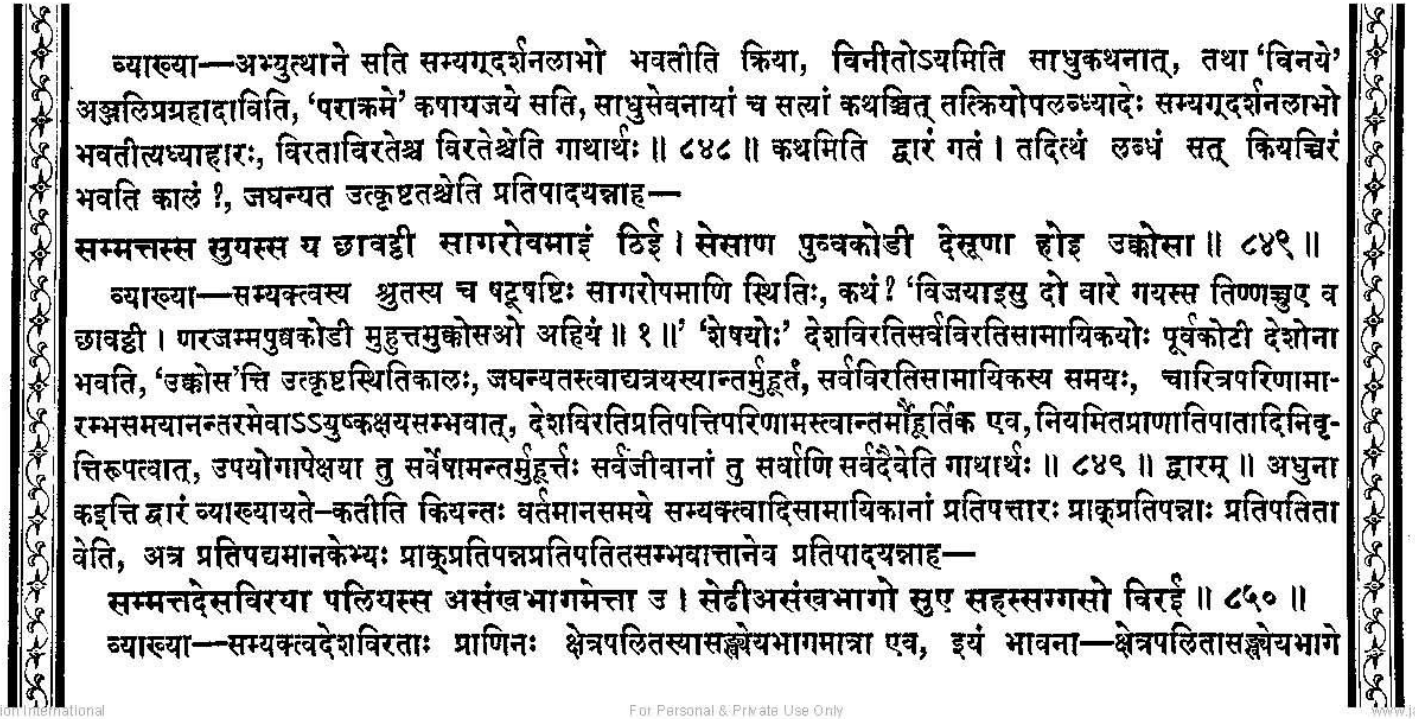

व्याख्या—अभ्युत्थाने सति सम्यग्दर्शनलाभो भवतीति क्रिया, विनीतोऽयमिति साधुकथनात्, तथा 'विनये' अञ्जलिप्रग्रहादाविति, 'पराक्रमे' कषायजये सति, साधुसेवनायां च सत्यां कथञ्चित् तत्क्रियोपलब्ध्यादेः सम्यग्दर्शनलाभो भवतीत्यध्याहारः, विरताविरतेश्च विरतेश्चेति गाथार्थः ॥ ८४८ ॥ कथमिति द्वारं गतं । तदित्थं लब्धं सत् कियच्चिरं भवति कालं ?, जघन्यत उत्कृष्टतश्चेति प्रतिपादयन्नाह—

सम्मत्तस्स सुयस्स य छावट्ठी सागरोवमाइं ठिई । सेसाण पुव्वकोडी देसूणा होइ उक्कोसा ॥ ८४९ ॥

व्याख्या—सम्यक्त्वस्य श्रुतस्य च षट्षष्टिः सागरोपमाणि स्थितिः, कथं? 'विजयाइसु दो वारे गयस्स तिण्णच्चुए व छावट्ठी । णरजम्मपुव्वकोडी मुहुत्तमुक्कोसओ अहियं ॥ १ ॥' 'शेषयोः' देशविरतिसर्वविरतिसामायिकयोः पूर्वकोटी देशोना भवति, 'उक्कोस'त्ति उत्कृष्टस्थितिकालः, जघन्यतस्त्वाद्यत्रयस्यान्तर्मुहूर्तं, सर्वविरतिसामायिकस्य समयः, चारित्रपरिणामारम्भसमयानन्तरमेवाऽऽयुष्कक्षयसम्भवात्, देशविरतिप्रतिपत्तिपरिणामस्त्वान्तर्मौहूर्तिक एव, नियमितप्राणातिपातादिनिवृत्तिरूपत्वात्, उपयोगापेक्षया तु सर्वेषामन्तर्मुहूर्त्तः सर्वजीवानां तु सर्वाणि सर्वदैवेति गाथार्थः ॥ ८४९ ॥ द्वारम् ॥ अधुना कइत्ति द्वारं व्याख्यायते–कतीति कियन्तः वर्तमानसमये सम्यक्त्वादिसामायिकानां प्रतिपत्तारः प्राक्प्रतिपन्नाः प्रतिपतिता वेति, अत्र प्रतिपद्यमानकेभ्यः प्राक्प्रतिपन्नप्रतिपतितसम्भवात्तानेव प्रतिपादयन्नाह—

सम्मत्तदेसविरया पलियस्स असंखभागमेत्ता उ । सेढीअसंखभागो सुए सहस्सग्गसो विरई ॥ ८५० ॥

व्याख्या—सम्यक्त्वदेशविरताः प्राणिनः क्षेत्रपलितस्यासङ्ख्येयभागमात्रा एव, इयं भावना—क्षेत्रपलितासङ्ख्येयभागे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

यावन्तः प्रदेशास्तावन्त एव उत्कृष्टतः सम्यक्त्वदेशविरतिसामायिकयोरेकदा प्रतिपत्तारो भवन्ति, किन्तु देशविरतिसामायिकप्रतिपत्तृभ्यः सम्यक्त्वप्रतिपत्तारोऽसङ्ख्येयगुणा इति, जघन्यतस्त्वेको द्वौ वेति । 'सेढीअसंखभागो सुए'त्ति इह संवर्तितचतुरस्रीकृतलोकैकप्रदेशनिर्वृत्ता सप्तरज्ज्वात्मिका श्रेणिः परिगृह्यते, तदसङ्ख्येयभाग इति, तस्याः खल्वसङ्ख्येयभागे यावन्तः प्रदेशास्तावन्त एव एकदोत्कृष्टतः सामान्यश्रुते–अक्षरात्मके सम्यग्मिथ्यात्वानुगते विचार्ये प्रतिपत्तारो भवन्तीति हृदयं, जघन्यतस्त्वेको द्वौ वेति । 'सहस्सग्गसो विरई' सहस्राग्रशो विरतिमधिकृत्य उत्कृष्टतः प्रतिपत्तारो ज्ञेया इत्यध्याहारः, जघन्यतस्त्वेको द्वौ वेति गाथार्थः ॥ ८५० ॥ प्राक्प्रतिपन्नानिदानीं प्रतिपादयन्नाह—

सम्मत्तदेसविरया पडिवन्ना संपई असंखेज्जा । संखेज्जा य चरित्ते तीसुवि पडिया अणंतगुणा ॥ ८५१ ॥

व्याख्या—सम्यक्त्वदेशविरताः प्रतिपन्नाः 'साम्प्रतं' वर्तमानसमयेऽसङ्ख्येया उत्कृष्टतो जघन्यतश्च, किन्तु जघन्यपदादुत्कृष्टपदे विशेषाधिकाः, एते च प्रतिपद्यमानकेभ्योऽसङ्ख्येयगुणा इति । अत्रैवान्तरे सामान्यश्रुतापेक्षया प्राक्प्रतिपन्नान् प्रतिपादयता 'सुयपडिवण्णा संपइ पयरस्स असंखभागमेत्ता उ' इदमेष्यगाथाशकलं व्याख्येयं, द्वितीयं तूत्तरत्र, तत्राक्षरात्मकाविशिष्टश्रुतप्रतिपन्नाः साम्प्रतं प्रतरस्य सप्तरज्ज्वात्मकस्यासङ्ख्येयभागमात्राः, असङ्ख्येयासु श्रेणिषु यावन्तः प्रदेशास्तावन्त इत्यर्थः, सङ्ख्येयाश्च चारित्रे प्राक्प्रतिपन्ना इति, 'त्रिभ्योऽपि' चरणदेशचरणसम्यक्त्वेभ्यः पतिताः 'अणंतगुण'त्ति प्राप्य प्रतिपतिता अनन्तगुणाः प्रतिपद्यमानकप्राक्प्रतिपन्नेभ्यः, तत्र चरणप्रतिपतिता अनन्ताः,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

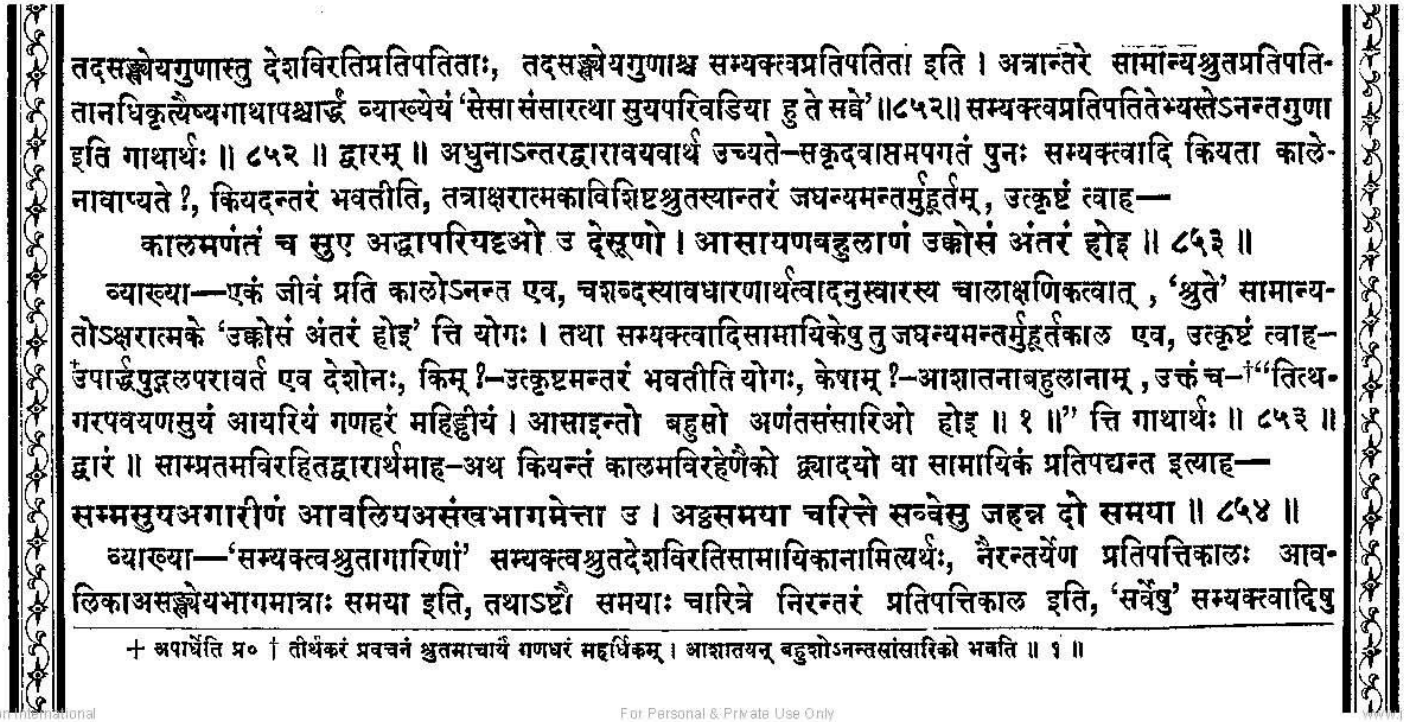

तदसङ्ख्येयगुणास्तु देशविरतिप्रतिपतिताः, तदसङ्ख्येयगुणाश्च सम्यक्त्वप्रतिपतिता इति । अत्रान्तरे सामान्यश्रुतप्रतिपतितानधिकृत्यैष्यगाथापश्चार्द्धं व्याख्येयं 'सेसा संसारत्था सुयपरिवडिया हु ते सव्वे' ॥८५२॥ सम्यक्त्वप्रतिपतितेभ्यस्तेऽनन्तगुणा इति गाथार्थः ॥ ८५२ ॥ द्वारम् ॥ अधुनाऽन्तरद्वारावयवार्थं उच्यते–सकृदवाप्तमपगतं पुनः सम्यक्त्वादि कियता कालेनावाप्यते ?, कियदन्तरं भवतीति, तत्राक्षरात्मकाविशिष्टश्रुतस्यान्तरं जघन्यमन्तर्मुहूर्तम्, उत्कृष्टं त्वाह—

कालमणंतं च सुए अद्धापरियट्टओ उ देसूणो । आसायणबहुलाणं उक्कोसं अंतरं होइ ॥ ८५३ ॥

व्याख्या—एकं जीवं प्रति कालोऽनन्त एव, चशब्दस्यावधारणार्थत्वादनुस्वारस्य चालाक्षणिकत्वात्, 'श्रुते' सामान्यतोऽक्षरात्मके 'उक्कोसं अंतरं होइ' त्ति योगः । तथा सम्यक्त्वादिसामायिकेषु तु जघन्यमन्तर्मुहूर्तकाल एव, उत्कृष्टं त्वाह–उपार्द्धपुद्गलपरावर्त एव देशोनः, किम् ?–उत्कृष्टमन्तरं भवतीति योगः, केषाम् ?–आशातनाबहुलानाम्, उक्तं च–†"तित्थगरपवयणसुयं आयरियं गणहरं महिड्ढीयं । आसाइन्तो बहुसो अणंतसंसारिओ होइ ॥ १ ॥" त्ति गाथार्थः ॥ ८५३ ॥ द्वारं ॥ साम्प्रतमविरहितद्वारार्थमाह–अथ कियन्तं कालमविरहेणैको द्व्यादयो वा सामायिकं प्रतिपद्यन्त इत्याह—

सम्मसुयअगारीणं आवलियअसंखभागमेत्ता उ । अट्ठसमया चरित्ते सव्वेसु जहन्न दो समया ॥ ८५४ ॥

व्याख्या—'सम्यक्त्वश्रुतागारिणां' सम्यक्त्वश्रुतदेशविरतिसामायिकानामित्यर्थः, नैरन्तर्येण प्रतिपत्तिकालः आवलिकाअसङ्ख्येयभागमात्राः समया इति, तथाऽष्टौ समयाः चारित्रे निरन्तरं प्रतिपत्तिकाल इति, 'सर्वेषु' सम्यक्त्वादिषु

+ अपार्धेति प्र० † तीर्थंकरं प्रवचनं श्रुतमाचार्यं गणधरं महर्धिकम् । आशातयन् बहुशोऽनन्तसांसारिको भवति ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

'जघन्यः' अविरहप्रतिपत्तिकालो द्वौ समयाविति गाथार्थः ॥ ८५४ ॥ तत्रास्मादेवाविरहद्वाराद् विरहकालः प्रतिपक्ष इति गम्यमानत्वादनुद्दिष्टोऽपि द्वारगाथायां प्रदर्श्यते—

सुयसम्म सत्तयं खलु विरयाविरईय होइ बारसगं। विरईए पन्नरसगं विरहियकालो अहोरत्ता ॥ ८५५ ॥

व्याख्या—श्रुतसम्यक्त्वयोरुत्कृष्टः प्रतिपत्तिविरहकालः 'सप्तकं खलु' इत्यहोरात्रसप्तकं, ततः परमवश्यं क्वचित् कश्चित् प्रतिपद्यत इति, जघन्यस्त्वेकसमय इति, 'विरताविरतेश्च भवति द्वादशकं' देशविरतेरुत्कृष्टः प्रतिपत्तिविरहकालोऽहोरात्रद्वादशकं भवति, जघन्यतस्तु त्रयः समया इति, 'विरतेः पञ्चदशकं विरहितकालः अहोरात्राणि' सर्वविरतेरुत्कृष्टः प्रतिपत्तिविरहकालोऽहोरात्रपञ्चदशकं, जघन्यतस्तु समयत्रयमेवेति गाथार्थः ॥ ८५५ ॥ साम्प्रतं भवद्वारमुच्यते–कियतो भवानेको जीवः सामायिकचतुष्टयं प्रतिपद्यत इति निदर्शयन्नाह—

सम्मत्तदेसविरई पलियस्स असंखभागमेत्ताओ। अट्ठ भवा उ चरित्ते अणंतकालं च सुयसमए ॥ ८५६ ॥

व्याख्या—सम्यक्त्वदेशविरतिमन्तः मतुबूलोपात् सम्यक्त्वदेशविरतास्तेषां तत्सामायिकद्वयं प्रतिपत्तिमङ्गीकृत्य भवानां प्रक्रान्तत्वात् क्षेत्रपल्योपमस्यासङ्ख्येयभागमात्रे यावन्तः प्रदेशास्तावन्त उत्कृष्टतः प्रतिपत्तिभवाः, जघन्यतस्त्वेकः, अष्टौ भवाः 'चारित्रे' चारित्रे विचार्ये, उत्कृष्टतस्त्वादानभवाः खल्वष्टौ, ततः सिध्यतीति, जघन्यतस्त्वेक एव,'अणंतकालं च सुयसमए' त्ति 'अनन्तकालः' अनन्तभवरूपस्तमनन्तकालमेव प्रतिपत्ता भवत्युत्कृष्टतः सामान्यश्रुतसामायिके, जघन्यस्त्वेकभवमेव, मरुदेवीवेति गाथार्थः ॥ ८५६ ॥ द्वारम् ॥ साम्प्रतमाकर्षद्वारमधिकृत्याह—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

तिण्ह सहस्सपुहुत्तं सयप्पुहुत्तं च होइ विरईए । एगभवे आगरिसा एवतिया होंति नायव्वा ॥ ८५७ ॥

व्याख्या—आकर्षणम् आकर्षः–प्रथमतया मुक्तस्य वा ग्रहणमित्यर्थः, तत्र त्रयाणां–सम्यक्त्वश्रुतदेशविरतिसामायिकानां सहस्रपृथक्त्वं, पृथक्त्वमिति द्विप्रभृतिरा नवभ्यः, शतपृथक्त्वं च भवति विरतेरेकभवे आकर्षा एतावन्तो भवन्ति ज्ञातव्या उत्कृष्टतः, जघन्यतस्त्वेक एवेति गाथार्थः ॥ ८५७ ॥

तिण्ह सहस्समसंखा सहसपुहुत्तं च होइ विरईए । णाणभवे आगरिसा एवइया होंति णायव्वा ॥ ८५८ ॥

व्याख्या—त्रयाणां–सम्यक्त्वश्रुतदेशविरतिसामायिकानां सहस्राण्यसङ्ख्येयानि, सहस्रपृथक्त्वं च भवति विरतेः, एतावन्तो नानाभवेष्वाकर्षाः । अन्ये पठन्ति–'दोण्ह सहस्समसंखा' तत्रापि श्रुतसामायिकं सम्यक्त्वसामायिकानान्तरीयकत्वादनुक्तमपि प्रत्येतव्यम्, अनन्ताश्च सामान्यश्रुते ज्ञातव्या इत्यक्षरार्थः । इयं भावना–त्रयाणां ह्येकभवे सहस्रपृथक्त्वमाकर्षाणामुक्तं, भवाश्च पल्योपमासङ्ख्येयभागसमयतुल्याः, ततश्च सहस्रपृथक्त्वं भवति तैर्गुणितं सहस्राण्यसङ्ख्येयानीति, सहस्रपृथक्त्वं चेत्थं भवति–विरतेः खल्वेकभवे शतपृथक्त्वमाकर्षाणामुक्तं, भवाश्चाष्टौ, ततश्च शतपृथक्त्वमष्टभिर्गुणितं सहस्रपृथक्त्वं भवतीत्यवयवार्थः ॥ ८५८ ॥ द्वारं ॥ स्पर्शनाद्वारमधुना, तत्रेयं गाथा—

सम्मत्तचरणसहिया सव्वं लोगं फुसे णिरवसेसं । सत्त य चोद्दसभागे पंच य सुयदेसविरईए ॥ ८५९ ॥

व्याख्या—'सम्यक्त्वचरणसहिताः' सम्यक्त्वचरणयुक्ताः प्राणिन उत्कृष्टतः सर्वं लोकं स्पृशन्ति, किं बहिर्व्याप्या ?,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

नेत्याह–'निरवशेषम्' असङ्ख्यातप्रदेशमपि, एते च केवलिसमुद्घातावस्थायामिति, जघन्यतस्त्वसङ्ख्येयभागमिति। तथा— 'सत्त य चोद्दसभागे पंच य सुयदेसविरईए' त्ति श्रुतसामायिकसहिताः सप्त चतुर्दशभागान् स्पृशन्ति, अनुत्तरसुरेष्विलिकागत्या समुत्पद्यमानाः, चशब्दात् पञ्च तमःप्रभायां देशविरत्या सहिताः पञ्च चतुर्दशभागान् स्पृशन्तीति, अच्युते उत्पद्यमानाः, चशब्दात् द्व्यादींश्चान्यत्रेति, अधस्तु ते न गच्छन्त्येव घण्टालालान्यायेनापि तं परिणाममपरित्यज्येति गाथार्थः ॥ ८५९ ॥ एवं क्षेत्रस्पर्शनोक्ता, साम्प्रतं भावस्पर्शनोच्यते–किं श्रुतादिसामायिकं? कियद्भिर्जीवैः स्पृष्टमित्याह—

सव्वजीवेहिं सुयं सम्मचरित्ताइं सव्वसिद्धेहिं। भागेहि असंखेज्जेहिं फासिया देसविरईओ ॥ ८६० ॥

व्याख्या—सर्वजीवैः सांव्यवहारिकराश्यन्तर्गतैः सामान्यश्रुतं स्पृष्टं, सम्यक्त्वचारित्रे सर्वसिद्धैः स्पृष्टे, तदनुभवमन्तरेण सिद्धत्वानुपपत्तेः, भागैरसङ्ख्येयैः सिद्धभागैः स्पृष्टा देशविरतिस्तु, इदमत्र हृदयं–सर्वसिद्धानां बुद्ध्याऽसङ्ख्येयभागीकृतानामसङ्ख्येयभागैर्भागोनैर्देशविरतिः स्पृष्टा, असङ्ख्येयभागेन तु न स्पृष्टा, यथा–मरुदेवास्वामिन्येति गाथार्थः ॥ ८६० ॥ द्वारम् ॥ इदानीं निरुक्तिद्वारं, चतुर्विधस्यापि सामायिकस्य निर्वचनं, क्रियाकारकभेदपर्यायैः शब्दार्थकथनं निरुक्तिः, तत्र सम्यक्त्वसामायिकनिरुक्तिमभिधित्सुराह—

सम्मदिट्ठि अमोहो सोही सब्भाव दंसणं बोही। अविवज्जओ सुदिट्ठित्ति एवमाई निरुत्ताइं ॥ ८६१ ॥

व्याख्या—सम्यक् इति प्रशंसार्थः, दर्शनं–दृष्टिः, सम्यग्–अविपरीता दृष्टिः–सम्यग्दृष्टिः, अर्थानामिति गम्यते,

* प्रतिप्रदेशव्याप्त्येत्यर्थः,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

मोहनं मोहः–वितथग्रहः न मोहः अमोहः–अवितथग्रहः, शोधनं–शुद्धिः मिथ्यात्वमलापगमात् सम्यक्त्वं शुद्धिः, सत्–जिनाभिहितं प्रवचनं तस्य भावः सद्भावः तस्य दर्शनम्–उपलम्भः सद्भावदर्शनमिति, बोधनं बोधिरित्यौणादिक इत्, परमार्थसम्बोध इत्यर्थः, अतस्मिंस्तदध्यवसायो विपर्ययः न विपर्ययः अविपर्ययः, तत्त्वाध्यवसाय इत्यर्थः, सुशब्दः प्रशंसायां, शोभना दृष्टिः सुदृष्टिरिति, एवमादीनि सम्यग्दर्शनस्य निरुक्तानीति गाथार्थः ॥ ८६१ ॥ श्रुतसामायिकनिरुक्तिप्रदर्शनायाऽऽह—

अक्खर सन्नी संमं सादियं खलु सपज्जवसियं च । गमियं अंगपविट्ठं सत्तवि एए सपडिवक्खा ॥ ८६२ ॥

व्याख्या—इयं च गाथा पीठे व्याख्यातत्वान्न विव्रियते ॥ देशविरतिसामायिकनिरुक्तिमाह—

विरयाविरई संवुडमसंवुडे बालपंडिए चेव । देसेक्कदेसविरई अणुधम्मो अगारधम्मो य ॥ ८६३ ॥

व्याख्या—विरमणं विरतं, भावे निष्ठाप्रत्ययः, न विरतिः–अविरतिः, विरतं चाविरतिश्च यस्यां निवृत्तौ सा विरताविरतिः, संवृतासंवृताः सावद्ययोगा यस्मिन् सामायिके तत् तथा, संवृतासंवृताः–स्थगितास्थगिताः परित्यक्तापरित्यक्ता इत्यर्थः, एवं बालपण्डितम्, उभयव्यवहारानुगतत्वाद्, देशैकदेशविरतिः प्राणातिपातविरतावपि पृथिवीकायाद्यविरतिर्गृह्यते, अणुधर्मो बृहत्साधुधर्मापेक्षया देशविरतिरिति, अगारधर्मश्चेति न गच्छन्तीत्यगाः–वृक्षास्तैः कृतमगारं–गृहं तद्योगादगारः–गृहस्थः तद्धर्मश्चेति गाथार्थः ॥ ८६३ ॥ सर्वविरतिसामायिकनिरुक्तिमुपदर्शयन्नाह—

सामाइयं समइयं सम्मावाओ समास संखेवो । अणवज्जं च परिण्णा पच्चक्खाणे य ते अट्ठ ॥ ८६४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सामायिक शब्दस्य पर्याया: कथानकं सहितेन कथयते

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

व्याख्या—'सामायिकम्' इति रागद्वेषान्तरालवर्ती समः मध्यस्थ उच्यते, '*अय गता' विति अयनम् †अयः–गमनमित्यर्थः, समस्य अयः समायः स एव विनयादिपाठात् स्वार्थिकठक्प्रत्ययोपादानात् सामायिकम्, एकान्तोपशान्तिगमनमित्यर्थः, समयिकं समिति सम्यक्शब्दार्थे उपसर्गः, सम्यगयः समयः–सम्यग् दयापूर्वकं जीवेषु गमनमित्यर्थः, समयोऽस्यास्तीति, 'अत इनि ठना (पा० ५–२–११५) विति ठन् समयिकं, सम्यग्वादः रागादिविरहः सम्यक् तेन तत्प्रधानं वा वदनं सम्यग्वादः, रागादिविरहेण यथावद् वदनमित्यर्थः, समासः 'असु क्षेपण' इति असनम् आसः–क्षेप इत्यर्थः, संशब्दः प्रशंसार्थः शोभनमसनं समासः, अपवर्गे गमनमात्मनः कर्मणो वा जीवात् †पदत्रयप्रतिपत्तिवृत्त्या क्षेपः समासः, 'संक्षेपः' संक्षेपणं संक्षेपः श्लोकाक्षरं सामायिकं महार्थं च द्वादशाङ्गपिण्डार्थत्वात्, अनवद्यं चेति अवद्यं पापमुच्यते नास्मिन्नवद्यमस्तीत्यनवद्यं सामायिकमिति, परिः–समन्ताज्ज्ञानं पापपरित्यागेन परिज्ञा सामायिकमिति, परिहरणीयं वस्तु वस्तु प्रति आख्यानं प्रत्याख्यानं च, त एते सामायिकपर्याया अष्टाविति गाथार्थः ॥ ८६४ ॥ एतेषामष्टानामप्यर्थानामनुष्ठातॄन् यथासङ्ख्येनाष्टावेव दृष्टान्तभूतान् महात्मनः प्रतिपादयन्नाह—

दमदंते मेयज्जे कालयपुच्छा चिलाय अत्तेयं । धम्मरुइ इला तेयलि सामाइए अट्ठुदाहरणा ॥ ८६५ ॥

व्याख्या—दमदन्तः मेतार्यः कालकपृच्छा चिलातः आत्रेयः धर्मरुचिः इला तेतलिः, सामायिकेऽष्टावुदाहरणानीति गाथासमुदायार्थः ॥ ८६५ ॥ अवयवार्थस्तु कथानकेभ्योऽवसेय इति, तत्र यथोद्देशं निर्देश इति सामायिकमर्थतो दमद-

* इण् गतौ इति प्र० + आयः प्र० † उपशमविवेकसंवररूपं.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

न्तानगारेण कृतमिति तच्चरितानुवर्णनमुपदेशार्थमद्यकालमनुष्याणां संवेगजननार्थं कथ्यते–हत्थिसीसए णगरे राया दमदंतो नाम, इओ य गयपुरे णगरे पंच पंडवा, तेसिं तस्स य वइरं, तेहिं तस्स दमदमंतस्स जरासंधमूलं रायगिहं गयस्स सो विसयो लूडितो दड्ढो य, अण्णदा दमदंतो आगओ, तेण हत्थिणापुरं रोहितं, ते भएण ण णिंति, तओ दमदंतेण ते भणिया–सियाला चेव सुण्णगविसए जहिच्छियं आहिंडह, जाव अहं जरासंधसगासं गओ ताव मम विसयं लुडेह, इदाणिं णिप्फिडह, ते ण णिंति ताहे सविसयं गओ। अण्णया णिविण्णकामभोगो पवइओ, तओ एगल्लविहारं पडिवण्णो विहरंतो हत्थिणापुरं गओ, तस्स बाहिं पडिमं ठिओ, जुहिट्ठिलेण अणुजत्ताणिग्गएण वंदिओ, पच्छा सेसेहिवि चउहि पंडवेहिं वंदिओ, ताहे दुज्जोधणो आगओ, तस्स मणुस्सेहिं कहियं जहा–एस सो दमदंतो, तेण सो मातुलिंगेण आहओ, पच्छा खंधावारेण एंतेण पत्थरं २ खिवंतेण पत्थरासीकओ, जुधिट्ठिलो नियत्तो पुच्छइ–एत्थ साहू आसि

---

१ हस्तिशीर्षे नगरे राजा दमदन्तो नाम, इतश्च गजपुरे नगरे पञ्च पाण्डवाः, तेषां तस्य च वैरं, तैस्तस्य दमदन्तस्य जरासन्धमूलं राजगृहं गतस्य स विषयो लुण्डितो दग्धश्च, अन्यदा दमदन्त आगतः, तेन हस्तिनागपुरं रुद्धं, ते भयेन न निर्यान्ति, ततो दमदन्तेन ते भणिताः–शृगाला इव शून्यविषये यथेच्छमाहिण्डध्वं, यावदहं जरासन्धसकाशं गतस्तावन्मम विषयं लुण्टयत, इदानीं निर्गच्छत, ते न निर्गच्छन्ति तदा स्वविषयं गतः। अन्यदा निर्विण्णकामभोगः प्रव्रजितः, तत एकाकिविहारं प्रतिपन्नो विहरन् हस्तिनागपुरं गतः, तस्मात् बहिः प्रतिमया स्थितः। युधिष्ठिरेणानुयात्रानिर्गतेन वन्दितः, पश्चात् शेषैरपि चतुर्भिः पाण्डवैर्वन्दितः, तदा दुर्योधन आगतः, तस्य मनुष्यैः कथितं–यथा एष स दमदन्तः, तेन स बीजपूरेणाहतः, पश्चात्स्कन्धावारेणागच्छता प्रस्तरं २ क्षिपता प्रस्तरराशीकृतः, युधिष्ठिरो निवृत्तः पृच्छति–साधुरत्रासीत्. * दमदमंतो प्र० + आहिंडिया प्र०

Jain Education International For Personal & Private Use Only jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

कहिं सो ?, लोएण कहियं–जहा एसो पत्थररासी दुज्जोहणेण कओ, ताहे सो अंबाडिओ, ते य अवणिया पत्थरा, तेल्लेण अब्भंगिओ खामिओ य। तस्स किर भगवओ दमदंतस्स दुज्जोहणे पंडवेसु य समो भावो आसि, एवं कातवं ॥ अमुमेवार्थं प्रतिपादयन्नाह भाष्यकारः—

निक्खंतो हत्थिसीसा दमदंतो कामभोगमवहाय। णवि रज्जइ रत्तेसुं दुट्ठेसु ण दोसमावज्ज ॥१५१॥ (भा०)

व्याख्या—निष्क्रान्तो हस्तिशीर्षात् नगराद्दमदन्तो राजा कामभोगानपहाय, कामः–इच्छा भोगाः–शब्दाद्यनुभवाः कामप्रतिबद्धा वा भोगाः कामभोगा इति, स च नापि रज्यते रक्तेषु न प्रीतिं करोति, अप्रीतेषु द्विष्टेषु न द्वेषमापद्यते, वर्तमाननिर्देशप्रयोजनं प्राग्वदिति गाथार्थः ॥ तथाहि–मुनयः खल्वेवम्भूता एव भवन्ति, तथा चाह—

वंदिज्जमाणा न समुक्कसंति, हीलिज्जमाणा न समुज्जलंति। दंतेण चित्तेण चरंति धीरा, मुणी समुग्घाइयरागदोसा

व्याख्या—वन्द्यमानाः 'न समुत्कर्षं' न समुत्कर्षं यान्ति, तथा हील्यमाना 'न समुज्वलन्ति' न कोपाग्निं प्रकटयन्ति, किं तर्हि?–'दान्तेन' उपशान्तेन चित्तेन चरन्ति धीराः मुनयः समुद्घातितरागद्वेषा इति गाथार्थः ॥ ८६६ ॥ तथा

तो समणो जइ सुमणो भावेण य जइ ण होइ पावमणो। सयणे य जणे य समो समो य माणावमाणेसुं

व्याख्या—ततः 'समणो'त्ति प्राकृतशैल्या यदि सुमनाः, शोभनं धर्मध्यानादिप्रवृत्तं मनोऽस्येति सुमनाः समणोत्ति

१ क सः ?, लोकेन कथितं–यथैष प्रस्तरराशिर्दुर्योधनेन कृतः, तदा स निर्भर्त्सितः, ते चापनीताः प्रस्तराः, तैलेनाभ्यङ्गितः क्षमितश्च। तस्य किल भगवतो दमदन्तस्य दुर्योधने पाण्डवेषु च समभाव आसीत्, एवं कर्त्तव्यं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

भण्यंते, किमित्थम्भूत एव ?, नेत्याह—'भावेन च' आत्मपरिणामलक्षणेन यदि न भवति पापमनाः–*अवस्थितमना अपीत्यर्थः अथवा भावेन च यदि न भवति पापमनाः, निदानप्रवृत्तपापमनोरहित इति भावना, तथा स्वजने च मात्रादिके जने चान्यस्मिन् समः–तुल्यः, समश्च मानापमानयोरिति गाथार्थः ॥ ८६७ ॥

णत्थि य सि कोइ वेसो पिओ व सव्वेसु चेव जीवेसु । एएण होइ समणो एसो अण्णोवि पज्जाओ ॥ ८६८ ॥

व्याख्या—नास्ति च 'से' तस्य कश्चिद् द्वेष्यः प्रियो वा सर्वेष्वेव जीवेषु, एतेन भवति समणः, सम् अणति–गच्छतीति समणः, एषोऽन्योऽपि पर्याय इति गाथार्थः ॥ द्वारम् ॥ इदानीं समयिकं, तत्र कथानकम्—

साएते णगरे चंडवडंसओ राया, तस्स दुवे पत्तीओ–सुदंसणा पियदंसणा य, तत्थ सुदंसणाए दुवे पुत्ता–सागरचंदो मुणिचंदो य पियदंसणाएवि दो पुत्ता–गुणचंदो बालचंदो य, सागरचंदो जुवराया, मुणिचंदस्स उज्जेणी दिण्णा कुमारभुत्तीए । इओ य चंडवडंसओ राया माहमासे पडिमं ठिओ वासघरे जाव दीवगो जलइत्ति, तस्स सेज्जावाली चिंतेइ–दुक्खं सामी अंधतमसे अच्छिहिति, ताए बितिए जामे विज्झायंते दीवगे तेलं छूढं, सो ताव जलिओ जाव अद्धरत्तो, ताहे

१ साकेते नगरे चन्द्रावतंसको राजा, तस्य द्वे पत्न्यौ–सुदर्शना प्रियदर्शना च, तत्र सुदर्शनाया द्वौ पुत्रौ–सागरचन्द्रो मुनिचन्द्रश्च, प्रियदर्शनाया अपि द्वौ पुत्रौ–गुणचन्द्रो बालचन्द्रश्च, सागरचन्द्रो युवराजः, मुनिचन्द्रायोज्जयिनी कुमारभुक्त्यां दत्ता । इतश्च चन्द्रावतंसको राजा माघमासे प्रतिमया स्थितो वासगृहे यावद्दीपो ज्वलतीति, तस्य शय्यापालिका चिन्तयति–दुःखं स्वामी अन्धतमसे स्थास्यति, तथा द्वितीये यामे विध्यायति दीपे तैलं क्षिप्तं, स तावत्प्रज्वलितो यावदर्धरात्रं, तदा * अनवस्थित० प्र०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पुणोवि तेलं छूढं ताव जलिओ जाव पच्छिमपहरो, तत्थवि छूढं, ततो राया सुकुमारो विहायंतीए रयणीए वेयणाभिभूओ कालगओ, पच्छा सागरचंदो राया जाओ। अण्णया सो माइसवत्तिं भणइ–गेण्ह रज्जं पुत्ताण ते भवउत्ति, अहं पव्वयामि, सा णेच्छइ एएण रज्जं आयत्तंति, तओ सा अतिज्जाणनिज्जाणेसु रायलच्छीए दिप्पंतं पासिऊण चिंतेइ–मए पुत्ताण रज्जं दिज्जंतं ण इच्छियं, तेवि एवं सोभन्ता, इयाणीवि णं मारेमि, छिद्दाणि मग्गइ, सो य छूहालू, तेण सूतस्स संदेसओ दिण्णो, एत्तो चेव पुव्वण्हियं पट्टविज्जासि, जइ विरावेमि, सूएण सीहकेसरओ मोदओ चेडीए हत्थेण विसज्जिओ, पियदंसणाए दिट्ठो, भणइ–पेच्छामि णं ति, तीए अप्पितो, पुव्वं णाए विसमविखया हत्था कया, तेहिं सो विसेण मक्खिओ, पच्छा भणइ–अहो सुरभी मोयगोत्ति पडिअप्पिओ, चेडीए ताए गंतूण रण्णो समप्पिओ, ते य दोवि कुमारा रायसगासे अच्छंति, तेण चिंतियं–किह अहं एतेहिं छुहाइएहिं खाइस्सं?, तेण दुहा काऊण तेसिं दोण्हवि सो दिण्णो, ते खाइउमारद्धा,

१ पुनरपि तैलं क्षिप्तं तावज्ज्वलितो यावत्पश्चिमप्रहरः, तदापि क्षिप्तं, ततो राजा सुकुमालो विभातायां रजन्यां वेदनाभिभूतः कालगतः, पश्चात्सागरचन्द्रो राजा जातः। अन्यदा स मातृसपत्नीं भणति–गृहाण राज्यं पुत्रयोस्ते भवत्विति, अहं प्रव्रजामि, सा नेच्छति एतेन राज्यमायत्तमिति, ततः सा अतियाननिर्याणयोः राजलक्ष्म्या दीप्यमानं दृष्ट्वा चिन्तयति–मया पुत्रयो राज्यं दीयमानं नेष्टं, तावप्येवमशोभिष्यतः, इदानीमप्येनं मारयामि छिद्राणि मार्गयति, स च क्षुधार्तः, तेन सूदाय संदेशो दत्तः, अत्रैव पौर्वाह्णिकं प्रस्थापयेर्यद् भक्षयामि, सूदेन सिंहकेशरिको मोदकश्चेट्या हस्तेन विसृष्टः, प्रियदर्शनया दृष्टः, भणति–, प्रेक्षे तमिति, तयाऽर्पितः, पूर्वमनया विषप्रक्षितौ हस्तौ कृतौ, ताभ्यां स विषेण भक्षितः, पश्चात् भणति–अहो सुरभिर्मोदक इति प्रत्यर्पितः, चेट्या तया गत्वा राज्ञे समर्पितः, तौ च द्वावपि कुमारौ राजसकाशे तिष्ठतः, तेन चिन्तितं–कथमहमेतयोः क्षुधार्त्तयोः खादयामि?, तेन द्विधा कृत्वा ताभ्यां द्वाभ्याम् स दत्तः तौ खादितुमारब्धौ,

॥३६६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

जाव विसवेगा आगंतुं पवत्ता, राइणा संभंतेण वेज्जा सद्दाविता, सुवण्णं पाइया, सज्जा जाया, पच्छा दासी सद्दाविया, पुच्छिया भणइ–ण केणवि दिट्ठो, णवरं एयाणं मायाए परामुट्ठो, सा सद्दाविया भणिया–पावे ! तदा णेच्छसि रज्जं दिज्जंतं, इयाणिमिमि णाहं ते अकयपरलोयसंबलो संसारे छूढोहोंतोत्ति तेसि रज्जं दाऊण पव्वइओ। अण्णया संघाडओ साहूण उज्जेणीओ आगओ, सो पुच्छिओ–तत्थ णिरुवसग्गं?, ते भणंति–णवरं रायपुत्तो पुरोहियपुत्तो य बाहिन्ति पासंडत्थे साहूणो य, सो गओ अमरिसेणं तत्थ, विस्सामिओ साहूहिं, ते य संभोइया साहू, भिक्खावेलाए भणिओ –आणिज्जउ, भणइ–अत्तलाभिओ अहं, णवरं ठवणकुलाणि साहह, तेहिं से चेल्लओ दिण्णो, सो तं पुरोहियघरं दंसित्ता पडिगओ, इमोवि तत्थेव पइट्ठो वडुवडुएणं सद्देणं धम्मलाभेइ, अंतउरिआओ निग्गयाओ हाहाकारं करेंतीओ, सो वडुवडुएणं सद्देणं भणइ–किं एयं साविएत्ति, ते णिग्गया बाहिं बारं बंधंति, पच्छा भणंति–भगवं! पणच्चसु, सो पडिग्गहं ठवेऊण पणच्चिओ,

---

१ यावत् विषवेगा आगन्तुं प्रवृत्ताः, राज्ञा संभ्रान्तेन वैद्याः शब्दिताः, सुवर्णं पायितौ, सज्जौ जातौ, पश्चाद्दासी शब्दिता, पृष्टा भणति–न केनापि दृष्टः नवरमेतयोर्मात्रा परामृष्टः, सा शब्दिता भणिता–पापे ! तदा नैषीद्राज्यं दीयमानम्, इदानीमनेनाहं त्वयाऽकृतपरलोकशम्बलः संसारे क्षिप्तोऽभविष्यदिति तयो राज्यं दत्त्वा प्रव्रजितः। अन्यदा संघाटकः साध्वोरुज्जयिनीत आगतः, स पृष्टस्तत्र निरुपसर्गं, तौ भणतः–नवरं राजपुत्रः पुरोहितपुत्रश्च बाधेते पाषण्डस्थान् साधूंश्च, स गतोऽमर्षेण तत्र, साधुभिर्विश्रमितः, ते च सांभोगिकाः साधवो भिक्षावेलायां भणितः आनीयतां?, भणति–आत्मलब्धिकोऽहं, नवरं स्थापनाकुलानि कथयत, तैस्तस्मै क्षुल्लको दत्तः, स तत्पुरोहितगृहं दर्शयित्वा प्रतिगतः, अयमपि तत्रैव प्रविष्टो बृहता बृहता शब्देन धर्मलाभयति, अन्तःपुर्यो निर्गता हाहाकारं कुर्वत्यः, स बृहता बृहता शब्देन भणति–किमेतत् श्राविके? इति, तौ निर्गतौ बहिर्द्वारं बद्धीतः, पश्चात् भणतः–भगवन्! प्रनर्त्तय, स प्रतिग्रहं स्थापयित्वा प्रनर्त्तितः,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

ते[1] ण याणंति वाएउं, भणंति–जुज्झामो, दोवि एक्कसरा ते आगया, मम्मेहिं आहया, जहा जंताणि तहा खलखलाविआ, तओ णिसिट्ठं हणिऊण बाराणि उग्घाडित्ता गओ, उज्जाणे अच्छति, राइणो कहियं, तेण मग्गाविओ, साहू भणंति–पाहूणओ आगओ, ण याणामो, गवेसंतेहिं उज्जाणे दिट्ठो, राया गओ खामिओ य, णेच्छइ मोत्तुं, जइ पव्वयंति तो मुयामि, ताहे पुच्छिया, पडिसुयं, एगत्थ गहाय चालिया जहा सट्ठाणे ठिया संधिणो, लोयं काऊण पव्वाविया, रायपुत्तो सम्मं करेति मम पित्तियत्तोत्ति, पुरोहियसुयो दुगुंछइ–अम्हे एएण कवडेण पव्वाविया, दोवि मरिऊण देवलोगं गया, संगारं करेंति–जो पढमं चयइ तेण सो संबोहेयव्वो, पुरोहियसुओ चइऊण तीए दुगुंछाए रायगिहे मेईए पोट्टे आगओ, तीसे सिट्ठिणी वयंसिया, सा किह जाया?, सा मंसं विक्किणइ, ताए भण्णइ–मा अण्णत्थ हिंडाहि, अहं सव्वं किणामि, दिवसे २ आणेइ, एवं तासिं पीई घणा जाया, तेसिं चेव घरस्स †समोसीइयाणि ठियाणि, सा य सेट्ठिणी ‡णिंदू, ताहे मेईए रहस्सियं

॥३६७॥

१ तौ न जानीतो वादयितुं, भणतः–युध्यावहे, द्वावपि तौ सहैवागतौ, मर्मस्वाहतौ, यथा यन्त्राणि तथा अस्थिरसन्धिकौ कृतौ, ततो निसृष्टं हत्वा द्वाराणि उद्घाट्य गतः, उद्याने तिष्ठति, राज्ञे कथितं, तेन मार्गितः, साधवो भणन्ति–प्राघूर्णक आगतः, न जानीमः, गवेषयद्भिरुद्याने दृष्टः, राजा गतः क्षामितश्च, नेच्छति मोक्तुं, यदि प्रव्रजतस्तदा मुञ्चामि, तदा पृष्टौ, प्रतिश्रुतम्, एकत्र गृहीत्वा चालितौ यथा स्वस्थाने संधयः स्थिताः, लोचं कृत्वा प्रव्राजितौ, राजपुत्रः सम्यक् करोति–मम पैतृक (पितृव्यः) इति, पुरोहितसुतो जुगुप्सते–आवामेतेन कपटेन प्रव्राजितौ, द्वावपि मृत्वा देवलोकं गतौ, सङ्केतं कुरुतः यः प्रथमं च्यवते तेन स संबोद्धव्यः, पुरोहितसुतश्च्युत्वा तया जुगुप्सया राजगृहे मातङ्ग्या उदरे आगतः, तस्याः श्रेष्ठिनी वयस्या, सा कथं जाता?, सा मांसं विक्रीणाति, तया भण्यते–माऽन्यत्र हिण्डिष्ठाः अहं सर्वं क्रीणिष्यामि, दिवसे २ आनयति, एवं तयोः प्रीतिर्घना जाता, तेषामेव गृहस्य समवसृतानि स्थितानि, सा च श्रेष्ठिनी–निन्दूः, तदा मातङ्ग्या राहस्यिकमेव. * संगरं प्र० + आयातो प्र० † प्रातिवेश्मिकानि ‡ मृतापत्यप्रसूः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

चेव तीसे पुत्तो दिण्णो, सेट्ठिणीए धूया मइया जाया, सा मेईए गहिया, पच्छा सा सेट्ठिणी तं दारगं मेईए पाएसु पाडेति, तुब्भपभावेण जीवउत्ति, तेण से नामं कयं मेयज्जोत्ति, संवड्ढिओ, कलाओ गाहिओ, संबोहिओ देवेण, ण संबुज्झइ, ताहे अट्ठण्हं इब्भकण्णगाणं एगदिवसेण पाणी गेण्हाविओ, सिबियाए णगरिं हिंडइ, देवोवि मेयं अणुपविट्ठो रोइउमारद्धो, जइ ममवि धूया जीवंतिया तीसेवि अज्ज विवाहो कओ होंतो, भत्तं च मेताण कयं होंतं, ताहे ताए मेईए जहावत्तं सिट्ठं, तओ रुट्ठो देवाणुभावेण य ताओ सिबियाओ पाडिओ तुमं असरिसीओ परिणेसित्ति खड्डाए छूढो, ताहे देवो भणइ–किह ?, सो भणइ–अवण्णो, भणइ–एत्तो मोएहि किंचिकालं, अच्छामि बारस वरिसाणि, तो भणइ–किं करेमि ?, भणइ–रण्णो धूयं दवावेहि, तो सव्वाओ अकिरियाओ ओहाडियाओ भविस्संति, ताहे से छगलओ दिण्णो, सो रयणाणि वोसिरइ, तेण रयणाण थालं भरियं, तेण पिया भणिओ रण्णो धूयं वरेहि, रयणाणं थालं भरेत्ता गओ, किं

---

१ तस्मै पुत्रो दत्तः, श्रेष्ठिन्या दुहिता मृता जाता, सा मातङ्ग्या गृहीता, पश्चात्सा श्रेष्ठिनी दारकं तं मातङ्ग्याः पादयोः पातयति, तव प्रभावेण जीवितेति, तेन तस्य नाम कृतं मेतार्यं (मातङ्ग्यात्मज) इति, संवृद्धः, कला ग्राहितः, संबोधितो देवेन, न संबुध्यते, तदाऽष्टानामिभ्यकन्यानामेकदिवसेन पाणीग्राहितः, शिबिकया नगर्यां हिण्डते, देवोऽपि मातङ्गमनुप्रविष्टो रोदितुमारब्धः, यदि ममापि दुहिताऽजीविष्यत् तस्या अपि विवाहः अद्यकृतोऽभविष्यत्, भक्तं च मेतानां कृतमभविष्यत्तदा तया मेल्या यथावृत्तं शिष्टं, ततो रुष्टो देवानुभावेन च तस्याः शिबिकातः पातितः त्वमसदृशः परिणयसि इति गर्तायां क्षिप्तः, तदा देवो भणति–कथं ?, स भणति–अवर्णः, भणति–इतो मोचय कञ्चित्कालं, तिष्ठामि द्वादश वर्षाणि, ततो भणति–किं करोमि ?, भणति–राज्ञो दुहितरं दापय, तत् सर्वा अक्रिया अपस्फेटिता भविष्यन्ति, तदा तस्मै छगलको दत्तः, स रत्नानि व्युत्सृजति, तेन रत्नानां स्थालो भृतः, तेन पिता भणितः–राज्ञो दुहितरं वृणुष्व, रत्नैः स्थालं भृत्वा गतः, किं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

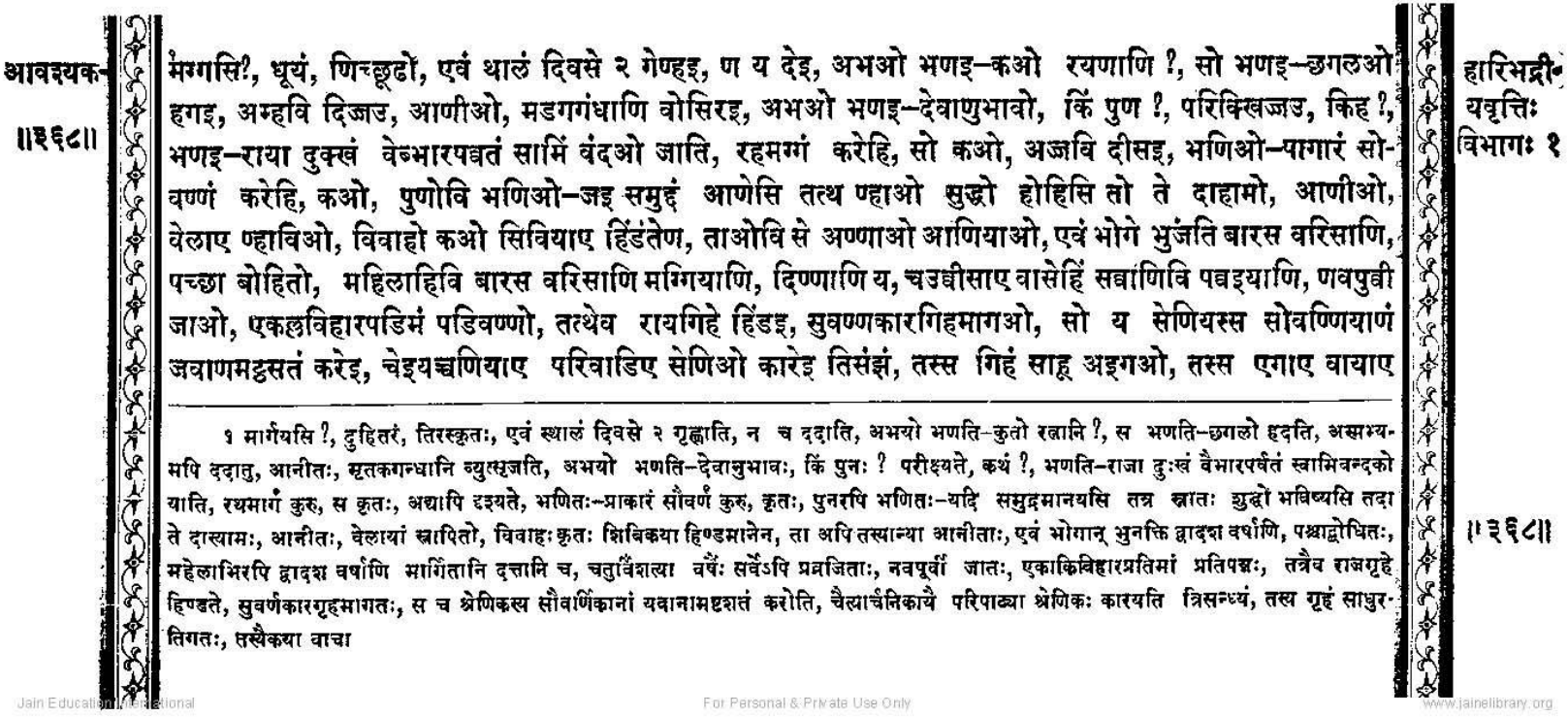

आवश्यक- ॥३६८॥

मग्गसि?, धूयं, णिच्छूढो, एवं थालं दिवसे २ गेण्हइ, ण य देइ, अभओ भणइ–कओ रयणाणि ?, सो भणइ–छगलओ हगइ, अम्हवि दिज्जउ, आणीओ, मडगगंधाणि वोसिरइ, अभओ भणइ–देवाणुभावो, किं पुण ?, परिक्खिज्जउ, किह ?, भणइ–राया दुक्खं वेब्भारपव्वतं सामिं वंदओ जाति, रहमग्गं करेहि, सो कओ, अज्जवि दीसइ, भणिओ–पागारं सोवण्णं करेहि, कओ, पुणोवि भणिओ–जइ समुद्दं आणेसि तत्थ ण्हाओ सुद्धो होहिसि तो ते दाहामो, आणीओ, वेलाए ण्हाविओ, विवाहो कओ सिवियाए हिंडंतेण, ताओवि से अण्णाओ आणियाओ, एवं भोगे भुंजंति बारस वरिसाणि, पच्छा बोहितो, महिलाहिंवि बारस वरिसाणि मग्गियाणि, दिण्णाणि य, चउवीसाए वासेहिं सव्वाणिवि पव्वइयाणि, णवपुव्वी जाओ, एकल्लविहारपडिमं पडिवण्णो, तत्थेव रायगिहे हिंडइ, सुवण्णकारगिहमागओ, सो य सेणियस्स सोवण्णियाणं जवाणमट्ठसतं करेइ, चेइयच्चणियाए परिवाडिए सेणिओ कारेइ तिसंझं, तस्स गिहं साहू अइगओ, तस्स एगाए वायाए

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

१ मार्गयसि ?, दुहितरं, तिरस्कृतः, एवं स्थालं दिवसे २ गृह्णाति, न च ददाति, अभयो भणति–कुतो रत्नानि ?, स भणति–छगलो हदति, अस्माभ्यमपि ददातु, आनीतः, मृतकगन्धानि व्युत्सृजति, अभयो भणति–देवानुभावः, किं पुनः ? परीक्ष्यते, कथं ?, भणति–राजा दुःखं वैभारपर्वतं स्वामिवन्दको याति, रथमार्गं कुरु, स कृतः, अद्यापि दृश्यते, भणितः–प्राकारं सौवर्णं कुरु, कृतः, पुनरपि भणितः–यदि समुद्रमानयसि तत्र स्नातः शुद्धो भविष्यसि तदा ते दास्यामः, आनीतः, वेलायां स्नापितो, विवाहः कृतः शिबिकया हिण्डमानेन, ता अपि तस्यान्या आनीताः, एवं भोगान् भुनक्ति द्वादश वर्षाणि, पश्चाद्बोधितः, महेलाभिरपि द्वादश वर्षाणि मार्गितानि दत्तानि च, चतुर्विंशत्या वर्षैः सर्वैऽपि प्रव्रजिताः, नवपूर्वी जातः, एकाकिविहारप्रतिमां प्रतिपन्नः, तत्रैव राजगृहे हिण्डते, सुवर्णकारगृहमागतः, स च श्रेणिकस्य सौवर्णिकानां यवानामष्टशतं करोति, चैत्यार्चनिकायै परिपाट्या श्रेणिकः कारयति त्रिसन्ध्यं, तस्य गृहं साधुरतिगतः, तस्यैकया वाचा ॥३६८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

भिक्खा ण णीणिया, सो य अइगओ, ते य जवा कोंचएण खाइया, सो आगओ ण पेच्छइ, रण्णो य चेतियच्चणियवेला ढुक्कइ, अज्ज †अट्ठिखंडाणि कीरामित्ति, साधुं संकइ, पुच्छइ, तुण्हिक्को अच्छइ, ताहे सीसावेढेण बंधति, भणिओ य–साह जेण गहिया, *तेण ताहे आवेढिओ जहा अच्छीणि भूमीए पडियाणि, कोंचओ य दारुं फोडेंतेण सिलिंकाए आहओ गलए, तेण वन्ता, लोगो भणइ–पाव ! एए ते जवा, सोवि भगवं कालगओ सिद्धो य, लोगो आगओ, दिट्ठो मेत्तज्जो, रण्णो कहियं, वज्झाणि आणत्ताणि, दारं ठइत्ता पव्वइयाणि भणंति–सावग ! धम्मेण वड्ढाहि, मुक्काणि, भणइ–जइ उप्पव्वयह तो भे कविल्लीए कड्ढेमि, एवं समइयं अप्पए य परे य कायव्वं ॥ तथा च कथानकार्थैकदेशप्रतिपादनायाह—

जो कोंचगावराहे पाणिदया कोंचगं तु णाइक्खे । जीवियमणपेहंतं मेयज्जरिसिं णमंसामि ॥ ८६९ ॥

व्याख्या—यः क्रौञ्चकापराधे सति प्राणिदयया 'क्रोञ्चकं तु' क्रोञ्चकमेव नाचष्टे, अपितु स्वप्राणत्यागं व्यवसितः, तमनुकम्पया जीवितमनपेक्षमाणं मेतार्यऋषिं नमस्य इति गाथार्थः ॥ ८६९ ॥

णिप्फेडियाणि दोण्णिवि सीसावेढेण जस्स अच्छीणि । ण य संजमाउ चलिओ मेयज्जो मंदरगिरिव्व ॥८७०॥

१ भिक्षा नानीता, स चातिगतः, ते च यवाः क्रौञ्चेन खादिताः, स आगतो न प्रेक्षते, राज्ञश्च चैत्यार्चनिकावेला ढौकते, अद्यास्थिखण्डानि क्रिये इति, साधुं शङ्कते, पृच्छति, तूष्णीकस्तिष्ठति, तदा शिरआवेष्टनेन बध्नाति, भणितश्च–कथय येन गृहीताः, तथाऽऽवेष्टितो यथाऽक्षिणी भूमौ पतिते, क्रौञ्चश्च दारु पाटयता शलाकयाऽऽहतो गले, तेन वान्ताः, लोको भणति–पाप ! एते ते यवाः, सोऽपि भगवान् कालगतः सिद्धश्च, लोक आगतः, दृष्टो मेतार्यः, राज्ञः कथितं वध्या आज्ञप्ताः, द्वारं स्थगित्वा प्रव्रजिता भणन्ति–श्रावक ! धर्मेण वर्धस्व, मुक्ताः, भणंति–यदि उत्प्रव्रजत तदा भवतः कटाहे क्षथयिष्यामि । एवं समयिकमात्मनि परस्मिंश्च कर्त्तव्यम् । † अट्ठ प्र० * केण प्र० + ताहे प्र०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

व्याख्या—'निष्कासिते' भूमौ पातिते द्वे अपि शिरोबन्धनेन यस्याक्षिणी, एवमपि कदर्थ्यमानोऽनुकम्पया 'न च' नैव संयमाच्चलितो यस्तं मेतार्यऋषिं नमस्य इति गाथाभिप्रायः ॥८७०॥ द्वारम् ॥ इदानीं सम्यग्वादस्तत्र कथानकम्—तुरुविणीए णयरीए जियसत्तू राया, तत्थ भद्दा धिज्जाइणी, पुत्तो से दत्तो, मामगो से अज्जकालगो तस्स दत्तस्स सोअ पव्वइओ। सो दत्तो जूयपसंगी मज्जपसंगी य, उल्लगिउमारद्धो, पहाणो दंडो जाओ, कुलपुत्तए भिंदित्ता राया धाडिओ, सो य राया जाओ, जण्णा णेण सुबहू इट्ठा। अण्णता तं मामगं पेच्छइ, अह भणइ–तुट्ठो धम्मं सुणेमित्ति, जण्णाण किं फलं?, सो भणइ–किं धम्मं पुच्छसि?, धम्मं कहेइ, पुणोवि पुच्छइ, णरगाणं पंथं पुच्छसि?, अधम्मफलं साहइ, पुणोवि पुच्छइ, असुभाणं कम्माणं उदयं पुच्छसि?, तं पि परिकहेइ, पुणोवि पुच्छइ, ताहे भणइ–णिरया फलं जण्णस्स, कुद्धो भणइ–को पच्चओ?, जहा तुमं सत्तमे दिवसे सुणयकुंभीए पच्चिहिसि, को पच्चओ?, जहा तुज्झ सत्तमे दिवसे सण्णा मुहं अइगच्छिहिति, रुट्ठो भणइ–तुज्झ को मच्चू?, भणइ–अहं सुइरं कालं पव्वज्जं काउं देवलोगं गच्छामि, रुट्ठो भणइ–रुंभह, ते दंडा निव्विण्णा, तेहिं सो चेव राया आवाहिओ–

१ तुरुमिण्यां नगर्यां जितशत्रू राजा, तत्र भद्रा धिग्जातीया, पुत्रस्तस्या दत्तः, मातुलोऽथार्यकालकस्तस्य दत्तस्य, स च प्रव्रजितः। स च दत्तो द्यूतप्रसङ्गी मद्यप्रसङ्गी च, अवलगितुमारब्धः, प्रधानो दण्डिको जातः, कुलपुत्रान् भेदयित्वा राजा निष्काशितः, स च राजा जातः, यज्ञा अनेन सुबहव इष्टाः। अन्यदा मातुलं प्रेक्षते, अथ भणति–तुष्टो धर्मं श्रृणोमीति, यज्ञानां किं फलम्?, स भणति–किं धर्मं पृच्छसि?, धर्मं कथयति, पुनरपि पृच्छति, नरकाणां पन्थानं पृच्छसि?, अधर्मफलं कथयति, पुनरपि पृच्छति, अशुभानां कर्मणामुदयं पृच्छसि?, तमपि परिकथयति, पुनरपि पृच्छति, तदा भणति–नरकाः फलं यज्ञस्य, क्रुद्धो भणति–कः प्रत्ययः?, यथा त्वं सप्तमदिवसे श्वकुम्भ्यां पक्ष्यसे, कः प्रत्ययः?, यथा तव सप्तमे दिवसे संज्ञा मुखमतिगमिष्यति, रुष्टो भणति–तव कथं मृत्युः?, भणति–अहं सुचिरं कालं प्रव्रज्यां कृत्वा देवलोकं गमिष्यामि, रुष्टो भणति–रुन्द्ध, ते दण्डिका निर्विण्णाः, तैः स चैव राजाऽऽहूतः—* कथा प्र०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

एहि जाव एयं ते बंधित्ता अप्पेमो, सो य पच्छन्नो अच्छइ, तस्स दिवसा विस्सरिया, सत्तमे दिवसे रायपथं सोहावेइ, मणुस्सेहि य रक्खावेइ। एगो य देवकुलिगो पुप्फकरंडगहत्थगओ पच्चूसे पविसइ, सन्नाडो" वोसरित्ता पुप्फेहि ओहाडेइ, रायावि सत्तमे दिवसे आसचडगरेणं णीति, जामि तं समणयं मारेमि, जाति, वोलंतो जाव अण्णेणं आसकिसोरेणं सह पुप्फेहि उक्खिविया खुरेणं मुहं सण्णा अइगआ, तेण णातं जहा मारेज्जामि, ताहे दंडाण अणापुच्छाए णियत्तिउमारद्धो ते जाणंति दंडा–नूणं रहस्सं भिण्णं, जाव घरं ण पवेसइ ताव गेण्हामो, गहिओ, इयरो य राया आणीओ, ताहे तेण कुंभीए सुणए छुभित्ता बारं बद्धं, हेट्ठा अग्गी जालिओ, ते सुणया तावित्र्जन्ता तं खंडाखंडेहिं छिंदंति। एवं सम्मावाओ कायवो, जहा कालगज्जेणं ॥ तथा चामुमेवार्थमभिधित्सुराह—

दत्तेण पुच्छिओ जो जण्णफलं कालओ तुरुमिणीए। समयाए आहिएणं संमं वुइयं भदंतेणं ॥ ८७१ ॥

व्याख्या—'दत्तेन' धिग्जातिनृपतिना पृष्टो यो यज्ञफलं कालको मुनिस्तुरुमिण्यां नगर्यां तेन 'समतयाऽऽहितेन'

---

१ एहि यावदेनं तुभ्यं बद्धाऽर्पयामः, स च प्रच्छन्नस्तिष्ठति, तस्य दिवसा विस्मृताः, सप्तमे दिवसे राजपथं शोधयति, मनुष्यैश्च रक्षयति। एकश्च देवकुलिकःहस्तगतपुष्पकरण्डकः प्रत्यूषसि प्रविशति, संज्ञाकुलो व्युत्सृज्य पुष्पैराच्छादयति, राजाऽपि सप्तमे दिवसे अश्वसमूहेन निर्गच्छति, यामि तं श्रमणकं मारयामि, याति, व्यतिव्रजन् यावदन्येनाश्वकिशोरेण सह पुष्पैरुत्क्षिप्ता खुरेण मुखं संज्ञाऽतिगता, तेन ज्ञातं यथा मार्ये, तदा दण्डिकाननापृच्छय निवर्तितुमारब्धः, ते जानन्ति दण्डिकाः–नूनं रहस्यं भिन्नं, यावद्गृहं न प्रविशति तावद्गृहीमः, गृहीतः, इतरश्च राजा आनीतः, तदा तेन कुम्भ्यां शुनः क्षिप्त्वा द्वारं बद्धम्, अधस्तादग्निर्ज्वालितः, ते श्वानस्ताप्यमानास्तं खण्डशश्छिन्दन्ति। एवं सम्यग्वादः कर्त्तव्यः, यथा कालकार्येण * हत्थो प्र० ॥ पोडो प्र०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

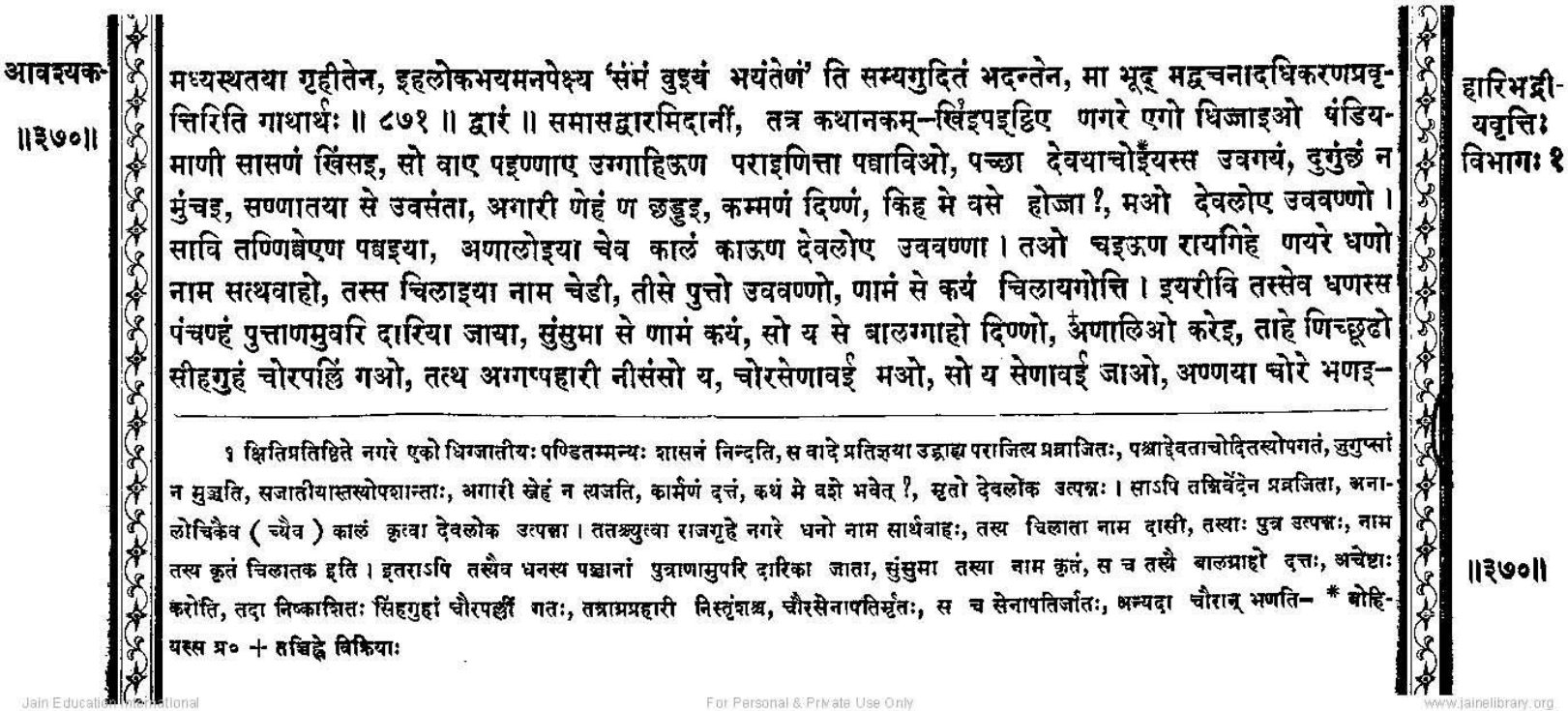

आवश्यक- ॥३७०॥

मध्यस्थतया गृहीतेन, इहलोकभयमनपेक्ष्य 'संमं वुइयं भयंतेणं' ति सम्यगुदितं भदन्तेन, मा भूद् मद्वचनादधिकरणप्रवृत्तिरिति गाथार्थः ॥ ८७१ ॥ द्वारं ॥ समासद्वारमिदानीं, तत्र कथानकम्–खिइपइट्ठिए णगरे एगो धिज्जाइओ पंडियमाणी सासणं खिंसइ, सो वाए पइण्णाए उग्गाहिऊण पराइणित्ता पव्वाविओ, पच्छा देवयाचोइँयस्स उवगयं, दुगुंछं न मुंचइ, सण्णातया से उवसंता, अगारी णेहं ण छड्डुइ, कम्मणं दिण्णं, किह मे वसे होज्जा ?, मओ देवलोए उववण्णो। सावि तण्णिव्वेएण पव्वइया, अणालोइया चेव कालं काऊण देवलोए उववण्णा। तओ चइऊण रायगिहे णयरे धणो नाम सत्थवाहो, तस्स चिलाइया नाम चेडी, तीसे पुत्तो उववण्णो, णामं से कयं चिलायगोत्ति। इयरीवि तस्सेव धणस्स पंचण्हं पुत्ताणमुवरि दारिया जाया, सुंसुमा से णामं कयं, सो य से बालग्गाहो दिण्णो, अणालिओ करेइ, ताहे णिच्छूढो सीहगुहं चोरपल्लिं गओ, तत्थ अग्गप्पहारी नीसंसो य, चोरसेणावई मओ, सो य सेणावई जाओ, अण्णया चोरे भणइ–

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

॥३७०॥

१ क्षितिप्रतिष्ठिते नगरे एको धिग्जातीयः पण्डितम्मन्यः शासनं निन्दति, स वादे प्रतिज्ञया उद्ग्राह्य पराजित्य प्रव्राजितः, पश्चाद्देवताचोदितस्योपगतं, जुगुप्सां न मुञ्चति, सजातीयास्तस्योपशान्ताः, अगारी स्नेहं न त्यजति, कार्मणं दत्तं, कथं मे वशे भवेत् ?, मृतो देवलोक उत्पन्नः। साऽपि तन्निर्वेदेन प्रव्रजिता, अनालोचिकैव (च्यैव) कालं कृत्वा देवलोक उत्पन्ना। ततश्च्युत्वा राजगृहे नगरे धनो नाम सार्थवाहः, तस्य चिलाता नाम दासी, तस्याः पुत्र उत्पन्नः, नाम तस्य कृतं चिलातक इति। इतराऽपि तस्यैव धनस्य पञ्चानां पुत्राणामुपरि दारिका जाता, सुंसुमा तस्या नाम कृतं, स च तस्यै बालग्राहो दत्तः, अचेष्टाः करोति, तदा निष्काशितः सिंहगुहां चौरपल्लीं गतः, तत्राग्रप्रहारी निस्त्रिंशश्च, चौरसेनापतिर्मृतः, स च सेनापतिर्जातः, अन्यदा चौरान् भणति– * बोहियस्स प्र० + तच्चिट्ठे विकियाः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रायगिहे धणो णाम सत्थवाहो, तस्स धूया सुंसुमा दारिया, तंहिं वच्चामो, धणं तुम्ह सुंसुमा मज्झ, ओसोवणिं दाउं अइगओ, णामं साहित्ता धणो सह पुत्तेहिं आधरिसितो, तेऽवि तं घरं पविसित्ता धणं चेडिं च गहाय पहाविया, धणेण णयरगुत्तिया सद्दाविया, मम धूयं णियत्तेह, दव्वं तुब्भं, चोरा भग्गा, लोगो धणं गहाय णियत्तो, इयरो सह पुत्तेहिं चिलायगस्स मग्गओ लग्गो, चिलाओवि दारियं गहाय णस्सइ, जाहे चिलाअओ ण तरइ सुंसुमं वहिउं, इमेवि दुक्का, ताहे सुंसुमाए सीसं गहाय पत्थिओ, इयरे धाडिया णियत्ता, छुहाए य परियाविज्जंति, ताहे धणो पुत्ते भणइ–ममं मारित्ता खाह, ताहे वच्चह णयरं, ते नेच्छंति, जेट्ठो भणइ–ममं खायह, एवं जाव डहरओ, ताहे पिया से भणइ–मा अण्णमण्णं मारेमो, एयं चिलायएण ववरोवियं सुंसुमं खामो, एवं आहारित्ता पुत्तिमंसं। एवं साहूणवि आहारो पुत्तिमंसोवमो कारणिओ, तेण आहारेण णयरं गया, पुणरवि भोगाणमाभागी जाया, एवं साहूवि णिव्वाणसुहस्स आभागी भवति। सोवि चिलायओ

---

१ राजगृहे धनो नाम सार्थवाहः, तस्य दुहिता सुंसुमा दारिका, तत्र व्रजामः, धनं युष्माकं सुंसुमा मम, अवस्थापिनीं दत्त्वाऽतिगतः, नाम साधयित्वा धनः सह पुत्रैराधर्षितः, तेऽपि तद्गृहं प्रविश्य धनं चेटीं च गृहीत्वा प्रधाविताः, धनेन नगरगुप्तिकाः शब्दिताः, मम दुहितरं निवर्त्तयत, द्रव्यं युष्माकं, चौरा भग्नाः, लोको धनं गृहीत्वा निवृत्तः, इतरः सह पुत्रैश्चिलातस्य पृष्ठतो लग्नश्चिलातोऽपि दारिकां गृहीत्वा नश्यति, यदा चिलातो न शक्नोति सुंसुमां वोढुम्, इमेऽपि आसन्नीभूताः, तदा सुंसुमायाः शीर्षं गृहीत्वा प्रस्थितः, इतरे धाटिता निवृत्ताः, क्षुधा च परिताप्यन्ते; तदा धनः पुत्रान् भणति–मां मारयित्वा खादत, तदा व्रजत नगरं, ते नेच्छन्ति, ज्येष्ठो भणति–मां खादत, एवं यावल्लघुः, तदा पिता तेषां भणति–मा अन्योऽन्यं मारयाव (मीमराम), एनां चिलातेन व्यपरोपितां सुंसुमां खादामः, एवमाहार्यं पुत्रीमांसम्। एवं साधूनामप्याहारः पुत्रीमांसोपमः कारणिकः, तेनाहारेण नगरं गताः, पुनरपि भोगानामाभागिनो जाताः, एवं साधवोऽपि निर्वाणसुखानामाभागिनो भवन्ति। सोऽपि चिलातः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

सीसेण गहिएणं दिसामूढो जाओ, जाव एगं साहुं पासइ आयावितं, तं भणइ–समासेण धम्मं कहेहि, मा एवं चेव तुब्भवि सीसं पाडेमि, तेण भणियं–उवसमविवेयसंवरं, सो एयाणि पयाणि गहाय एगंते चिंतिउमारद्धो–उवसमो कायव्वो कोहाईणं, अहं च कुद्धओ, विवेगो धणसयणस्स कायव्वो, तं सीसं असिं च पाडेइ, संवरो–इंदियसंवरो नोइंदियसंवरो य, एवं झायइ जाव लोहियगंधेण कीडिगाओ खाइउमारद्धाओ, सो ताहिं जहा चालिणी तहा कओ, जाव पायच्छिराहिं जाव सीसकरोडी ताव गयाओ, तहवि ण झाणाओ चलिओत्ति ॥ तथा चामुमेवार्थं प्रतिपिपादयिषुराह—

जो तिहि पएहि सम्मं समभिगओ संजमं समारूढो । उवसमविवेयसंवरचिलायपुत्तं णमंसामि ॥ ८७२ ॥

व्याख्या—यस्त्रिभिः पदैः सम्यक्त्वं 'समभिगतः' प्राप्तः, तथा संयमं समारूढः, कानि पदानि ? उपशमविवेकसंवराः उपशमः–क्रोधादिनिग्रहः, विवेकः–स्वजनसुवर्णादित्यागः, संवर–इन्द्रियनोइन्द्रियगुप्तिरिति, तमित्थम्भूतमुपशमविवेकसंवरचिलातपुत्रं नमस्ये, उपशमादिगुणानन्यत्वाच्चिलातपुत्र एवोपशमविवेकसंवर इति, स चासौ चिलातपुत्रश्चेति समानाधिकरण इति गाथार्थः ॥ ८७२ ॥

---

१ शीर्षं गृहीते (गृहीतशीर्षः) दिङ्मूढो जातः, यावदेकं साधुं पश्यति आतापयन्तं, तं भणति–समासेन धर्मं कथय, मैवमेव तवापि शीर्षं पीपतं, तेन भणितम्–उपशमविवेकसंवरं, स एतानि पदानि गृहीत्वा एकान्ते चिन्तितुमारब्धः–उपशमः कर्त्तव्यः क्रोधादीनाम्, अहं च क्रुद्धः, विवेको धनस्वजनस्य कर्तव्यः तत् शीर्षमसिं च पातयति, संवर इन्द्रियसंवरो नोइन्द्रियसंवरश्च, एवं ध्यायति यावद्रुधिरगन्धेन कीटिकाः खादितुमारब्धाः, स ताभिर्यथा चालनी तथा कृतः, यावत् पादशिरातो यावत् शीर्षकरोटिका तावद्गताः, तथापि न ध्यानाच्चलित इति ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

अहिसरिया पाएहिं सोणियगंधेण जस्स कीडीओ । खायंति उत्तमंगं तं दुक्करकारयं वंदे ॥ ८७३ ॥

व्याख्या—अभिसृताः पद्भ्यां शोणितगन्धेन यस्य कीटिका अविचलिताध्यवसायस्य भक्षयन्त्युत्तमाङ्गं, पद्भ्यां शिरावेधगता इत्यर्थः, तं दुष्करकारकं वन्दे इति गाथार्थः ॥ ८७३ ॥

धीरो चिलायपुत्तो मूयइंगलियाहिं चालिणिव्व कओ । सो तहवि खज्जमाणो पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥८७४॥

व्याख्या—'धीरः' सत्त्वसम्पन्नश्चिलातीपुत्रः 'मूतिंगलियाहिं' कीटिकाभिर्भक्ष्यमाणश्चालनीव कृतो यः, तथापि खाद्यमानः प्रतिपन्न उत्तममर्थं, शुभपरिणामापरित्यागादिति हृदयम् ।

अड्ढाइज्जेहिं राइंदिएहिं पत्तं चिलाइपुत्तेणं । देविंदामरभवणं अच्छरगणसंकुलं रम्मं ॥ ८७५ ॥

व्याख्या—अर्द्धतृतीयैः रात्रिन्दिवैः प्राप्तं चिलातीपुत्रेण देवेन्द्रस्येव अमरभवनं देवेन्द्रामरभवनम्, अप्सरोगणसङ्कुलं रम्यमिति गाथार्थः ॥ ८७५ ॥ द्वारं ॥ संक्षेपद्वारमधुना—

सयसाहस्सा गंथा सहस्स पंच य दिवड्ढमेगं च । ठविया एगसिलोए संखेवो एस णायव्वो ॥ ८७६ ॥

व्याख्या—[1]चत्तारि रिसी गंथे सतसाहस्से काउं जियसत्तुं रायाणमुवत्थिया, अम्ह सत्थाणि सुणेहि तुमं पंचमो लोगपालो, तेण भणियं–केत्तियं ?, ते भणंति–सयसाहस्सियाओ संघियाओ चत्तारि, भणइ–मम रज्जं सीयइ, एवं अद्धद्धं ओसरंतं

१ चत्वार ऋषयो ग्रन्थान् शतसाहस्रान् कृत्वा जितशत्रुंराजानमुपस्थिताः, अस्माकं शास्त्राणि शृणु त्वं पञ्चमो लोकपालः, तेन भणितम्–कियत् ?, ते भणन्ति–शतसाहस्रिकाः संहिताश्चतस्रः, भणति–मम राज्यं सीदति, एवमर्धार्धमपसरत् * गाथाहृदयम्. प्र.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

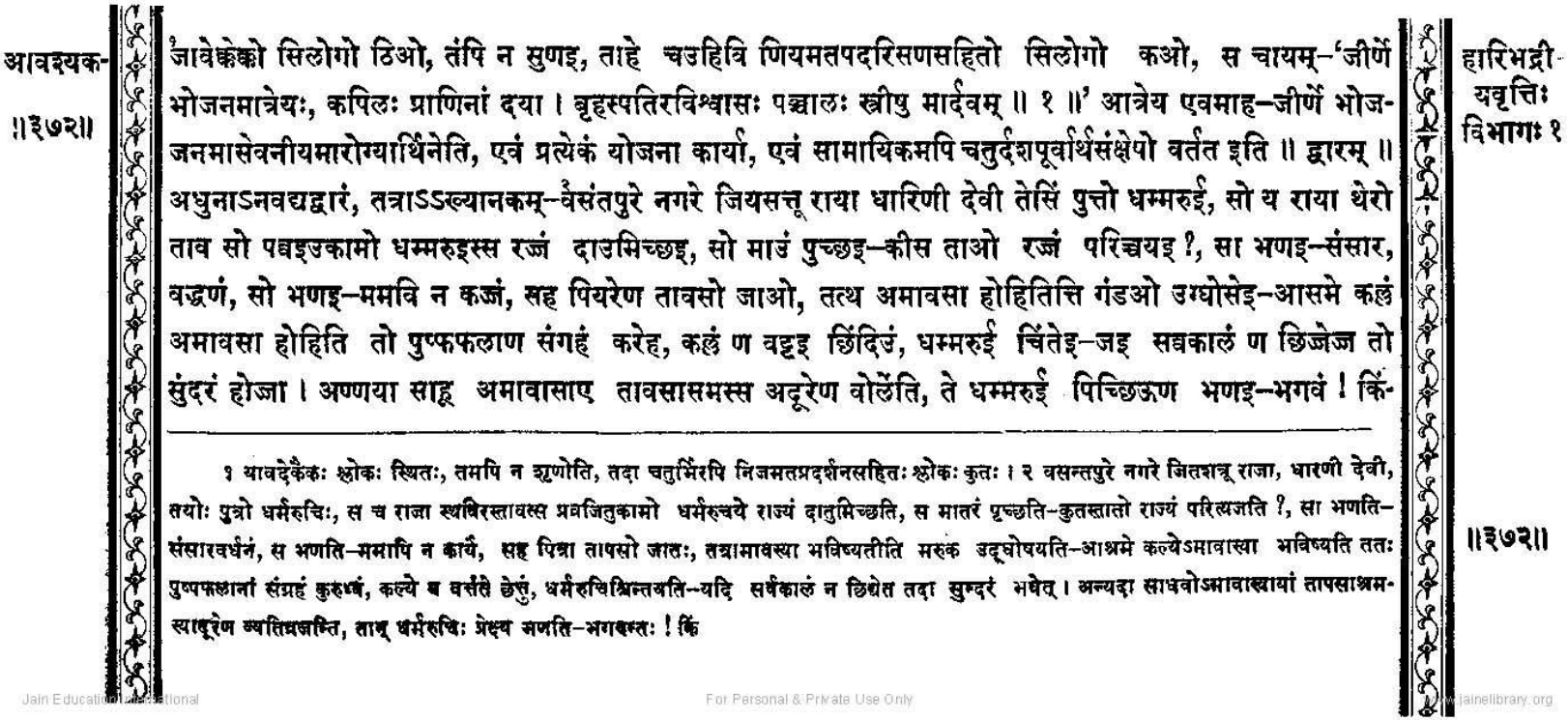

आवश्यक- ॥३७२॥

जावेक्केक्को सिलोगो ठिओ, तंपि न सुणइ, ताहे चउहिवि णियमतपदरिसणसहितो सिलोगो कओ, स चायम्–'जीर्णे भोजनमात्रेयः, कपिलः प्राणिनां दया। बृहस्पतिरविश्वासः पञ्चालः स्त्रीषु मार्दवम् ॥ १ ॥' आत्रेय एवमाह–जीर्णे भोजनमासेवनीयमारोग्यार्थिनेति, एवं प्रत्येकं योजना कार्या, एवं सामायिकमपि चतुर्दशपूर्वार्थसंक्षेपो वर्तत इति ॥ द्वारम् ॥ अधुनाऽनवद्यद्वारं, तत्राऽऽख्यानकम्–वसंतपुरे नगरे जियसत्तू राया धारिणी देवी तेसिं पुत्तो धम्मरुई, सो य राया थेरो ताव सो पव्वइउकामो धम्मरुइस्स रज्जं दाउमिच्छइ, सो मातं पुच्छइ–कीस ताओ रज्जं परिच्चयइ ?, सा भणइ–संसार, वद्धणं, सो भणइ–ममवि न कज्जं, सह पियरेण तावसो जाओ, तत्थ अमावसा होहितित्ति गंडओ उग्घोसेइ–आसमे कल्लं अमावसा होहिति तो पुप्फफलाण संगहं करेह, कल्लं ण वट्टइ छिंदिउं, धम्मरुई चिंतेइ–जइ सव्वकालं ण छिज्जेज्ज तो सुंदरं होज्जा। अण्णया साहू अमावासाए तावसासमस्स अदूरेण वोलेंति, ते धम्मरुई पिच्छिऊण भणइ–भगवं ! किं-

१ यावदेकैकः श्लोकः स्थितः, तमपि न शृणोति, तदा चतुर्भिरपि निजमतप्रदर्शनसहितः श्लोकः कृतः। २ वसन्तपुरे नगरे जितशत्रू राजा, धारणी देवी, तयोः पुत्रो धर्मरुचिः, स च राजा स्थविरस्तावत्स प्रव्रजितुकामो धर्मरुचये राज्यं दातुमिच्छति, स मातरं पृच्छति–कुतस्तातो राज्यं परित्यजति ?, सा भणति–संसारवर्धनं, स भणति–ममापि न कार्यं, सह पित्रा तापसो जातः, तत्रामावस्या भविष्यतीति मरुकं उद्घोषयति–आश्रमे कल्येऽमावास्या भविष्यति ततः पुष्पफलानां संग्रहं कुरुध्वं, कल्ये च वर्त्तते छेत्तुं, धर्मरुचिश्चिन्तयति–यदि सर्वकालं न छिद्येत तदा सुन्दरं भवेत्। अन्यदा साधवोऽमावास्यायां तापसाश्रमस्यादूरेण व्यतिव्रजन्ति, तान् धर्मरुचिः प्रेक्ष्य भणति–भगवन्तः ! किं

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

॥३७२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

तुज्झं अण्णाउट्टी णत्थि ? तो अडविं जाह, ते भणंति–अम्हं जावज्जीवाए अणाउट्टी, सो संभंतो चिंतेउमारद्धो, साहूवि गया, जाई संभरिया, पत्तेयबुद्धो जाओ ॥ अमुमेवार्थमभिधित्सुराह—

सोऊण अणाउट्टिं अणभीओ वज्जिऊण अणगं तु । अणवज्जयं उवगओ धम्मरुई णाम अणगारो ॥ ८७७ ॥

व्याख्या—'श्रुत्वा' आकर्ण्य, आकुट्टनम् आकुट्टिश्छेदनं हिंसेत्यर्थः, न आकुट्टिः–अनाकुट्टिस्तां सर्वकालिकीमाकर्ण्य, 'अणभीतः' 'अण रण' इति दण्डकधातुः, अणति–गच्छति तासु तासु जीवो योनिष्वनेनेत्यणं–पापं तद्भीतः, वर्जयित्वाऽणं तु–परित्यज्य सावद्ययोगम् 'अणवज्जयं उवगओ'त्ति वर्जनीयः वर्ज्यः अणस्य वर्ज्यः अणवर्ज्यस्तद्भावस्तामणवर्ज्यतामुपगतः साधुः संवृत्त इत्यर्थः, धर्मरुचिर्नामानगार इति गाथार्थः ॥ ८७७ ॥ द्वारं ॥ साम्प्रतं परिज्ञाद्वारावयवार्थः प्रतिपाद्यत इति, तत्र कथानकं प्रागुक्तम्, इदानीं गाथोच्यते—

परिजाणिऊण जीवे अजीवे जाणणापरिण्णाए । सावज्जजोगकरणं परिजाणइ सो इलापुत्तो ॥ ८७८ ॥

व्याख्या—परिज्ञाय जीवानजीवांश्च 'जाणणापरिण्णाए' त्ति ज्ञपरिज्ञया 'सावद्ययोगकरणं' सावद्ययोगक्रियां 'परिजाणइ' त्ति प्रत्याख्यानपरिज्ञया स इलापुत्र इति गाथार्थः ॥ ८७८ ॥ द्वारं ॥ प्रत्याख्यानद्वारं, तत्र कथानकम्–तेतलिपुरणयरे कणगरहो राया, पउमावई देवी, राया भोगलोलो जाते २ पुत्ते वियंगेइ, तेतलिसुओ अमच्चो, कलाओ

१ युष्माकमनाकुट्टिर्नास्ति ?, ततोऽटवीं याथ, ते भणन्ति–अस्माकं यावज्जीवमनाकुट्टी, स संभ्रान्तश्चिन्तयितुमारब्धः, साधवोऽपि गताः, जातिं स्मृता, प्रत्येकबुद्धो जातः । २ तेतलीपुरे नगरे कनकरथो राजा, पद्मावती देवी, राजा भोगलोलुपः जातान् जातान् पुत्रान् व्यङ्गयति, तेतलीसुतोऽमात्यः, कलादः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पूंसियारसेट्ठी, तस्स धूया पोट्टिला आगासतलगे दिट्ठा, मग्गिया, लद्धा य, अमच्चो य एगंते पउमावईय भण्णइ–एगं कहवि कुमारं सारक्खह तो तव य मम य भिक्खाभायणं भविस्सइत्ति, मम उयरे पुत्तो, एवं रहस्सगयं सारवेमो, संपत्ती य पोट्टिला देवी य समं चेव पसूया, पोट्टिलाए दारिया देवीए दिण्णा, कुमारो पोट्टिलाए, सो संवड्ढइ, कलाओ य गेण्हइ। अण्णया पोट्टिला अणिट्ठा जाया, णाममवि ण गेण्हइ, अण्णया पव्वइयाओ पुच्छइ–अत्थि किंचि जाणह, जेणं अहं पिया होज्जा, ताओ भणंति–ण वट्टइ एयं कहेउं, धम्मो कहिओ, संवेगमावण्णा, आपुच्छइ–पव्वयामि, भणइ–जइ संबोहेसि, ताए पडिस्सुयं, सामण्णं काउं देवलोगं गया। सो राया मओ, ताहे पउरस्स दंसेइ कुमारं, रहस्सं च भिंदइ, ताहे सोऽभिसित्तो, कुमारं माया भणइ–तेतलिसुयस्स सुट्ठु वट्टेज्जाहि, तस्स पहावेण तंसि राया जाओ, तस्स णामं कणगज्झओ, ताहे सव्वट्ठाणेसु अमच्चो ठविओ, देवो तं बोहेइ, ण संबुज्झइ, ताहे रायाणगं विपरिणामेइ, जओ जओ ठाइ तओ तओ

१ पुष्यकारः श्रेष्ठी, तस्य दुहिता पोट्टिलाऽऽकाशतले दृष्टा, मार्गिता, लब्धा च, अमात्यश्चैकान्ते पद्मावत्या भण्यते–एकं कथमपि कुमारं संरक्षय तदा तव मम च भिक्षाभाजनं भविष्यतीति, ममोदरे पुत्रः, एनं रहस्यगतं सारयामः, समापत्त्या, पोट्टिला देवी च सममेव प्रसूते, पोट्टिलाया दारिका देव्यै दत्ता, कुमारः पोट्टिलायै, स संवर्धते, कलाश्च गृह्णाति। अन्यदा पोट्टिलाऽनिष्टा जाता, नामापि न गृह्णाति, अन्यदा प्रव्रजिताः पृच्छति–अस्ति किञ्चिज्जानीय येनाहं प्रिया भवेयं, ता भणन्ति–न वर्त्तते एतत्कथयितुं, धर्मः कथितः, संवेगमापन्ना, आपृच्छति–प्रव्रजामि, भणति–यदि संबोधयसि, तया प्रतिश्रुतं, श्रामण्यं कृत्वा देवलोकं गता। स राजा मृतः, तदा पौरेभ्यो दर्शयति कुमारं, रहस्यं च भिनत्ति, तदा सोऽभिषिक्तः, कुमारं माता भणति–तेतलीसुते सुष्ठु वर्त्तेथाः, तस्य प्रभावेण त्वमसि राजा जातः, तस्य नाम कनकध्वजः, तदा सर्वस्थानेष्वमात्यः स्थापितः, देवस्यं बोधयति, न संबुध्यते, तदा राजानं विपरिणमयति, यतो यतस्तिष्ठति, ततस्ततो राजा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

राया परंमुहो ठाइ, भीओ घरमागओ, सोऽवि परियणो णाढाइ, सुट्ठुतरं भीओ, ताहे तालपुडं विसं खाइ, ण मरइ, कंको असी खंधे णिसिओ, ण छिंदइ, उब्बंधइ, रज्जु छिंदइ, पाहाणं गलए बंधित्ता अत्थाहं पाणियं पविट्ठो, तत्थवि थाहो जाओ, ताहे तणकूडे अग्गिं काउं पविट्ठो, तत्थवि ण डज्झइ, ताहे णयराओ णिप्फिडइ जाव पिट्ठओ हत्थी धाडेइ, पुरओ पवातखड्डा, दुहओ अचक्खुफासे मज्झे सराणि पतंति, तत्थ ठिओ, ताहे भणइ–हा पोट्टिले साविगे २ जइ णित्थारेज्जा, आउसो पोट्टिले ! कओ वयामो ?, ते आलावगे भणइ जहा तेतलिणाते, ताहे सा भणइ–भीयस्स खलु भो पव्वज्जा, आलावगा, तं दट्ठूण संबुद्धो भणइ–रायाणं उवसामेहि, मा भणिहिति–रुट्ठो पव्वइओ, ताहे साहरियं जाव समं-ततो मग्गिज्जइ, रण्णो कहियं–सह मायाए णिग्गओ, खामेत्ता पवेसिओ, निक्खमणसिबियाए णीणिओ, पव्वइओ, तेण दढं आवइगहिएणावि पच्चक्खाणे समया कया ॥ अत्र गाथा—

---

१ पराङ्मुखस्तिष्ठति, भीतो गृहमागतः, सोऽपि परिजनो नाद्रियते, सुष्ठुतरं भीतः, तदा तालपुटं विषं खादति, न म्रियते, कङ्कोऽसिः स्कन्धे वाहितः न छिनत्ति, उद्बध्नाति, रज्जूं छिनत्ति, पाषाणान् गले बद्ध्वाऽस्ताधे पानीये प्रविष्टः, तत्रापि स्ताधो जातः, तदा तृणकूटेऽग्निं कृत्वा प्रविष्टः, तत्रापि न दह्यते, तदा नगरान्निर्गच्छति, यावत्पृष्ठतो हस्ती धाटयति, पुरतः प्रपातगर्तो, उभयतोऽचक्षुः स्पर्शो मध्ये शराः पतन्ति, तत्र स्थितः, तदा भणति–हा पोट्टिले श्राविके ! २ यदि निस्तारयिष्यसि, आयुष्मति ! पोट्टिले कुतो व्रजामः ?, तानालापकान् भणति यथा तेतलिज्ञाते, तदा सा भणति–भीतस्य खलु भोः प्रव्रज्या, आलापकाः, तं दृष्ट्वा संबुद्धो भणति–राजानमुपशमय, मा बीभणत–रुष्टः प्रव्रजितः, तदा संहृतं यावत्समन्ततो मार्ग्यते, राज्ञः कथितं, सह मात्रा निर्गतः, क्षमयित्वा प्रवेशितः, निष्क्रमणशिबिकया निर्गतः, प्रव्रजितः, तेन दृढमापद्गृहीतेनापि प्रत्याख्याने समता कृता ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

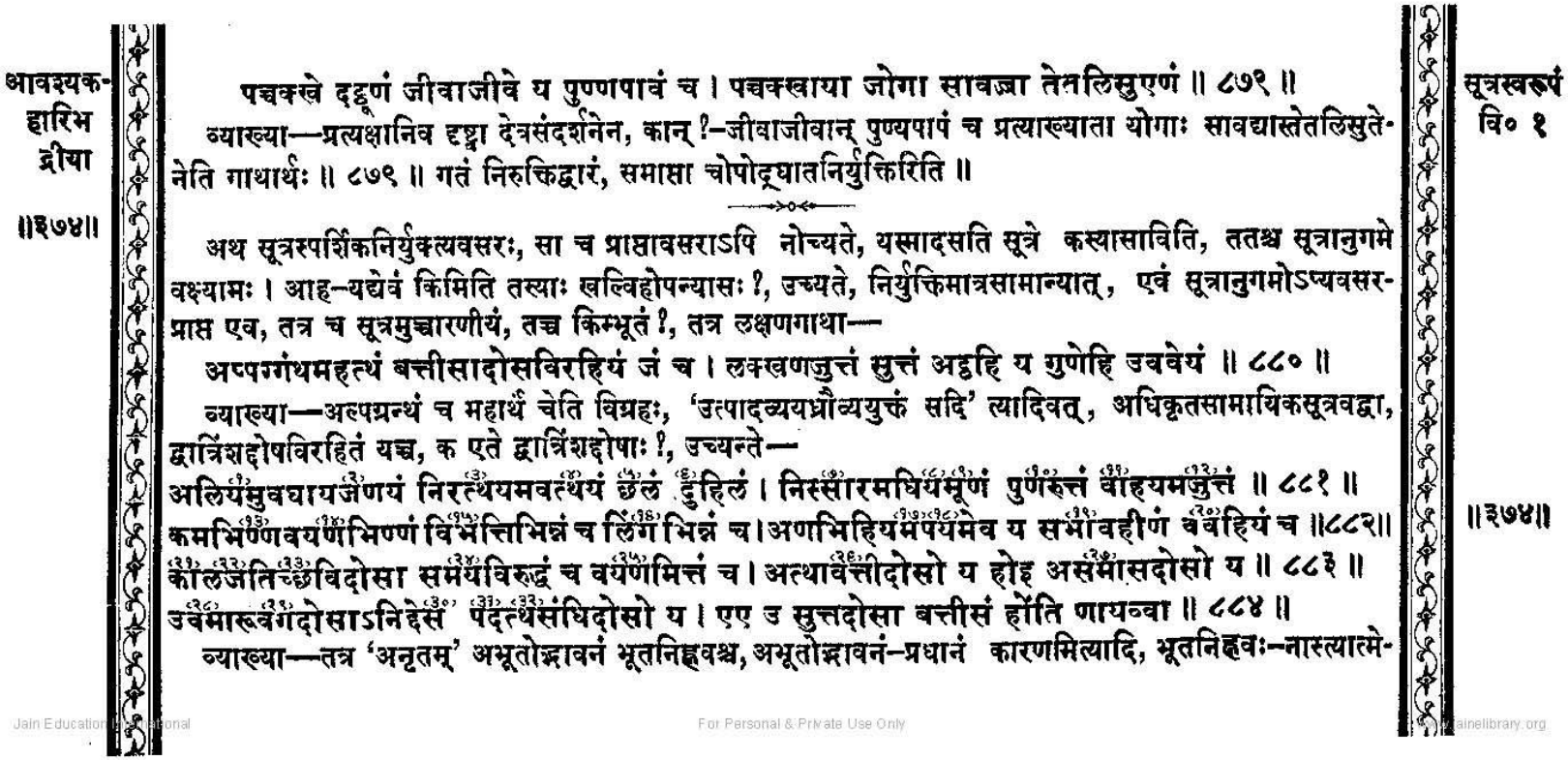

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥३७४॥

पच्चक्खे दट्ठूणं जीवाजीवे य पुण्णपावं च । पच्चक्खाया जोगा सावज्जा तेतलिसुएणं ॥ ८७९ ॥

व्याख्या—प्रत्यक्षानिव दृष्ट्वा देवसंदर्शनेन, कान् ?–जीवाजीवान् पुण्यपापं च प्रत्याख्याता योगाः सावद्यास्तेतलिसुतेनेति गाथार्थः ॥ ८७९ ॥ गतं निरुक्तिद्वारं, समाप्ता चोपोद्घातनिर्युक्तिरिति ॥

अथ सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यवसरः, सा च प्राप्तावसराऽपि नोच्यते, यस्मादसति सूत्रे कस्यासाविति, ततश्च सूत्रानुगमे वक्ष्यामः । आह–यद्येवं किमिति तस्याः खल्विहोपन्यासः ?, उच्यते, निर्युक्तिमात्रसामान्यात्, एवं सूत्रानुगमोऽप्यवसरप्राप्त एव, तत्र च सूत्रमुच्चारणीयं, तच्च किम्भूतं ?, तत्र लक्षणगाथा—

अप्पग्गंथमहत्थं बत्तीसादोसविरहियं जं च । लक्खणजुत्तं सुत्तं अट्ठहि य गुणेहि उववेयं ॥ ८८० ॥

व्याख्या—अल्पग्रन्थं च महार्थं चेति विग्रहः, 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सदि' त्यादिवत्, अधिकृतसामायिकसूत्रवद्वा, द्वात्रिंशद्दोषविरहितं यच्च, क एते द्वात्रिंशद्दोषाः ?, उच्यन्ते—

अलियमुवघायजणयं निरत्थयमवत्थयं छलं दुहिलं । निस्सारमधियमूणं पुणरुत्तं वाहयमजुत्तं ॥ ८८१ ॥
कमभिण्णवयणभिण्णं विभत्तिभिन्नं च लिंगभिन्नं च । अणभिहियमपयमेव य सभावहीणं ववहियं च ॥८८२॥
कालजइच्छविदोसा समयविरुद्धं च वयणमित्तं च । अत्थावत्तीदोसो य होइ असमासदोसो य ॥ ८८३ ॥
उवमारूवगदोसाऽनिद्देसं पदत्थसंधिदोसो य । एए उ सुत्तदोसा बत्तीसं होंति णायव्वा ॥ ८८४ ॥

व्याख्या—तत्र 'अनृतम्' अभूतोद्भावनं भूतनिह्नवश्च, अभूतोद्भावनं–प्रधानं कारणमित्यादि, भूतनिह्नवः–नास्त्यात्मे-

सूत्रस्वरूपं वि० १

॥३७४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र सूत्रस्पर्शिक-निर्युक्तिः प्रस्तुयते, सामायिकस्य ३२ दोषानाम् कथनं

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

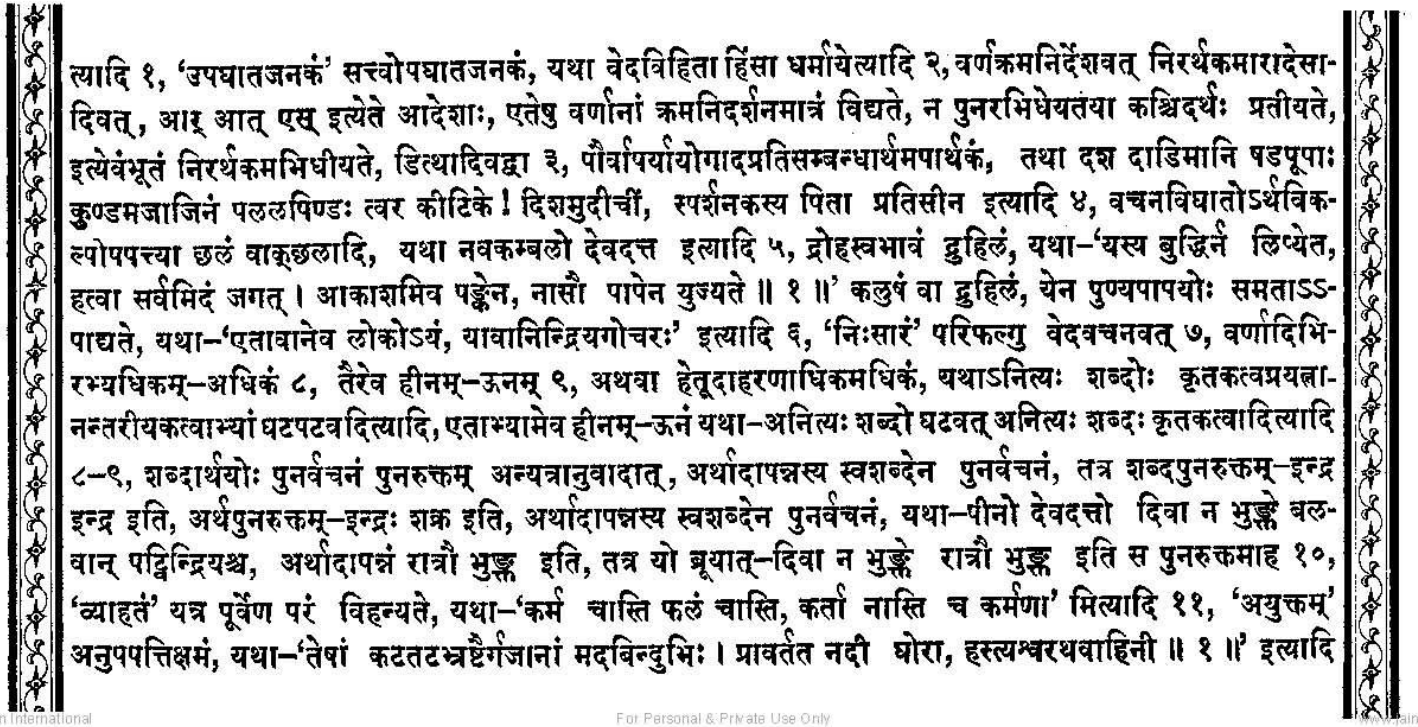

त्यादि १, 'उपघातजनकं' सत्त्वोपघातजनकं, यथा वेदविहिता हिंसा धर्मायेत्यादि २, वर्णक्रमनिर्देशवत् निरर्थकमारादेसादिवत्, आर् आत् एस् इत्येते आदेशाः, एतेषु वर्णानां क्रमनिदर्शनमात्रं विद्यते, न पुनरभिधेयतया कश्चिदर्थः प्रतीयते, इत्येवंभूतं निरर्थकमभिधीयते, डित्थादिवद्वा ३, पौर्वापर्यायोगादप्रतिसम्बन्धार्थमपार्थकं, तथा दश दाडिमानि षडपूपाः कुण्डमजाजिनं पललपिण्डः त्वर कीटिके! दिशमुदीचीं, स्पर्शनकस्य पिता प्रतिसीन इत्यादि ४, वचनविघातोऽर्थविकल्पोपपत्त्या छलं वाक्छलादि, यथा नवकम्बलो देवदत्त इत्यादि ५, द्रोहस्वभावं द्रुहिलं, यथा–'यस्य बुद्धिर्न लिप्येत, हत्वा सर्वमिदं जगत्। आकाशमिव पङ्केन, नासौ पापेन युज्यते ॥ १ ॥' कलुषं वा द्रुहिलं, येन पुण्यपापयोः समताऽऽपाद्यते, यथा–'एतावानेव लोकोऽयं, यावानिन्द्रियगोचरः' इत्यादि ६, 'निःसारं' परिफल्गु वेदवचनवत् ७, वर्णादिभिरभ्यधिकम्–अधिकं ८, तैरेव हीनम्–ऊनम् ९, अथवा हेतूदाहरणाधिकमधिकं, यथाऽनित्यः शब्दोः कृतकत्वप्रयत्नानन्तरीयकत्वाभ्यां घटपटवदित्यादि, एताभ्यामेव हीनम्–ऊनं यथा–अनित्यः शब्दो घटवत् अनित्यः शब्दः कृतकत्वादित्यादि ८–९, शब्दार्थयोः पुनर्वचनं पुनरुक्तम् अन्यत्रानुवादात्, अर्थादापन्नस्य स्वशब्देन पुनर्वचनं, तत्र शब्दपुनरुक्तम्–इन्द्र इन्द्र इति, अर्थपुनरुक्तम्–इन्द्रः शक्र इति, अर्थादापन्नस्य स्वशब्देन पुनर्वचनं, यथा–पीनो देवदत्तो दिवा न भुङ्क्ते बलवान् पट्विन्द्रियश्च, अर्थादापन्नं रात्रौ भुङ्क्ते इति, तत्र यो ब्रूयात्–दिवा न भुङ्क्ते रात्रौ भुङ्क्ते इति स पुनरुक्तमाह १०, 'व्याहतं' यत्र पूर्वेण परं विहन्यते, यथा–'कर्म चास्ति फलं चास्ति, कर्ता नास्ति च कर्मणा' मित्यादि ११, 'अयुक्तम्' अनुपपत्तिक्षमं, यथा–'तेषां कटतटभ्रष्टैर्गजानां मदबिन्दुभिः। प्रावर्तत नदी घोरा, हस्त्यश्वरथवाहिनी ॥ १ ॥' इत्यादि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

१२, 'क्रमभिन्नं' यत्र यथासङ्ख्यमनुदेशो न क्रियते, यथा 'स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणामर्थाः स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दा' इति वक्तव्ये स्पर्शरूपशब्दगन्धरसा इति ब्रूयात् इत्यादि १३, 'वचनभिन्नं' वचनव्यत्ययः, यथा वृक्षावेतौ पुष्पिताः इत्यादि १४, विभक्तिभिन्नं विभक्तिव्यत्ययः, यथैष वृक्ष इति वक्तव्ये एष वृक्षमित्याह १५, लिङ्गभिन्नं लिङ्गव्यत्ययः, यथेयं स्त्रीति वक्तव्येऽयं स्त्रीत्याह १६, 'अनभिहितम्' अनुपदिष्टं स्वसिद्धान्ते, यथा सप्तमः पदार्थो दशमं द्रव्यं वा वैशेषिकस्य, प्रधानपुरुषाभ्यामभ्यधिकं साङ्ख्यस्य, चतुःसत्यातिरिक्तं शाक्यस्येत्यादि १७, अपदं पद्यविधौ पद्ये विधातव्येऽन्यच्छन्दोऽभिधानं, यथाऽऽर्यापदे वैतालीयपदाभिधानं १८, 'स्वभावहीनं' यद्वस्तुनः स्वभावतोऽन्यथावचनं, यथा शीतोऽग्निर्मूर्तिमदाकाशमित्यादि १९, 'व्यवहितम्' अन्तर्हितं, यत्र प्रकृतमुत्सृज्याप्रकृतं व्यासतोऽभिधाय पुनः प्रकृतमभिधीयते, यथा हेतुकथनमधिकृत्य सुप्तिङन्तपदलक्षणप्रपञ्चमर्थशास्त्रं वाऽभिधाय पुनर्हेतुवचनमित्यादि २०, कालदोषः अतीतादिकालव्यत्ययः, यथा रामो वनं प्राविशदिति वक्तव्ये विशतीत्याह २१, यतिदोषः–अस्थानविच्छेदः तदकरणं वा, २२, 'छविः' अलङ्कारविशेषस्तेन शून्यमिति २३, 'समयविरुद्धं च' स्वसिद्धान्तविरुद्धं यथा साङ्ख्यस्यासत् कारणे कार्यं सद् वैशेषिकस्येत्यादि २४, वचनमात्रं निर्हेतुकं यथेष्टभूदेशे लोकमध्याभिधानवत् २५, 'अर्थापत्तिदोषः' यत्रार्थादनिष्टापत्तिः, यथा 'ब्राह्मणो न हन्तव्य' इति, अर्थादब्राह्मणघातापत्तिः २६, 'असमासदोषः' समासव्यत्ययः, यत्र वा समासविधौ सत्यसमासवचनं, यथा राजपुरुषोऽयमित्यत्र तत्पुरुषे समासे कर्त्तव्ये विशेषणसमासकरणं बहुव्रीहिसमासकरणं यदिवा असमासकरणं राज्ञः पुरुषोऽयमित्यादि २७, 'उपमादोषः' हीनाधिकोपमानाभिधानं, यथा मेरुः सर्षपोपमः, सर्षपो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

मेरुसमो बिन्दुः समुद्रोपम इत्यादि २८, रूपकदोषः स्वरूपावयवव्यत्ययः, यथा पर्वतरूपावयवानां पर्वतेनानभिधानं, समुद्रावयवानां चाभिधानमित्यादि २९, 'अनिर्देशदोषः' यत्रोद्देश्यपदानामेकवाक्यभावो न क्रियते, यथेह देवदत्तः श्याल्यामोदनं पचतीति वक्तव्ये पचतिशब्दानभिधानं ३०, 'पदार्थदोषः' यत्र वस्तुपर्यायवाचिनः पदस्यार्थान्तरपरिकल्पनाऽऽश्रीयते, यथेह द्रव्यपर्यायवाचिनां सत्तादीनां द्रव्यादर्थान्तरपरिकल्पनमुलूकस्य ३१, 'सन्धिदोषः' विश्लिष्टसंहितत्वं व्यत्ययो वेति ३२। एभिर्विमुक्तं द्वात्रिंशद्दोषरहितं लक्षणयुक्तं सूत्रं तदिति वाक्यशेषः, 'द्वात्रिंशद्दोषरहितं यच्च' इति वचनात्तच्छब्दनिर्देशो गम्यते ॥ अष्टाभिश्च गुणैरुपेतं यत् तल्लक्षणयुक्तमिति वर्तते, ते चेमे गुणाः—

निद्दोसं[1] सारवन्तं च हेउजुत्तमलंकियं। उवणीयं सोवयारं च मियं[7] महुरमेव य ॥ ८८५ ॥

व्याख्या—'निर्दोषं' दोषमुक्तं 'सारवत्' बहुपर्यायं, गोशब्दवत्सामायिकवद्वा, अन्वयव्यतिरेकलक्षणा हेतवस्तद्युक्तम्, 'अलङ्कृतम्' उपमादिभिरुपेतम्, 'उपनीतम्' उपनयोपसंहृतं, 'सोपचारम्' अग्राम्याभिधानं, 'मितं' वर्णादिनियतपरिमाणं, 'मधुरं' श्रवणमनोहरम्। अथवाऽन्ये सूत्रगुणाः—

अप्पक्खरमसंदिद्धं सारवं विस्सओमुहं। अत्थोभमणवज्जं च सुत्तं सव्वण्णुभासियं ॥ ८८६ ॥

व्याख्या—'अल्पाक्षरं' मिताक्षरं, सामायिकाभिधानवत्, 'असंदिग्धं' सैन्धवशब्दवल्लवणघोटकाद्यनेकार्थसंशयकारि न भवति, 'सारवत्' बहुपर्यायं, 'विश्वतोमुखम्' अनेकमुखं प्रतिसूत्रमनुयोगचतुष्टयाभिधानात्, प्रतिमुखमनेकार्थाभिधायकं वा सारवत्, 'अस्तोभकं' वैहिहकारादिपदच्छिद्रपूरणस्तोभकशून्यं, स्तोभकाः–निपाताः, 'अनवद्यम्' अगर्ह्यं, न

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

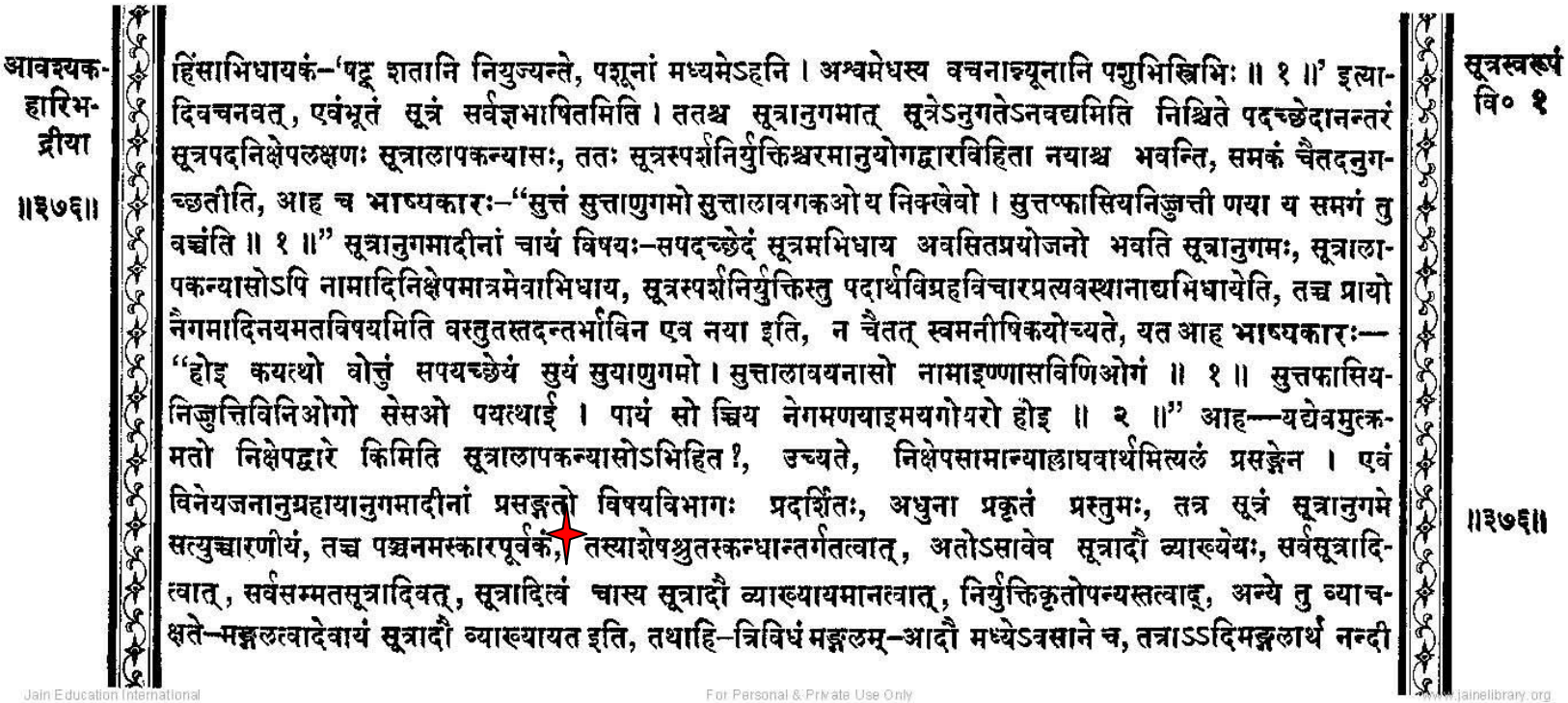

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥३७६॥

हिंसाभिधायकं–'षट् शतानि नियुज्यन्ते, पशूनां मध्यमेऽहनि । अश्वमेधस्य वचनान्यूनानि पशुभिस्त्रिभिः ॥ १ ॥' इत्यादिवचनवत्, एवंभूतं सूत्रं सर्वज्ञभाषितमिति । ततश्च सूत्रानुगमात् सूत्रेऽनुगतेऽनवद्यमिति निश्चिते पदच्छेदानन्तरं सूत्रपदनिक्षेपलक्षणः सूत्रालापकन्यासः, ततः सूत्रस्पर्शनिर्युक्तिश्चरमानुयोगद्वारविहिता नयाश्च भवन्ति, समकं चैतदनुगच्छतीति, आह च भाष्यकारः–"सुत्तं सुत्ताणुगमो सुत्तालावगकओ य निक्खेवो । सुत्तप्फासियनिज्जुत्ती णया य समगं तु वच्चंति ॥ १ ॥" सूत्रानुगमादीनां चायं विषयः–सपदच्छेदं सूत्रमभिधाय अवसितप्रयोजनो भवति सूत्रानुगमः, सूत्रालापकन्यासोऽपि नामादिनिक्षेपमात्रमेवाभिधाय, सूत्रस्पर्शनिर्युक्तिस्तु पदार्थविग्रहविचारप्रत्यवस्थानाद्यभिधायेति, तच्च प्रायो नैगमादिनयमतविषयमिति वस्तुतस्तदन्तर्भाविन एव नया इति, न चैतत् स्वमनीषिकयोच्यते, यत आह भाष्यकारः—"होइ कयत्थो वोत्तुं सपयच्छेयं सुयं सुयाणुगमो । सुत्तालावयनासो नामाइण्णासविणिओगं ॥ १ ॥ सुत्तफासियनिज्जुत्तिविनिओगो सेसओ पयत्थाई । पायं सो च्चिय नेगमणयाइमयगोयरो होइ ॥ २ ॥" आह—यद्येवमुत्क्रमतो निक्षेपद्वारे किमिति सूत्रालापकन्यासोऽभिहित?, उच्यते, निक्षेपसामान्यालाघवार्थमित्यलं प्रसङ्गेन । एवं विनेयजनानुग्रहायानुगमादीनां प्रसङ्गतो विषयविभागः प्रदर्शितः, अधुना प्रकृतं प्रस्तुमः, तत्र सूत्रं सूत्रानुगमे सत्युच्चारणीयं, तच्च पञ्चनमस्कारपूर्वकं, तस्याशेषश्रुतस्कन्धान्तर्गतत्वात्, अतोऽसावेव सूत्रादौ व्याख्येयः, सर्वसूत्रादित्वात्, सर्वसम्मतसूत्रादिवत्, सूत्रादित्वं चास्य सूत्रादौ व्याख्यायमानत्वात्, निर्युक्तिकृतोपन्यस्तत्वाद्, अन्ये तु व्याचक्षते–मङ्गलत्वादेवायं सूत्रादौ व्याख्यायत इति, तथाहि–त्रिविधं मङ्गलम्–आदौ मध्येऽवसाने च, तत्राऽऽदिमङ्गलार्थं नन्दी

सूत्रस्वरूपं वि० १

॥३७६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

मू. (१) नमो अरिहंताणं, नमो सिद्धाणं, नमो आयरियाणं, नमो उवज्झायाणं, नमो लोए सव्वसाहूणं
एसो पंच नमुक्कारो, सव्व पावप्पणासणो, मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं

***मूलसूत्र - (१) "नमस्कार सूत्र" हमने पूज्यपाद आचार्य सागरानंदसूरीश्वरजी संपादित "आगममंजुषा" पृष्ठ-१२०५ के आधार से यहां लिखा है ।

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

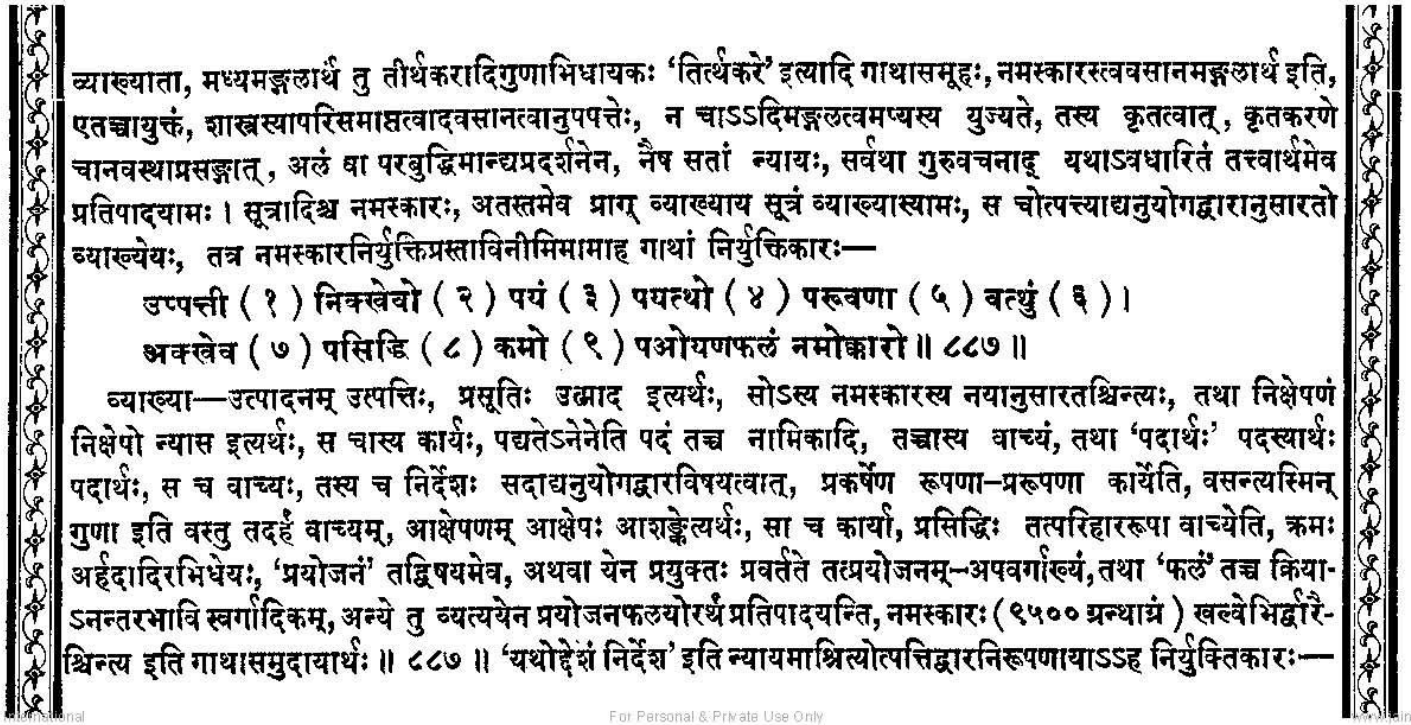

व्याख्याता, मध्यमङ्गलार्थं तु तीर्थकरादिगुणाभिधायकः 'तित्थकरे' इत्यादि गाथासमूहः, नमस्कारस्तवसानमङ्गलार्थ इति, एतच्चायुक्तं, शास्त्रस्यापरिसमाप्तत्वादवसानत्वानुपपत्तेः, न चाऽऽदिमङ्गलत्वमप्यस्य युज्यते, तस्य कृतत्वात्, कृतकरणे चानवस्थाप्रसङ्गात्, अलं वा परबुद्धिमान्द्यप्रदर्शनेन, नैष सतां न्यायः, सर्वथा गुरुवचनाद् यथाऽवधारितं तत्त्वार्थमेव प्रतिपादयामः। सूत्रादिश्च नमस्कारः, अतस्तमेव प्राग् व्याख्याय सूत्रं व्याख्यास्यामः, स चोत्पत्त्याद्यनुयोगद्वारानुसारतो व्याख्येयः, तत्र नमस्कारनिर्युक्तिप्रस्ताविनीमिमामाह गाथां निर्युक्तिकारः—

उप्पत्ती (१) निक्खेवो (२) पयं (३) पयत्थो (४) परूवणा (५) वत्थुं (६)।
अक्खेव (७) पसिद्धि (८) कमो (९) पओयणफलं नमोक्कारो ॥ ८८७ ॥

व्याख्या—उत्पादनम् उत्पत्तिः, प्रसूतिः उद्भाद इत्यर्थः, सोऽस्य नमस्कारस्य नयानुसारतश्चिन्त्यः, तथा निक्षेपणं निक्षेपो न्यास इत्यर्थः, स चास्य कार्यः, पद्यतेऽनेनेति पदं तच्च नामिकादि, तच्चास्य वाच्यं, तथा 'पदार्थः' पदस्यार्थः पदार्थः, स च वाच्यः, तस्य च निर्देशः सदाद्यनुयोगद्वारविषयत्वात्, प्रकर्षेण रूपणा–प्ररूपणा कार्येति, वसन्त्यस्मिन् गुणा इति वस्तु तदर्हं वाच्यम्, आक्षेपणम् आक्षेपः आशङ्केत्यर्थः, सा च कार्या, प्रसिद्धिः तत्परिहाररूपा वाच्येति, क्रमः अर्हदादिरभिधेयः, 'प्रयोजनं' तद्विषयमेव, अथवा येन प्रयुक्तः प्रवर्तते तत्प्रयोजनम्–अपवर्गाख्यं, तथा 'फलं' तच्च क्रियाऽनन्तरभावि स्वर्गादिकम्, अन्ये तु व्यत्ययेन प्रयोजनफलयोरर्थं प्रतिपादयन्ति, नमस्कारः (९५०० ग्रन्थाग्रं) खल्वेभिर्द्वारैश्चिन्त्य इति गाथासमुदायार्थः ॥ ८८७ ॥ 'यथोद्देशं निर्देश' इति न्यायमाश्रित्योत्पत्तिद्वारनिरूपणायाऽऽह निर्युक्तिकारः—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र नमस्कार निर्युक्तिः प्रस्तुयते

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

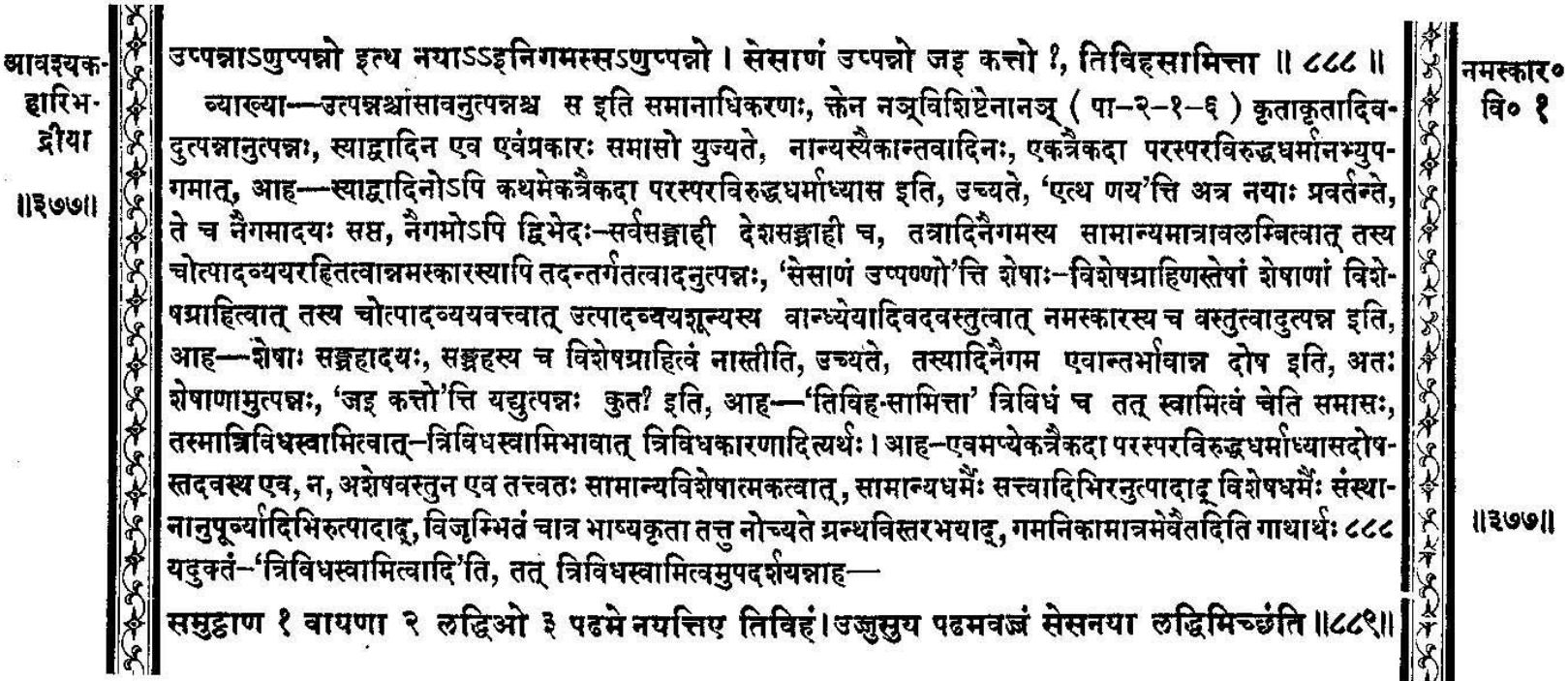

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥३७७॥

उप्पन्नाऽणुप्पन्नो इत्थ णयाऽऽइनिगमस्सऽणुप्पन्नो । सेसाणं उप्पन्नो जइ कत्तो ?, तिविहसामित्ता ॥ ८८८ ॥

व्याख्या—उत्पन्नश्चासावनुत्पन्नश्च स इति समानाधिकरणः, क्तेन नञ्विशिष्टेनानञ् (पा–२–१–६) कृताकृतादिवदुत्पन्नानुत्पन्नः, स्याद्वादिन एव एवंप्रकारः समासो युज्यते, नान्यस्यैकान्तवादिनः, एकत्रैकदा परस्परविरुद्धधर्मानभ्युपगमात्, आह—स्याद्वादिनोऽपि कथमेकत्रैकदा परस्परविरुद्धधर्माध्यास इति, उच्यते, 'एत्थ णय'त्ति अत्र नयाः प्रवर्तन्ते, ते च नैगमादयः सप्त, नैगमोऽपि द्विभेदः–सर्वसङ्ग्राही देशसङ्ग्राही च, तत्रादिनैगमस्य सामान्यमात्रावलम्बित्वात् तस्य चोत्पादव्ययरहितत्वान्नमस्कारस्यापि तदन्तर्गतत्वादनुत्पन्नः, 'सेसाणं उप्पण्णो'त्ति शेषाः–विशेषग्राहिणस्तेषां शेषाणां विशेषग्राहित्वात् तस्य चोत्पादव्ययवत्त्वात् उत्पादव्ययशून्यस्य वान्ध्येयादिवदवस्तुत्वात् नमस्कारस्य च वस्तुत्वादुत्पन्न इति, आह—शेषाः सङ्ग्रहादयः, सङ्ग्रहस्य च विशेषग्राहित्वं नास्तीति, उच्यते, तस्यादिनैगम एवान्तर्भावान्न दोष इति, अतः शेषाणामुत्पन्नः, 'जइ कत्तो'त्ति यद्युत्पन्नः कुत? इति, आह—'तिविह-सामित्ता' त्रिविधं च तत् स्वामित्वं चेति समासः, तस्मात्त्रिविधस्वामित्वात्–त्रिविधस्वामिभावात् त्रिविधकारणादित्यर्थः । आह–एवमप्येकत्रैकदा परस्परविरुद्धधर्माध्यासदोषस्तदवस्थ एव, न, अशेषवस्तुन एव तत्त्वतः सामान्यविशेषात्मकत्वात्, सामान्यधर्मैः सत्त्वादिभिरनुत्पादाद् विशेषधर्मैः संस्थानानुपूर्व्यादिभिरुत्पादाद्, विजृम्भितं चात्र भाष्यकृता तत्तु नोच्यते ग्रन्थविस्तरभयाद्, गमनिकामात्रमेवैतदिति गाथार्थः ८८८

यदुक्तं–'त्रिविधस्वामित्वादि'ति, तत् त्रिविधस्वामित्वमुपदर्शयन्नाह—

समुट्ठाण १ वायणा २ लद्धिओ ३ पढमे नयत्तिए तिविहं। उज्जुसुय पढमवज्जं सेसनया लद्धिमिच्छंति ॥८८९॥

नमस्कार० वि० १

॥३७७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

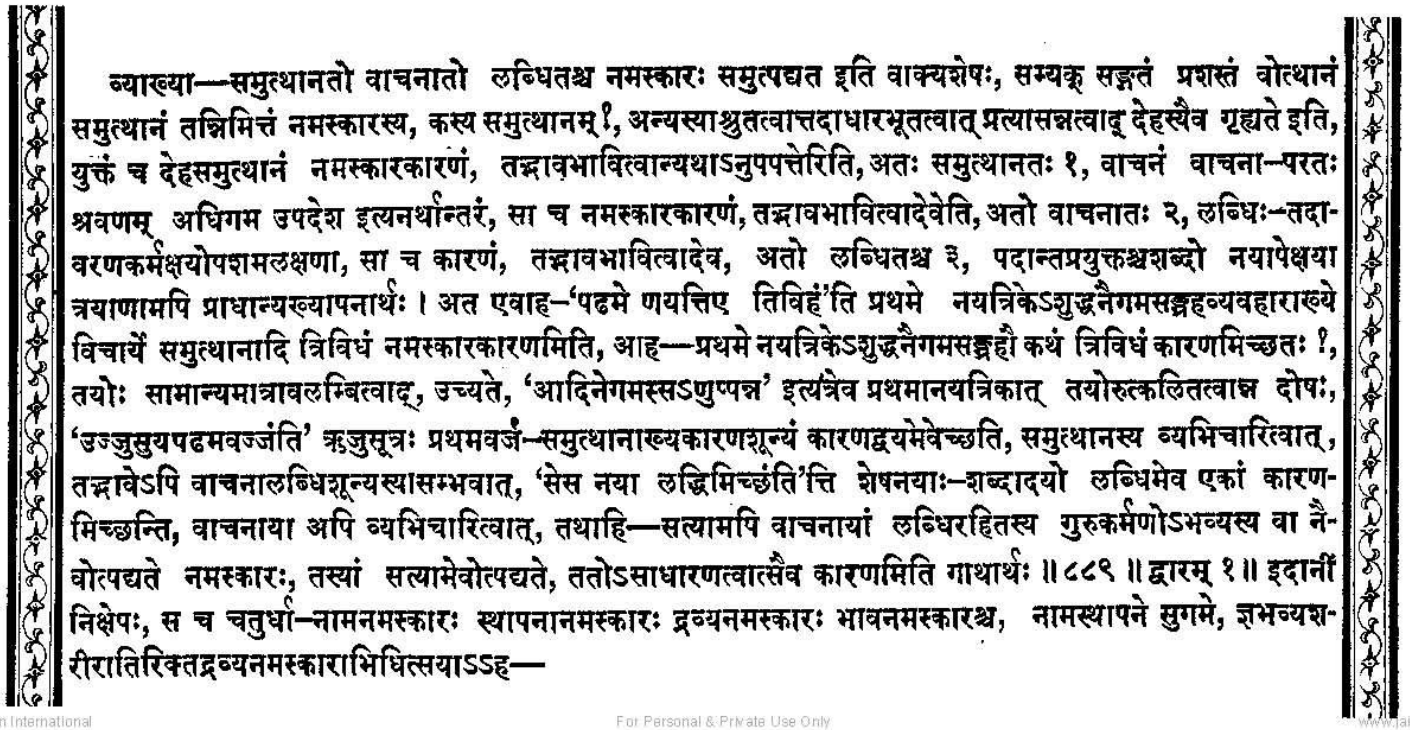

व्याख्या—समुत्थानतो वाचनातो लब्धितश्च नमस्कारः समुत्पद्यत इति वाक्यशेषः, सम्यक् सङ्गतं प्रशस्तं वोत्थानं समुत्थानं तन्निमित्तं नमस्कारस्य, कस्य समुत्थानम्?, अन्यस्याश्रुतत्वात्तदाधारभूतत्वात् प्रत्यासन्नत्वाद् देहस्यैव गृह्यते इति, युक्तं च देहसमुत्थानं नमस्कारकारणं, तद्भावभावित्वान्यथाऽनुपपत्तेरिति, अतः समुत्थानतः १, वाचनं वाचना–परतः श्रवणम् अधिगम उपदेश इत्यनर्थान्तरं, सा च नमस्कारकारणं, तद्भावभावित्वादेवेति, अतो वाचनातः २, लब्धिः–तदावरणकर्मक्षयोपशमलक्षणा, सा च कारणं, तद्भावभावित्वादेव, अतो लब्धितश्च ३, पदान्तप्रयुक्तश्चशब्दो नयापेक्षया त्रयाणामपि प्राधान्यख्यापनार्थः। अत एवाह–'पढमे णयत्तिए तिविहं'ति प्रथमे नयत्रिकेऽशुद्धनैगमसङ्ग्रहव्यवहाराख्ये विचार्ये समुत्थानादि त्रिविधं नमस्कारकारणमिति, आह—प्रथमे नयत्रिकेऽशुद्धनैगमसङ्ग्रहौ कथं त्रिविधं कारणमिच्छतः?, तयोः सामान्यमात्रावलम्बित्वाद्, उच्यते, 'आदिनेगमस्सऽणुप्पन्न' इत्यत्रैव प्रथमानयत्रिकात् तयोरुत्कलितत्वान्न दोषः, 'उज्जुसुयपढमवज्जंति' ऋजुसूत्रः प्रथमवर्जं–समुत्थानाख्यकारणशून्यं कारणद्वयमेवेच्छति, समुत्थानस्य व्यभिचारित्वात्, तद्भावेऽपि वाचनालब्धिशून्यस्यासम्भवात्, 'सेस नया लद्धिमिच्छंति'त्ति शेषनयाः–शब्दादयो लब्धिमेव एकां कारणमिच्छन्ति, वाचनाया अपि व्यभिचारित्वात्, तथाहि—सत्यामपि वाचनायां लब्धिरहितस्य गुरुकर्मणोऽभव्यस्य वा नैवोत्पद्यते नमस्कारः, तस्यां सत्यामेवोत्पद्यते, ततोऽसाधारणत्वात्सैव कारणमिति गाथार्थः ॥८८९॥ द्वारम् १॥ इदानीं निक्षेपः, स च चतुर्धा–नामनमस्कारः स्थापनानमस्कारः द्रव्यनमस्कारः भावनमस्कारश्च, नामस्थापने सुगमे, ज्ञभव्यशरीरातिरिक्तद्रव्यनमस्काराभिधित्सयाऽऽह—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्यनमस्कारस्य व्याख्यानं

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

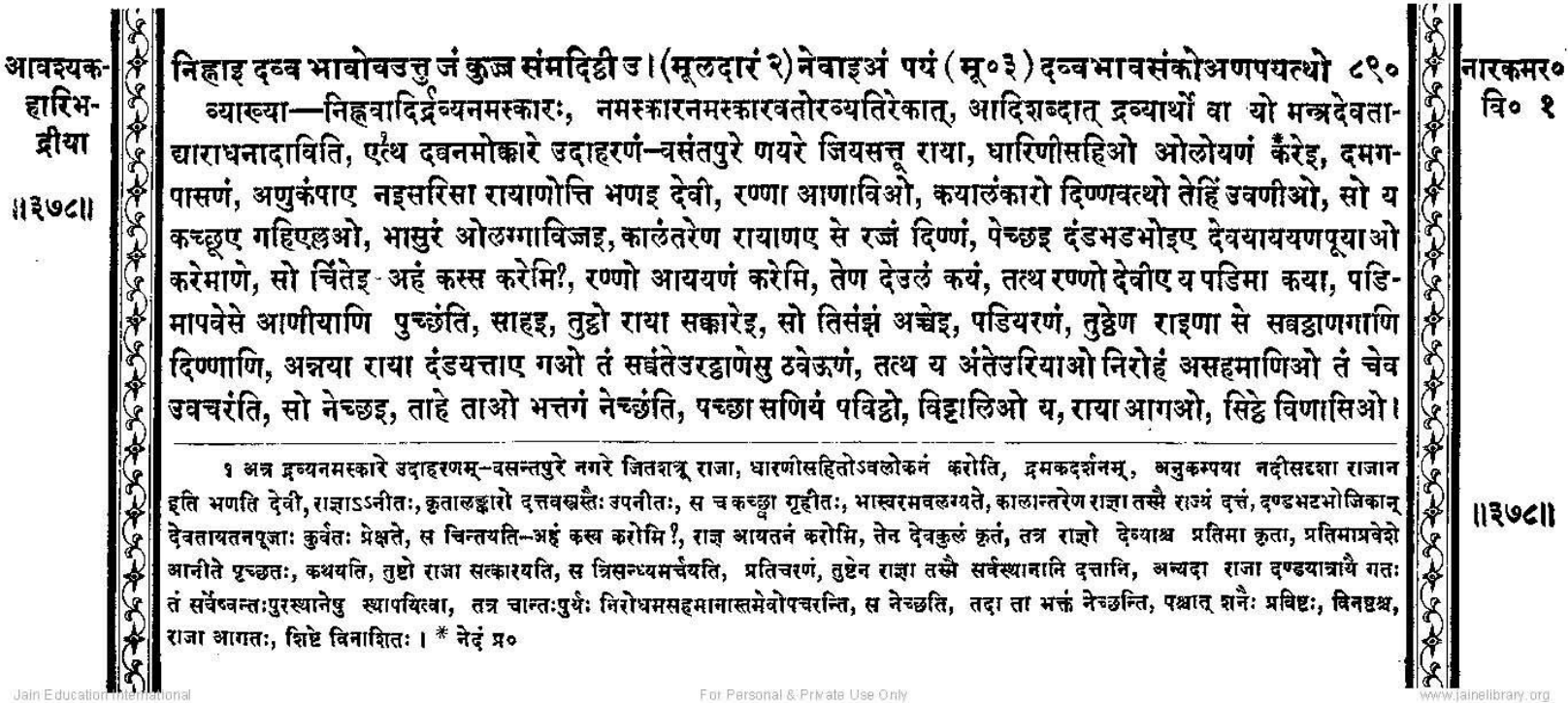

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥३७८॥

निह्नवादिर्द्रव्यनमस्कारः, नमस्कारनमस्कारवतोरव्यतिरेकात्, आदिशब्दात् द्रव्यार्थो वा यो मन्त्रदेवताद्याराधनादाविति, एत्थ दव्वनमोक्कारे उदाहरणं–वसंतपुरे णयरे जियसत्तू राया, धारिणीसहिओ ओलोयणं करेइ, दमगपासणं, अणुकंपाए नइसरिसा रायाणोत्ति भणइ देवी, रण्णा आणाविओ, कयालंकारो दिण्णवत्थो तेहिं उवणीओ, सो य कच्छूए गहिएल्लओ, भासुरं ओलग्गाविज्जइ, कालंतरेण रायाणए से रज्जं दिण्णं, पेच्छइ दंडभडभोइए देवययायणपूयाओ करेमाणे, सो चिंतेइ-अहं कस्स करेमि?, रण्णो आययणं करेमि, तेण देउलं कयं, तत्थ रण्णो देवीए य पडिमा कया, पडिमापवेसे आणीयाणि पुच्छंति, साहइ, तुट्ठो राया सक्कारेइ, सो तिसंझं अच्चेइ, पडियरणं, तुट्ठेण राइणा से सव्वट्ठाणगाणि दिण्णाणि, अन्नया राया दंडयत्ताए गओ तं सव्वंतेउरट्ठाणेसु ठवेऊणं, तत्थ य अंतेउरियाओ निरोहं असहमाणिओ तं चेव उवचरंति, सो नेच्छइ, ताहे ताओ भत्तगं नेच्छंति, पच्छा सणियं पविट्ठो, विट्ठालिओ य, राया आगओ, सिट्ठे विणासिओ।

१ अत्र द्रव्यनमस्कारे उदाहरणम्–वसन्तपुरे नगरे जितशत्रू राजा, धारणीसहितोऽवलोकनं करोति, द्रमकदर्शनम्, अनुकम्पया नदीसदृशा राजान इति भणति देवी, राज्ञाऽऽनीतः, कृतालङ्कारो दत्तवस्त्रैः उपनीतः, स च कच्छ्वा गृहीतः, भास्वरमवलग्यते, कालान्तरेण राज्ञा तस्मै राज्यं दत्तं, दण्डभटभोजिकान् देवतायतनपूजाः कुर्वतः प्रेक्षते, स चिन्तयति–अहं कस्य करोमि?, राज्ञ आयतनं करोमि, तेन देवकुलं कृतं, तत्र राज्ञो देव्याश्च प्रतिमा कृता, प्रतिमाप्रवेशे आनीते पृच्छतः, कथयति, तुष्टो राजा सत्कारयति, स त्रिसन्ध्यमर्चयति, प्रतिचरणं, तुष्टेन राज्ञा तस्मै सर्वस्थानानि दत्तानि, अन्यदा राजा दण्डयात्रायै गतः तं सर्वेष्वन्तःपुरस्थानेषु स्थापयित्वा, तत्र चान्तःपुरैः निरोधमसहमानास्तमेवोपचरन्ति, स नेच्छति, तदा ता भक्तं नेच्छन्ति, पश्चात् शनैः प्रविष्टः, विनष्टश्च, राजा आगतः, शिष्टे विनाशितः। * नेदं प्र०

नारकमर० वि० १

॥३७८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

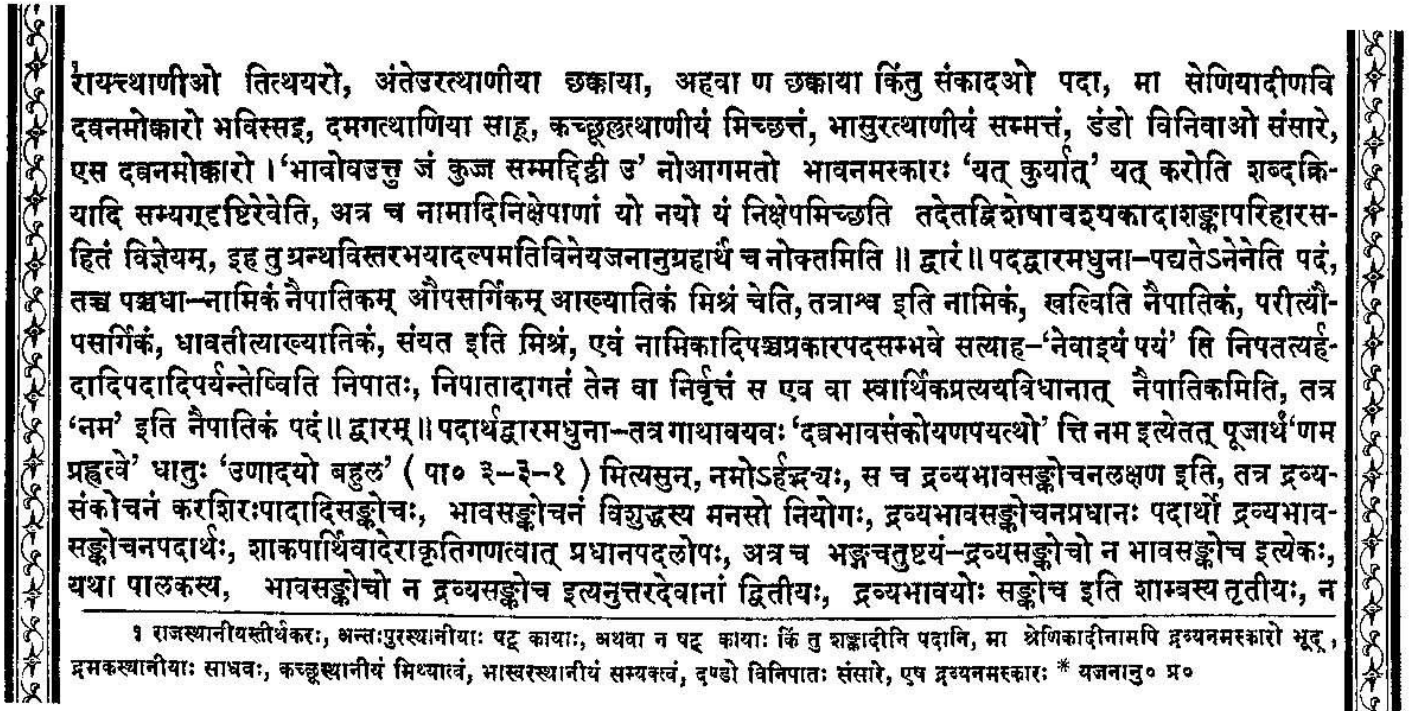

रायस्थाणीओ तित्थयरो, अंतेउरत्थाणीया छक्काया, अहवा ण छक्काया किंतु संकादओ पदा, मा सेणियादीणवि दव्वनमोक्कारो भविस्सइ, दमगत्थाणिया साहू, कच्छूल्लत्थाणीयं मिच्छत्तं, भासुरत्थाणीयं सम्मत्तं, डंडो विनिवाओ संसारे, एस दव्वनमोक्कारो। 'भावोवउत्तु जं कुज्ज सम्मदिट्ठी उ' नोआगमतो भावनमस्कारः 'यत् कुर्यात्' यत् करोति शब्दक्रियादि सम्यग्दृष्टिरेवेति, अत्र च नामादिनिक्षेपाणां यो नयो यं निक्षेपमिच्छति तदेतद्विशेषावश्यकादाशङ्कापरिहारसहितं विज्ञेयम्, इह तु ग्रन्थविस्तरभयादल्पमतिविनेयजनानुग्रहार्थं च नोक्तमिति ॥ द्वारं॥ पदद्वारमधुना–पद्यतेऽनेनेति पदं, तच्च पञ्चधा–नामिकं नैपातिकम् औपसर्गिकम् आख्यातिकं मिश्रं चेति, तत्राश्व इति नामिकं, खल्विति नैपातिकं, परीत्यौपसर्गिकं, धावतीत्याख्यातिकं, संयत इति मिश्रं, एवं नामिकादिपञ्चप्रकारपदसम्भवे सत्याह–'नेवाइयं पयं' ति निपतत्यर्थेदादिपदादिपर्यन्तेष्विति निपातः, निपातादागतं तेन वा निर्वृत्तं स एव वा स्वार्थिकप्रत्ययविधानात् नैपातिकमिति, तत्र 'नम' इति नैपातिकं पदं॥ द्वारम्॥ पदार्थद्वारमधुना–तत्र गाथावयवः 'दव्वभावसंकोयणपयत्थो' त्ति नम इत्येतत् पूजार्थं 'णम प्रह्वत्वे' धातुः 'उणादयो बहुल' (पा० ३–३–१) मित्यसुन, नमोऽर्हद्भ्यः, स च द्रव्यभावसङ्कोचनलक्षण इति, तत्र द्रव्यसंकोचनं करशिरःपादादिसङ्कोचः, भावसङ्कोचनं विशुद्धस्य मनसो नियोगः, द्रव्यभावसङ्कोचनप्रधानः पदार्थो द्रव्यभावसङ्कोचनपदार्थः, शाकपार्थिवादेराकृतिगणत्वात् प्रधानपदलोपः, अत्र च भङ्गचतुष्टयं–द्रव्यसङ्कोचो न भावसङ्कोच इत्येकः, यथा पालकस्य, भावसङ्कोचो न द्रव्यसङ्कोच इत्यनुत्तरदेवानां द्वितीयः, द्रव्यभावयोः सङ्कोच इति शाम्बस्य तृतीयः, न

१ राजस्थानीयस्तीर्थकरः, अन्तःपुरस्थानीयाः षट् कायाः, अथवा न षट् कायाः किं तु शङ्कादीनि पदानि, मा श्रेणिकादीनामपि द्रव्यनमस्कारो भूद्, द्रमकस्थानीयाः साधवः, कच्छूस्थानीयं मिथ्यात्वं, भास्वरस्थानीयं सम्यक्त्वं, दण्डो विनिपातः संसारे, एष द्रव्यनमस्कारः * यजनानु० प्र०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

द्रव्यसङ्कोचो न भावसङ्कोच इति शून्यः। इह च भावसङ्कोचः प्रधानो द्रव्यसङ्कोचोऽपि तच्छुद्धिनिमित्त इति गाथार्थः ।८९०॥ द्वारं॥ प्ररूपणाद्वारप्रतिपादनायाऽऽह—

दुविहा परूवणा छप्पया य १ नवहा य २ छप्पया इणमो।
किं १ कस्स २ केण व ३ कहिं ४ किचिरं ५ कइविहो व ६ भवे॥ ८९१॥

व्याख्या—'द्विविधा' द्विप्रकारा प्रकृष्टा–प्रधाना प्रगता वा रूपणा–वर्णना प्ररूपणेति, द्वैविध्यं दर्शयति–षट्पदा च नवधा च–नवप्रकारा नवपदा चेत्यर्थः, चशब्दात् पञ्चपदा च, तत्र 'छप्पया इणमो' षट्पदेयं षट्पदा इदानीं वा, किं? कस्य ? केन वा ? क्व वा ? कियच्चिरं ? कतिविधो वा भवेन्नमस्कार इति गाथासमुदायार्थः॥ ८९१॥ तत्राऽऽद्यद्वारावयवार्थाभिधित्सयाऽऽह—

किं? जीवो तप्परिणओ (दा०१) पुव्वपडिवन्नओ उ जीवाणं। जीवस्स व जीवाण व पडुच्च पडिवज्जमाणं तु॥८९२॥

व्याख्या—किंशब्दः क्षेपप्रश्ननपुंसकव्याकरणेषु, तत्रेह प्रश्ने, अयं च प्राकृतेऽलिङ्गः सर्वनामनपुंसकनिर्देशः सर्वलिङ्गैः सह यथायोगमभिसम्बध्यते, किं सामायिकं ? को नमस्कारः ?, तत्र नैगमाद्यशुद्धनयमतमधिकृत्याजीवादिव्युदासेनाह—जीवो नाजीवः, स च सङ्ग्रहनयापेक्षया मा भूदविशिष्टः स्कन्धः, यथाऽऽहुस्तन्मतावलम्बिनः–'पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्, उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहती'त्यादि, तथा तन्नयविशेषापेक्षयैव मा भूदविशेषो ग्राम इत्यतो नोस्कन्धो नोग्राम इति वाक्यशेषः, सर्वास्तिकायमयः स्कन्धः, तद्देशो जीवः, स चैकदेशत्वात् स्कन्धो न भवति, अनेकस्क-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

न्धापत्तेः, अस्कन्धोऽपि न भवति, स्कन्धाभावप्रसङ्गाद्, अनभिलाप्योऽपि न भवति, वस्तुविशेषत्वात्, तस्मान्नोस्कन्धः, स्कन्धैकदेश इत्यर्थः, स्कन्धदेशविशेषार्थद्योतको नोशब्दः, एवं नोग्रामोऽपि भावनीयः, नवरं ग्रामः–चतुर्दशभूतग्रामसमुदायः, यथोक्तम्–"एगिंदिय सुहुमियरा सन्नियरपणिंदिया सबितिचऊ । पज्जत्तापज्जत्ता भेदेणं चोद्दसग्गामा ॥ १ ॥" अलं-प्रसङ्गेन, प्रकृतं प्रस्तुमः–सामान्येनाशुद्धनयानां जीवस्तज्ज्ञानलब्धियुक्तो योग्यो वा नमस्कारः, शब्दादिशुद्धनयमतं त्वधिकृत्याह–'तप्परिणओ' जीव इति वर्तते, स हि नमस्कारपरिणामपरिणत एव नमस्कारो नापरिणत इत्यर्थः। एकत्वानेकत्वचिन्तायां तु नैगमस्य सङ्ग्रहव्यवहारान्तर्गतत्वात् सङ्ग्रहादिभिरेव विचारः, तत्र सङ्ग्रहस्य नमस्कारजातिमात्रापेक्षत्वादेको नमस्कारः, व्यवहारस्य व्यवहारपरत्वाद् बहवो नमस्काराः, ऋजुसूत्रादीनां वर्तमानमात्रग्राहित्वाद् बहव एवोपयुक्ताश्चेति समासार्थः, व्यासार्थो विशेषावश्यकादवसेयः, किमितिद्वारं गतं। साम्प्रतं कस्य ? इति द्वारम्, इह च प्राक्प्रतिपन्नप्रतिपद्यमानकाङ्क्षीकरणतोऽभीष्टमर्थं निरूपयन्नाह—'पुव्वपडिवन्नओ उ जीवाणं' इत्यादि, प्रकृतचिन्तायामिह पूर्वप्रतिपन्न एव यदाऽधिक्रियते तदा व्यवहारनयमतमाश्रित्य जीवानां जीवस्वामिक इत्यर्थः, प्रतिपद्यमानं तु प्रतीत्य जीवस्य जीवानां (वा) इत्यक्षरगमनिका, भावार्थस्तु नयैश्चिन्त्यते–यस्मान्नमस्कार्यनमस्कर्तृद्वयाधीनं नमस्कारकरणं, तत्र नैगमव्यवहारमतं नमस्कार्यस्य नमस्कारः, न कर्तुः, यद्यपि नमस्कारक्रियानिष्पादकः कर्ता तथाऽपि नासौ तस्य, स्वयमनुपयुज्यमानत्वात्, यतिभिक्षावत्, तथाहि–न दातुर्भिक्षा निष्पादकस्य, अपि तु भिक्षोर्भिक्षेति प्रतीतम्, अत्र च सम्बन्धविशेषापेक्षावशप्रापिता

१ एकेन्द्रियाः सूक्ष्मेतराः संज्ञीतराः पञ्चेन्द्रियाः सद्वित्रिचतुष्काः । पर्याप्तापर्याप्तभेदेन चतुर्दश ग्रामाः ॥ १ ॥ * क्षविवक्षावश० प्र०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

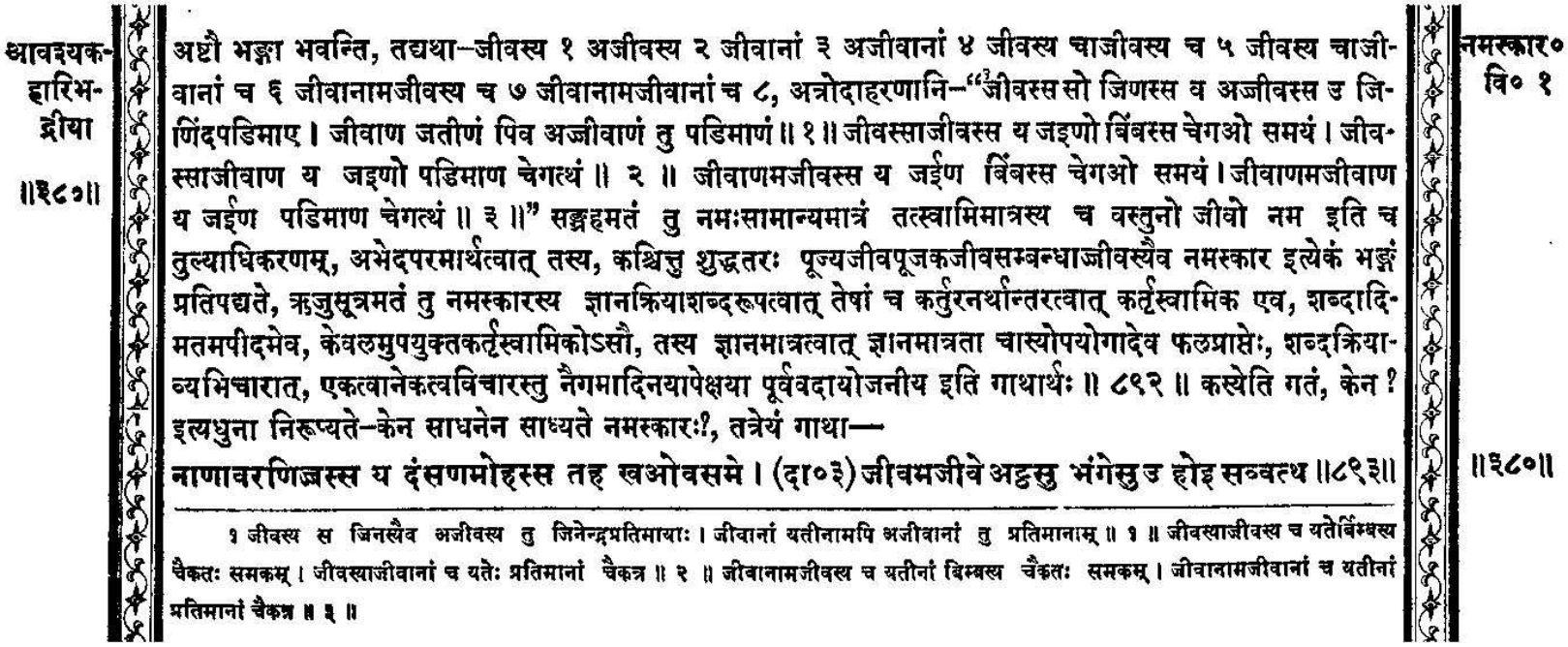

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥३८०॥

अष्टौ भङ्गा भवन्ति, तद्यथा–जीवस्य १ अजीवस्य २ जीवानां ३ अजीवानां ४ जीवस्य चाजीवस्य च ५ जीवस्य चाजीवानां च ६ जीवानामजीवस्य च ७ जीवानामजीवानां च ८, अत्रोदाहरणानि–"[1]जीवस्स सो जिणस्स व अजीवस्स उ जिणिंदपडिमाए। जीवाण जतीणं पिव अजीवाणं तु पडिमाणं॥ १॥ जीवस्साजीवस्स य जइणो बिंबस्स चेगओ समयं। जीवस्साजीवाण य जइणो पडिमाण चेगत्थं॥ २॥ जीवाणमजीवस्स य जईण बिंबस्स चेगओ समयं। जीवाणमजीवाण य जईण पडिमाण चेगत्थं॥ ३॥" सङ्ग्रहमतं तु नमःसामान्यमात्रं तत्स्वामिमात्रस्य च वस्तुनो जीवो नम इति च तुल्याधिकरणम्, अभेदपरमार्थत्वात् तस्य, कश्चित्तु शुद्धतरः पूज्यजीवपूजकजीवसम्बन्धाज्जीवस्यैव नमस्कार इत्येकं भङ्गं प्रतिपद्यते, ऋजुसूत्रमतं तु नमस्कारस्य ज्ञानक्रियाशब्दरूपत्वात् तेषां च कर्तुरनर्थान्तरत्वात् कर्तृस्वामिक एव, शब्दादिमतमपीदमेव, केवलमुपयुक्तकर्तृस्वामिकोऽसौ, तस्य ज्ञानमात्रत्वात् ज्ञानमात्रता चास्योपयोगादेव फलप्राप्तेः, शब्दक्रियाव्यभिचारात्, एकत्वानेकत्वविचारस्तु नैगमादिनयापेक्षया पूर्ववदायोजनीय इति गाथार्थः॥ ८९२॥ कस्येति गतं, केन? इत्यधुना निरूप्यते–केन साधनेन साध्यते नमस्कारः?, तत्रेयं गाथा—

नाणावरणिज्जस्स य दंसणमोहस्स तह खओवसमे। (दा०३) जीवमजीवे अट्ठसु भंगेसु उ होइ सव्वत्थ॥८९३॥

१ जीवस्य स जिनस्यैव अजीवस्य तु जिनेन्द्रप्रतिमायाः। जीवानां यतीनामपि अजीवानां तु प्रतिमानाम्॥ १॥ जीवस्याजीवस्य च यतेर्बिम्बस्य चैकतः समकम्। जीवस्याजीवानां च यतेः प्रतिमानां चैकत्र॥ २॥ जीवानामजीवस्य च यतीनां बिम्बस्य चैकतः समकम्। जीवानामजीवानां च यतीनां प्रतिमानां चैकत्र॥ ३॥

नमस्कार० वि० १

॥३८०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

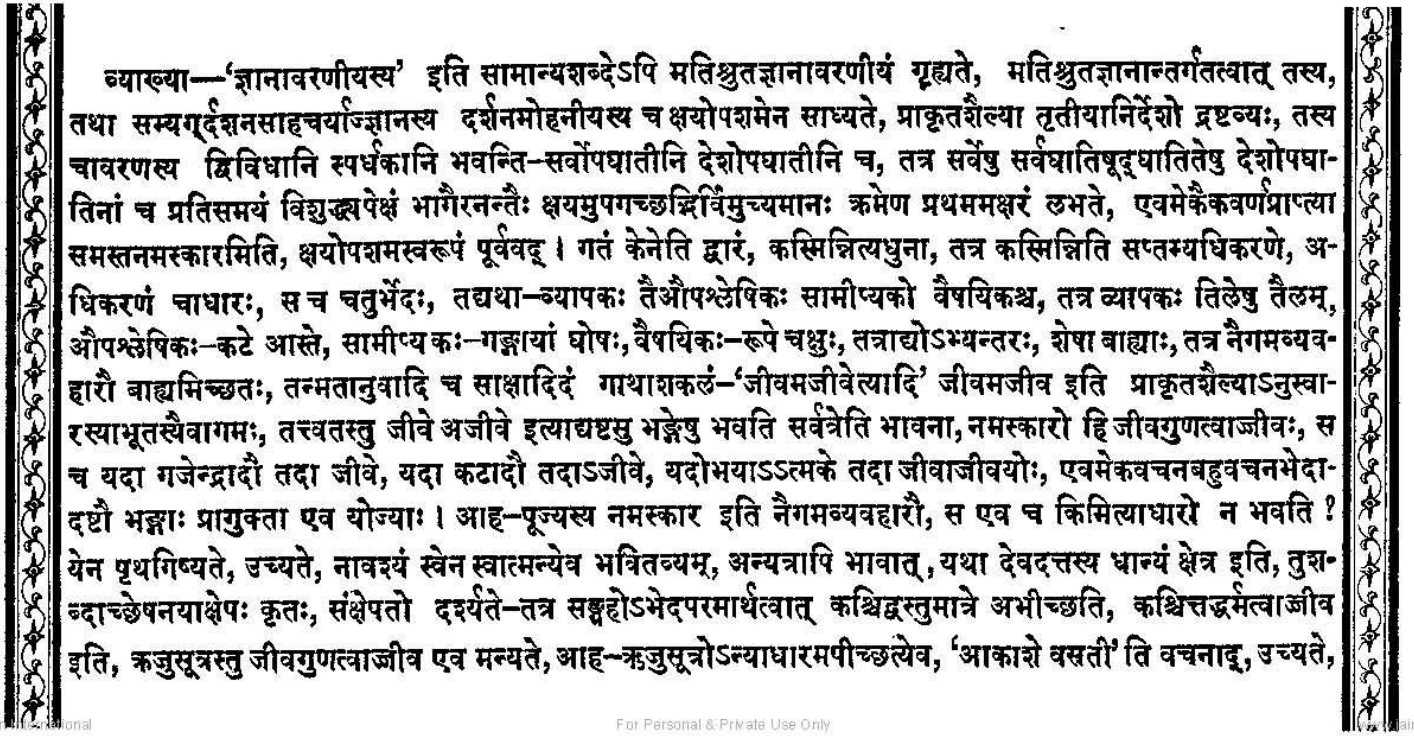

व्याख्या—'ज्ञानावरणीयस्य' इति सामान्यशब्देऽपि मतिश्रुतज्ञानावरणीयं गृह्यते, मतिश्रुतज्ञानान्तर्गतत्वात् तस्य, तथा सम्यग्दर्शनसाहचर्याज्ज्ञानस्य दर्शनमोहनीयस्य च क्षयोपशमेन साध्यते, प्राकृतशैल्या तृतीयानिर्देशो द्रष्टव्यः, तस्य चावरणस्य द्विविधानि स्पर्धकानि भवन्ति–सर्वोपघातीनि देशोपघातीनि च, तत्र सर्वेषु सर्वघातिषूद्धातितेषु देशोपघातिनां च प्रतिसमयं विशुद्ध्यपेक्षं भागैरनन्तैः क्षयमुपगच्छद्भिर्विमुच्यमानः क्रमेण प्रथममक्षरं लभते, एवमेकैकवर्णप्राप्त्या समस्तनमस्कारमिति, क्षयोपशमस्वरूपं पूर्ववद् । गतं केनेति द्वारं, कस्मिन्नित्यधुना, तत्र कस्मिन्निति सप्तम्यधिकरणे, अधिकरणं चाधारः, स च चतुर्भेदः, तद्यथा–व्यापकः तैलौपश्लेषिकः सामीप्यको वैषयिकश्च, तत्र व्यापकः तिलेषु तैलम्, औपश्लेषिकः–कटे आस्ते, सामीप्यकः–गङ्गायां घोषः, वैषयिकः–रूपे चक्षुः, तत्राद्योऽभ्यन्तरः, शेषा बाह्याः, तत्र नैगमव्यवहारौ बाह्यमिच्छतः, तन्मतानुवादि च साक्षादिदं गाथाशकलं–'जीवमजीवेत्यादि' जीवमजीव इति प्राकृतशैल्याऽनुस्वारस्याभूतस्यैवागमः, तत्त्वतस्तु जीवे अजीवे इत्याद्यष्टसु भङ्गेषु भवति सर्वत्रेति भावना, नमस्कारो हि जीवगुणत्वाज्जीवः, स च यदा गजेन्द्रादौ तदा जीवे, यदा कटादौ तदाऽजीवे, यदोभयाऽऽत्मके तदा जीवाजीवयोः, एवमेकवचनबहुवचनभेददृष्टौ भङ्गाः प्रागुक्ता एव योज्याः । आह–पूज्यस्य नमस्कार इति नैगमव्यवहारौ, स एव च किमित्याधारो न भवति ? येन पृथगिष्यते, उच्यते, नावश्यं स्वेन स्वात्मन्येव भवितव्यम्, अन्यत्रापि भावात्, यथा देवदत्तस्य धान्यं क्षेत्र इति, तुशब्दाच्छेषनयाक्षेपः कृतः, संक्षेपतो दर्श्यते–तत्र सङ्ग्रहोऽभेदपरमार्थत्वात् कश्चिद्वस्तुमात्रे अभीच्छति, कश्चित्तद्धर्मत्वाज्जीव इति, ऋजुसूत्रस्तु जीवगुणत्वाज्जीव एव मन्यते, आह–ऋजुसूत्रोऽन्याधारमपीच्छत्येव, 'आकाशे वसती'ति वचनाद्, उच्यते,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

द्रव्यविवक्षायामेवं न गुणविवक्षायामिति, शब्दादयस्तूपयुक्ते ज्ञानरूपे जीव एवेच्छन्ति नान्यत्र, न वा शब्दक्रियारूपमिति गाथार्थः ॥ ८९३ ॥ कस्मिन्निति द्वारमुक्तं, साम्प्रतं कियच्चिरमसौ भवतीति निरूप्यते, तत्रेयं गाथा—

उवओग पडुचंतोमुहुत्त लद्धीइ होइ उ जहन्नो। उक्कोसट्ठिइ छावट्ठि सागरा (दा० ५) ऽरिहाइ पंचविहो॥८९४॥

व्याख्या—उपयोगं प्रतीत्य अन्तर्मुहूर्तं स्थितिरिति सम्बध्यते जघन्यतः उत्कृष्टतश्च, 'लद्धीए होइ उ जहन्नो' लब्धेश्च क्षयोपशमस्य च भवति तु जघन्या स्थितिरन्तर्मुहूर्त एव, उत्कृष्टस्थितिर्लब्धेः षट्षष्टिसागरोपमाणि, सम्यक्त्वकाल इत्यर्थः, एकं जीवं प्रतीत्यैषा, नानाजीवान् पुनरधिकृत्योपयोगापेक्षया जघन्येनोत्कृष्टतश्च स एव, लब्धितश्च सर्वकालमिति॥द्वारम्॥ कतिविधो वा ? इत्यस्य प्रश्नस्य निर्वचनार्थो गाथावयवः–'अरिहाइ पंचविहो'त्ति अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसाधुपदादिसन्निपातात् पञ्चविधार्थसम्बन्धात् अर्हदादिपञ्चविध इत्यनेन चार्थान्तरेण वस्तुस्थित्या नमःपदस्याभिसम्बन्धमाहेति गाथार्थः ॥ ८९४ ॥ द्वारम् ॥ गता षट्पदप्ररूपणेति, साम्प्रतं नवपदाया अवसरः, तत्रेयं गाथा—

संतपयपरूवणया १ दव्वपमाणं च २ खित्त ३ फुसणा य ४। कालो अ ५ अंतरं ६ भाग ७ भाव ८ अप्पाबहुं चेव ९

व्याख्या—सत् इति सद्भूतं विद्यमानार्थमित्यर्थः, सच्च तत्पदं च सत्पदं तस्य प्ररूपणा सत्पदप्ररूपणा, कार्येति वाक्यशेषः, यतश्च नमस्कारो जीवद्रव्यादभिन्न इत्यतो द्रव्यप्रमाणं च वक्तव्यं, कियन्ति नमस्कारवन्ति जीवद्रव्याणि ?, तथा 'क्षेत्रम्' इति कियति क्षेत्रे नमस्कारः ?, एवं स्पर्शना च कालश्च अन्तरं च वक्तव्यं, तथा भाग इति नमस्कारवन्तः शेष-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

जीवानां कतिथे भागे वर्तन्त इति, 'भावे' त्ति कस्मिन् भावे ? 'अप्पाबहुं चेव' त्ति अल्पबहुत्वं च वक्तव्यं, प्राक्प्रतिपन्नप्रतिपद्यमानकापेक्षयेति समासार्थः ॥ ८९५ ॥ व्यासार्थस्तु प्रतिद्वारं वक्ष्यते, तत्राद्यद्वाराभिधित्सयाऽऽह—

संतपयं पडिवन्ने पडिवज्जंते अ मग्गणं गइसुं १। इंदिअ २ काए ३ वेए ४ जोए अ ५ कसाय ६ लेसासु ७ ॥८९६॥

सम्मत्त ८ नाण ९ दंसण १० संजय ११ उवओगओ अ १२ आहारे १३।

भासग १४ परित्त १५ पज्जत्त १६ सुहुमे १७ सन्नी अ १८ भव १९ चरमे २० ॥ ८९७ ॥

व्याख्या—इदं गाथाद्वयं पीठिकायां व्याख्यातत्वान्न विव्रियते। द्वारम्। अनुक्तद्वारत्रयावयवार्थप्रतिपादनायाह—

पलिआसंखिज्जइमे पडिवन्नो हुज्ज (दा०२) खित्तलोगस्स। सत्तसु चउदसभागेसु हुज्ज (दा०३) फुसणावि एमेव

व्याख्या—'पलियासंखेज्जइमे पडिवन्नो होज्ज' त्ति इयं भावना–सूक्ष्मक्षेत्रपल्योपमस्यासङ्ख्येयतमे भागे यावन्तः प्रदेशा एतावन्तो नमस्कारप्रतिपन्ना इति॥ द्वारम्॥ 'खित्तलोगस्स सत्तसु चोद्दसभागेसु होज्ज' त्ति गतार्थं, नवरमधोलोके पञ्चस्विति ॥ द्वारम्॥ 'फुसणावि एमेव' त्ति नवरं पर्यन्तवर्तिनोऽपि प्रदेशान् स्पृशतीति भेदेनाभिधानमिति गाथार्थः॥८९८ द्वारं ॥ कालद्वारावयवार्थव्याचिख्यासयाऽऽह—

एगं पडुच्च हिट्ठा तहेव नाणाजिआण सव्वद्धा (द्वारं ५)। अंतर पडुच्च एगं जहन्नमंतोमुहुत्तं तु ॥ ८९९ ॥

व्याख्या—एकं जीवं प्रतीत्याधस्तात् षट्पदप्ररूपणायां यथा काल उक्तस्तथैव ज्ञातव्यः, नानाजीवानप्यधिकृत्य तथैव,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

यत आह–'तहेव नाणाजीवाण सवद्धा भाणियवा' काक्वा नीयते॥ द्वारम्॥ 'अंतर पडुच्च एगं जहन्नमन्तोमुहुत्तं तु' कण्ठ्यं, नवरं प्रतीत्यशब्दस्य व्यवहितो योगः, एकं प्रतीत्यैवमिति गाथार्थः ॥ ८९९ ॥

उक्कोसेणं चेयं अद्धापरिअट्टओ उ देसूणो। णाणाजीवे णत्थि उ (द्वारं६) भावे य भवे खओवसमे (द्वारं८) ॥९००॥

व्याख्या—उक्कोसेणं चेयं, तमेव दर्शयति–'अद्धापरियट्टओ उ देसूणो णाणाजीवे णत्थि उ' नानाजीवान् प्रतीत्य नास्त्यन्तरं, सदाऽव्यवच्छिन्नत्वात् तस्य॥ द्वारं॥ 'भावे य भवे खओवसमे' त्ति, प्राचुर्यमङ्गीकृत्यैतदुक्तम्, अन्यथा क्षायिकौपशमिकयोरप्येके वदन्ति, क्षायिके यथा–श्रेणिकादीनाम्, औपशमिके श्रेण्यन्तर्गतानामिति, यथासङ्ख्यं च भागद्वारावयवार्थानभिधानमदोषायैव, विचित्रत्वात् सूत्रगतेरिति गाथार्थः ॥ ८९० ॥ द्वारं ॥ भागद्वारं व्याचिख्यासुराह—

जीवाणऽणंतभागो पडिवण्णो सेसगा अणंतगुणा (द्वारं७)। वत्थुं तऽरिहंताइ पञ्च भवे तेसिमो हेऊ ॥९०१॥

व्याख्या—जीवाणणन्तभागो पडिवण्णे सेसगा अपडिवन्नगा अणंतगुणत्ति ॥ द्वारम् ॥ अल्पबहुत्वद्वारं यथा पीठिकायां मतिज्ञानाधिकार इति। साम्प्रतं चशब्दाक्षिप्तं पञ्चविधप्ररूपणामनभिधाय पश्चार्धेन वस्तुद्वारनिरूपणायेदमाह–'वत्थु' इति वस्तु द्रव्यं दलिकं योग्यमर्हमित्यनर्थान्तरं, वस्तु नमस्कारार्हा अर्हदादयः पञ्चैव भवन्ति, तेषां वस्तुत्वेन नमस्कारार्हत्वेऽयं हेतुः–वक्ष्यमाणलक्षण इति गाथार्थः ॥ ९०१ ॥ अधुना चशब्दसूचितां पञ्चविधां प्ररूपणां प्रतिपादयन्नाह—

आरोवणा य भयणा पुच्छा तह दायणा य निज्जवणा। नमुक्कारऽनमुक्कारे नोआइजुएँ व नवहा वा ॥९०२॥

व्याख्या—आरोपणा च भजना पृच्छा तथा 'दायना' दर्शना दापना वा, निर्यापना, तत्र किं जीव एव नमस्कार ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

आहोस्विन्नमस्कार एव जीवः ? इत्येवं परस्परावधारणम् आरोपणा, तथा जीव एव नमस्कार इत्युत्तरपदावधारणम् १, अजीवाद्व्यवच्छिद्य जीव एव नमस्कारोऽवधार्यते, जीवस्त्वनवधारितः, नमस्कारो वा स्यादनमस्कारो वा, एषा एकपद-व्यभिचाराद्भजना २, किंविशिष्टो जीवो नमस्कारः ? किंविशिष्टस्त्वनमस्कार इति पृच्छा ३, अत्र प्रतिव्याकरणं दापना –नमस्कारपरिणतः जीवो नमस्कारो नापरिणत इति ४, निर्यापना त्वेष एव नमस्कारपर्यायपरिणतो जीवो नमस्कारः, नमस्कारोऽपि जीवपरिणाम एव नाजीवपरिणाम इति, एतदुक्तं भवति–दापना प्रश्नार्थव्याख्यानं निर्यापना तु तस्यैव निगमनमिति, अथवेयमन्या चतुर्विधा प्ररूपणेति, यत आह–'नमोक्कारऽनमोक्कारे णोआदिजुए व णवधा वा' तत्र प्रकृत्यकारनोकारोभयनिषेधसमाश्रयाच्चातुर्विध्यं, प्रकृतिः–स्वभावः शुद्धता यथा नमस्कार इति, स एव नञा सम्बन्धादकारयुक्तः अनमस्कारः, स एव नोशब्दोपपदे नोनमस्कारः, उभयनिषेधात्तु नोअनमस्कार इति, तत्र नमस्कारस्तत्परिणतो जीवः, अनमस्कारस्त्वपरिणतो लब्धिशून्यः अन्यो वा, 'नोआइजुए व'त्ति नोआदियुक्तो वा नमस्कारः अनमस्कारश्च, अनेन भङ्गकद्वयाक्षेपो वेदितव्यः, नोशब्देनाऽऽदिर्युक्तो यस्य नमस्कारस्येतरस्य चेत्यक्षरगमनिका, तत्र नोनमस्कारो विवक्षया नमस्कारदेशः अनमस्कारो वा, देशसर्वनिषेधपरत्वान्नोशब्दस्य, नोअनमस्कारोऽपि अनमस्कारदेशो वा नमस्कारो वा, देशसर्वनिषेधत्वादेव, एषा चतुर्विधा, नैगमादिनयाभ्युपगमस्त्वस्याः पूर्वोक्तानुसारेण प्रदर्शनीयः, 'नवधा वे' ति प्रागुक्ता पञ्चविधा इयं चतुर्विधा च सङ्कलिता सती नवविधा प्ररूपणा प्रकारान्तरतो द्रष्टव्येति गाथार्थः ॥ ९०२ ॥ प्ररूपणाद्वारं गतम्, इदानीं निःशेषमिति, साम्प्रतं 'वत्थुं तऽरहंताई पंच भवे तेसिमो हेउ' त्ति गाथाशकलोपन्यस्तमवस-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

रायातं च वस्तुद्वारं विस्तरतो व्याख्यायत इति, तत्रानन्तरोक्तं गाथाशकलं व्याख्यातमेव, नवरं तत्र यदुक्तं 'तेषां वस्तुत्वेऽयं हेतु' रिति, स खल्विदानीं हेतुरुच्यते, तत्रेयं गाथा—

मग्गे १ अविप्पणासो २ आयारे ३ विणयया ४ सहायत्तं ५। पंचविहनमुक्कारं करेमि एएहिँ हेऊहिं॥९०३॥

व्याख्या—मार्गः अविप्रणाशः आचारः विनयता सहायत्वम् अर्हदादीनां नमस्कारार्हत्वे एते हेतवः, यदाह–पञ्चविधनमस्कारं करोमि एभिर्हेतुभिरिति गाथासमासार्थः ॥ इयमत्र भावना–अर्हतां नमस्कारार्हत्वे मार्गः–सम्यग्दर्शनादिलक्षणो हेतुः, यस्मादसौ तैः प्रदर्शितस्तस्माच्च मुक्तिः, ततश्च पारम्पर्येण मुक्तिहेतुत्वात् पूज्यास्त इति। सिद्धानां तु नमस्कारार्हत्वेऽविप्रणाशः, शाश्वतत्वं हेतुः, तथाहि–तदविप्रणाशमवगम्य प्राणिनः संसारवैमुख्येन मोक्षाय घटन्ते। आचार्याणां तु नमस्कारार्हत्वे आचार एव हेतुः, तथाहि–तानाचारवत आचाराख्यापकांश्च प्राप्य प्राणिन आचारपरिज्ञानानुष्ठानाय भवन्ति। उपाध्यायानां तु नमस्कारार्हत्वे विनयो हेतुः, यतस्तान् स्वयं विनीतान् प्राप्य कर्मविनयनसमर्थविनयवन्तो (प्र)भवन्ति देहिन इति। साधूनां तु नमस्कारार्हत्वे सहायत्वं हेतुः, यतस्ते सिद्धिवधूसङ्गमैकनिष्ठानां तदवाप्तिक्रियासाहाय्यमनुतिष्ठन्तीति गाथार्थः ॥ ९०३ ॥ एवं तावत्समासेनार्हदादीनां नमस्कारार्हत्वद्वारेण मार्गप्रणयनादयो गुणा उक्ताः साम्प्रतं प्रपञ्चेनार्हतां गुणानुपदर्शयन्नाह—

अडवीइ देसिअत्तं १ तहेव निज्जामया समुद्दंमि २। छक्कायरक्खणट्ठा महगोवा तेण वुच्चंति ३ ॥ ९०४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

व्याख्या—अटव्यां देशकत्वं कृतमर्हद्भिः, तथैव निर्यामकाः समुद्रे, भगवन्त एव षट्कायरक्षणार्थं यतः प्रयत्नं चक्रुः महागोपास्तेनोच्यन्त इति गाथासमासार्थः ॥ ९०४ ॥ अवयवार्थं तु प्रतिद्वारं वक्ष्यति, तत्र द्वारावयवार्थोऽभिधीयते—

अडविं सपच्चवायं वोलित्ता देसिओवएसेणं । पावंति जहिट्ठपुरं भवाडविंपी तहा जीवा ॥ ९०५ ॥
पावंति निव्वुइपुरं जिणोवइट्ठेण चेव मग्गेणं । अडवीइ देसिअत्तं एवं नेअं जिणिंदाणं ॥ ९०६ ॥

व्याख्या—'अटवीं' प्रतीतां 'सप्रत्यपायाम्' इति व्याघ्रादिप्रत्यपायबहुलां 'वोलेत्त' त्ति उल्लङ्घ्य 'देशिकोपदेशेन' निपुणमार्गज्ञोपदेशेन प्राप्नुवन्ति 'यथा 'इष्टपुरम्' इष्टपत्तनं, भवाटवीमप्युल्लङ्घ्येति वर्तते, तथा जीवाः किं प्राप्नुवन्ति ?–'निर्वृतिपुरं' सिद्धिपुरं जिनोपदिष्टेनैव मार्गेण, नान्योपदिष्टेन, ततश्चाटव्यां देशिकत्वमेवं 'ज्ञेयं' ज्ञातव्यं, केषां ?–जिनेन्द्राणामिति गाथाद्वयसमासार्थः ॥ ९५–९६ ॥ व्यासार्थस्तु कथानकादवसेयः, तच्चेदम्–एत्थं अडवी दुविहा–दव्वाडवी भावाडवी य, तत्थ दव्वाडवीए ताव उदाहरणं–वसंतपुरं णयरं, धणो सत्थवाहो, सो पुरंतरं गंतुकामो घोसणं कारेइ जहा णंदिफलणाए, तओ तत्थ बहवे तडिगकप्पडिगादयो संपिंडिया, सो तेसिं मिलियाणं पंथगुणे कहेइ–एगो पंथो उज्जुओ एगो वंको, जो सो वंको तेण मणागं सुहंसुहेण गम्मइ, बहुणा य कालेण इच्छियपुरं पाविज्जइ, अवसाणे सोवि उज्जुगं चेव ओयरइ, जो

१ अत्राटवी द्विविधा–द्रव्याटवी भावाटवी च, तत्र द्रव्याटव्यां तावदुदाहरणम्–वसन्तपुरं नगरं, धनः सार्थवाहः, स पुरान्तरं गन्तुकामो घोषणां कारयति–यथा नन्दीफलज्ञाते, ततस्तत्र बहवस्तटिककार्पटिकादयः संपिण्डिताः, स तेभ्यो मिलितेभ्यः पथिगुणान् कथयति–एकः पन्थाः ऋजुरेको वक्रः, यः स वक्रस्तेन मनाक् सुखंसुखेन गम्यते, बहुना च कालेन ईप्सितपुरं प्राप्यते, अवसाने सोऽपि ऋजुमेवावतरति, यः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

पुणं उज्जुगो तेण लहुं गम्मइ, किच्छेण य, कहं ?, सो अईव विसमो सण्हो य, तत्थ ओतारे चेव दुवे महाघोरा वग्घसिंहा परिवसंति, ते तओ पाए चेव लग्गंति, अमुयंताण य पहं न पहवंति, अवसाणं च जाव अणुवट्टंति, रुक्खा य एत्थ एगे मणोहरा, तेसिं पुण छायासु न वीसमियव्वं, मारणप्पिया खु सा छाया, परिसडियपंडुपत्ताणं पुण अहो मुहुत्तगं वीसमियव्वं, मणोहररूवधारिणो महुरवयणेणं एत्थ मग्गंतरट्ठिया बहवे पुरिसा हक्कारेंति, तेसिं वयणं न सोयव्वं, सत्थिगा खणंपि ण मोत्तव्वा, एगागिणो नियमा भयं, दुरंतो य घोरो दवग्गी अप्पमत्तेहिं उल्लवेयव्वो, अणोल्हविज्जंतो य नियमेण डहइ, पुणो य दुग्गुच्चपवओ उवउत्तेहिं चेव लंघेयव्वो, अलंघणे नियमा मरिज्जंति, पुणो महती अइगुविलगव्वरा वंसकुडंगी सिग्घं लंघियव्वा, तंमि ठियाणं बहू दोसा, तओ य लहुगो खड्डो, तस्स समीवे मणोरहो णाम बंभणो णिच्चं सण्णिहिओ अच्छइ, सो भणइ–मणागं पूरेहि एयंति, तस्स न सोयव्वं, सो ण पूरेयव्वो, सो खु पूरिज्जमाणो महल्लतरो

१ पुनःऋजुस्तेन लघु गम्यते, कृच्छ्रेण च, कथं ?, सोऽतीव विषमः श्लक्ष्णश्च, तत्रावतार एव द्वौ महाघोरौ व्याघ्रसिंहौ परिवसतः, तौ ततः पादयोरेव लगतः, अमुञ्चतोश्च पन्थानं न प्रभवन्ति, अवसानं च यावदनुवर्त्तेते, वृक्षाश्चात्रैके मनोहराः, तेषां पुनश्छायासु न विश्रमितव्यं, मारणप्रियैव सा छाया, परिशटितपाण्डुपत्राणामधो मुहूर्त्तं विश्रमितव्यं, मनोहररूपधारिणश्च बहवो मधुरवचनेनात्र मार्गान्तरस्थिताः पुरुषा आकारयन्ति, तेषां वचनं न श्रोतव्यं, सार्थिकाः क्षणमपि न मोक्तव्याः, एकाकिनो नियमाद्भयं, दुरन्तो घोरश्च दवाग्निरप्रमत्तैर्विध्यापयितव्यः, अविध्यापितश्च नियमेन दहति, पूनश्च दुर्गोच्चपर्वत उपयुक्तैरेव लङ्घयितव्यः, अनुल्लङ्घने च नियमात् म्रियते, पुनर्महती अतिगुपिलगह्वरा वंशकुडङ्गी क्षीघ्रं लङ्घयितव्या, तस्यां स्थितानां बहवो दोषाः, ततश्च लघुर्गर्त्तः, तस्य समीपे मनोरथो नाम ब्राह्मणो नित्यं सन्निहितस्तिष्ठति, स भणति–मनाक् पूरयैनमिति, तस्य न श्रोतव्यं, स न पूरयितव्यः स हि पूर्यमाणो महत्तरो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

भवइ पंथाओ य भज्जिज्जइ, फलाणि य एत्थ दिव्वाणि पंचप्पयाराणि णेत्ताइसुहंकराणि किंपागाणं न पेक्खियव्वाणि ण भोत्तव्वाणि, बावीसं च णं एत्थ घोरा महाकराला पिसाया खणं खणमभिद्दवंति तेऽवि णं ण गणेयव्वा, भत्तपाणं च तत्थ विभागओ विरसं दुल्लभं चत्ति, अप्पयाणयं च ण कायव्वं, अणवरयं च गंतव्वं, रत्तीए वि दोण्णि जामा सुवियव्वं, सेसदुगे य गंतव्वमेव, एवं च गच्छंतेहिं देवाणुप्पिया! खिप्पमेव अडवी लंघिज्जइ, लंघित्ता य तमेगंतदोगच्चवज्जियं पसत्थं सिवपुरं पाविज्जइ, तत्थ य पुणो ण होंति केइ किलेसत्ति। तओ तत्थ केइ तेण समं पयट्टा जे उज्जुगेण पधाविया, अण्णे पुण इयरेण, तओ सो पसत्थे दिवसे उच्चलिओ, पुरओ वच्चंतो मग्गं आहणइ, सिलाइसु य पंथस्स दोसगुणपिसुणगाणि अक्खराणि लिहइ, एत्तियं गयमेत्तियं सेसंति विभासा, एवं जे तस्स निद्देसे वट्टिया ते तेण समं अचिरेण तं पुरं पत्ता, जेऽवि लिहियाणुसारेण संमं गच्छंति तेऽवि पावंति, जे न वट्टिया न वा वट्टंति छायादिसु पडिसेविणो ते न पत्ता न

१ भवति पन्थानश्च भज्यन्ते, फलानि चात्र दिव्यानि पञ्चप्रकाराणि नेत्रादिसुखकराणि किम्पाकानां न प्रेक्षयितव्यानि न भोक्तव्यानि, द्वाविंशतिश्चात्र घोरा महाकरालाः पिशाचाः क्षणं क्षणमभिद्रवन्ति तेऽपि न गणयितव्याः, भक्तपानं च तत्र विभागतो विरसं दुर्लभं चेति, अप्रयाणं च न कर्त्तव्यम्, अनवरतं च गन्तव्यं, रात्रावपि द्वौ यामौ स्वप्तव्यं शेषद्विके च गन्तव्यमेव, एवं गच्छद्भिरेव देवानुप्रियाः! क्षिप्रमेवाटवी लङ्घ्यते, लङ्घयित्वा च तदेकान्तदौर्गत्यवर्जितं प्रशस्तं शिवपुरं प्राप्यते, तत्र च पुनर्न भवन्ति केचिल्लेशा इति। ततस्तत्र केचित्तेन समं प्रवृत्ता ये ऋजुना प्रधाविताः, अन्ये पुनरितरेण, ततः स प्रशस्ते दिवसे उच्चलितः, पुरतो व्रजन् मार्गं आहन्ति (समीकरोति), शिलादिषु च पथो गुणदोषपिशुनान्यक्षराणि लिखति, एतावद्गतमेतावच्छेषमिति विभाषा, एवं ये तस्य निर्देशे वृत्तास्ते तेन सममचिरेण तत्पुरं प्राप्ताः, येऽपि लिखितानुसारेण सम्यग्गच्छन्ति तेऽपि प्राप्नुवन्ति, ये न वृत्ता न वा वर्त्तन्ते छायादिषु प्रतिसेविनस्ते न प्राप्ता न

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

यावि पावंति । एवं दव्वाडवीदेसिगणायं, इयाणिं भावाडवीदेसिगणाए जोइज्जइ–सत्थवाहत्थाणीया अरहंता, उग्घोसणाथाणीया धम्मकहा तडिगाइत्थाणीया जीवा, अडवीत्थाणीओ संसारो, उज्जुगो साहुमग्गो, वंको य सावगमग्गो, पप्पपुरत्थाणीओ मोक्खो, वग्घसिंघतुल्ला रागद्दोसा, मणोहररुक्खच्छायाथाणीया इत्थिगाइसंसत्तवसहीओ, परिसडियाइत्थाणीआओ अणवज्जवसहीओ, मग्गतडत्थहक्कारणपुरिसथाणगा पासत्थाई अकल्लाणमित्ता, सत्थिगाथाणीया साहू, दवग्गाइथाणिया कोहादओ कसाया, फलथाणीया विसया, पिसायथाणीया बावीसं परीसहा भत्तपाणाणि एसणिज्जाणि, अपयाणगथाणीओ निच्चुज्जमो, जामदुगे सज्झाओ, पुरपत्ताणं च णं मोक्खसुहंति । एत्थथ तं पुरं गंतुकामो जणो उवएसदाणाइणा उवगारी सत्थवाहोत्ति नमंसति, एवं मोक्खत्थीहिवि भगवं पणमियव्वो ॥ तथा चाह—

जह तमिह सत्थवाहं नमइ जणो तं पुरं तु गंतुमणो । परमुवगारित्तणओ निव्विग्घत्थं च भत्तीए ॥ ९०७ ॥

अरिहो उ नमुक्कारस्स भावओ खीणरागमयमोहो । मुक्खत्थीणंपि जिणो तहेव जम्हा अओ अरिहा ॥९०८॥

१ चापि प्राप्नुवन्ति । एवं द्रव्याटवीदेशिकज्ञातम्, इदानीं भावाटवीदेशिकज्ञाते योज्यते–सार्थवाहस्थानीया अर्हन्तः, उद्घोषणास्थानीया धर्मकथा तटिकादिस्थानीया जीवाः, अटवीस्थानीयः संसारः, ऋजुः साधुमार्गः, वक्रश्च श्रावकमार्गः, प्राप्यपुरस्थानीयो मोक्षः व्याघ्रसिंहतुल्यौ रागद्वेषौ, मनोहरवृक्षच्छायास्थानीयाः स्त्र्यादिसंसक्तवसतयः, परिशटितादिस्थानीया अनवद्यवसतयः, मार्गतटस्थाह्वायकपुरुषस्थानीयाः पार्श्वस्थादयोऽकल्याणमित्राणि, सार्थिकस्थानीयाः साधवः, दवाग्न्यादिस्थानीयाः क्रोधादयः कषायाः, फलस्थानीया विषयाः, पिशाचस्थानीया द्वाविंशतिः परीषहाः, भक्तपानान्वेषणीयानि, अप्रयाणस्थानीयो नित्योद्यमः, यामद्विके स्वाध्यायः, पुरप्राप्तानां च मोक्षसुखमिति । अत्र च तत्पुरं गन्तुकामो जन उपदेशदानादिनोपकारी सार्थवाह इति नमस्यति, एवं मोक्षार्थिभिरपि भगवान् प्रणन्तव्यः ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

अरहंत-व्याख्या एवं तस्य नमस्कारः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

गाथाद्वयं निगदसिद्धं, नवरं मदशब्देन द्वेषोऽभिधीयते इति ॥

संसाराअडवीए मिच्छत्तऽन्नाणमोहिअपहाए । जेहिं कय देसिअत्तं ते अरिहंते पणिवयामि ॥ ९०९ ॥

व्याख्या—संसाराटव्यां, किंविशिष्टायां ?–'मिथ्यात्वाज्ञानमोहितपथायां' तत्र मिथ्यात्वाज्ञानाभ्यां मोहितः पन्था यस्यामिति विग्रहः, तस्यां, यैः कृतं देशिकत्वं तानर्हतः 'प्रणौमि' अभ्यर्थयामीति गाथार्थः ॥ ९०९ ॥ दृष्ट्वा ज्ञात्वा च सम्यक् पन्थानमासेव्य च कृतं नान्यथा, तथा चाऽऽह—

सम्मद्दंसणदिट्ठो नाणेण य सुट्ठु तेहिं उवलद्धो । चरणकरणेण पहओ निव्वाणपहो जिणिंदेहिं ॥ ९१० ॥

व्याख्या—'समग्दर्शनेन' अविपरीतदर्शनेन दृष्टः, ज्ञानेन च 'सुष्ठु' यथाऽवस्थितः तैरर्हद्भिर्ज्ञातः, चरणं च करणं चेत्येकवद्भावस्तेन 'प्रहतः' आसेवितः 'निर्वाणपथः' मोक्षमार्गो जिनेन्द्रैः । तत्र व्रतादि चरणं, पिण्डविशुद्ध्यादि च करणं, यथोक्तम्–'वयं समणधम्म संजमं वेयावच्चं च बंभगुत्तीओ । णाणादितियं तवं कोवं निग्गहाई चरणमेयं ॥ १ ॥ पिंडविसोही समिई भावण पडिमा य इंदियनिरोहो । पडिलेहणगुत्तीओ अभिग्गहा चेव करणं तु ॥ २ ॥" इति गाथार्थः ॥ ९१० ॥ न केवलं प्रहत एव, किन्तु ते खल्वनेन पथा निर्वृतिपुरमेव प्राप्ता इति, आह च—

सिद्धिवसहिमुवगया निव्वाणसुहं च ते अणुप्पत्ता । सासयमव्वाबाहं पत्ता अयरामरं ठाणं ॥ ९११ ॥

व्याख्या—'सिद्धिवसतिं' मोक्षालयम् 'उपगताः' सामीप्येन–कर्मविगमलक्षणेन प्राप्ता इति, अनेनैकेन्द्रियव्यवच्छेद-

* अभ्यर्चयामि प्र०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

माह, केषाञ्चित् सुखदुःखरहिता एव ते तत्र तिष्ठन्तीति दर्शनम्, अत आह–'निर्वाणसुखं च तेऽनुप्राप्ता' निरतिशय-सुखं प्राप्ता इत्यर्थः, ते च केषाञ्चिद्दर्शनपरिभवादिनेहाऽऽगच्छन्तीति दर्शनं, तन्निवृत्त्यर्थमाह–'शाश्वतं' नित्यम् 'अव्या-बाधं' व्याबाधारहितं प्राप्ताः 'अजरामरं स्थानं' जरामरणरहितं स्थानमिति गाथार्थः ॥ ९११ ॥ द्वारं १ ॥ साम्प्रतं द्वितीय-द्वारव्याचिख्यासयाऽऽह—

पावंति जहा पारं संमं निज्जामया समुद्दस्स । भवजलहिस्स जिणिंदा तहेव जम्हा अओ अरिहा ॥ ९१२ ॥

व्याख्या—'प्रापयन्ति' नयन्ति 'यथा' येन प्रकारेण 'पारं' पर्यन्तं 'सम्यक्' शोभनेन विधिना 'निर्यामकाः' प्रतीताः, कस्य ?–समुद्रस्य, 'भवजलधेः' भवसमुद्रस्य जिनेन्द्रास्तथैव, पारं प्रापयन्तीति वर्तते, यस्मादेवमतस्तेऽर्हाः, नमस्कार-स्येति गम्यते, अयं संक्षेपार्थः ॥ ९१२ ॥ भावत्थो पुण एत्थ निज्जामया दुविहा, तंजहा–दव्वनिज्जामया भावनिज्जामया य, दव्वनिज्जामए उदाहरणं तहेव घोसणगं विभासा । एत्थ अट्ठवाया वण्णेयव्वा, तंजहा–पाईणं वाए पडीणं वाए ओईणं वाए दाहिणं वाए, जो उत्तरपुरत्थिमेण सो सत्तासुओ, दाहिणपुव्वेणं तुंगारो, अवरदाहिणेणं *बीआओ, अवरुत्तरेण गज्जओ, एवेते अट्ठ वाया, अन्नेवि दिसासुं अट्ठ चेव, तत्थ उत्तरपुव्वेणं दोन्नि, तंजहा–उत्तरसत्तासुओ पुरत्थिमसत्तासुओ य

१ भावार्थः पुनरत्र निर्यामका द्विविधाः, तद्यथा–द्रव्यनिर्यामका भावनिर्यामकाश्च, द्रव्यनिर्यामके उदाहरणं तथैव घोषणं विभाषा । अत्राष्टौ वाता वर्ण यितव्याः, तद्यथा–प्राचीनवातः प्रतीचीनवातः उदीचीनवातो दाक्षिणात्यवातः, य उत्तरपौरस्त्यः स सत्त्वासुकः दक्षिणपूर्वस्यां तुङ्गारः, अपरदक्षिणस्यां बीजापः अपरोत्तरस्यां गर्जभः, एवमेतेऽष्टवाताः, अन्येऽपि दिक्ष्वष्टैव, तत्रोत्तरपूर्वस्यां द्वौ, तद्यथा–उत्तरसत्त्वासुकः पूर्वसत्त्वासुकश्च, * विभावो. विजाओ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

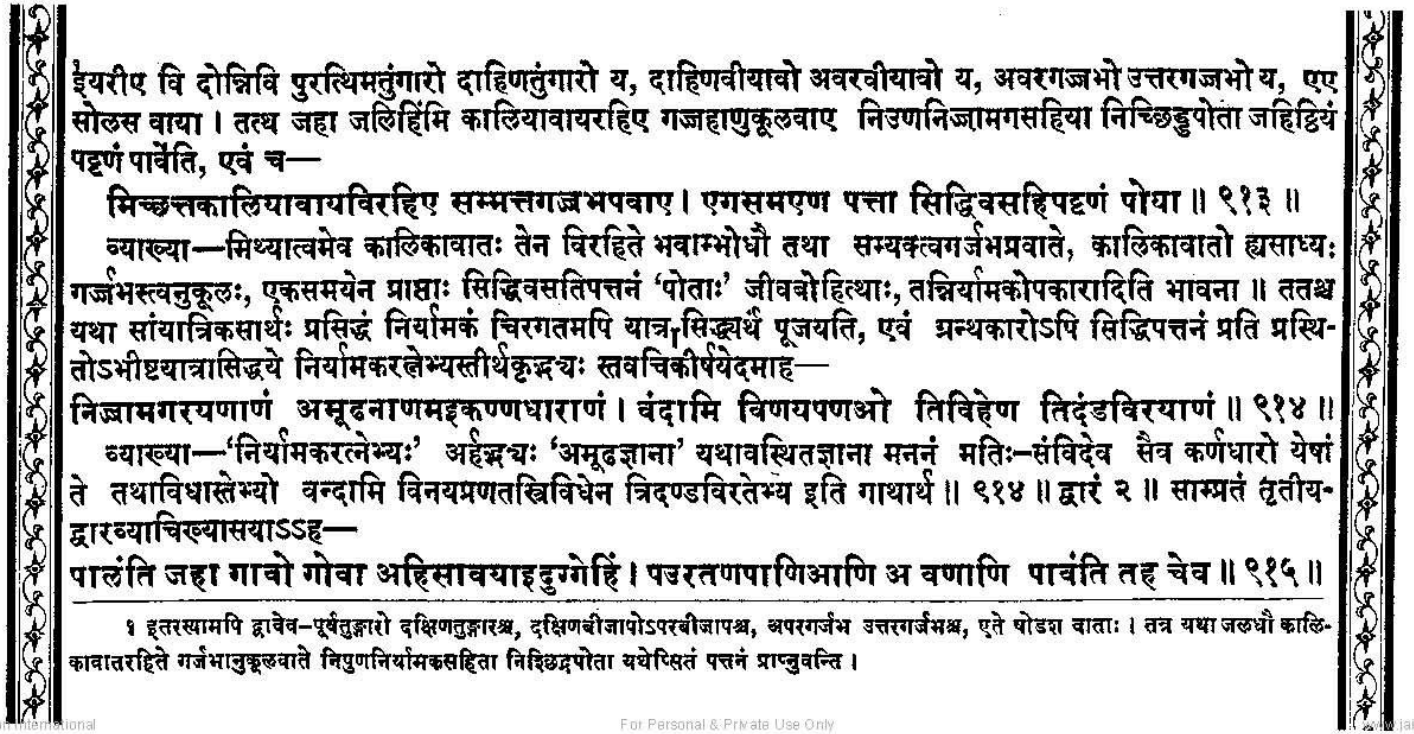

इयरीए वि दोन्निवि पुरत्थिमतुंगारो दाहिणतुंगारो य, दाहिणवीयावो अवरवीयावो य, अवरगज्जभो उत्तरगज्जभो य, एए सोलस वाया। तत्थ जहा जलहिंमि कालियावायरहिए गज्जहाणुकूलवाए निउणनिज्जामगसहिया निच्छिड्डपोता जहिट्ठियं पट्टणं पावेंति, एवं च—

मिच्छत्तकालियावायविरहिए सम्मत्तगज्जभपवाए। एगसमएण पत्ता सिद्धिवसहिपट्टणं पोया ॥ ९१३ ॥

व्याख्या—मिथ्यात्वमेव कालिकावातः तेन विरहिते भवाम्भोधौ तथा सम्यक्त्वगर्जभप्रवाते, कालिकावातो ह्यसाध्यः गर्जभस्त्वनुकूलः, एकसमयेन प्राप्ताः सिद्धिवसतिपत्तनं 'पोताः' जीवबोहित्थाः, तन्निर्यामकोपकारादिति भावना ॥ ततश्च यथा सांयात्रिकसार्थः प्रसिद्धं निर्यामकं चिरगतमपि यात्रासिद्ध्यर्थं पूजयति, एवं ग्रन्थकारोऽपि सिद्धिपत्तनं प्रति प्रस्थितोऽभीष्टयात्रासिद्धये निर्यामकरत्नेभ्यस्तीर्थकृद्भ्यः स्तवचिकीर्षयेदमाह—

निज्जामगरयणाणं अमूढनाणमइकण्णधाराणं। वंदामि विणयपणओ तिविहेण तिदंडविरयाणं ॥ ९१४ ॥

व्याख्या—'निर्यामकरत्नेभ्यः' अर्हद्भ्यः 'अमूढज्ञाना' यथावस्थितज्ञाना मननं मतिः–संविदेव सैव कर्णधारो येषां ते तथाविधास्तेभ्यो वन्दामि विनयप्रणतस्त्रिविधेन त्रिदण्डविरतेभ्य इति गाथार्थः ॥ ९१४ ॥ द्वारं २ ॥ साम्प्रतं तृतीयद्वारव्याचिख्यासयाऽऽह—

पालंति जहा गावो गोवा अहिसावयाइदुग्गेहिं। पउरतणपाणिआणि अ वणाणि पावंति तह चेव ॥ ९१५ ॥

१ इतरस्यामपि द्वावेव–पूर्वतुङ्गारो दक्षिणतुङ्गारश्च, दक्षिणबीजापोऽपरबीजापश्च, अपरगर्जभ उत्तरगर्जभश्च, एते षोडश वाताः। तत्र यथा जलधौ कालिकावातरहिते गर्जभानुकूलवाते निपुणनिर्यामकसहिता निश्छिद्रपोता यथेप्सितं पत्तनं प्राप्नुवन्ति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

जीवनिकाया गावो जं ते पालंति ते महागोवा। मरणाइभया उ जिणा निव्वाणवणं च पावंति ॥ ९१६ ॥
तो उवगारित्तणओ नमोऽरिहा भविअजीवलोगस्स। सव्वस्सेह जिणिंदा लोगुत्तमभावओ तह य ॥९१७॥

व्याख्या—गाथात्रयं निगदसिद्धमेव ॥ द्वारम् ३ ॥ एवं तावदुक्तेन प्रकारेण नमोऽर्हत्वहेतवे गुणाः प्रतिपादिताः, साम्प्रतं प्रकारान्तरेण नमोऽर्हत्वहेतुगुणाभिधित्सयाऽऽह—

रागद्दोसकसाए, इंदिआणि अ पंचवि। परीसहे उवस्सग्गे, नामयंता नमोऽरिहा ॥ ९१८ ॥

व्याख्या—रागद्वेषकषायेन्द्रियाणि च पञ्चापि परीषहानुपसर्गान्नामयन्तो नमोऽर्हा इति। तत्र 'रञ्ज रागे' रज्यते अनेन अस्मिन् वा रञ्जनं वा रागः, स च नामादिश्चतुर्विधः, तत्र नामस्थापने सुगमे, द्रव्यरागो द्वेधा– आगमतो नोआगमतश्च, आगमतो रागपदार्थज्ञस्तत्रानुपयुक्तः, नोआगमतो ज्ञशरीरभव्यशरीरतद्व्यतिरिक्तभेदस्त्रिविधः, व्यतिरिक्तोऽपि कर्मद्रव्यरागो नोकर्मद्रव्यरागश्च, कर्मद्रव्यरागश्चतुर्विधः–रागवेदनीयपुद्गला योग्याः १ बध्यमानका २ बद्धाः ३ उदीरणावलिकाप्राप्ताश्च ४, बन्धपरिणामाभिमुखा योग्याः, बन्धपरिणामप्राप्ता बध्यमानकाः, निर्वृत्तबन्धपरिणामाः सत्कर्मतया स्थिता जीवेनाऽऽत्मसात्कृता बद्धाः, उदीरणाकरणेनाऽऽकृष्योदीरणावलिकामानीताश्चरमा इति, नोकर्मद्रव्यरागस्तु कर्मरागैकदेशस्तदन्यो वा, तदन्यो द्विविधः–प्रायोगिको वैश्रसिकश्च, प्रायोगिको कुसुम्भरागादिः, वैश्रसिकः सन्ध्याभ्ररागादिः, भावरागोऽप्यागमेतरभेदाद् द्विधैव, आगमतो रागपदार्थज्ञ उपयुक्तः, नोआगमतो रागवेदनीयकर्मोदयप्रभवः परिणामविशेषः, स च द्वेधा–प्रशस्तोऽप्रशस्तश्च, अप्रशस्तस्त्रिविधः–दृष्टिरागो विषयरागः स्नेहरागश्च, तत्र त्रयाणां त्रिषष्ट्यधिकानां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

प्रावादुकशतानामात्मीयात्मीयदर्शनानुरागो दृष्टिरागः, यथोक्तम्–"असियसयं किरियाणं अकिरियवाईणमाहु चुलसीई । अन्नाणिय सत्तट्ठी वेणइयाणं च बत्तीसा ॥ १ ॥ जिणवयणबाहिरमई मूढा णियदंसणाणुराएण । सव्वण्णुकहियमेते मोक्खपहं न उ पवज्जंति ॥ २ ॥" विषयरागस्तु शब्दादिविषयगोचरः, स्नेहरागस्तु विषयादिनिमित्तविकलोऽविनीतेष्वप्यपत्यादिषु यो भवति, तत्रेह रागे उदाहरणम्–खितिपतिट्ठियं णयरं, तत्थ दो भाउगा–अरहन्नओ अरहमित्तो य, महंतस्स भारिया खुड्डुलए रत्ता, सो नेच्छइ, बहुसो उवसग्गेइ, भणिया य अणेण–किं न पेच्छसि भाउगंति ?, भत्तारो मारिओ, सा पच्छा भणइ-इयाणिं पि न इच्छसि ?, सो तेण निवेएण पव्वइओ, साहू जाओ, सावि अट्टवसट्टा मया सुणिया जाया, साहुणो य तं गामं गया, सुणियाए दिट्ठो, लग्गा मग्गं मग्गिं, उवसग्गोत्ति नट्ठो रत्तीए । तत्थवि मया मक्कडी जाया अडवीए, तेऽवि कम्मधम्मसंजोगेण तीसे अडवीए मज्झेणं वच्चंति, तीए दिट्ठो, लग्गा कंठे, तत्थवि किलेसेण पलाओ, तत्थवि मया जक्खिणी जाया, ओहिणा पेच्छइ, छिद्दाणि मग्गइ, सोऽवि अप्पमत्तो, सा छिद्दं न लहइ, सा य सव्वादरेणं तस्स छिद्दं मग्गेइ,

१ अशीतं शतं क्रियावादिनामक्रियावादिनामाहुश्चतुरशीतिम् । अज्ञानिकानां सप्तषष्टिं वैनयिकानां च द्वात्रिंशतं ॥१॥ जिनवचनबाह्यमतयो मूढा निजदर्शनानुरागेण । सर्वज्ञकथितमेते मोक्षपथं नैव प्रपद्यन्ते ॥ २ ॥ २ क्षितिप्रतिष्ठितं नगरं, तत्र द्वौ भ्रातरौ–अरहन्नकोऽर्हन्मित्रश्च, महतो भार्या क्षुल्लके रक्ता, स नेच्छति, बहुश उपसर्गयति, भणिता चानेन–किं न पश्यसि भ्रातरमिति?, भर्त्ता मारितः, सा पश्चाद्भणति–इदानीमपि नेच्छसि ?, स तेन निर्वेदेन प्रव्रजितः, साधुर्जातः, साऽपि आर्त्तवशार्त्ता मृता शुनी जाता, साधवश्च तं ग्रामं गताः, शुन्या दृष्टः, लग्ना पृष्ठतः पृष्ठतः, उपसर्ग इति नष्टो रात्रौ । तत्रापि मृता मर्कटी जाता अटव्यां, तेऽपि कर्मधर्मसंयोगेन तस्या अटव्या मध्येन व्रजन्ति, तया दृष्टः, लग्ना कण्ठे, तत्रापि क्लेशेन पलायितः तत्रापि मृता यक्षिणी जाताऽवधिना प्रेक्षते, छिद्राणि मार्गयति, सोऽप्यप्रमत्तः, सा छिद्रं न लभते, सा च सर्वादरेण तस्य छिद्रं मार्गयति, * तदैवाऽऽगत्य साश्लेषं मुहुर्भर्तुरिवाकरोत्.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्नेहराग विषयक दृष्टांतः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

एवं च जाइ कालो, तेण किर जे समवया समणा ते तं भणंति–हसिऊण तरुणसमणा भणंति धन्नोऽसि अरहमित्त! तुमं। जंसि पिओ सुणियाणं वयंस! गिरिमक्कडीणं च ॥ १ ॥ अण्णया सो साहू वियरयं उत्तरइ, तत्थ य पायविक्खंभं पाणियं, तेण पादो पसारिओ गइभेएण, तत्थ य ताए छिद्दं लहिऊण ऊरुओ छिन्नो, मिच्छामि दुक्कडंति–पडिओ माहं आउक्काए पडिओ होज्जत्ति, सम्मद्दिट्ठियाए सा घाडिया, तहेव सप्पएसो लाइओ रूढो य देवयप्पहावेणं, अन्ने भणंति–सो भिक्खस्स गओ अन्नगामे, तत्थ ताए वाणमंतरीए तस्स रूवं छाएत्ता तस्स रूवेणं पंथे तलाए ण्हाइ, अन्नेहिं दिट्ठो, सिट्ठं गुरूणं, आवस्सए आलोएइ, गुरूहिं भणियं–सव्वं आलोएहि अज्जो!, सो उवउत्तो मुहणंतगमाइ, भणइ–न संभरामि खमासमणा!, तेहिं पडिभिण्णो भणइ–नत्थित्ति, आयरिया अणुवट्ठियस्स न दिंति पायच्छित्तं, सो चिंतेइ–किं कह वत्ति? सा उवसंता साहइ–एयं मए कयं, सा साविया जाया, सव्वं परिकहेइ। एस तिविहो अप्पसत्थो, तस्स अप्पसत्थस्स इमा

१ एवं च याति कालः तेन (सह) किल ये समवयसः श्रमणास्ते तं भणन्ति–हसित्वा तरुणश्रमणा भणन्ति धन्योऽसि अर्हन्मित्र! त्वम्। यदसि प्रियः शुन्या वयस्य! गिरिमर्कट्याश्च ॥ १ ॥ अन्यदा स साधुर्विस्तरकमुत्तरति, तत्र च पादविष्कम्भं पानीयं, तेन पादः प्रसारितो गतिभेदेन, तत्र च तया छिद्रं लब्ध्वोरु छिन्नं, मिथ्या मे दुष्कृतमिति पतितो माऽहमप्काये पतितो भूवमिति, सम्यग्दृष्ट्या सा घाटिता, तथैव सप्रदेशो लगितो रूढश्च देवताप्रभावेण अन्ये भणन्ति–स भिक्षायै गतोऽन्यग्रामे, तत्र तया व्यन्तर्या तस्य रूपं छादयित्वा तस्य रूपेण पथि तडागे स्नाति, अन्यैर्दृष्टः, शिष्टं गुरुभ्यः, आवश्यके आलोचयति, गुरुभिर्भणितं–सर्वमालोचय आर्य!, स उपयुक्तो मुखानन्तकादि (केषु) भणति–न संस्मरामि क्षमाश्रमणाः!, तैः प्रतिभिन्नो भणति–नास्तीति, आचार्या अनुपस्थिताय न ददते प्रायश्चित्तं, स चिन्तयति–किं कथं वेति, सोपशान्ता कथयति–एतन्मया कृतं, सा श्राविका जाता, सर्वं परिकथयति। एष त्रिविधः अप्रशस्तः, तस्याप्रशस्तस्यैषा * संमं प्र० जाव पडिक्कमणं देवसियं तावं आभोएति प्र०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

णिरुत्तगाहा–'रज्जंति असुभकलिमलकुणिमाणिट्ठेसु पाणिणो जेणं । रागोत्ति तेण भण्णइ जं रज्जइ तत्थ रागत्थो ॥ १ ॥' एषोऽप्रशस्तः, प्रशस्तस्त्वर्हदादिविषयः, यथोक्तं–"अरहंतेसु य रागो रागो साहूसु बंभयारीसु । एस पसत्थो रागो अज्ज सरागाण साहूणं ॥ १ ॥" एवंविधं रागं नामयन्तः–अपनयन्तः, क्रियाकालनिष्ठाकालयोरभेदादपनीत एव गृह्यते, आह–प्रशस्तनामनमयुक्तं, न, तस्यापि बन्धात्मकत्वात्, आह–'एस पसत्थो' इत्यादि कथं ?, सरागसंयतानां कूपखननोदाहरणात् प्राशस्त्यमित्यलं प्रसङ्गेन । इदानीं दोषो द्वेषो वा, 'दुष वैकृत्ये' दुष्यतेऽनेन अस्मिन्नस्माद्वेति दोषः, 'द्विष अप्रीतौ' वा द्विष्यतेऽनेनेत्यादिना द्वेषः, असावपि नामादिश्चतुर्विधो न्यक्षेण रागवदवसेयः, तथाऽपि दिग्मात्रतो निर्दिश्यते–नोआगमतो द्रव्यद्वेषः ज्ञशरीरेतरव्यतिरिक्तः कर्मद्रव्यद्वेषो नोकर्मद्रव्यद्वेषश्च, कर्मद्रव्यद्वेषः योग्यादिभेदाश्चतुर्विधा एव पुद्गलाः, नोकर्मद्रव्यदोषो दुष्टव्रणादिः, भावद्वेषस्तु द्वेषकर्मविपाकः, स च प्रशस्तेतरभेदः, प्रशस्तोऽज्ञानादिगोचरः, तथा ह्यज्ञानमविरतिमित्यादि द्वेष्टि, अप्रशस्तस्तु सम्यक्त्वादिगोचरः, तत्राप्रशस्ते उदाहरणं–णंदो नाम नाविओ गंगाए लोगं उत्तारेइ, तत्थ य धम्मरुई णाम अणगारो तीए नावाए उत्तिण्णो, जणो मोल्लं दाऊण गओ, साहू रुद्धो, फिडिया भिक्खावेला, तहावि न विसज्जेइ, वालुयाए उण्हाए तिसाइओ य अमुंचंतो रुट्ठो, सो य दिट्ठीविसलद्धिओ,

१ निरुक्तगाथा–'रज्यन्ति अशुभकलिमलकुणिमानिष्टेषु प्राणिनो येन । राग इति तेन भण्यते यद्रज्यति तत्र रागस्थः ॥१॥ २ अर्हत्सु च रागो रागः साधुषु ब्रह्मचारिषु । एष प्रशस्तो रागोऽद्य सरागाणां साधूनाम् ॥ १ ॥ ३ नन्दो नाम नाविको गङ्गायां लोकानुत्तारयति, तत्र च धर्मरुचिर्नाम अनगारस्तया नावोत्तीर्णः, जनो मूल्यं दत्त्वा गतः, साधू रुद्धः, स्फिटिता भिक्षावेला, तथाऽपि न विसर्जयति, वालुकायामुष्णायां तृषार्दितश्चामुच्यमानो रुष्टः, स च दृष्टिविषलब्धिमान्,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वेष-विषयक दृष्टांतः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

तेणं डड्ढो मओ एगाए सभाए घरकोइलओ जाओ, साहूवि विहरंतो तं गामं गओ, भत्तपाणं गहाय भोत्तुकामो सभं अइगओ, तेण दिट्ठो, सो पेक्खंतओ चेव तस्स आसुरत्तो, भोत्तुमारद्धस्स कयवरं पाडेइ, अन्नं पासं गओ, तत्थवि, एवं कहिंचि न लब्भइ, सो तं पलोएइ, को रे एस? नाविगनंदमंगुलो?, दड्ढो, समुद्दं जओ गंगा पविसइ तत्थ वरिसे २ अण्णण्णेणं मग्गेणं वहइ, चिराणगं जं तं मयगंगा भण्णइ, तत्थ हंसो जाओ, सोऽवि माहमासे सत्थेण पहाईए जाइ, तेण दिट्ठो, पाणियस्स पक्खे भरिऊण सिंचइ, तत्थवि उद्दविओ पच्छा सीहो जाओ अंजणगपव्वए, सोऽवि सत्थेण तं वीईवयइ, सीहो उट्ठिओ, सत्थो भिन्नो, सो इमं न मुयइ, तत्थवि दड्ढो, मओ य वाणारसीए बडुओ जाओ, तत्थवि भिक्खं हिंडंतं अन्नेहिं डिभरूवेहिं समं हणइ, छुभइ धूली, रुट्ठेण दड्ढो, तत्थेव राया जाओ, जाई संभरइ, सव्वाओ अईयजाईओ सरइ असुभाओ, जइ संपयं मारेइ तो बहुगाओ फीट्टो होमित्ति तस्स जाणणाणिमित्तं समस्सं समालंबेइ, जो एयं

---

१ तेन दग्धो मृत एकस्यां सभायां गृहकोकिलो जातः, साधुरपि विहरन् तं ग्रामं गतः, भक्तपानं गृहीत्वा भोक्तुकामः सभामतिगतः, तेन दृष्टः, स पश्यन्नेव तस्मै क्रुद्धः, भोक्तुमारब्धे कचवरं पातयति, अन्यं पार्श्वं गतः, तत्रापि, एवं कुत्रापि न लभते, स तं प्रलोकयति–को रे एषः नाविको नन्दोऽमङ्गलः?, दग्धः, समुद्रं यतो गङ्गा प्रविशति तत्र वर्षे वर्षेऽन्यान्येन मार्गेण वहति, चिरन्तनो यः स मृतगङ्गेति भण्यते, तत्र हंसो जातः, सोऽपि माघमासे सार्थेन प्रभाते (पथातीते) याति, तेन दृष्टः, पानीयेन पक्षौ भृत्वा सिञ्चति, तत्राप्युपद्रावितः पश्चात् सिंहो जातोऽञ्जनकपर्वते, सोऽपि सार्थेन तं व्यतिव्रजति, सिंह उत्थितः, सार्थो भिन्नः, स एनं न मुञ्चति, तत्रापि दग्धो मृतश्च वाराणस्यां बटुको जातः, तत्रापि भिक्षां हिण्डमानमन्यैर्डिम्भरूपैः समं हन्ति, क्षिपति धूलिं, रुष्टेन दग्धः, तत्रैव राजा जातः, जातिं स्मरति, सर्वा अतीतजातीरशुभाः स्मरति, यदि सम्प्रति मार्येय तदा बहोः स्फिटितोऽभविष्यम् इति तस्य ज्ञाननिमित्तं समस्यां समालम्बयति, य एनां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

पूरइ तस्स रज्जस्स अद्धं देमि, तस्स इमो अत्थो–गंगाए नाविओ नंदो, सहाए घरकोइलो। हंसो मयंगतीराए, सीहो अंजणपव्वए ॥ १ ॥ वाणारसीए बडुओ, राया तत्थेव आगओ' एवं गोवगावि पढंति, सो विहरंतो तत्थ समोसढो, आरामे ठिओ, आरामिओ पढइ, तेण पुच्छिओ साहइ, तेण भणियं–अहं पूरेमि 'एएसिंघायओ जो उ सो इत्थेव समागओ' सो घेत्तूणं रण्णो अग्गओ पढइ, राया सुणंतओ मुच्छिओ, सो हम्मइ–सो भणइ हम्ममाणो कव्वं काउं अहं न याणामि। लोगस्स कलिकलंडो एसो समणेण मे दिन्नो ॥१॥ राया आसत्थो वारेइ, केणंति पुच्छति, साहइ–समणेणं, राया तत्थ मणुस्से विसज्जेइ, जइ अणुजाणह वंदओ एमि, आगओ सड्ढो जाओ, साहूवि आलोइयपडिक्कंतो सिद्धो ॥ एवंविधं द्वेषं नामयन्त इत्यादि रागवदायोज्यं, इह रागद्वेषौ क्रोधाद्यपेक्षया नयैः पर्यालोच्येते–नैगमस्य सङ्ग्रहव्यवहारान्तर्गतत्वात् सङ्ग्रहादिभिरेव विचारः, तत्र सङ्ग्रहस्याप्रीतिजातिसामान्यात् क्रोधमानौ द्वेषः, मायालोभौ तु प्रीतिजातिसामान्याद् रागः, व्यवहारस्य तु क्रोधमानमाया द्वेषः, मायाया अपि परोपघातार्थं प्रवृत्तिद्वारेणाप्रीतिजातावन्तर्भावात्, लोभस्तु रागः, ऋजुसू-

---

१ पूरयति तस्मै राज्यस्यार्धं ददामि, तस्यैषोऽर्थः–गङ्गायां नाविको नन्दः सभायां गृहकोकिलः। हंसो मृतगङ्गातीरे सिंहोऽञ्जनपर्वते ॥ १ ॥ वाराणस्यां बटुको राजा तत्रैवागतः' एवं गोपा अपि पठन्ति, स विहरन् तत्र समवसृतः, आरामे स्थितः, आरामिकः पठति, तेन पृष्टः कथयति, तेन भणितम्–अहं पूरयामि, 'एतेषां घातको यस्तु सोऽत्रैव समागतः' स गृहीत्वा राज्ञोऽग्रतः पठति, राजा शृण्वन् मूर्छितः, स हन्यते, स भणति हन्यमानः काव्यं कर्तुमहं न जाने। लोकस्य कलिकारक एष श्रमणेन मह्यं दत्तः ॥१॥ राजा आश्वस्तो वारयति, केनेति पृच्छति, कथयति–श्रमणेन, राजा तत्र मनुष्यान् विसृजति–यदि अनुजानीत वन्दितुमायामि, आगतः श्राद्धो जातः, साधुरप्यालोचितप्रतिक्रान्तः सिद्धः।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

त्रस्य त्वप्रीतिरूपत्वात् क्रोध एव परगुणद्वेषः, मानादयस्तु भाज्याः, कथं ?, यदा मानः स्वाहङ्कारे प्रयुज्यते तदाऽऽत्मनि बहुमानप्रीतियोगाद् रागः, यदा तु स एव परगुणद्वेषे प्रयुज्यते तदाऽप्रीतिरूपत्वाद् द्वेषः, एवं मायालोभावप्यात्मनि मूर्च्छार्पणाद् रागः, तावेव परोपघातनिमित्तयोगादप्रीतिरूपत्वाद् द्वेषः, शब्दादीनां तु लोभ एव मानमाये स्वगुणोपकारमूर्च्छात्मकत्वात् प्रीत्यन्तर्गतत्वाल्लोभस्वरूपवदतस्त्रितयमपि रागः, स्वगुणोपकारांशरहितास्तु मानाद्यंशाः क्रोधश्च परोपघातात्मकत्वात् द्वेष इत्यलं प्रसङ्गेन, विशेषभावना विशेषावश्यकादवसेयेति ॥द्वारम्॥अथ कषायद्वारं, शब्दार्थः प्राग्वत्, तेषामष्टधा निक्षेपः, नामस्थापनाद्रव्यसमुत्पत्तिप्रत्ययादेशरसभावलक्षणः, आह च–"णामं ठवणा दविए उप्पत्ती पच्चए य आएसे। रसभावकसायाणं णएहिँ छहिँ मग्गणा तेसिं ॥ १ ॥" तत्र नामस्थापने क्षुण्णे, द्रव्यकषायो व्यतिरिक्तः कर्मद्रव्यकषायो नोकर्मद्रव्यकषायश्च, कर्मद्रव्यकषायो योग्यादिभेदाः कषायपुद्गलाः, नोकर्मद्रव्यकषायस्तु सर्जकषायादिः, उत्पत्तिकषायो यस्माद् द्रव्यादेर्बाह्यात् कषायप्रभवस्तदेव कषायनिमित्तत्वाद् उत्पत्तिकषाय इति, उक्तं च–"किं[2] एत्तो कट्ठयरं जं मूढो खाणुगंमि अप्फिडिओ। खाणुस्स तस्स रूसइ ण अप्पणो दुप्पओगस्स ॥ १ ॥' प्रत्ययकषायः खल्वान्तरकारणविशेषः तत्पुद्गललक्षणः, आदेशकषायः कैतवकृतभृकुटिभङ्गुराकारः, तस्य हि कषायमन्तरेणापि तथादेशदर्शनात्, रसकषायो हरीतक्यादीनां रसः, भावकषायो द्विविधः–आगमतस्तदुपयुक्तो नोआगमतस्तदुदय एव,

१ नामस्थापनाद्रव्ये उत्पत्तौ प्रत्यय आदेशे च। रसभावकषायाणां नयैः षड्भिर्मार्गणा तेषाम् ॥ १ ॥ २ किमेतस्मात्कष्टतरं यन्मूढः स्थाणावास्कालितः। स्थाणवे तस्मै रुष्यति नात्मनो दुष्प्रयोगाय ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कषाय, तस्य अष्ट्विध-निक्षेपा:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

स च क्रोधादिभेदाच्चतुर्विधः, क्रोधोऽपि नामादिभेदाच्चतुर्विधः कषायप्ररूपणायां भावित एव, तथापि व्यतिरिक्तो द्रव्यक्रोधः प्राकृतशब्दसामान्यापेक्षत्वात् चर्मकारकोत्थः रजकनीलिकोत्थश्च क्रोध इति गृह्यते, भावक्रोधस्तु क्रोधोदय एव, स च चतुर्भेदः, यथोक्तं भाष्यकृता–"[1]जलरेणुभूमिपव्वयराईसरिसो चउव्विहो कोहो" प्रभेदफलमुत्तरत्र वक्ष्यामः । तत्थ[2] कोहे उदाहरणं–वसंतपुरे णयरे उच्छन्नवंसो एगो दारगो देसंतरं संकममाणो सत्थेण उज्झिओ तावसपल्लिं गओ, तस्स नामं अग्गिओत्ति, तावसेण संवड्ढिओ, जम्मो नामं सो तावसो, जमस्स पुत्तोत्ति जमदग्गिओ जाओ, सो घोरं तवच्चरणं करेइ, विक्खाओ जाओ । इओ य दो देवा वेसाणरो सड्ढो धन्नंतरी तावसभत्तो, ते दोवि परोप्परं पन्नवेंति, भणंति य– साहुतावसे परिक्खामो, आह सड्ढो–जो अम्हं सवअंतिगओ तुब्भ य सवप्पहाणो ते परिक्खामो । इओ य मिहिलाए णयरीए तरुणधम्मो पउमरहो राया, सो चंपं वच्चइ वसुपुज्जसामिस्स पामूलं पवयामित्ति, तेहिं सो परिक्खिज्जइ भत्तेणं पाणेण य, पंथे य विसमे सो सुकुमालओ दुक्खाविज्जइ, अणुलोमे य से उवसग्गे करिंति, सो धणियतरागं थिरो जाओ,

१ जलरेणुभूमिपर्वतराजीसदृशश्चतुर्विधः क्रोधः । २ तत्र क्रोधे उदाहरणम्–वसन्तपुरे नगरे उत्सन्नवंश एको दारको देशान्तरं संक्रामन् सार्थेनोज्झितस्तापसपल्लीं गतः, तस्य नामाग्निक इति, तापसेन संवर्धितः, यमो नाम स तापसः, यमस्य पुत्र इति जामदग्न्यो जातः, स घोरं तपश्चरणं करोति, विख्यातो जातः। इतश्च द्वौ देवौ–वैश्वानरः श्राद्धो धन्वन्तरी (च) तापसभक्तः, तौ द्वावपि परस्परं प्रज्ञापयतः, भणतश्च–साधुतापसौ परीक्षावहे, आह श्राद्धः–योऽस्माकं सर्वान्तिको युष्माकं च सर्वप्रधानस्तौ परीक्षावहे । इतश्च मिथिलायां नगर्यां तरुणधर्मो पद्मरथो राजा, स चम्पां व्रजति वासुपूज्यस्वामिनः पादमूले प्रव्रजामीति, ताभ्यां स परीक्ष्यते भक्तेन पानेन च, पथि च विषमे स सुकुमारो दुःख्यते, अनुलोमांश्च तस्योपसर्गान् कुरुतः, स बाढं स्थिरो जातः,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रोधकषाय संबंधे परसुरामस्य कथानकं

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

सो तेहिं न खोभिओ, अन्ने भणंति–*सावओ भत्तपच्चक्खाइओ, ते सिद्धपुत्तरूवेणं गया, अइसए साहिंति, भणंति य–मा इमं करेहि जहा चिरं जीवियव्वं, सो भणइ–बहुओ मे धम्मो होहीति, न सक्को खोभेउं। गया जमदग्गिस्स मूलं, सउणरूवाणि कयाणि, कुच्चे से घरओ कओ, सउणओ भणइ–भद्दे! जामि हिमवंतं, सा न देइ मा ण एहिसित्ति, सो सवहे करेइ–गोघायकाइ जहा एमित्ति, सा भणइ–न एएहिं पत्तियामित्ति, जइ एयस्स रिसिस्स दुक्कियं पियसित्ति तो ते विसज्जेमि, सो रुट्ठो, तेण दोवि दोहिंवि हत्थेहिं गहियाणि, पुच्छियाणि भणंति–महरिसि! अणवच्चोसित्ति, सो भणइ–सच्चयं, खोभिओ, एवं सो सावगो जाओ देवो। इमोऽवि ताओ आयावणाउ ओत्तिन्नो मिगकोट्ठगं णयरं जाइ, तत्थ जियसत्तू राया, सो उट्ठिओ–किं देमि?, धूयं देहित्ति, तस्स धूयासयं, जा तुमं इच्छइ सा तुज्झत्ति, कन्नंतेउरं गओ, ताहिं दट्ठूण निच्छूढं, न लज्जिसित्ति भणिओ, ताओ खुज्जीकयाओ, तत्थेगा रेणुएणं रमइ तस्स धूया, तीए णेणं फलं पणामियं,

१ स ताभ्यां न क्षोभितः, अन्ये भणन्ति–श्रावको भक्तप्रत्याख्यायकः, तौ सिद्धपुत्ररूपेण गतौ, अतिशयान् कथयतः, भणतश्च–मा इमं कार्षीः यथा चिरं जीवितव्यं, स भणति–बहुर्मे धर्मो भविष्यति, न शक्यः (क्तः) क्षोभयितुं। गतौ जमदग्नेर्मूलं, शकुनरूपे कृते, कूचें तस्य गृहं कृतं, शकुनको भणति–भद्रे! यामि हिमवन्तं, सा न ददाति मा न गा इति, स शपथान् करोति–गोघातकादीन् यथैष्यामीति, सा भणति–नैतैः प्रत्येमि इति, यद्येतस्य ऋषेर्दुष्कृतं पिबसीति तदा त्वां विसृजामि, स रुष्टः, तेन द्वावपि द्वाभ्यामपि हस्ताभ्यां गृहीतौ, पृष्टौ भणतः–महर्षे! अनपत्योऽसीति, स भणति–सत्यं, क्षोभितः, एवं स श्रावको जातो देवः। अयमपि तस्या आतापनाया अवतीर्णो मृगकोष्ठकं नगरं याति, तत्र जितशत्रू राजा, स उत्थितः–किं ददामि?, दुहितरं देहीति, तस्य दुहितृशतं, या स्वामिच्छति सा तवेति, कन्यान्तःपुरं गतः, ताभिर्दृष्ट्वा निष्ठ्यूतं, न लज्जसीति भणितः, ताः कुब्जीकृताः, तत्रैका रेणौ रमते तस्य दुहिता, तस्यै अनेन फलं दत्तम्, *नेदं वाक्यं प्रत्यन्तरे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

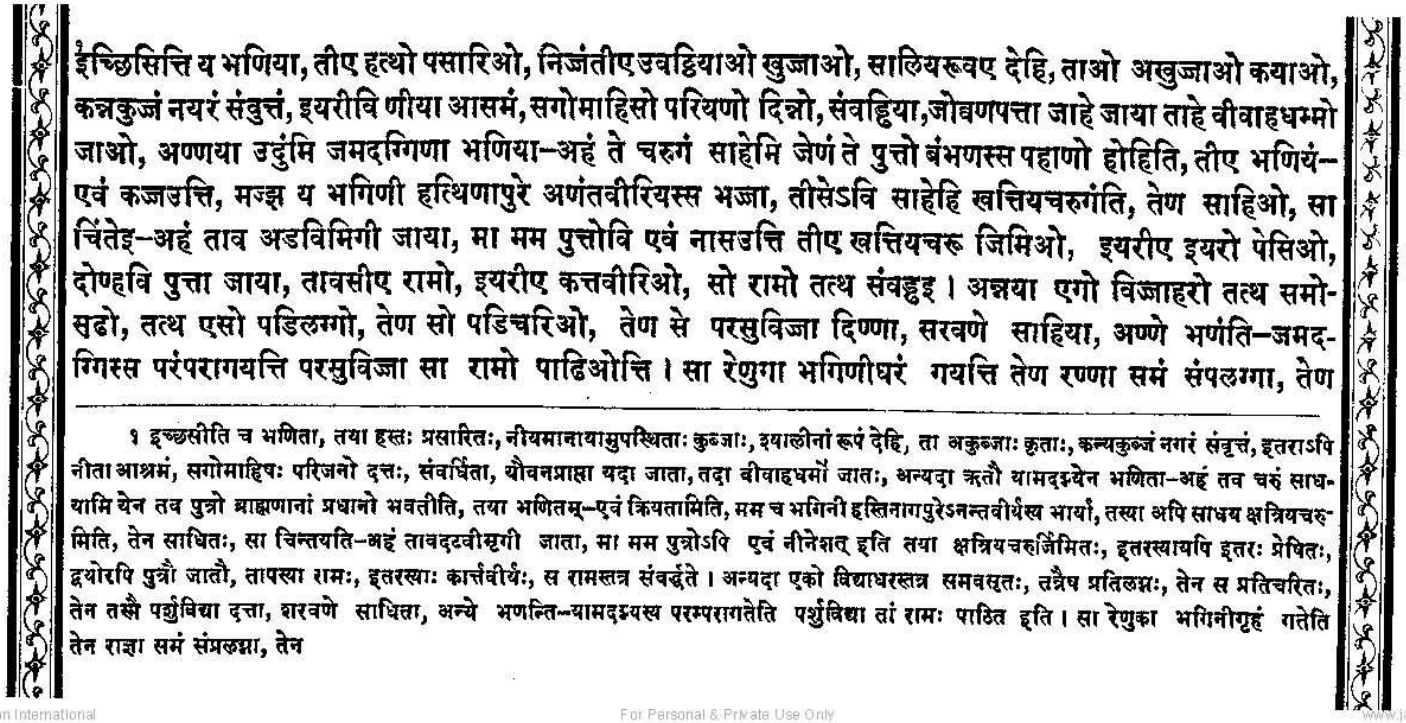

इच्छिसित्ति य भणिया, तीए हत्थो पसारिओ, निज्जंतीए उवट्ठियाओ खुज्जाओ, सालियरूवए देहि, ताओ अखुज्जाओ कयाओ, कन्नकुज्जं नयरं संवुत्तं, इयरीवि णीया आसमं, सगोमाहिसो परियणो दिन्नो, संवड्ढिया, जोवणपत्ता जाहे जाया ताहे वीवाहधम्मो जाओ, अण्णया उदुंमि जमदग्गिणा भणिया–अहं ते चरुगं साहेमि जेणं ते पुत्तो बंभणस्स पहाणो होहिति, तीए भणियं–एवं कज्जउत्ति, मज्झ य भगिणी हत्थिणापुरे अणंतवीरियस्स भज्जा, तीसेऽवि साहेहि खत्तियचरुगंति, तेण साहिओ, सा चिंतेइ–अहं ताव अडविमिगी जाया, मा मम पुत्तोवि एवं नासउत्ति तीए खत्तियचरू जिमिओ, इयरीए इयरो पेसिओ, दोण्हवि पुत्ता जाया, तावसीए रामो, इयरीए कत्तवीरिओ, सो रामो तत्थ संवड्ढइ। अन्नया एगो विज्जाहरो तत्थ समोसढो, तत्थ एसो पडिलग्गो, तेण सो पडिचरिओ, तेण से परसुविज्जा दिण्णा, सरवणे साहिया, अण्णे भणंति–जमदग्गिस्स परंपरागयत्ति परसुविज्जा सा रामो पाढिओत्ति। सा रेणुगा भगिणीघरं गयत्ति तेण रण्णा समं संपलग्गा, तेण

---

१ इच्छसीति च भणिता, तया हस्तः प्रसारितः, नीयमानायामुपस्थिताः कुब्जाः, इयालीनां रूपं देहि, ता अकुब्जाः कृताः, कन्यकुब्जं नगरं संवृत्तं, इतराऽपि नीता आश्रमं, सगोमाहिषः परिजनो दत्तः, संवर्धिता, यौवनप्राप्ता यदा जाता, तदा वीवाहधर्मो जातः, अन्यदा ऋतौ यामदग्न्येन भणिता–अहं तव चरुं साधयामि येन तव पुत्रो ब्राह्मणानां प्रधानो भवतीति, तया भणितम्–एवं क्रियतामिति, मम च भगिनी हस्तिनागपुरेऽनन्तवीर्यस्य भार्या, तस्या अपि साधय क्षत्रियचरुमिति, तेन साधितः, सा चिन्तयति–अहं तावदटवीमृगी जाता, मा मम पुत्रोऽपि एवं नीनेशत् इति तया क्षत्रियचरुर्जेमितः, इतरस्यापि इतरः प्रेषितः, द्वयोरपि पुत्रौ जातौ, तापस्या रामः, इतरस्याः कार्त्तवीर्यः, स रामस्तत्र संवर्द्धते। अन्यदा एको विद्याधरस्तत्र समवसृतः, तत्रैष प्रतिलग्नः, तेन स प्रतिचरितः, तेन तस्मै पर्शुविद्या दत्ता, शरवणे साधिता, अन्ये भणन्ति–यामदग्न्यस्य परम्परागतेति पर्शुविद्या तां रामः पाठित इति। सा रेणुका भगिनीगृहं गतेति तेन राज्ञा समं संप्रलग्ना, तेन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

से पुत्तो जाओ, सपुत्ता जमदग्गिणा आणिया, रुट्ठो, सा रामेण सपुत्तिया मारिया, सो य किर तत्थेव इसुसत्थं सिक्खिओ, तीसे भगिणीए सुयं, रण्णो कहियं, सो आगओ आसमं विणासित्ता गावीए घेत्तूणं पहाविओ, रामस्स कहियं, तेण पहाविऊण परसुणा मारिओ, कत्तवीरिओ य राया जाओ, तस्स देवी तारा। अन्नया से पिउमरणं कहियं, तेण आगएणं जमदग्गी मारिओ, रामस्स कहियं, तेणागएणं जलंतेणं परसुणा कत्तवीरिओ मारिओ, सयं चेव रज्जं पडिवन्नं। इओ य सा तारा देवी तेण संभमेण पलायंती तावसासमं गया, पडिओ से मुहेणं गब्भो, नामं कयं सुभूमो, रामस्स परसू जहि २ खत्तियं पेच्छइ तहिं तहिं जलइ, अन्नया तावसासमस्स पासेणं वीईवयइ, परसू पज्जलिओ, तावसा भणंति—अम्हेच्चिय खत्तिया, तेण रामेण सत्तवारा निक्खत्ता पुहवी कया, हणूणं थालं भरियं, एवं किर रामेणं कोहेणं खत्तिया कहिया॥ एवंविधं क्रोधं नामयन्त इत्यादि पूर्ववत्। मानोऽपि नामादिश्चतुर्विध एव, कर्मद्रव्यमानस्तथैव नोकर्मद्रव्यमानस्तु स्तब्धद्रव्यलक्षणः, भावमानस्तु तद्विपाकः, स च चतुर्धा, यथाऽऽह—'तिणिसलयाकट्ठट्ठियसलेत्थंभोवमो

१ तस्याः पुत्रो जातः, सपुत्रा जामदग्न्येनानीता, रुष्टः, सा रामेण सपुत्रा मारिता, स च किल तत्रैवेषुशास्त्रं शिक्षितः, तस्या भगिन्या श्रुतं, राज्ञे कथितं, स आगत आश्रमं विनाश्य गा गृहीत्वा प्रधावितः, रामाय कथितं, तेन प्रधाव्य पर्शुर्मारितः, कार्त्तवीर्यश्च राजा जातः, तस्य देवी तारा। अन्यदा तस्य पितृमरणं कथितं, तेनागतेन जमदग्निर्मारितः, रामाय कथितं, तेनागतेन ज्वलन्त्या पर्शुर्या कार्त्तवीर्यो मारितः, स्वयमेव राज्यं प्रतिपन्नम्। इतश्च सा तारादेवी तेन संभ्रमेण पलायमाना तापसाश्रमं गता, पतितश्च तस्याः स्वमुखेन गर्भः, नाम कृतं सुभूमः, रामस्य पर्शुः यत्र २ क्षत्रियं पश्यति तत्र तत्र ज्वलति, अन्यदा तापसाश्रमस्य पार्श्वेन व्यतिव्रजति, पर्शुर्ज्वलिता, तापसा भणन्ति–वयमेव क्षत्रियाः, तेन रामेण सप्त वारा निःक्षत्रिया पृथ्वी कृता, हनुभिः स्थालं भृतं, एवं किल रामेण क्रोधेन क्षत्रिया हताः। २ तिनिशलताकाष्ठास्थिशैलस्तम्भोपमो मानः।

॥३९२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

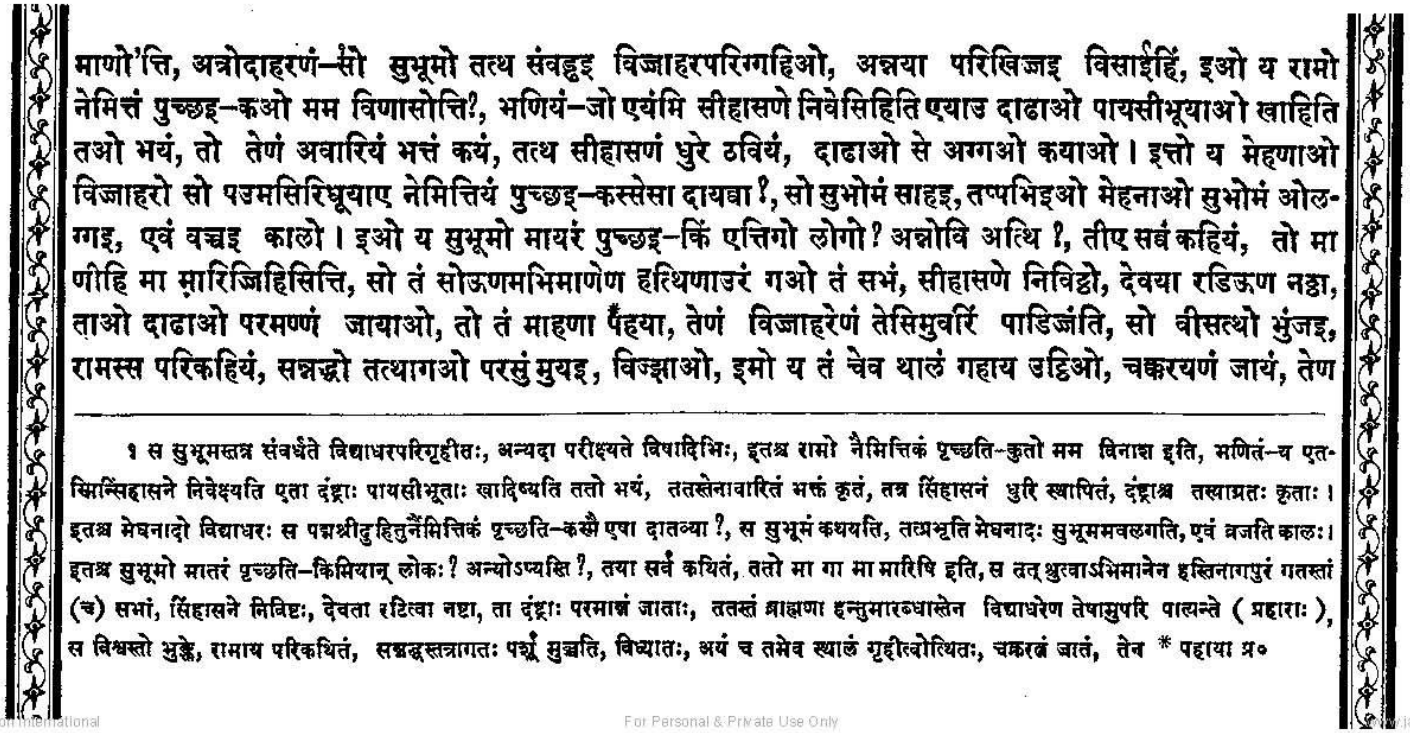

माणो'त्ति, अत्रोदाहरणं–सो सुभूमो तत्थ संवड्ढइ विज्जाहरपरिग्गहिओ, अन्नया परिखिज्जइ विसाईहिं, इओ य रामो नेमित्तं पुच्छइ–कओ मम विणासोत्ति?, भणियं–जो एयंमि सीहासणे निवेसिहिति एयाउ दाढाओ पायसीभूयाओ खाहिति तओ भयं, तो तेणं अवारियं भत्तं कयं, तत्थ सीहासणं धुरे ठवियं, दाढाओ से अग्गओ कयाओ। इत्तो य मेहणाओ विज्जाहरो सो पउमसिरिधूयाए नेमित्तियं पुच्छइ–कस्सेसा दायव्वा?, सो सुभोमं साहइ, तप्पभिइओ मेहनाओ सुभोमं ओलग्गइ, एवं वच्चइ कालो। इओ य सुभूमो मायरं पुच्छइ–किं एत्तिगो लोगो? अन्नोवि अत्थि?, तीए सव्वं कहियं, तो मा णीहि मा मारिज्जिहिसित्ति, सो तं सोऊणमभिमाणेण हत्थिणाउरं गओ तं सभं, सीहासणे निविट्ठो, देवया रडिऊण नट्ठा, ताओ दाढाओ परमण्णं जायाओ, तो तं माहणा पेहया, तेणं विज्जाहरेणं तेसिमुवरिं पाडिज्जंति, सो वीसत्थो भुंजइ, रामस्स परिकहियं, सन्नद्धो तत्थागओ परसुं मुयइ, विज्झाओ, इमो य तं चेव थालं गहाय उट्ठिओ, चक्करयणं जायं, तेण

---

१ स सुभूमस्तत्र संवर्धते विद्याधरपरिगृहीतः, अन्यदा परीक्ष्यते विद्यादिभिः, इतश्च रामो नैमित्तिकं पृच्छति–कुतो मम विनाश इति, भणितं–च एतस्मिन्सिंहासने निवेक्ष्यति एता दंष्ट्राः पायसीभूताः खादिष्यति ततो भयं, ततस्तेनावारितं भक्तं कृतं, तत्र सिंहासनं धुरि स्थापितं, दंष्ट्राश्च तस्याग्रतः कृताः। इतश्च मेघनादो विद्याधरः स पद्मश्रीदुहित्रर्नैमित्तिकं पृच्छति–कस्मै एषा दातव्या?, स सुभूमं कथयति, तत्प्रभृति मेघनादः सुभूममवलगति, एवं व्रजति कालः। इतश्च सुभूमो मातरं पृच्छति–किमियान् लोकः? अन्योऽप्यस्ति?, तया सर्वं कथितं, ततो मा गा मा मारिषि इति, स तत् श्रुत्वाऽभिमानेन हस्तिनागपुरं गतस्तां (च) सभां, सिंहासने निविष्टः, देवता रटित्वा नष्टा, ता दंष्ट्राः परमान्नं जाताः, ततस्तं ब्राह्मणा हन्तुमारब्धास्तेन विद्याधरेण तेषामुपरि पात्यन्ते (प्रहाराः), स विश्वस्तो भुङ्क्ते, रामाय परिकथितं, सन्नद्धस्तत्रागतः परशुं मुञ्चति, विध्यातः, अयं च तमेव स्थालं गृहीत्वोत्थितः, चक्ररत्नं जातं, तेन * पहाया प्र०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मानकषाय संबंधे सुभूमचक्रवर्ती-

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

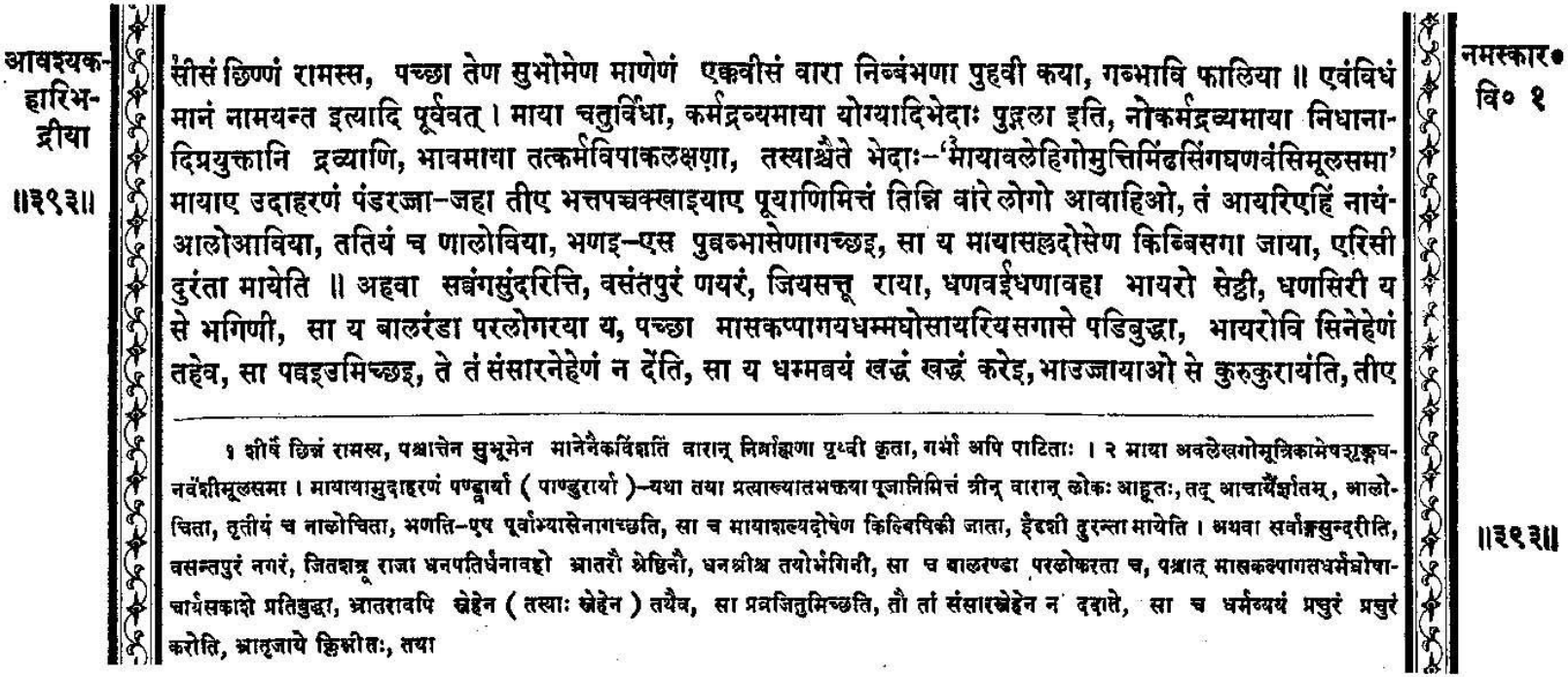

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥३९३॥

सीसं छिण्णं रामस्स, पच्छा तेण सुभोमेण माणेणं एक्कवीसं वारा निब्बंभणा पुहवी कया, गब्भावि फालिया ॥ एवंविधं मानं नामयन्त इत्यादि पूर्ववत् । माया चतुर्विधा, कर्मद्रव्यमाया योग्यादिभेदाः पुद्गला इति, नोकर्मद्रव्यमाया निधानादिप्रयुक्तानि द्रव्याणि, भावमाया तत्कर्मविपाकलक्षणा, तस्याश्चैते भेदाः–'मायावलेहिगोमुत्तिमिंढसिंगघणवंसिमूलसमा' मायाए उदाहरणं पंडरज्जा–जहा तीए भत्तपच्चक्खाइयाए पूयाणिमित्तं तिन्नि वारे लोगो आवाहिओ, तं आयरिएहिं नायं-आलोआविया, ततियं च णालोविया, भणइ–एस पुव्वब्भासेणागच्छइ, सा य मायासल्लदोसेण किब्बिसगा जाया, एरिसी दुरंता मायेति ॥ अहवा सव्वंगसुंदरित्ति, वसंतपुरं णयरं, जियसत्तू राया, धणवईधणावहा भायरो सेट्ठी, धणसिरी य से भगिणी, सा य बालरंडा परलोगरया य, पच्छा मासकप्पागयधम्मघोसायरियसगासे पडिबुद्धा, भायरोवि सिनेहेणं तहेव, सा पव्वइउमिच्छइ, ते तं संसारनेहेणं न देंति, सा य धम्मवयं खद्धं खद्धं करेइ, भाउज्जायाओ से कुरुकुरायंति, तीए

१ शीर्षं छिन्नं रामस्य, पश्चात्तेन सुभूमेन मानेनैकविंशतिं वारान् निर्ब्राह्मणा पृथ्वी कृता, गर्भा अपि पाटिताः । २ माया अवलेखगोमूत्रिकामेषशृङ्गघनवंशीमूलसमा । मायायामुदाहरणं पण्ड्वार्या (पाण्डुरार्या)–यथा तथा प्रत्याख्यातभक्तया पूजानिमित्तं त्रीन् वारान् लोकः आहूतः, तद् आचार्यैर्ज्ञातम्, आलोचिता, तृतीयं च नालोचिता, भणति–एष पूर्वाभ्यासेनागच्छति, सा च मायाशल्यदोषेण किल्बिषिकी जाता, ईदृशी दुरन्ता मायेति । अथवा सर्वाङ्गसुन्दरीति, वसन्तपुरं नगरं, जितशत्रू राजा धनपतिर्धनावहो भ्रातरौ श्रेष्ठिनौ, धनश्रीश्च तयोर्भगिनी, सा च बालरण्डा परलोकरता च, पश्चात् मासकल्पागतधर्मघोषाचार्यसकाशे प्रतिबुद्धा, भ्रातरावपि स्नेहेन (तस्याः स्नेहेन) तथैव, सा प्रव्रजितुमिच्छति, तौ तां संसारस्नेहेन न ददाते, सा च धर्मव्ययं प्रचुरं प्रचुरं करोति, भ्रातृजाये क्षिभ्नीतः, तथा

नमस्कार० वि० १

॥३९३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मायाकषाय संबंधे पांडु आर्या तथा सर्वांगसुन्दरी-कथा

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

विचिंतियं–येच्छामि ताव भाउगाणचित्तं, किमेयाहिंति?, पच्छा नियडीए आलोइऊण सोवणयपवेसकाले वीसत्थं वीसत्थं बहुं धम्मगयं जंपिऊण तओ नट्ठखिड्डेणं जहा से भत्ता सुणेइ तहेगा भाउज्जाया भणिया–किं बहुणा ? साडियं रक्खेज्जासि, तेण चिंतियं–नूणमेसा दुच्चारिणित्ति, वारियं च भगवया असईपोसणंति, तओ णं परिट्ठवेमित्ति पल्लंके उवविसंती वारिया, सा चिंतेइ–हा ! किमेयंति, पच्छा तेण भणियं–घराओ मे णीहि, सा चिंतेइ–किं मए दुक्कडं कयंति, न किंचि पासइ, तओ तत्थेव भूमिगयाए किच्छेण णीया रयणी, पभाए उल्लुग्गंगी निग्गया, धणसिरीए भणिया–कीस उल्लुग्गंगित्ति, सा रुयंती भणइ–न याणामो अवराहं, गेहाओ य धाडिया, तीए भणियं–वीसत्था अच्छह, अहं ते भलिस्सामि, भाया भणिओ–किमेयमेवंति, तेण भणियं–अलं मे दुट्ठसीलाए, तीए भणियं–कहं जाणासि ?, तेण भणियं–तुज्झ चेव सगासाओ, सुया से धम्मदेसणा निवारणं च, तीए भणियं–अहो ते पंडियत्तणं वियारक्खमत्तं च धम्मे य परिणामो, मए सामन्नेण बहुदोसमेयं

---

१ विचिन्तितं–पश्यामि तावद्भ्रातृोश्चित्तं, किमेताभ्यामिति, पश्चान्निकृत्याऽऽलोच्य शयनप्रवेशकाले विश्वस्तं विश्वस्तं बहुं धर्मगतं जल्पित्वा ततो नष्टक्रीडया यथा तस्या भर्त्ता शृणोति तथैका भ्रातुर्जाया भणिता–किं बहुना ? शाटिकां रक्षेः, तेन चिन्तितं–नूनमेषा दुश्चारिणीति, निवारितं च भगवता असतीपोषणमिति, तत एनां परिष्ठापयामीति पल्यङ्के उपविशन्ती वारिता, सा चिन्तयति–हा किमेतदिति, पश्चात्तेन भणितं–गृहान्मे निर्गच्छ, सा चिन्तयति–किं मया दुष्कृतं कृतमिति, न किञ्चित्पश्यति, ततस्तत्रैव भूमिगतया कृच्छ्रेण नीता रजनी, प्रभाते म्लानाङ्गी निर्गता, धनश्रिया भणिता–कथं म्लानाङ्गीति, सा रुदन्ती भणति–न जानाम्यपराधम्, गृहाच्च निर्धाटिता, तया भणितं–विश्वस्ता तिष्ठ, अहं त्वां मिलयिष्यामि, भ्राता भणितः–किमेतदेवमिति, तेन भणितम्–अलं मे दुष्टशीलया, तया भणितं–कथं जानासि ?, तेन भणितं–तवैव सकाशात्, श्रुता तस्या धर्मदेशना निवारणं च, तया भणितम्–अहो तव पाण्डित्यं विचारक्षमत्वं च धर्मे च परिणामः, मया सामान्येन बहुदोषमेतद्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

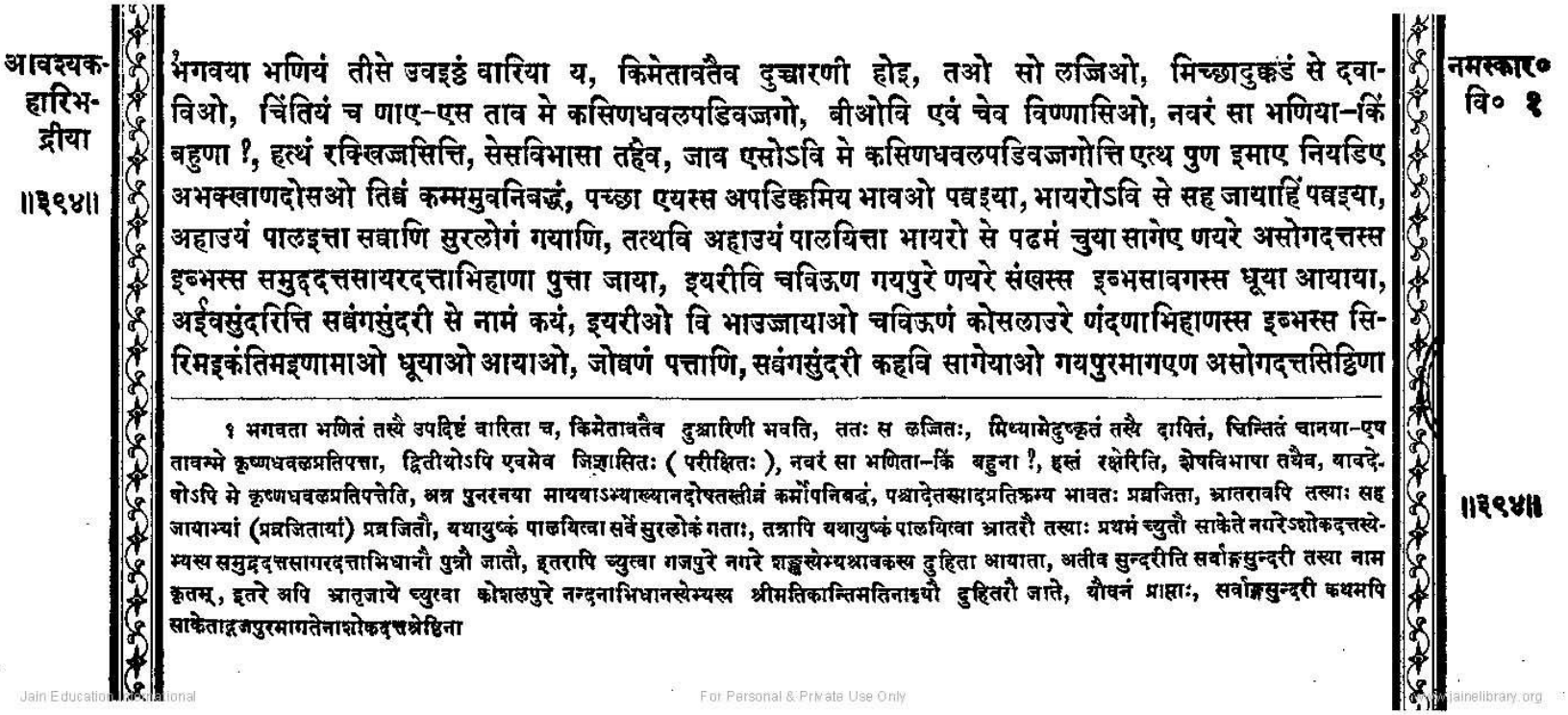

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥३९४॥

भगवया भणियं तीसे उवइट्ठं वारिया य, किमेतावतैव दुच्चारणी होइ, तओ सो लज्जिओ, मिच्छादुक्कडं से दवाविओ, चिंतियं च णाए–एस ताव मे कसिणधवलपडिवज्जगो, बीओवि एवं चेव विण्णासिओ, नवरं सा भणिया–किं बहुणा ?, हत्थं रक्खिज्जासित्ति, सेसविभासा तहेव, जाव एसोऽवि मे कसिणधवलपडिवज्जगोत्ति एत्थ पुण इमाए नियडिए अभक्खाणदोसओ तिव्वं कम्ममुवनिबद्धं, पच्छा एयस्स अपडिक्कमिय भावओ पवइया, भायरोऽवि से सह जायाहिं पवइया, अहाउयं पालइत्ता सव्वाणि सुरलोगं गयाणि, तत्थवि अहाउयं पालयित्ता भायरो से पढमं चुया सागेए णयरे असोगदत्तस्स इब्भस्स समुद्दत्तसायरदत्ताभिहाणा पुत्ता जाया, इयरीवि चविऊण गयपुरे णयरे संखस्स इब्भसावगस्स धूया आयाया, अईवसुंदरित्ति सव्वंगसुंदरी से नामं कयं, इयरीओ वि भाउज्जायाओ चविऊणं कोसलाउरे णंदणाभिहाणस्स इब्भस्स सिरिमइकंतिमइणामाओ धूयाओ आयाओ, जोव्वणं पत्ताणि, सव्वंगसुंदरी कहवि सागेयाओ गयपुरमागएण असोगदत्तसिट्ठिणा

नमस्कार० वि० १

१ भगवता भणितं तस्यै उपदिष्टं वारिता च, किमेतावतैव दुश्चारिणी भवति, ततः स लज्जितः, मिथ्यामेदुष्कृतं तस्यै दापितं, चिन्तितं चानया–एष तावन्मे कृष्णधवलप्रतिपत्ता, द्वितीयोऽपि एवमेव जिज्ञासितः (परीक्षितः), नवरं सा भणिता–किं बहुना ?, हस्तं रक्षेरिति, शेषविभाषा तथैव, यावदेषोऽपि मे कृष्णधवलप्रतिपत्तेति, अत्र पुनरनया मायया ऽभ्याख्यानदोषतस्तीव्रं कर्मोपनिबद्धं, पश्चादेतस्मादप्रतिक्रम्य भावतः प्रव्रजिता, भ्रातरावपि तस्याः सह जायाभ्यां (प्रव्रजितार्या) प्रव्रजितौ, यथायुष्कं पालयित्वा सर्वे सुरलोकं गताः, तत्रापि यथायुष्कं पालयित्वा भ्रातरौ तस्याः प्रथमं च्युतौ साकेते नगरेऽशोकदत्तस्येभ्यस्य समुद्रदत्तसागरदत्ताभिधानौ पुत्रौ जातौ, इतरापि च्युत्वा गजपुरे नगरे शङ्खस्येभ्यश्रावकस्य दुहिता आयाता, अतीव सुन्दरीति सर्वाङ्गसुन्दरी तस्या नाम कृतम्, इतरे अपि भ्रातृजाये च्युत्वा कोशलपुरे नन्दनाभिधानस्येभ्यस्य श्रीमतिकान्तिमतिनाम्न्यौ दुहितरौ जाते, यौवनं प्राप्ताः, सर्वाङ्गसुन्दरी कथमपि साकेताद्गजपुरमागतेनाशोकदत्तश्रेष्ठिना

॥३९४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

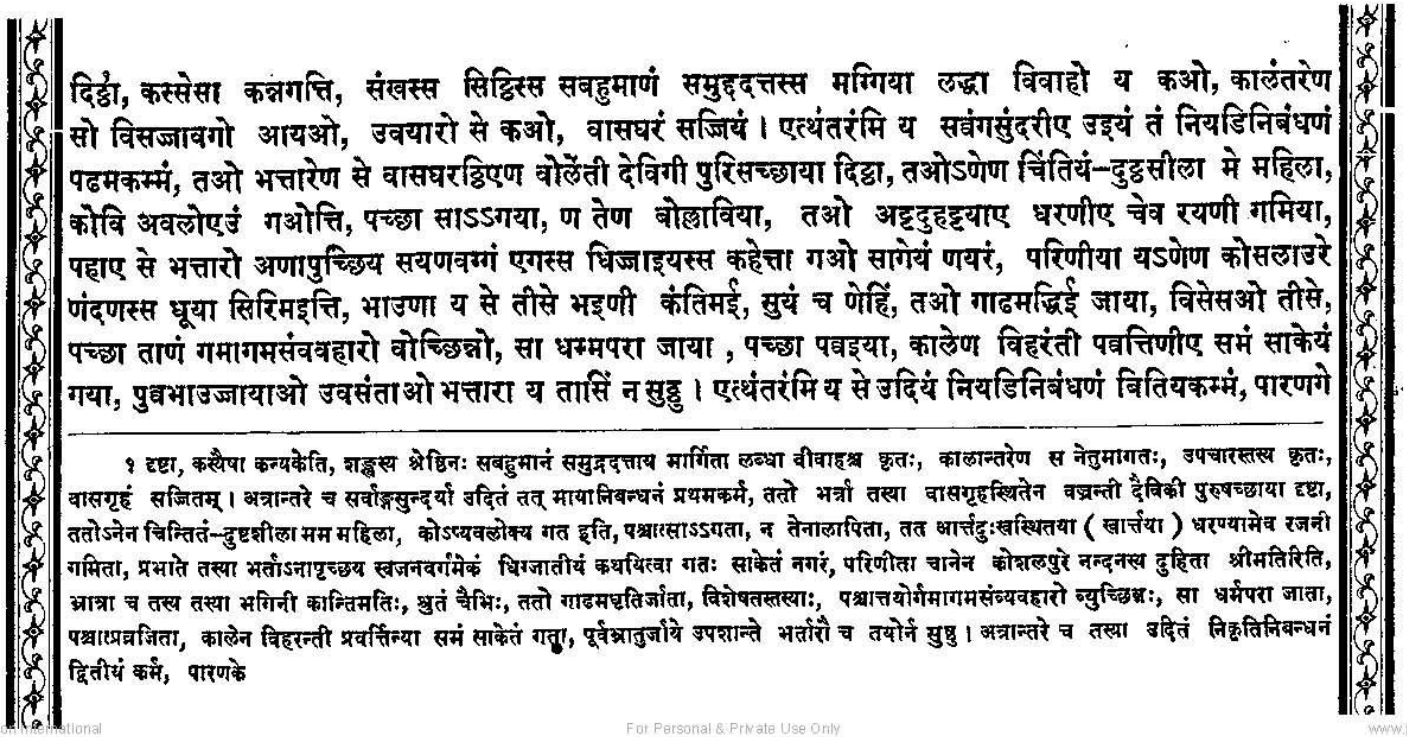

दिट्ठो, कस्सेसा कन्नगत्ति, संखस्स सिट्ठिस्स सबहुमाणं समुद्दत्तस्स मग्गिया लद्धा विवाहो य कओ, कालंतरेण सो विसज्जावगो आयओ, उवयारो से कओ, वासघरं सज्जियं। एत्थंतरंमि य सव्वंगसुंदरीए उइयं तं नियडिनिबंधणं पढमकम्मं, तओ भत्तारेण से वासघरट्ठिएण वोलेंती देविगी पुरिसच्छाया दिट्ठा, तओऽणेण चिंतियं–दुट्ठसीला मे महिला, कोवि अवलोएउं गओत्ति, पच्छा साऽऽगया, ण तेण बोल्लाविया, तओ अट्टदुहट्टयाए धरणीए चेव रयणी गमिया, पहाए से भत्तारो अणापुच्छिय सयणवग्गं एगस्स धिज्जाइयस्स कहेत्ता गओ सागेयं णयरं, परिणीया यऽणेण कोसलाउरे णंदणस्स धूया सिरिमइत्ति, भाउणा य से तीसे भइणी कंतिमई, सुयं च णेहिं, तओ गाढमद्धिई जाया, विसेसओ तीसे, पच्छा ताणं गमागमसंववहारो वोच्छिन्नो, सा धम्मपरा जाया , पच्छा पवइया, कालेण विहरंती पवत्तिणीए समं साकेयं गया, पुव्वभाउज्जायाओ उवसंताओ भत्तारा य तासिं न सुट्ठु। एत्थंतरंमि य से उदियं नियडिनिबंधणं बितियकम्मं, पारणगे

---

१ दृष्टा, कस्यैषा कन्यकेति, शङ्खस्य श्रेष्ठिनः सबहुमानं समुद्रदत्ताय मार्गिता लब्धा वीवाहश्च कृतः, कालान्तरेण स नेतुमागतः, उपचारस्तस्य कृतः, वासगृहं सज्जितम्। अत्रान्तरे च सर्वाङ्गसुन्दर्या उदितं तत् मायानिबन्धनं प्रथमकर्म, ततो भर्त्रा तस्या वासगृहस्थितेन व्रजन्ती दैविकी पुरुषच्छाया दृष्टा, ततोऽनेन चिन्तितं–दुष्टशीला मम महिला, कोऽप्यवलोक्य गत इति, पश्चात्साऽऽगता, न तेनालापिता, तत आर्त्तदुःखस्थितया (खार्त्तया) धरण्यामेव रजनी गमिता, प्रभाते तस्या भर्ताऽनापृच्छय स्वजनवर्गमेकं धिग्जातीयं कथयित्वा गतः साकेतं नगरं, परिणीता चानेन कोशलपुरे नन्दनस्य दुहिता श्रीमतिरिति, भ्रात्रा च तस्य तस्या भगिनी कान्तिमतिः, श्रुतं चैभिः, ततो गाढमधृतिर्जाता, विशेषतस्तस्याः, पश्चात्तयोर्गमागमसंव्यवहारो व्युच्छिन्नः, सा धर्मपरा जाता, पश्चात्प्रव्रजिता, कालेन विहरन्ती प्रवर्त्तिन्या समं साकेतं गता, पूर्वभ्रातुर्जाये उपशान्ते भर्तारौ च तयोर्न सुष्ठु। अत्रान्तरे च तस्या उदितं निकृतिनिबन्धनं द्वितीयं कर्म, पारणके

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

भिक्खट्ठं पविट्ठा, सिरिमई य वासघरं गया हारं पोयति, तीए अब्भुट्ठिया, सा हारं मोत्तूण भिक्खत्थमुट्ठिया, एत्थंतरंमि चित्तकम्मोइण्णेणं मयूरेणं सो हारो गिलिओ, तीए चिंतियं–अच्छरीयमिणं, पच्छा साडगग्घेण ठइयं, भिक्खा पडिग्गाहिया निग्गया य, इयरीए जोइयं–जाव नत्थि हारोत्ति, तीए चिंतियं–किमेयं वड्डुखेड्डुं ?, परियणो पुच्छिओ, सो भणइ–न कोइ एत्थ अज्जं मोत्तूण पविट्ठो अन्नो, तीए अंबाडिओ, पच्छा फुट्टं। इयरीएवि पवत्तिणीए सिट्ठं, तीए भणियं –विचित्तो कम्मपरिणामो, पच्छा उग्गतरतवरया जाया, तेसिं चाणत्थभीयाणं तं णेड्डुं ण उग्गाहइ, सिरिमई कंतिमइओ भत्तारेहिं हसिज्जंति, ण य विप्परिणमंति, तीएवि उग्गतवरयाए कम्मसेसं कयं, एत्थंतरंमि सिरिमई भत्तारसहगया वासहरे चिट्ठइ, जाव मोरेण चित्ताओ ओयरिऊण निग्गिलिओ हारो, ताणि संवेगमावण्णाणि, अहो से भगवईए महत्थता जं न सिट्ठमिदंति खामेउं पयट्टाणि, एत्थंतरंमि से केवलमुप्पण्णंति, देवेहि य महिमा कया, तेहिं पुच्छियं, तीएऽवि साहिओ

१ भिक्षार्थं प्रविष्टा, श्रीमतिश्च वासगृहगता हारं प्रोतति, तयाऽभ्युत्थिता, सा हारं मुक्त्वा भिक्षार्थमुत्थिता, अत्रान्तरे चित्रकर्मोत्तीर्णेन मयूरेण स हारो गिलितः, तया चिन्तितम्–आश्चर्यमिदं, पश्चात् शाटकार्धेन स्थगितं, भिक्षा प्रतिगृहीता निर्गता च, इतरया दृष्टं–यावन्नास्ति हार इति, तया चिन्तितं–किमेषा बृहती क्रीडा, परिजनः पृष्टः, स भणति–न कोऽपि अन्यार्या मुक्त्वा प्रविष्टोऽन्यः, तया निर्भर्सितः, पश्चात् स्फिटितम्। इतरयाऽपि प्रवर्तिन्याः शिष्टं, तया भणितं–विचित्रः कर्मपरिणामः, पश्चात् उग्रतरतपोरता जाता, तैश्चानर्थभीतैः तद्गृहं नावगाह्यते, श्रीमतिकान्तिमत्यौ भर्तृभ्यां हस्येते, न च विपरिणमतः, तयाऽप्युग्रतपोरतया कर्मशेषं कृतम्, अन्तरे श्रीमतिर्भर्त्रा सह गता वासगृहे तिष्ठति, यावन्मयूरेण चित्रादवतीर्य निर्गिलितो हारः, तौ संवेगमापन्नौ, अहो तस्या भगवत्या गाम्भीर्यं यन्न शिष्टमिदमिति क्षमयितुं प्रवृत्तौ, अन्तरे तस्याः केवलज्ञानमुत्पन्नमिति, देवैश्च महिमा कृतः, तैः पृष्टं, तयाऽपि कथितः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

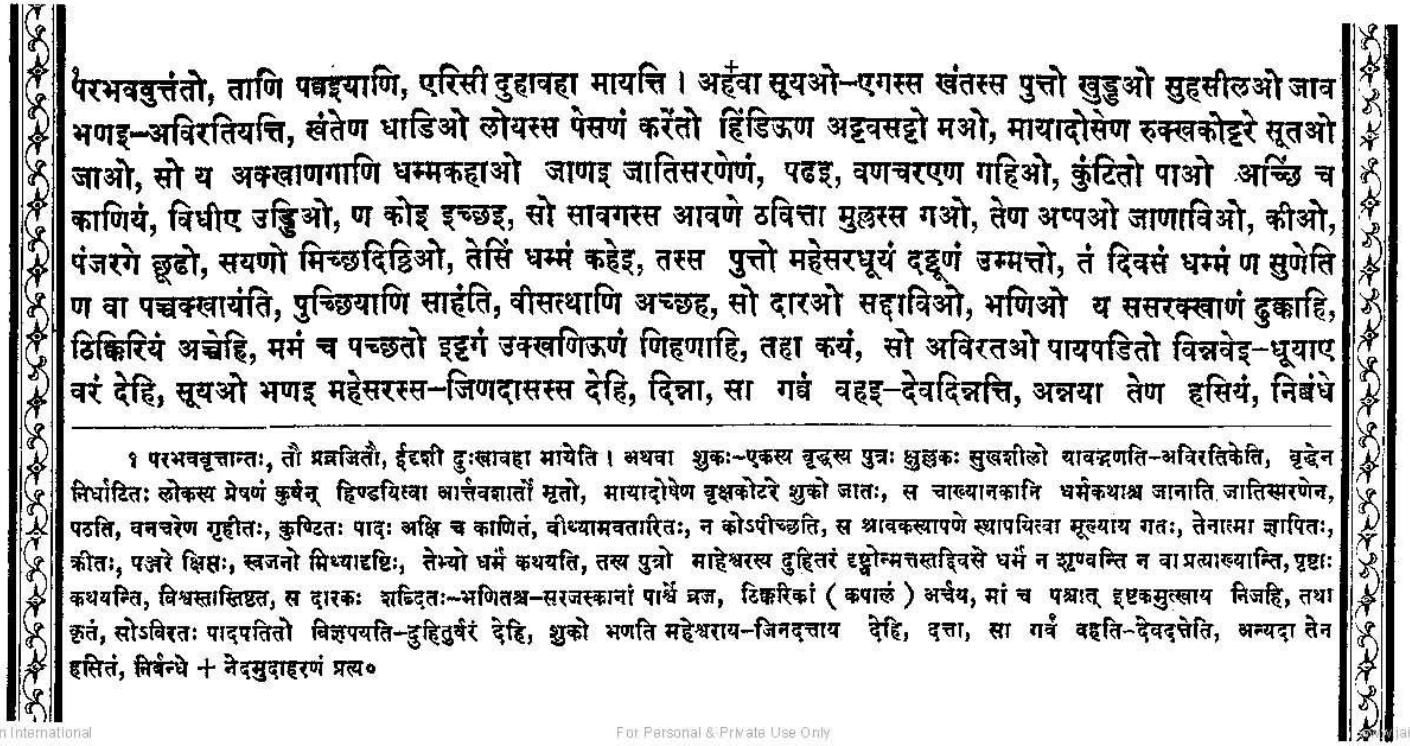

परभववुत्तंतो, ताणि पव्वइयाणि, एरिसी दुहावहा मायत्ति । अहवा सूयओ–एगस्स खंतस्स पुत्तो खुड्डओ सुहसीलओ जाव भणइ–अविरतियत्ति, खंतेण धाडिओ लोयस्स पेसणं करेंतो हिंडिऊण अट्टवसट्टो मओ, मायादोसेण रुक्खकोट्टरे सूतओ जाओ, सो य अक्खाणगाणि धम्मकहाओ जाणइ जातिसरणेणं, पढइ, वणचरएण गहिओ, कुंटितो पाओ अच्छि च काणियं, विधीए उड्डिओ, ण कोइ इच्छइ, सो सावगस्स आवणे ठवित्ता मुल्लस्स गओ, तेण अप्पओ जाणाविओ, कीओ, पंजरगे छूढो, सयणो मिच्छदिट्ठिओ, तेसिं धम्मं कहेइ, तस्स पुत्तो महेसरधूयं दट्ठूणं उम्मत्तो, तं दिवसं धम्मं ण सुणेति ण वा पच्चक्खायंति, पुच्छियाणि साहंति, वीसत्थाणि अच्छह, सो दारओ सद्दाविओ, भणिओ य ससरक्खाणं दुक्काहि, ठिक्किरियं अच्चेहि, ममं च पच्छतो इट्ठगं उक्खणिऊणं णिहणाहि, तहा कयं, सो अविरतओ पायपडितो विन्नवेइ–धूयाए वरं देहि, सूयओ भणइ महेसरस्स–जिणदासस्स देहि, दिन्ना, सा गव्वं वहइ–देवदिन्नत्ति, अन्नया तेण हसियं, निब्बंधे

---

१ परभववृत्तान्तः, तौ प्रव्रजितौ, ईदृशी दुःखावहा मायेति । अथवा शुकः–एकस्य वृद्धस्य पुत्रः क्षुल्लकः सुखशीलो यावद्भणति–अविरतिकेति, वृद्धेन निर्धाटितः लोकस्य प्रेषणं कुर्वन् हिण्डयित्वा आर्त्तवशार्तो मृतो, मायादोषेण वृक्षकोटरे शुको जातः, स चाख्यानकानि धर्मकथाश्च जानाति जातिस्मरणेन, पठति, वनचरेण गृहीतः, कुण्टितः पादः अक्षि च काणितं, वीथ्यामवतारितः, न कोऽपीच्छति, स श्रावकस्यापणे स्थापयित्वा मूल्याय गतः, तेनात्मा ज्ञापितः, क्रीतः, पञ्जरे क्षिप्तः, स्वजनो मिथ्यादृष्टिः, तेभ्यो धर्मं कथयति, तस्य पुत्रो माहेश्वरस्य दुहितरं दृष्ट्वोन्मत्तस्तद्दिवसे धर्मं न शृण्वन्ति न वा प्रत्याख्यान्ति, पृष्टाः कथयन्ति, विश्वस्तास्तिष्ठत, स दारकः शब्दितः–भणितश्च–सरजस्कानां पार्श्वे व्रज, ठिक्करिकां (कपालं) अर्चय, मां च पश्चात् इष्टकमुत्खाय निजहि, तथा कृतं, सोऽविरतः पादपतितो विज्ञपयति–दुहितुर्वरं देहि, शुको भणति महेश्वराय–जिनदत्ताय देहि, दत्ता, सा गर्वं वहति–देवदत्तेति, अन्यदा तेन हसितं, निर्बन्धे + नेदमुदाहरणं प्रत्य०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

[1]कहियं, अमरिसं वहइ, संखडीए वखित्ताणि हरइ, भणति–तुमंसि पंडितउत्ति पिच्छं उप्पाडियं, सो चिंतेइ–कालं हरामि, भणइ–णाहं पंडितओ सा ण्हाविई पंडितिया,–एगा ण्हाविणी कूरं छेत्तं णिंती चोरेहिं गहिया, अहंपि एरिसे मग्गामि रात्तिं एह रूवए लएत्ता जाइहामो, ते आगया, वातकोणएण णक्काणि छिण्णाणि, अन्ने भणंति–खत्तमुहे खुरेण छिन्नाणि, बितियदिवसे गहिया, सीसं कोट्टेइ भणति य–केण तुब्भेत्ति?, तेहिं समं पहाविया, एगंमि गामे भत्तं आणेमिति कलालकुले विक्किया, ते रूवए घेत्तूणं पलाया, रात्तिं रुक्खं विलग्गा, तेवि पलाया उलग्गंति, महिसीओ हरिऊणं तत्थेव आवासिया मंसं खायंति, एक्को मंसं घेत्तूण रुक्खं विलग्गो दिसाओ पलोएइ, तेण दिट्ठा, रूवए दाइए, सो ढुक्को, जिब्भाए गहिओ, पडंतेण आसइत्ति भणिते आसइत्ति काऊणं णट्ठा, सा घरं गया, सा ण्हाविई पंडितिया णाहं पंडितओ। ताहे पुणोवि अण्णं लोमं उक्खणइ, पुणरवि दारियापिउणा दारिद्देण धणयओ छलाविओ रूवगा दिन्नत्ति कूडसक्खीहिं दवाविओ,

---

१ कथितम्, अमर्षं वहति, संखड्यां व्याक्षिप्तेषु हरति, भणति–त्वमसि पण्डित इति पिच्छमुत्पाटितं, स चिन्तयति–कालं हरामि, भणति–नाहं पण्डितः, सा नापिती पण्डिता–एका नापितो कूरं क्षेत्रं नयन्ती चौरैर्गृहीता, अहमपीदृशान् मार्गयामि रात्रावायात रूप्यकान् लात्वा यास्यामः, ते आगताः, क्षुरप्रेण नासिका च्छिन्नाः, अन्ये भणन्ति–क्षत्रमुखे क्षुरप्रेण छिन्नानि, द्वितीयदिवसे गृहीता, शीर्षं कुट्टयति भणति च–केन यूष्माकमिति?, तैः समं प्रधाविता, एकस्मिन् ग्रामे भक्तमानयामीति कलालकुले विक्रीता, ते रूप्यकान् गृहीत्वा पलायिताः, रात्रौ वृक्षं विलग्ना, तेऽपि पलायिता अवलगन्ति, महीषीर्हत्वा तत्रैवावासिता मांसं खादन्ति, एको मांसं गृहीत्वा वृक्षं विलग्नो दिशः प्रलोकयति, तेन दृष्टा, रूप्यकान् दर्शयति, स आगतः, जिह्वया गृहीतः, पतता आस्त इति भणिते आस्ते इति कृत्वा नष्टाः, सा गृहं गता, सा नापिती पण्डिता नाहं पण्डितः। तदा पुनरपि अन्यं पिच्छमुत्खनति, पुनरपि दारिका पित्रा दारिद्र्येण धनदश्छलितः रूप्यका दत्ता इति, कूटसाक्षिभिर्दापितः,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

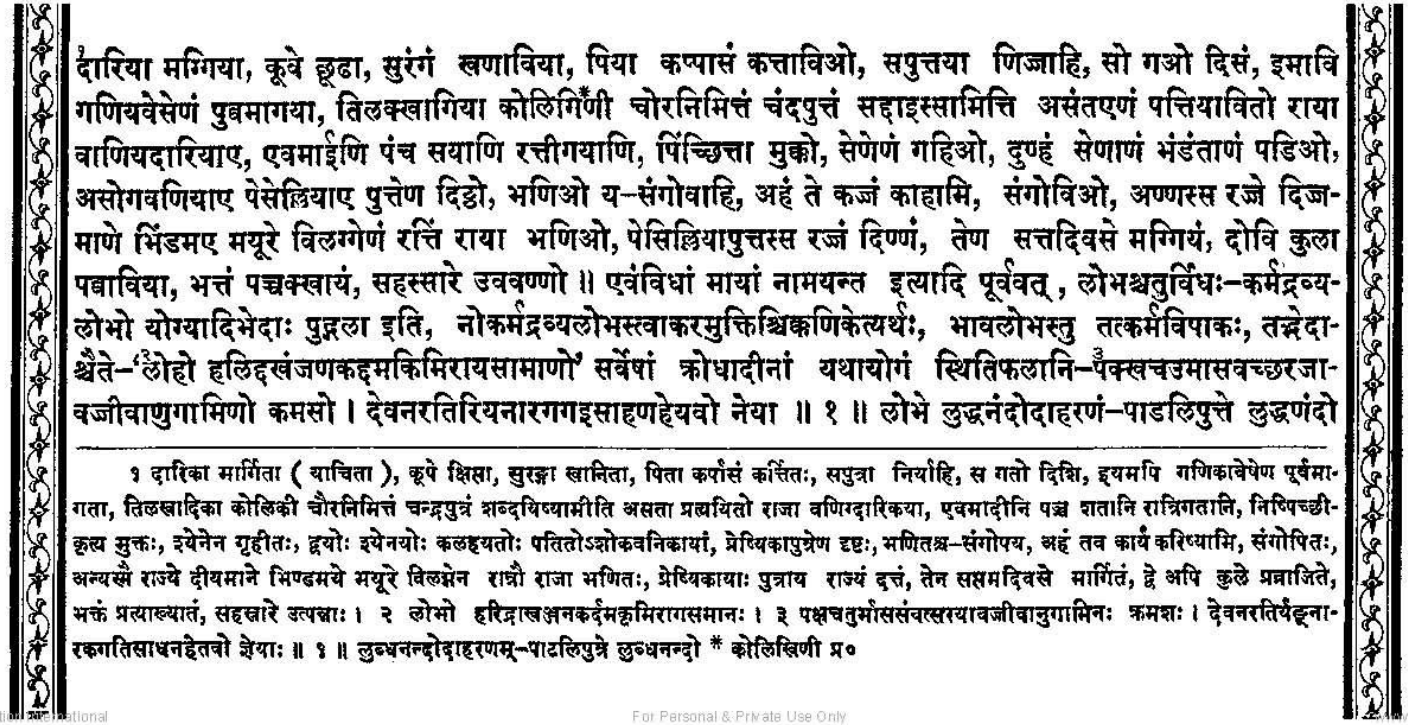

दारिया मग्गिया, कूवे छूढा, सुरंगं खणाविया, पिया कप्पासं कत्ताविओ, सपुत्तया णिज्जाहि, सो गओ दिसं, इमावि गणियवेसेणं पुवमागया, तिलक्खागिया कोलिगिणी चोरनिमित्तं चंदपुत्तं सद्दाइस्सामित्ति असंतएणं पत्तियावितो राया वाणियदारियाए, एवमाईणि पंच सयाणि रत्तीगयाणि, पिंच्छित्ता मुक्को, सेणेणं गहिओ, दुण्हं सेणाणं भंडंताणं पडिओ, असोगवणियाए पेसेल्लियाए पुत्तेण दिट्ठो, भणिओ य–संगोवाहि, अहं ते कज्जं काहामि, संगोविओ, अण्णस्स रज्जे दिज्जमाणे भिंडमए मयूरे विलग्गेणं रत्तिं राया भणिओ, पेसिल्लियापुत्तस्स रज्जं दिण्णं, तेण सत्तदिवसे मग्गियं, दोवि कुला पव्वाविया, भत्तं पच्चक्खायं, सहस्सारे उववण्णो ॥ एवंविधां मायां नामयन्त इत्यादि पूर्ववत्, लोभश्चतुर्विधः–कर्मद्रव्यलोभो योग्यादिभेदाः पुद्गला इति, नोकर्मद्रव्यलोभस्त्वाकरमुक्तिश्चिक्कणिकेत्यर्थः, भावलोभस्तु तत्कर्मविपाकः, तद्भेदाश्चैते–'लोहो हलिद्दखंजणकद्दमकिमिरायसामाणो' सर्वेषां क्रोधादीनां यथायोगं स्थितिफलानि–पक्खचउमासवच्छरजावज्जीवाणुगामिणो कमसो। देवनरतिरियनारगगइसाहणहेयवो नेया ॥ १ ॥ लोभे लुद्धनंदोदाहरणं–पाडलिपुत्ते लुद्धणंदो

१ दारिका मार्गिता (याचिता), कूपे क्षिप्ता, सुरङ्गा खानिता, पिता कर्पासं कर्त्तितः, सपुत्रा निर्याहि, स गतो दिशि, इयमपि गणिकावेषेण पूर्वमागता, तिलखादिका कोलिकी चौरनिमित्तं चन्द्रपुत्रं शब्दयिष्यामीति असता प्रत्ययितो राजा वणिग्दारिकया, एवमादीनि पञ्च शतानि रात्रिगतानि, निष्पिच्छीकृत्य मुक्तः, इयेनेन गृहीतः, द्वयोः इयेनयोः कलहयतोः पतितोऽशोकवनिकायां, प्रेष्यिकापुत्रेण दृष्टः, भणितश्च–संगोपय, अहं तव कार्यं करिष्यामि, संगोपितः, अन्यस्मै राज्ये दीयमाने भिण्डमये मयूरे विलग्नेन रात्रौ राजा भणितः, प्रेष्यिकायाः पुत्राय राज्यं दत्तं, तेन सप्तमदिवसे मार्गितं, द्वे अपि कुले प्रव्राजिते, भक्तं प्रत्याख्यातं, सहस्रारे उत्पन्नाः। २ लोभो हरिद्राखञ्जनकर्दमकृमिरागसमानः। ३ पक्षचतुर्मासकसंवत्सरयावज्जीवानुगामिनः क्रमशः। देवनरतिर्यङ्नारकगतिसाधनहेतवो ज्ञेयाः ॥ १ ॥ लुब्धनन्दोदाहरणम्–पाटलिपुत्रे लुब्धनन्दो * कोलिखिणी प्र०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लोभकषाय संबंधे लुब्धनन्दस्य कथा

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

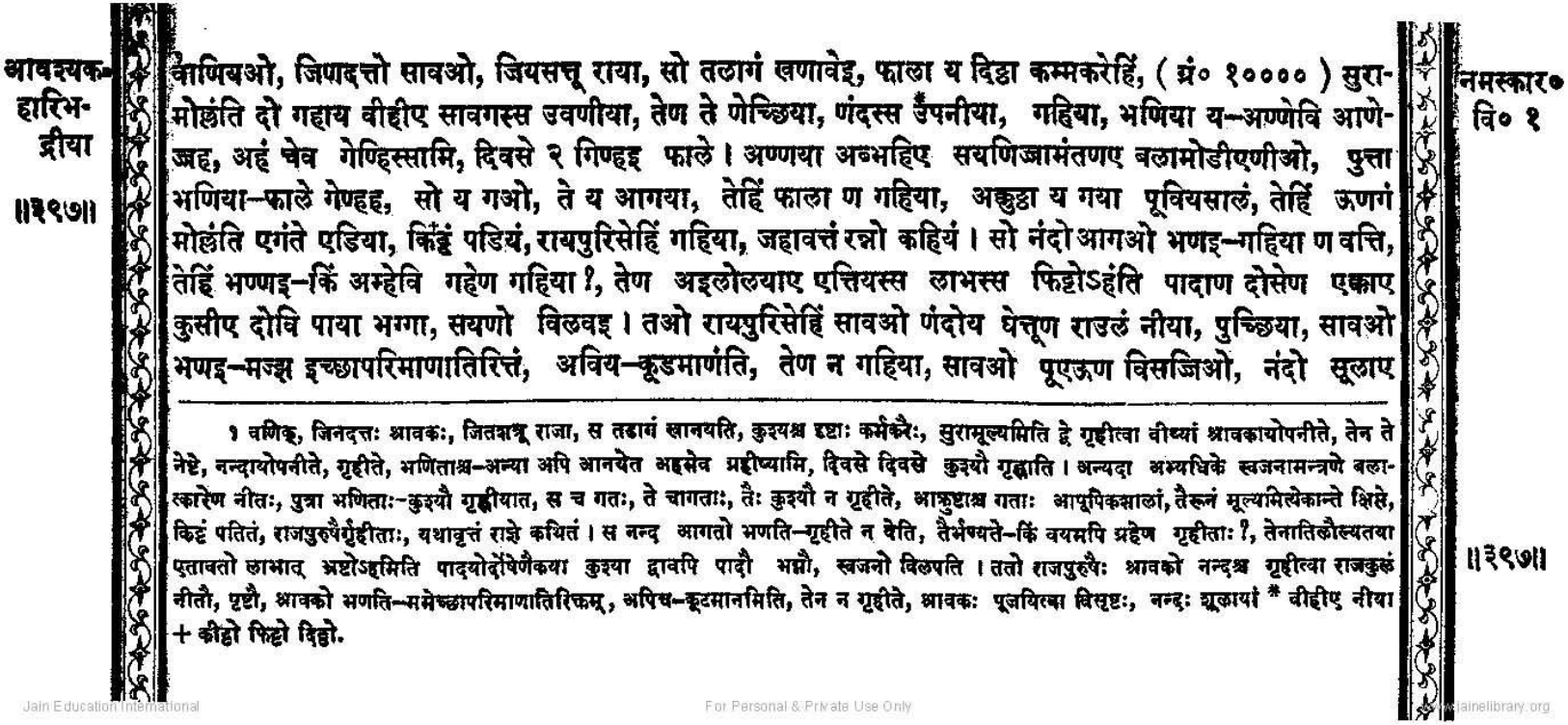

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥३९७॥

वाणियओ, जिणदत्तो सावओ, जियसत्तू राया, सो तलागं खणावेइ, फाला य दिट्ठा कम्मकरेहिं, (ग्रं० १००००) सुरामोल्लंति दो गहाय वीहीए सावगस्स उवणीया, तेण ते णेच्छिया, णंदस्स उवनीया, गहिया, भणिया य–अण्णेवि आणेऊह, अहं चेव गेण्हिस्सामि, दिवसे २ गिण्हइ फाले। अण्णया अब्भहिए सयणिज्जामंतणए बलामोडीएणीओ, पुत्ता भणिया–फाले गेण्हह, सो य गओ, ते य आगया, तेहिं फाला ण गहिया, अक्खुट्ठा य गया पूवियसालं, तेहिं ऊणगं मोल्लंति एगंते एडिया, किट्टं पडियं, रायपुरिसेहिं गहिया, जहावत्तं रन्नो कहियं। सो नंदो आगओ भणइ–गहिया ण वत्ति, तेहिं भण्णइ–किं अम्हेवि गहेण गहिया?, तेण अइलोलयाए एत्तियस्स लाभस्स फिट्टोऽहंति पादाण दोसेण एक्काए कुसीए दोवि पाया भग्गा, सयणो विलवइ। तओ रायपुरिसेहिं सावओ णंदोय घेत्तूण राउलं नीया, पुच्छिया, सावओ भणइ–मज्झ इच्छापरिमाणातिरित्तं, अविय–कूडमाणंति, तेण न गहिया, सावओ पूएऊण विसज्जिओ, नंदो सूलाए

१ वणिक्, जिनदत्तः श्रावकः, जितशत्रू राजा, स तडागं खानयति, कृश्यश्च इष्टाः कर्मकरैः, सुरामूल्यमिति द्वे गृहीत्वा वीथ्यां श्रावकायोपनीते, तेन ते नेष्टे, नन्दायोपनीते, गृहीते, भणिताश्च–अन्या अपि आनयेत अहमेव ग्रहीष्यामि, दिवसे दिवसे कृश्यौ गृह्णाति। अन्यदा अभ्यधिके स्वजनामन्त्रणे बलात्कारेण नीतः, पुत्रा भणिताः–कृश्यौ गृह्णीयात, स च गतः, ते चागताः, तैः कृश्यौ न गृहीते, आकुष्टाश्च गताः आपूपिकशालां, तैरूनं मूल्यमित्येकान्ते क्षिप्ते, किट्टं पतितं, राजपुरुषैर्गृहीताः, यथावृत्तं राज्ञे कथितं। स नन्द आगतो भणति–गृहीते न वेति, तैर्भण्यते–किं वयमपि ग्रहेण गृहीताः?, तेनातिलौल्यतया एतावतो लाभात् भ्रष्टोऽहमिति पादयोर्दोषैणैकया कृश्या द्वावपि पादौ भग्नौ, स्वजनो विलपति। ततो राजपुरुषैः श्रावको नन्दश्च गृहीत्वा राजकुलं नीतौ, पृष्टौ, श्रावको भणति–ममेच्छापरिमाणातिरिक्तम्, अपिच–कूटमानमिति, तेन न गृहीते, श्रावकः पूजयित्वा विसृष्टः, नन्दः शूलायां * वीहीए नीया + कीहो फिट्टो दिट्ठो.

नमस्कार० वि० १

॥३९७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

भिन्नो, सकुलो य उच्छाइओ, सावगो सिरिघरिओ ठवियओ। एरिसो दुरंतो लोभो॥ एवंविधं लोभं नामयन्त इत्यादि पूर्ववत्। अथेन्द्रियद्वारमुच्यते, तत्रेन्द्रियमिति कः शब्दार्थः ?, 'इदि परमैश्वर्ये' इन्दनादिन्द्रः,–सर्वोपलब्धिभोगपरमैश्वर्यसम्बन्धाज्जीवः, तस्य लिङ्गं तेन दृष्टं सृष्टं चेत्यादि, 'इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गम्' इत्यादिना सूत्रेण निपातनात् सिद्धं, तच्च द्विधा–द्रव्येन्द्रियं भावेन्द्रियं च, तत्र निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियं, लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियमिति, अमूनि च स्पर्शनादिभेदेन पञ्च भवन्ति अतो बहुवचनम्, उक्तं च–"स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणीन्द्रियाणि"(तत्त्वा० अ० २ सू० २०) एतानि च नामितानि अलं दुःखायेति, अत्रोदाहरणानि। तत्थ सोइंदिए उदाहरणं—वसंतपुरे णयरे पुप्फसालो नाम गंधव्विओ, सो अइसुस्सरो विरूवो य, तेण जणो हयहियओ कओ, तंमि णयरे सत्थवाहो दिसायत्तं गएल्लओ, भद्दा य से भारिया, तीए केणवि कारणेण दासीओ पयट्टियाओ, ताओ सुणंतीओ अच्छंति, कालं न याणंति, चिरेण आगयाओ अंबाडियाओ भणंति—मा भट्टिणी! रूसेह, जं अज्ज अम्हाहिं सुयं तं पसूणवि लोभणिज्जं, किमंग पुण सकण्णाणं ?, कहंति ?, ताहिं से कहियं, सा हियएण चिंतेइ–कहमहं पेच्छिज्जामि ?। अन्नया तत्थ णयरदेवयाए जत्ता जाया, सव्वं च णयरं गयं, सावि गया,

१ भिन्नः, सकुलश्चोत्सादितः, श्रावकः श्रीगृहिकः स्थापितः। एतादृशो दुरन्तो लोभः। २ तत्र श्रोत्रेन्द्रिये उदाहरणं–वसन्तपुरे नगरे पुष्पशालो नाम गान्धर्विकः, सोऽतीव सुस्वरो विरूपश्च, तेन जनो हृतहृदयः कृतः, तस्मिन्नगरे सार्थवाहो दिग्यात्रां गतोऽभूत्, भद्रा च तस्य भार्या, तया कस्मैचिदपि कारणाय दास्यः प्रवर्त्तिताः, ताः शृण्वन्त्यस्तिष्ठन्ति, कालं न जानन्ति, चिरेणागता उपालब्धा भणन्ति–मा स्वामिनि! रुषः, यदद्यास्माभिः श्रुतं तत्पशूनामपि लोभनीयं, किमङ्ग पुनः सकर्णानां ?, कथमिति ?, ताभिस्तस्यै कथितं, सा हृदयेन चिन्तयति–कथमहं प्रेक्षयिष्ये ?। अन्यदा तत्र नगरदेवताया यात्रा जाता, सर्वे च नगरं गतं, साऽपि गता, * जिणदत्तो.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

लोगोवि पणमिऊणं पडिएइ पहायदेसकालो य वट्टइ, सोवि गाइऊण परिस्संतो परिसरे सुत्तो, सा य सत्थवाही दासीए समं आगया, पणिवइत्ता देउलं पयाहिणं करेइ, चेडीहिं दाइओ एस सोत्ति, सा संभंता, तओ गया, पेच्छइ विरूवं दंतुरं, भणइ–दिट्ठं से रूवेणं चेव गेयं, तीए निच्छूढं, चेतियं चऽणेण, कुसीलएहिं से कहियं, तस्स अमरिसो जाओ, तो से घरमूले पच्चूसकालसमए गाइउमारद्धो पउत्थवइयानिबद्धं, जह आपुच्छइ जहा तत्थ चिंतेइ जहा लेहे विसज्जइ जहा आगओ घरं पविसइ, सा चिंतेइ–सभूयं वट्टइ ताए अब्भुट्ठेमित्ति आगासतलगाओ अप्पा मुक्को, सा मया, एवं सोइंदियं दुक्खाय भवइ ॥ चक्खिंदिए उदाहरणं–महुराए णयरीए जियसत्तू राया, धारिणी देवी, सा पयईए धम्मसद्धा, तत्थ भंडीरवणं चेइयं, तस्स जत्ता, राया सह देवीए णयरजणो य महाविभूईए निग्गओ, तत्थेगेणमिब्भपुत्तेण जाणसंठियाए देवीए जवणियंतरविणिग्गओ सालत्तगो सनेउरो अईव सुंदरो दिट्ठो चलणोत्ति, चिंतियं चऽणेणं–जीए एरिसो चलणो सा रूवेण

१ लोकोऽपि प्रणम्य प्रस्थेति प्रभातदेशकालश्च वर्त्तते, सोऽपि निर्गत्य परिश्रान्तः परिसरे सुप्तः, सा च सार्थवाही दासी सममागता प्रणिपत्य देवकुलस्य प्रदक्षिणां करोति, चेटीभिर्दर्शितः एष स इति, सा संभ्रान्ता, ततो गता, प्रेक्षते विरूपं दन्तुरं, भणति–दृष्टं तस्य रूपेणैव गेयं, तया निष्ठ्यूतं, चेतितं चानेन, तस्मै कुशीलवैः (विदूषकैः) कथितं, तस्यामर्षो जातः, ततस्तस्या गृहमूले प्रत्यूषकालसमये गातुमारब्धः प्रोषितपतिकानिबद्धं, यथा आपृच्छति यथा तत्र चिन्तयति यथा लेखान् विसृजति यथाऽऽगतो गृहं प्रविशति, सा चिन्तयति–समीपे (भूमौ) वर्त्तते तदभ्युत्तिष्ठामीति आकाशतलादात्मा मुक्तः, सा मृता, एवं श्रोत्रेन्द्रियं दुःखाय भवति । चक्षुरिन्द्रिये उदाहरणं–मथुरायां नगर्यां जितशत्रू राजा, धारिणी देवी, सा प्रकृत्या धर्मश्रद्धा, तत्र भण्डीरवणं चैत्यं, तस्य यात्रा, राजा सह देव्या नगरजनश्च महाविभूत्या निर्गतः, तत्रैकेनेभ्यपुत्रेण यानसंस्थितायां देव्यां यवनिकान्तरविनिर्गतः सालक्तकः सनूपुरोऽतीवसुन्दरो दृष्टश्चरणः इति, चिन्तितं चानेन–यस्या ईदृशश्चरणः सा रूपेण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

तिंयससुंदरीणवि अब्भहिया, अज्झोववन्नो, पच्छा गविट्ठा–का एसत्ति ?, णाया, तग्घरपच्चासन्ने वीही गहिया, तीसे दासचेडीणं दुगुणं देइ महामणुस्सत्तणं च दाएइ, ताओ हयहिययाओ कयाओ, देवीएवि साहंति, संववहारो लग्गो, देवीएवि गंधाई तओ चेव गिण्हंति । अण्णया तेण भणियं–को एयाओ महामोल्ला गंधाइपुडियाओ उच्छोडेइ ?, चेडीए सिट्ठं–अम्हाणं सामिणित्ति, तेण एगाए पुडियाए भुज्जपत्ते लेहो लिहिऊण छूढो, जहा–'काले प्रसुप्तस्य जनार्दनस्य, मेघान्धकारासु च शर्वरीषु । मिथ्या न भाषामि विशालनेत्रे !, ते प्रत्यया ये प्रथमाक्षरेषु ॥ १ ॥' पच्छा उग्गाहिऊणं विसज्जिया, देवीए उग्घाडिया, वाचिओ लेहो, चिंतियं चडणाए–धिरत्थु भोगाणं, पडिलेहो लिहिओ, यथा–'नेह लोके सुखं किञ्चिच्छादितस्यांहसा भृशम् । मितं च जीवितं नृणां, तेन धर्मे मतिं कुरु ॥ १ ॥' पादप्रथमाक्षरप्रतिबद्धो भावार्थः पूर्वश्लोकवदवसेयः, तओ बंधिऊण पुडिया ण सुंदरगंधत्ति विसज्जिया चेडी, तीए पडिअप्पिया पुडिया, भणियं चडणाए–देवी आणवेइ–ण सुंदरा गंधत्ति, तुट्ठेण छोडिआ, दिट्ठो लेहो, अवगए लेहत्थे विसन्नो पोत्ताइं फालेऊण निग्गओ, चिंतियं

---

१ त्रिदशसुन्दरीभ्योऽप्यभ्यधिका, अध्युपपन्नः, पश्चाद्गवेषिता–कैषेति ?, ज्ञाता तद्गृहप्रत्यासन्ने वीथी गृहीता, तस्या दासचेटीभ्यो द्विगुणं ददाति महामनुष्यत्वं च दर्शयते, ता हृतहृदयाः कृताः, देव्यायपि कथयन्ति, संव्यवहारो लग्नः, देव्या अपि गन्धादिस्तत एव गृह्णन्ति । अन्यदा तेन भणितं–क एता महामूल्या गन्धादिपुटिका उच्छोटयति ?, चेट्या शिष्टम्–अस्माकं स्वामिनीति, तेनैकस्यां पुटिकायां भूर्जपत्रे लेखो लिखित्वा क्षिप्तः, यथा–पश्चादुद्ग्राह्य विसृष्टा, देव्योद्घाटिता, वाचितो लेखः, चिन्तितं चानया–धिगस्तु भोगान्, प्रतिलेखो लिखितः–ततो बद्धा पुटिका न सुन्दरगन्धेति विसृष्टा चेटी, तया प्रत्यर्पिता पुटिका, भणितं चानया–देव्याज्ञापयति–न सुन्दरा गन्धा इति, तुष्टेन छोटिता, दृष्टो लेखोऽवगते लेखार्थे विषण्णः पोतानि स्फाटयित्वा निर्गतः, चिन्तितं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

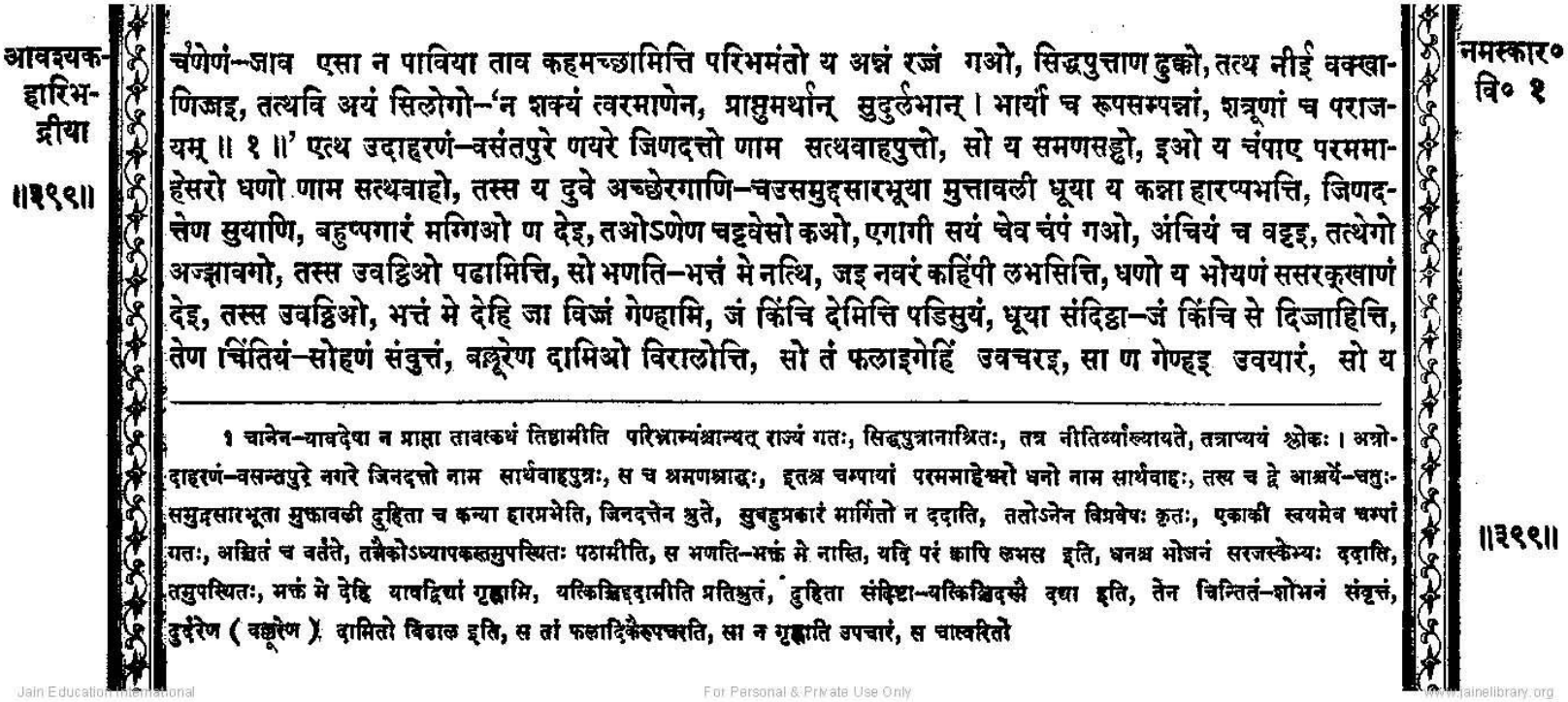

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥३९९॥

चंपेणं–जाव एसा न पाविया ताव कहमच्छामित्ति परिभमंतो य अन्नं रज्जं गओ, सिद्धपुत्ताण दुक्को, तत्थ नीई वक्खाणिज्जइ, तत्थवि अयं सिलोगो–'न शक्यं त्वरमाणेन, प्राप्तुमर्थान् सुदुर्लभान्। भार्यां च रूपसम्पन्नां, शत्रूणां च पराजयम् ॥ १ ॥' एत्थ उदाहरणं–वसंतपुरे णयरे जिणदत्तो णाम सत्थवाहपुत्तो, सो य समणसड्ढो, इओ य चंपाए परममाहेसरो धणो णाम सत्थवाहो, तस्स य दुवे अच्छेरगाणि–चउसमुद्दसारभूया मुत्तावली धूया य कन्ना हारप्पभत्ति, जिणदत्तेण सुयाणि, बहुप्पगारं मग्गिओ ण देइ, तओऽणेण चट्टवेसो कओ, एगागी सयं चेव चंपं गओ, अंचियं च वट्टइ, तत्थेगो अज्झावगो, तस्स उवट्ठिओ पढामित्ति, सो भणति–भत्तं मे नत्थि, जइ नवरं कहिंपी लभसित्ति, धणो य भोयणं ससरक्खाणं देइ, तस्स उवट्ठिओ, भत्तं मे देहि जा विज्जं गेण्हामि, जं किंचि देमित्ति पडिसुयं, धूया संदिट्ठा–जं किंचि से दिज्जाहित्ति, तेण चिंतियं–सोहणं संवुत्तं, बल्लूरेण दामिओ विरालोत्ति, सो तं फलाइगेहिं उवचरइ, सा ण गेण्हइ उवयारं, सो य

१ चानेन–यावदेषा न प्राप्ता तावत्कथं तिष्ठामीति परिभ्राम्यंश्चान्यत् राज्यं गतः, सिद्धपुत्रानाश्रितः, तत्र नीतिर्व्याख्यायते, तत्राप्ययं श्लोकः। अत्रोदाहरणं–वसन्तपुरे नगरे जिनदत्तो नाम सार्थवाहपुत्रः, स च श्रमणश्राद्धः, इतश्च चम्पायां परममाहेश्वरो धनो नाम सार्थवाहः, तस्य च द्वे आश्चर्ये–चतुःसमुद्रसारभूता मुक्तावली दुहिता च कन्या हारप्रभेति, जिनदत्तेन श्रुते, सुबहुप्रकारं मार्गितो न ददाति, ततोऽनेन विप्रवेषः कृतः, एकाकी स्वयमेव चम्पां गतः, अध्यितं च वर्तते, तत्रैकोऽध्यापकस्तमुपस्थितः पठामीति, स भणति–भक्तं मे नास्ति, यदि परं क्वापि लभस इति, धनश्च भोजनं सरजस्केभ्यः ददाति, तमुपस्थितः, भक्तं मे देहि यावद्विद्यां गृह्णामि, यत्किञ्चिद्दामीति प्रतिश्रुतं, दुहिता संदिष्टा–यत्किञ्चिदस्मै देया इति, तेन चिन्तितं–शोभनं संवृत्तं, दुर्दरेण (बल्लूरेण) दामितो विडाल इति, स तां फलादिकैरुपचरति, सा न गृह्णाति उपचारं, स चात्वरितो

नमस्कार० वि० १

॥३९९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

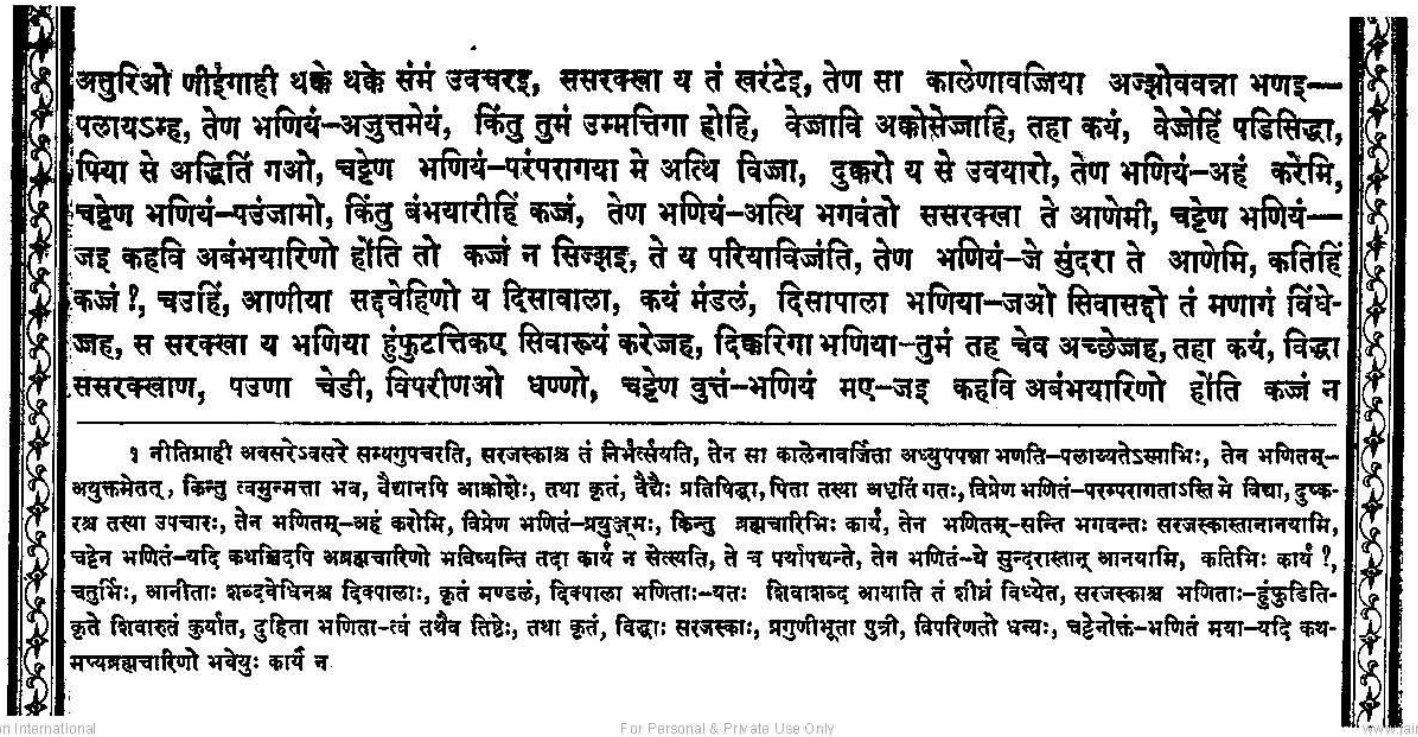

अतुरिओ णीईगाही थक्के थक्के संमं उवचरइ, ससरक्खा य तं खरंटेइ, तेण सा कालेणावज्जिया अज्झोववन्ना भणइ—पलायऽम्ह, तेण भणियं–अजुत्तमेयं, किंतु तुमं उम्मत्तिगा होहि, वेज्जावि अक्कोसेज्जाहि, तहा कयं, वेज्जेहिं पडिसिद्धा, पिया से अद्धितिं गओ, चट्टेण भणियं–परंपरागया मे अत्थि विज्जा, दुक्करो य से उवयारो, तेण भणियं–अहं करेमि, चट्टेण भणियं–पउंजामो, किंतु बंभयारीहिं कज्जं, तेण भणियं–अत्थि भगवंतो ससरक्खा ते आणेमी, चट्टेण भणियं—जइ कहवि अबंभयारिणो होंति तो कज्जं न सिज्झइ, ते य परियाविज्जंति, तेण भणियं–जे सुंदरा ते आणेमि, कतिहिं कज्जं ?, चउहिं, आणीया सद्दवेहिणो य दिसावाला, कयं मंडलं, दिसापाला भणिया–जओ सिवासद्दो तं मणागं विंधेज्जह, स सरक्खा य भणिया हुंफुट्टिकए सिवारूयं करेज्जह, दिक्करिगा भणिया–तुमं तह चेव अच्छेज्जह, तहा कयं, विद्धा ससरक्खाण, पउणा चेडी, विपरीणओ धण्णो, चट्टेण वुत्तं–भणियं मए–जइ कहवि अबंभयारिणो होंति कज्जं न

१ नीतिग्राही अवसरेऽवसरे सम्यगुपचरति, सरजस्काश्च तं निर्भर्त्सयति, तेन सा कालेनावर्जिता अध्युपपन्ना भणति–पलाय्यतेऽस्माभिः, तेन भणितम्–अयुक्तमेतत्, किन्तु त्वमुन्मत्ता भव, वैद्यानपि आक्रोशेः, तथा कृतं, वैद्यैः प्रतिषिद्धा, पिता तस्या अधृतिं गतः, विप्रेण भणितं–परम्परागताऽस्ति मे विद्या, दुष्करश्च तस्या उपचारः, तेन भणितम्–अहं करोमि, विप्रेण भणितं–प्रयुञ्ज्मः, किन्तु ब्रह्मचारिभिः कार्यं, तेन भणितम्–सन्ति भगवन्तः सरजस्कास्तानानयामि, चट्टेन भणितं–यदि कथञ्चिदपि अब्रह्मचारिणो भविष्यन्ति तदा कार्यं न सेत्स्यति, ते च पर्यापद्यन्ते, तेन भणितं–ये सुन्दरास्तान् आनयामि, कतिभिः कार्यं ?, चतुर्भिः, आनीताः शब्दवेधिनश्च दिक्पालाः, कृतं मण्डलं, दिक्पाला भणिताः–यतः शिवाशब्द आयाति तं शीघ्रं विध्येत, सरजस्काश्च भणिताः–हुंफुडितिकृते शिवारुतं कुर्यात, दुहिता भणिता–त्वं तथैव तिष्ठेः, तथा कृतं, विद्धाः सरजस्काः, प्रगुणीभूता पुत्री, विपरिणतो धन्यः, चट्टेनोक्तं–भणितं मया–यदि कथमप्यब्रह्मचारिणो भवेयुः कार्यं न

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

सिज्झइत्यादि, धणेण भणियं–को उवाओ ?, चट्टेण भणियं–एरिसा बंभयारिणो हवंति, गुत्तीओ कहेइ, दगसोकराइसु गवेसिओ नत्थि, साहूण दुक्को- तेहिं सिट्ठाओ 'वसहिकहणिसिज्जिंदियकुड्डंतरपुव्वकीलियपणीए । अइमायाहारविभूसणा य नव बंभगुत्तीओ ॥ १ ॥ एयासु वट्टमाणो सुद्धमणो जो य बंभयारी सो । जम्हा उ बंभचेरं मणोणिरोहो जिणाभिहियं ॥ २ ॥' उवगए भणिया–बंभयारीहिं मे कज्जं, साहू भणइ–न कप्पइ निग्गंथाणमेयं, चट्टस्स कहियं–लद्धा बंभयारी ण पुण इच्छंति, तेण भणियं–एरिसा चेव परिचत्तलोगवावारा मुणओ भवंति, किंतु पूजिएहिंवि तेहिं कज्जसिद्धी होइ, तंनामाणि लिक्खंति, न ताणि खुद्दंतरी अक्कमइ, पूइया, मंडलं कयं, साहुणामाणि लिहियाणि, दिसावाला ठविया, न कूवियं सिवाए, पउणा चेडी, धणो साहूणमल्लियंतो सड्ढो जाओ, धम्मोवगारित्ति चेडी मुत्ताफलमाला य तस्सेव दिन्ना, एवं अतुरंतेण सा तेणं पावियत्ति सिलोगत्थो ॥ सो एयं सुणिऊण परिणामेइ–अहंपि सदेसं गंतुमतुरंतो तत्थेव किंचि उवायं चिंतिस्सामित्ति

१ सेत्स्यति, धनेन भणितं–क उपायः ?, विप्रेण भणितं–ईदृशो ब्रह्मचारिणः स्युः, गुप्तीः कथयति, परिव्राजकेषु गवेषितो नास्ति, साधूनां पार्श्वे आगतः, तैः शिष्टाः–वसतिः कथा निषद्येन्द्रियाणि कुड्यान्तरं पूर्वक्रीडितं प्रणीतम् । अतिमात्राहारो विभूषणं च नव ब्रह्मचर्यगुप्तयः ॥ १ ॥ एतासु वर्त्तमानः शुद्धमना यश्च ब्रह्मचारी सः । यस्माच्च ब्रह्मचर्यं मनोनिरोधो जिनाभिहितम् ॥ २ ॥ उपगते भणिताः–ब्रह्मचारिभिर्मे कार्यं, साधवो भणन्ति–न कल्पते निर्ग्रन्थानामेतत्, चट्टाय कथितं, लब्धा ब्रह्मचारिणो न पुनरिच्छन्ति, तेन भणितं–ईदृशा एव परित्यक्तलोकव्यापारा मुनयो भवन्ति, किं तु पूजितैरपि तैः कार्यसिद्धिर्भवति, तस्मात्-मानि लिख्यन्ते, न तानि क्षुद्रव्यन्तर्य आक्रमन्ते, पूजिताः, मण्डलं कृतं, साधुनामानि लिखितानि, दिक्पालाः स्थापिताः, न कूजितं शिवया, प्रगुणा (जाता) दुहिता, धनः साधूनाश्रयन् श्राद्धो जातः, धर्मोपकारीति चेटी मुक्ताफलमाला च तस्मायैव दत्ता, एवमत्वरमाणेन सा तेन प्राप्तेति श्लोकार्थः ॥ स एतत् श्रुत्वा परिणमयति–अहमपि स्वदेशं गत्वाऽत्वरमाणस्तत्रैव कञ्चिदुपायं चिन्तयिष्यामीति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

गओ सदेसं, तत्थ य विज्जासिद्धा पाणा दडरक्खा, तेण ते ओलग्गिया, भणंति–किं ते अम्हेहिं कज्जं ?, सिट्ठं–देविं घडेह, तेहिं चिंतियं–उच्छोभं देमो जेण राया परिचयइ, तेहिं मारी विउविया, लोगो मरिउमारद्धो, रन्ना पाणा समाइट्ठा–लभेह मारिं, तेहिं भणियं–गवेसामो विज्जाए, देवीवासघरे माणुसा हत्थपाया विउविया, मुहं च से रुहिरलित्तं कयं, रण्णो निवेइयं–वत्थव्वा चेव मारी, नियघरे गवेसाहि, रण्णा गविट्ठा दिट्ठा य, पाणा समाइट्ठा–सविहीए विवादेह तो खाइं मंडले मज्झरत्तंमि अप्पसागारिए वावाएयव्वा, तहत्ति पडिसुए णीया सगिहं रत्तिं मंडलं, सो य तत्थ पुव्वालोइयकवडो गओ, सखलियारं मारेउमारद्धा, तेण भणियं–किं एयाए कयंति, ते भणंति–मारी एसत्ति मारिज्जइ, तेण भणियं–कहमेयाए आगिईए मारी हवइत्ति?, केणति अवसद्दो ते दिण्णो, मा मारेह, मुयह एयं, ते नेच्छंति, गाढतरं लग्गो, अहं भे कोडिमोल्लं अलंकारं देमि मुयह एयं, मा मारेहिति, बलामोडीए अलंकारो उवणीओ, तीए चिंतियं–निक्कारणवच्छलोत्ति तंमि

---

१ गतः स्वदेशं, तत्र च विद्यासिद्धाश्चण्डाला दण्डरक्षाः, तेन तेऽवलगिताः, भणन्ति–किं तवास्माभिः कार्यम् ?, शिष्टं, देवीं मीलयत, तैश्चिन्तितम्—आलं दग्धो येन राजा परित्यजति, तैर्मारिर्विकुर्विता, लोको मर्तुमारब्धः, राज्ञा चाण्डालाः समादिष्टाः–लभध्वं मारीं, तैर्भणितं–गवेषयामो विद्यया, देवीवासगृहे मानुष्या हस्तपादा विकुर्विताः, मुखं च तस्या रुधिरलिप्तं कृतं, राज्ञः निवेदितं–वास्तव्यैव मारी, निजगृहे गवेषय, राज्ञा गवेषिता दृष्टा च, चाण्डालाः समादिष्टाः–स्वविधिना व्यापादयत तदाऽवश्यं मण्डले मध्यरात्रेऽल्पसागारिके व्यापादयितव्या, तथेति प्रतिश्रुते नीता स्वगृहं रात्रौ मण्डलं, स च तत्र पूर्वालोचितकपटो गतः, सोपचारं मारयितुमारब्धा, तेन भणितं–किमेतया कृतमिति, ते भणन्ति–मार्येतेति मार्यते, तेन भणितं–कथमेतयाऽऽकृत्या मारिर्भवतीति, केनचिदपशब्दो दत्त युष्माकं, मा मारयत, मुञ्चतैनां, ते नेच्छन्ति, गाढतरं लग्नः, अहं युष्मभ्यं कोटिमूल्यमलङ्कारं ददामि मुञ्चतैनां, मा मारयतेति बलात् अलङ्कार उपनीतः, तया चिन्तितं–निष्कारणवत्सल इति तस्मिन्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

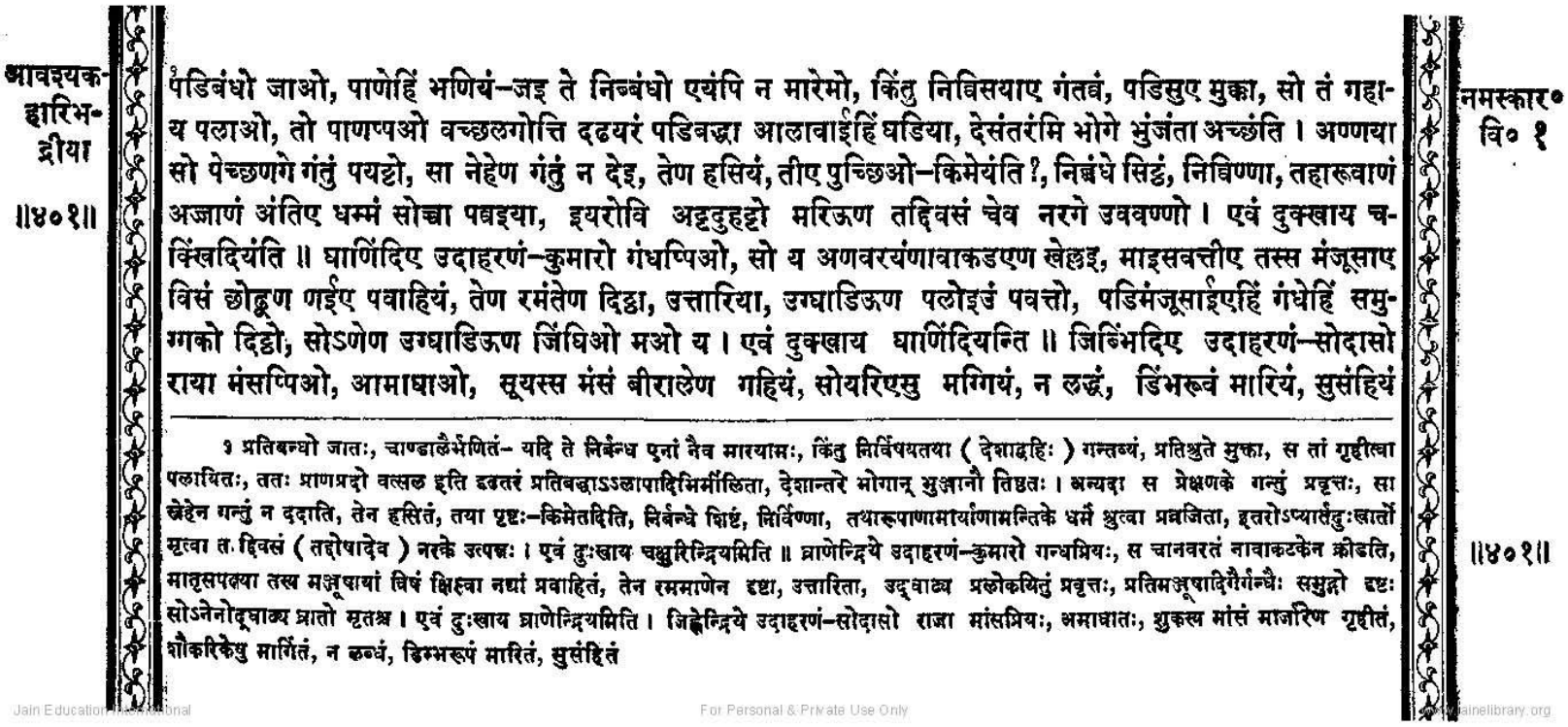

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥४०१॥

पडिबंधो जाओ, पाणेहिं भणियं–जइ ते निब्बंधो एयंपि न मारेमो, किंतु निविसयाए गंतव्वं, पडिसुए मुक्का, सो तं गहाय पलाओ, तो पाणप्पओ वच्छलगोत्ति दढयरं पडिबद्धा आलावाईहिं घडिया, देसंतरंमि भोगे भुंजंता अच्छंति । अण्णया सो पेच्छणगे गंतुं पयट्टो, सा नेहेण गंतुं न देइ, तेण हसियं, तीए पुच्छिओ–किमेयंति ?, निब्बंधे सिट्ठं, निविण्णा, तहारूवाणं अज्जाणं अंतिए धम्मं सोच्चा पव्वइया, इयरोवि अट्टदुहट्टो मरिऊण तद्दिवसं चेव नरगे उववण्णो । एवं दुक्खाय चक्खिदियंति ॥ घाणिंदिए उदाहरणं–कुमारो गंधप्पिओ, सो य अणवरयंणावाकडएण खेलइ, माइसवत्तीए तस्स मंजूसाए विसं छोढूण गईए पवाहियं, तेण रमंतेण दिट्ठा, उत्तारिया, उग्घाडिऊण पलोइउं पवत्तो, पडिमंजूसाईएहिं गंधेहिं समुग्गको दिट्ठो, सोऽणेण उग्घाडिऊण जिंघिओ मओ य । एवं दुक्खाय घाणिंदियन्ति ॥ जिब्भिंदिए उदाहरणं–सोदासो राया मंसप्पिओ, आमाघाओ, सूयस्स मंसं बीरालेण गहियं, सोयरिएसु मग्गियं, न लद्धं, डिंभरूवं मारियं, सुसंहियं

१ प्रतिबन्धो जातः, चाण्डालैर्भणितं– यदि ते निर्बन्ध एनां नैव मारयामः, किंतु निर्विषयतया (देशाद्बहिः) गन्तव्यं, प्रतिश्रुते मुक्ता, स तां गृहीत्वा पलायितः, ततः प्राणप्रदो वत्सल इति दृढतरं प्रतिबद्धाऽऽलापादिभिर्मीलिता, देशान्तरे भोगान् भुञ्जानौ तिष्ठतः । अन्यदा स प्रेक्षणके गन्तुं प्रवृत्तः, सा स्नेहेन गन्तुं न ददाति, तेन हसितं, तया पृष्टः–किमेतदिति, निर्बन्धे शिष्टं, निर्विण्णा, तथारूपाणामार्याणामन्तिके धर्मं श्रुत्वा प्रव्रजिता, इतरोऽप्यार्तदुःखार्तो मृत्वा तद्दिवसं (तद्दोषादेव) नरके उत्पन्नः । एवं दुःखाय चक्षुरिन्द्रियमिति ॥ घ्राणेन्द्रिये उदाहरणं–कुमारो गन्धप्रियः, स चानवरतं नावाकटकेन क्रीडति, मातृसपत्न्या तस्य मञ्जूषायां विषं क्षिप्त्वा नद्यां प्रवाहितं, तेन रममाणेन दृष्टा, उत्तारिता, उद्घाट्य प्रलोकयितुं प्रवृत्तः, प्रतिमञ्जूषादिगैर्गन्धैः समुद्गो दृष्टः सोऽनेनोद्घाट्य घ्रातो मृतश्च । एवं दुःखाय घ्राणेन्द्रियमिति । जिह्वेन्द्रिये उदाहरणं–सोदासो राजा मांसप्रियः, अमाघातः, शुकस्य मांसं मार्जारेण गृहीतं, शौकरिकेषु मार्गितं, न लब्धं, डिम्भरूपं मारितं, सुसंहितं

नमस्कार० वि० १

॥४०१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

पुच्छइ, कहियं, पुरिसा से दिन्ना–मारेहत्ति, नयरेण नाओ भिच्चेहि य रक्खसोत्ति महुं पाएत्ता अडवीए पवेसितो, चच्चरे ठिओ गयं गहाय दिणे २ माणुस्सं मारेइ, केइ भणंति–विरहे जणं मारेति, तेणंतेणं सत्थो जाइ, तेण सुत्तेण न जाणिओ, साहू य आवस्सयं करेन्ता फिडिया, ते दट्ठूणं ओलग्गइ, तवेण न सक्केइ अल्लिइउं, चिंतइ, धम्मकहणं, पव्वज्जा। अन्ने भणंति–सो भणइ वच्चंते–ठाह, साहू भणइ–अम्हे ठिया तुमं चेव ठाहि, चिंतेइ, संबुद्धो, साइसया आयरिया, ते ओहिनाणी, केत्तियाणमेवं होहि। एवं दुक्खाय जिब्भिंदियंति ॥ फासिंदिए उदाहरणं–वसंतपुरे णयरे जियसत्तू राया, सुकुमालिया से भज्जा, तीसे अईव सुकुमालो फासो, राया रज्जं न चिंतेइ, सो एयं निच्चमेव पडिभुज्जमाणो अच्छइ, एवं कालो वच्चइ, भिच्चेहिं सामंतोऽहिमंतेऊण तीए सह निच्छूढो, पुत्तो से रज्जे ठविओ, ते अडवीए वच्चंति, सा तिसाइया, जलं मग्गियं, अच्छीणि से बद्धाणि मा बीहेहित्ति, छिरारुहिरं पज्जिया, रुहिरे मूलिया छूढा जेण ण थिज्जइ, छुहाइया

---

१ पृच्छति, कथितं, पुरुषास्तस्मै दत्ता–मारयतेति, नागरेण ज्ञातो भृत्यैश्च राक्षस इति मद्यं पाययित्वा अटव्यां प्रवेशितः, चत्वरे स्थितो गजं गृहीत्वा दिने २ मनुष्यं मारयति, केचिद्भणन्ति–विरहे जनं मारयति, तेन मार्गेण सार्थो याति, तेन सुप्तेन न ज्ञातः, साधवश्चावश्यकं कुर्वन्तः स्फिटिताः, तेन दृष्ट्वाऽवलग्यन्ते, तपसा न शक्नोति आश्रयितुं, चिन्तयति, धर्मकथनं, प्रव्रज्या। अन्ये भणन्ति–स भणति व्रजतः–तिष्ठत, साधवो भणन्ति–वयं स्थिता स्वमेव तिष्ठ, चिन्तयति, संबुद्धः, सातिशया आचार्याः, ते अवधिज्ञानिनः, कियतामेवं भविष्यति। एवं दुःखाय जिह्वेन्द्रियमिति। स्पर्शनेन्द्रिय उदाहरणं–वसन्तपुरे नगरे जितशत्रू राजा, सुकुमालिका तस्य भार्या, तस्या अतीव सुकुमालः स्पर्शः, राजा राज्यं न चिन्तयति, स एतां नित्यमेव प्रतिभुजानः तिष्ठति, एवं कालो व्रजति, भृत्यैश्च सामन्तोऽपि मन्त्रयित्वा तया सह निष्काशितः, पुत्रस्तस्य राज्ये स्थापितः, तावटव्यां व्रजतः, सा तृषार्दिता, जलं मार्गितम्, अक्षिणी तस्या बद्धे मा भैषीरिति, शिरारुधिरं पायिता, रुधिरे मूलिका क्षिप्ता, येन न स्थायति, क्षुधार्दिता

Jain Education International . For Personal & Private Use Only jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

उरुमंसं दिन्नं, उरुग संरोहिणीए रोहियं, जणवयं पत्ताणि, आभरणगाणि सारवियाणि, एगत्थ वाणियत्तं करेइ, पंगू य से वीहीए सोहगो, घडिओ, सा भणइ–न सक्कणोमि एगागिणी गिहे चिट्ठिउं बिदिज्जियं लभाहि, चिंतियं चऽणेण–निरवाओ पंगू सोहणो, तओऽणेण सो नेडुवालगो निउत्तो, तेण य गीयछलियकहाइहिं आवज्जिया, पच्छा तस्सेव लग्गा भत्तारस्स छिद्दाणि मग्गइ, जाहे न लभइ ताहे उज्जाणियागओ सुवीसत्थो बहुं मज्जं पाएत्ता गंगाए पक्खित्तो, सावि तं दव्वं खाइऊण खंधेण तं वहइ, गायंति य घरे २, पुच्छिया भणइ–अम्मापिईहिं एरिसो दिन्नो किं करेमि?, सोऽवि राया एगत्थ णयरे उच्छलिओ, रुक्खछायाए सुत्तो, ण परावत्तति छाया, राया तत्थ मयओ अपुत्तो, अस्सो य अहिवासिओ तत्थ गओ, जयजयसद्देण पडिबोहिओ, राया जाओ, ताणिवि तत्थ गयाणि, रण्णो कहियं, आणावियाणि, पुच्छिया, साहइ–अम्मापीईहि दिन्नो, राया भणइ–'बाहुभ्यां शोणितं पीतमुरुमांसं च भक्षितम्। गङ्गायां वाहितो भर्त्ता, साधु साधु

---

१ ऊरुमांसं दत्तं, ऊरु संरोहिण्या रोहितं, जनपदं प्राप्तौ, आभरणानि संगोपितानि, एकत्र वणिक्त्वं करोति, पङ्गुश्च तस्या वीथ्याः शोधकः, मीलितः, सा भणति–न शक्नोमि एकाकिनी गृहे स्थातुं द्वितीयं लम्भय, चिन्तितं चानेन–निरपायः पङ्गुः शोभनः, ततोऽनेन स गृहपालको नियुक्तः, तेन च गीत-श्छलितकथादिभिरावर्जिता, पश्चात्तेनैव लग्ना, भर्तुश्छिद्राणि मार्गयति, यदा न लभते तदोद्यानिकागतः सुविश्वस्तो बहु मद्यं पाययित्वा गङ्गायां प्रक्षिप्तः, साऽपि तद्द्रव्यं खादयित्वा स्कन्धेन तं वहति, गायतश्च गृहे गृहे, पृष्टा भणति–मातापितृभ्यामीदृशो दत्तः, किं करोमि?, सोऽपि राजा एकत्र नगरे निर्गतः, वृक्षच्छायायां सुप्तः, न परावर्त्तते छाया, राजा च तत्र मृतोऽपुत्रः, अश्वश्चाधिवासितस्तत्र गतः, जयजयशब्देन प्रतिबोधितः, राजा जातः, तावपि तत्र गतौ, राज्ञे कथितम्, आनायितौ, पृष्टा, कथयति–मातापितृभ्यां दत्तः, राजा भणति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

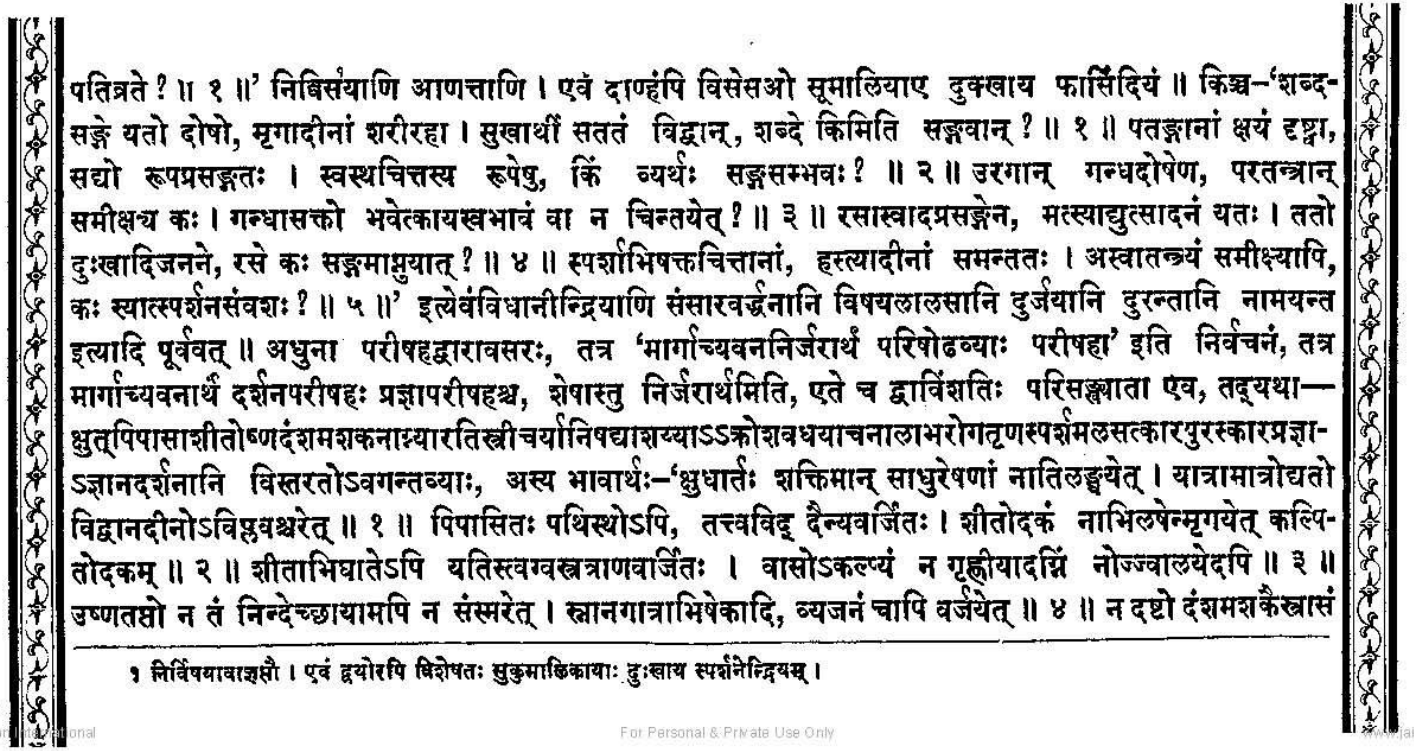

पतित्रते ? ॥ १ ॥' निर्विसंयाणि आणत्ताणि । एवं दाण्हंपि विसेसओ सूमालियाए दुक्खाय फार्सिदियं ॥ किञ्च–'शब्द-सङ्गे यतो दोषो, मृगादीनां शरीरहा । सुखार्थी सततं विद्वान्, शब्दे किमिति सङ्गवान् ? ॥ १ ॥ पतङ्गानां क्षयं दृष्ट्वा, सद्यो रूपप्रसङ्गतः । स्वस्थचित्तस्य रूपेषु, किं व्यर्थः सङ्गसम्भवः ? ॥ २ ॥ उरगान् गन्धदोषेण, परतन्त्रान् समीक्ष्य कः । गन्धासक्तो भवेत्कायस्वभावं वा न चिन्तयेत् ? ॥ ३ ॥ रसास्वादप्रसङ्गेन, मत्स्याद्युत्सादनं यतः । ततो दुःखादिजनने, रसे कः सङ्गमाप्नुयात् ? ॥ ४ ॥ स्पर्शाभिषक्तचित्तानां, हस्त्यादीनां समन्ततः । अस्वातन्त्र्यं समीक्ष्यापि, कः स्यात्स्पर्शनसंवशः ? ॥ ५ ॥' इत्येवंविधानीन्द्रियाणि संसारवर्द्धनानि विषयलालसानि दुर्जयानि दुरन्तानि नामयन्त इत्यादि पूर्ववत् ॥ अधुना परीषहद्वारावसरः, तत्र 'मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहा' इति निर्वचनं, तत्र मार्गाच्यवनार्थं दर्शनपरीषहः प्रज्ञापरीषहश्च, शेषास्तु निर्जरार्थमिति, एते च द्वाविंशतिः परिसङ्ख्याता एव, तद्यथा— क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्यानिषद्याशय्याऽऽक्रोशवधयाचनालाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञा-ऽज्ञानदर्शनानि विस्तरतोऽवगन्तव्याः, अस्य भावार्थः–'क्षुधार्तः शक्तिमान् साधुरेषणां नातिलङ्घयेत् । यात्रामात्रोद्यतो विद्वानदीनोऽविप्लवश्चरेत् ॥ १ ॥ पिपासितः पथिस्थोऽपि, तत्त्ववित् दैन्यवर्जितः । शीतोदकं नाभिलषेन्मृगयेत् कल्पि-तोदकम् ॥ २ ॥ शीताभिघातेऽपि यतिस्त्वग्वस्त्रत्राणवर्जितः । वासोऽकल्प्यं न गृह्णीयादग्निं नोज्ज्वालयेदपि ॥ ३ ॥ उष्णतप्तो न तं निन्देच्छायामपि न संस्मरेत् । स्नानगात्राभिषेकादि, व्यजनं चापि वर्जयेत् ॥ ४ ॥ न दष्टो दंशमशकैस्त्रासं

१ निर्विषयावाज्ञप्तौ । एवं द्वयोरपि विशेषतः सुकुमालिकायाः दुःखाय स्पर्शनेन्द्रियम् ।

८

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सदृष्टांत एक-एक इन्द्रियविषयात् जिवितव्यस्य हानेः कथनं
'परिषह' शब्दस्य व्याख्या एवं २२ भेदाः वर्णनं

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

द्वेषं मुनिर्न्नयेत् । न वारयेदुपेक्षेत, सर्वाहारप्रियत्ववित् ॥ ५ ॥ वासोऽशुभं न वा मेऽस्ति, नेच्छेत् तत्साध्वसाधु वा । लाभालाभविचित्रत्वं, जानन्नाम्येन विप्लुतः ॥ ६ ॥ गच्छंस्तिष्ठन्निषण्णो वा, नारतिप्रवणो भवेत् । धर्मारामरतो नित्यं, स्वस्थचेता भवेन्मुनिः ॥ ७ ॥ सङ्गपङ्कसुदुर्बाधाः, स्त्रियो मोक्षपथार्गलाः । चिन्तिता धर्मनाशाय, यतोऽतस्ता न चिन्तयेत् ॥ ८ ॥ ग्रामाद्यनियतस्थायी, सदा वाऽनियतालयः । विविधाभिग्रहैर्युक्तश्चर्यामेकोऽप्यधिश्रयेत् ॥ ९ ॥ श्मशानादिनिष-द्यासु, रूढ्यादिकण्टकवर्जिते । उपसर्गाननिष्टेष्टानेकोऽभीरस्पृहः क्षमेत् ॥ १० ॥ शुभाशुभासु शय्यासु, सुखदुःखे समु-त्थिते । सहेत सङ्गं नेयाच्च, श्वस्त्याज्येति च भावयेत् ॥ ११ ॥ नाक्रुष्टो मुनिराक्रोशेत्, साम्याद् ज्ञानाद्यवर्जकः । अपे-क्षेतोपकारित्वं, न तु द्वेषं कदाचन ॥ १२ ॥ हतः सहेतैव मुनिः, प्रतिहन्यान्न साम्यवित् । जीवानाशात् क्षमायोगाद्, गुणाप्तेः क्रोधदोषतः ॥ १३ ॥ परदत्तोपजीवित्वाद्, यतीनां नास्त्ययाचितम् । यतोऽतो याचनादुःखं, क्षाम्येन्नेच्छेदगारि-ताम् ॥ १४ ॥ परकीयं परार्थं च, लभ्येतान्नादि नैव वा । लब्धे न माद्येन्निन्देद्वा, स्वपरान्नाप्यलाभतः ॥ १५ ॥ नोद्विजेद् रोगसम्प्राप्तो, न चाभीप्सेच्चिकित्सितम् । विषहेत तथाऽदीनः, श्रामण्यमनुपालयेत् ॥ १६ ॥ अभूताल्पाणुचेलत्वे, कादा-चित्कं तृणादिषु । तत्संस्पर्शोद्भवं दुःखं, सहेन्नेच्छेच्च तान् मृदून् ॥ १७ ॥ मलपङ्करजोदिग्धो, ग्रीष्मोष्णक्लेदनादपि । नोद्वि-जेत् स्नानमिच्छेद्वा, सहेतोद्वर्तयेन्न वा ॥ १८ ॥ उत्थानं पूजनं दानं, स्पृहयेन्नात्मपूजकः । मूर्छितो न भवेल्लब्धे, दीनोऽ-सत्कारितो न च ॥ १९ ॥ अजानन् वस्तु जिज्ञासुर्न मुह्येत् कर्मदोषवित् । ज्ञानिनां ज्ञानमुद्दीक्ष्य, तथैवेत्यन्यथा न तु ॥ २० ॥ विरतस्तपसोपेतश्छद्मस्थोऽहं तथाऽपि च । धर्मादि साक्षान्नैवेक्षे, नैवं स्यात् क्रमकालवित् ॥ २१ ॥ जिनास्तदुक्तं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

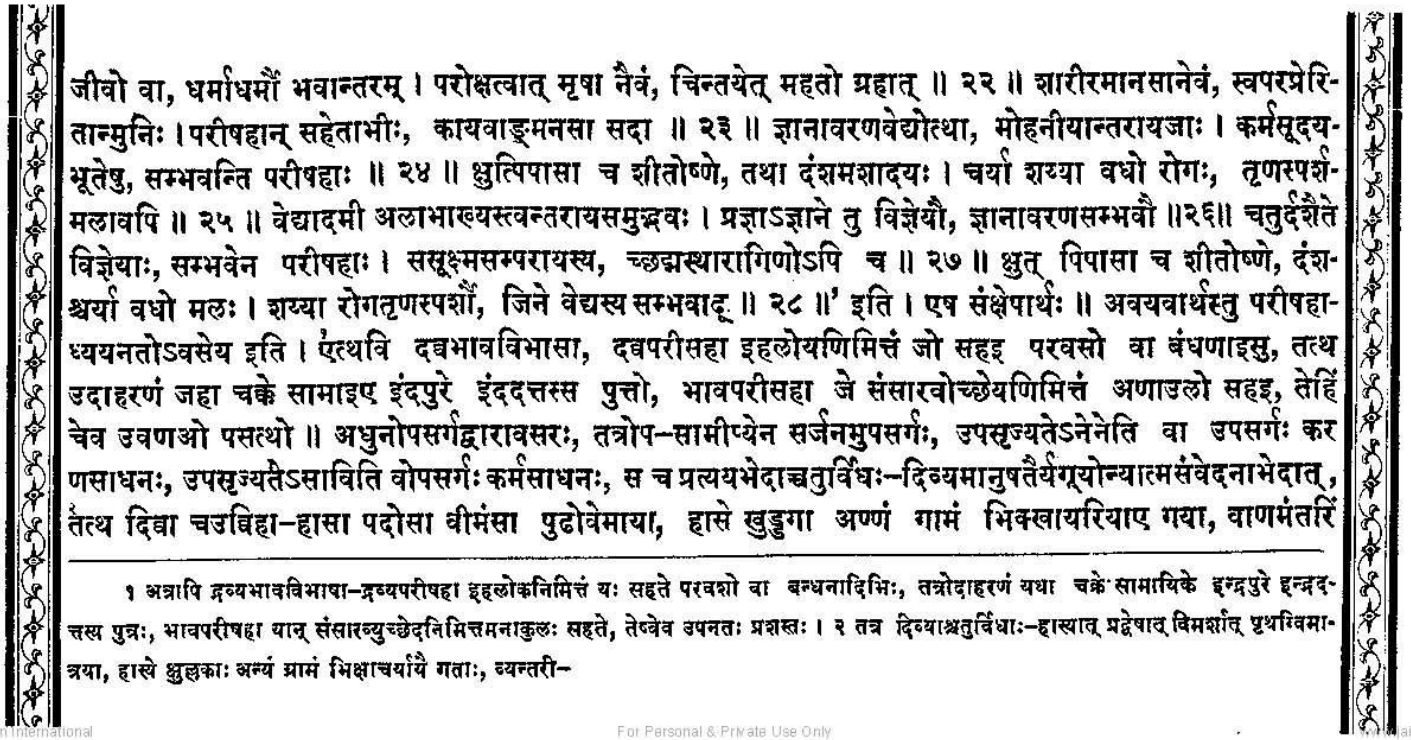

जीवो वा, धर्माधर्मौ भवान्तरम् । परोक्षत्वात् मृषा नैवं, चिन्तयेत् महतो ग्रहात् ॥ २२ ॥ शारीरमानसानेवं, स्वपरप्रेरितान्मुनिः । परीषहान् सहेताभीः, कायवाङ्मनसा सदा ॥ २३ ॥ ज्ञानावरणवेद्योत्था, मोहनीयान्तरायजाः । कर्मसूदयभूतेषु, सम्भवन्ति परीषहाः ॥ २४ ॥ क्षुत्पिपासा च शीतोष्णे, तथा दंशमशादयः । चर्या शय्या वधो रोगः, तृणस्पर्शमलावपि ॥ २५ ॥ वेद्यादमी अलाभाख्यस्त्वन्तरायसमुद्भवः । प्रज्ञाऽज्ञाने तु विज्ञेयौ, ज्ञानावरणसम्भवौ ॥२६॥ चतुर्दशैते विज्ञेयाः, सम्भवेन परीषहाः । ससूक्ष्मसम्परायस्य, च्छद्मस्थारागिणोऽपि च ॥ २७ ॥ क्षुत् पिपासा च शीतोष्णे, दंशश्चर्या वधो मलः । शय्या रोगतृणस्पर्शौ, जिने वेद्यस्य सम्भवात् ॥ २८ ॥' इति । एष संक्षेपार्थः ॥ अवयवार्थस्तु परीषहाध्ययनतोऽवसेय इति । एत्थवि दव्वभावविभासा, दवपरीसहा इहलोयणिमित्तं जो सहइ परवसो वा बंधणाइसु, तत्थ उदाहरणं जहा चक्के सामाइए इंदपुरे इंददत्तस्स पुत्तो, भावपरीसहा जे संसारवोच्छेयणिमित्तं अणाउलो सहइ, तेहिं चेव उवणओ पसत्थो ॥ अधुनोपसर्गद्वारावसरः, तत्रोप–सामीप्येन सर्जनमुपसर्गः, उपसृज्यतेऽनेनेति वा उपसर्गः करणसाधनः, उपसृज्यतेऽसाविति वोपसर्गः कर्मसाधनः, स च प्रत्ययभेदाच्चतुर्विधः–दिव्यमानुषतैर्यग्योन्यात्मसंवेदनाभेदात्, तत्थ दिव्वा चउव्विहा–हासा पदोसा वीमंसा पुढोवेमाया, हासे खुड्डगा अण्णं गामं भिक्खायरियाए गया, वाणमंतरिं

१ अत्रापि द्रव्यभावविभाषा–द्रव्यपरीषहा इहलोकनिमित्तं यः सहते परवशो वा बन्धनादिभिः, तत्रोदाहरणं यथा चक्रे सामायिके इन्द्रपुरे इन्द्रदत्तस्य पुत्रः, भावपरीषहा यान् संसारव्युच्छेदनिमित्तमनाकुलः सहते, तेष्वेव उपनतः प्रशस्तः । २ तत्र दिव्याश्चतुर्विधाः–हास्यात् प्रद्वेषात् विमर्शात् पृथग्विमात्रया, हास्ये क्षुल्लकाः अन्यं ग्रामं भिक्षाचर्यायै गताः, व्यन्तरी–

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उपसर्ग-द्वारस्य वर्णनं

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

उवाइंति–जइ फवामो तो वियडिउं डेरगकण्हवण्णएण अच्चणियं देहामो, लद्धं, सा मग्गइ, अन्नमन्नस्स कहणं, मग्गिऊण दिन्नं, एयं ते तंति, ताहे सयं चेव तं पक्खाइया, कंदप्पिया देवया तेसिं रूवं आवरेत्ता रमइ, वियाले मग्गिया, न दिट्ठा, देवयाए आयरियाण कहियं। पओसे संगमओ। वीमंसाए एगत्थ देउलियाए साहू वासावासं वसेत्ता गया, तेसिं च एगो पुव्विं पेसिओ, तओ चेव वरिसारत्तं करेउं आगओ, ताए देउलियाए आवासिओ, देवया चिंतेइ–किं दढधम्मो नवत्ति सड्ढीरूवेण उवसग्गेइ, सो नेच्छइ, तुट्ठा वंदइ। पुढोवेमाया हासेण करेउं पदोसेण करेज्ज, एवं संजोगा। माणुस्सा चउव्विहा–हासा पओसा वीमंसा कुसीलपडिसेवणया, हासे गणियाधूया, खुड्डगं भिक्खस्स गयं उवसग्गेइ, हया, रण्णो कहियं, खुड्डगो सद्दाविओ, सिरिघरदिट्ठंतं कहेइ। पओसे गयसुकुमालो सोमभूइणा ववरोविओ, अहवा एगो धिज्जाइओ एगाए अविरइयाए सद्धिं अकिच्चं सेवमाणो साहुणा दिट्ठो, पओसमावण्णो साहुं मारेमित्ति पहाविओ, साहुं पुच्छइ–किं तुमे

नमस्कार० वि० १

॥४०४॥

१ मुपयाचन्ते–यदि लप्स्यामहे तदा विकटस्य लघुकृष्णवर्णेनार्चनं दास्यामः, लब्धं, सा मार्गयति, अन्योऽन्यस्मै कथनं, मार्गयित्वा दत्तम्, एतत्ते तदिति, तदा स्वयमेव तं प्रस्खादिता, कान्दर्पिका देवता तेषां रूपमावृत्य रमते, विकाले मार्गिताः, न दृष्टाः, देवतयाऽऽचार्याय कथितं। प्रद्वेषे संगमकः। विमर्शे एकत्र देवकुलिकायां साधवो वर्षारात्रमुषित्वा गताः, तेषां चैकः पूर्वं प्रेषितः, तत्रैव वर्षारात्रं कर्तुमागतः, तस्यां देवकुलिकायामावासितः, देवता चिन्तयति–किं दृढधर्मा नवेति श्राद्धीरूपेणोपसर्गयति, स नेच्छति, तुष्टा वन्दते। पृथग्विमात्रा हास्येन कृत्वा प्रद्वेषेण कुर्यात्, एवं संयोगाः। मानुष्याश्चतुर्विधाः–हास्यात् प्रद्वेषात् विमर्शात् कुशीलप्रतिषेवनया, हास्ये गणिकादुहिता, क्षुल्लकं भिक्षायै गतमुपसर्गयति, हता, राज्ञः कथितं, क्षुल्लकः शन्दितः, श्रीगृहदृष्टान्तं कथयति। प्रद्वेषे गजसुकुमालः सोमभूतिना व्यपरोपितः, अथवा एको धिग्जातीय एकयाऽविरतिकया सार्धमकार्यं सेवमानः साधुना दृष्टः, प्रद्वेषमापन्नः साधुं मारयामीति प्रधावितः, साधुं पृच्छति–किं त्वयाऽद्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

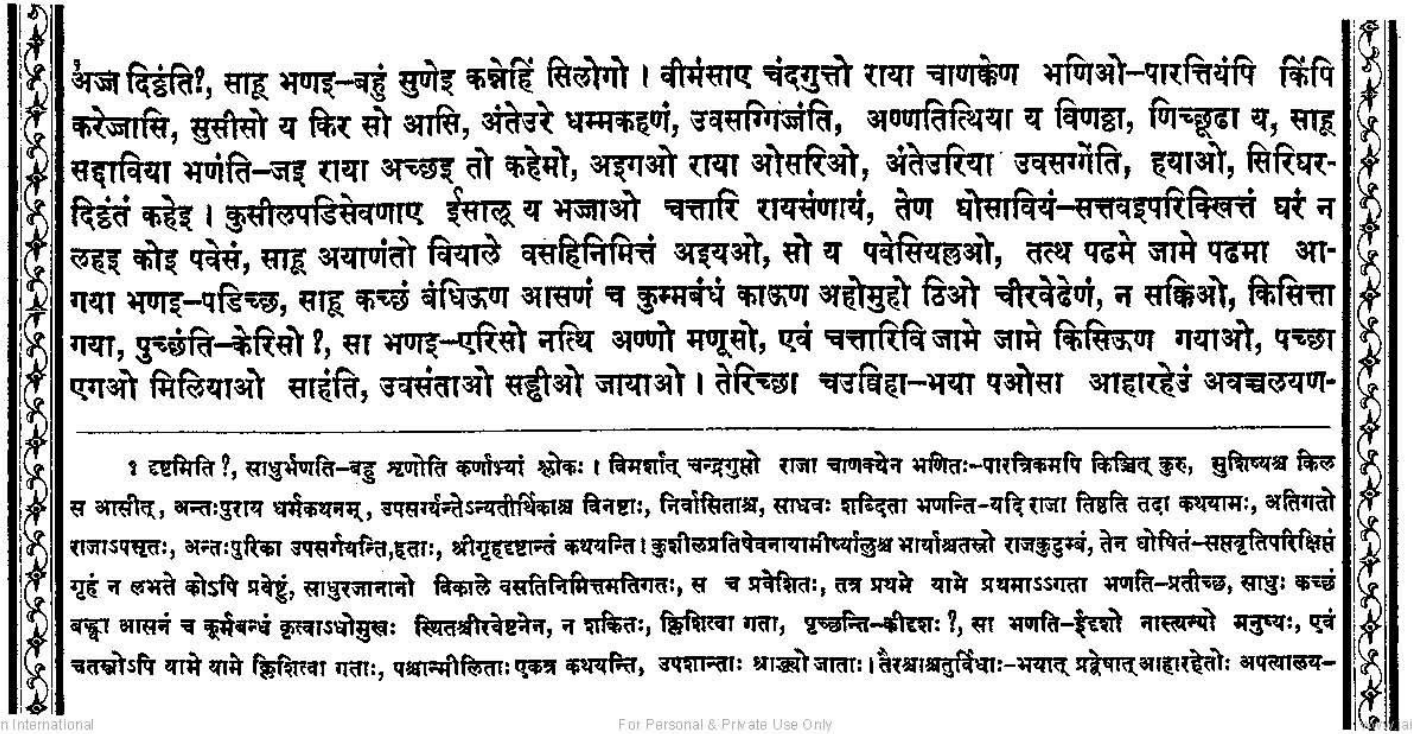

अज्ज दिट्ठंति?, साहू भणइ–बहुं सुणेइ कन्नेहिं सिलोगो। वीमंसाए चंदगुत्तो राया चाणक्केण भणिओ–पारत्तियंपि किंपि करेज्जासि, सुसीसो य किर सो आसि, अंतेउरे धम्मकहणं, उवसग्गिज्जंति, अण्णतित्थिया य विणट्ठा, णिच्छूढा य, साहू सद्दाविया भणंति–जइ राया अच्छइ तो कहेमो, अइगओ राया ओसरिओ, अंतेउरिया उवसग्गेंति, हयाओ, सिरिघर-दिट्ठंतं कहेइ। कुसीलपडिसेवणाए ईसालू य भज्जाओ चत्तारि रायसंणायं, तेण धोसावियं–सत्तवइपरिक्खित्तं घरं न लहइ कोइ पवेसं, साहू अयाणंतो वियाले वसहिनिमित्तं अइयओ, सो य पवेसियल्लओ, तत्थ पढमे जामे पढमा आ-गया भणइ–पडिच्छ, साहू कच्छं बंधिऊण आसणं च कुम्मबंधं काऊण अहोमुहो ठिओ चीरवेढेणं, न सक्किओ, किसित्ता गया, पुच्छंति–केरिसो?, सा भणइ–एरिसो नत्थि अण्णो मणूसो, एवं चत्तारिवि जामे जामे किसिऊण गयाओ, पच्छा एगओ मिलियाओ साहंति, उवसंताओ सड्ढीओ जायाओ। तेरिच्छा चउव्विहा–भया पओसा आहारहेउं अवच्चलयण-

---

१ दृष्टमिति?, साधुर्भणति–बहु शृणोति कर्णाभ्यां श्लोकः। विमर्शात् चन्द्रगुप्तो राजा चाणक्येन भणितः–पारत्रिकमपि किञ्चित् कुरु, सुशिष्यश्च किल स आसीत्, अन्तःपुराय धर्मकथनम्, उपसर्गयन्तेऽन्यतीर्थिकाश्च विनष्टाः, निर्वासिताश्च, साधवः शब्दिता भणन्ति–यदि राजा तिष्ठति तदा कथयामः, अतिगतो राजाऽपसृतः, अन्तःपुरिका उपसर्गयन्ति,हताः, श्रीगृहदृष्टान्तं कथयन्ति। कुशीलप्रतिषेवनायामीर्ष्यालुश्च भार्याश्चतस्रो राजकुटुम्बं, तेन घोषितं–सप्तवृतिपरिक्षिप्तं गृहं न लभते कोऽपि प्रवेष्टुं, साधुरजानानो विकाले वसतिनिमित्तमतिगतः, स च प्रवेशितः, तत्र प्रथमे यामे प्रथमाऽऽगता भणति–प्रतीच्छ, साधुः कच्छं बद्ध्वा आसनं च कूर्मबन्धं कृत्वाऽधोमुखः स्थितश्चीरवेष्टनेन, न शकितः, क्लिशित्वा गता, पृच्छन्ति–कीदृशः?, सा भणति–ईदृशो नास्त्यन्यो मनुष्यः, एवं चतस्रोऽपि यामे यामे क्लिशित्वा गताः, पश्चान्मीलिताः एकत्र कथयन्ति, उपशान्ताः श्राद्ध्यो जाताः। तैरश्चाश्चतुर्विधाः–भयात् प्रद्वेषात् आहारहेतोः अपत्यालय–

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

संरक्खणया, भएण सुणगाई डसेज्जा, पओसे चंडकोसिओ मक्कडादी वा, आहारहेउं सीहाइ, अवच्चलेणसारक्खणहेउं काकिमाइ । आत्मना क्रियन्त इति आत्मसंवेदनीया, जहा उद्देसे चेतिए पाहुडियाए, ते चउव्विहा–घट्टणया पवडणया थंभणया लेसणया, घट्टणया अच्छिमि रयो पविट्ठो चमढिउं दुक्खिउमारद्धं अहवा सयं चेव अच्छिमि गलए वा किंचि सालुगाइ उट्ठियं घट्टइ, पवडणया ण य पयत्तेणं चंकमइ, तत्थ दुक्खाविज्जइ, थंभणया नाम ताव बद्धो अच्छिओ जाव सुत्तो थद्धो जाओ, अहवा हणुयाजंतमाई, लेसणया पायं आउंटित्ता अच्छिओ जाव तत्थ व तत्थ वाएण लुइओ, अहवा नट्ठं सिक्खामित्ति अइणामियं किंचि अंगं तत्थेव लग्गं, अहवा आयसंवेयणिया वाइया पित्तिया संभिया संनिवाइया एए दव्वोवसग्गा, भावओ उवउत्तस्स एए चेव, उक्तं च–"दिवा माणुसगा चेव, तेरिच्छा य वियाहिया । आयसंवेयणीया य, उवसग्गा चउव्विहा ॥ १ ॥ हासप्पओसवीमंसा, पुढोवेमाय दिविया । माणुस्सा हासमाईया, कुसीलपडिसेवणा ॥ २ ॥

---

१ संरक्षणाय, भयेन श्वादिर्दशेत्, प्रद्वेषे चण्डकौशिको मर्कटादिर्वा, आहारहेतोः सिंहादिः, अपत्यलयनसंरक्षणहेतोः काक्यादिः । यथोद्देशे चैत्ये प्राभृतिकायां, ते चतुर्विधाः–घट्टनता प्रपतनता स्तम्भनता श्लेषणता, घट्टनता अक्षिणि रजः प्रविष्टं मर्दित्वा दुःखयितुमारब्धं अथवा स्वयमेव अक्षिणि गले वा किञ्चित्सालुकादि उत्थितं घट्टयति, पतनता न च प्रयत्नेन चङ्क्रम्यते, तत्र दुःख्यते, स्तम्भनता नाम तावदुपविष्टः स्थितो यावत्सुप्तः स्तब्धो जातः, अथवा हनुयन्त्रादि, श्लेषणता पादमाकुञ्च्य स्थितो यावत्तत्र वा तत्र वातेन लग्नः, अथवा नृत्यं शिक्ष इति अतिनामितं किञ्चिदङ्गं तत्रैव लग्नम्, अथवाऽऽत्मसंवेदनीया वातिकाः पैत्तिकाः श्लेष्मिकाः सान्निपातिका एते द्रव्योपसर्गाः, भावत उपयुक्तस्यैत एव, दिव्या मानुष्यकाश्चैव तैरश्चाश्च व्याख्याताः । आत्मसंवेदनीयाश्चोपसर्गाश्चतुर्विधाः ॥ १ ॥ हास्यप्रद्वेषविमर्शपृथग्विमात्रा दिव्याः । मानुष्या हास्यादयः कुशीलप्रतिसेवना ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

तेरिच्छिगा भया दोसा, आहारट्ठा तहेव य । अवच्चलेणसंरक्खणट्ठाए ते वियाहिया ॥ ३ ॥ घट्टणा पवडणा चेव, थंभणा लेसणा तहा । आयसंवेयणीया उ, उवसग्गा चउव्विहा ॥ ४ ॥" इत्याद्यलं प्रसङ्गेन, एतन्नामयन्तो नमोऽर्हा इति व्याख्यातमयं गाथार्थः ॥ साम्प्रतं प्राकृतशैल्याऽनेकधाऽर्हच्छब्दनिरुक्तसम्भवं निदर्शयन्नाह—

इंदियविसयकसाए परीसहे वेयणा उवस्सग्गे । एए अरिणो हंता अरिहंता तेण वुच्चंति ॥ ९१९ ॥

व्याख्या—इन्द्रियादयः पूर्ववत्, वेदना त्रिविधा–शारीरी मानसी उभयरूपा च, 'एए अरिणो हंता' इत्यत्र प्राकृतशैल्या छान्दसत्वात् 'सुपां सुपी'त्यादिलक्षणतः एतेषामरीणां हन्तारः यतोऽरिहन्तारः 'तेनोच्यन्ते' तेनाभिधीयन्ते, अरीणां हन्तारोऽरिहन्तार इति निरुक्तिः स्यात्, एतदनन्तरगाथायामेत एवोक्ताः पुनरमीषामेवेहोपन्यासोऽयुक्त इति ?, अत्रोच्यते, अनन्तरगाथायां नमस्कारार्हत्वे हेतुत्वेनोक्ताः, इह पुनरभिधाननिरुक्तिप्रतिपादनार्थमुपन्यास इति गाथार्थः ॥ साम्प्रतं प्रकारान्तरतोऽरय आख्यायन्ते, ते चाष्टौ ज्ञानावरणादिसंज्ञाः सर्वसत्त्वानामेवेति, आह च—

अट्ठविहंपिय कम्मं अरिभूअं होइ सव्वजीवाणं । तं कम्ममरिं हंता अरिहंता तेण वुच्चंति ॥ ९२० ॥

व्याख्या—'अष्टविधमपि' अष्टप्रकारमपि, अपिशब्दादुत्तरप्रकृत्यपेक्षयाऽनेकप्रकारमपि, चशब्दो भिन्नक्रमः, स चाव-

---

१ तैरश्चा भयाद्वेषादाहारार्थाय तथैव च । अपत्यलयनसंरक्षणार्थाय ते व्याख्याताः ॥ ३ ॥ घट्टना प्रपतनैव स्तम्भनं श्लेषणं तथा । आत्मसंवेदनीयास्तु उपसर्गाश्चतुर्विधाः ॥ ४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'अरिहंत'/'अरहंत' शब्दस्य विविध-व्याख्या: एवं नमस्कारस्य फ़लम्

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

धारणे, ज्ञानावरणादि, ततश्चाष्टविधं कर्मैव 'अरिभूतं' शत्रुभूतं भवति 'सर्वजीवानां' सर्वसत्त्वानामनवबोधादिदुःखहेतुत्वादिति भावः, पश्चार्द्धं पूर्ववत्, एवंविधा अरिहन्तार इति गाथार्थः ॥ ९२० ॥ अथवा—

अरिहंति वंदणनमंसणाइं अरिहंति पूअसक्कारं । सिद्धिगमणं च अरिहा अरहंता तेण वुच्चंति ॥ ९२१ ॥

व्याख्या—'अर्ह पूजायाम्' अर्हन्तीति 'पचाद्यच्' कर्तरि अर्हाः, किमर्हन्ति ?–वन्दननमस्करणे, तत्र वन्दनं शिरसा नमस्करणं वाचा, तथाऽर्हन्ति पूजासत्कारं, तत्र वस्त्रमाल्यादिजन्या पूजा, अभ्युत्थानादिसम्भ्रमः सत्कारः, तथा 'सिद्धिगमनं चार्हन्ति' सिद्ध्यन्ति–निष्ठितार्था भवन्त्यस्यां प्राणिन इति सिद्धिः–लोकान्तक्षेत्रलक्षणा, वक्ष्यति च–'इहं बोंदिं चइत्ता णं तत्थ गंतूण सिज्झइ' तद्गमनं च प्रत्यर्हा इति, 'अरहंता तेण वुच्चंति' प्राकृतशैल्या अर्हास्तेनोच्यन्ते, अथवा अर्हन्तीत्यर्हन्त इति गाथार्थः ॥ ९२१ ॥

तथा–देवासुरमणुएसुं अरिहा पूआ सुरुत्तमा जम्हा । अरिणो हंता रयं हंता अरिहंता तेण वुच्चंति ॥ ९२२ ॥

व्याख्या—देवासुरमनुजेभ्यः पूजामर्हन्ति–प्राप्नुवन्ति तद्योग्यत्वात्, सुरोत्तमत्वादिति युक्तिः, इत्थमनेकधाऽन्वर्थमभिधाय पुनः सामान्यविशेषाभ्यामुपसंहरन्नाह—'अरिणो हंता' इत्यादि पूर्ववदेव, अरीणां हन्तारः यतः अरिहन्तारस्तेनोच्यन्ते, तथा रजसो हन्तारः यतो रजोहन्तारस्तेनोच्यन्ते इति, रजो बध्यमानकं कर्म भण्यत इति गाथार्थः ॥ ९२२ ॥

इदानीममोघताख्यापनार्थमपान्तरालिकं नमस्कारफलमुपदर्शयति—

अरहंतनमुक्कारो जीवं मोएइ भवसहस्साओ । भावेण कीरमाणो होइ पुणो बोहिलाभाए ॥ ९२३ ॥

व्याख्या—अर्हतां नमस्कारःअर्हन्नमस्कार,इहार्हच्छब्देन बुद्धिस्थार्हदाकारवती स्थापना गृह्यते,नमस्कारस्तु नमःशब्द एव,

* इह तनुं त्यक्त्वा तत्र गत्वा सिध्यति.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

'जीवम्' आत्मानं 'मोचयति' अपनयति, कुतः?–भवसहस्रेभ्यः, 'भावेन' उपयोगेन क्रियमाणः, इह च सहस्रशब्दो यद्यपि दशशतसङ्ख्यायां वर्तते तथाऽप्यत्रार्थादनन्तसङ्ख्यायामवगन्तव्यः, अनन्तभवमोचनान्मोक्षं प्रापयतीत्युक्तं भवति, आह–न सर्वस्यैव भावतोऽपि नमस्कारकरणे तद्भव एव मोक्षः, तत्कथमुच्यते–जीवं मोचयतीत्यादि, उच्यते, यद्यपि तद्भव एव मोक्षाय न भवति तथाऽपि भावनाविशेषाद्भवति पुनः 'बोधिलाभाय' बोधिलाभार्थं, बोधिलाभश्चाचिरादविकलो मोक्ष हेतुरित्यतो न दोष इति गाथार्थः ॥ ९२३ ॥ तथा चाह—

अरिहंतनमुक्कारो धन्नाण भवक्खयं कुणंताणं । हिअयं अणुम्मुअंतो विसुत्तियावारओ होइ ॥ ९२४ ॥

व्याख्या—अर्हन्नमस्कार इति पूर्ववत्, धन्यानां भवक्षयं कुर्वताम्, तत्र धन्याः–ज्ञानदर्शनचारित्रधनाः साध्वादयः, तेषां भवक्षयं कुर्वतामिति, अत्र तद्भवजीवितं भवः तस्य क्षयो भवक्षयस्तं कुर्वताम्—आचरतां, किम्?–'हृदयं' चेतः 'अनुन्मुञ्चन्' अपरित्यजन्, हृदयादनपगच्छन्नित्यर्थः, विस्रोतसिकावारको भवति, इहापध्यानं विस्रोतसिकोच्यते, तद्वारको भवति, धर्मध्यानैकालम्बनतां करोतीति गाथार्थः ॥ ९२४ ॥

अरहंतनमुक्कारो एवं खलु वण्णिओ महत्थुत्ति । जो मरणंमि उवग्गे अभिक्खणं कीरए बहुसो ॥ ९२५ ॥

व्याख्या—अर्हन्नमस्कार एवं खलु वर्णितो 'महार्थ' इति महानर्थो यस्य स महार्थः, अल्पाक्षरोऽपि द्वादशाङ्गार्थसङ्गाहित्वान्महार्थ इति, कथं पुनरेतदेवमित्याह–यो नमस्कारो 'मरणे' प्राणत्यागलक्षणे उपाग्रे–समीपभूते 'अभिक्षणम्' अनवरतं क्रियते 'बहुशः' अनेकशः, ततश्च प्रधानापदि समनुस्मरणकरणेन ग्रहणात् महार्थः, प्रधानश्चायमिति । आह च

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

भाष्यकारः—"जलणाइभए सेसं मोत्तुंऽप्पेगंरयणं महामोल्लं । जुहि वाऽइभए घेप्पइ अमोहंसत्थं जह तहेह ॥ १ ॥ मोत्तुंपि बारसंगं स एव मरणंमि कीरए जम्हा । अरहंतनमोक्कारो तम्हा सो बारसंगत्थो ॥ २ ॥ सव्वंपि बारसंगं परिणामविसुद्धि-हेउमेत्तायं । तक्कारणभावाओ किह न तदत्थो नमोक्कारो ? ॥ ३ ॥ णहु तंमि देसकाले सक्को बारसविहो सुयक्खंधो । सव्वो अणुचिंतेउं धंतंपि समत्थचित्तेणं ॥ ४ ॥ तप्पणईणं तम्हा अणुसरियव्वो सुहेण चित्तेणं । एसेव नमोक्कारो कयन्नुतं मन्नमाणेणं ॥ ५ ॥" इति गाथार्थः ॥ ९२५ ॥ उपसंहरन्नाह—

अरिहंतनमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो । मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥ ९२६ ॥

व्याख्या—किं बहुना ?, इहार्हन्नमस्कारः, किम् ?–सर्वपापप्रणाशनः, तत्र पांशयतीति निपातनात् पापं, पिबति वा हित-मिति पापम्, औणादिकः पः प्रत्ययः, सर्वम्–अष्टप्रकारमपि कर्म–पापं जातिसामान्यापेक्षया, उक्तं च–'पापं कर्मैव तत्त्वत' इत्यादि, तत्प्रणाशयतीति सर्वपापप्रणाशनः, मङ्गलानां च 'सर्वेषां' नामादिलक्षणानां 'प्रथमं' इति प्रधानं प्रधानार्थकारित्वात्, अथवा पञ्चामूनि भावमङ्गलान्यर्हदादीनि, तेषां प्रथमम्—आद्यमित्यर्थः, 'भवति मङ्गल'मिति संपद्यते मङ्गलमिति गाथार्थः

१ ज्वलनादिभये मुक्त्वा अप्येकं रत्नं महामूल्यम् । युधि वाऽतिभये गृह्यतेऽमोघशस्त्रं यथा तथेह ॥ १ ॥ मुक्त्वाऽपि द्वादशाङ्गं स एव मरणे क्रियते यस्मात् । अर्हन्नमस्कारस्तस्मात्स द्वादशाङ्गार्थः ॥ २ ॥ सर्वमपि द्वादशाङ्गं परिणामविशुद्धिमात्रहेतुकम् । तत्कारणभावात् कथं न तदर्थो नमस्कारः ? ॥ ३ ॥ नैव तस्मिन् देशकाले शक्यो द्वादशविधः श्रुतस्कन्धः । सर्वोऽनुचिन्तयितुं बाढमपि समर्थचित्तेन ॥ ४ ॥ तत्प्रणतीनां (सद्भावात्) तस्मादनुसर्त्तव्यः शुभेन चित्तेन । एष एव नमस्कारः कृतज्ञत्वं मन्यमानेन ॥ ५ ॥ (गाथेयं गाथाचतुष्काद्भिन्नसंबन्धा तत्र) * पोरणं मुद्रिते + ०मत्थं मुद्रिते.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

॥ ९२६ ॥ उक्तस्तावदर्हन्नमस्कारः, साम्प्रतं सिद्धनमस्कार उच्यते, तत्र सिद्ध इति कः शब्दार्थः ?, उच्यते–'षिधु संराद्धौ' 'राध साध संसिद्धौ' 'षिधू शास्त्रे माङ्गल्ये चे'ति, सिध्यति स्म सिद्धः, यो येन गुणेन निष्पन्नः–परिनिष्ठितो न पुनः साधनीयः सिद्धौदनवत् स सिद्ध इत्यर्थः, स च सिद्धः शब्दसामान्याक्षेपतः, अर्थतस्तावच्चतुर्दशविधः, तत्र नामस्थापनाद्रव्यसिद्धान् व्युदस्य शेषनिक्षेपप्रतिपादनायाह—

कम्मे १ सिप्पे अ २ विज्जाय ३, मंते ४ जोगे अ ५ आगमे ६ ।
अत्थ ७ जत्ता ८ अभिप्पाए ९, तवे १० कम्मक्खए ११ इय ॥ ९२७ ॥

व्याख्या—कर्मणि सिद्धः कर्मसिद्धः–कर्मणि निष्ठां गत इत्यर्थः, एवं शिल्पसिद्धः २ विद्यासिद्धः ३ मन्त्रसिद्धः ४ योगसिद्धः ५ आगमसिद्धः ६ अर्थसिद्धः ७ यात्रासिद्धः ८ अभिप्रायसिद्धः ९ तपःसिद्धः १० कर्मक्षयसिद्ध ११ श्चेति गाथासमासार्थः ॥ ९२७ ॥ अवयवार्थं तु प्रतिद्वारमेव वक्ष्यति, तत्र नामस्थापनासिद्धौ सुखावसेयौ, द्रव्यसिद्धो निष्पन्न ओदनः सिद्ध इत्युच्यते, साम्प्रतं कर्मसिद्धादिव्याचिख्यासया कर्मादिस्वरूपमेव प्रतिपादयन्नाह—

कम्मं जमणायरिओवएसयं सिप्पमन्नहाऽभिहिअं । किसिवाणिज्जाईयं घडलोहाराइभेअं च ॥ ९२८ ॥

व्याख्या—इह कर्म यदनाचार्योपदेशजं सातिशयमनन्यसाधारणं गृह्यते, 'शिल्पम्' अन्यथाऽभिहितमिति, कोऽर्थः ?–इह यदाचार्योपदेशजं ग्रन्थनिबन्धाद्वोपजायते सातिशयं कर्मापि तच्छिल्पमुच्यते, तत्र भारवहनकृषिवाणिज्यादि कर्म घटकारलोहकारादिभेदं च शिल्पमिति गाथार्थः ॥ ९२८ ॥ साम्प्रतं कर्मसिद्धं सोदाहरणमभिधित्सुराह—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'सिद्ध' शब्दस्य अर्थ, सदृष्टांत तेषाम् भेदा: एवं सिद्धानां नमस्कारस्य फ़लम्

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

जो सव्वकम्मकुसलो जो वा जत्थ सुपरिनिट्ठिओ होइ । सज्झगिरिसिद्धओविव स कम्मसिद्धत्ति विन्नेओ ९२९

व्याख्या—'यः' कश्चित् सर्वकर्मकुशलो यो वा 'यत्र' कर्मणि सुपरिनिष्ठितो भवत्येकस्मिन्नपि सह्यगिरिसिद्धक इव स कर्मसिद्ध इति विज्ञेयः, कर्मसिद्धो ज्ञातव्य इति गाथाक्षरार्थः॥९२९॥भावार्थः कथानकादवसेयः, तच्चेदम्–कोंकणगदेसे एगंमि दुग्गे सज्झस्स भंडं उरुंभेइ विलएत्ति य, ताणं च विसमे गुरुभारवाहित्ति काऊण रण्णा समाणत्तं, एएसिं मएवि पंथो दायव्वो न पुण एएहिं कस्सइ। इओ एगो सिंधवओ पुराणो सो पडिभज्जंतो चिंतेइ–तहिं जामि जहिं कम्मे ण एस जीवो भज्जइ सुहं न विंदइ, सो तेसिं मिलिओ, सो गंतुकामो भणइ, कुंदुरुक्क पडिबोहियल्लओ सिद्धओ भणइ–सिद्धियं देहि मम्मं, जहा सिद्धयं सिद्धया गया सज्झयं, सो य तेसिं महत्तरओ सव्ववहुं भारं वहइ, तेण साहूणं मग्गो दिन्नो, ते रुट्ठा राउले कहेंति, ते भणंति–अम्हं रायावि मग्गं देइ भारेण दुक्खाविज्जंताणं ता तुमं समणस्स रित्तस्स त्थिक्कस्स मग्गं देसि?, रण्णा भणियं–दुट्ठु ते कयं, मम आणा लंघियत्ति, तेण भणियं-देव! तुमे गुरुभारवाहित्तिकाऊणमेयमाणत्तं?, रण्णा आमंति पडिस्सुयं, तेण भणियं–जइ एवं तो सो गुरुतरभारवाही,

१ कोङ्कणकदेशे एकस्मिन् दुर्गे सह्याद्राण्डमवतारयति आरोहयति च, तेषां च विषमे गुरुभारवाहिन इतिकृत्वा राज्ञा समाज्ञप्तं, एतेभ्यो मयाऽपि पन्था दातव्यो न पुनरेतैः कस्यैचित् । इतश्चैकः सैन्धवीयः पुराणः स प्रतिभग्नश्चिन्तयति–तत्र यामि यत्र कर्मणि नैष जीवो भज्यते सुखं न विन्दति, स तैर्मेलितः, स गन्तुकामो भणति, कुङ्कटरुतप्रतिबोधितः सिद्धो भणति–सिद्धिं देहि मह्यं, यथा सिद्धं सिद्धा गताः सह्यकं, स च तेषां महत्तरः सर्ववहुं भारं वहति, तेन साधुभ्यो मार्गो दत्तः, ते रुष्टा राजकुले कथयन्ति, ते भणन्ति–अस्माकं राजाऽपि मार्गं ददाति भारेण दुःख्यमानानां तत्त्वं श्रमणाय रिक्ताय विश्रान्ताय मार्गं ददासि ?, राज्ञा भणितं–दुष्टु त्वया कृतं, समाज्ञा लङ्घितेति, तेन भणितं–देव ! त्वया गुरुभारवाहीतिकृत्वैतदाज्ञप्तं ?, राज्ञा ओमिति प्रतिश्रुतं, तेन भणितं–यद्येवं तदा स गुरुतरभारवाही,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

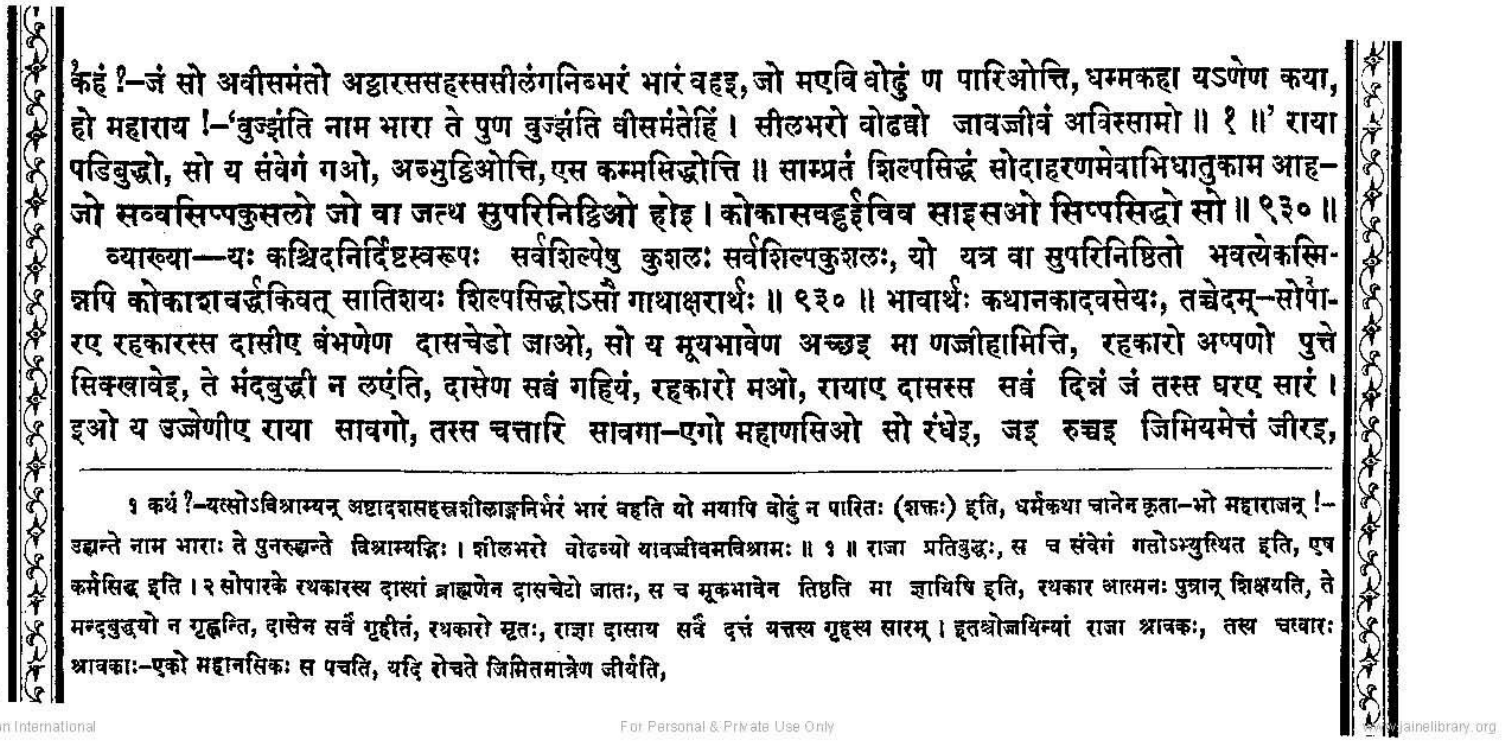

कहं ?–जं सो अवीसमंतो अट्ठारससहस्ससीलंगनिब्भरं भारं वहइ, जो मएवि वोढुं ण पारिओत्ति, धम्मकहा यऽणेण कया, हो महाराय !–'वुज्झंति नाम भारा ते पुण वुज्झंति वीसमंतेहिं । सीलभरो वोढव्वो जावज्जीवं अविस्सामो ॥ १ ॥' राया पडिबुद्धो, सो य संवेगं गओ, अब्भुट्ठिओत्ति, एस कम्मसिद्धोत्ति ॥ साम्प्रतं शिल्पसिद्धं सोदाहरणमेवाभिधातुकाम आह–

जो सव्वसिप्पकुसलो जो वा जत्थ सुपरिनिट्ठिओ होइ । कोकासवद्धईविव साइसओ सिप्पसिद्धो सो ॥ ९३० ॥

व्याख्या—यः कश्चिदनिर्दिष्टस्वरूपः सर्वशिल्पेषु कुशलः सर्वशिल्पकुशलः, यो यत्र वा सुपरिनिष्ठितो भवत्येकस्मिन्नपि कोकाशवर्द्धकिवत् सातिशयः शिल्पसिद्धोऽसौ गाथाक्षरार्थः ॥ ९३० ॥ भावार्थः कथानकादवसेयः, तच्चेदम्–सोपारए रहकारस्स दासीए बंभणेण दासचेडो जाओ, सो य मूयभावेण अच्छइ मा णज्जीहामित्ति, रहकारो अप्पणो पुत्ते सिक्खावेइ, ते मंदबुद्धी न लएंति, दासेण सवं गहियं, रहकारो मओ, रायाए दासस्स सवं दिन्नं जं तस्स घरए सारं । इओ य उज्जेणीए राया सावगो, तस्स चत्तारि सावगा–एगो महाणसिओ सो रंधेइ, जइ रुच्चइ जिमियमेत्तं जीरइ,

१ कथं ?–यत्सोऽविश्राम्यन् अष्टादशसहस्रशीलाङ्गनिर्भरं भारं वहति यो मयापि वोढुं न पारितः (शक्तः) इति, धर्मकथा चानेन कृता–भो महाराजन् !–उह्यन्ते नाम भाराः ते पुनरुह्यन्ते विश्राम्यद्भिः । शीलभरो वोढव्यो यावज्जीवमविश्रामः ॥ १ ॥ राजा प्रतिबुद्धः, स च संवेगं गतोऽभ्युत्थित इति, एष कर्मसिद्ध इति । २ सोपारके रथकारस्य दास्यां ब्राह्मणेन दासचेटो जातः, स च मूकभावेन तिष्ठति मा ज्ञास्यिषि इति, रथकार आत्मनः पुत्रान् शिक्षयति, ते मन्दबुद्धयो न गृह्णन्ति, दासेन सर्वं गृहीतं, रथकारो मृतः, राज्ञा दासाय सर्वं दत्तं यत्तस्य गृहस्य सारम् । इतश्चोज्जयिन्यां राजा श्रावकः, तस्य चत्वारः श्रावकाः–एको महानसिकः स पचति, यदि रोचते जिमितमात्रेण जीर्यति,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धानाम् व्याख्या मध्ये 'कोकासवर्धकी'-कथा

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

अहवा जामेणं बिहिं तिहिं चउहिं पंचहिं, जइ रुच्चइ न चेव जीरइ, बिदिओ अब्भंगेइ, सो तेल्लस्स कुलवं २ सरीरे पवेसेइ, तं चेव णीणेइ, ततिओ सेज्जं रएइ, जइ रुच्चइ पढमे जामे विबुज्झइ अहवा बितिए ततिए चउत्थे, अहवा सुवइ चेव, चउत्थो सिरिघरिओ, तारिसो सिरिघरओ कओ जहा अइगओ न किंचि पेच्छइ, एए गुणा तेसिं, सो य राया अपुत्तो निविण्णकामभोगो पव्वज्जोवायं चिंतेंतो अच्छइ। इओ य पाडलिपुत्ते णयरे जियसत्तू राया, सो य तस्स णयरिं रोहेइ, एत्थंतरंमि य तस्स रण्णो पुव्वकयकम्मपरिणइवसेण गाढं सूलमुप्पण्णं, तओऽणेण भत्तं पच्चक्खायं, देवलोयं गओ, णागरगेहि य से णयरी दिन्ना, सावया सद्दाविया पुच्छइ–किंकम्मया?, भंडारिएण पवेसिओ, किंचिवि न पेच्छइ, अण्णेण दारेण दरिसियं, सेज्जावालेण एरिसा सेज्जा कया जेण मुहुत्ते मुहुत्ते उट्ठेइ, सूएण एरिसं भत्तं कयं जेणं वेलं वेलं जेमेइ, अब्भंगएण एक्कओ पायाओ तेलं ण णीणियं, जो मम सरिसो सो नीणेउ, चत्तारिवि पव्वइया, सो तेण तेल्लेण डज्झंतो कालओ

१ अथवा यामेन द्वाभ्यां त्रिभिश्चतुर्भिः पञ्चभिः, यदि रोचते नैव जीर्यति, द्वितीयोऽभ्यङ्क्तयति, स तैलस्य कुडवं २ शरीरे प्रवेशयति तदेव निष्काशयति, तृतीयः शय्यां रचयति, यदि रोचते प्रथमे यामे विबुध्यते अथवा द्वितीये तृतीये चतुर्थे, अथवा स्वपित्येव, चतुर्थः श्रीगृहिकस्तादृशं श्रीगृहं कृतं यथाऽतिगतो न किञ्चित्पश्यति, एते गुणास्तेषां, स च राजाऽपुत्रो निर्विण्णकामभोगः प्रव्रज्योपायं चिन्तयन् तिष्ठति। इतश्च पाटलीपुत्रे नगरे जितशत्रू राजा, स च तस्य नगरीं रुणद्धि, अत्रान्तरे च तस्य राज्ञः पूर्वकर्मपरिणतिवशेन गाढं शूलमुत्पन्नं, ततोऽनेन भक्तं प्रत्याख्यातं, देवलोकं गतः, नागरैश्च तस्यै नगरी दत्ता, श्रावकाः शब्दिताः पृच्छयन्ते–किंकर्मकाः?, भाण्डागारिकेण प्रवेशितः, किञ्चिदपि न पश्यति, अन्येन द्वारा दर्शितं, शय्यापालकेनेदृशी शय्या कृता येन मुहूर्ते मुहूर्ते उत्तिष्ठति, सूदेनेदृशं भक्तं कृतं येन वारं वारं जेमति, अभ्यङ्गकेनैकस्मात् पदस्तैलं न निष्काशितं, यो मम सदृशः स निष्काशयतु, चत्वारोऽपि प्रव्रजिताः, स तेन तैलेन दह्यमानः कृष्णो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

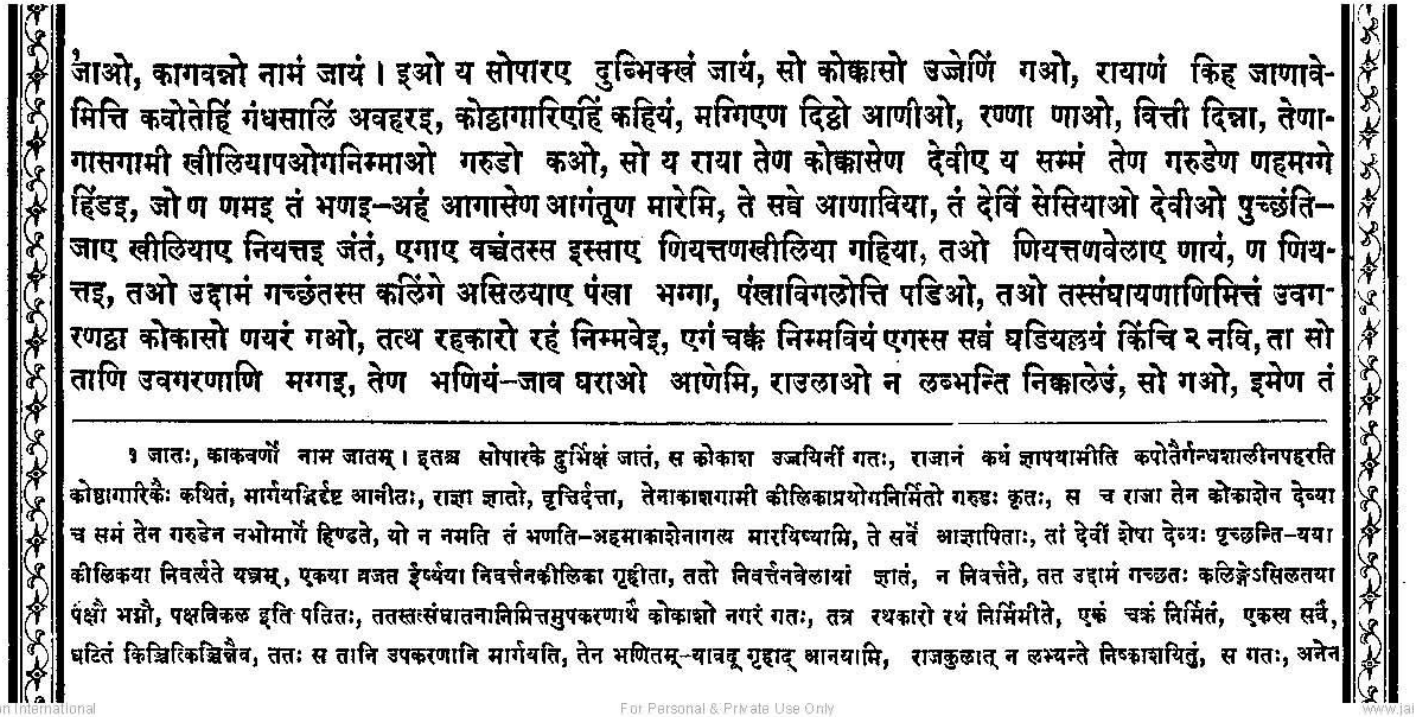

जाओ, कागवन्नो नामं जायं। इओ य सोपारए दुब्भिक्खं जायं, सो कोक्कासो उज्जेणिं गओ, रायाणं किह जाणावेमित्ति कवोतेहिं गंधसालिं अवहरइ, कोट्ठागारिएहिं कहियं, मग्गिएण दिट्ठो आणीओ, रण्णा णाओ, वित्ती दिन्ना, तेणागासगामी खीलियापओगनिम्माओ गरुडो कओ, सो य राया तेण कोक्कासेण देवीए य सम्मं तेण गरुडेण णहमग्गे हिंडइ, जो ण णमइ तं भणइ–अहं आगासेण आगंतूण मारेमि, ते सव्वे आणाविया, तं देविं सेसियाओ देवीओ पुच्छंति–जाए खीलियाए नियत्तइ जंतं, एगाए वच्चंतस्स इस्साए णियत्तणखीलिया गहिया, तओ णियत्तणवेलाए णायं, ण णियत्तइ, तओ उद्दामं गच्छंतस्स कलिंगे असिलयाए पंखा भग्गा, पंखाविगलोत्ति पडिओ, तओ तस्संघायणाणिमित्तं उवगरणट्ठा कोक्कासो णयरं गओ, तत्थ रहकारो रहं निम्मवेइ, एगं चक्कं निम्मवियं एगस्स सव्वं घडियलयं किंचि २ नवि, ता सो ताणि उवगरणाणि मग्गइ, तेण भणियं–जाव घराओ आणेमि, राउलाओ न लब्भन्ति निक्कालेउं, सो गओ, इमेण तं

१ जातः, काकवर्णो नाम जातम्। इतश्च सोपारके दुर्भिक्षं जातं, स कोकाश उज्जयिनीं गतः, राजानं कथं ज्ञापयामीति कपोतैर्गन्धशालीनपहरति कोष्ठागारिकैः कथितं, मार्गयद्भिर्दृष्ट आनीतः, राज्ञा ज्ञातो, वृत्तिर्दत्ता, तेनाकाशगामी कीलिकाप्रयोगनिर्मितो गरुडः कृतः, स च राजा तेन कोकाशेन देव्या च समं तेन गरुडेन नभोमार्गे हिण्डते, यो न नमति तं भणति–अहमाकाशेनागत्य मारयिष्यामि, ते सर्वे आज्ञापिताः, तां देवीं शेषा देव्यः पृच्छन्ति–यया कीलिकया निवर्त्यते यन्त्रम्, एकया व्रजत ईर्ष्यया निवर्त्तनकीलिका गृहीता, ततो निवर्त्तनवेलायां ज्ञातं, न निवर्त्तते, तत उद्दामं गच्छतः कलिङ्गेऽसिलतया पक्षौ भग्नौ, पक्षविकल इति पतितः, ततस्तत्संघातनानिमित्तमुपकरणार्थं कोकाशो नगरं गतः, तत्र रथकारो रथं निर्मिमीते, एकं चक्रं निर्मितं, एकस्य सर्वं, घटितं किञ्चित्किञ्चिन्नैव, ततः स तानि उपकरणानि मार्गयति, तेन भणितम्–यावद् गृहाद् आनयामि, राजकुलात् न लभ्यन्ते निष्काशयितुं, स गतः, अनेन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

संघाइयं, उद्धं कयं जाइ, अप्फिडियं नियत्तं पच्छओमुहं जाइ, ठियंपि न पडइ, इयरस्सऽच्चयं जाइ, अप्फिडियं पडइ, सो आगओ पेच्छइ निम्मायं, अक्खेवेण गंतूण रण्णो कहेइ, जहा–कोक्कासो आगओत्ति, जस्स बलेणं कागवण्णेण सव्वे रायाणो वसमाणीया, तो गहिओ, तेण हम्मंतेण अक्खायं, गहिओ सह देवीए, भत्तं वारियं, नागरएहिं अजसभीएहिं कागपिंडी पवत्तिया, कोक्कासो भणिओ–मम सयपुत्तस्स सत्तभूमियं पासायं करेहि, मम य मज्झे, तो सव्वे रायाणए आणवेस्सामि, तेण निम्मिओ, कागवण्णपुत्तस्स लेहं पेसियं, एहि जाव अहं एए मारेमि, तो तुमं मायापित्तं ममं च मोएहिसित्ति दिवसो दिन्नो, पासाअं सपुत्तओ राया विलइओ, खीलिया आहया, संपुडो जाओ, मओ य सपुत्तओ, कागवण्णपुत्तेण तं सव्वं णयरं गहियं, मायापित्तं कोक्कासो य मोयावियाणि। एसेवंविहो सिप्पसिद्धोत्ति ॥ साम्प्रतं विद्यादिसिद्धं प्रतिपादयन्नादौ तावत् स्वरूपमेव प्रतिपादयति—

१ तत्संघटितम्, ऊर्ध्वं कृतं याति, आस्फोटितं निवृत्तं पश्चान्मुखं याति, स्थितमपि (स्थापितमपि) न पतति, इतरस्याल्पयं याति, आस्फोटितं पतति, स आगतः पश्यति निर्मितम्, अक्षेपेण गत्वा राज्ञे कथयति, यथा–कोकाश आगत इति, यस्य बलेन काकवर्णेन सर्वे राजानो वशमानीताः, ततो गृहीतः, तेन हन्यमानेनाख्यातं, गृहीतः सह देव्या, भक्तं वारितं, नागरैरयशोभीतैः काकपिण्डिका प्रवर्त्तिता, कोकाशो भणितः–मम शतस्य पुत्राणां सप्तभौमं प्रासादं कुरु, मम च मध्ये, ततः सर्वान् राजकुले आनाययिष्यामि, तेन निर्मितः, काकवर्णपुत्राय लेखः प्रेषितः, एहि यावदहमेतान् मारयामि, ततस्त्वं मातापितरं मां च मोचयेरिति दिवसो दत्तः, प्रासादं सपुत्रो राजा विलग्नः, कीलिकाऽऽहता, संपुटो जातः, मृतश्च सपुत्रः, काकवर्णपुत्रेण तत् सर्वं नगरं गृहीतं मातापितरौ कोकाशश्च मोचितः। एष एवंविधः शिल्पसिद्ध इति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

इत्थी विज्जाऽभिहिया पुरिसो मंतुत्ति तव्विसेसोयं । विज्जा ससाहणा वा साहणरहिओ अ मंतुत्ति ॥ ९३१ ॥

व्याख्या—स्त्री विद्याऽभिहिता पुरुषो मन्त्र इति तद्विशेषोऽयं, तत्र 'विद्द लाभे' 'विद सत्तायां' वा, अस्य विद्येति भवति, 'मन्त्रि गुप्तभाषणे' अस्य मन्त्र इति भवति, एतदुक्तं भवति–यत्र मन्त्रे देवता स्त्री सा विद्या, अम्बाकुष्माण्ड्यादि, यत्र तु देवता पुरुषः स मन्त्रः, यथा विद्याराजः, हरिणेगमेषिरित्यादि, विद्या ससाधना वा साधनरहितश्च मन्त्र इति सावरादिमन्त्रवदिति गाथार्थः ॥ ९३१ ॥ साम्प्रतं विद्यासिद्धं सनिदर्शनमुपदर्शयन्नाह—

विज्जाण चक्कवट्टी विज्जासिद्धो स जस्स वेगावि । सिज्झिज्ज महाविज्जा विज्जासिद्धऽज्जखउडुव्व ॥ ९३२ ॥

व्याख्या—'विद्यानां' सर्वासामधिपतिः–चक्रवर्ती 'विद्यासिद्ध' इति विद्यासु सिद्धो विद्यासिद्ध इति, यस्य वैकाऽपि सिद्ध्येत् 'महाविद्या' महापुरुषदत्तादिरूपा स विद्यासिद्धः, सातिशयत्वात्, क इव ?–आर्यखपुटवदिति गाथाक्षरार्थः ॥ ९३२ ॥ भावार्थः कथानकादवसेयः, तच्चेदम्–विज्जासिद्धा अज्जखउडा आयरिया, तेसिं च बालो भाइणिज्जो, तेण तेसिं पासओ विज्जा कन्नाहाडिया, विज्जासिद्धस्स य णमोक्कारेणावि किर विज्जाओ हवंति, सो विज्जाचक्कवट्टी तं भाइणेज्जं भरुकच्छे साहुसगासे ठविऊण गुडसत्थं णयरं गओ, तत्थ किर परिव्वायओ साहूहिं वाए पराजिओ अद्धितीए कालगओ

१ विद्यासिद्धा आर्यखपुटा आचार्याः, तेषां च बालो भागिनेयः, तेन तेषां पार्श्वात् विद्या कर्णाहृता, विद्यासिद्धस्य च नमस्कारेणापि किल विद्या भवन्ति, स विद्याचक्रवर्त्ती तं भागिनेयं भृगुकच्छे साधुसकाशे स्थापयित्वा गुडशस्त्रं नगरं गतः, तत्र किल परिव्राजकः साधुभिर्वादे पराजितोऽधृत्याः कालगतः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

तंमिं गुडसत्थे णयरे वड्डुकरओ वाणमंतरो जाओ, तेण तत्थ साहूणो सव्वे पारद्धा, तण्णिमित्तं अज्जखउडा तत्थ गया, तेण गंतूण तस्स कण्णेसु उवाहणाओ ओलइयाओ, देवकुलिओ आगओ पेच्छइ, गओ, जणं घेत्तूण आगओ, जओ जओ उग्घाडिज्जति तओ तओ अहिट्ठाणं, रण्णो कहियं, तेणवि दिट्ठं, कट्ठलट्ठीहिं पहओ, सो अंतेउरे संकामेइ, मुक्को, पट्ठियओ, वड्डुकरओ अन्नाणि य वाणमंतराणि पच्छओ उप्फिडंताणि भमंति, लोगो पायपडिओ विन्नवेइ–मुयाहित्ति, तस्स देवकुले महाविस्संदा दोन्नि महइमहालियाओ पाहाणमईओ दोणीओ, ताओ सो वाणमंतराणि य खडखडावितीणि पच्छओ हिंडंति, जणेण विन्नविओ, सो वाणमंतराणि य मुक्काणि, ताओ दोणीओवि आरओ आणित्ता छड्डियाणि, जो मम सरिसो आणेहितित्ति मुक्काओ। सो य से भाइणिज्जो आहारगेहीए भरुयकच्छे तच्चणिओ जाओ, तस्स विज्जापहावेण पत्ताणि आगासेणं उवासगाणं घरेसु भरियाणि एंति, लोगो बहुओ तम्मुहो जाओ, संघेण अज्जखउडाण पेसियं, आगआ, अक्खायं

१ तस्मिन् गुडशस्त्रे नगरे बृहत्करो व्यन्तरो जातः, तेन तत्र साधवः सर्वे प्रारब्धाः (उपसर्गयितुं), तन्निमित्तमार्यखपुटास्तत्र गताः, तेन गत्वा तस्य कर्णयोरुपानहावबलगितौ, देवकुलिक आगतः पश्यति, गतः, ज्ञनं गृहीत्वाऽऽगतः, यतो यत उद्घाट्यते ततस्ततोऽधिष्ठानं, राज्ञे कथितं, तेनापि दृष्टं, काष्ठयष्टिभिः प्रहतः, सोऽन्तःपुरे संक्रमयति, मुक्तः, पृष्ठतो बृहत्करोऽन्ये च व्यन्तराः पृष्ठत उत्स्फिटन्तो भ्राम्यन्ति, लोकः पादपतितो विज्ञपयति–मुञ्चेति, तस्य देवकुले महाविस्यन्दे द्वे द्रोण्यौ अतिमहत्यौ पाषाणमय्यौ, ते स व्यन्तराश्च खटत्कारं कुर्वन्तः पश्चात् हिण्डन्ते, जनेन विज्ञप्तः, स व्यन्तराश्च मुक्ताः, ते द्रोण्यौ अपि अर्वाक् आनीय त्यक्ते, यो मम सदृश आनेष्यतीति मुक्ते। स च तस्य भागिनेय आहारगृद्ध्या भृगुकच्छे तच्चनीको जातः, तस्य विद्याप्रभावेण पात्राणि आकाशेनोपासकानां गृहेषु भृतान्यायान्ति, लोको बहुस्तन्मुखो जातः, संघेनार्यखपुटेभ्यः प्रेषितम्, आगताः, आख्यातम्.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

एरिसी अकिरिया उट्ठितत्ति, तेसिं कप्पराणं अग्गतो मत्तओ सो तेण वत्थेण उच्छाइयओ जाइ, टोप्परिया गया, सव्वपवरे आसणे ठिया, अन्नत्थ कयाइ एइ, भरिया २ आगया, आयरिएहिं अंतरा आगासे पहाणो ठविओ, सव्वाणि भिण्णाणि, सो चेल्लओ भीओ नट्ठो, आयरिया तत्थ आगया, तच्चणिया भणंति–एहि बुद्धस्स पाए पडिहित्ति, आयरिया भणंति–एहि पुत्ता ! सुद्धोदणसुया वंद मम, बुद्धो निग्गओ, पाएसु पडिओ, तत्थ थूभो दारे, सोऽवि भणिओ–एहि पाएहिं पडाहित्ति पडिओ, उट्ठेहित्ति भणिओ अद्धोणओ ठिओ, एवं चेव अच्छहित्ति भणिओ ट्ठिओ पासल्लिओ, नियंठणामिओ नामेण सो जाओ । एस एवंविहो विज्जासिद्धोत्ति ॥ साम्प्रतं मन्त्रसिद्धं सनिदर्शनमेवोपदर्शयति—

साहीणसव्वमंतो बहुमंतो वा पहाणमंतो वा । नेओ समंतसिद्धो खंभागरिसुव्व साइसओ ॥ ९३३ ॥

व्याख्या—स्वाधीनसर्वमन्त्रो बहुमन्त्रो वा मन्त्रेषु सिद्धो मन्त्रसिद्धः, प्रधानमन्त्रो वेति प्रधानैकमन्त्रो वेति ज्ञेयः, स मन्त्रसिद्धः, क इव ?–स्तम्भाकर्षवत् सातिशय इति गाथाक्षरार्थः ॥ ९३३ ॥ भावार्थः कथानकादवसेयः, तच्चेदम्—

---

१ एतादृशी अक्रियोत्थितेति, तेषां कर्पराणामग्रतो मात्रकः स तेन वस्त्रेणाच्छादितो याति, टोप्परिका गता, सर्वप्रवरे आसने स्थिता, अन्यत्र कदाचिदायाति, भूतानि२आगतानि, आचार्यैरन्तराऽऽकाशे पाषाणः स्थापितः, सर्वाणि भिन्नानि, स क्षुल्लकः (शिष्यः) भीतो नष्टः, आचार्यास्तत्रागताः, तच्चनीका भणन्ति–आयात बुद्धस्य पादयोः पततेति, आचार्या भणन्ति–आयाहि पुत्र ! शुद्धोदनसुत ! वन्दस्व मां, बुद्धो निर्गतः, पादयोः पतितः, तत्र स्तूपो द्वारे, सोऽपि भणितः–एहि पादयोः पतेति पतितः, उत्तिष्ठेति भणितः अर्धावनतः स्थितः, एवमेव तिष्ठेति भणितः स्थितः पार्श्वावनतो, निर्ग्रन्थनामित इति नाम्ना स जातः । एष एवंविधो विद्यासिद्ध इति ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

एगंमि णयरे उक्किट्ठसरीरा रण्णा विसयलोलुएण संयई गहिया, संघसमवाए एगेण मंतसिद्धेण रायंगणे खंभा अच्छंति ते अभिमंतिया, आगासेणं उप्पाइया खडखडिंति, पासायखंभावि चलिया, भीएण मुक्का, संघो खामिओ। एसेवंविहो मंतसिद्धोत्ति भण्णइ ॥ साम्प्रतं सदृष्टान्तं योगसिद्धं प्रतिपिपादयिषुराह—

सव्वेवि दव्वजोगा परमच्छेरयफलाऽहवेगोऽवि। जस्सेह हुज्ज सिद्धो स जोगसिद्धो जहा समिओ ॥ ९३४ ॥

व्याख्या—'सर्वेऽपि' कात्स्न्येन द्रव्ययोगाः 'परमाश्चर्यफलाः' परमाद्भुतकार्याः, अथवैकोऽपि यस्येह भवेत् सिद्धः स योगसिद्धः, योगेषु योगे वा सिद्धो योगसिद्ध इति, सातिशय एव, (यथा) समिता इति गाथाक्षरार्थः ॥ ९३४ ॥ भावार्थः कथानकगम्यः,तच्चेदम्–आभीरविसए कण्हा(ण्णा)ए वेन्नाए य णईए अंतरे तावसा परिवसंति, तत्थेगो पादुगालेवेणं पाणिये चक्कमंतो भमइ एति जाइ य, लोगो आउट्टो, सड्ढा हीलिज्जंति, अज्जसमिया वइरसामिस्स माउलगा विहरंता आगया, सड्ढा उवट्ठिया अकिरियत्ति, आयरिया नेच्छंति, भणंति–अज्जो! किन्न ठाह?, एस जोगेण केणवि मक्खेइ, तेहिं अट्ठापयं लद्धं, आणीओ, अम्हेऽवि दाणं देमुत्ति, अह सो सावगो भणइ–भगवं! पाया धोवंतु, अम्हेवि अणुग्गहिया होमो

१ एकस्मिन् नगरे उत्कृष्टशरीरा राज्ञा विषयलोलुपेन संयती गृहीता, संघसमवाये एकेन सिद्धमन्त्रेण राजाङ्गणे स्तम्भास्तिष्ठन्ति तेऽभिमन्त्रिताः आकाशेनोत्पाटिताः खटत्कारं कुर्वन्ति, प्रासादस्तम्भा अपि चलिताः, भीतेन मुक्ता संघः क्षामितः। एष एवंविधो मन्त्रसिद्ध इति भण्यते। २ आभीरविषये कृष्णा(कन्या)वा वेन्नायाश्च नद्योरन्तरा तापसाः परिवसन्ति, तत्रैकः पादुकालेपेन पानीये चंक्रम्यमाणो भ्राम्यति आयाति याति च, लोक आवर्जितः, श्राद्धा हील्यन्ते, आर्यसमिता वज्रस्वामिनो मातुला विहरन्त आगताः, श्राद्धा उपस्थिता अक्रियेति, आचार्या नेच्छन्ति, भणन्ति–आर्याः! किं न प्रतीक्षध्वम्?, एष योगेन केनापि भ्रक्षयति, तैरर्थपदं लब्धम्, आनीतः, वयमपि दानं दद्म इति, अथ स श्रावको भणति–भगवन्! पादौ प्रक्षालयतां, वयमप्यनुगृहीता भवामः,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

अनिच्छंतस्स पाया पाउगाओ य धोयाओ, गओ पाणिए निब्बुडो, उक्किट्ठी कया, एवं डंभएहिं लोगो खज्जइत्ति, आयरिया निग्गया, जोगं पक्खित्ता णई भणिया–हे वियन्ने ! तटा देहि एहि पुत्ता! परिमं कूलं जामि, दोवि तडा मिलिया, गया, ते तावसा पव्वइया बंभद्दीवगवत्थव्वा बंभदीवगा जाया। एस एवंविहो जोगसिद्धोत्ति ॥ अधुनाऽऽगमार्थसिद्धौ प्रतिपादयति—

आगमसिद्धो सव्वंगपारओ गोअमुव्व गुणरासी। पउरत्थो अत्थपरो व मम्मणो अत्थसिद्धत्ति ॥९३५॥

व्याख्या—आगमसिद्धः 'सर्वाङ्गपारगः' द्वादशाङ्गविदितभावः, अयं च महातिशयवानिति, यत उक्तं–'संखाइए उ भवे साइइ जं वा परो उ पुच्छिज्जा। न य णं अणाइसेसी वियाणई एस छउमत्थो ॥ १ ॥' इत्यादि, अयं च गौतम इव गुणराशिरिति। अत्र च भूयांसि सातिशयचेष्टितान्युदाहरणानीति, तथा 'प्रचुरार्थः' प्रभूतार्थः अर्थपरो वा, तन्निष्ठ इत्यर्थः, अर्थसिद्ध इति तदतिशययोगादेव, मम्मणवदिति गाथाक्षरार्थः ॥ ९३५ ॥ भावार्थस्तु कथानकादवसेयः, तच्चेदम्–तत्थागमसिद्धो किर सयंभुरमणेऽवि मच्छगाईया। जं चिट्ठंति स भगवं उवउत्तो जाणई तयंपि ॥ १ ॥ अत्थसिद्धो पुण रायगिहे

---

१ अनिच्छतः पादौ पादुके च धौते, गतः पानीये निर्बूडितः, उत्कृष्टिः (निन्दा) कृता, एवं दम्भैः लोकः खाद्यत इति, आचार्या निर्गताः, योगं प्रक्षिप्य नदीं भणिता–हे वेत्रे ! तटमर्पय एहि पुत्रि ! पूर्वं कूलं यामि, द्वावपि तटौ मिलितौ, गताः, ते तापसाः प्रव्रजिताः ब्रह्मद्वीपवास्तव्या ब्रह्मद्वीपका जाताः। एष एवंविधो योगसिद्ध इति। २ संख्यातीतांस्तु भवान्कथयति यद्वा परस्तु पृच्छेत्। नैवातिशयी विजानाति एष छद्मस्थः ॥ १ ॥ ३ तत्रागमसिद्धः किल स्वयम्भूरमणेऽपि मत्स्याद्याः। यच्चेष्टयन्ति स भगवानुपयुक्तो जानाति तकदपि ॥ १ ॥ अर्थसिद्धः पुना राजगृहे, * कलकलः + देहीत्यन्तं न प्र०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

'अर्थसिद्ध'स्य प्ररुपणार्थे मम्मणश्रेष्ठिनः कथा

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

णयरे मम्मणोत्ति, तेण महया किलेसेण अइबहुगं दविणजायं मेलियं, सो तं ण खायइ ण पिवइ, पासाउवरिं चडणेण अणेगकोडिनिम्मायगब्भसारो कंचणमओ दिव्वरयणपज्जत्तो वरवइरसिंगो महंतो एगो बलद्दो कारविओ, बीओ य आढत्तो, सोऽवि बहुनिम्माओ, एत्थंतरंमि वासारत्ते तस्स निम्मावणनिमित्तं सो कच्छोट्टगबिइज्जो णईपूराओ कट्ठविरूढगो कट्ठाणि य उत्तारेइ । इओ य राया देवीए सह ओलोयणगओ अच्छइ, सो तहाविहो अईव करुणालंबणभूओ देवीए दिट्ठो, तओ तीए सामरिसं भणियं–सच्चं सुबइ एयं मेहनइसमा हवंति रायाणो । भरियाइं भरेंति दढं रित्तं जत्तेण वज्जेइ ॥ १॥ रण्णा भणियं–किह वा ?, तीए भणियं–जं एस दमगो किलिस्सइ, रण्णा सद्दाविओ भणिओ य–किं किलिस्ससि ?, तेण भणियं–बलद्दसंघाडगो मे ण पूरिज्जइ, रण्णा भणियं–बलद्दसयं गेण्ह, तेण भणियं–ण मे तेहिं कज्जं, तस्सेव बितिज्जं पूरेह, केरिसो सोत्ति घरं नेऊण दरिसिओ, रण्णा भणियं–सव्वभंडारेणवि न पूरिज्जइ इमो, ता एत्तिगस्स विभवस्स अलं ते तिण्हाएत्ति,

१ नगरे मम्मण इति, तेन महता क्लेशेनातिबहुकं द्रव्यजातं मिलितं, स तन्न खादति न पिबति, प्रासादस्योपरि चानेनानेककोटीनिर्मितगर्भसारः काञ्चनमयो दिव्यरत्नपर्यासो वरवज्रशृङ्गो महान् एको बलीवर्दः कारितः, द्वितीयश्च आरब्धः, सोऽपि बहुनिर्मीतः, अन्तरान्तरे वर्षारात्रे तस्य निर्माणनिमित्तं स कच्छोट्टक-द्वितीयो नदीपूरात् काष्ठविरूढः काष्ठान्येवोत्तारयति । इतश्च राजा देव्या सहावलोकनगतस्तिष्ठति, स तथाविधोऽतीव करुणालम्बनभूतो देव्या दृष्टः, ततस्तया सामर्षं भणितं–सत्यं श्रूयते एतत्–मेघनदीसमा भवन्ति राजानः । भृतानि भरन्ति दृढं रिक्तं यत्नेन वर्जयन्ति ॥ १ ॥ राज्ञा भणितं–कथं वा ?, तया भणितं–यदेष द्रमकः क्लिश्यते, राज्ञा शब्दितो भणितश्च–किं क्लिश्यसे ?, तेन भणितं–बलीवर्दसंघाटको मे न पूर्यते, राज्ञा भणितं–बलीवर्दशतं गृहाण, तेन भणितं–न मे तैः कार्यं, तस्यैव द्वितीयं पूरय, कीदृशः स इति गृहं नीत्वा दर्शितः, राज्ञा भणितं–सर्वभाण्डागारेणापि न पूर्यते अयं, तावदेतावतो विभवस्य (स्थानं), अलं तव तृष्णयेति.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

तेणं भणियं–जावेसो न पूरिओ ताव मे न सुहं, आरद्धो य उवाओ पेसियाणि दिसासु भंडाणि आढत्ताओ किसीओ आढत्ताणि गयतुरयसंडपोसणाणि, रण्णा भणियं–जइ एवं ता किं थेवस्स कए किलिस्ससि ?, तेण भणियं–किलेससहं मे सरीरं वावारंतरं चेयाणि नत्थि महग्घाणि य वासारत्ते दारुगाणित्ति निवहियवा य पइण्णत्ति अओ करेमित्ति, रण्णा भणियं–पुज्जंतु ते मणोरहा, तुमं चेव बितिज्जगं पूरिउं समत्थो न पुण अहंति निग्गओ, तेण कालेण पूरिओ। एस एवंविहो अत्थसिद्धोत्ति ॥ साम्प्रतं यात्रादिसिद्धप्रतिपादनायाऽऽह—

जो निच्चसिद्धजत्तो लद्धवरो जो व तुंडियाइव्व। सो किर जत्तासिद्धोऽभिप्पाओ बुद्धिपज्जाओ ॥ ९३६ ॥

व्याख्या—यो नित्यसिद्धयात्रः, किमुक्तं भवति ?–स्थलजलचारिपथेषु सदैवाविसंवादितयात्र इति, लब्धवरो यो वा तुण्डिकादिवत्, स किल यात्रासिद्ध इति। उत्तरद्वारानुसम्बन्धनायाऽऽह–अभिप्रायः बुद्धिपर्याय इति गाथाक्षरार्थः ॥९३६४ भावार्थस्त्वाख्यानगोचरः, तच्चेदम्–पढमं ताव जो किर बारस वाराओ समुद्दं ओग्गाहित्ता कयकज्जो आगच्छइ सो जत्तासिद्धो, तं अन्नेऽवि जन्तगा जत्तासिद्धिनिमित्तं पेच्छंति । एगंमि य गामे तुंडिगो वाणियगो, तस्स

१ तेन भणितं–यावदेष न पूर्यते तावन्न मे सुखं, आरब्धश्चोपायः प्रेषितानि दिक्षु भाण्डानि आरब्धाः कृषयः आरब्धानि गजतुरगषण्डपोषणानि, राज्ञा भणितं–यद्येवं तत्किं स्लोकस्य कृते क्लिश्यसि?, तेन भणितं–क्लेशक्षमं मे शरीरं व्यापारान्तरं चेदानीं नास्ति महार्घाणि च वर्षारात्रे दारूणीति निर्यूहितव्याऽपि च प्रतिज्ञेत्यतः करोमि, राज्ञा भणितं–पूर्यन्तां ते मनोरथाः, त्वमेव द्वितीयकः पूरयितुं समर्थः न पुनरहमिति निर्गतः, तेन कालेन पूरितः। एष एवंविधोऽर्थसिद्ध इति। २ प्रथमं तावद्यः किल द्वादश वाराः समुद्रमवगाह्य कृतकार्य आगच्छति स यात्रासिद्धः, तमन्येऽपि यान्तः यात्रासिद्धिनिमित्तं पश्यन्ति। एकस्मिंश्च ग्रामे तुण्डिको वणिक्, तस्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

संयसहस्सवाराओ वहणं फुट्टं, तहावि न भज्जइ, भणइ य–जले नट्ठं जले चेव लब्भइ, सयणाइएहिंपि दिज्जमाणं नेच्छइ, पुणो पुणो तं तं भंडं गहाय गच्छइ, निच्छएण से देवया पसन्ना, खद्धं खद्धं दव्वं दिन्नं, भणिओ य–अन्नंपि किं ते करेमि ?, तेण भणियं–जो मम नामेण समुद्दं ओगाहइ सो अवियन्नो एउ, तहत्ति पडिसुयं, एवेस जत्तासिद्धो । अन्ने भणंति–किर निज्जामगस्स वासुलओ समुद्दे पडिओ, सो तस्स कए समुद्दं उल्लंचिउमाढत्तो, तओ अनिविण्णस्स देवयाए वरो दिन्नोत्ति ॥ कृतं प्रसङ्गेन, साम्प्रतमभिप्रायसिद्धं प्रतिपादयन्नाह—

विउला विमला सुहुमा जस्स मई जो चउव्विहाए वा । बुद्धीए संपन्नो स बुद्धिसिद्धो इमा सा य ॥ ९३७ ॥

व्याख्या—'विपुला' विस्तारवती एकपदेनानेकपदानुसारिणी 'विमला' संशयविपर्ययानध्यवसायमलरहिता 'सूक्ष्मा' अत्यन्तदुःखावबोधसूक्ष्मव्यवहितार्थपरिच्छेदसमर्था 'यस्य मतिः' इति यस्यैवंभूता बुद्धिः स बुद्धिसिद्ध इति, यश्चतुर्विधया वा औत्पत्तिक्यादिभेदभिन्नया बुद्ध्या सम्पन्नः स बुद्धिसिद्धो वर्तते, इयं च सा चतुर्विधा बुद्धिरिति गाथार्थः ॥ ९३७ ॥

उप्पत्तिआ १ वेणइआ २, कंमिया ३ पारिणामिआ ४ । बुद्धी चउव्विहा वुत्ता, पंचमा नोवलब्भए ॥ ९३८ ॥

१ शतसहस्रवाराः प्रवहणं भग्नं, तथाऽपि न विरमति, भणति च–जले नष्टं जले चैव लभ्यते, स्वजनादिभिरपि दीयमानं नेच्छति, पुनः पुनस्तत्तद्भाण्ड गृहीत्वा गच्छति, निश्चयेन तस्य देवता प्रसन्ना, प्रचुरं प्रचुरं द्रव्यं दत्तं, भणितश्च–अन्यदपि किं तव करोमि ?, तेन भणितं–यो मम नाम्ना समुद्रमवगाहते सोऽविपन्न आयातु, तथेति प्रतिश्रुतं, एवमेष यात्रासिद्धः । अन्ये भणन्ति–किल निर्यामकस्य वासुलः समुद्रे पतितः, स तस्य कृते समुद्रं रिक्तीकर्तुमारब्धः, ततोऽनिर्विण्णाय देवतया वरो दत्त इति ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	औत्पातिकी आदि चतुर्विधा: बुद्धिः, तेषाम् व्याख्या एवं भेदा:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

व्याख्या—उत्पत्तिरेव प्रयोजनं यस्याः सा औत्पत्तिकी, आह–क्षयोपशमः प्रयोजनमस्याः, सत्यं, किन्तु स खल्वन्तरङ्गत्वात् सर्वबुद्धिसाधारण इति न विवक्ष्यते, न चान्यच्छास्त्रकर्माभ्यासादिकमपेक्षत इति १, विनयः–गुरुशुश्रूषा स कारणमस्यास्तत्प्रधाना वा वैनयिकी २, अनाचार्यकं कर्म साचार्यकं शिल्पं, कादाचित्कं वा कर्म शिल्पं नित्यव्यापारः, 'कर्मजा' इति कर्मणो जाता कर्मजा ३, परिः–समन्तान्नमनं परिणामः–सुदीर्घकालपूर्वापरार्थावलोकनादिजन्य आत्मधर्म इत्यर्थः स कारणमस्यास्तत्प्रधाना वा पारिणामिकी ४, बुध्यतेऽनयेति–बुद्धिः–मतिरित्यर्थः, सा च चतुर्विधोक्ता तीर्थकरगणधरैः, किमिति ?, यस्मात् पञ्चमी नोपलभ्यते केवलिनाऽप्यसत्त्वादिति गाथार्थः ॥ औत्पत्तिक्या लक्षणं प्रतिपादयन्नाह—

पुव्वमदिट्ठमस्सुअमवेइअ तक्खणविसुद्धगहिअत्था । अव्वाहयफलजोगिणि बुद्धी उप्पत्तिआ नाम॥ ९३९ ॥

व्याख्या—'पूर्वम्' इति बुद्ध्युत्पादात् प्राक् स्वयमदृष्टोऽन्यतश्चाश्रुतः 'अवेदितः' मनसाऽप्यनालोचितः तस्मिन्नेव क्षणे विशुद्धः–यथावस्थितः गृहीतः–अवधारितः अर्थः–अभिप्रेतपदार्थो यया सा तथा, इहैकान्तिकमिहपरलोकाविरुद्धं फलान्तराबाधितं वाऽव्याहतमुच्यते, फलं–प्रयोजनम्, अव्याहतं च तत्फलं च अव्याहतफलं योगोऽस्या अस्तीति योगिनी अव्याहतफलेन योगिनी अव्याहतफलयोगिनी, अन्ये पठन्ति–अव्याहतफलयोगा, अव्याहतफलेन योगो यस्याः साऽव्याहतफलयोगा बुद्धिः औत्पत्तिकी नामेति गाथार्थः ॥ साम्प्रतं विनेयजनानुग्रहायास्या एव स्वरूपप्रतिपादनार्थमुदाहरणानि प्रतिपादयन्नाह–

भरहसिल १ पणिअ २ रुक्खे ३ खुड्डुग ४ पड ५ सरड ६ काग ७ उच्चारे ८ ।
गय ९ घयण १० गोल ११ खंभे १२, खुड्डुग १३ मग्गित्थि १४ पइ १५ पुत्ते १६ ॥ ९४० ॥

* पणः + मुद्रिका.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

औत्पातिकीबुद्धिः विषयक विविध-दृष्टांताः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

भरहसिल १ मिंढ २ कुक्कुड ३ तिल ४ वालुअ ५ हत्थि ६ अगड ७ वणसंडे ८।
पायस ९ अइआ १० पत्ते ११ खाडहिला १२ पंचपिअरो अ १३ ॥ ९४१ ॥
महुसित्थ १७ मुद्दि १८ अंके १९ अ नाणए २० भिक्खु २१ चेडगनिहाणे २२।
सिक्खा य २३ अत्थसत्थे २४ इच्छा य महं २५ सयसहस्से २६ ॥ ९४२ ॥

व्याख्या—आसामर्थः कथानकेभ्य एवावसेयः, तानि चामूनि–उज्जेणीए णयरीए आसन्नो गामो णडाणं, तत्थेगस्स णडस्स भज्जा मया, तस्स य पुत्तो डहरओ, तेण अन्ना आणीया, सा तस्स दारगस्स न वट्टइ, तेण दारएण भणियं–मम लट्ठं न वट्टसि, तहा ते करेमि जहा मे पाएसु पडिसित्ति, तेण रत्तिं पिया सहसा भणिओ–एस गोहो एस गोहोत्ति, तेण नायं—मम महिला विणट्ठत्ति सिढिलो रागो जाओ, सा भणइ–मा पुत्ता ! एवं करेहि, सो भणइ–मम लट्ठं न वट्टसि, भणइ—वट्टीहामि, ता लट्ठं करेमि, सा वट्टिउमारद्धा, अन्नया छाहीए चेव एस गोहो एस गोहोत्ति भणित्ता कहिंति पुट्ठो य छाहिं दंसेइ, तओ से पिया लज्जिओ, सोऽवि एवंविहोत्ति तीसे घणरागो जाओ, सोऽवि विसभीओ पियाए समं जेमेइ। अन्नया

१ उज्जयिन्या नगर्या आसन्नो ग्रामो नटानां, तत्रैकस्य नटस्य भार्या मृता, तस्य च पुत्रो लघुः, तेनान्याऽऽनीता, सा तस्मिन् दारके न (सुष्ठु) वर्त्तते, तेन दारकेण भणितं–मयि लष्टा न वर्त्तसे, तथा तव करिष्यामि यथा मे पादयोः पतिष्यसीति, तेन रात्रौ पिता सहसा भणितः–एषोऽधम एषोऽधमः (गोधः), तेन ज्ञातं–मम महिला विनष्टेति श्लथो रागो जातः, सा भणति–मा पुत्र ! एवं कार्षीः, स भणति–मयि सुन्दरा न वर्त्तसे, भणति–वर्त्से, तदा लष्टं करोमि, सा वर्त्तितुमारब्धा, अन्यदा छायायामेवैष गोध एष गोध इति भणित्वा केति पृष्टश्च छायां दर्शयति, ततस्तस्य पिता लज्जितः, सोऽपि एवंविध इति तस्यां घनरागो जातः, सोऽपि विषभीतः पित्रा समं जेमति । अन्यदा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

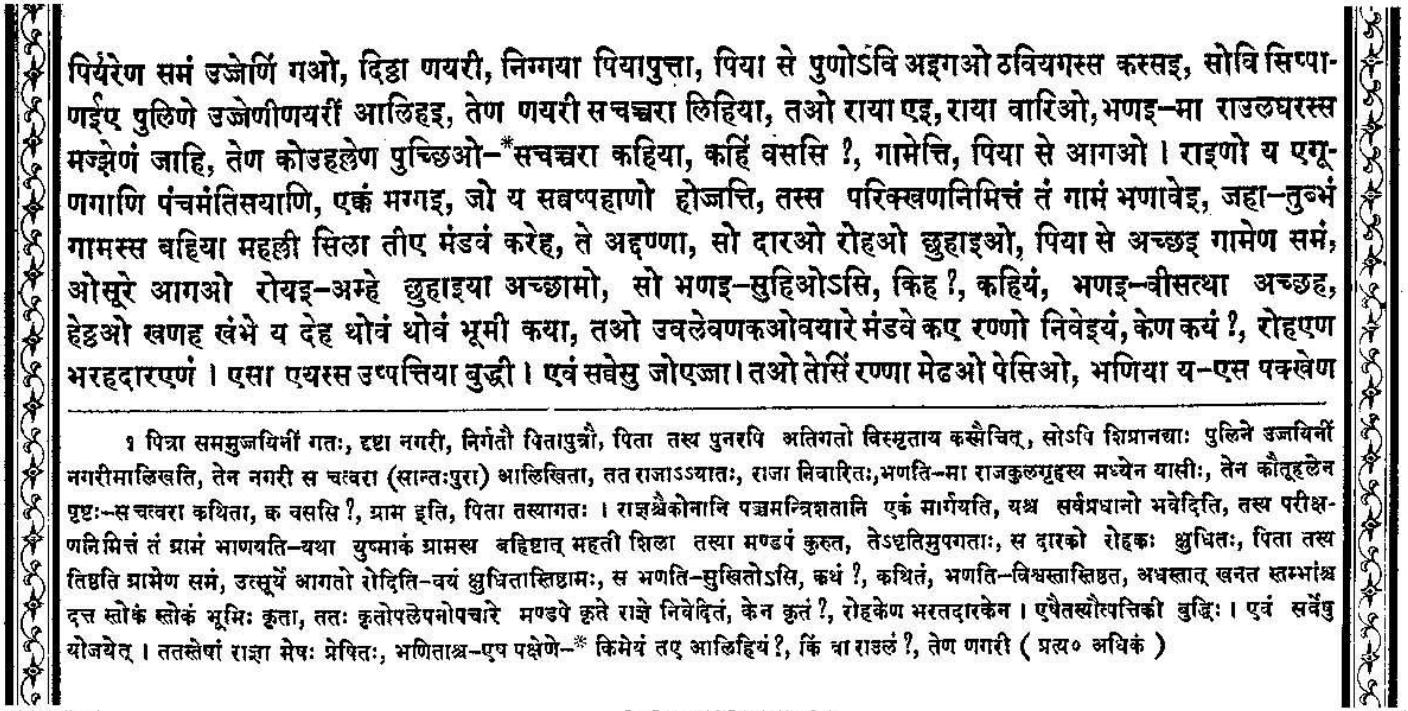

पियरेण समं उज्जेणिं गओ, दिट्ठा णयरी, निग्गया पियापुत्ता, पिया से पुणोऽवि अइगओ ठवियगस्स कस्सइ, सोवि सिप्पाणईए पुलिणे उज्जेणीणयरीं आलिहइ, तेण णयरी सचच्चरा लिहिया, तओ राया एइ, राया वारिओ, भणइ–मा राउलघरस्स मज्झेणं जाहि, तेण कोउहल्लेण पुच्छिओ–*सचच्चरा कहिया, कहिं वससि ?, गामेत्ति, पिया से आगओ। राइणो य एगूणगाणि पंचमंतिसयाणि, एक्कं मग्गइ, जो य सव्वप्पहाणो होज्जत्ति, तस्स परिक्खणनिमित्तं तं गामं भणावेइ, जहा–तुब्भं गामस्स बहिया महल्ली सिला तीए मंडवं करेह, ते अइण्णा, सो दारओ रोहओ छुहाइओ, पिया से अच्छइ गामेण समं, ओसूरे आगओ रोयइ–अम्हे छुहाइया अच्छामो, सो भणइ–सुहिओऽसि, किह ?, कहियं, भणइ–वीसत्था अच्छह, हेट्ठओ खणह खंभे य देह थोवं थोवं भूमी कया, तओ उवलेवणकओवयारे मंडवे कए रण्णो निवेइयं, केण कयं ?, रोहएण भरहदारएणं। एसा एयस्स उप्पत्तिया बुद्धी। एवं सवेसु जोएज्जा। तओ तेसिं रण्णा मेढओ पेसिओ, भणिया य–एस पक्खेण

---

१ पित्रा सममुज्जयिनीं गतः, दृष्टा नगरी, निर्गतौ पितापुत्रौ, पिता तस्य पुनरपि अतिगतो विस्मृताय कस्मैचित्, सोऽपि शिप्रानद्याः पुलिने उज्जयिनीं नगरीमालिखति, तेन नगरी स चत्वरा (सान्तःपुरा) आलिखिता, तत राजाऽऽयातः, राजा निवारितः, भणति–मा राजकुलगृहस्य मध्येन यासीः, तेन कौतूहलेन पृष्टः–स चत्वरा कथिता, क्व वससि ?, ग्राम इति, पिता तस्यागतः। राज्ञश्चैकोनानि पञ्चमन्त्रिशतानि एकं मार्गयति, यश्च सर्वप्रधानो भवेदिति, तस्य परीक्षणनिमित्तं तं ग्रामं भाणयति–यथा युष्माकं ग्रामस्य बहिष्टात् महती शिला तस्या मण्डपं कुरुत, तेऽप्येतिमुपगताः, स दारको रोहकः क्षुधितः, पिता तस्य तिष्ठति ग्रामेण समं, उत्सूर्ये आगतो रोदिति–वयं क्षुधितास्तिष्ठामः, स भणति–सुखितोऽसि, कथं ?, कथितं, भणति–विश्वस्तास्तिष्ठत, अधस्तात् खनत स्तम्भांश्च दत्त श्लोकं श्लोकं भूमिः कृता, ततः कृतोपलेपनोपचारे मण्डपे कृते राज्ञे निवेदितं, केन कृतं ?, रोहकेण भरतदारकेन। एषैतस्यौत्पत्तिकी बुद्धिः। एवं सर्वेषु योजयेत्। ततस्तेषां राज्ञा मेषः प्रेषितः, भणिताश्च–एष पक्षेणे–* किमेयं तए आलिहियं ?, किं वा राउलं ?, तेण णगरी (प्रत्य० अधिकं)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

ऐत्तिओ चेव पच्चप्पिणेयव्वो ण दुब्बलयरो नावि बलिगयरोत्ति, तेहिं भरहो पुच्छिओ–तेण विरूवेण समं बंधाविओ जवसं दिन्नं, तं चरन्तस्स ण हायइ बलं विरूवं च पेच्छंतस्स भएण ण वड्ढइ। एवं कुक्कुडओ अद्दाएण समं जुज्झाविओ। तिलसमं तेलं दायव्वंति तिला अद्दाएण मविया। वालुगावरहओ–पडिच्छंदं देह। हत्थिमि जुन्नहत्थी गामे छूढो, हत्थी अप्पाउओ मरिहितित्ति अप्पिओ मउत्तिण निवेइयव्वं, दिवसदेवसिया य से पउत्ती दायव्वत्ति, अदाणेवि निग्गहो, सो मओ, ते अद्दण्णा, भरहसुयवयणेण निवेइयं जहा–सो अज्ज हत्थी ण उट्ठेइ न णिसीयइ ण आहारेइ ण णीहारेइ ण ऊससइ ण नीससइ एवमाई, रण्णा भणियं–किं मओ?, तुब्भे भणहत्ति। अगडे आरण्णओ आगंतु ण तीरइ नागरं देह। वणसंडे पुव्वं पासं गओ गामो। परमन्नं करीसओण्हाए पलालुण्हाए यत्ति। तओ रण्णा एवं परिक्खिऊण पच्छा समाइट्ठं, जहा तेणेव दारएणागंतव्वं, तं पुण ण सुक्कपक्खे ण कण्हपक्खे ण रात्तिं न दिवसे ण छायाए ण उण्हेणं ण छत्तेणं ण आगासेणं ण पाएहिं ण जाणेणं ण

१. यन्मान एव प्रत्यर्पणीयो न दुर्बलतरो नापि बलिष्ठ इति, तैर्भारतः पृष्टः–तेन विरूपेण (वृकेण) समं बन्धितो यवसं दत्तं, तं चरतो न हीयते बलं वृकं च पश्यतो भयेन न वर्धते। एवं कुक्कुट आदर्शेन समं योधितः। तिलसमं तैलं दातव्यमिति तिला आदर्शेन मापिताः। वालुकादवरकः–प्रतिच्छन्दं दत्त। हस्तिनि–जीर्णहस्ती ग्रामे क्षिप्तः, हस्ती अल्पायुरिति मरिष्यतीत्यर्पितः मृत इति न निवेदितव्यं, दिवसदैवसिकी च तस्य प्रवृत्तिर्दातव्येति, अदानेऽपि निग्रहः, स मृतः, ते अधृतिमुपगताः, भरतसुतवचनेन निवेदितं यथा–सोऽद्य हस्ती नोत्तिष्ठते न निषीदति नाहारयति न नीहारयति नोच्छ्वसिति न निःश्वसिति एवमादि, राज्ञा भणितं–किं मृतः?, यूयं भणतेति। अवट आरण्यको नागन्तुं शक्नोति नागरं दत्त। वनखण्डे पूर्वस्मिन् पार्श्वे गतो ग्रामः। परमान्नं करीषोष्मणा पलालोष्मणा चेति। ततो राज्ञा एवं परीक्ष्य पश्चात्तथादिष्टं यथा–तेनैव दारकेणागन्तव्यं, तत्पुनर्न शुक्लपक्षे न कृष्णपक्षे न रात्रौ न दिवा न छायया नोष्णेन न छत्रेण नाकाशेन न पादाभ्यां न यानेन न

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

[1]पंथेणं ण उप्पहेणं ण पहाएणं ण मलिणेणंति, तओ तस्स निवेइयं, पच्छा अंगोहलिं काऊण चक्कमज्झभूमीए एडगारूढो चालणीनिमिउत्तिमंगो, अण्णे भणंति–सगडलट्ठणीपएसबद्धओ छाइयपडगेणं संझासमयंमि अमावासाए सन्धीए आगओ नरिंदपासं, रण्णा पूइओ, आसन्नो य सो ठिओ, पढमजामविबुद्धेण य रण्णा सद्दाविओ, भणिओ य–सुत्तो ? जग्गसि ?, भणइ–सामि ! जग्गामि, किं चिंतेसि ?, भणइ–असोत्थपत्ताणं किं दंडो महल्लो उयाहु से सिहत्ति ? रण्णा चिंतियं–साहु, एवं पच्छा पुच्छिओ भणइ–दोवि समाणि, एवं बीयजामे छगलियाओ लेंडियाओ वाएण, ततिए खाडहिल्लाए जत्तिया पंडरारेहा तत्तिया कालगा जत्तियं पुच्छं तद्दहमित्तं सरीरं, चउत्थे जामे सद्दाविओ वायं न देइ, तेण कंबियाए छिक्को, उट्ठिओ, राया भणइ–जग्गसि सुयसि ?, भणइ–जग्गामि, किं करेसि ?, चिंतेमि, किं ?, कइहिं सि जाओ, कइहिं ?, पंचहि, केण केण ?, रण्णा वेसमणेणं चंडालेणं रयएणं विच्छुएणं, मायाए निबंधेण पुच्छिए कहियं, सो पुच्छिओ भणइ–यथा न्यायेन

---

१ पथा नोत्पथेन न स्नातेन न मलिनेनेति, ततस्तस्मै निवेदितं, पश्चादङ्गरूक्षणं (देशस्नानं) कृत्वा चक्रमध्यभूमावेडकारूढश्चालनीनिर्मितोत्तमाङ्गः, अन्ये भणन्ति–शाकटलट्टनी (कट) प्रदेशबद्धः छादितः पटेन संध्यासमयेऽमावास्यायाः सन्ध्यायामागतो नरेन्द्रपार्श्वं, राज्ञा पूजितः, आसन्नश्च स स्थितः, प्रथमयामविबुद्धेन च राज्ञा शब्दितः, भणितश्च–सुप्तो जागर्षि ?, भणति–स्वामिन् ! जागर्मि, किं चिन्तयसि ?, भणति–अश्वत्थपत्राणां किं दण्डो महान् उत तस्य शिखेति, राज्ञा चिन्तितं–साधु, एवं पश्चात्पृष्टो भणति–द्वे अपि समे, एवं द्वितीययामे छागलिका लिण्डिका वातेन, तृतीये खाडहिल्लाया यावत्यः पाण्डुरारेखाः तावत्यः कृष्णा यावन्मात्रं पुच्छं तावन्मात्रं शरीरं, चतुर्थे यामे शब्दितो वाचं न ददाति, तेन कम्बिकया हतः, उत्थितो, राजा भणति–जागर्षि स्वपिषि ?, भणति–जागर्मि, किं करोषि ?, चिन्तयामि, किं ?, कतिभिर्ज्ञातोऽसि ?, कतिभिः ?, पञ्चभिः, केन केन ?, राज्ञा वैश्रमणेन चाण्डालेन रजकेन वृश्चिकेन, मात्रा निर्बन्धेन पृष्टया कथितं, स पृष्टो भणति–यथा न्यायेन

Jain Education International For Personal & Private Use Only jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

राज्यं पालयसि तो णज्जसि जहा रायपुत्तोत्ति, वेसमणो दाणेणं, रोसेणं चंडालो, सव्वस्सहरणेणं रयओ, जं च वीसत्थसुत्तंपि कंबियाए उट्ठवेसि तेण विच्छुओत्ति, तुट्ठो राया, सव्वेसिं उवरिं ठविओ, भोगा य से दिण्णा। एयस्स उप्पत्तिया बुद्धित्ति ॥ पणियए दोहिं पणियगं बद्धं, एगो भणइ–जो एयाओ लोमसियाओ खाइ तस्स तुमं किं करेसि?, इयरो भणइ–जो णयरदारेण मोयगो ण णीति तं देमि, तेण चक्खिय चक्खिय सव्वाओ मुक्काओ, जिओ मग्गइ, इयरो रूवगं देइ, सो नेच्छइ, दोन्नि य जाव सएणऽवि ण तूसइ, तेण जूयारा ओलग्गिया, दिन्ना बुद्धी, एगं पुवियावणे मोयगं गहाय इंदखीले ठवेहि, पच्छा भणेज्जासि–निग्गच्छ भो मोयगा! णिगच्छ, सो ण णिगच्छिहिति, तहा कयं पडिजिओ सो। एसा जूइकराणमुप्पत्तिया बुद्धी ॥ रुक्खे फलाणि मक्कडा न देंति, पाहाणेहिं हया अम्बया दिन्ना, एसावि लेट्ठुगघेत्तयाणमुप्पत्तियत्ति ॥ खुड्डुगे पसेणई राया सुओ से सेणिओ रायलक्खणसंपुण्णो, तस्स किंचिवि ण देइ मा मारिज्जिहित्ति, अद्धितीए

१ राज्यं पालयसि ततो ज्ञायसे यथा राजपुत्र इति, वैश्रमणो दानेन, रोषेण चाण्डालः, सर्वस्वहरणेन रजकः, यच्च विश्वस्तसुप्तमपि कम्बिकया (अग्रेण) उत्थापयसि तेन वृश्चिक इति, तुष्टो राजा, सर्वेषामुपरि स्थापितः, भोगाश्च तस्मै दत्ताः। एषोत्पत्तिकी बुद्धिरिति। पणो–द्वाभ्यां पणो बद्धः, एको भणति–य एताश्चिर्भटिकाः खादति तस्मै त्वं किं करोषि?, इतरो भणति–यो नगरद्वारेण मोदको न निर्गच्छति तं ददामि, तेन दृष्ट्वा दृष्ट्वा सर्वा मुक्ताः, जितो मार्गयति, इतरो रूप्यकं ददाति, स नेच्छति, द्वे च यावच्छतेनापि न तुष्यति, तेन द्यूतकारा अवलगिताः, दत्ता बुद्धिः, एकं कान्दविकापणान्मोदकं गृहीत्वा इन्द्रकीले स्थापय, पश्चाद् भणेः–निर्गच्छ भो मोदक! निर्गच्छ, स न निर्गमिष्यति, तथा कृतं, प्रतिजितः सः। एषा द्यूतकराणामौत्पत्तिकी बुद्धिः ॥ वृक्षे फलानि मर्कटा न ददति, पाषाणैर्हता आम्रा दत्ताः, एषापि लेष्टुकक्षेपकाणामौत्पत्तिकीति। मुद्गरजे–प्रसेनजित् राजा सुतस्तस्य श्रेणिको राजलक्षणसंपूर्णः, तस्मै न किञ्चिदपि ददाति मा मीमरत (मार्येत) इति, अथवा

॥४१७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

निग्गओ वेन्नायडमागओ कइवयसहाओ, खीणविभवसेट्ठिस्स वीहीए उवविट्ठो, तस्स य तप्पुण्णपच्चयं तद्दिवसं वासदेय-भंडाणं विक्कओ जाओ खद्धं खद्धं विढत्तं, अन्ने भणंति–सेट्ठिणा रयणायरो सुमिणंमि घरमागओ नियकण्णं परिणेंतगो दिट्ठो, तओऽणेण चिंतियं–एईए पसाएण महई विभूई भविस्सति, पच्छा सो वीहीए उवविट्ठो, तेण तमणण्णसरिसाए आगईए दट्ठूण चिंतियं एसो सो रयणायरो भविस्सइ, तप्पहावेण याणेण मिलक्खुहत्थाओ अणग्घेज्जा रयणा पत्ता, पच्छा पुच्छिओ–कस्स तुब्भे पाहुणगा ?, तेण भणियं–तुज्झंति, घरं णीओ, कालेण धूया से दिण्णा, भोगे भुंजइ, कालेण य नंदाए सुमिणंमि धवलगयपासणं, आवण्णसत्ता जाया, पच्छा रण्णा से उट्टवामा विसज्जिया, सिग्घं एहित्ति, आपुच्छइ, अम्हे रायगिहे पंड-रकुड्डगा पसिद्धा गोवाला, जइ कज्जं एहित्ति, गओ, तीए दोहलओ देवलोगचुयगब्भाणुभावेण वरहत्थिखंधगया अभयं सुणेज्जामित्ति, सेट्ठी दव्वं गहाय रण्णो उवट्ठिओ, रायाणएण गहियं, उग्घोसावियं च, जाओ, अभयओ णामं कयं, पुच्छइ–

---

१ निर्गतः वेन्नातटमागतः कतिपयसहायः, क्षीणविभवश्रेष्ठिनो वीथ्यामुपविष्टः, तस्य च तत्पुण्यप्रत्ययं तद्दिवसे वर्षदेयभाण्डानां विक्रयो जातः, प्रचुरं प्रचुरम-र्जितं, अन्ये भणन्ति–श्रेष्ठिना रत्नाकरः स्वप्ने गृहमागतो निजकन्यां परिणयन् दृष्टः, ततोऽनेन चिन्तितम्–एतस्याः प्रसादेन महती विभूतिर्भविष्यति, पश्चात् स वीथ्यामुपविष्टः, तेन तमनन्यसदृशयाऽऽकृत्या दृष्ट्वा चिन्तितं एष स रत्नाकरो भविष्यति, तत्प्रभावेन चानेन म्लेच्छहस्तात् अनर्घ्याणि रत्नानि प्राप्तानि, पश्चात्पृष्टः—कस्य यूयं प्राघूर्णकाः ?, तेन भणितं–युष्माकमिति, गृहं नीतः, कालेन दुहिता तस्मै दत्ता, भोगान् भुनक्ति, कालेन च नन्दया स्वप्ने धवलगजदर्शनं, आपन्न-सत्त्वा जाता, पश्चात् राज्ञा तस्मै उष्ट्री प्रेषिता, शीघ्रमेहीति, आपृच्छति, वयं राजगृहे पाण्डुरकुड्याः प्रसिद्धा गोपालाः, यदि कार्यमागच्छेरिति, गतः, तस्या दोहदो देवलोकच्युतगर्भानुभावेन वरहस्तिस्कन्धगता अभयं शृणोमीति, श्रेष्ठी द्रव्यं गृहीत्वा राज्ञ उपस्थितः, राज्ञा गृहीतं, उद्घोषितं च, जातः, अभयो नाम कृतं, पृच्छति—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

[1]मम पिया कहिंति ?, कहियं तीए, तत्थ वच्चामोत्ति सत्थेण समं (१०५००) वच्चंति, रायगिहस्स बहिया ठियाणि, गवेसओ गओ, राया मंतीं मग्गइ, कूवे खुड्डु (खुंड) गं पाडियं, जो गेण्हइ हत्थेण तडे संतो तस्स राया वित्तिं देइ, अभएण दिट्ठं, छाणेण आहयं, सुक्के पाणियं मुक्कं, तडे संतएण गहियं, रायाए समीवं गओ, पुच्छिओ–को तुमं ?, भणइ–तुज्झ पुत्तो, किह व किं वा ?, सव्वं परिकहियं, तुट्ठो उच्छंगे कओ, माया पवेसिज्जंती मंडेई, वारिया, अमच्चो जाओ, एसा एतस्स उप्पत्तिया बुद्धी ॥ पडे–दो जणा ण्हायंति, एगस्स दढो एगस्स जुन्नो, जुन्नइत्तो दढं गहाय पट्ठिओ, इयरो मग्गेइ, ण देइ, राउले ववहारो, महिलाओ कत्ताविआओ, *दिन्नो जस्स सो, अण्णे भणंति–सीसाणि ओलिहियाणि, एगस्स उन्नामओ एगस्स सोत्तिओ। कारणियाणमुप्पत्तिया बुद्धी ॥ सरडो–सन्नं वोसिरंतस्स सरडाण भंडंताण एगो तस्स अहिट्ठाणस्स हेट्ठा बिलं पविट्ठो पुंछेण य छिक्को, घरं गओ, अद्धिईए दुब्बलो जाओ, विज्जो पुच्छिओ, जइ सयं देह, घडए सरडो छूढो लक्खाए

१ मम पिता क्वेति, कथितं तया, तत्र व्रजाम इति सार्थेन समं व्रजन्ति, राजगृहस्य बहिः स्थितानि, गवेषको गतः, राजा मन्त्रिणं मार्गयति, कूपे मुद्रिका पातिता, यो गृह्णाति हस्तेन तटे सन् तस्मै राजा वृत्तिं ददाति, अभयेन दृष्टं, छगणेन (गोमयेन) आहतं, शुष्के पानीयं मुक्तं, तटे सता गृहीतं राज्ञः समीपं गतः, पृष्टः–कस्त्वं ?, भणति–तव पुत्रः, कथं वा किं वा ?, सर्वं परिकथितं, तुष्ट उत्सङ्गे कृतः, माता प्रविशन्ती मण्डयति, वारिता, अमात्यो जातः, एषैतस्यौत्पातिकी बुद्धिः ॥ पटः–द्वौ जनौ स्नातः, एकस्य दृढ एकस्य जीर्णः, जीर्णवान् दृढं गृहीत्वा प्रस्थितः, इतरो मार्गयति, न ददाति, राजकुले व्यवहारः, महिलाभ्यां कर्त्तनं कारितं, दत्तो यस्य यः, अन्ये भणन्ति–शीर्षे अवलिखिते, एकस्योर्णामय एकस्य सौत्रिकः। कारणिकानामौत्पत्तिकी बुद्धिः। सरटः–संज्ञां व्युत्सृजतः सरटयोः कलहायमानयोः एकस्तस्याधिष्ठानस्याधस्तात् बिलं प्रविष्टः, पुच्छेन च स्पृष्टः, गृहं गतः, अधृत्या दुर्बलो जातः, वैद्यः पृष्टः, यदि शतं ददासि, घटे सरटः क्षिप्तः लाक्षया * सुत्ताणुसारेण जो जस्स [P]डो सो तस्स दिण्णो (प्र. अधिकं)। जस्स उण्णाभओ पडो तस्स सीसा उण्णातन्तू विणिग्गया जस्स सोत्तिओ तस्स सुत्ततन्तू (प्र. अधिकं)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

विलिंपित्ता, विरेयणं दिन्नं, वोसिरियं, लट्ठो हूओ, वेज्जस्स उप्पत्तिया बुद्धी ॥ बितिओ सरडो–भिक्खुणा खुड्डगो पुच्छिओ-एस किं सीसं चालेइ?, सो भणइ–किं भिक्खू भिक्खुणी वा ?, खुड्डगस्स उप्पत्तिया बुद्धी ॥ कागे–तच्चण्णिएण चेल्लओ पुच्छिओ–अरहंता सव्वण्णू ?, बाढं, केत्तिया इहं काका ?, 'सट्ठिं काकसहस्साइं जाइं वेन्नायडे परिवसंति । जइ ऊणगा पवसिया अब्भहिया पाहुणा आया ॥ १ ॥' खुड्डगस्स उप्पत्तिया बुद्धी ॥ बितिओ–वाणियओ निहिंमि दिट्ठे महिलं परिक्खइ–रहस्सं धरेइ न वत्ति, सो भणइ–पंडुरओ मम काको अहिट्ठाणं पविट्ठो, ताए सहज्जियाण कहियं, जाव रायाए सुयं, पुच्छिओ, कहियं, रन्ना से मुक्कं मंती य निउत्तो, एयस्स उप्पत्तिया बुद्धी ॥ ततिओ–विट्ठं विक्खरइ काओ, भागवओ खुड्डगं पुच्छइ–किं कागो विक्खरइ ?, सो भणइ–एस चिंतेति–किं एत्थ विण्हू अत्थि नत्थित्ति ?, खुड्डगस्स उप्पत्तिया बुद्धी ॥ उच्चारे—धिज्जाइयस्स भज्जा तरुणी गामंतरं निज्जमाणी धुत्तेण समं संपलग्गा, गामे ववहारो, विभत्ताणि

---

१ विलिप्य, विरेचनं दत्तं,व्युत्सृष्टं लष्टो जातः, वैद्यस्य औत्पत्तिकी बुद्धिः ॥ द्वितीयः सरटः–भिक्षुणा क्षुल्लकः पृष्टः–एष किं शीर्षं चालयति ?, स भणति–किं भिक्षुः भिक्षुकी वा ?, क्षुल्लकस्यौत्पत्तिकी बुद्धिः ॥ काकः–तच्चनीकेन क्षुल्लकः पृष्टः–आर्हंताः सर्वज्ञाः ?, बाढं, कियन्त इह काकाः ?,–'षष्टिः काकसहस्रा ये वेन्नातटे परिवसन्ति । यदि न्यूनाः प्रोषिता अभ्यधिकाः प्राघूर्णका आयाताः ॥ १ ॥' क्षुल्लकस्यौत्पत्तिकी बुद्धिः। द्वितीयो–वणिक् निधौ दृष्टे महिलां परीक्षते–रहस्यं बिभर्त्ति नवेति, स भणति–श्वेतः मम काकोऽधिष्ठाने प्रविष्टः, तया सखीनां कथितं,यावद्राज्ञा श्रुतं, पृष्टः, कथितं, राज्ञा तस्मै अर्पितः मन्त्री च नियुक्तः, एतस्यौत्पत्तिकी बुद्धिः ॥ तृतीयः–विष्ठां विकिरति काकः, भागवतः क्षुल्लकं पृच्छति–किं काको विकिरति ?, स भणति–एष चिन्तयति–किमत्र विष्णुरस्ति नास्तीति, क्षुल्लकस्यौत्पत्तिकी बुद्धिः ॥ उच्चारः–धिग्जातीयस्य भार्या तरुणी ग्रामान्तरं नीयमाना धूर्त्तेन समं संप्रलग्ना, ग्रामे व्यवहारः, विभक्तौ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

पुच्छियाणि आहारं, विरेयणं दिण्णं, तिलमोयगा, इयरो धाडिओ, कारणियाण उप्पत्तिया बुद्धी ॥ गए–वसंतपुरे राया-मंतिं मग्गइ, पायओ लंबिओ–जो हत्थिं महइमहालयं तोलेइ तस्स य सयसहस्सं देमि, सो एगेणं णावाए छोढुं अत्थग्घे जले धरिओ जेण छिद्देण तीसे णावाए पाणियं तत्थ रेहा कड्ढिया, उत्तारिओ हत्थी, कट्ठपाहाणाइणा भरिया णावा जाव रेखा, उत्तारेउं तोलियाणि, पूजिओ मन्ती कओ, एयस्स उप्पत्तिया बुद्धी । अण्णे भणंति–गाविमग्गो सिलाए णट्ठो, पेढे(पोट्ट)पडिएण णीणिओ, एयस्स उप्पत्तिया बुद्धी ॥ घयणो–भंडो सव्वरहस्सिओ, राया देवीए गुणे लएइ निरामयत्ति, सो भणइ–न भव-इत्ति, किह ?, जया पुप्फाणि केसराणि वा ढोएइ, तं तहत्ति विण्णासियं, णाए हसियं, निब्बंधे कहियं, निविसओ आणत्तो, उवाहणाणं भारेणं उवट्ठिओ, उड्डाहभीयाए रुद्धो, घयणस्स उप्पत्तिया बुद्धी । गोलगो नक्कं पविट्ठो, सलागाए तावेत्ता जउ-मओ कड्ढिओ, कड्ढंतस्स उप्पत्तिया बुद्धी ॥ खंभे–राया मंतिं गवेसइ, पायओ लंबिओ, खंभो तडागमज्झे, जो तडे संतओ बंधइ

१ पृष्टौ आहारं, विरेचनं दत्तं, तिलमोदकाः, इतरो निर्धाटितः, कारणिकानामौत्पत्तिकी बुद्धिः ॥ गजः–वसन्तपुरे राजा मन्त्रिणं मार्गयति, घोषणा कारिता–यो हस्तिनं महातिमहालयं तोलयति तस्मै च शतसहस्रं ददामि, स एकेन नावि क्षिप्त्वा अस्ताघे जले धृतो यस्मिन् भागे तस्या नावः पानीयं तत्र रेखा कृष्टा, उत्तारितो हस्ती, काष्ठपाषाणादिना भृता नौर्यावद्रेखा, उत्तार्य तोलितानि, पूजितो मन्त्री कृतः, एतस्यौत्पत्तिकी बुद्धिः । अन्ये भणन्ति–गोमार्गः शिलया नष्टः, पीठे पतितेन नीतः, एतस्यौत्पत्तिकी बुद्धिः ॥ घृतान्नः–सर्वरहस्यिको भाण्डो, राजा देव्या गुणान् लाति–निरामयेति, स भणति–न भवतीति कथं ?, यदा पुष्पाणि केशराणि वा ढौकयति, तत्तथेति जिज्ञासितं, ज्ञाते हसितं, निर्बन्धे कथितं, निर्विषय आज्ञप्तः, उपानहां भारेणोपस्थितः, उड्डहभीतया रुद्धः, घृतान्न-स्यौत्पत्तिकी बुद्धिः ॥ गोलकः–नासिकां प्रविष्टः, शलाकया तापयित्वा जतुमयः कर्षितः, कर्षत औत्पत्तिकी बुद्धिः ॥ स्तम्भः–राजा मन्त्रिणं गवेषयति, घोषणा कारिता, स्तम्भस्तटाकमध्ये, यस्तटे सन् बध्नाति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

तस्स सयसहस्सं दिज्जइ, तडे खीलगं बंधिऊण परिवेढेण बद्धो जिओ, मंती कओ, एयस्स उप्पत्तिया बुद्धी ॥ खुड्डुए—परिव्वाइया भणइ–जो जं करेइ तं मए कायवं कुसलकम्मं, खुड्डुगो भिक्खट्ठियओ सुणेइ, पडहओ वारिओ, गओ राउलं, दिट्ठो, सा भणइ–कओ गिलामि ?, तेण सागारियं दाइयं, जिया, काइयाए य पउमं लिहियं, सा न तरइ, जिया, खुड्डुगस्स उप्पत्तिया बुद्धी ॥ मग्गित्थी–एगो भज्जं गहाय पवहणेण गामंतरं वच्चइ, सा सरीरचिंताए उइन्ना, तीसे रूवेण वाणमंतरी विलग्गा, इयरी पच्छा आगया रडइ, ववहारो, हत्थो दूरं पसारिओ, णायं वंतरित्ति, कारणियाणमुप्पत्तियत्ति ॥ मग्गे–मूलदेवो कंडरिओ य पंथे वच्चंति, इओ एगो पुरिसो समहिलो दिट्ठो, कंडरिओ तीसे रूवेण मुच्छिओ, मूलदेवेण भणियं–अहं ते घडेमि, तओ मूलदेवो तं एगंमि वणनिउंजे ठविऊण पंथे अच्छइ, जाव सो पुरिसो समहिलो आगओ, मूलदेवेण भणिओ–एत्थ मम महिला पसवइ, एयं महिलं विसज्जेहि, तेण विसज्जिया, सा तेण समं अच्छिऊण आगया

---

१ तस्मै शतसहस्रं दीयते, तटे कीलकं बद्ध्वा परिवेष्टेन बद्धो जितः, मन्त्री कृतः,एतत्पौत्पत्तिकी बुद्धिः ॥ क्षुल्लकः–परिव्राजिका भणति–यो यत् करोति तन्मया कर्त्तव्यं कुशलकर्म, क्षुल्लको भिक्षार्थिकः शृणोति, पटहको वारितः, गतो राजकुलं, दृष्टः, सा भणति–कुतो गिलामि ?, तेन सागारिकं (मेहनं) दर्शितं, जिता, कायिक्या च पद्मं लिखितं, सा न शक्नोति, जिता, क्षुल्लकस्यौत्पत्तिकी बुद्धिः । मार्गस्त्री–एको भार्यां गृहीत्वा प्रवहणेन (यानेन) ग्रामान्तरं व्रजति, सा शरीरचिन्तार्थे उत्तीर्णा, तस्या रूपेण व्यन्तरी विलग्ना, इतरा पश्चादागता रोदिति, व्यवहारः, हस्तो दूरं प्रसारितः, ज्ञातं व्यन्तरीति, कारणिकानामौत्पत्तिकीति ॥ मार्गः–मूलदेवः कण्डरीकश्च पथि व्रजतः, इत एकः पुरुषः समहिलो दृष्टः, कण्डरीकः तस्या रूपेण मूर्छितो, मूलदेवेन भणितं–अहं तव घटयामि, ततो मूलदेवस्तं एकस्मिन् वननिकुञ्जे स्थापयित्वा तिष्ठति, यावत्स पुरुषः समहिल आगतः, मूलदेवेन भणितः–अत्र मम महिला प्रसूते, एतां महिलां विसृज, तेन विसृष्टा, सा तेन समं स्थित्वाऽऽगता,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

आगंतूण य तत्तो पडयं घेत्तूण मूलदेवस्स धुत्ती भणइ हसंती–पियं खु णे दारओ जाओ, दोण्हवि उप्पत्तिया ॥ पइत्ति–दोण्हं भाउगाण एगा भज्जा, लोगे कोडुं दोण्हवि समा, रायाए सुयं, परं विम्हयं गओ, अमच्चो भणइ–कओ एवं होति?, अवस्सं विसेसो अत्थि, तेण तीसे महिलाए लेहो दिन्नो जहा–एएहिं दोहिवि गामं गंतव्वं, एगो पुव्वेण अवरो अवरेण, तद्दिवसं चेव आगंतव्वं, ताए महिलाए एगो पुव्वेण पेसिओ, एगो अवरेण जो वेस्सो, तस्स पुव्वेण एंतस्सवि जंतस्सवि निडाले सूरो, एवं णायं, असद्दहंतेसु पुणोऽवि पट्ठविऊण समगं पुरिसा से पेसिया, ते भणंति–ते दढं अपडुगा, एसो मंद-संघयणोत्ति भणियं, तं चेव पवण्णा, पच्छा उवगयं, मंतिस्स उप्पत्तिया बुद्धी ॥ पुत्ते–एगो वणियगो दोहि भज्जाहि समं अण्णरज्जं गओ, तत्थ मओ, तस्स एगाए भज्जाए पुत्तो, सो विसेसं ण जाणइ, एगा भणइ–मम पुत्तो, बिइया भणइ–मम, ववहारो न छिज्जइ, अमच्चो भणइ–दव्वं विरिविऊण दारगं दोभागे करेह करकयेण, माया भणइ–एतीसे पुत्तो मा

१ आगत्य च ततः पटं गृहीत्वा मूलदेवस्य धूर्त्ता भणति हसन्ती–प्रियं नो दारको जातः, द्वयोरप्यौत्पत्तिकी । पतिरिति–द्वयोर्भार्त्रोरेको भार्या, लोके स्फुटं द्वयोरपि समा, राज्ञा श्रुतं, परं विस्मयं गतः, अमात्यो भणति–कुत एवं भवति ?, अवश्यं विशेषोऽस्ति, तेन तस्यै महिलायै लेखो दत्तो यथा–एताभ्यां द्वाभ्यामपि ग्रामं गन्तव्यं, एकः पूर्वेणापरः पश्चिमेन, तद्दिवस एवागन्तव्यं, तया महिलयकः पूर्वेण प्रेषितोऽपरोऽपरेण यो द्वेष्यः, तस्य पूर्वेण आगच्छतोऽपि गच्छतोऽपि ललाटे सूर्यः, एवं ज्ञातं, अश्रद्दधत्सु पुनरपि प्रस्थाप्य समकं (युगपत्) पुरुषौ तस्यै प्रेषितौ, तौ भणतः–तौ दृढमपटुकौ, एष मन्दसंहनन इति भणितं (भणित्वा) तमेव प्रपन्ना, पश्चादुपगतं, मन्त्रिण औत्पत्तिकी बुद्धिः ॥ पुत्रः–एको वणिग् द्वाभ्यां भार्याभ्यां सममन्यराज्यं गतः, तत्र मृतः, तस्यैकस्या भार्यायाः पुत्रः, स विशेषं न जानाति, एका भणति–मम पुत्रः, द्वितीया भणति–मम, व्यवहारो न छिद्यते, अमात्यो भणति–द्रव्यं विभज्य दारकं द्वौ भागौ कुरुत कर्कचेन, माता भणति–एतस्याः पुत्रो मा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

मारिज्जउ, दिण्णो तीसे चेव, मंतिस्स उप्पत्तिया बुद्धी ॥ महुसित्थे–सित्थगकरो, कोलगिणी उब्भामिया, तीए य जालीए निहुवणट्ठियाए उवरिं भामरं पडुप्पाइयं, पच्छा भत्तारो किणंतो वारिओ–मा किणिहिसि, अहं ते भामरं दंसेमि, गयाणि जालिं, न दीसइ, तओ तंतुवायपुत्तीए तेणेव विहिणा ठाइऊण दरिसियं, णाया यऽणेण जहा–उब्भामियत्ति, कहमन्नहेयमेवं भवइत्ति, तस्स उप्पत्तिया बुद्धी ॥ मुद्दिया–पुरोहिओ निक्खेवए घेत्तूण अन्नेसिं देइ, अन्नया दमएण ठवियं, पडिआगयस्स ण देइ, पिसाओ जाओ, अमच्चो विहीए जाइ, भणइ–देहि भो पुरोहिया! तं मम सहस्संति, तस्स किवा जाया, रण्णो कहियं, राइणा पुरोहिओ भणिओ–देहि, भणइ–न देमी, न गेण्हामि, रण्णा दमगो सवं सपच्चयं दिवसमुहुत्तठवणपासपरिवत्तिमाइ पुच्छिओ, अन्नया जूयं रमइ रायाए समं, णाममुद्दागहणं, रायाए अलक्खं गहाय मणुस्सस्स हत्थे दिण्णा, अमुगंमि काले साहस्सो नउलगो दमगेण ठविओ तं देहि, इमं अभिन्नाणं, दिन्नो आणिओ, अन्नेसिं

---

१ मारयतु, दत्तस्तस्या एव, मन्त्रिण औत्पत्तिकी बुद्धिः ॥ मधुसिक्थम्–सिक्थकरः, कोलिकी उद्भामिका, तया च जाल्यां निधुवनस्थितयोपरि भ्रामरं ज्ञातं, पश्चाद्भर्त्ता क्रीणन् वारितः–मा क्रीणाहीति, अहं ते भ्रामरं दर्शयामि, गतौ जाल्यां, न दृश्यते, ततः तन्तुवायपुत्र्या तेनैव विधिना स्थित्वा दर्शितं, ज्ञाता चानेन यथोद्भामिकेति, कथमन्यथा एतदेवं भवेदिति, तस्यौत्पत्तिकी बुद्धिः । मुद्रिका–पुरोहितो न्यासान् गृहीत्वाऽन्येषां न ददाति, अन्यदा द्रमकेण स्थापितं, प्रत्यागताय न ददाति, विह्वलो जातः, अमात्यो वीथ्यां याति, भणति–दापय भोः! पुरोहितात्तन्मम सहस्रमिति, तस्य कृपा जाता, राज्ञे कथितं, राज्ञा पुरोहितो भणितः–देहि, भणति–न ददामि, न गृह्णामि, राज्ञा द्रमकः सर्वं सप्रत्ययं दिवसमुहूर्त्तस्थापनापार्श्ववर्त्यादि पृष्टः, अन्यदा द्यूतं रमते राज्ञा समं, नाममुद्राग्रहणं, राज्ञाऽलक्ष्यं गृहीत्वा मनुष्यस्य हस्ते दत्ता, अमुष्मिन् काले साहस्रो नकुलको द्रमकेण स्थापितस्तं देहि, इदमभिज्ञानं, दत्त आनीतः, अन्येषां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

नउलगाणं मज्झे कओ, सद्दाविओ, पच्चभिन्नाओ, पुरोहियस्स जिब्भा छिन्ना, रण्णो उप्पत्तिया बुद्धी ॥ अंके–तहेव एगेण निक्खित्ते लंछेऊण उस्सीवेत्ता कूडरूवगाण भरिओ तहेव सिव्वियं, आगयस्स अल्लिविओ, सा मुद्दा उग्घाडिया, कूडरूवगा, ववहारो, पुच्छिओ–कित्तियं?, सहस्सं, गणेऊण गंठी तडिओ, तओ न तीरइ सिव्वेउं, कारणिगाणमुप्पत्तिया बुद्धी ॥ णाणए–तहेव निक्खेवओ पणा छूढा, आगयस्स नउलओ दिण्णो, पणे पुच्छा, राउले ववहारो, कालो को आसि ?, अमुगो, अहुणोत्तणा पणा, सो चिराणओ कालो, डंडिओ, कारणिगाणमुप्पत्तिया ॥ भिक्खुंमि–तहेव निक्खेवओ, सो न देइ, जूतिकरा ओलग्गिया, तेहिं पुच्छिएण य सब्भावो कहिओ, ते रत्तपडवेसेण भिक्खुसगासं गया सुवण्णस्सखोडीओ गहाय, अम्हे वच्चामो चेइयवंदगा, इमं अच्छउ, सो य पुव्वं भणिओ, एयंमि अंतरे आगएणं मग्गियं, तीए लोलयाए दिण्णं, अन्नेविय भिक्खंतगा एताए मंजूसाए कज्जिहित्ति निग्गया, जूइकाराणमुप्पत्तिया बुद्धी ॥ चेडगणिहाणे–दो मित्ता, तेहिं निहाणगं

१ नकुलकानां मध्ये कृतः, शब्दितः, प्रत्यभिज्ञातः, पुरोहितस्य जिह्वा छिन्ना, राज्ञ औत्पत्तिकी बुद्धिः ॥ अङ्कः–तथैवैकेन निक्षिप्ते लाञ्छयित्वोत्सीव्य कूटरूपकैर्भृतः तथैव सीवितः, आगतायार्पितः, सा मुद्रोद्घाटिता, कूटरूप्यकाः, व्यवहारः, पृष्टः–कियत् ?, सहस्रं, गणयित्वा ग्रन्थिबद्धः, ततो न शक्यते सीवितुं, कारणिकानामौत्पत्तिकी बुद्धिः ॥ नाणके–तथैव निक्षेपः पणा (द्रम्माः) क्षिप्ताः, आगताय नकुलको दत्तः, पणविषये पृच्छा, राजकुले व्यवहारः, कालः क आसीत् ?, अमुकः, अधुनातनाः पणाः, स चिरन्तनः कालः, दण्डितः, कारणिकानामौत्पत्तिकी बुद्धिः ॥ भिक्षौ–तथैव निक्षेपः, स न ददाति, द्यूतकारा अवलगिताः, तैः पृष्टेन च सद्भावः कथितः, ते रक्तपटवेषेण भिक्षुसकाशं गताः सुवर्णखोरकान् गृहीत्वा, वयं व्रजामश्चैत्यवन्दकाः, इदं तिष्ठतु, स च पूर्वं भणितः, एतस्मिन्नवसरे आगतेन मार्गितं, तया लोलतया दत्तं, अन्येऽपि च भिक्षमाणा एतस्यां मञ्जूषायां करिष्यन्तीति निर्गताः, द्यूतकाराणामौत्पत्तिकी बुद्धिः ॥ चेटकनिधाने–द्वे मित्रे, ताभ्यां निधानं

नमस्कार० वि० १

॥४२१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

दिट्ठं', कल्ले सुनक्खत्ते णेहामो, एगेण हरिऊण इंगाला छूढा, बीयदिवसे इंगाला पेच्छइ, सो धुत्तो भणइ–अहो मंदपुन्ना अम्हे किह ता इंगाला जाया ?, तेण णायं, हिययं ण दरिसेइ, तस्स पडिमं करेइ, दो मक्कडे लएइ, तस्स उवरि भत्तं देइ, ते छुहाइया तं पडिमं चडंति । अन्नया भोयणं सज्जिय दारगा णीया, संगोविया न देइ, भणइ–मक्कडा जाया, आगओ, तत्थ लेप्पणट्ठाणे ठाविओ, मक्कडगा मुक्का, किलिकिलिंता विलग्गा, भणिओ–एए ते तव पुत्ता, सो भणइ–कहं दारगा मक्कडा भवंति ?, सो भणइ–जहा दिनारा इंगाला जाया तहा दारगावि, एवं णाए दिण्णो भागो, एयस्स उप्पत्तिया बुद्धी ॥ सिक्खासत्थे धणुव्वेओ, तंमि एगो कुलपुत्तगो धणुव्वेयकुसलो, सो य कहिंपि हिंडंतो एगत्थ ईसरपुत्तए सिक्खावेइ, दव्वं विढत्तं, तेसिंपि तिमिस्सयावेएइ–बहुगं दव्वं दिन्नं, जइया जाहि तइया मारिज्जिहितित्ति, गेहाओ य नीसरणं केणवि उवाएण न देंति, तेण णायं, संचारियं सन्नायगाणं जहा अहं रत्तिं छाणपिंडए णईए छुभिस्सामि, ते लएज्जह, तेण गोलगा

१ इष्टं, कल्ये सुनक्षत्रे नेतास्वहे, एकेन हृत्वाऽङ्गाराः क्षिप्ताः, द्वितीयदिवसेऽङ्गारान् पश्यति, स धूर्त्तो भणति–अहो मन्दपुण्यावावां कथं तावदङ्गारा-जाताः, तेन ज्ञातं, हृदयं न दर्शयति, तस्य प्रतिमां करोति, द्वौ मर्कटौ लाति, तस्योपरि भक्तं ददाति, तौ क्षुधार्त्तौ तां प्रतिमां चटतः । अन्यदा भोजनं सज्जयित्वा दारकौ नीतौ, संगोपितौ न ददाति, भणति–मर्कटौ जातौ, आगतः, तत्र लेप्यस्थाने स्थापितः, मर्कटौ मुक्तौ, किलकिलायमानौ विलग्नौ, भणितः–एतौ तौ ते पुत्रौ, स भणति–कथं दारकौ मर्कटौ भवतः ?, स भणति–यथा दीनारा अङ्गारा जातास्तथा दारकावपि, एवं ज्ञाते दत्तो भागः, एतस्यौत्पत्तिकी बुद्धिः॥ शिक्षाशास्त्रं–धनुर्वेदः, तस्मिन्नेकः कुलपुत्रको धनुर्वेदकुशलः, स च क्वचिदपि हिण्डमान एकत्रेश्वरपुत्रान् शिक्षयति, द्रव्यं चोपार्जितं, तेषामपि शल्यायते बहु द्रव्यं दत्तं, यदा यास्यति तदा मारयिष्याम इति, गृहाच्च निःसरणं केनाप्युपायेन न ददति, तेन ज्ञातं, संदिष्टं संज्ञातकानां यथाऽहं रात्रौ छगण (गोमय) पिण्डान् नद्यां क्षेप्स्यामि तान् आदृदीध्वं, तेन गोलका *तिमिस्सिया चिंतंति प्र.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

[1]द्रव्येण समं वालिया, एसा अम्हं विहित्ति तिहिपवणीसु तेहिं दारएहिं समं णईए छूहइ, एवं निव्वाहेऊण नट्ठो, एयस्स उप्पत्तिया ॥ अत्थसत्थे–एगो पुत्तो दो सवत्तिणीओ, ववहारो न छिज्जइ, देवीए भणियं–मम पुत्तो जाहिति, सो एयस्स असोगपायवस्स हेट्ठा ठिओ ववहारं छिंदिहिति, ताव दोवि अविसेसेण खाह पिवहत्ति, जीसे ण पुत्तो सा चिंतेइ–एत्तिओ ताव कालो लद्धो, पच्छा न याणामो किं भविस्सइत्ति पडिस्सुयं, देवीए णायं–ण एसा पुत्तमायत्ति, देवीए उप्पत्तिया ॥ इच्छाए–एगो भत्तारो मओ, वड्ढिप्पउत्तं न उग्गमइ, तीए पतिमित्तो भणिओ–उग्गमेहि, सो भणइ–जइ मम विभागं देहि, तीए भणियं–जं इच्छसि तं मम भागं देज्जासि, तेण उग्गमेउं तीसे तुच्छयं देइ, सा नेच्छइ, ववहारो, आणावियं, दो पुंजा कया, कयरं तुमं इच्छसि ?, महंतं रासिं भणइ, भणिओ–एयं चेव देहित्ति, दवाविओ, कारणियाणमुप्पत्तिया ॥ सयसहस्से–एगो परिब्भट्ठओ, तस्स सयसहस्सो खोरो, सो भणइ–जो ममं अपुवं सुणावेइ तस्स एयं देमि, तत्थ सिद्धपुत्तेण सुयं,

---

[1] द्रव्येण समं वालिताः, एषोऽस्माकं विधिरिति तिथिपर्वसु तैर्दारकैः समं नद्यां क्षिपति, एवं निर्वाह्य नष्टः, एतस्यौत्पत्तिकी बुद्धिः ॥ अर्थशास्त्रे–एकः पुत्रः द्वे सपत्न्यौ, व्यवहारो न छिद्यते, देव्या भणितं–मम पुत्रो भविष्यति स एतस्याशोकपादपस्याधस्तात्स्थितो व्यवहारं छेत्स्यति, तावद्वे अप्यविशेषेण खादतं पिबतमिति, यस्या न पुत्रः सा चिन्तयति–एतावान् तावत् कालो लब्धः, पश्चान्न जाने किं भविष्यतीति प्रतिश्रुतं, देव्या ज्ञातम्–नैषा पुत्रमातेति, देव्या औत्पत्तिकी ॥ इच्छायां–एको भर्त्ता मृतः, वृद्धिप्रयुक्तं नागच्छति, तया पतिमित्रं भणितं–उद्ग्राहय, स भणति–यदि मह्यं विभागं ददासि, तया भणितं–यदिच्छसि तं मह्यं भागं दद्याः, तेनोद्ग्राह्य तस्मै तुच्छं दीयते, सा नेच्छति, व्यवहारः, आनायितं, द्वौ पुञ्जौ कृतौ, कतरं त्वमिच्छसि ?, महान्तं राशिं भणति, भणितः–एनमेव देहीति, दापितः, कारणिकानामौत्पत्तिकी ॥ शतसहस्रे–एकः परिभ्रष्टः, तस्य शतसाहस्रिकं खउरकं, स भणति–यो मह्यमपूर्वं श्रावयति तस्मै एतत् ददासि, तत्र सिद्धपुत्रेण श्रुतं,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

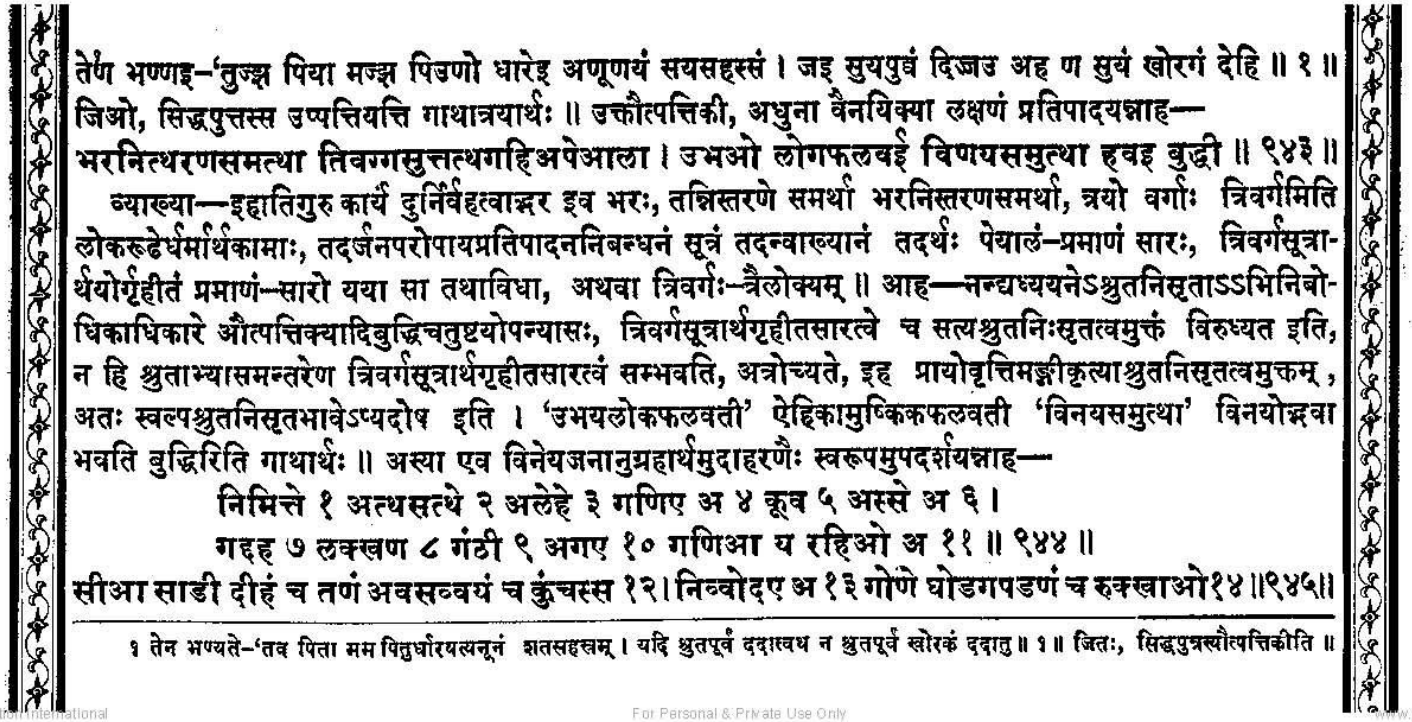

तेण भण्णइ–'तुज्झ पिया मज्झ पिउणो धारेइ अणूणयं सयसहस्सं । जइ सुयपुव्वं दिज्जउ अह ण सुयं खोरगं देहि ॥ १ ॥
जिओ, सिद्धपुत्तस्स उप्पत्तियत्ति गाथात्रयार्थः ॥ उक्तौत्पत्तिकी, अधुना वैनयिक्या लक्षणं प्रतिपादयन्नाह—
भरनित्थरणसमत्था तिवग्गसुत्तत्थगहिअपेआला । उभओ लोगफलवई विणयसमुत्था हवइ बुद्धी ॥ ९४३ ॥
व्याख्या—इहातिगुरु कार्यं दुर्निर्वहत्वाद्भर इव भरः, तन्निस्तरणे समर्था भरनिस्तरणसमर्था, त्रयो वर्गाः त्रिवर्गमिति लोकरूढेर्धर्मार्थकामाः, तदर्जनपरोपायप्रतिपादननिबन्धनं सूत्रं तदन्वाख्यानं तदर्थः पेयालं–प्रमाणं सारः, त्रिवर्गसूत्रार्थयोर्गृहीतं प्रमाणं–सारो यया सा तथाविधा, अथवा त्रिवर्गः–त्रैलोक्यम् ॥ आह—नन्ध्यध्ययनेऽश्रुतनिसृताऽऽभिनिबोधिकाधिकारे औत्पत्तिक्यादिबुद्धिचतुष्टयोपन्यासः, त्रिवर्गसूत्रार्थगृहीतसारत्वे च सत्यश्रुतनिःसृतत्वमुक्तं विरुध्यत इति, न हि श्रुताभ्यासमन्तरेण त्रिवर्गसूत्रार्थगृहीतसारत्वं सम्भवति, अत्रोच्यते, इह प्रायोवृत्तिमङ्गीकृत्याश्रुतनिसृतत्वमुक्तम्, अतः स्वल्पश्रुतनिसृतभावेऽप्यदोष इति । 'उभयलोकफलवती' ऐहिकामुष्मिकफलवती 'विनयसमुत्था' विनयोद्भवा भवति बुद्धिरिति गाथार्थः ॥ अस्या एव विनेयजनानुग्रहार्थमुदाहरणैः स्वरूपमुपदर्शयन्नाह—

निमित्ते १ अत्थसत्थे २ अलेहे ३ गणिए अ ४ कूव ५ अस्से अ ६ ।
गद्दह ७ लक्खण ८ गंठी ९ अगए १० गणिआ य रहिओ अ ११ ॥ ९४४ ॥
सीआ साडी दीहं च तणं अवसव्वयं च कुंचस्स १२। निव्वोदए अ १३ गोणे घोडगपडणं च रुक्खाओ१४ ॥९४५॥

१ तेन भण्यते–'तव पिता मम पितुर्धारयत्यनूनं शतसहस्रम् । यदि श्रुतपूर्वं ददात्वथ न श्रुतपूर्वं खोरकं ददातु ॥ १ ॥ जितः, सिद्धपुत्रस्यौत्पत्तिकीति ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	वैनयिकीबुद्धिः विषयक विविध-दृष्टांताः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

व्याख्या—गाथाद्वयार्थः कथानकेभ्य एवावसेयः, तानि चामूनि–तत्थ निमित्तेत्ति, एगस्स सिद्धपुत्तस्स दो सीसगा निमित्तं सिक्खिया, अन्नया तणकट्ठस्स वच्चंति, तेहिं हत्थिपाया दिट्ठा, एगो भणइ–हत्थिणियाए पाया, कहं ?, काइएण, सा य हत्थिणी काणा, कहं ?, एगपासेण तणाइं खाइयाइं, तेण काइएणेव णायं जहा इत्थी पुरिसो य विलग्गाणि, सा य गुव्विणित्ति, कहं ?, हत्थाणि थंभेत्ता उट्ठिया, दारगो से भविस्सइ, जेण दक्खिणो पाओ गरुओ, रत्तपोत्ता, जेण रत्ता दसिया रुक्खे लग्गा ॥ णईतीरे एगाए वुड्ढीए पुत्तो पविसियओ, तस्सागमणं पुच्छिया, तीसे य घडओ भिन्नो, तत्थेगो भणइ—'तज्जाएण य तज्जायं' सिलोगो मओत्ति परिणामेइ, बितिओ भणइ–जाहि वुड्ढे ! सो घरे आगओ, सा गया, दिट्ठो पुव्वागओ, जुवलगं रूवगे य गहाय आगया, सक्कारिओ, बितिओ आपुच्छइ–सब्भावं मम न कहेसि, तेण पुच्छिया, तेहिं जहाभूयं परिकहियं, एगो भणइ–विवत्ती मरणं, एगो भूमीओ उट्ठिओ सो भूमीए चेव मिलिओ, एवं सोवि दारओ,

१ तत्र निमित्तमिति–एकस्य सिद्धपुत्रस्य द्वौ शिष्यौ निमित्तं शिक्षितौ, अन्यदा तृणकाष्ठाय व्रजतः, ताभ्यां हस्तिपादाः दृष्टा, एको भणति–हस्तिन्याः पादाः, कथं ?, कायिक्या, सा च हस्तिनी काणा, कथं ?, एकपार्श्वेन तृणानि खादितानि, तेन कायिक्यैव ज्ञातं यथा स्त्री पुरुषश्च विलग्नौ, सा च गुर्विणीति, कथं ?, हस्तौ स्तम्भयित्वोत्थिता, दारकस्तस्या भविष्यति, येन दक्षिणः पादो गुरुः, रक्तपोता, येन रक्ता दशा वृक्षे लग्ना ॥ नदीतीरे एकस्या वृद्धायाः पुत्रः प्रोषितः, तस्यागमनं पृष्टौ, तस्याश्च घटो भिन्नः, तत्रैको भणति–तज्जातेन च तज्जातं (श्लोकः) मृत इति कथयति, द्वितीयो भणति–याहि वृद्धे ! स गृहे आगतः, सा गता, दृष्टः पूर्वागतः, युग्मं रूप्यकांश्च गृहीत्वाऽऽगता, सत्कारितः, द्वितीय आपृच्छति–सद्भावं मह्यं न कथयसि, तेन पृष्टौ, ताभ्यां यथाभूतं परिकथितं, एको भणति–व्यापत्तिर्मरणं, एको भूमेरुत्थितः स भूमावेव मिलितः, एवं सोऽपि दारकः, * कहेइ.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

[1]भणियं च–'तज्जाएण य तज्जायं'सिलोगो, गुरुणा भणियं–को मम दोसो ?, ण तुमं सम्मं परिणामेसि, एगस्स वेणइगी बुद्धी ॥ अत्थसत्थे–कप्पओ दहिकुंडगउच्छुकलावओ य, एयस्स वेणइगी ॥ लेहे जहा–अट्ठारसलिविजाणगो, एवं गणिएवि । अण्णे भणंति–कुमारा वट्टेहिं रमन्ता अक्खराणि सिक्खाविया गणियं च, एसाऽवेयस्स वेणइगी । कूवे–खायजाणएण भणियं जहा–एद्दूरे पाणियंति, तेहिं खयं, तं वोलीणं, तस्स कहियं, पासे आहणहत्ति भणिया, घोसगसद्देणं जलमुद्धाइयं, एयस्स वेणइगी ॥ आसो–आसवाणियगा बारवइं गया, सवे कुमारा थुल्ले वड्डे य गेण्हंति, वासुदेवेण दुब्बलओ लक्खणजुत्तो जो सो गहिओ, कज्जनिवाही अणगेआसावहो य जाओ, वासुदेवस्स वेणइगी ॥ गद्दभे–राया तरुणप्पिओ, सोओधाइओ, अडवीए तिसाए पीडिओ खंधारो, थेरं पुच्छइ, घोसावियं, एगेण पिइभत्तेणाणीओ, तेण कहियं–गद्दभाणं उस्सिंघणा, तस्स सिरापासणं, अन्ने भणंति–उस्सिंघणाए चेव जलासयगमणं, थेरस्स वेणइगी ॥ लक्खणे–पारसविसए

---

१ भणितं च–'तज्जातेन च तज्जातं' श्लोकः, गुरुणा भणितं–को मम दोषः ?, न त्वं सम्यक् परिणमयसि, एकस्य वैनयिकी बुद्धिः ॥ अर्थशास्त्रे–कल्पकः दधिभाजनमिक्षुकलापकश्च, एतस्य वैनयिकी ॥ लेखे यथाऽष्टादशलिपिविज्ञायकः, एवं गणितेऽपि, अन्ये भणन्ति–राजकुमारा वर्तुलै रममाणा अक्षराणि शिक्षिताः गणितं च, एषाऽप्येतस्य वैनयिकी ॥ कूपे–खातज्ञायकेन भणितं–यथेयद्दूरे पानीयमिति, तैः खातं, तद्यतिक्रान्तं, तस्य कथितं, पार्श्वे आखनतेति भणिताः, घोषकशब्देन जलमुद्धावितं, एतस्य वैनयिकी ॥ अश्वः–अश्ववणिजो द्वारिकां गताः, सर्वे कुमाराः स्थूलान् बृहतश्च गृह्णन्ति, वासुदेवेन दुर्बलो लक्षणयुक्तो यः स गृहीतः, कार्यनिर्वाही अनेकाश्वावहश्च जातः, वासुदेवस्य वैनयिकी ॥ गर्दभः–राजा तरुणप्रियः सोऽवधावितः, अटव्यां तृषा पीडितः स्कन्धावारः, स्थविरं पृच्छति, घोषितं, एकेन पितृभक्तेनानीतः, तेन कथितं–गर्दभाणामुद्घ्राणं, तस्य शिरादर्शनं, अन्ये भणन्ति–उद्घ्राणेनैव जलाशयगमनं, स्थविरस्य वैनयिकी ॥ लक्षणे–पारसविषये

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

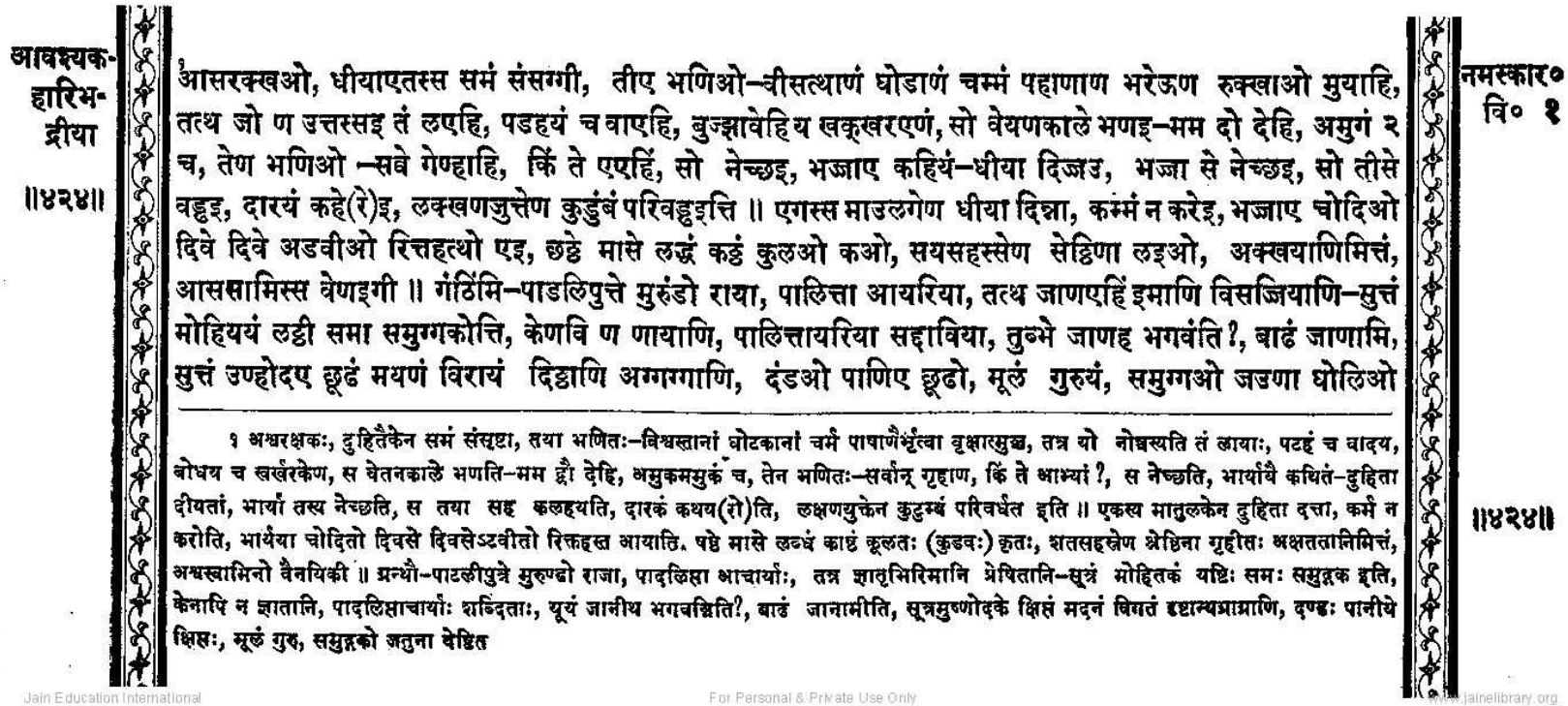

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥४२४॥

आसरक्खओ, धीयाएतस्स समं संसग्गी, तीए भणिओ–वीसत्थाणं घोडाणं चम्मं पहाणाए भरेऊण रुक्खाओ मुयाहि, तत्थ जो ण उत्तस्सइ तं लएहि, पडहयं च वाएहि, बुज्झावेहि य खक्खरएणं, सो वेयणकाले भणइ–मम दो देहि, अमुगं २ च, तेण भणिओ –सव्वे गेण्हाहि, किं ते एएहिं, सो नेच्छइ, भज्जाए कहियं–धीया दिज्जउ, भज्जा से नेच्छइ, सो तीसे वट्टइ, दारयं कहे(रे)इ, लक्खणजुत्तेण कुडुंबं परिवड्ढइत्ति ॥ एगस्स माउलगेण धीया दिन्ना, कम्मं न करेइ, भज्जाए चोदिओ दिवे दिवे अडवीओ रित्तहत्थो एइ, छट्ठे मासे लद्धं कट्ठं कुलओ कओ, सयसहस्सेण सेट्ठिणा लइओ, अक्खयाणिमित्तं, आससामिस्स वेणइगी ॥ गंठिमि–पाडलिपुत्ते मुरुंडो राया, पालित्ता आयरिया, तत्थ जाणएहिं इमाणि विसज्जियाणि–सुत्तं मोहिययं लट्ठी समा समुग्गकोत्ति, केणवि ण णायाणि, पालित्तायरिया सद्दाविया, तुब्भे जाणह भगवंति?, बाढं जाणामि, सुत्तं उण्होदए छूढं मयणं विरायं दिट्ठाणि अग्गग्गाणि, दंडओ पाणिए छूढो, मूलं गुरुयं, समुग्गओ जउणा घोलिओ

१ अश्वरक्षकः, दुहित्रैकेन समं संसृष्टा, तया भणितः–विश्वस्तानां घोटकानां चर्म पाषाणैर्भृत्वा वृक्षात्मुञ्च, तत्र यो नोद्विजति तं लायाः, पटहं च वादय, बोधय च खर्खरकेण, स वेतनकाले भणति–मम द्वौ देहि, अमुकमुकं च, तेन भणितः–सर्वान् गृहाण, किं तेऽाभ्यां?, स नेच्छति, भार्यायै कथितं–दुहिता दीयतां, भार्या तस्य नेच्छति, स तया सह कलहयति, दारकं कथय(रे)ति, लक्षणयुक्तेन कुटुम्बं परिवर्धत इति ॥ एकस्य मातुलकेन दुहिता दत्ता, कर्म न करोति, भार्यया चोदितो दिवसे दिवसेऽटवीतो रिक्तहस्त आयाति, षष्ठे मासे लब्धं काष्ठं कूलतः (कुडवः) कृतः, शतसहस्रेण श्रेष्ठिना गृहीतः अक्षततानिमित्तं, अश्वस्वामिनो वैनयिकी ॥ ग्रन्थौ–पाटलीपुत्रे मुरुण्डो राजा, पादलिप्ता आचार्याः, तत्र ज्ञातृभिरिमानि प्रेषितानि–सूत्रं मोहितकं यष्टिः समः समुद्गक इति, केनापि न ज्ञातानि, पादलिप्ताचार्याः शब्दिताः, यूयं जानीथ भगवन्निति?, बाढं जानामीति, सूत्रमुष्णोदके क्षिप्तं मदनं विगतं दृष्टान्यग्राग्राणि, दण्डः पानीये क्षिप्तः, मूलं गुरु, समुद्गको जतुना लेपितः

नमस्कार० वि० १

॥४२४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

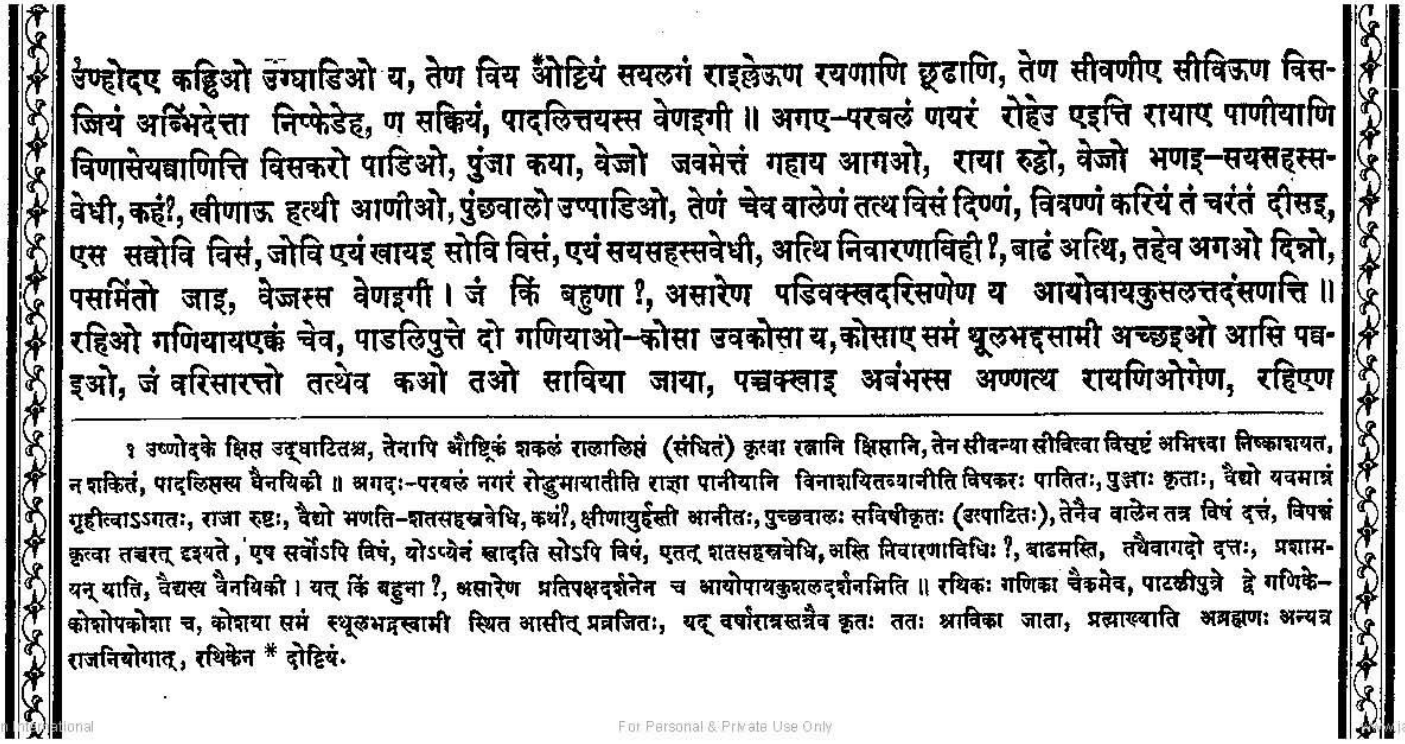

उण्होदए कड्ढिओ उग्घाडिओ य, तेण विय ओट्टियं सयलगं राइल्लेऊण रयणाणि छूढाणि, तेण सीवणीए सीविऊण विस-ज्जियं अब्भिदेत्ता निप्फेडेह, ण सक्कियं, पादलित्तयस्स वेणइगी ॥ अगए–परबलं णयरं रोहेउ एइत्ति रायाए पाणीयाणि विणासेयव्वाणित्ति विसकरो पाडिओ, पुंजा कया, वेज्जो जवमेत्तं गहाय आगओ, राया रुट्ठो, वेज्जो भणइ–सयसहस्स-वेधी, कहं?, खीणाऊ हत्थी आणीओ, पुंछवालो उप्पाडिओ, तेणं चेव वालेणं तत्थ विसं दिण्णं, विवण्णं करियं तं चरंतं दीसइ, एस सव्वोवि विसं, जोवि एयं खायइ सोवि विसं, एयं सयसहस्सवेधी, अत्थि निवारणाविही?, बाढं अत्थि, तहेव अगओ दिन्नो, पसमिंतो जाइ, वेज्जस्स वेणइगी। जं किं बहुणा?, असारेण पडिवक्खदरिसणेण य आयोवायकुसलत्तदंसणत्ति ॥ रहिओ गणियायएकं चेव, पाडलिपुत्ते दो गणियाओ–कोसा उवकोसा य, कोसाए समं थूलभद्दसामी अच्छइओ आसि पव-इओ, जं वरिसारत्तो तत्थेव कओ तओ साविया जाया, पच्चक्खाइ अबंभस्स अण्णत्थ रायणिओगेण, रहिएण

---

१ उष्णोदके क्षिप्त उद्घाटितश्च, तेनापि औष्ट्रिकं शकलं राल्लालिप्तं (संधितं) कृत्वा रत्नानि क्षिप्तानि, तेन सीवन्या सीवित्वा विसृष्टं अभिरत्वा निष्काशयत, न शकितं, पादलिप्तस्य वैनयिकी ॥ अगदः–परबलं नगरं रोद्धुमायातीति राज्ञा पानीयानि विनाशयितव्यानीति विषकरः पातितः, पुञ्जाः कृताः, वैद्यो यवमात्रं गृहीत्वाऽऽगतः, राजा रुष्टः, वैद्यो भणति–शतसहस्रवेधि, कथं?, क्षीणायुर्हस्ती आनीतः, पुच्छवालः सविषीकृतः (उत्पाटितः), तेनैव वालेन तत्र विषं दत्तं, विपन्नं कृत्वा तच्चरत् दृश्यते, एष सर्वोऽपि विषं, योऽप्येनं खादति सोऽपि विषं, एतत् शतसहस्रवेधि, अस्ति निवारणाविधिः?, बाढमस्ति, तथैवागदो दत्तः, प्रशाम-यन् याति, वैद्यस्य वैनयिकी। यत् किं बहुना?, असारेण प्रतिपक्षदर्शनेन च आयोपायकुशलदर्शनमिति ॥ रथिकः गणिका चैकमेव, पाटलीपुत्रे द्वे गणिके–कोशोपकोशा च, कोशया समं स्थूलभद्रस्वामी स्थित आसीत् प्रव्रजितः, यद् वर्षारात्रस्तत्रैव कृतः ततः श्राविका जाता, प्रव्राज्यति अब्रह्मणः अन्यत्र राजनियोगात्, रथिकेन * दोहिअं.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

आराहिओ, सा दिण्णा, थूलभद्दसामिणो अभिक्खणं २ गुणग्गहणं करेइ, न तहा तं उवयरइ, सो तीए अप्पणो विन्नाणं दरिसेउकामो असोगवणियाए णेइ, भूमीगएण अंबपिंडी तोडिया, कंडपोंखे अण्णोण्णं लायंतेण हत्थब्भासं आणेत्ता अद्ध-चंदेण छिन्ना गहिया य, तहावि ण तूसइ, भणइ–किं सिक्खियस्स दुक्करं?, सा भणइ–पिच्छ ममंति सिद्धत्थयरासिंमि णच्चिया सूईण अग्गयंमि य कणियारकुसुमपोइयासु य, सो आउट्टो, सा भणइ–'न दुक्करं छोडिय अंबपिंडी, ण दुक्करं सिक्खिउ नच्चियाए। तं दुक्करं तं च महाणुभावं, जं सो मुणी पमदवणंमि वुच्छो ॥ १ ॥' तओ तस्स संतिगो वुत्तंतो सिट्ठो, पच्छा उवसंतो रहिओ, दोण्हवि वेणइगी ॥ सीया साडी दीहं च तणं कोंचयस्स अवसवयं एकं चेव, रायपुत्ता आयरिएण सिक्खाविया, दव्वलोभी य सो रायाणओ तं मारेउमिच्छइ, ते दारगा चिंतेंति–एएण अम्हं विज्जा दिण्णा, उवाएण नित्थारेमो, जाहे सो जेमओ एइ ताहे ण्हाणसाडियं मग्गइ, ते सुक्कियं भणंति–अहो सीया साडी, बारसंमुहं तणं

१ राजाऽऽराद्धः, सा दत्ता, स्थूलभद्रस्वामिनोऽभीक्ष्णमभीक्ष्णं गुणग्रहणं करोति, न तथा तमुपचरति, स तस्यै आत्मनो विज्ञानं दर्शयितुकामोऽशोकवनिकायां नयति, भूमिगतेनाम्रपिण्डी त्रोटिता, शरपुङ्खान् अन्योऽन्यं लाता हस्ताभ्यासमानीयार्धचन्द्रेण छिन्ना गृहीता च, तथापि न तुष्यति, भणति–किं शिक्षितस्य दुष्करं?, सा भणति–पश्य ममेति सिद्धार्थकराशौ नर्त्तिता सूचीनामग्रे च कर्णिकारकुसुमप्रोतानां च, स आवर्जितः, सा भणति–न दुष्करमाम्रपिण्डिकात्रोटनं, न दुष्करं शिक्षितस्य नर्तने (शिक्षितायां नृत्तौ)। तद्दुष्करं तच्च महानुभावं, यत्स मुनिः प्रमदावने उषितः ॥ १ ॥ ततस्तत्सत्को वृत्तान्तः शिष्टः, पश्चादुपशान्तो रथिकः, द्वयोरपि वैनयिकी ॥ शीता शाटी दीर्घं च तृणं कौञ्चकस्यापसव्यमेकमेव, राजपुत्रा आचार्येण शिक्षिताः, द्रव्यलोभी च स राजा तं मारयितुमिच्छति, ते दारकाश्चिन्तयन्ति–एतेनास्माकं विद्या दत्ता, उपायेन निस्तारयामः, यदा स जेमितुमायाति तदा स्नानशाटीं मार्गयति, ते शुष्कां भणन्ति–अहो शीता शाटी, द्वारसंमुखं तृणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

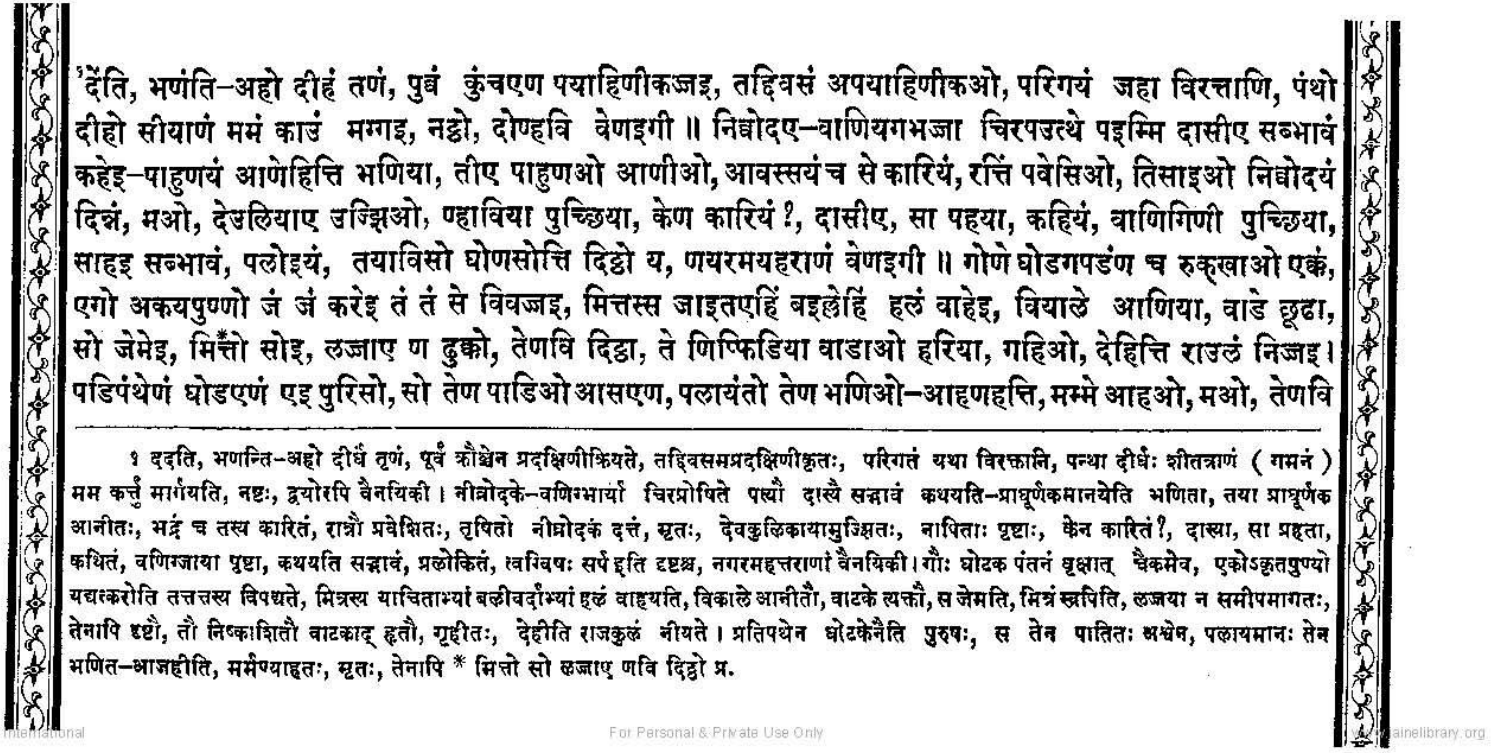

'देंति, भणंति–अहो दीहं तणं, पुवं कुंचएण पयाहिणीकज्जइ, तद्दिवसं अपयाहिणीकओ, परिगयं जहा विरत्ताणि, पंथो दीहो सीयाणं ममं काउं मग्गइ, नट्ठो, दोण्हवि वेणइगी ॥ निव्वोदए–वाणियगभज्जा चिरपउत्थे पइम्मि दासीए सब्भावं कहेइ–पाहुणयं आणेहित्ति भणिया, तीए पाहुणओ आणीओ, आवस्सयं च से कारियं, रत्तिं पवेसिओ, तिसाइओ निव्वोदयं दिन्नं, मओ, देउलियाए उज्झिओ, पहाविया पुच्छिया, केण कारियं?, दासीए, सा पहया, कहियं, वाणिगिणी पुच्छिया, साहइ सब्भावं, पलोइयं, तयाविसो घोणसोत्ति दिट्ठो य, णयरमयहराणं वेणइगी ॥ गोणे घोडगपडंण च रुक्खाओ एक्कं, एगो अकयपुण्णो जं जं करेइ तं तं से विवज्जइ, मित्तस्स जाइतएहिं बइल्लेहिं हलं वाहेइ, वियाले आणिया, वाडे छूढा, सो जेमेइ, मित्तो सोइ, लज्जाए ण ढुक्को, तेणवि दिट्ठा, ते णिप्फिडिया वाडाओ हरिया, गहिओ, देहित्ति राउलं निज्जइ। पडिपंथेणं घोडएणं एइ पुरिसो, सो तेण पाडिओ आसएण, पलायंतो तेण भणिओ–आहणहत्ति, मम्मे आहओ, मओ, तेणवि

१ ददति, भणन्ति–अहो दीर्घं तृणं, पूर्वं क्रौञ्चेन प्रदक्षिणीक्रियते, तद्दिवसमप्रदक्षिणीकृतः, परिगतं यथा विरक्तानि, पन्था दीर्घः शीतत्राणं (गमनं) मम कर्त्तुं मार्गयति, नष्टः, द्वयोरपि वैनयिकी। नीव्रोदके–वणिग्भार्या चिरप्रोषिते पत्यौ दास्यै सद्भावं कथयति–प्राघूर्णकमानयेति भणिता, तया प्राघूर्णक आनीतः, भद्रं च तस्य कारितं, रात्रौ प्रवेशितः, तृषितो नीव्रोदकं दत्तं, मृतः, देवकुलिकायामुज्झितः, नापिताः पृष्टाः, केन कारितं?, दास्या, सा प्रहृता, कथितं, वणिग्जाया पृष्टा, कथयति सद्भावं, प्रलोकितं, त्वग्विषः सर्प इति दृष्टश्च, नगरमहत्तराणां वैनयिकी। गौः घोटक पंतनं वृक्षात् चैकमेव, एकोऽकृतपुण्यो यद्यत्करोति तत्तत्तस्य विपद्यते, मित्रस्य याचिताभ्यां बलीवर्दाभ्यां हलं वाहयति, विकाले आनीतौ, वाटके त्यक्तौ, स जेमति, मित्रं स्वपिति, लज्जया न समीपमागतः, तेनापि दृष्टौ, तौ निष्काशितौ वाटकाद् हृतौ, गृहीतः, देहीति राजकुलं नीयते। प्रतिपथेन घोटकेनैति पुरुषः, स तेन पातितः अश्वेन, पलायमानः तेन भणित–आजहीति, मर्मण्याहतः, मृतः, तेनापि * मित्तो सो लज्जाए णवि दिट्ठो प्र.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

लइओ, वियाले णयरिबाहिरियाए वुत्था, तत्थ लोमंथिया सुत्ता, इमेवि तहिं चेव, सो चिंतेइ–जावज्जीवबंधणो कीरिस्सामि, वरं मे अप्पा उब्बंधो, सुत्तेसु दंडिखंडेण तंमि वडरुक्खे अप्पाणं उक्कलंबेइ, सा दुब्बला, तुट्टा, पडिएण लोमंथियमयहरओ मारिओ, तेहिवि गहिओ, करणं णीओ, तीहिवि कहियं जहावुत्तं, सो पुच्छिओ भणइ–आमं, कुमारामच्चो भणइ–एसो बलदे देउ तुब्भं पुण अक्खीणि ओक्खमंतु, एसो आसं देउ, तुज्झ जीहा उप्पाडिज्जइ, एसो हेट्ठा ठाउ तुब्भं एगो उवज्झाओ उक्कलंबिज्जउ, णिप्पडिभोत्ति काउं मंतिणा मुक्को, मंतिस्स वेणइगित्ति गाथाद्वयार्थः ॥ उक्ता वैनयिकी, साम्प्रतं कर्मजाया बुद्धेर्लक्षणं प्रतिपादयन्नाह—

उवओगदिट्ठसारा कम्मपसंगपरिघोलणविसाला । साहुक्कारफलवई कम्मसमुत्था हवइ बुद्धी ॥ ९४६ ॥

व्याख्या—उपयोजनमुपयोगः–विवक्षिते कर्मणि मनसोऽभिनिवेशः सारः–तस्यैव कर्मणः परमार्थः उपयोगेन दृष्टः सारो ययेति समासः अभिनिवेशोपलब्धकर्मपरमार्थेत्यर्थः, कर्मणि प्रसङ्गः–अभ्यासः परिघोलनं–विचारः कर्मप्रसङ्गपरिघोलनाभ्यां विशाला कर्मप्रसङ्गपरिघोलनविशाला अभ्यासविचारविस्तीर्णेति भावार्थः, साधुकृतं–सुष्ठुकृतमिति विद्वद्भ्यः प्रशंसा

---

१ लगितः (सोऽपि लग्नः), विकाले नगरीबाहिरिकायामुषिताः, तत्र मल्लाः सुप्ताः, इमेऽपि तत्रैव, स चिन्तयति–यावज्जीवबन्धनः कारयिष्ये, वरं ममात्मोद्बन्धः, सुप्तेषु दण्डीखण्डेन तस्मिन्वटवृक्षे आत्मानमवलम्बयति, सा दुर्बला, त्रुटिता, पतितेन मल्लमहत्तरको मारितः, तैरपि गृहीतः, करणं नीतः, त्रिभिरपि कथितं यथावृत्तं, स पृष्टो भणति–ओम्, कुमारामात्यो भणति–एष बलीवर्दौ ददाति त्वं पुनरक्षिणी निष्काशय, पृष्ठेऽश्वं ददातु, तव जिह्वोत्पाट्यते, एषोऽधस्तात्तिष्ठतु युष्माकमेक उपाध्यायोऽवलम्बयतु, निष्प्रतिभ इतिकृत्वा मन्त्रिणा मोचितः, मन्त्रिणो वैनयिकी ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

साधुकारस्तेन फलवतीति समासः, साधुकारेण वा शेषमपि फलं यस्याः सा तथा, 'कर्मसमुत्था' कर्मोद्भवा भवति बुद्धिरिति गाथार्थः ॥ अस्या अपि विनेयवर्गानुकम्पयोदाहरणैः स्वरूपमुपदर्शयन्नाह—

हेरन्निए १ करिसए २ कोलिअ ३ डोवे अ ४ मुत्ति ५ घय ६ पवए ७ ।
तुन्नाग ८ वड्ढई ९ पूइए अ १० घड ११ चित्तकारे अ १२ ॥ ९४७ ॥

व्याख्या—हेरण्णिओ अभिक्खजोएण अंधकारेवि रूवयं जाणइ हत्थामोसेणं, करिसओ अभिक्खजोएण जाणइ फलनिप्फत्तिं, तत्थ उदाहरणं–एगेण चोरेण खत्तं पउमाकारं खयं, सो जणवायं निसामेइ, करिसओ भणइ–किं सिक्खियस्स दुक्करं ?, चोरेण सुयं, पुच्छिओ गंतूण, छुरियं अंच्छिऊँण मारेमि, तेण पडयं पत्थरेत्ता वीहियाण मुट्ठी भरित्ता किं परंमुहा पडंतु उरंमुहा पासेल्लिया (वा)?, तहेव कयं, तुट्ठो । कोलिओ मुट्ठिणा गहाय तंतू जाणइ–एत्तिएहिं वा कंडएहिं वुज्झइत्ति । डोए वड्ढइ जाणइ एत्तियं माई । मोत्तियं †आइण्णंतो आगासे उक्खिवित्ता तहा णिक्खिवइ जहा ‡कोलवाले पडइ

१ सुवर्णकारोऽभीक्ष्णयोगेनान्धकारेऽपि रूप्यकं जानाति हस्तामर्शेन, कर्षकोऽभीक्ष्णयोगेन जानाति फलनिष्पत्तिं, तत्रोदाहरणं–एकेन चौरेण खात्रं पद्माकारं खातं, स जनवादं निशामयति, कर्षको भणति–किं शिक्षितस्य दुष्करं ?, चौरेण श्रुतं, पृष्टो गत्वा, क्षुरिकामाकृष्य मारयामि, तेन पटं प्रस्तीर्य व्रीहीणां मुष्टिं भृत्वा किं पराङ्मुखाः पतन्तु अर्वाङ्मुखाः पार्श्वगा (वा ?), तथैव कृतं, तुष्टः । कोलिको मुष्टिना गृहीत्वा तन्तून् जानाति–इयद्भिर्वो कण्डकैरुह्यते इति । डोवे (कुण्डिकायां) वर्धकिर्जानातीयन्मिति । मौक्तिकानि प्रोतयन् आकाशे उत्क्षिप्य तथा निक्षिपति यथा कोलवाले (दवरके) पतति ।
* अंच्छिदिऊण † आणंतो ‡ कोलवाडे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	कर्मजाबुद्धिः विषयक विविध-दृष्टांताः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

घये घयविक्किणओ सगडे संतओ जइ रुच्चइ कुंडियानालए छुभइ। पँवयो आगासे ठियाइं को(क)रणाणि करेइ। तुण्णाओ पुव्विं †थुल्लाणि पच्छा जहा ण णज्जइ सूइए तइयं गेण्हइ जहा समप्पइ जहा ‡सामिसंतगं तं दूसं धियारेण कारियं। वड्ढई– अमवेऊण देवउलरहाणं पमाणं जाणइ। घडकारो पमाणेण मट्टियं गेण्हइ, भाणस्सवि पमाणं अमिणित्ता करेइ। पूविओ-ऽवि पुणो पलप्पमाणममवेऊण करेइ। चित्तकरोवि अमवेऊणवि पमाणजुत्तं करेइ, ततियं वा वन्नयं करेइ जत्तिएणं समप्पइ। सवेसिं कम्मजत्ति गाथार्थः॥ उक्ता कर्मजा, साम्प्रतं पारिणामिक्या लक्षणं प्रतिपादयन्नाह—

अणुमाणहेउदिट्ठंतसाहिया वयविवागपरिणामा। हिअनिस्सेअसफलवई बुद्धी परिणामिआ नाम ॥ ९४८ ॥

व्याख्या—अनुमानहेतुदृष्टान्तैः साध्यमर्थं साधयतीति अनुमानहेतुदृष्टान्तसाधिका, इह लिङ्गात् ज्ञानमनुमानं स्वार्थ-मित्यर्थः, तत्प्रतिपादकं वचो हेतुः परार्थमित्यर्थः, अथवा ज्ञापकमनुमानं कारको हेतुः, दृष्टमर्थमन्तं नयतीति दृष्टा-न्तः। आह–अनुमानग्रहणादेव दृष्टान्तस्य गतत्वादलमुपन्यासेन, न, अनुमानस्य तत्त्वत एकलक्षणत्वात्, उक्तं च— "अन्यथाऽनुपपन्नत्वं, यत्र तत्र त्रयेण किम्?। नान्यथाऽनुपपन्नत्वं, यत्र तत्र त्रयेण किम्?॥ १॥" इत्यादि। साध्यो-

१ घृते घृतविक्रायकः शकटे सन् यदि रोचते कुण्डिकानालके क्षिपति। प्लवक आकाशे स्थितानि (तः)करणानि करोति। तन्तुवायः पूर्वं स्थूलान् पश्चाद्यथा न ज्ञा-यते सूच्यां तावद्गृह्णाति यथा (यावता) समाप्यते यथा स्वामिसत्कं तद्दूष्यं अधिकारेण (तद्दूष्यसन्धिकारेण) कारितं। वर्धकिः अमापयित्वा देवकुलरथानां प्रमाणं जानाति। घटकारः प्रमाणेन मृत्तिकां गृह्णाति, भाजनस्यापि प्रमाणममापयित्वा करोति। आपूपिकोऽपि पुनः पलप्रमाणममापयित्वा करोति। चित्रकारोऽपि अमापयित्वाऽपि प्रमाणयुक्तं करोति, तावन्तं वा वर्णकं करोति यावता समाप्यते। सर्वेषां कर्मजेति * घरे पवओ † चूल्लाणि ‡ सामिसंगतं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

पमाभूतस्तु दृष्टान्तः, उक्तं च–"यतः साध्यस्योपमाभूतः, स दृष्टान्त इति कथ्यते" कालकृतो देहावस्थाविशेषो वय इत्युच्यते, तद्विपाके परिणामः–पुष्टता यस्याः सा तथाविधा, हितम्–अभ्युदयस्तत्कारणं वा, निःश्रेयसं–मोक्षस्तन्निबन्धनं वा हितनिःश्रेयसाभ्यां फलवती हितनिःश्रेयसफलवती बुद्धिः पारिणामिकी नामेति गाथार्थः ॥ अस्या अपि शिष्यगणहितायोदाहरणैः स्वरूपं दर्शयन्नाह—

अभए १ सिट्ठि २ कुमारे ३ देवी ४ उदिओदए हवइ राया ५ ।
साहू अ नंदिसेणे ६ धणदत्ते ७ सावग ८ अमच्चे ९ ॥ ९४९ ॥
खवगे १० अमच्चपुत्ते ११ चाणक्के १२ चेव थूलभद्दे अ १३ ।
नासिक्कसुंदरी नंदे १४ वइरे १५ परिणामिआ बुद्धी ॥ ९५० ॥
चलणाहय १६ आमंडे १७ मणी अ १८ सप्पे अ १९ खग्गि २० थूभि २१ दे २२ ।
परिणामिअबुद्धीए एवमाई उदाहरणा ॥ ९५१ ॥

व्याख्या—आसामर्थः कथानकेभ्य एवावसेयः, तानि चामूनि–[१]अभयस्स कहं परिणामिया बुद्धी ?, जया पज्जोओ रायगिहं †ओरोहति णयरं, पच्छा तेण पुव्वं निक्खित्ता खंधावारनिवेसजाणएणं, कहिए णट्ठो, एसा । अहवा जाहे

१ अभयस्य कथं पारिणामिकी बुद्धिः?, यदा प्रद्योतो राजगृहमवरुध्यते नगरं, पश्चात्तेन पूर्वं निक्षिप्ताः (दीनाराः) स्कन्धावारज्ञायकेन कथिते नष्टः, एषा । अथवा यदा * यः साध्य † ओरोहतियं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पारिणामिकीबुद्धिः विषयक विविध-दृष्टांता:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

गणिकया छलेन नीतो बद्धो यावत्तोपितः चत्वारो वराः, चिन्तितं चानेन–मोचयामि आत्मानं, वरा मार्गिताः–अग्नौ प्रविशामीति, मुक्तो भणति–अहं छलेनानीतोऽहं त्वां दिवसे प्रद्योतो ह्रियते इति क्रन्दन्तं नेष्यामि, गतश्च राजगृहं, दास उन्मत्तो, वणिग्दारिकाः, गृहीताः, रटन् हृतः, एवमादिका बह्व्योऽभयस्य पारिणामिक्यो बुद्धयः ॥ श्रेष्ठीति–काष्ठो नाम श्रेष्ठी एकत्र नगरे वसति, तस्य वज्रा नाम भार्या, तस्य नैत्यिको देवशर्मा नाम ब्राह्मणः, श्रेष्ठी दिग्यात्रायै गतः, भार्या तस्य तेन समं संप्रलग्ना, तस्य च गृहे त्रयः पक्षिणः–शुकश्च मदनशलाका कुर्कुटकश्चेति, स तान् उपनिक्षिप्य गतः, सोऽपि धिग्जातीयो रात्रावायाति, मदनशलाका भणति–कस्मात्त्वं बिभेषि?, शुको वारयति, योऽम्बाया दयितोऽस्माकमपि (स) तातो भवति, सा मदनाऽनध्यासिनी धिग्जातीयं परिवासयति (आक्रोशति), मारिता तया, शुको न मारितः । अन्यदा साधू भिक्षार्थं तद् गृहमतिगतौ, कुर्कुटकं प्रेक्ष्यैकः साधुर्दिगालोकं कृत्वा भणति–य एतस्य शीर्षं

॥४२८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

खाइ सो राया होइत्ति, तं किहवि तेणं धिज्जाइएणं अंतरिएण सुयं, तं भणइ–मारेहि खामि, सा भणइ–अन्नं आणिज्जइ, मा पुत्तभंडं संवट्टियं, निब्बंधे कए मारिओ जाव पहाउं गओ, ताव तीसे पुत्तो लेहसालाओ आगओ, तं च सिद्धं तम्मंसं, सो रोवइ, सीसं दिण्णं, सो आगओ, भाणए छूढं, सीसं मग्गइ, भणइ–चेडस्स दिण्णं, सो रुट्ठो, एयस्स कज्जे मए मारा-विओ, जइ परं एयस्स सीसं खाएज्जा तो राया होज्ज, कयं णिब्बंधे ववसिया, दासीय सुयं, तओ चेव दारयं गहाय पलाया, अण्णं णयरं गयाणि, तत्थ अपुत्तो राया मओ, आसेण परिक्खिओ, सो राया जाओ। इओ य कट्ठो आगओ, णियघरं सडियपडियं पासइ, सा पुच्छिया, ण कहेइ, सुयएणं पंजरमुक्केण कहियं बंभणाइसंबन्धो सो तहेव, अलं संसारववहारेणं, अहं एतीसे कएण किलेसमणुहवामि एसावि एवंविहत्ति पव्वइओ, इयराणि तं चेव णयरं गयाणि जत्थ सो दारओ राया जाओ, साहूवि विहरंतो तत्थेव गओ, तीए पच्चभिन्नाओ, भिक्खाए समं सुवण्णं दिण्णं, कूवियं,

---

१ खादति स राजा भवतीति, तत्कथमपि तेन धिग्जातीयेनान्तरितेन श्रुतं, तां भणति–मारय खादामि, सा भणति–अन्य आनीयते, मा पुत्रभाण्डं संवर्त्तयतु, निर्बन्धे कृते मारितः यावत् स्नातुं गतः, तावत्तस्याः पुत्रो लेखशालाया आगतः, तच्च सिद्धं तन्मांसं, स रोदिति, शीर्षं दत्तं, स आगतः, भाजने क्षिप्तं, शीर्षं मार्गयति, भणति–चेटकाय दत्तं, स रुष्टः, एतत्स्वार्थाय मया मारितः, यदि परमेतस्य शीर्षं खादेयं तदा राजा भवेयं, कृतं (मनसि) निर्बन्धे व्यवसिता (कर्तुं), दास्या श्रुतं, तत एव दारकं गृहीत्वा पलायिता, अन्यन्नगरं गतौ, तत्रापुत्रो राजा मृतः, अश्वेन परीक्षितः (परिषिक्तः), स राजा जातः। इतश्च काष्ठ आगतः, निजकं गृहं शटितपतितं पश्यति, सा दृष्टा, न कथयति, शुकेन पञ्जरमुक्तेन व्याहृतः ब्राह्मणादिसंबन्धः स तथैवालं संसारव्यवहारेण, अहमेतस्याः कृते क्लेशमनुभवामि एषा त्वेवंविधेति प्रव्रजितः, इतरौ अपि तदेव नगरं गतौ यत्र स दारको राजा जातः, साधुरपि विहरन् तत्रैव गतः, तया प्रत्यभिज्ञातः, भिक्षया समं स्वर्णं दत्तं, कूजितं,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

गहिओ, रायाए मूलं णीओ, धावीए णाओ, ताणि निविसयाणि आणत्ताणि, पिया भोगेहिं निमंतिओ, नेच्छइ, राया सड्ढो कओ, वरिसारत्ते पुण्णे वयंतस्स अकिरियाणिमित्तं धिज्जाइएहिं दुवक्खरियाए उवट्ठविआ, परिभट्ठियारूवं कयं, सा गुविणीया अणुव्वयइ, तीए गहिओ, मा पवयणस्स उड्डाहो होउत्ति भणइ–जइ मए तो जोणीए णीउ अह ण मए ता पोट्टं भिंदित्ता णीउ, एवं भणिए भिन्नं पोट्टं, मया, वन्नो य जाओ, सेट्ठिस्स पारिणामिगी इयं, जीए वा पव्वइओत्ति ॥ कुमारो–खुड्डगकुमारो, सो जहा जोगसंगहेहिं, तस्सवि परिणामिगी । देवी–पुप्फभद्दे णयरे पुप्फसेणो राया पुप्फवई देवी, तीसे दो पुत्तभंडाणि–पुप्फचूलो पुप्फचूला य, ताणि अणुरत्ताणि भोगे भुंजंति, देवी पव्वइया, देवलोगे देवो उववण्णो, सो चिंतेइ–जइ एयाणि एवं मरंति तो नरयतिरिएसु उववज्जिहिंति सुविणए सो तीसे नेरइए दरिसेइ, सा भीया पुच्छइ पासंडिणो, ते न याणंति, अन्नियपुत्ता तत्थ आयरिया, ते सद्दाविया, ताहे सुत्तं कड्ढंति, सा भणइ–किं तुम्हेहिवि सुविणओ दिट्ठो?, सो

---

१ गृहीतः, राज्ञो मूलं नीतः, धात्र्या ज्ञातः, तौ निर्विषयावाज्ञप्तौ, पिता भोगैर्निमन्त्रितः, नेच्छति, राजा श्राद्धः कृतः, वर्षारात्रे पूर्णे व्रजतोऽक्रिया-(उवर्ण) निमित्तं धिग्जातीयैर्द्व्यक्षरिका उपस्थापिता, परिभ्रष्टाया रूपं कृतं, सा गुर्विणी अनुव्रजति, तया गृहीतः, मा प्रवचनस्योड्डाहो भूदिति भणति–यदि मया तदा योन्या निर्यातु अथ न मया तदोदरं भित्त्वा निर्गच्छतु, एवं भणिते भिन्नमुदरं, मृता, वर्णश्च जातः, श्रेष्ठिनः पारिणामिकीयं, यया वा प्रव्रजित इति । कुमारः–क्षुल्लककुमारः, स यथा योगसंग्रहेषु, तस्यापि पारिणामिकी । देवी–पुष्पभद्रे नगरे पुष्पसेनो राजा पुष्पवती देवी, तस्या द्वे पुत्रभाण्डे–पुष्पचूलः पुष्पचूला च, तौ अनुरक्तौ भोगान् भुञ्जाते, देवी प्रव्रजिता, देवलोके देव उत्पन्नः, स चिन्तयति–यदि एतावेवं म्रियेयातां तदा नरकतिर्यक्षु उत्पद्येयातामिति स्वप्ने स तस्यै नारकान् दर्शयति, सा भीता पृच्छति–पाषण्डिनः, ते न जानन्ति, आर्णिकापुत्रास्तत्राचार्याः, ते शङ्किताः, तदा सूत्रं कथयन्ति, सा भणति–किं युष्माभिरपि स्वप्नो दृष्टः, स

॥४२९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

भणइ–सुत्ते अम्ह एरिसं दिट्ठं, पुणोऽवि देवलोए दरिसेइ, तेऽवि से अन्नियापुत्तेहिं कहिया, पव्वइया, देवस्स पारिणामिया बुद्धी ॥ उदिओदए–पुरिमयाले णयरे ओदिओदओ राया सिरिकंता देवी, सावगाणि दोण्णिवि, परिवाइया पराजिया दासीहिं मुहमक्कडियाहिं वेलविया निछूढा, पओसमावण्णा, वाणारसीए धम्मरुई राया, तत्थ गया, फलयपट्टियाए सिरिकंताए रूवं लिहिऊण दाएइ धम्मरुइस्स रण्णो, सो अज्झोववन्नो, दूयं विसज्जेइ, पडिहओ अवमाणिओ निच्छूढो, ताहे सव्वबलेणागओ, णयरं रोहेइ, उदिओदओ चिंतेइ–किं एवइएण जणक्खएण कएण ?, उववासं करेइ, वेसमणेण देवेण सणयरं साहरिओ । उदिओदयस्स पारिणामिया बुद्धी ॥ साहू य नंदिसेणोत्ति, सेणियपुत्तो नंदिसेणो, सीस्सो तस्स ओहाणुप्पेही, तस्स चिंता(जाया)–भगवं जइ रायगिहं जाएज्ज तो देवीओ अन्ने य पिच्छिऊण साइसए जइ थिरो होज्जत्ति, भट्टारओ य गओ, सेणीओ उण णीति संतेपुरो, अन्ने य कुमारा सअंतेउरा, णंदिसेणस्स अंतेउरं सेतंबरवसणं पउमिणिमज्झे हंसीओ वा

१ भणति–सूत्रेऽस्माकमीदृशं दृष्टं, पुनरपि देवलोकान् दर्शयति, तेऽप्यर्णिकापुत्रैः तस्मै कथिताः, प्रव्रजिता, देवस्य पारिणामिकी बुद्धिः ॥ उदितोदयः–पुरिमताले नगरे उदितोदयो राजा श्रीकान्ता देवी, द्वे अपि श्रावकौ, परिव्राजिका पराजिता दासीभिर्मुखमर्कटिकाभिर्विडम्बिता निष्काशिता, प्रद्वेषमापन्ना, वाराणस्यां धर्मरुची राजा, तत्र गता, फलकपट्टिकायां श्रीकान्ताया रूपं लिखित्वा दर्शयति धर्मरुचे राज्ञः, सोऽभ्युपपन्नः, दूतं विसर्जयति, प्रतिहतोऽपमानितो निष्काशितः, तदा सर्वबलेनागतः, नगरं रोधयति, उदितोदयश्चिन्तयति–किमेतावता जनक्षयेण कृतेन ?, उपवासं करोति, वैश्रवणेन देवेन सनगरः संहृतः । उदितोदयस्य पारिणामिकी बुद्धिः ॥ साधुश्च नन्दिषेण इति, श्रेणिकपुत्रो नन्दिषेणः, शिष्यस्तस्यावधावनोत्प्रेक्षी, तस्य चिन्ता (जाता) भगवान् यदि राजगृहं यायात् तर्हि देवीरन्यांश्च सातिशयान् प्रेक्ष्य यदि स्थिरो भवेदिति, भट्टारकश्च गतः, श्रेणिकः पुनर्निर्गच्छति सान्तःपुरः, अन्ये च कुमाराः सान्तःपुराः, नन्दिषेणस्य अन्तःपुरं श्वेताम्बरवसनं पद्मिनीमध्ये हंस्य इव * सेतं परवरणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

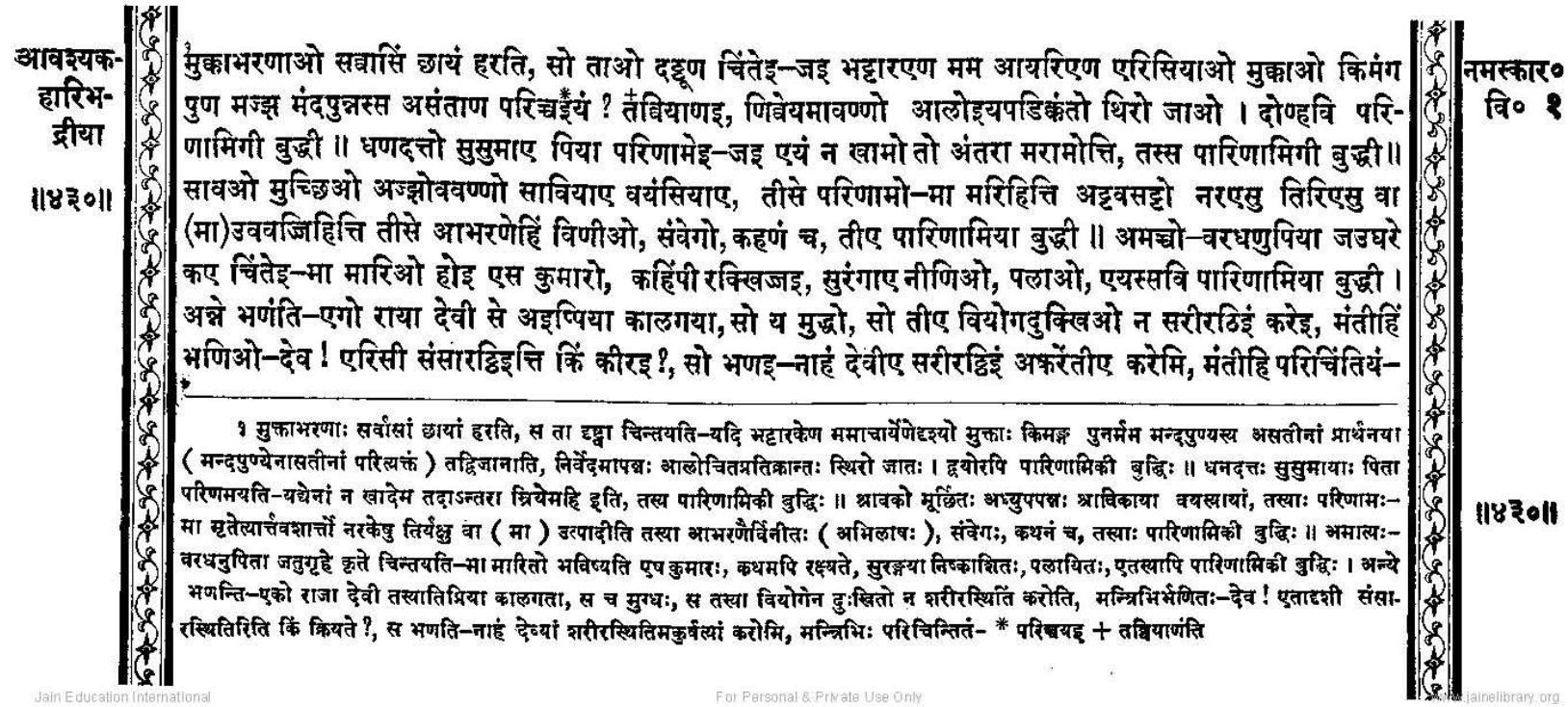

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥४३०॥

मुक्काभरणाओ सव्वासिं छायं हरति, सो ताओ दट्ठूण चिंतेइ–जइ भट्टारएण मम आयरिएण एरिसियाओ मुक्काओ किमंग पुण मज्झ मंदपुन्नस्स असंताण परिच्चइयं ? तंविवियाणइ, णिव्वेयमावण्णो आलोइयपडिक्कंतो थिरो जाओ । दोण्हवि परिणामिगी बुद्धी ॥ धणदत्तो सुसुमाए पिया परिणामेइ–जइ एयं न खामो तो अंतरा मरामोत्ति, तस्स पारिणामिगी बुद्धी॥ सावओ मुच्छिओ अज्झोववण्णो साविआए वयंसियाए, तीसे परिणामो–मा मरिहित्ति अट्टवसट्टो नरएसु तिरिएसु वा (मा)उववज्जिहित्ति तीसे आभरणेहिं विणीओ, संवेगो, कहणं च, तीए पारिणामिया बुद्धी ॥ अमच्चो–वरधणुपिया जउघरे कए चिंतेइ–मा मारिओ होइ एस कुमारो, कहिंपी रक्खिज्जइ, सुरंगाए नीणिओ, पलाओ, एयस्सवि पारिणामिया बुद्धी । अन्ने भणंति–एगो राया देवी से अइप्पिया कालगया, सो य मुद्धो, सो तीए वियोगदुक्खिओ न सरीरठिइं करेइ, मंतीहिं भणिओ–देव ! एरिसी संसारठ्ठिइत्ति किं कीरइ ?, सो भणइ–नाहं देवीए सरीरठ्ठिइं अकरेंतीए करेमि, मंतीहि परिचिंतियं–

१ मुक्ताभरणाः सर्वासां छायां हरति, स ता दृष्ट्वा चिन्तयति–यदि भट्टारकेण ममाचार्येणेदृश्यो मुक्ताः किमङ्ग पुनर्मम मन्दपुण्यस्य असतीनां प्रार्थनया (मन्दपुण्येनासतीनां परित्यक्तं) तद्विजानाति, निर्वेदमापन्नः आलोचितप्रतिक्रान्तः स्थिरो जातः । द्वयोरपि पारिणामिकी बुद्धिः ॥ धनदत्तः सुसुमायाः पिता परिणमयति–यद्येनां न खादेम तदाऽन्तरा म्रियेमहि इति, तस्य पारिणामिकी बुद्धिः ॥ श्रावको मूर्छितः अध्युपपन्नः श्राविकाया वयस्यायां, तस्याः परिणामः–मा मृतेत्यार्त्तवशार्त्तो नरकेषु तिर्यक्षु वा (मा) उत्पादीति तस्या आभरणैर्विनीतः (अभिलाषः), संवेगः, कथनं च, तस्याः पारिणामिकी बुद्धिः ॥ अमात्यः–वरधनुपिता जतुगृहे कृते चिन्तयति–मा मारितो भविष्यति एष कुमारः, कथमपि रक्ष्यते, सुरङ्गया निष्काशितः, पलायितः, एतस्यापि पारिणामिकी बुद्धिः । अन्ये भणन्ति–एको राजा देवी तस्यातिप्रिया कालगता, स च मुग्धः, स तस्या वियोगेन दुःखितो न शरीरस्थितिं करोति, मन्त्रिभिर्भणितः–देव ! एतादृशी संसारस्थितिरिति किं क्रियते ?, स भणति–नाहं देव्यां शरीरस्थितिमकुर्वत्यां करोमि, मन्त्रिभिः परिचिन्तितं– * परिचयइ + तंविवियाणंति

नमस्कार० वि० १

॥४३०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

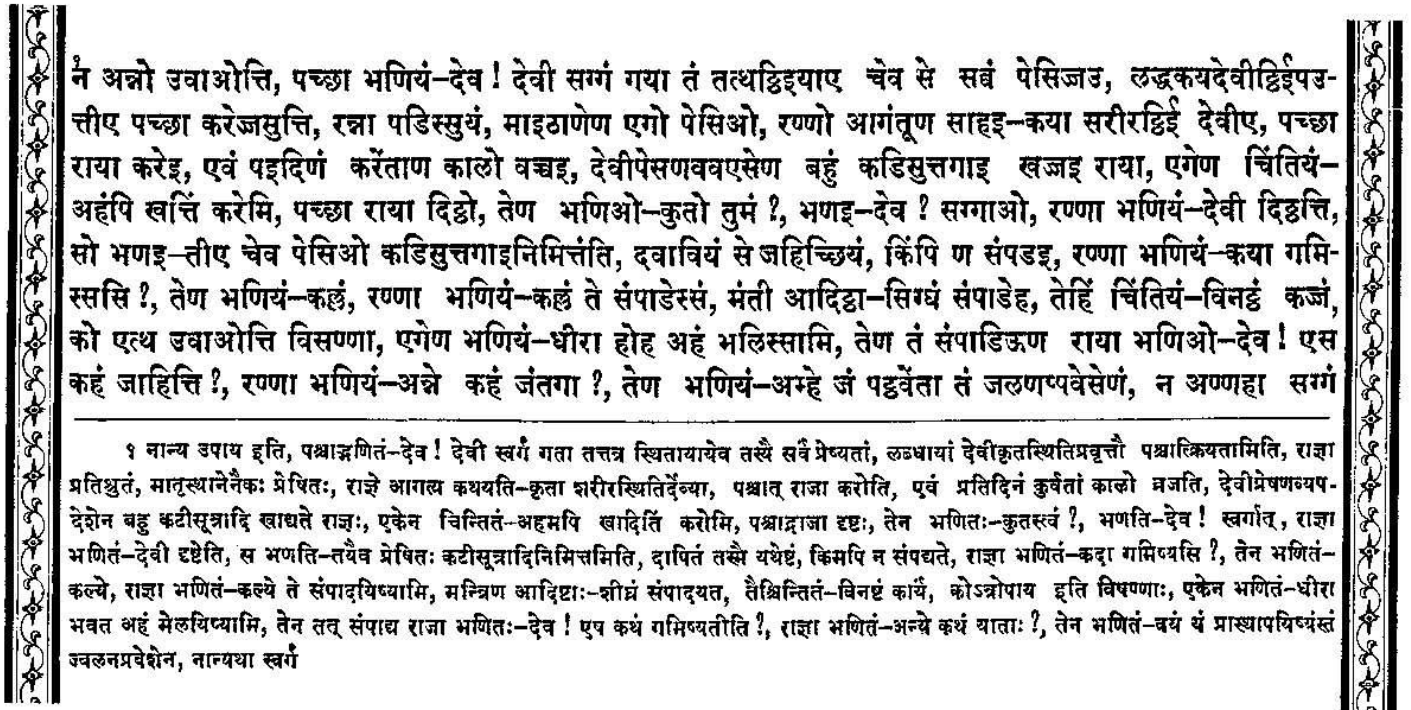

न अन्नो उवाओत्ति, पच्छा भणियं–देव ! देवी सग्गं गया तं तत्थट्ठिइयाए चेव से सव्वं पेसिज्जउ, लद्धकयदेवीट्ठिईपउत्तीए पच्छा करेज्जसुत्ति, रन्ना पडिस्सुयं, माइठाणेण एगो पेसिओ, रण्णो आगंतूण साहइ–कया सरीरट्ठिई देवीए, पच्छा राया करेइ, एवं पइदिणं करेंताण कालो वच्चइ, देवीपेसणववएसेण बहुं कडिसुत्तगाइ खज्जइ राया, एगेण चिंतियं–अहंपि खत्तिं करेमि, पच्छा राया दिट्ठो, तेण भणिओ–कुतो तुमं ?, भणइ–देव ? सग्गाओ, रण्णा भणियं–देवी दिट्ठत्ति, सो भणइ–तीए चेव पेसिओ कडिसुत्तगाइनिमित्तंति, दवावियं से जहिच्छियं, किंपि ण संपडइ, रण्णा भणियं–कया गमिस्ससि ?, तेण भणियं–कल्लं, रण्णा भणियं–कल्लं ते संपाडेस्सं, मंती आदिट्ठा–सिग्घं संपाडेह, तेहिं चिंतियं–विनट्ठं कज्जं, को एत्थ उवाओत्ति विसण्णा, एगेण भणियं–धीरा होह अहं भलिस्सामि, तेण तं संपाडिऊण राया भणिओ–देव ! एस कहं जाहित्ति ?, रण्णा भणियं–अन्ने कहं जंतगा ?, तेण भणियं–अम्हे जं पट्ठवेंता तं जलणप्पवेसेणं, न अण्णहा सग्गं

---

१ नान्य उपाय इति, पश्चाज्ज्ञपितं–देव ! देवी स्वर्गं गता तत्तत्र स्थितायायेव तस्यै सर्वं प्रेष्यतां, लब्धायां देवीकृतस्थितिप्रवृत्तौ पश्चात्क्रियतामिति, राज्ञा प्रतिश्रुतं, मातृस्थानेनैकः प्रेषितः, राज्ञे आगत्य कथयति–कृता शरीरस्थितिर्देव्या, पश्चात् राजा करोति, एवं प्रतिदिनं कुर्वतां कालो व्रजति, देवीप्रेषणव्यपदेशेन बहु कटीसूत्रादि खाद्यते राज्ञः, एकेन चिन्तितं–अहमपि खादामि करोमि, पश्चाद्राजा दृष्टः, तेन भणितः–कुतस्त्वं ?, भणति–देव ! स्वर्गात्, राज्ञा भणितं–देवी दृष्टेति, स भणति–तयैव प्रेषितः कटीसूत्रादिनिमित्तमिति, दापितं तस्मै यथेष्टं, किमपि न संपद्यते, राज्ञा भणितं–कदा गमिष्यसि ?, तेन भणितं–कल्ये, राज्ञा भणितं–कल्ये ते संपादयिष्यामि, मन्त्रिण आदिष्टाः–शीघ्रं संपादयत, तैश्चिन्तितं–विनष्टं कार्यं, कोऽत्रोपाय इति विषण्णाः, एकेन भणितं–धीरा भवत अहं मेलयिष्यामि, तेन तत् संपाद्य राजा भणितः–देव ! एष कथं गमिष्यतीति ?, राज्ञा भणितं–अन्ये कथं याताः ?, तेन भणितं–वयं यं प्रास्थापयिष्यंस्तं ज्वलनप्रवेशेन, नान्यथा स्वर्गं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

गमिस्सइ, रण्णा भणियं–तहेव पेसेह, तहा आढत्ता, सो विसण्णो, अण्णो य धुत्तो वायालो रण्णो समक्खं बहुं उवहसइ जहा–देविं भणिज्जासि–सिणेहवंतो ते राया, पुणोवि जं कज्जं तं संदिसेज्जासि, अण्णं च इमं च इमं च बहुविहं भणेज्जासि, तेण भणियं–देव ! णाहमेत्तिगं अविगलं भणिउं जाणामि, एसो चेव लट्ठो पेसिज्जउ, रण्णा पडिसुयं, सो तहेव णिज्जिउमाढत्तो, इयरो मुक्को, अवरस्स माणुसाणि, से विसण्णाणि पलवंति–हा ! देव ! अम्हेहिं किं करेज्जामो ?, तेण भणियं–नियतुंडं रक्खेज्जह, पच्छा मंतीहिं खरंडिय मुक्को, मडगं दट्ठं, मंतिस्स पारिणामिया ॥ खमएत्ति, खमओ चेल्लएण समं भिक्खं हिंडइ, तेण मंडुक्कलिया मारिया, आलोयणवेलाए णालोएइ, खुड्डएणं भणियं–आलोएहित्ति, रुट्ठो आहणामित्ति थंभे अब्भडिओ मओ, एगत्थ विराहियसामण्णाणं कुले दिट्ठीविसो सप्पो जाओ, जाणंति परोप्परं, रत्तिं चरंति मा जीवे मारेहामित्ति, फासुगं आहारेमित्ति । अण्णया रण्णो पुत्तो अहिणा खइओ मओ य, राया पउसमावण्णो, जो सप्पं मारेइ

नमस्कार० वि० १

॥४३१॥

१ गमिष्यति, राज्ञा भणितं–तथैव प्रेषयत, तथा आरब्धवन्तः (प्रेषयितुं), स विषण्णः, अन्यश्च धूर्त्तो वाचालो राज्ञः समक्षं बहूपहसति यथा–देवीं भणेः–स्नेहवान् त्वयि राजा, पुनरपि येन कार्यं तत् संदिशेः, अन्यच्च इदं चेदं च बहुविधं भणेः, तेन भणितं–देव ! नाहमेतावदविकलं भणितुं जाने, एष एव लष्टः प्रेष्यतां, राज्ञा प्रतिश्रुतं, स तथैव नेतुमारब्धः, इतरो मुक्तः, अपरस्य मनुष्याः, ते विषण्णाः प्रलपन्ति–हा देव ! अस्माभिः किं कार्यं ?, तेन भणितं–निजतुण्डं रक्षत, पश्चान्मन्त्रिभिः संतर्ज्य (निर्भर्त्स्य) मुक्तः, मृतकं दग्धं, मन्त्रिणः पारिणामिकी ॥ क्षपक इति, क्षपकः शैक्षेण समं भिक्षां हिण्डते, तेन मण्डूकिका मारिता, आलोचनावेलायां नालोचयति, क्षुल्लकेन भणितं–आलोचयेति, रुष्ट आहन्मीति स्तम्भे आहतो मृतः, एकत्र विराद्धश्रामण्यानां कुले दृष्टिविषः सर्पो जातः, जानन्ति परस्परं, रात्रौ चरन्ति, मा जीवान् मीमरामेति, प्रासुकमाहारयाम इति । अन्यदा राज्ञः पुत्रोऽहिना दष्टः मृतश्च, राजा प्रद्वेषमापन्नः, यः सर्पं मारयति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

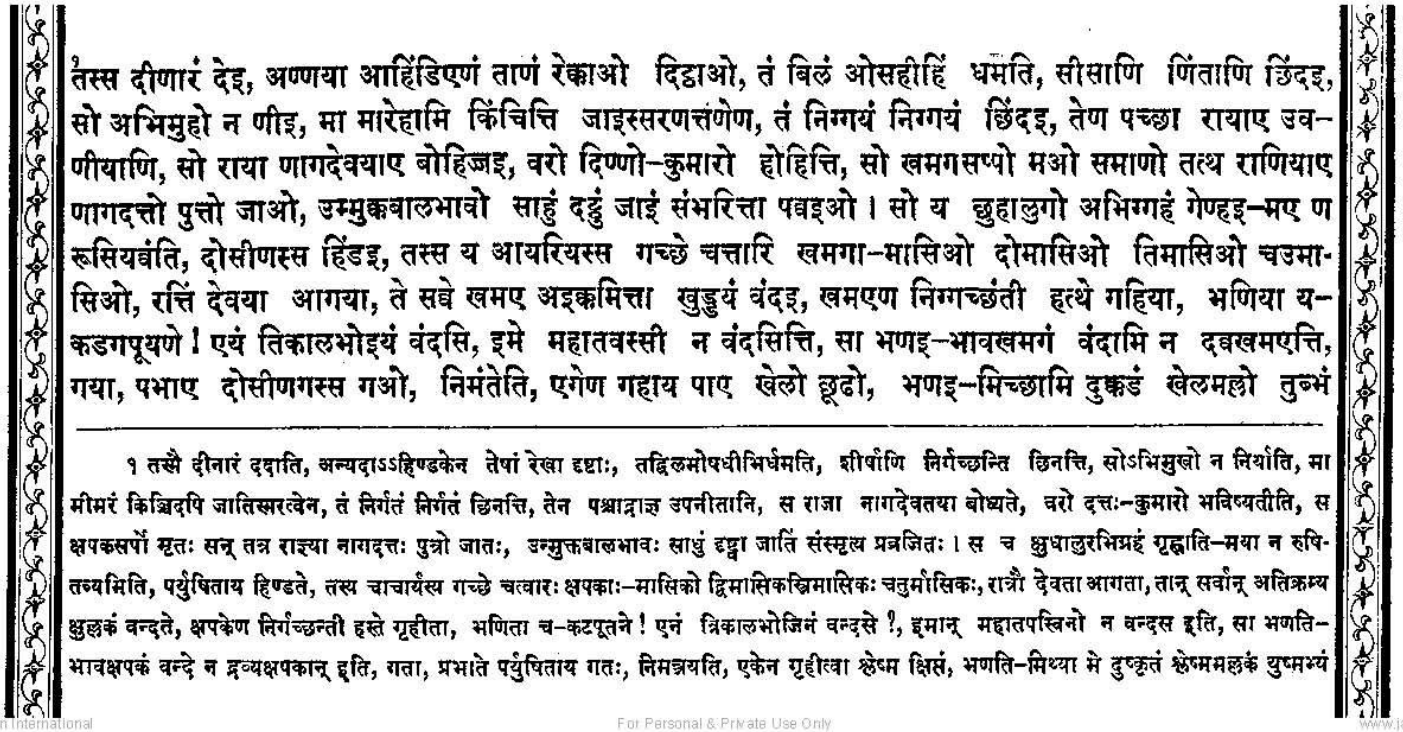

तस्स दीणारं देइ, अण्णया आहिंडिएणं ताणं रेक्काओ दिट्ठाओ, तं बिलं ओसहीहिं धमति, सीसाणि णिंताणि छिंदइ, सो अभिमुहो न णीइ, मा मारेहामि किंचित्ति जाइस्सरणत्तणेण, तं निग्गयं निग्गयं छिंदइ, तेण पच्छा रायाए उवणीयाणि, सो राया णागदेवयाए बोहिज्जइ, वरो दिण्णो–कुमारो होहित्ति, सो खमगसप्पो मओ समाणो तत्थ राणियाए णागदत्तो पुत्तो जाओ, उम्मुक्कबालभावो साहुं दट्ठुं जाइं संभरित्ता पवइओ। सो य छुहालुगो अभिग्गहं गेण्हइ–मए ण रूसियव्वंति, दोसीणस्स हिंडइ, तस्स य आयरियस्स गच्छे चत्तारि खमगा–मासिओ दोमासिओ तिमासिओ चउमासिओ, रत्तिं देवया आगया, ते सव्वे खमए अइक्कमित्ता खुड्डुयं वंदइ, खमएण निग्गच्छंती हत्थे गहिया, भणिया य–कडगपूयणे! एयं तिकालभोइयं वंदसि, इमे महातवस्सी न वंदसित्ति, सा भणइ–भावखमगं वंदामि न दव्वखमएत्ति, गया, पभाए दोसीणगस्स गओ, निमंतेति, एगेण गहाय पाए खेलो छूढो, भणइ–मिच्छामि दुक्कडं खेलमल्लो तुब्भं

---

१ तस्मै दीनारं ददाति, अन्यदाऽऽहिण्डकेन तेषां रेखा दृष्टाः, तद्बिलमोषधीभिर्धमति, शीर्षाणि निर्गच्छन्ति छिनत्ति, सोऽभिमुखो न निर्याति, मा मीमरं किञ्चिदपि जातिस्मरत्वेन, तं निर्गतं निर्गतं छिनत्ति, तेन पश्चाद्राज्ञ उपनीतानि, स राजा नागदेवतया बोध्यते, वरो दत्तः–कुमारो भविष्यतीति, स क्षपकसर्पो मृतः सन् तत्र राज्ञ्या नागदत्तः पुत्रो जातः, उन्मुक्तबालभावः साधुं दृष्ट्वा जातिं संस्मृत्य प्रव्रजितः। स च क्षुधालुरभिग्रहं गृह्णाति–मया न रुषितव्यमिति, पर्युषिताय हिण्डते, तस्य चाचार्यस्य गच्छे चत्वारः क्षपकाः–मासिको द्विमासिकस्त्रिमासिकः चतुर्मासिकः, रात्रौ देवता आगता, तान् सर्वान् अतिक्रम्य क्षुल्लकं वन्दते, क्षपकेण निर्गच्छन्ती हस्ते गृहीता, भणिता च–कटपूतने! एनं त्रिकालभोजिनं वन्दसे?, इमान् महातपस्विनो न वन्दस इति, सा भणति–भावक्षपकं वन्दे न द्रव्यक्षपकान् इति, गता, प्रभाते पर्युषिताय गतः, निमन्त्रयति, एकेन गृहीत्वा श्लेष्म क्षिप्तं, भणति–मिथ्या मे दुष्कृतं श्लेष्ममल्लकं युष्मभ्यं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

णोवणीओ, एवं सेसेहिवि, जेमेउमारद्धो, तेहिं वारिओ, निवेगमावण्णो, पंचवि सिद्धा, विभासा, सवेसिं पारिणामिया बुद्धी ॥ अमच्चपुत्तो वरधणू, तस्स तेसु तेसु पओयणेसु पारिणामिया, जहा माया मोयाविया, सो पलाइओ, एवमाइ सवं विभासियवं । अण्णे भणंति–एगो मंतिपुत्तो कप्पडियरायकुमारेण समं हिंडइ, अण्णया निमित्तिओ घडिओ, रत्तिं देवकुंडिसंठियाणं सिवा रडइ, कुमारेण नेमित्तिओ पुच्छिओ–किं एसा भणइत्ति, तेण भणियं–इमं भणइ–इमंसि नदितित्थंमि पुराणियं कलेवरं चिट्ठइ, एयस्स कडीए सतं पायंकाणं, कुमार ! तुमं गिण्हाहि, तुज्झ पायंका मम य कडेवरंति, मुद्दियं पुण न सक्कुणोमित्ति, कुमारस्स कोडुं जायं, ते वंचिय एगागी गओ, तहेव जायं, पायंके घेत्तूण पच्चागओ, पुणो रडइ, पुणो पुच्छिओ, सो भणइ–चप्फलिगाइयं कहेइ, एसा भणइ–कुमार ! तुज्झवि पायंकसयं जायं मज्झवि कलेवरंति, कुमारो तुसिणीओ जाओ, अमच्चपुत्तेण चिंतियं, पेच्छामि से सत्तं किं किवणत्तणेण गहियं आउ सोंडीरयाए ?,

१ नार्पितं, एवं शेषैरपि, जिमितुमारब्धः, तैर्वारितः, निर्वेदमापन्नः, पञ्चापि सिद्धाः, विभाषा, सर्वेषां पारिणामिकी बुद्धिः ॥ अमात्यपुत्रो वरधनुः, तस्य तेषु तेषु प्रयोजनेषु पारिणामिकी, यथा माता मोचिता, स पलायितः, एवमादि सर्वं विभाषितव्यं । अन्ये भणन्ति–एको मन्त्रिपुत्रः कार्पटिकराजकुमारेण समं हिण्डते, अन्यदा नैमित्तिको घटितः (मीलितः), रात्रौ देवकुलिकासंस्थितेषु शिवा रटति, कुमारेण नैमित्तिकः पृष्टः–किमेषा भणतीति, तेन भणितं–इदं भणति–अस्मिन्नदीतीर्थे पौराणिकं कलेवरं तिष्ठति, एतस्य कट्यां शतं पादाङ्कानां (मुद्राविशेषाणां), कुमार ! त्वं गृहाण, तव पादाङ्का मम च कलेवरमिति मुद्रितं पुनर्न शक्नोमीति, कुमारस्य कौतुकं जातं, तान् वञ्चयित्वा एकाकी गतः, तथैव जातं, पादाङ्कान् गृहीत्वा प्रत्यागतः, पुना रटति, पुनः पृष्टः, स भणति–चप्फलिकादिकं (कौतूहलिकं) कथयति, एषा भणति–कुमार ! तवापि पादाङ्कशतं जातं ममापि कलेवरमिति, कुमारस्तूष्णीको जातः, अमात्यपुत्रेण चिन्तितं, पश्याम्यस्य सत्त्वं किं कृपणत्वेन गृहीतमातः शौण्डीर्येण ?,

॥४३२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

जेइ किवणत्तणेण कयं न एयस्स रज्जंति नियत्तामि, पच्चूसे भणइ–वच्चह तुब्भे, मम पुण सूलं कज्जइ न सक्कुणामि गंतुं, कुमारेण भणियं–न जुत्तं तुमं मोत्तूण गंतुं, किं तु मा कोइ एत्थ मे* जाणेहित्ति तेण वच्चामो, पच्छा कुलपुत्तगघरं णीओ समप्पिओ, तं च सवं पेज्जामोलं दिन्नं, मंतिपुत्तस्स उवगयं जहा–सोंडीरयाएत्ति, भणियं चऽणेण–अत्थि मे विसेसो अओ गच्छामि, पच्छा गओ, कुमारेण रज्जं पत्तं, भोगावि से दिण्णा, एयस्स पारिणामिगी बुद्धी ॥ चाणक्को–गोल्लविसए चणयग्गामो, तत्थ य चणगो माहणो, सो य सावओ, तस्स घरे साहू ठिया, पुत्तो से जाओ सह दाढाहिं, साहूण पाएसु पाडिओ, कहियं च–राया भविस्सइत्ति, मा दुग्गइं जाइस्सइत्ति दंता घट्ठा, पुणोऽवि आयरियाणं कहियं, भणइ–किं कज्जउ ?, एत्ताहे बिंबंतरिओ भविस्सइ, उम्मुक्कबालभावेण चोद्दस विज्जाट्ठाणाणि आगमियाणि, सो य सावओ संतुट्ठो, एगाओ भद्दमाहणकुलाओ भज्जा से आणिया । अण्णया कम्मिंहवि कोउते माइघरं भज्जा से गया, केइ भणंति–भाइविवाहे गया,

१ यदि कृपणत्वेन कृतं नैतस्य राज्यमिति निवर्त्ते, प्रत्यूषसि भणति–व्रजत यूयं, मम पुनः शूलं क्रियते (पीडयति) न शक्नोमि गन्तुं, कुमारेण भणितं–न युक्तं त्वां मुक्त्वा गन्तुं, किन्तु मा कोऽप्यत्र मां ज्ञासीत् तेन व्रजावः, पश्चात्कुलपुत्रकगृहं नीतः समर्पितः, तच्च सर्वं पेया (पोषण) मूल्यं दत्तं, मन्त्रिपुत्रस्योपगतं यथा–शौण्डीर्येणेति, भणितं चानेन–अस्ति मे विशेषः अतो गच्छामि, पश्चाद्गतः, कुमारेण राज्यं प्राप्तं, भोगा अपि तस्मै दत्ताः, एतस्य पारिणामिकी बुद्धिः । चाणक्यः–गोल्लविषये चणकग्रामः, तत्र च चणको ब्राह्मणः, स च श्रावकः, तस्य गृहे साधवः स्थिताः, पुत्रस्तस्य जातः सह दंष्ट्राभिः, साधूनां पादयोः पातितः, कथितं च–राजा भविष्यतीति, मा दुर्गतिं यासीदिति दन्ता घृष्टाः, पुनरप्याचार्येभ्यः कथितं, भणति–किं क्रियतां?, अधुना (अतः) बिम्बान्तरितो (राजा) भविष्यति, उन्मुक्तबालभावेन चतुर्दश विद्यास्थानान्यागमितानि (प्राप्तानि), स च श्रावकः संतुष्टः, एकस्मात् भद्रब्राह्मणकुलात् भार्या तस्यानीता । अन्यदा कस्मिंश्चिदपि कौतुके मातृगृहं भार्या तस्य गता, केचिद्भणन्ति–भ्रातृविवाहे गता, * एगट्ठाणे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

[1]तीसे य भगिणीओ अण्णेसिं खद्धादाणियाणं दिण्णेल्लियाओ, ताओ अलंकियविहूसियाओ आगयाओ, सव्वोऽवि परिजणो ताहिं समं संलवएति, सा एगंते अच्छइ, अद्धिई जाया, घरं आगया, ससोगा, निब्बंधे सिट्ठं, तेण चिंतियं–नंदो पाडलिपुत्ते देइ तत्थ वच्चामि, तओ कत्तियपुण्णिमाए पुव्वण्हत्थे आसणे पढमे णिसण्णो, तं च तस्स सल्लीपतियस्स सया ठविज्जइ, सिद्धपुत्तो य णंदेण समं तत्थ आगओ भणइ–एस बंभणो णंदवंसस्स छायं अक्कमिऊण ठिओ, भणिओ दासीए-भगवं! बितीए आसणे णिवेसाहि, अत्थु, बितिए आसणे कुंडियं ठवेइ, एवं ततिए दंडयं, चउत्थे गणित्तियं, पंचमे जण्णोवइयं, धिट्ठोत्ति निच्छूढो, पाओ* उक्खित्तो, अण्णया य भणइ-'कोशेन भृत्यैश्च निबद्धमूलं, पुत्रैश्च मित्रैश्च विवृद्धशाखम्। उत्पाट्य नन्दं परिवर्तयामि, महाद्रुमं वायुरिवोग्रवेगः ॥ १ ॥' निग्गओ मग्गइ पुरिसं, सुयं चऽणेण बिंबंतरिओ राओ होहामित्ति, नंदस्स मोरपोसगा, तेसिं गामं गओ परिव्वायगलिंगेणं, तेसिं च महत्तरधूयाए चंदपियणे दोहलो, सो

---

१ तस्याश्च भगिन्योऽन्येषां प्रचुरादानीयानां (धनाढ्येभ्यः) दत्ताः, ता अलंकृतविभूषिता आगताः, सर्वोऽपि परिजनस्ताभिः समं संलपति, सैकान्ते तिष्ठति, अधृतिर्जाता, गृहमागता, सशोका, निर्बन्धे शिष्टं, तेन चिन्तितं–नन्दः पाटलीपुत्रे ददाति तत्र व्रजामि, ततः (तत्र) कार्त्तिकपूर्णिमायां पूर्वान्हसे आसने प्रथमे निषण्णः, तच्च तस्य शल्लीपतेः (नन्दस्य) सदा स्थाप्यते, सिद्धपुत्रश्च नन्देन समं तत्रागतो भणति–एष ब्राह्मणः नन्दवंशस्य छायामाक्रम्य स्थितः, भणितो दास्या–भगवन्! द्वितीय आसने उपविश, अस्तु, द्वितीये आसने कुण्डिकां स्थापयति, एवं तृतीये दण्डकं, चतुर्थे मालां, पञ्चमे यज्ञोपवीतं, धृष्ट इति निष्काशितः, पादः (प्रतिज्ञा) उत्क्षिप्तः (मनसि स्थापिता), अन्यदा च भणति–निर्गतो मार्गयति पुरुषं, श्रुतं चानेन बिम्बान्तरितो राजा भविष्यामीति, नन्दस्य मयूरपोषकाः, तेषां ग्रामं गतः परिव्राजकवेषेण, तेषां च महत्तरस्य दुहितुः चन्द्रपाने दोहदः, स * पाओ पढमो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

समुदाणिंतो गओ, पुच्छंति, सो भणइ–जइ इमं मे दारगं देह तो णं पाएमि चंदं, पडिसुणेंति, पडमंडवे कए तद्दिवसं पुण्णिमा, मज्झे छिड्डं कयं, मज्झगए चंदे सव्वरसालूहिं दवेहिं संजोएत्ता दुद्धस्स थालं भरियं, सद्दाविया पेच्छइ पिबइ य, उवरिं पुरिसो अच्छाडेइ, अवणीए जाओ पुत्तो, चंदगुत्तो से नामं कयं, सोऽवि ताव संवड्ढइ, चाणक्को य धाउविलाणि मग्गइ। सो य दारगेहिं समं रमइ रायणीईए, विभासा, चाणक्को पडिएइ, पेच्छइ, तेणवि मग्गिओ–अम्हवि दिज्जउ, भणइ—गावीओ लएहिं, मा मारेज्जा कोई, भणइ–वीरभोज्जा पुहवी, णातं जहा विण्णाणंपि से अत्थि, पुच्छिओ–कस्सत्ति ?, दारएहिं कहियं–परिव्वायगपुत्तो एसो, अहं सो परिव्वायगो, जामु जा ते रायाणं करेमि, पलाओ, लोगो मिलिओ, पाडलिपुत्तं रोहियं। णंदेण भग्गो परिव्वायगो, आसेहिं पिट्ठीओ लग्गो, चंदगुत्तो पउमसरे निब्बुडो, इमो उपस्पृशति, सण्णाए भणइ–वोलीणोत्ति, अन्ने भणन्ति–चंदगुत्तं पउमिणीसरे छुभित्ता रयओ जाओ, पच्छा एगेण जच्चवल्हीककिसोरगएणआसवारेण पुच्छिओ भणइ–एस पउमसरे निविट्ठो, तओ आसवारेण दिट्ठो, तओऽणेण घोडगो चाणक्कस्स अल्लिओ;

१ भिक्षयन् गतः, पृच्छन्ति, स भणति–यदि इमं दारकं मह्यं दत्त तदैनां पाययामि चन्द्रं, प्रतिशृण्वन्ति, पटमण्डपे कृते तद्दिवसे पूर्णिमा, मध्ये छिद्रं कृतं' मध्यगते चन्द्रे सर्वरसाढ्यैर्द्रव्यैः संयोज्य दुग्धस्य स्थाले भृतः, शब्दिता पश्यति पिबति च, उपरि पुरुष आच्छादयति, अपनीते (दोहदे) जातः पुत्रः, चन्द्रगुप्तस्य नाम कृतं, सोऽपि तावत्संवर्धते, चाणक्यश्च धातुवादान् (स्वर्णरसादिकान्) मार्गयति। स च दारकैः सम रमते राजनीत्या, विभाषा, चाणक्यः प्रत्येति, प्रेक्षते, तेनापि मार्गितः–मह्यमपि देहि, भणति–मा लाहि, मा मारिषि केनचित्, भणति–वीरभोज्या वसुन्धरा, ज्ञातं यथा विज्ञानमप्यस्ति तस्य, पृष्टः—कस्येति?, दारकैः कथितं–परिव्राजकपुत्र एषः, अहं स परिव्राजकः, यावो यावस्वां राजानं करोमि, पलायितः, लोको मीलितः, पाटलीपुत्रं रुद्धं। नन्देन भञ्जितः परिव्राजकः, अश्वैः पृष्ठतो लग्नः, चन्द्रगुप्तः पद्मसरसि बूडितः, अयमुपस्पृशति, संज्ञया भणति–(अश्ववारान्) व्यतिक्रान्त इति॥ अन्ये भणन्ति-चन्द्रगुप्तं पद्मिनीसरसि क्षिप्त्वा रजको जातः, पश्चादेकेन जात्यवाल्हीककिशोरगतेनाश्ववारेण पृष्टो भणति–एष पद्मसरसि बूडितः, ततोऽश्ववारेण दृष्टः, ततोऽनेन घोटकश्राणक्यायार्पितः,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

खग्गं मुक्कं, जाव निगुडिउं जलोयरणट्ठयाए कंचुगं मिलइ, तावऽणेण खग्गं घेत्तूण दुहाकओ, पच्छा चंदगुत्तोहक्कारिय चडाविओ, पुणो पलाया, पुच्छिओऽणेण चंदगुत्तो–जं वेलं तंसि सिट्ठो तं वेलं किं तुमे चिंतियं ?, तेण भणियं–धुवं एवमेव सोहणं भवइ, अज्जो चेव जाणइत्ति, तओऽणेण चिंतियं–जोगो एस न विपरिणमइत्ति । पच्छा चंदगुत्तो छुहाइओ, चाणक्को तं ठवेत्ता भत्तस्स अइगओ, वीहेइ य–मा एत्थ नज्जेज्जामो डोडस्स बाहिं निग्गयस्स पोट्टं फालियं, दहिकूरं गहाय गओ, जिमिओ दारओ । अण्णया अण्णत्थ गामे रत्तिं समुयाणेइ, थेरीए पुत्तगभंडाणं विलेवी वट्टिया, एक्केण मज्झे हत्थो छूढो, दड्ढो रोवइ, ताए भण्णइ–चाणक्कमंगलयं, पुच्छियं, भणइ–पासाणि पढमं घेप्पंति, गओ हिमवंतकूडं, पव्वइओ राया, तेण समं मित्तया जाया, भणइ–समं समेण विभजामो रज्जं, उपवेंताणं एगत्थ णयरं न पडइ, पविट्ठो तिदंडी, वत्थूणि जोएइ, इंदकुमारियाओ दिट्ठाओ, तासिं तणएण ण पडइ, मायाए णीणावियाओ, पडियं णयरं, पाडलिपुत्तं

१ खड्गो मुक्तः, यावत् शेषं मुक्त्वा जलावतरणार्थाय कञ्चुकं (अधःपरिधानं) मुञ्चति, तावदनेन खड्गं गृहीत्वा द्विधाकृतः, पश्चाच्चन्द्रगुप्त आहूयारोहितः पुनः पलायितौ, पृष्टोऽनेन चन्द्रगुप्तः–यस्यां वेलायां त्वमसि शिष्टस्तस्यां वेलायां किं त्वया चिन्तितं ?, तेन भणितं–ध्रुवमेवमेव शोभनं भविष्यति, आर्य एव जानातीति, ततोऽनेन चिन्तितं–योग्य एष न विपरिणमत इति । पश्चात् चन्द्रगुप्तः क्षुधार्त्तः, चाणक्यस्तं स्थापयित्वा भक्तायातिगतः, बिभेति च–माऽत्र ज्ञास्यिध्महि महोदरस्य (भट्टस्य) बहिर्निर्गतस्योदरं पाटितं, दधिकूरं गृहीत्वा गतः, जेमितो दारकः । अन्यदा अन्यत्र ग्रामे रात्रौ भिक्षयति, स्थविरया पुत्रादीनां रब्बा परिवेषिता, एकेन मध्ये हस्तः क्षिप्तः, दग्धो रोदिति, तया भण्यते–चाणक्याख्यानकं (चाणक्यसदृशं), पृष्टं, भणति–पार्श्वाः प्रथमं ग्राह्याः, गतो हिमवत्कूटं, पार्वतिको राजा, तेन समं मैत्री जाता, भणति–सर्वं समेन विभजावो राज्यं, उपागच्छतो(लुण्टतो)रेकत्र नगरं न पतति, प्रविष्टस्त्रिदण्डी, वस्तूनि पश्यति, इन्द्रकुमार्यो दृष्टाः, तासां सत्केन (प्रभावेण) न पतति, मात्रया अपनायिताः, पतितं नगरं, पाटलीपुत्रं † मोडोद्वस्स

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

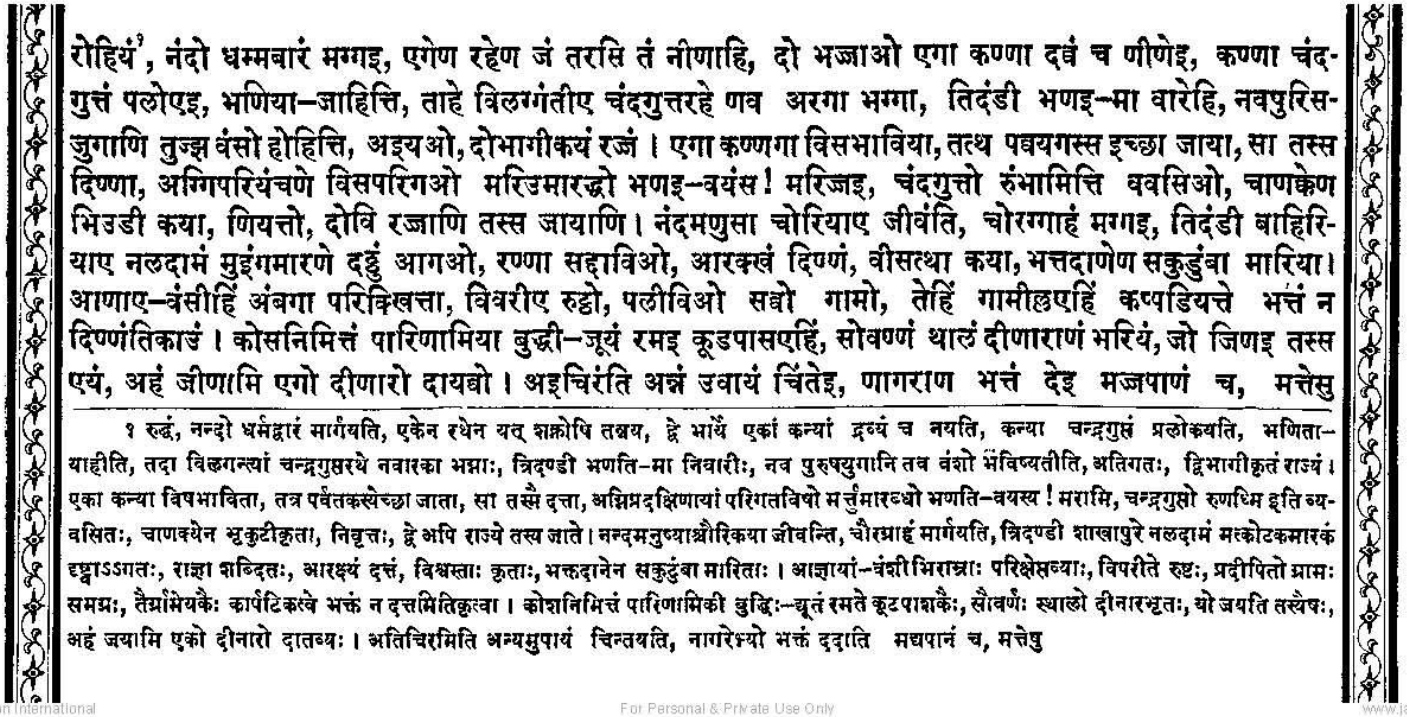

रोहियं', नंदो धम्मबारं मग्गइ, एगेण रहेण जं तरसि तं नीणाहि, दो भज्जाओ एगा कण्णा दवं च णीणेइ, कण्णा चंद-गुत्तं पलोएइ, भणिया–जाहित्ति, ताहे विलग्गंतीए चंदगुत्तरहे णव अरगा भग्गा, तिदंडी भणइ–मा वारेहि, नवपुरिस-जुगाणि तुज्झ वंसो होहित्ति, अइयओ, दोभागीकयं रज्जं । एगा कण्णगा विसभाविया, तत्थ पव्वयगस्स इच्छा जाया, सा तस्स दिण्णा, अग्गिपरियंचणे विसपरिगओ मरिउमारद्धो भणइ–वयंस! मरिज्जइ, चंदगुत्तो रुंभामित्ति ववसिओ, चाणक्केण भिउडी कया, णियत्तो, दोवि रज्जाणि तस्स जायाणि। नंदमणुसा चोरियाए जीवंति, चोरग्गाहं मग्गइ, तिदंडी बाहिरि-याए नलदामं मुइंगमारणे दट्ठुं आगओ, रण्णा सद्दाविओ, आरक्खं दिण्णं, वीसत्था कया, भत्तदाणेण सकुडुंबा मारिया। आणाए–वंसीहिं अंबगा परिक्खित्ता, विवरीए रुट्ठो, पलीविओ सव्वो गामो, तेहिं गामीलएहिं कप्पडियत्ते भत्तं न दिण्णंतिकाउं । कोसनिमित्तं पारिणामिया बुद्धी–जूयं रमइ कूडपासएहिं, सोवण्णं थालं दीणाराणं भरियं, जो जिणइ तस्स एयं, अहं जीणामि एगो दीणारो दायव्वो । अइचिरंति अन्नं उवायं चिंतेइ, णागराण भत्तं देइ मज्जपाणं च, मत्तेसु

१ रुद्धं, नन्दो धर्मद्वारं मार्गयति, एकेन रथेन यद् शक्नोषि तन्नय, द्वे भार्ये एकां कन्यां द्रव्यं च नयति, कन्या चन्द्रगुप्तं प्रलोकयति, भणिता–याहीति, तदा विलगन्त्यां चन्द्रगुप्तरथे नवारका भग्नाः, त्रिदण्डी भणति–मा निवारीः, नव पुरुषयुगानि तव वंशो भविष्यतीति, अतिगतः, द्विभागीकृतं राज्यं। एका कन्या विषभाविता, तत्र पर्वतकस्येच्छा जाता, सा तस्मै दत्ता, अग्निप्रदक्षिणायां परिगतविषो मर्तुमारब्धो भणति–वयस्य! म्रियामि, चन्द्रगुप्तो रुणधिम इति व्य-वसितः, चाणक्येन भृकुटीकृता, निवृत्तः, द्वे अपि राज्ये तस्य जाते। नन्दमनुष्याश्चौरिकया जीवन्ति, चौरग्राहं मार्गयति, त्रिदण्डी शाखापुरे नलदामं मल्लकोटकमारकं दृष्ट्वाऽऽगतः, राज्ञा शब्दितः, आरक्ष्यं दत्तं, विश्वस्ताः कृताः, भक्तदानेन सकुटुंबा मारिताः । आज्ञायां–वंशीभिरानाः परिक्षेप्तव्याः, विपरीते रुष्टः, प्रदीपितो ग्रामः समग्रः, तैर्ग्रामेयकैः कार्पटिकत्वे भक्तं न दत्तमितिकृत्वा । कोशनिमित्तं पारिणामिकी बुद्धिः–द्यूतं रमते कूटपाशकैः, सौवर्णः स्थालो दीनारभृतः, यो जयति तस्यैषः, अहं जयामि एको दीनारो दातव्यः । अतिचिरमिति अन्यमुपायं चिन्तयति, नागरेभ्यो भक्तं ददाति मद्यपानं च, मत्तेषु

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

पेणच्छिओ, भणइ–'दो मज्झ धाउरत्ता कंचणकुंडिया तिदंडं च रायावि य वसवत्ती एत्थवि ता मे होलं वाएहिं' अण्णो असहमाणो भणति–गयपोययस्स मत्तस्स उप्पइयस्स जोअणसहस्सं पए पए सयसहस्सं एत्थवि ता मे होलं वाएहिं। अन्नो भणइ–तिलआढयस्स वुत्तस्स निप्फण्णस्स बहुसइयस्स तिले तिले सयसहस्सं ता मे हालं वाएहि अण्णो भणइ–नवपाउसंमि पुण्णाए गिरिणईयाए सिग्घवेगाए एगाहमहियमेत्तेण नवणीएण पालिं बंधामि एत्थवि ता मे होलं वाएहि, अन्नो भणइ–जच्चाण नवकिसोराण तद्दिवसेण जायमेत्ताण केसेहिं नहं छाएमि एत्थवि ता मे होलं वाएहि, अन्नो भणइ–दो मज्झ अत्थि रयणा सालि पसूई य गद्दभिया य छिन्ना छिन्नावि रुहंति एत्थवि ता मे होलं वाएहि, अन्नो भणइ–*सयसुक्किलनिच्चसुयंधो भज्ज अणुव्वय नत्थि पवासो निरिणो य दुपंचसओ एत्थवि ता मे होलं वाएहिं, एवं णाऊण रयणाणि मग्गिऊण कोट्ठाराणि सालीण भरियाणि, गद्दभियाए पुच्छिओ छिन्नाणि२ पुणो पुणो जायंति, आसा एगदिवस जाया मग्गिया एगदिवसियं णवणीयं, एस पारिणामिया चाणक्कस्स बुद्धी ॥ थूलभद्दस्स पारिणामिया–पिइम्मि मारिए णंदेण भणिओ–

१ प्रणत्तिंतः, भणति–द्वे मम धातुरक्ते काञ्चनकुण्डिका त्रिदण्डं च राजाऽपिच वशवर्त्ती अत्रापि तन्मे झल्लरीं वादय, अन्योऽसहमानो भणति–गजपोतस्य मत्तस्योत्पतितस्य योजनसहस्रं पदे पदे शतसहस्रं अत्रापि तन्मे झल्लरीं वादय, अन्यो भणति–उप्तस्य तिलाढकस्य निष्पन्नस्य बहुशतिकस्य तिले तिले शतसहस्रं तन्मे झल्लरीं वादय, अन्यो भणति–नवप्रावृषि पूर्णाया गिरिनद्याः शीघ्रवेगाया एकाहमथितमात्रेण नवनीतेन पालीं बध्नामि अत्रापि तन्मे झल्लरीं वादय, अन्यो भणति–जात्यानां नवकिशोराणां तद्दिवसजातमात्राणां केशैर्नभश्छादयामि अत्रापि तन्मे झल्लरीं वादय, अन्यो भणति–द्वे ममास्ति शालिरेत–प्रसूतिश्च गर्दभिका च, छिन्ना छिन्ना अपि रोहन्ति, अत्रापि तन्मे झल्लरीं वादय, अन्यो भणति–सदाशुक्लो नित्यसुगन्धो भार्या अनुवर्त्तिनी नास्ति प्रवासो निर्ऋणश्च द्विपञ्चशतिकः अत्रापि तन्मम झल्लरीं वादय, एवं ज्ञात्वा रक्षानि मार्गयित्वा कोष्ठागाराणि शालीभिर्भृतानि गर्दभिकया पुच्छिको (धान्यभाजनविशेषः) छिन्ना छिन्ना पुनः पुनर्जायन्ते इति, अश्वा एकदिवसजाता मार्गिताः, एकदिवसजं नवनीतं, एषा पारिणामिकी चाणक्यस्य बुद्धिः। स्थूलभद्रस्य पारिणामिकी-पितरि मृते नन्देन भणितः–*सुय०प्र०

॥४३५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

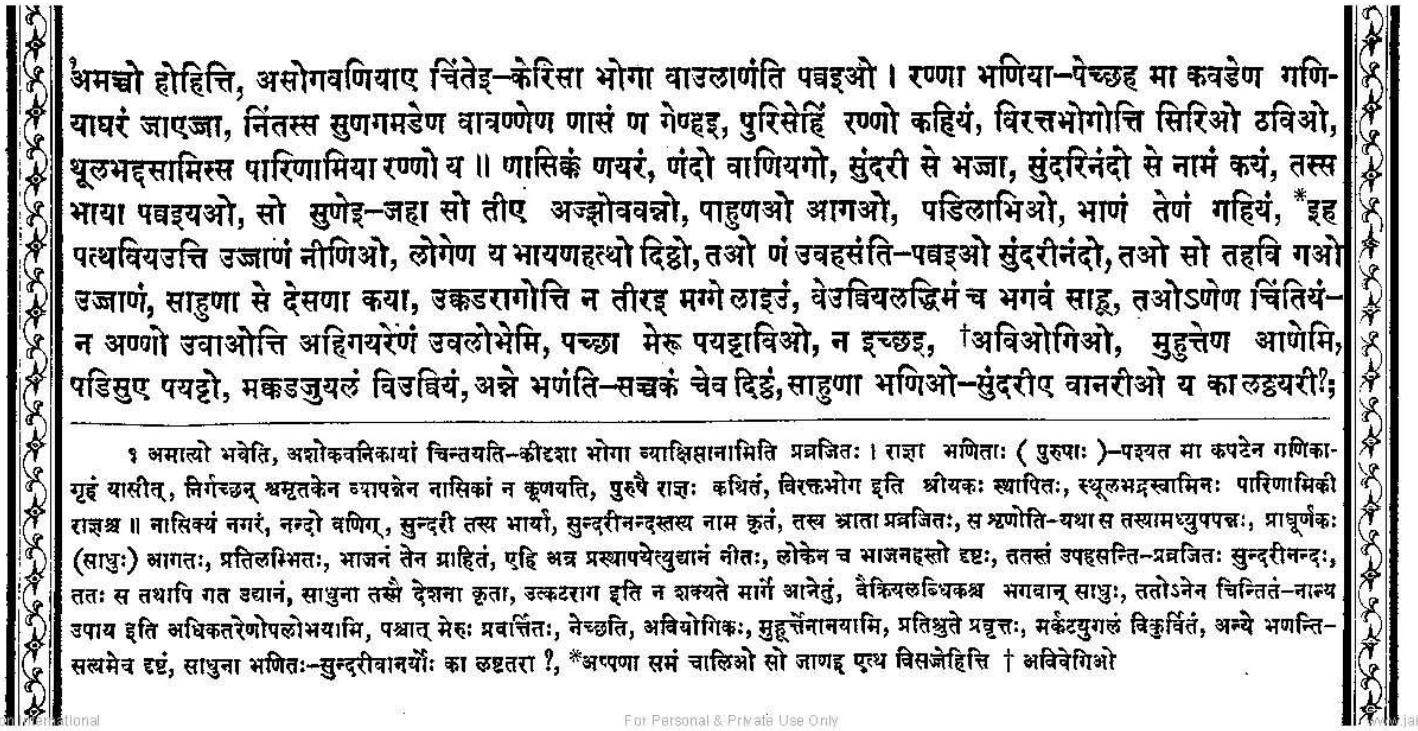

अमच्चो होहित्ति, असोगवणियाए चिंतेइ–केरिसा भोगा वाउलाणंति पव्वइओ। रण्णा भणिया–पेच्छह मा कवडेण गणियाघरं जाएज्जा, निंतस्स सुणगमडेण वावण्णेण णासं ण गेण्हइ, पुरिसेहिं रण्णो कहियं, विरत्तभोगोत्ति सिरिओ ठविओ, थूलभद्दसामिस्स पारिणामिया रण्णो य ॥ णासिक्कं णयरं, णंदो वाणियगो, सुंदरी से भज्जा, सुंदरिनंदो से नामं कयं, तस्स भाया पव्वइयओ, सो सुणेइ–जहा सो तीए अज्झोववन्नो, पाहुणओ आगओ, पडिलाभिओ, भाणं तेणं गहियं, *इह पत्थवियउत्ति उज्जाणं नीणिओ, लोगेण य भायणहत्थो दिट्ठो, तओ णं उवहसंति–पव्वइओ सुंदरीनंदो, तओ सो तहवि गओ उज्जाणं, साहुणा से देसणा कया, उक्कडरागोत्ति न तीरइ मग्गे लाइउं, वेउव्वियलद्धिमं च भगवं साहू, तओऽणेण चिंतियं–न अण्णो उवाओत्ति अहिगयरेणं उवलोभेमि, पच्छा मेरू पयट्टाविओ, न इच्छइ, †अविओगिओ, मुहुत्तेण आणेमि, पडिसुए पयट्टो, मक्कडजुयलं विउव्वियं, अन्ने भणंति–सच्चकं चेव दिट्ठं, साहुणा भणिओ–सुंदरीए वानरीओ य का लट्ठयरी?;

१ अमात्यो भवेति, अशोकवनिकायां चिन्तयति–कीदृशा भोगा व्याक्षिप्तानामिति प्रव्रजितः। राज्ञा भणिताः (पुरुषाः)–पश्यत मा कपटेन गणिकागृहं यासीत्, निर्गच्छन् श्वमृतकेन व्यापन्नेन नासिकां न कूणयति, पुरुषै राज्ञः कथितं, विरक्तभोग इति श्रीयकः स्थापितः, स्थूलभद्रस्वामिनः पारिणामिकी राज्ञश्च ॥ नासिक्यं नगरं, नन्दो वणिग्, सुन्दरी तस्य भार्या, सुन्दरीनन्दस्तस्य नाम कृतं, तस्य भ्राता प्रव्रजितः, स शृणोति–यथा स तस्यामध्युपपन्नः, प्राघूर्णकः (साधुः) आगतः, प्रतिलम्भितः, भाजनं तेन ग्राहितं, एहि अत्र प्रस्थापयेत्युद्यानं नीतः, लोकेन च भाजनहस्तो दृष्टः, ततस्तं उपहसन्ति–प्रव्रजितः सुन्दरीनन्दः, ततः स तथापि गत उद्यानं, साधुना तस्मै देशना कृता, उत्कटराग इति न शक्यते मार्गे आनेतुं, वैक्रियलब्धिकश्च भगवान् साधुः, ततोऽनेन चिन्तितं–नान्य उपाय इति अधिकतरेणोपलोभयामि, पश्चात् मेरुः प्रवर्त्तितः, नेच्छति, अवियोगिकः, मुहूर्त्तेनानयामि, प्रतिश्रुते प्रवृत्तः, मर्कटयुगलं विकुर्वितं, अन्ये भणन्ति–सत्यमेव दृष्टं, साधुना भणितः–सुन्दरीवानर्योः का लष्टतरा ?, *अप्पणा समं चालिओ सो जाणइ एत्थ विसज्जेहित्ति † अविवेगिओ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

सो भणइ–भगवं ! अघडंती सरिसव मेरूवमत्ति, पच्छा विज्जाहरमिहुणं दिट्ठं, तत्थ पुच्छिओ भणइ–तुल्ला चेव, पच्छा देवमिहुणगं दिट्ठं, तत्थवि पुच्छिओ भणति–भगवं ! एईए अग्गओ वानरी सुंदरित्ति, साहुणा भणियं–थोवेण धम्मेण एसा पाविज्जइत्ति, तओ से उवगयं, पच्छा पव्वइओ । साहुस्स परिणामिया बुद्धी ॥ वइरसामिस्स पारिणामिया–माया णाणुवत्तिया, मा संघो अवमन्निज्जिहितित्ति, पुणो देवेहिं उज्जेणीए वेउव्वियलद्धी दिन्ना, पाडलिपुत्ते मा परिभविहित्ति वेउव्वियं कयं, पुरियाए पवयणओहावणा मा होहितित्ति सव्वं कहेयव्वं ॥ चलणाहए–राया तरुणेहिं वुग्गाहिज्जइ, जहा थेरा कुमारमच्चा अवणिज्जंतु, सो तेसिं परिक्खणणिमित्तं भणइ–जो रायं सीसे पाएण आहणइ तस्स को दंडो ?, तरुणा भणंति–तिलं तिलं छिंदियव्वओ, थेरा पुच्छिया–चिंतेमोत्ति ओसरिया, चिंतेंति–नूणं देवीए को अण्णो आहणइत्ति आगया भणंति–सक्कारेयव्वो । रण्णो तेसिं च पारिणामिया ॥ आमंडेत्ति–आमलगं, कित्तिमं एगेण णायं अइकढिणं

१ स भणति–भगवन् ! अघटमाना सर्षप इव मेरूपमेति, पश्चाद्विद्याधरमिथुनं दृष्टं, तत्र पृष्टो भणति–तुल्यैव, पश्चाद्देवमिथुनं दृष्टं, तत्रापि पृष्टो भणति–भगवन् ! एतस्या अग्रतो वानरी सुन्दरीति, साधुना भणितं–स्तोकेन धर्मेणैषा प्राप्यत इति, ततस्तेनोपगतं, पश्चात्प्रव्रजितः । साधोः पारिणामिकी बुद्धिः ॥ वज्रस्वामिनः पारिणामिकी–माता नानुवर्त्तिता, मा सङ्घोऽवमानीति, पुनर्देवैरुज्जयिन्यां वैक्रियलब्धिर्दत्ता, पाटलीपुत्रे मा पराभूदिति वैक्रियं कृतं, पुरिकायां प्रवचनापभ्राजना मा भूदिति सर्वं कथयितव्यं ॥ चरणाहतौ–राजा तरुणैर्व्युद्ग्राह्यते, यथा स्थविराः कुमारामात्या अपनीयन्तां, स तेषां परीक्षानिमित्तं भणति–यो राजानं शीर्षे पादेन आहन्ति तस्य को दण्डः ?, तरुणा भणन्ति–तिलशश्छेत्तव्यः; स्थविराः पृष्टाः–चिन्तयाम इत्यपसृताः, चिन्तयन्ति–नूनं को देव्या अन्य आहन्ति इत्यागता भणन्ति–सत्कारयितव्यः । राज्ञस्तेषां च पारिणामिकी ॥ आम्लकमिति आमलकं, कृत्रिममेकेन ज्ञातमतिकठिनं,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

अकाले बिंबो होइत्ति । तस्सवि पारिणामिया ॥ मणित्ति–सप्पो पक्खिणं अंडगाणि खाइ रुक्खे विलग्गित्ता, तत्थ गिद्धेण आलयं विलग्गिय मारिओ, मणी तत्थ पडिओ, हेट्ठा कूवो, तस्स पाणियं रत्तिभूयं, णीणियं कूवाओ साभाविकं होइ, दारएण थेरस्स कहियं, तेण विलग्गिऊण गहिओ । थेरस्स परिणामिया ॥ सप्पो–चंडकोसिओ चिंतेइ–एरिसो महप्पा इच्चाइ विभासा, एयस्स पारिणामिगी ॥ खग्गीति–सावयपुत्तो जोव्वणबलुम्मत्तो धम्मं न गिण्हइ, मरिऊण खग्गिसु उववण्णो, पिट्ठिस्स दोहिंवि पासेहिं जहा पक्खरा तहा चंमाणि लंबंति, अडवीए च उप्पहे जणं मारेइ, साहुणो य तेणेव पहेण अइक्कमंति, वेगेण आगओ, तेएण ण तरइ अल्लिउं, चिंतेइ, जाई संभरिया, पच्चक्खाणं, देवलोगगमनं । एयस्स पारिणामिगी ॥ थूभे–वेसालाए णयरीए णाभीए मुणिसुव्वयस्स थूभो, तस्स गुणेण कूणियस्स ण पडइ, देवया आगासे कूणियं भणइ–'समणो जइ कूलवालए मागहियं गणियं लभिस्सति । लाया य असोगचंदए वेसालिं नगरिं गहेस्सइ ॥ १ ॥' सो

---

१ अकालेऽल्पाम्लं भवतीति । तस्यापि पारिणामिकी ॥ मणिरिति–सर्पः पक्षिणामण्डानि खादति वृक्षं विलग्य, तत्र गृध्रेणालयं विलग्य मारितः, मणिस्तत्र पतितः, अधस्तात्कूपः, तस्य पानीयं रक्तीभूतं, निष्काशितं कूपात् स्वाभाविकं भवति, दारकेण स्थविराय कथितं, तेन विलग्य गृहीतः । स्थविरस्य पारिणामिकी ॥ सर्पः–चण्डकौशिकश्चिन्तयति–ईदृशो महात्मा इत्यादि विभाषा, एतस्य पारिणामिकी ॥ खड्गी–श्रावकपुत्रो यौवनबलोन्मत्तो धर्मं न गृह्णाति, मृत्वा खड्गिषूत्पन्नः, पृष्ठेऽस्य द्वयोरपि पार्श्वयोः यथा पक्षौ तथा चर्मणी लम्बेते, अटव्यां चोत्पथे जनं मारयति, साधवश्च तेनैव पथा व्यतिक्रमन्ति, वेगेनागतः, तेजसा न शक्नोति अभिद्रोतुं, चिन्तयति, जातिः स्मृता, प्रत्याख्यानं, देवलोकगमनं । एतस्य पारिणामिकी ॥ स्तूपः–विशालायां नगर्यां मध्ये मुनिसुव्रततस्य स्तूपः, तस्य गुणेन कूणिकस्य (उद्यमेऽपि) न पतति, देवताऽऽकाशे कूणिकं भणति–'श्रमणो यदा कूलवालको मागधिकां गणिकां लप्स्यते (गमिष्यति)। राजा च अशोकचन्द्रः (कौणिकः) वैशालीं नगरीं ग्रहीष्यति ॥ १ ॥' । स

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [१]

मग्गिज्जइ । तस्स का उप्पत्ती?–एगस्स आयरियस्स चेल्लओ अविणीओ, तं आयरिओ अंबाडेइ, सो वेरं वहइ । अन्नया आयरिया सिद्धसिलं तेण समं वंदगा विलग्गा, उत्तरंताण वधाए सिला मुक्का, दिट्ठा आयरिएण, पाया ओसारिया इहरा मारिओ होंतो, सावो दिण्णो–दुरात्मन्! इत्थीओ विणस्सिहिसित्ति, मिच्छावाई एसो भवउत्तिकाउं तावसासमे अच्छइ, नईए कूले आयावेइ, पंथब्भासे जो सत्थो एइ तओ आहारो होइ, णईए कूले आयावेमाणस्स सा णई अण्णओ पवूढा, तेण कूलवारओ नामं जायं, तत्थ अच्छंतो आगमिओ, गणियाओ सद्दाविआओ, एगा भणइ–अहं आणेमि, कवडसाविया जाया, सत्थेण गया, वंदइ ‡उद्दाणे होइयम्मि चेइयाइं वंदामि तुब्भे य सुया, आगयामि, पारणगे मोदगा संजोइया दिन्ना, अइसारो जाओ, पओगेण ठविओ, उव्वत्तणाईहिं संभिन्नं चित्तं, आणिओ, भणिओ–रण्णो वयणं करेहि, कहं?, जहा वेसाली घेप्पइ, थूभो नीणाविओ, गहिया । गणियाकूलवालगाणं दोण्हवि पारिणामिगी । इंदपाउयाओ चाणक्केण पुवभणियाओ, एसा पारिणामिया ॥ उक्तोऽभिप्रायसिद्धः, साम्प्रतं तपःसिद्धप्रतिपिपादयिषयाऽऽह—

१ मार्ग्यते । तस्य कोत्पत्तिः?–एकस्याचार्यस्य क्षुल्लकः (शिष्यः) अविनीतः, तमाचार्यो निर्भर्त्सयति, स वैरं वहति । अन्यदा आचार्याः सिद्धशैलं तेन समं वन्दितुं विलग्नाः, अवतरतां वधाय शिला मुक्ता, दृष्टाऽऽचार्येण, पादौ प्रसारितौ इतरथा मृता अभविष्यन्, शापो दत्तः–दुरात्मन्! स्त्रीतो विनङ्क्ष्यसीति, मिथ्यावादी एष भवत्वितिकृत्वा तापसाश्रमे तिष्ठति, नद्याः कूले आतापयति, पन्थाभ्यासे यः सार्थं आयाति तत आहारो भवति, नद्याः कूले आतापयतः सा नद्यन्यतो व्यूढा, तेन कूलवारको नाम जातं, तत्र तिष्ठन् आगमितः, गणिकाः शब्दिताः, एका भणति–अहमानयामि, कपटश्राविका जाता, सार्थेन गता, वन्दते, विधवायां जातायां चैत्यानि वन्दे यूयं च श्रुताः, आगताऽस्मि, पारणके मोदकाः सांयोगिका दत्ताः, अतिसारो जातः, प्रयोगेण स्थापितः (नीरोगीकृतः), उद्वर्त्तनादिभिः संभिन्नं चित्तं, आनीतः, भणितः–राज्ञो वचनं कुरु, कथं?–यथा वैशाली गृह्यते, स्तूपो निष्काशितः (पातितः), गृहीता । गणिकाकूलवालकयोर्द्वयोरपि पारिणामिकी ॥ इन्द्रपादुकाः (इन्द्रकुमार्यः) चाणक्येन पूर्वभणिताः, एषा पारिणामिकी ॥ ‡ उद्दाणे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

भाग 29	'आवश्यक'-मूलसूत्र [१/२] मूलं एवं मलयगिरिसूरिजी रचिता टीका परिसमाप्ता: मूल संशोधकः सम्पादकश्च पूज्य आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब किंचित् वैशिष्ट्य समर्पितेन सह पुनः संकलनकर्ता मुनि दीपरत्नसागरजी [M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

	सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि भाग १ से ४० में कहां क्या मिलेगा?		
भाग	इस भागमे समाविष्ट आगम के नाम और आगम-क्रम		कुलपृष्ठ
01	आगम ०१ आचार मूलं एवं वृत्ति भाग-१ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- १,२		३१४
02	आगम ०१ आचार मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- ३ से ९, श्रुतस्कन्ध- २		५८६
03	आगम ०२ सूत्रकृत मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- १ से १३		४९८
04	आगम ०२ सूत्रकृत मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन १४ से १६, श्रुतस्कन्ध-२		३९२
05	आगम ०३ स्थान मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ स्थान- १ से ४		५९४
06	आगम ०३ स्थान मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ स्थान- ५ से १० संपूर्ण		४९४
07	आगम ०४ समवाय मूलं एवं वृत्ति.		३३८
08	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ शतक- १ से ६		५९२
09	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ शतक- ७ से ११		५५२
10	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-३ शतक- १२ से २०		५१४
11	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-४ शतक- २१ से ४१ संपूर्ण		३८४
12	आगम ०६ ज्ञाताधर्मकथा मूलं एवं वृत्ति.		५२२
13	आगम-७,८,९,१०उपासकदशा, अंतकृतदशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरण मूलं एवं वृत्ति.		५३८
14	आगम-११,१२, विपाक, उववाई मूलं एवं वृत्ति.		३८४
15	आगम १३ राजप्रश्नीय मूलं एवं वृत्ति.		३१४
16	आगम१४ जीवाजीवाभिगम भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. [प्रतिपत्ति-३-अतर्गत] सूत्र- १ से १३८		४८०
17	आगम१४ जीवाजीवाभिगम भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. [प्रतिपत्ति-३-अतर्गत] सूत्र- १३९ से प्रतिपत्ती-१० संपूर्ण		४८८
18	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. पद- १ से ५		४२६
19	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. पद- ६ से २२		५१४
20	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-३ मूलं एवं वृत्ति. पद- २३ से ३६ संपूर्ण		३३६
21	आगम १६ सूर्यप्रज्ञप्ति मूलं एवं वृत्ति.		६१०

	सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि भाग १ से ४० में कहां क्या मिलेगा?		
भाग	इस भागमे समाविष्ट आगम के नाम और आगम-क्रम		कुलपृष्ठ
22	आगम १७ चन्द्रप्रज्ञप्ति मूलं एवं वृत्ति.		६१४
23	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- १ एवं २.		३७६
24	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- ३ एवं ४.		४२६
25	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-३ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- ५ से ७.		३४४
26	आगम १९-३२ निरयावलिका, कल्पवतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका, वृष्णिदशा, चतु:शरण, आतुरपरत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान, भक्तपरिज्ञा, तंदुलवैचारिक, संस्तारक, गच्छाचार, गणिविध्या, देवेन्द्रस्तव मूलं एवं छाया		३१२
27	आगम ३३ थी ३९ मरणसमाधि मूलं एवं छाया, निशीथ, ब्रुहत्कल्प, व्यवहार, दशाश्रुतस्कंध, जीतकल्प/पंचकल्प, महानिशीथ मूलं एव		३३०
28	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-१, निर्युक्ति- १ से ५२१		४६६
29	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-२, निर्युक्ति- ५२२ से ९५१		४४२
30	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-३ निर्युक्ति- ९५२ से १२७३ अपूर्ण, [अध्ययन- १ से ४ अपूर्ण]		४६४
31	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-४ निर्युक्ति- १२७३ अपूर्ण से १६२३, [अध्ययन- ४ अपूर्ण से ६ संपूर्ण]		४२६
32	आगम ४१/१ ओघनिर्युक्ति मूलं एवं वृत्ति.		४७२
33	आगम ४१/२ पिंडनिर्युक्ति मूलं एवं वृत्ति.		३७६
34	आगम ४२ दशवैकालिक मूलं एवं वृत्ति.		५९०
35	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-१, अध्ययन- १ से ५		५२२
36	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-२, अध्ययन- ६ से २१		४८२
37	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-३, अध्ययन- २२ से ३६		४६६
38	आगम ४४ नन्दिसूत्र मूलं एवं वृत्ति.		५२८
39	आगम ४५ अनुयोगद्वार् मूलं एवं वृत्ति.		५६०
40	कल्प[बारसा]सूत्र... चतु:शरण, तन्दुलवैचारिक, गच्छाचार मूलं एवं वृत्ति.		३९४

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्यो नम:

आगम [40/2]

भाग-२९, निर्युक्ति:- (५२२-९५१)

पूज्य आगमोध्धारक आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरेण संशोधित: संपादितश्च

“आवश्यक मूलसूत्र” (मूलसूत्र-१/२) [मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:]

(किंचित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित:

“आवश्यक” मूलं एवं वृत्ति: नामेण परिसमाप्त:

“सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि” श्रेणि, भाग-29

आगम
वाचना शताब्दी वर्ष

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

मूल संशोधक

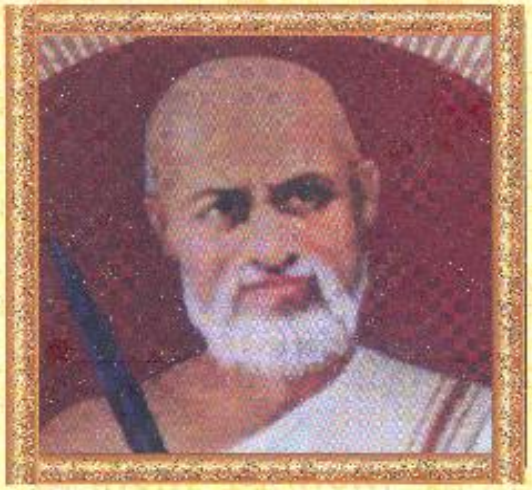

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य
श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज

अभिनव-संकलनकर्ता

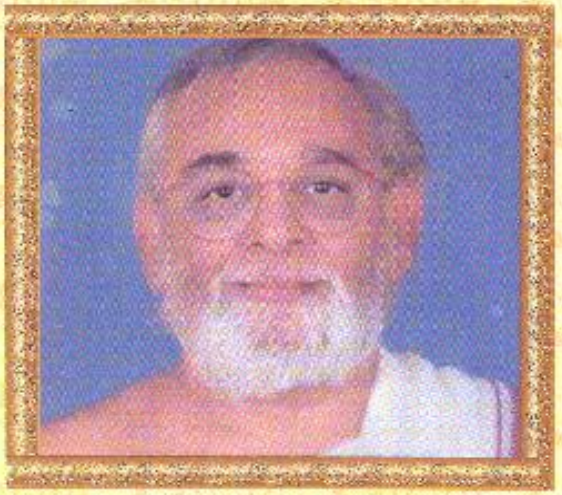

आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी
[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

प्रत-प्राप्ति और पेज-सेटिंग कर्ता : www.jainelibrary.org के चेरमन श्री प्रवीणभाई शाह, अमेरिका
मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस अमदावाद Mo 9825598855 / 9825306275

ईस प्रोजेक्ट के संपूर्ण-अनुदान-दाता

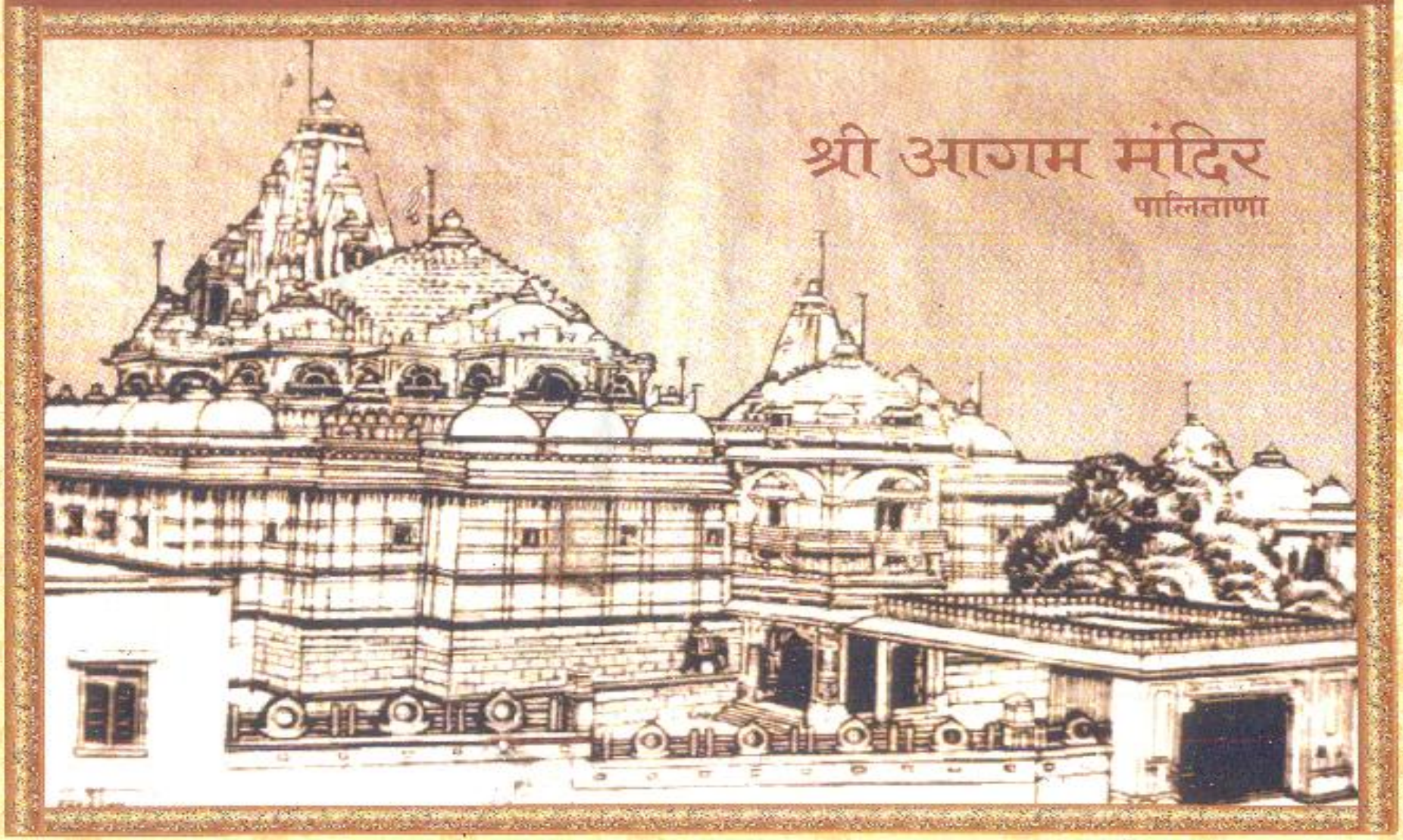

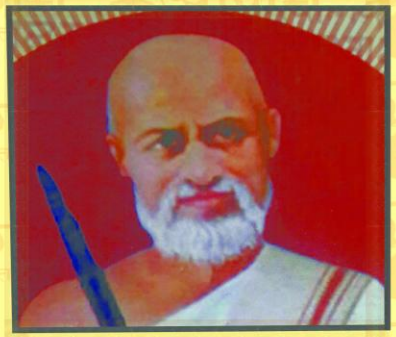

मूल संशोधक

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य

श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब

आगम ४०

"आवश्यक" मूलं एवं वृत्तिः [२]

अभिनव-संकलनकर्ता

आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी

[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]